इतिहास
एक अध्ययन

रायल इस्टिट्यूट आव इंटरनेशनल अफेयर्स गैर-सरकारी तथा अ-राजनीतिक सस्था है। यह सन् १९२० में अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के वैज्ञानिक अध्ययन को सुविधाजनक बनाने तथा प्रोत्साहित करने के लिए स्थापित की गयी थी।

ऐसा होने के कारण इस्टिट्यूट किसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर नियमत. अपना मत नही दे सकती। इस पुस्तक में जो मत व्यक्त किये गये है वे व्यक्तिगत हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा-मन्त्रालय, भारत सरकार की मानक ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत प्रकाशित।

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—१३५

इतिहास : एक अध्ययन

लेखक
आरनाल्ड जे० ट्वायनबी
आनरेरी डी० लिट्० अक्सफोर्ड तथा बरमिंघम
आनरेरी एल० एल० डी० प्रिंसटन, एफ० बी० ए०
अध्ययन के निदेशक रायल इंस्टिटयूट आव इंटरनेशनल अफेयर्स
अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास के रिसर्च प्रोफ़ेसर, लंदन विश्वविद्यालय
[दोनो सर डैनियल स्टिवेनसन की आय (फाउन्डेशन) पर]

संक्षेपकर्ता
डी० सी० सोमरवेल

अनुवादक
कृष्णदेव प्रसाद गौड़, एम०ए० (अंग्रेजी तथा राजनीति)
अवसरप्राप्त प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

प्रथम संस्करण

१९६६

[Hindi Translation of A STUDY OF HISTORY by ARNOLD J. TOYNBEE, D. Litt. Issued under the auspices of the Royal Institute of International Affairs, OXFORD UNIVERSITY PRESS, London, New York, Toronto, 1946.]

मूल्य

१२.००

बारह रुपये

मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, ६६५१-२३

प्रथम खण्ड

पुस्तक की योजना

(यह खण्ड १—५ भाग का संक्षेप है)

१. विषय-प्रवेश
२. सभ्यताओं की उत्पत्ति
३. सभ्यताओ का विकास
४. सभ्यताओ का विनाश
५. सभ्यताओ का विघटन

(भाग ६ से १३ तक का संक्षेप दूसरे खण्ड में है)

६. सार्वभौम राज्य
७. सार्वभौम धर्मतन्त्र
८ वीर काल
९ देश (स्पेस) में सभ्यताओ का सम्पर्क
१०. काल में सभ्यताओ का सम्पर्क
११. सभ्यताओ के इतिहास में लय
१२. पश्चिमी सभ्यता का भविष्य
१३ इतिहासकारों की प्रेरणा

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमे उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ अधिक-से-अधिक संख्या में तैयार किये जायें। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ मे सौपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनायी है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओ के प्रामाणिक ग्रन्थो का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखाये जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारो, विश्वविद्यालयो तथा प्रकाशको की सहायता से प्रारम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् और अध्यापक हमे इस योजना मे सहयोग दे रहे है। अनूदित और नये साहित्य मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा सस्थाओ मे एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

'इतिहास . एक अध्ययन' नामक पुस्तक हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक आरनाल्ड जे० ट्वायनबी, डी० लिट्० और अनुवादक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड एम० ए०, अवसरप्राप्त प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी, है। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थो के प्रकाशन सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रो मे स्वागत किया जायगा।

निहालकरण सेठी

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग।

प्रकाशकीय

उत्थान-पतन, ह्रास और विकास का चक्र प्रकृति में सदैव चलता रहता है। मानव जगत् भी उससे अलग नही है। सभ्यताएँ बनती और बिगडती हैं। पुरानी सभ्यता का कोई गुण जब किसी नयी सभ्यता मे प्रकट होता है, तो उसे इतिहास की पुनरावृत्ति कहा जाता है। ज्ञात सभ्यताओ की इसी पृष्ठभूमि को लेकर सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० ट्वायनबी ने ऐतिहासिक तथ्यो का अनुसंधान किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उनके गम्भीर एवं विवेकपूर्ण अध्ययन का परिणाम है।

अग्रेजी में इस महान् ग्रन्थ का सक्षिप्तीकरण श्री सोमरवेल द्वारा दो खण्डो मे किया गया है, जिनको भारत सरकार ने अपनी मानक ग्रन्थ योजना में लेकर हिन्दी समिति से राष्ट्रभाषा मे प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। अत-एव इसके प्रथम खण्ड का हिन्दी रूपान्तर वाराणसी के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड से और दूसरे खण्ड का हिन्दी अनुवाद इलाहाबाद के प्रतिष्ठित विद्वान् श्री रामनाथ 'सुमन' द्वारा सम्पन्न कराया गया है। हिन्दी समिति इन दोनो विद्वानो के प्रति आभारी है, जिनके सत्प्रयास से अन्तर्राष्ट्रीय विषयो के मर्मज्ञ ट्वायनबी-जैसे इतिहासकार की कृति की अवतारणा हिन्दी मे सुलभ हुई। हमें विश्वास है, विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओ के विद्यार्थियो और जिज्ञासुओ का इस प्रकाशन से यथेष्ट लाभ होगा।

रमेशचन्द्र पत
सचिव, हिन्दी समिति।

अनुवादक की भूमिका

एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करना बहुत कठिन होता है। ट्वायनबी की भाषा बड़ी लच्छेदार, साहित्यिक और स्थल-स्थल पर सन्दर्भों से भरी हुई है। पुस्तक पढ़ने वालों को पता चलेगा कि वह इतिहास के ही एक प्रकाण्ड विद्वान् नहीं हैं, साहित्य के कुशल कलाकार भी है। ऐसी अवस्था में अनुवाद का कार्य और भी कठिन हो गया। हिन्दी की प्रकृति की रक्षा करते हुए जहाँ तक सम्भव हुआ है लेखक के भाव तथा अर्थ को अनुवाद में लाने की चेष्टा की गयी है। तकनीकी शब्दो का अर्थ भारत सरकार के पारिभाषिक शब्द-सग्रह से लिया गया है।

पुस्तक के सम्बन्ध में कहना अनावश्यक है। इस महान् ग्रन्थ का प्रकाशन करके हिन्दी समिति ने हिन्दी को गौरवान्वित किया है।

पुस्तक पहले ही प्रकाशित हो जाती किन्तु अस्वस्थता के कारण इसमें विलम्ब हुआ। हिन्दी समिति ने मुझे समय देने में उदारता दिखायी, इसके लिए मैं समिति के अधिकारियो का आभारी हूँ।

—अनुवादक

लेखक की भूमिका

आगे के नोट में श्री डी० सी० सोमरवेल ने बताया है कि उन्होंने किस प्रकार मेरी पुस्तक के छ: खण्डों का संक्षेप किया है । इसके पहले कि मुझे इसकी कुछ जानकारी हो मुझ से कई स्थानों से विशेषत: संयुक्त राज्य से यह पूछा गया कि जितने खण्ड छप गये है उनके सक्षिप्त सस्करण की कोई सम्भावना है, इसके पहले कि कि पूरे खण्ड प्रकाशित हो क्योकि युद्ध के कारण अनिवार्य रूप से उनका छपना स्थगित हो गया था । इस माँग की शक्ति का अनुभव तो कर रहा था किन्तु समझ नही पा रहा था कि किस प्रकार यह कार्य हो । मै युद्ध के कामो मे फँसा हुआ था। यकायक एक पत्र पाने पर यह समस्या मुलझ गयी । श्री सोमरवेल ने मुझे लिखा कि एक सक्षेप मेरे पास तैयार है ।

जब श्री सोमरवेल ने पाण्डुलिपि मेरे पास भेजी ४–६ खण्डो को प्रकाशित हुए चार साल बीत चुके थे । और १–३ खण्ड को प्रकाशित हुए नौ वर्ष । मेरा खयाल है कि लेखक के लिए जो चीज प्रकाशन के पहले उसकी निजी होती है, प्रकाशन के बाद दूसरे की हो जाती है । और इस अवस्था मे तो १९३९–४५ का युद्ध भी बीच मे आ गया । उसके साथ वातावरण तथा मेरा कार्य भी बदल गया । ये भी मेरे तथा मेरी पुस्तक के बीच आ गये । ४–६ खण्ड युद्ध आरम्भ होने के इकतालीस दिन पहले प्रकाशित हुए थे । इस कारण जब मैंने श्री सोमरवेल का संक्षेप पढा तो यद्यपि उन्होने मेरे ही शब्द रखे है मुझे ऐसा जान पडा कि मैं कोई नयी पुस्तक पढ रहा हूँ, जो किसी दूसरे की लिखी है । मैंने जहाँ-तहाँ—श्री सोमरवेवल की सहमति से—भाषा मे परिवर्तन किया है ज्यो-ज्यो मै पढ़ता गया हूँ, किन्तु मैंने भूल से तुलना नही की है । मैंने ऐसा कोई अश नही रखा है जिसे सोमरवेल ने छोड दिया हो, क्योकि लेखक ही इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है कि कौन अश पुस्तक के लिए आवश्यक है ।

चतुराई से किया हुआ सक्षेप लेखक की बड़ी सेवा करता है जिसे लेखक स्वय नही कर सकता और इस खण्ड के पाठक जिन्होंने मूल पुस्तक भी पढ़ी है वह मुझसे सहमत होंगे कि श्री सोमरवेल ने अच्छी साहित्यिक कला का परिचय दिया है । उन्होने पुस्तक के विषय की रक्षा की है और अधिकाश मेरे ही शब्दो को रखा है । साथ-ही-साथ छ: खण्डो को एक खण्ड मे कर दिया है । यदि यह कार्य मैंने किया होता तो सन्देह है कि मैं उसे कर पाता ।

यद्यपि श्री सोमरवेल ने सक्षेप करके मेरा काम बहुत हल्का कर दिया परन्तु इसे दोहराने मे मुझे दो साल और लग गये । हफ्तों बिना स्पर्श किये यह मेरे सिरहाने पड़ा रहता था । यह विलम्ब युद्ध की आवश्यक बातो के कारण हुआ । शेष पुस्तकों के नोट मैंने ज्यो-के-त्यो न्यूयार्क के विदेशी सम्पर्क विभाग की कौसिल के पास सुरक्षित रखने के लिए भेज दिये । मैंने म्यूनिख सप्ताह में कौंसिल के मन्त्री श्री मेलोरी के पास भेज दिया और उन्होने कृपा करके उसकी सुरक्षा

का भार लिया और जब तक जीवन है यह आशा की जा सकती है कि कार्य समाप्त हो जायगा। श्री सोमरवेल के संक्षेपीकरण के लिए मै एक कारण से और भी आभारी हूँ कि मै अपना ध्यान आगे के खण्डो के लिखने में लगा सका।

मेरे लिए यह भी प्रसन्नता की बात है कि पूरी पुस्तक की भाँति यह सक्षेप भी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस प्रकाशित कर रहा है। इसका इन्डेक्स कुमारी वी० एम० बोलटर ने बनाया है जिनके प्रति पाठक इसलिए आभारी है कि उन्होने खण्ड १–३ तथा खण्ड ४–६ तक इडेक्स भी बनाया है।

१९४६ —आरनाल्ड जे० ट्वायनबी

नोट

संक्षेपकर्ता के संपादक का

श्री ट्वायनबी के 'इतिहास का अध्ययन' मानव-जाति की ऐतिहासिक अनुभूति के रूप तथा प्रकृति का क्रमबद्ध विषय है। यह उस समय से आरम्भ होता है जब इस जाति ने, इस समाज ने, जिसे सभ्यता कहते हैं पृथ्वी पर जन्म लिया। इस विषय की जहाँ तक सामग्री उपलब्ध है, तथा जहाँ तक आज तक मानव इतिहास की जानकारी है प्रत्येक स्थल पर पर्याप्त उदाहरणों से 'प्रमाणित' किया गया है। कुछ उदाहरण बहुत ब्योरे से दिये गये है। पुस्तक के इस रूप के होने के कारण सक्षेप करने वाले सम्पादक का कार्य मूलतः सरल हो गया है। सारे विषयो को ज्यो-का-त्यो रखा गया है यद्यपि संक्षेप मे। कुछ सीमा तक उदाहरणों की संख्या कम कर दी गयी है, और ब्योरे में कुछ अधिक कमी की गयी है।

मेरी समझ में इस खण्ड द्वारा श्री ट्वायनबी के ऐतिहासिक दर्शन का समुचित निरूपण हो जाता है जैसा कि उन्होने अपने छः खण्डो मे किया है यद्यपि अभी सम्पूर्ण कार्य समाप्त नही हुआ है। यदि ऐसा न होता तो श्री ट्वायनबी इसके प्रकाशन की आज्ञा न देते। किन्तु मुझे दुख होगा यदि इसे मूल पुस्तक का प्रतिरूप मान लिया जायगा। काम चलाने के लिए यह प्रतिरूप हो सकता है किन्तु आनन्द के लिए नही; क्योकि मूल पुस्तक का सौदर्य उसके आनन्ददायक उदाहरणो मे है। विषय की महत्ता की दृष्टि से मूल पुस्तके ही समुचित है। मैंने मूल पुस्तक के ही वाक्य तथा अनुच्छेद रखे है और मुझे इस बात की आशका नही है कि वे नीरस होगे। किन्तु साथ ही मेरा यह भी मत है कि मूल पुस्तके अधिक आनन्द देगी।

मैंने यह सक्षेप अपने मनोरजन के लिए किया था। श्री ट्वायनबी को इसका पता न था और प्रकाशित करने की दृष्टि भी न थी। समय काटने के लिए मुझे यह अच्छा व्यसन मिल गया था। पूरा होने पर ही मैंने श्री ट्वायनबी को बताया और उनको दे दिया कि यदि उनकी इच्छा हो तो इसका उपयोग करे। इस पुस्तक का इस प्रकार जन्म हुआ, इसलिए मैंने कही-कही अपनी ओर से भी उदाहरण दे दिये हैं जो मूल पुस्तक में नही है। कहा भी गया है कि कि "उस बैल का मुँह नही बन्द करना चाहिए जो अपने मालिक का अनाज खा रहा हो।" मैंने जो उदाहरण दिये हैं वे बहुत कम है और उनका महत्त्व भी कम है। मेरी पाण्डुलिपि को श्री ट्वायनबी ने दोहरा दिया है और उनकी स्वीकृति भी मिल गयी है। उनका विवरण यहाँ अथवा पाद-टिप्पणी में देना आवश्यक नही है। यहाँ उसको बता देना इसलिए आवश्यक था कि यदि कोई मूल से तुलना करे तो यह न समझे कि सक्षेप करने मे ईमानदारी नही बर्ती गयी है। मूल पुस्तक के प्रकाशित होने तथा इसके प्रकाशन के बीच कुछ घटनाएँ ऐसी हो गयी है जिनके कारण मैंने अथवा श्री ट्वायनबी ने कही-कही एकाध वाक्य इसमें जोड़ दिये है। किन्तु यह देखते हुए

कि पहले तीन खण्ड सन् १९३३ में प्रकाशित हुए थे और शेष १९३९ में, फिर भी इसकी आवश्यकता बहुत ही कम पड़ी।

परिशिष्ट में जो अनुक्रमणिका दी गयी है वह एक प्रकार से संक्षेप का संक्षेप है। इस पुस्तक मे मूल पुस्तक के ३,००० पृष्ठों का ५६५ पृष्ठों में संक्षेप किया गया है और उसी को अनुक्रमणिका में २५ पृष्ठों में संक्षिप्त किया गया है। यदि उसी को पढ़ा जाय तो वह निहायत नीरस और निरर्थक जान पड़ेगा। किन्तु सन्दर्भ जानने के लिए वह उपयोगी होगा। वास्तव मे वह एक प्रकार से विषय सूची है। उसे आरम्भ में न रखने का कारण केवल यही है कि चित्र के सामने वह भद्दी वस्तु-सी लगेगी।

जो पाठक मूल पुस्तक से इसका सम्बन्ध जानना चाहेंगे उनकी सुविधा के लिए नीचे का समीकरण दिया जाता है जो उपादेय होगा।

पृष्ठ	१	से पृष्ठ	६६ तक	मूल पुस्तक का खण्ड	१
पृष्ठ	६७	से पृष्ठ	१३७ तक	मूल पुस्तक का खण्ड	२
पृष्ठ	१३८	से पृष्ठ	२०३ तक	मूल पुस्तक का खण्ड	३
पृष्ठ	२०४	से पृष्ठ	२९९ तक	मूल पुस्तक का खण्ड	४
पृष्ठ	३००	से पृष्ठ	४१४ तक	मूल पुस्तक का खण्ड	५
पृष्ठ	४१४ (६)	से पृष्ठ	४७७ तक	मूल पुस्तक का खण्ड	६

—डी० सी० सोमरवेल

विषय सूची

१ विषय-प्रवेश

२ सभ्यताओं की उत्पत्ति

३ सभ्यताओं का विकास

४ सभ्यताओं का विनाश

५ सभ्यताओं का विघटन

इतिहास : एक अध्ययन

प्रथम खण्ड

१

विषय-प्रवेश

१. ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई

इतिहासकार जिस समाज में रहते है और काम करते है उस समाज के विचारो का परिष्कार नही करते, अपितु उसी को अपने सिद्धान्तों के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करते है । इधर कुछ शतियों मे, विशेषत: कुछ पीढियो मे, आत्मनिर्भर होने वाले स्वतन्त्र राष्ट्रो मे जो विकास हुआ है उसके आधार पर इतिहासकारों ने राष्ट्रो को ही ऐतिहासिक अध्ययन के लिए चुना है । किन्तु यूरोप के किसी राष्ट्र अथवा राष्ट्रीय राज्य (नेशनल स्टेट) का इतिहास ऐसा नही है जिसके द्वारा उसके इतिहास की व्याख्या की जा सके । यदि कोई ऐसा राज्य हो सकता तो वह ग्रेट ब्रिटेन होता । यदि ग्रेट ब्रिटेन (और आरम्भिक कालो मे इंग्लैंड) में अपने मे ही ऐतिहासिक अध्ययन का समुचित क्षेत्र नही मिलता तो हम अच्छी तरह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि कोई वर्तमान यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य इस अध्ययन के उपयुक्त नही है ।

क्या इग्लैंड मात्र के इतिहास के अध्ययन से वहाँ का इतिहास स्पष्ट हो सकता है ? क्या वहाँ के और बाहर के देशो के सम्बन्ध मे हम वहाँ का आन्तरिक इतिहास पा सकते है । यदि यह सम्भव है तब क्या बाहरी देशो के सम्बन्ध का महत्त्व कम है ? और जब हम इसका विश्लेषण करेंगे तब क्या हम इस परिणाम पर पहुँचेगे कि इग्लैंड पर विदेशी प्रभाव कम है और इग्लैंड का विदेशो पर अधिक प्रभाव पडा है ? यदि इन प्रश्नो का उत्तर हाँ मे है, तो हमारा यह निष्कर्ष ठीक होगा कि इग्लैंड का इतिहास पढे बिना दूसरे देशो के इतिहास को समझना सम्भव न होगा, किन्तु दूसरे देशो के इतिहास को पढ़े बिना इंग्लैंड का इतिहास प्राय: समझा जा सकता है । इन प्रश्नो पर भली-भाँति विचार करने के लिए हमको इंग्लैंड के इतिहास की प्रमुख घटनाओ पर उलटे क्रम से ध्यान देना चाहिए । इस उलटे क्रम से मुख्य अध्याय इस प्रकार हो सकते है :—

(क) औद्योगिक प्रणाली पर आर्थिक व्यवस्था की स्थापना
(अठारहवी शती के अन्तिम चतुर्थांश से)

(ख) उत्तरदायी ससदीय शासन की स्थापना
(सत्रहवी शती के अन्तिम चतुर्थांश से)

(ग) विदेशो मे विस्तार
(सोलहवी शती के तीसरे चतुर्थांश में समुद्री डकैती से आरम्भ होकर उसका विश्वव्यापी विदेशी व्यापार मे विकास, उष्ण कटिबन्ध के देशों का ग्रहण और शीतोष्ण जलवायु के प्रदेशो में अग्रेजी बोलने वाली जातियो के नये समुदायों की स्थापना ।)

(घ) धार्मिक सुधार (रिफार्मेशन)
(सोलहवी शती के दूसरे चतुर्थांश से)
(च) पुनर्जागरण—(रेनेसां)—आन्दोलन के राजनीतिक, आर्थिक, कलात्मक तथा बौद्धिक सभी पहलू (पन्द्रहवी शती के अन्तिम चतुर्थांश से)
(छ) सामन्ती तन्त्र की स्थापना। (ग्यारहवी शती से)
(ज) तथाकथित वीरकालीन धर्म से अंग्रेजो का पश्चिम से चले ईसाई धर्म मे परिवर्तन (छठी शती के अन्तिम वर्षों से)

साधारणतः अंग्रेजी इतिहास को जब हम आज से पीछे की ओर देखते है तब हमें जान पड़ता है कि जितना ही पहले जाते है उतना ही आत्मनिर्भरता अथवा सबसे अलग रहने का कम प्रमाण मिलता है। वास्तव में धार्मिक परिवर्तन काल से अंग्रेजी इतिहास का सब कुछ आरम्भ होता है। यह धर्म-परिवर्तन आत्म-निर्भरता के बिलकुल विपरीत था। इसके कारण लगभग आधे दर्जन बर्बर समुदाय नवजात पश्चिमी समाज मे मिल गये जिनमे उनका सामान्य कल्याण था। जहाँ तक सामन्ती तन्त्र की बात है 'विनो ग्रेडाफ' ने सुन्दर ढग से बता दिया है कि नारमन विजय के पहले इग्लैंड की धरती पर उसका बीज उग चुका था। फिर भी इस अकुर को पनपने मे शक्ति मिली बाहरी कारणो से, और वह थी डैनिश चढ़ाई। ये चढाइयाँ स्कैंडिनेविया की जनरेला (फोलकर वन डुरग) का अश थी जिसके परिणामस्वरूप उसी समय फ्रास मे भी सामन्ती तन्त्र पनप रहा था। नारमन विजय ने इस तन्त्र को पूर्ण रूप से स्थापित कर दिया। पुनर्जागरण के बारे में सभी स्वीकार करते है कि उसका सास्कृतिक तथा राजनीतिक, दोनो ही रूप, उत्तरी इटली के प्राण का उच्छ्वास था। यदि मानवतावाद (ह्युमैनिज्म) निरकुशतावाद (ऐब्सोल्युटिज्म) तथा शक्ति-सन्तुलन (बैलेंस आव पावर) बाग मे रोपे गये अकुर के समान छोटे रूप मे उत्तरी इटली मे १२७५ से १४७५ के बीच दो शतियो में न उगाये गये होते तो १४७५ के बाद आल्प्स के उत्तर मे वे न जम पाते। एक बात और। धर्म-सुधार विशेषत इग्लैंड की घटना न थी। वह सारे उत्तर-पश्चिमी यूरोप का आन्दोलन था जिसका अभिप्राय दक्षिण यूरोप के प्रभाव से अपने को मुक्त करना था क्योकि इसकी दृष्टि भूमध्य सागर के उन पश्चिमी देशो की ओर थी जो समाप्त हो चुके थे। धर्म-सुधार आन्दोलन मे इग्लैंड का नेतृत्व नही था। यूरोप के अतलान्तक तट के राष्ट्रो मे विदेशो को विजय करने की जो होड़ चल रही थी उसमें भी इग्लैंड अगुआ नही था। जो शक्तियाँ पहले से मैदान मे थी, उनसे लड़कर बाद मे उसने विजय प्राप्त की।

अब दो अन्तिम प्रकरणो पर विचार करना है। ससदीय व्यवस्था और औद्योगिक व्यवस्था की उत्पत्ति जिनके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि इनका जन्म और विकास इग्लैंड मे हुआ और यही से संसार के दूसरे देशो में ये गयी। विद्वान् इस मत का समर्थन नही करते। संसदीय व्यवस्था के सम्बन्ध में लार्ड ऐक्टन का कहना है —'साधारण इतिहास उन कारणों का परिणाम नही है जो राष्ट्रीय हैं। इनका कारण बहुत व्यापक है। फ्रास में जो वर्तमान राजत्व व्यवस्था है (किंग शिप) वह इंग्लैंड के उसी प्रकार के आन्दोलन का अग है। बूरबन और स्टुअर्ट परिवार एक ही सिद्धान्त के अनुगामी थे, यद्यपि उस सिद्धान्त के परिणाम भिन्न थे।' दूसरे शब्दो मे इंग्लैंड में जो संसदीय व्यवस्था आयी वह उन शक्तियो का परिणाम थी जो केवल इग्लैंड मे ही नही कार्य कर रही थी, इग्लैंड और फ्रांस मे साथ-साथ काम कर रही थी।

इंग्लैंड औद्योगिक क्रान्ति के जन्म के बारे में 'हैमंड' दम्पति से बढ़कर और दूसरे विद्वान् के मत लिखने की आवश्यकता नही है । 'द राइज आव मार्डन इडस्ट्री' की भूमिका में उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि इग्लैड में औद्योगिक क्रान्ति के आविर्भाव का कारण ढूढ़ने के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह देखनी है कि अठारहरवी शती में अतलान्तक मे उसकी भौगोलिक स्थिति अन्य यूरोपीय देशों की तुलना मे क्या थी तथा यूरोप के शक्ति-सन्तुलन में उसका क्या स्थान था ? देखने से यह जान पड़ता है कि ब्रिटेन के इतिहास का बौद्धिक अध्ययन उसे अलग रख कर नही किया जा सकता । और यदि यह ग्रेट ब्रिटेन के लिए सत्य है तो निर्णयात्मक ढंग से अन्य राष्ट्रीय राज्यो के लिए भी सत्य है ।

इग्लैड के इतिहास की संक्षेप मे जो परीक्षा हमने की है, उसका परिणाम तो नकारात्मक है, किन्तु उससे एक बात का पता चला । इग्लैड के इतिहास मे जिन अध्यायो का हमने विलोम ढग से अध्ययन किया वे किसी-न-किसी कथा के सत्य रूप थे । किन्तु वे कथाएँ ऐसे समाज की थी जिसमे इग्लैंड का योगदान आशिक था । इन कृत्यो में ग्रेट ब्रिटेन के अतिरिक्त और राष्ट्रो का योगदान भी था । इस विषय के बौद्धिक अध्ययन के लिए इग्लैंड के ही समान और समुदायो का अध्ययन करना ठीक होगा । अर्थात् इग्लैड ही नही, फ्रास और स्पेन, नेदरलैड तथा स्कैडिनेविया के देशो का भी । लार्ड एक्टन की पुस्तक का जो अश उद्धृत किया गया है उससे सम्पूर्ण इतिहास तथा उसके अशो का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है ।

इतिहास में जो शक्तियां कार्य करती है वे राष्ट्रीय ही नही है । परिणामों के कारण और भी व्यापक है । प्रत्येक अश पर जो प्रभाव पड़ते है वे एक अश के परिणाम से समझ मे नही आ सकते । इस जानने के लिए समाज के सभी अशो का व्यापक अध्ययन आवश्यक है । एक ही कारण का परिणाम विभिन्न भागो पर भिन्न-भिन्न होता है । एक ही प्रकार की शक्ति की प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है और उसका परिणाम भी भिन्न होता है । समाज को अपने जीवन मे अनेक समस्याओ का सामना करना पड़ता है । समाज का प्रत्येक सदस्य जो सबसे अच्छा ढग समझता है, उस ढग से उसे सुलझाता है । ये समस्याएं अग्नि-परीक्षा के रूप मे लगातार आती रहती है । जिस प्रकार समाज के विभिन्न समुदाय इस अग्नि-परीक्षा का सामना करते है उसी के अनुसार क्रमश. समुदाय एक दूसरे से भिन्न होते जाते है । किसी विशेष देश का किसी विशेष परिस्थिति मे कैसा आचरण होता है, हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम यह भी न देखे कि उसके साथी देश का उसी परिस्थिति में कैसा—उसी के समान या भिन्न आचरण होता है । साथ ही समाज के समस्त जीवन मे उन अग्नि-परीक्षाओ को भी देखना होगा ।

ऐतिहासिक तथ्यो की व्याख्या का यह रूप समझने के लिए ठोस उदाहरण ठीक होगा । यह उदाहरण हम प्राचीन यूनान के चार सौ वर्षो के इतिहास अर्थात् ईसा के पूर्व ७२५ से ३२५ का इतिहास ले सकते है ।

इस काल के आरम्भ मे ही अनेक राज्यो की, जो इस समाज के सदस्य थे, आबादी बढ़ जाने से खाद्य की समस्या उपस्थित हुई । उस समय के हेलेनी[1] लोगो ने अपने क्षेत्रो मे अनेक प्रकार

१. हेलेनिक ।

के अन्न उपजा कर इसे पूरा किया । जब संकट काल आया तब विभिन्न राज्यो ने विभिन्न ढगों से प्रयास किया ।

कुछ राज्यों ने जैसे कारिन्थ और कालसिस ने सिसिली, दक्षिण इटली, थ्रेस तथा और खेतिहर प्रदेशों को जीत कर उन्हें अपना उपनिवेश बना कर बढ़ी जनसंख्या को वहाँ भेज दिया । इस प्रकार जो यूनानी उपनिवेश बने उससे केवल हेलेनी समाज का भौगोलिक विस्तार हुआ, समाज के जीवन में कोई परिवर्तन नही हुआ । दूसरी ओर कुछ राज्य ऐसे थे जिनके जीवन मे तबदीली हुई ।

उदाहरण के लिए, स्पार्टा ने अपने नागरिकों की भूख की शान्ति के लिए अपने निकटतम यूनानी पड़ोसियो पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की । परिणामस्वरूप वह अपने ही समान जीवट के लोगों से बराबर और कठिन युद्ध करके अधिक धरती प्राप्त कर सका । इस स्थिति के कारण स्पार्टा के राजनीतिज्ञों को अपने देशवासियो का आरम्भ से अन्त तक सैनिक जीवन बनाने के लिए विवश होना पडा । इसके लिए उन्हे कुछ आदिम सामाजिक व्यवस्थाओ को अपनाना और पुनरुज्जीवित करना पड़ा जो स्पार्टा से तथा और दूसरे यूनानी समुदायो से लोप हो चली थी ।

एथेंस ने जनसंख्या के प्रश्न को दूसरे ढंग से सुलझाया । इसने अपनी कृषि की उपज को, विशेषत: निर्यात के योग्य बनाया । निर्माण के लिए वस्तुएँ भी तैयार करनी आरम्भ की और फिर राजनीतिक सस्थाओं का ऐसा विकास किया कि उन वर्गो को उचित अधिकार दिया जाय जो इन नयी आर्थिक व्यवस्थाओ के कारण उत्पन्न हो गये थे । दूसरे शब्दो मे एथेस के राजनीतिज्ञो ने आर्थिक तथा राजनीतिक क्रान्ति लाकर सामाजिक क्रान्ति से देश को बचा लिया । अपनी समस्या के समाधान के लिए व्यवस्था खोजने के साथ ही साथ उन्होने सारे हेलेनी समाज की प्रगति के लिए नयी राह निकाल दी । पेरिक्लीज ने, जब अपने नगर की भौतिक सम्पत्ति के संकट के समय यह कहा था, कि यह यूनान की पाठशाला है, उसका यही अभिप्राय था ।

इस दृष्टि से, जिमसे एथेस या स्पार्टा या कारिंथ या कालसिस ही नही, सारे यूनानी समाज को देखा जाय तो, हम ७२५-३२५ ई० पू० के अनेक समुदायों के इतिहास को समझ पाते है और इस सक्रमण काल के पश्चात् आने वाले युग के इतिहास के महत्त्व को भी समझ सकते हैं । इस प्रकार हम अनेक प्रश्नो का उत्तर पा जाते है जो केवल कालसिस, कारिंथ, स्पार्टा अथवा एथेंस के इतिहास के अध्ययन से नही पा सकते । इसी प्रकार हम देख सकते है कि कुल अर्थो में कालसिस अथवा कोरिथ का इतिहास सामान्य था, किन्तु स्पार्टा तथा एथेस का इतिहास अनेक दिशाओ मे सामान्य से भिन्न हो गया था । यह कहना सम्भव नही है कि यह विभिन्नता किस प्रकार आ गयी । इतिहासकारो का यही सकेत था कि स्पार्टा और एथेस के निवासियो में हेलेनी इतिहास के आरम्भिक काल से ही कुछ जन्मजात विशेष गुण थे । एथेस और स्पार्टा के विकास का कारण इस प्रकार बताने का अर्थ यही निकला कि यह मान लिया कि इन प्रदेशो का विकास हुआ ही नही और ये दोनो जातियाँ जैसी इतिहास के आरम्भ काल मे थी वैसी ही बाद मे भी रही । किन्तु यह कल्पना तथ्यो के विपरीत है । उदाहरण के लिए, 'ब्रिटिश आरकियोलोजिकल स्कूल' की ओर से स्पार्टा में जो खुदाई हुई है उसमे इस बात का आश्चर्यजनक प्रमाण मिला है कि ईसा पूर्व छठी शती के मध्य तक स्पार्टा के तथा दूसरे यूनानी समुदायो के जीवन मे विशेष अन्तर नहीं था । एथेस की भी विशेषताएँ, जो उसने यूनानी काल (हेलेनेस्टिक एज) मे यूनानी संसार

(हेलेनिक वर्ल्ड) को प्रदान कीं, अर्जित विशेषताएँ थी। उनकी उत्पत्ति साधारण दृष्टि से समझ में आ सकती है। स्पार्टा का हाल बिलकुल उलटा था। वह मानो अँधेरी गली में चला गया था। यही अन्तर वेनिस, मिलन और जेनोआ में पाया तथा उत्तरी इटली के और नगरो के बीच तथाकथित मध्य युग में था। और ऐसा ही अन्तर फ्रांस, स्पेन, नेदरलैंड, ग्रेट ब्रिटेन में और पश्चिम के दूसरे राज्यों में आजकल है। अश को समझने के लिए पूर्ण पर हमें ध्यान देना होगा क्योकि पूर्ण का ही अध्ययन अपने में स्पष्ट है।

मगर यह 'पूर्ण' जिसका अध्ययन अपने में स्पष्ट है, है क्या ? और उसकी स्थानिक तथा भौतिक सीमाओ का पता कैसे लगेगा। हमे फिर इंग्लैंड के इतिहास के अध्यायो के सक्षेप को देखना होगा कि वह कौन बोधगम्य बड़ा 'पूर्ण' क्षेत्र है इग्लैंड का इतिहास जिसका एक अश है।

यदि हम अपने अन्तिम अध्ययन, औद्योगिक व्यवस्था के सस्थापन से अध्ययन आरम्भ करे तो हमको ज्ञात होगा कि इस क्षेत्र के अध्ययन की सीमा विश्वव्यापी है। इग्लैड को राजनीतिक क्रान्ति को समझने के लिए पश्चिमी यूरोप की आर्थिक परिस्थिति को ही नही देखना पडेगा हमें उष्ण कटिबन्ध के देश, अफ्रीका, अमेरीका, रूस, भारत तथा सुदूरपूर्व पर भी दृष्टि डालनी होगी। किन्तु जब हम संसदीय व्यवस्था को देखते हैं और औद्योगिक व्यवस्था से राजनीतिक व्यवस्था की ओर मुडते है तब हमारी सीमा सकुचित हो जाती है। लार्ड एक्टन के शब्दो मे जिन कानूनो पर फ्राम और इग्लैड में बूरबन और स्टुअर्ट चलते थे वे रूस के रोमानोफो, तुर्की के उसमानलियो, भारत के तैमूरियो, चीन के मचुओ और जापान के तोकूगानो मे नही माने जाते थे। इन देशो के राजनीतिक इनिहास की व्याख्या समान रूप मे नही हो सकती। यहाँ हमारे सामने रुकावट आ जाती है। जिन 'कानूनो' के अनुसार बूरबन और स्टुअर्ट कार्य करते थे वे यूरोप के अन्य पश्चिमी देशों मे चलते थे और पश्चिमी यूरोप के देशो ने जो समुद्र-पार उपनिवेश स्थापित किये थे उनमे चलते थे। किन्तु रूस और तुर्की की पश्चिमी सीमा के आगे उनका प्रभाव नही था। इस सीमा के पूरब दूसरी विधि और नियम का चलन था और उनका परिणाम भी दूसरा था।

यदि हम इग्लैड के इतिहास के अपने प्रारम्भिक अध्यायो की ओर ध्यान दे तो केवल पश्चिमी यूरोप का फैलाव विदेशो मे नही हो रहा था। अतलान्तक तट के जितने राज्य थे सभी इस कार्य मे संलग्न थे। 'धार्मिक सुधार' और पुनर्जागरण का अध्ययन करते समय हम रूस और तुर्की के धार्मिक तथा सास्कृतिक विकास की उपेक्षा करे तो कोई हानि नही होगी। पश्चिमी यूरोप की सामन्तवादी व्यवस्था का बैजन्तिया (बाइज़ेंटाइन) और इस्लामी सम्प्रदायो के सामन्तवाद से कोई सम्बन्ध नही था।

अन्त में इग्लैंड ने जब पश्चिमी ईसाई मत स्वीकार कर लिया तब उसने एक समाज में प्रवेश दिया और परिणामतः उसे दूसरे समाजो से अलग रहना पड़ा। सन् ६६४ ई० के ह्विटबी की धर्म-परिषद् (साइना आव ह्विटबी) तक सम्भवतः अंग्रेज लोग केल्टिक जातियों के सुदूर पश्चिमी ईसाई मत को स्वीकार लेते और यदि आगस्टीन का मिशन अन्त में असफल होता तो वे सम्भवतः रोम से अलग होकर वेल्श और आयरिश लोगों के साथ भिन्न ईसाई धर्म की संस्थापना करते। जिस प्रकार ईसाई-जगत् की पूर्वी सीमा पर नेस्टोरी थे। बाद मे जब अरब के मुसलमान अतलांतक के किनारे पहुँचे, ब्रिटिश द्वीप के ईसाइयों का सम्पर्क यूरोपीय महाद्वीप के ईसाइयो

से छूट गया जैसे अबीसीनिया अथवा मध्य ऐशिया के ईसाइयों का छूट गया। वे शायद मुसलमान हो जाते जैसे 'मोनोफाइसाइटों' अथवा 'नेस्टोरियों' ने अरब शासन के समय किया। ये काल्पनिक विकल्प विचित्र मालूम हो सकते है, किन्तु इन पर ध्यान देने से हमें यह स्मरण होता है कि सन् ५९७ ई० में धर्म-परिवर्तन के कारण इंग्लैड पश्चिमी ईसाई-जगत् के साथ तो एक हो गया किन्तु विश्व के साथ एक नही हुआ। अपितु दूसरे धार्मिक समुदायो मे और इसमे गहरा भेद भी हो गया।

इंग्लैंड के इतिहास के अध्यायो के इस निरीक्षण द्वारा हमे विभिन्न कालो में यहाँ के इतिहास के बौद्धिक अध्ययन का विभिन्न अवस्थाओं में अवसर मिलता है। यह निरीक्षण क्षेत्रीय क्षितिजो के आधार पर किया जाना चाहिए। इस क्षेत्रीय अध्ययन मे सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपो का अन्तर समझना होगा। जैसे आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक। क्योकि क्षेत्रीय दृष्टि से प्रत्येक पहलू मे बहुत अन्तर है। हम जिस पहलू पर विचार करेंगे वह दूसरे से भिन्न होगा। आर्थिक पहलू ग्रेट ब्रिटेन और सारे जगत् का समान-सा है। राजनीतिक स्वरूप भी लगभग एक-सा है। सास्कृतिक पहलू की ओर जब हम ध्यान देते है तब देखते है कि इस क्षेत्र मे ग्रेट ब्रिटेन का विस्तार बहुत कम है। इसकी सास्कृतिक आत्मीयता पश्चिमी यूरोप के तथा अमरीका और दक्षिणी महाद्वीपो के कैथोलिक तथा प्रोटेसटंट प्रदेशो से है। यद्यपि इस समाज पर कुछ विदेशी प्रभाव पडा है जैसे रूसी साहित्य का, चीनी चित्रकारी का और भारतीय धर्म का और यद्यपि इससे भी अधिक इस पश्चिमी समाज का प्रभाव दूसरे समाजो पर पड़ा है जैसे पूर्वी और परम्परावादी ईसाइयों पर, मुसलमानों पर, हिन्दुओं पर और सुदूर पूर्व देश की जातियो पर, फिर भी यह सत्य है कि पश्चिमी यूरोप का ससार इन सबसे अलग है।

इससे भी पहले के काल का, इन्ही तीनो दृष्टियो से, हम क्षेत्रो के अनुसार अध्ययन करे तो हम देखेगे कि भौगोलिक सीमा क्रमश. सकुचित होती जाती है। सन् १६७५ के लगभग का यदि इस क्षेत्रीय टुकड़े का अध्ययन करे तो हम देखेगे कि आर्थिक स्तर पर यदि हम केवल व्यापार का विस्तार देखे तो यह सीमा अधिक कम नही हुई है। उसकी मात्रा और किन वस्तुओ का व्यापार होता था छोड दें। राजनीतिक क्षेत्र की सीमा सकुचित होकर उतनी ही रह जाती है जितनी इस समय सास्कृतिक प्रभाव की सीमा है। और आगे यदि सन् १४७५ ई० का क्षेत्रीय अध्ययन करें तो तीनो दृष्टियो से विदेशी भाग लोप हो जाते है। आर्थिक स्तर पर भी सीमाएँ संकुचित होकर आज के सांस्कृतिक प्रभाव की सीमा तक रह जाती हैं अर्थात् पश्चिमी और मध्य यूरोप के देशो तक। हाँ, मध्य सागर के पूरब के भी कुछ छोटे-मोटे स्थल थे जो अब शीघ्रता से अलग होते चले जा रहे है। यदि हम प्राचीन काल का, सन् ७७५ ई० के लगभग का क्षेत्रीय इतिहास देखें तो सीमाएँ तीनों दृष्टियो से और भी अधिक संकुचित हो जाती हैं। उस समय इस समाज का क्षेत्र इतना ही था जितना शार्लमान का राज्य था और साथ में ब्रिटेन मे जो रोमन साम्राज्य के टुकड़े थे। आरबीरी प्रायद्वीप इस क्षेत्र के बाहर अरब के मुसलिम खलीफाओ के शासन मे था, उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी यूरोप असभ्य बर्बरो के साथ मे था। अंग्रेजी द्वीप के उत्तर-पूर्वी किनारे 'सुदूर पश्चिमी ईसाइयो' के हाथ में थे और दक्षिण इटली बैजन्तियो के हाथ मे थी।

जिस समाज के क्षेत्र का वर्णन ऊपर किया गया है उसे हम पश्चिमी ईसाई-जगत् कहेगे। इस नाम को ध्यान में रखते हुए यदि हम क्षेत्र की कल्पना करेंगे तो उस समय की दुनिया में उसी के

साथ-साथ उसके प्रतिरूप क्षेत्र भी दिखाई देंगे, विशेषतः सांस्कृतिक स्तर की समानता के। आज के युग में हम उस सास्कृतिक स्तर के कम से कम चार सजीव समाज संसार में देखते है।

(१) दक्षिण-पूर्व यूरोप तथा सबका पूर्वी परम्परावादी ईसाई मत का समाज (आरथोडाक्स क्रिशचियानिटी)।

(२) इस्लामी समाज जिसका केन्द्र मरुभूमि मे है और जो वहाँ से तिरछे उत्तरी अफ्रीका तक और मध्य पूर्व से चीन की दीवार के बाहरी किनारे तक फैला है।

(३) हिन्दू समाज जो उष्ण प्रदेश मे भारत के उप-महाद्वीप मे है।

(४) सुदूर पूर्वी समाज जो मरुभूमि और प्रशान्त महासागर के बीच उप-उष्ण कटिबन्ध तथा सम-शीतोष्ण कटिबन्ध में है।

ध्यान से देखने पर दो और समाजो को हम पाते है। जो इसी प्रकार के समाज के जीवाश्म (फसिल) चिह्न हैं। एक तो आरमीनिया, मेसोपोटामिया, मिस्र और अबीसीनिया के 'मोनोफाइसाइटी' ईसाई और कुदिस्तीन के 'नेस्टोरी' ईसाई तथा मलाबार के पूर्व-नेस्टोरी ईसाई और यहूदी और पारसी दूसरे तिब्बत तथा मंगोलिया के महायान बौद्ध और श्रीलका, बर्मा, श्याम तथा कम्बोडिया के हीनयान बौद्ध और भारत के जैन।

मजेदार बात यह है कि सन् ७७५ ई० के क्षेत्रीय टुकड़ो का जब हम अध्ययन करते है तब ससार में उतने ही समाज मिलते है जितने आज। पश्चिमी समाज की उत्पत्ति के समय से आज तक ये समाज उतने ही है। जीवन सघर्ष में पश्चिम ने अपनी समसामयिक जातियो को पराजित करके विवश कर दिया है और उन्हे आर्थिक जाल तथा राजनीतिक दाव-पेच में फँसा रखा है, किन्तु उन्हे उनकी सास्कृतिक विशिष्टता से अलग नही कर सके। उनकी अवस्था निरीह है, किन्तु वे अपनी आत्मा को अब भी अपनी कह सकते है।

जो विवेचना अभी तक हमने की है उसका अभिप्राय यह है कि दो प्रकार के सम्बन्धो का भेद हमें अच्छी तरह समझना चाहिए। उन समुदायो के बीच का समुदाय जो एक ही समाज के अन्तर्गत है और उनके बीच के जो भिन्न-भिन्न समाजो मे है।

देश (स्पेस) की दृष्टि से हमने पश्चिमी समाज पर कुछ विचार किया है अब काल की दृष्टि से थोड़ा विवेचन करना चाहिए। यह तो हम तुरन्त ही समझ सकते है कि हम भविष्य के बारे मे कुछ नही जान सकते। इस रुकावट के कारण इस समाज या किसी समाज का अध्ययन बहुत सीमित हो जाता है। हमे पश्चिमी समाज के आरम्भ काल के विवेचन से ही सन्तोष करना होगा।

सन् ८४३ ई० में वरदून की सन्धि के अनुसार जब शार्लमान का राज्य उसके तीन पौत्रो मे बँटा तब उसके ज्येष्ठ पौत्र लोथेयर ने अपने दादा की दो राजधानियो—आकेन और रोम—पर अपना अधिकार जमाया। उसका राज अखंड रहे इसलिए उसे वह भाग मिला जो 'टाइबर' और 'पो' के मुहाने से 'राइन' के मुहाने तक फैला था। लोथेयर का यह टुकड़ा ऐतिहासिक भूगोल मे विलक्षण बात समझी जाती है। फिर भी तीनों भाई समझते थे कि पश्चिमी संसार मे इनका महत्त्व है। भविष्य जो भी हो, इसका भूत महान् था।

लोथेयर और उसके दादा रोमन सम्राट् के नाम से 'आकेन' से 'रोम' तक राज करते थे। यह भाग, रोम से आल्प्स पर्वत होते हुए आकेन तक और बाद में आकेन से इंग्लिश चैनल के पार

रोमन दीवार (इंग्लैंड में) तक, जो उस समय के विलुप्त रोमन साम्राज्य का एक प्रकार प्राचीर का काम दे रहा था। रोम से आल्प्स होते हुए उत्तर-पश्चिम तक संचार की सुविधा करके, राईन के बाँयें तट पर सैनिक सीमा स्थापित करके और दक्षिणी ब्रिटेन को अपने राज्य मे मिलाकर, रोमनो ने यूरोप के आल्प्स के पार के देशो को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। यद्यपि यह साम्राज्य इस विशेष भाग को छोड कर विशेषत· मध्य सागर के क्षेत्र में ही थी। इस प्रकार लोथेयर के पहले ही लोथेरिंजिया की सीमा रोमन साम्राज्य के संगठन मे सम्मिलित हो गयी थी और उसके पश्चात् पश्चिमी समाज में। किन्तु रोमन साम्राज्य में और बाद के पश्चिमी समाज में इस क्षेत्र के कार्य भिन्न-भिन्न थे। रोमन साम्राज्य में यह सीमा मात्र था। पश्चिमी समाज मे यह दोनो ओर विस्तार की रेखा थी। सन् ३७५--६७५ के सुषुप्त काल मे जब रोमन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और अव्यवस्थित दशा से पश्चिमी यूरोप का क्रमश. विकास हुआ, पुराने समाज का ही एक अंश निकाल कर उसी मानव का नये समाज के रूप में निर्माण हुआ।

७७५ वर्ष के पहले के पश्चिमी समाज के जीवन का इतिहास विलोम ढग से देखने से स्पष्ट है कि वह जीवन पश्चिमी समाज का नही, अपितु रोमन साम्राज्य मे जिस प्रकार का समाज था, उसका था। हम यह भी प्रमाणित कर सकते हैं कि पश्चिमी समाज के इतिहास का कोई तत्त्व यदि पहले के समाज में था तो उसका कृत्य दोनो समाजो मे अलग-अलग था।

लोथेयर वाला भाग पश्चिमी समाज का आधार था क्योकि ईसाई धर्म के अनुयायी रोमन सीमा की ओर बढ़े चले आ रहे थे और उनकी इसी सीमा पर बर्बर जातियो से मुठभेड़ हुई जो अवान्तर भूमि से आ रहे थे। इस मिलन से नये समाज का जन्म हुआ। इसलिए पश्चिमी समाज का इतिहासकार यदि इस काल से पूर्व समय तक का इस समाज के मूल का इतिहास खोजेगा तो उसे ईसाई धर्म और बर्बरो के इतिहास का अध्ययन करना होगा। और वह इस इतिहास की शृंखला २०० ई० पू० तक जो सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तन होते रहे उनमें पायेगा। जिस काल मे हेनिबल के युद्धो के आघात से ग्रीक-रोमन समाज नष्ट हो गया, रोम ने उत्तर-पश्चिम की अपनी लम्बी भुजा क्यो फैलायी और आल्प्स के आगे के यूरोप का भाग अपने साम्राज्य मे क्यो मिलाया ? क्योकि उसी ओर उसे कारथेज वालो से जीवन-मरण का युद्ध करना पड़ा। आल्प्स पार करने के पश्चात् वह राइन पर ही क्यो रुक गया ? क्योकि आगस्टीन के काल मे दो शक्तियो के थका देने वाले युद्ध तथा क्रान्तियो के कारण उसकी जीवनी शक्ति समाप्त हो गयी थी। अन्त मे बर्बर क्यो विजयी हुए ? क्योकि जब ऊँची और कम साधना वालो में संघर्ष होता है और कोई एक दूसरे की सीमा पर पूर्ण विजय नही प्राप्त कर पाता तब ऐसा नही होता कि दोनो की सभ्यता का बराबर अश समाज मे आये। बल्कि समय के साथ-साथ पिछड़ी सभ्यता की ओर समाज झुक जाता है। जब बर्बरो ने सीमा तोड़ी तो धार्मिक समुदाय से उनका सामना क्यो हुआ ? इसका मुख्य कारण यह था हैनिबली युद्ध के परिणामस्वरूप जो आर्थिक और सामाजिक क्रान्तियाँ हुई और पश्चिम के क्षेत्र उजाड हो गये उन पर कार्य करने के लिए पूरब से दासों का समूह लाया गया। इस प्रकार जबरदस्ती जो मजदूर आये उसके कारण शान्तिपूर्ण पूर्वी धर्मों का प्रवेश ग्रीक-रोमन समाज मे हुआ। इन धर्मों मे परलोक में मुक्ति की जो भावना थी उसके कारण उन प्रबल अल्प संख्यकों की आत्मा की ऊसर भूमि मे उसे बीज बोने का अच्छा अवसर मिला जो ग्रीक-रोमन समाज के कल्याण की रक्षा इस लोक में नहीं पा सकी।

ग्रीक-रोमन इतिहास के विद्यार्थी के लिए, ईसाई तथा बर्बर दोनों विदेशी तत्त्व जान पड़ेगे। उन्हें वह ग्रीक-रोमन अथवा और अच्छे शब्द में 'हेलेनी' समाज की अन्तिम अवस्था का देशी तथा विदेशी सर्वहारा[1] कह सकते है। वह विद्यार्थी कहेगा कि हेलेनी संस्कृति के जो महान् मुखिया थे, यहाँ तक कि मारकस आरीलियस ने भी इस पर ध्यान नही दिया। वह यही बतायेगा कि ईसाई धर्मावलम्बी और बर्बर योद्धा दोनों ही विकृत मनःस्थिति वाले थे और हेलेनी समाज मे उनका प्रवेश उसी समय हुआ जब यह समाज हैनिबली युद्ध के कारण जर्जर हो गया था।

इस खोज से पश्चिमी समाज के पूर्व काल के सम्बन्ध मे हम एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। यद्यपि इस समाज का जीवन-काल इसी समाज के अन्य राष्ट्रों से अधिक था, फिर भी उतना अधिक नही था जितना उतने ही काल मे उस समाज के और उपवर्गो का था। इस समाज के उद्भव के इतिहास का अध्ययन करते समय हमे एक दूसरे समाज की अन्तिम अवस्था का पता चलता है। इस दूसरे समाज का आरम्भ स्पष्टत. और भी पहले था। यह जो कहा जाता है कि इतिहास का सूत्र अविच्छिन्न होता है, वह व्यक्ति के जीवन के समान अविच्छिन्न नही होता। यह सूत्र अनेक पीढियो के जीवन से बना होता है। यह उसी प्रकार का कहा जा सकता है जैसी अविच्छिन्नता पिता और पुत्र की होती है।

इस अध्याय मे जो तर्क उपस्थित किये गये हैं यदि वे मान्य है तो यह मानना होगा कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोध इकाई राष्ट्र-राज्य अथवा मानव जाति नही हो सकती, अपितु मानव जाति का वह समूह हो सकता है जिसे हम समाज कहते है। आज ऐसे पाँच समाजों का पता है और कुछ समाजो का भी जो निर्जीव और समाप्त हो गये है। इनमे से एक समाज का अर्थात् अपने (पश्चिम यूरोप) समाज के मूल की खोज में हमे ऐसे महत्त्वपूर्ण समाज की मृत्यु का भी पता चला है जिसका हमारा समाज सन्तानस्वरूप है। जिससे हमारा पैतृक सम्बन्ध है। दूसरे अध्याय मे हम ऐसे कुछ समाजो की सूची उपस्थित करने की चेष्टा करेंगे जो इस धरती पर रही है, और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है।

१. सर्वहारा शब्द यहाँ और आगे भी उस समाज या समूह के लिए प्रयोग किया गया है जो किसी समाज के इतिहास के किसी काल में समाज के अन्दर है, किन्तु उस समाज का नहीं है। —लेखक।

२. सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन

हमने अभी देखा है कि पश्चिमी समाज (यूरोप का) अथवा सभ्यता पूर्ववर्ती सभ्यता से सम्बन्धित है। इसी प्रकार आगे अनुसन्धान करने के लिए यह देखना होगा कि एक ही जाति (स्पीसीज़) जो समाज मे है अर्थात् पूर्वी ईसाई समाज (आरथोडाक्स क्रिश्चियन), इस्लामी समाज, हिन्दू समाज और सुदूर पूर्वी समाज (फार ईस्टर्न), उनके भी कोई पूर्वज है क्या ? किन्तु इसके पहले कि हम उनकी खोज करे हमारे मन मे स्पष्ट होना चाहिए कि हम क्या खोज रहे है। अर्थात् वे कौन चिह्न है जिन्हे हम इस 'पैतृक' सम्बन्ध का उचित प्रमाण मान सकते है। इस प्रकार के सम्बन्ध का कौन सकेत हमें अपने पश्चिमी समाज तथा हेलेनी समाज का मिला है ?

पहली बात तो यह मिलती है कि रोमन साम्राज्य का एक सार्वभौम राज्य था जिसमे हेलेनी इतिहास की अन्तिम अवस्था मे सारा हेलेनी समाज एक राजनीतिक समुदाय था। यह बात महत्त्व की है क्योकि रोमन साम्राज्य के पहले हेलेनी समाज अनेक छोटे राज्यो मे विभक्त था और उसके बाद आज भी पश्चिमी समाज अनेक राज्यो में विभाजित है। हमने यह भी देखा कि रोमन साम्राज्य स्थापित होने के ठीक पहले 'उपद्रव का काल' था जो हैनिबलीय युद्ध से आरम्भ हुआ। इस समय हेलेनी समाज में सर्जनात्मक शक्ति नही रह गयी थी, बल्कि वह पतनोन्मुख था। इस ह्रास को रोमन साम्राज्य ने कुछ समय तक तो रोका, किन्तु अन्त में यह असाध्य रोग निकला। इसने हेलेनी समाज और साथ ही रोमन साम्राज्य को भी नष्ट कर दिया। रोमन साम्राज्य के विनाश के बाद हेलेनी समाज के लोप हो जाने और पश्चिमी समाज के प्रकट होने के बीच एक मध्यवर्ती काल था।

इस मध्यवर्ती काल मे दो संस्थाएँ बहुत क्रियाशील थी। एक तो ईसाई धर्म जो रोमन साम्राज्य में स्थापित हुआ था और अब तक बच गया था और दूसरे वे छोटे-छोटे तथा सामयिक राज्य जो रोमन साम्राज्य मे से उन बर्बर जातियो ने बना लिये थे जो साम्राज्य की सीमा के बाहर से जन-रेला में आयी थी। इन दोनो शक्तियो को हमने हैलेनी समाज के दो स्वरूप बताये है। यह है आन्तरिक सर्वहारा वर्ग और बाह्य सर्वहारा वर्ग। इन दोनों वर्गों में भेद तो अनेक थे, किन्तु एक बात में ये समान थे। हेलेनी समाज के प्रमुख अल्पसख्यक वर्ग के दोनों विरोधी थे। यह अल्पसंख्यक वर्ग प्रमुख था, किन्तु इसमे नेतृत्व की शक्ति नही रह गयी थी। साम्राज्य तो नष्ट हो गया, परन्तु ईसाई समुदाय बच गया क्योकि इस समुदाय ने नेतृत्व ग्रहण किया और लोग इसके भक्त भी थे। साम्राज्य दो मे से एक भी न स्थापित कर सका। ईसाई समुदाय मरते समाज का अवशेष था, इसी ने नये समाज को जन्म दिया।

इस बीच के काल की जो दूसरी विशेषता थी, जनरेला, उसका क्या प्रभाव हमारे समाज पर पडा ? इस जनरेला में पुराने समाज की सीमा के बाहर से सर्वहारा दल झुंड का झुंड आया। उत्तरी यूरोप के जंगलों से जरमन और स्लाव आये, यूरेशियाई स्टेप से सरमाशियन और हूण

आये, अरब से मुसलमान (सारासिक) आये और एटलस तथा सहारा प्रदेश से बर्बर आये। इन जातियों के उत्तराधिकारियों द्वारा जो अल्पकालिक राज्य स्थापित हुए उनका ईसाइयो के साथ बीच के काल में जिसे 'वीर काल' भी कहते हैं, ऐतिहासिक रंगमच पर अभिनय होता रहा। ईसाइयों की तुलना में इनकी देन नगण्य और शून्य थी। बीच के काल की समाप्ति के पहले ही बलपूर्वक सब नष्ट कर दिये गये। रोमन साम्राज्य पर जो हमले हुए उन्ही के द्वारा वडाल और आस्ट्रोगथ पराजित हो गये। साम्राज्य की अन्तिम झिलमिलाती लौ इन्हें राख कर देने के लिए पर्याप्त थी। दूसरे आपसी लडाइयो से नष्ट हो गये। उदाहरण के लिए, विसिगोथो पर पहले फ्रांकों ने आक्रमण किया और अन्त में अरबो ने उन्हें समाप्त कर दिया। इन लड़ाकू जातियों में से जो बचे-खुचे रह गये थे उनका पतन होता गया और वे कुछ दिनो तक अकर्मण्य रूप से जीवित रही और अन्त में नयी राजनीतिक शक्तियो द्वारा, जिनमे रचनात्मक बल था, इनका विनाश हो गया। इस प्रकार मेरोविजियन तथा लोम्बार्ड वंश शार्लमान के साम्राज्य के निर्माताओ द्वारा समाप्त कर दिये गये। रोमन साम्राज्य के इन बर्बर उत्तराधिकारी राज्यो मे दो ही ऐसे बच गये हैं जिनका वर्तमान यूरोप के राष्ट्रीय राज्यों से कुछ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। एक शार्लमान का 'फ्राकिश आस्ट्रेशिया' और दूसरा आलफ्रेड का 'वैसेक्स'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनरेला और उसके अल्पकालिक राज्य ईसाई सम्प्रदाय और रोमन साम्राज्य के समान पश्चिमी समाज के हेलेनी समाज के सम्बन्ध के चिह्न मात्र है। साम्राज्य के समान और ईसाई सम्प्रदाय से भिन्न वह केवल प्रतीक ही है और कुछ नही। लक्षणो का अध्ययन छोड़ कर जब हम कारणो का अध्ययन करते हैं तब हमको मालूम होता है कि ईसाई सम्प्रदाय भूतकाल मे था और भविष्य मे भी उसकी सम्भावना थी। परन्तु वर्वर उत्तराधिकारी राज्य तथा रोमन साम्राज्य भूतकाल के ही धरोहर थे। उनका उत्कर्ष साम्राज्य के पतन का एक पहलू था और साम्राज्य का पतन उनके पतन का पूर्वाभास था।

हमारे पश्चिमी समाज को बर्बरो की देन इतनी महत्त्वहीन जानकर कुछ पश्चिमी इतिहासकारो (जैसे फ्रीमैन) को ठेस लगी होगी। वह समझते थे कि उत्तरदायी ससदीय शासन उनके एक प्रकार के स्वायत शासन (सेल्फ गवर्नमेट) का विकास था जो टयूटानिक कबीले अवांतर प्रदेश से अपने साथ लाये थे। किन्तु ये आदिम टयूटानिक संस्थाएँ, यदि सचमुच रही हो तो आदिम मनुष्यो के आचार के समान सब जगह और सब समय नितान्त प्रारम्भिक रही होगी और वह जनरेला के साथ ही समाप्त हो गयी होगी। बर्बर जत्थों के नेता साहसी योद्धा मात्र थे और इनके उत्तराधिकारी राज्य उस समय के रोमन राज्य के समान निरकुश थे जिनमें बीच-बीच में क्रान्तियाँ होती रहती थी। आज जिसे हम संसदीय संस्थाएँ कहते है उस नयी कल्पना के शतियो पहले बर्बरो का अन्तिम राज्य समाप्त हो चुका था।

पश्चिमी समाज के जीवन में बर्बरों की देन का बखान जो आज बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है उसका कारण एक और मिथ्या धारणा है कि सामाजिक उन्नति में जातियों के कुछ जन्मजात गुण सन्निहित होते हैं। भौतिक विज्ञान द्वारा जो घटना घटती है उसी के मिथ्या साम्य के आधार पर पिछली पीढ़ी के इतिहासकार जातियो को रासायनिक 'तत्त्व' समझने लगे, और जाति-मिश्रण को रासायनिक प्रतिक्रिया, जिससे गुप्त शक्तियाँ प्रकट होती हैं और जिसके कारण अचलता और निश्चेष्टता के स्थान पर परिवर्तन और स्फूर्ति उत्पन्न होती है। इतिहासकारों ने भ्रमवश यह

मान लिया है कि बर्बरों के मिलने से जो जातीय प्रभाव पडा, जिसे वे नये रक्त का संचार कहते थे, उसी के परिणामस्वरूप इतिहास में हम पश्चिमी सामाजिक जीवन और विकास पाते हैं। यह संकेत किया गया कि बर्बर विजेताओं का रक्त विशुद्ध था, उसमे शक्ति थी और इसके कारण उनके तथाकथित वंश उन्नतिशील हुए।

सच बात यह है कि बर्बर लोग हमारी आत्मिक उन्नति के स्रष्टा नही थे। असल में वे हैलेनी समाज के मरणकाल में आये। किन्तु इस समाज के नाश का श्रेय उन्हे नही है। जिस समय ये आये हेलेनी समाज शतियो पहले के अपने ही किये घावों से मरणासन्न था। वीरकाल हेलेनी इतिहास का उपसंहार था, हमारे इतिहास की भूमिका नही।

पुराने समाज से नये समाज के परिवर्तन के तीन कारण है। पुराने समाज का अन्तिम रूप अर्थात् सार्वभौम राज्य, पुराने समाज मे विकसित ईसाई धार्मिक समुदाय जिसके द्वारा नये समाज का जन्म हुआ, और बर्बर वीरकाल की अव्यवस्था। इनमे दूसरा सबसे अधिक और तीसरा सबसे कम महत्त्व का है।

दूसरे नवजात समाजों की खोज के पहले हमे हेलेनी तथा पश्चिमी समाज द्वारा उत्पन्न समाज के एक लक्षण की ओर ध्यान देना चाहिए। वह यह है कि नये समाज का जन्मस्थान वही नही रह गया जो उसके पूर्ववर्ती समाज का था। न यह समाज का केन्द्र बना जो पुराने समाज की सीमा थी।

परम्परावादी ईसाई ससाज

इस समाज की उत्पत्ति के अध्ययन से किसी नये वर्ग का पता नही चलेगा क्योकि यह और हमारा पश्चिमी समाज हेलेनी समाज के जुडवाँ बच्चे है। केवल उत्तर-पश्चिम जाने के बजाय यह उत्तर-पूरब की ओर गये। इनका मूल स्थान बैजन्तिया में अनेतोलिया था। शतियो तक यह इस्लामी समाज के विस्तार के कारण दबा हुआ था। अन्त मे इसे रूस तथा साइबीरिया में से उत्तर तथा पूरब मे बढने का अवसर मिला। इस्लामी जगत् को पीछे छोडते यह सुदूर पूर्व की ओर बढ गया। पश्चिमी और परम्परावादी ईसाई समाज दो कैसे हो गये ? इसका कारण यह है कि एक ही मूल कैथोलिक धर्मतन्त्र (चर्च) से दो शाखाएँ उत्पन्न हुईं। रोमन कैथोलिक धर्मतन्त्र (रोमन कैथोलिक चर्च) और परम्परावादी धर्मतन्त्र (आरथोडाक्स चर्च) दोनो के अलग-अलग स्वरूप होने में तीन शतियाँ लगी। आठवी शती के मूर्तिपूजा विरोधी मतभेद से आरम्भ होकर सन् १०५४ मे धार्मिक विवाद पर यह भेद पूर्ण रूप से स्थापित हो गया। इसी बीच दोनों सम्प्रदायो की राजनीतिक धारणाएँ भी भिन्न हो गयी। पश्चिम के कैथोलिक सम्प्रदाय ने माध्यमिक युग के पोप के शासन मे स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त कर ली और परम्परावादी सम्प्रदाय बैजन्तिया राज्य का छोटा विभाग मात्र बन गया।

ईरानी और अरबी समाज तथा सीरियाई समाज

जिस दूसरे सजीवन समाज को हमें देखना है वह है इस्लामी समाज। जब हम इस्लामी समाज के विकास की पृष्ठभूमि की छानबीन करते हैं तब हमे पता लगता है कि वहाँ सार्वदेशिक धार्मिक समाज था। वहाँ भी जनरेला था यद्यपि वह पश्चिमी और परम्परावादी ईसाई समाज वाला न था, किन्तु उससे मिलता-जुलता था। इस्लामी सार्वभौम राज्य बगदाद की अब्बासी

खिलाफत (कैलिफेट) का था।[1] सारा मुसलिम समाज ही इस्लाम है। जो जनरेला खिलाफत के पतन के समय आया और उसने खलीफा के राज्य को तहस-नहस कर दिया। वह यूरेशिया के स्टेप के तुर्की और मगोल खानाबदोशो का, उत्तरी अफ्रीका के बर्बर खानाबदोशो का तथा अरब प्रायद्वीप के खानाबदोशों का था। इन खानाबदोशों का प्रभाव लगभग तीन सौ साल तक अर्थात् सन् ९७५ ई० से १२७५ ई० रहा। आज जिस रूप में इस्लामी समाज है उसका आरम्भ इसी अन्तिम तिथि से समझना चाहिए।

यहाँ तक तो सब स्पष्ट है। किन्तु और खोज करने से परिस्थिति जटिल हो जाती है। पहली बात यह है कि इस्लामी समाज के पूर्वज (जिसका अभी पता नही है) एक सन्तान के नही, बल्कि दो जुड़वाँ सन्तानों के जनक थे और इस रूप में वे बिलकुल हेलेनी समाज के समान थे। इन जुड़वाँ सन्तानो का आचरण समान नही था। पश्चिमी समाज और परम्परावादी ईसाई समाज हजार वर्ष से ऊपर साथ-साथ रहे। जनक समाज की एक सन्तान जिसका पता लगाने की हम चेष्टा कर रहे है दूसरी सन्तान को निगल गयी और उसने उसे अपने में मिला लिया। इन दोनो मुसलिम समाजों को हम ईरानी और अरबी के नाम से पुकारेंगे।

जिस प्रकार हेलेनी समाज की सन्तानो में धार्मिक अन्तर था उस प्रकार का अन्तर इस अज्ञात इस्लामी समाज की दोनो सन्तानों मे नही था। यद्यपि इस्लाम मे भी शिया और सुन्नी दो फिरके हो गये थे, जैसे ईसाई समाज मे कैथोलिक और परम्परावादी ईसाई समाज हो गया था, किन्तु यह धार्मिक अन्तर अभी ईरानी-इस्लामी और अरबी-इस्लामी समाजों के अन्तर के रूप मे नही था। यद्यपि सत्रहवी शती के पहले चतुर्थांश मे जब फारस मे शिया सम्प्रदाय का बाहुल्य हुआ तब ईरानी-इस्लामी समाज छिन्न-भिन्न होने लगा। और शिया सम्प्रदाय ईरानी-इस्लामी समाज की मुख्य धुरी का (जो अफगानिस्तान से अनातोलिया तक फैली हुई है) केन्द्र बन गया और सुन्नी सम्प्रदाय ईरानी जगत् की दोनो सीमाओ पर तथा दक्षिण और पश्चिम मे अरबी प्रदेशो मे रह गया।

जब हम इस्लाम के दोनो समाजो और ईसाई धर्म के दोनो समाजो की तुलना करते है तब हम देखते है कि ईरानी प्रदेश (जिसे हम फारसी-तुर्की भी कह सकते है) और पश्चिमी समाज मे कुछ समानता है। और अरबी प्रदेश के इस्लामी और परम्परावादी ईसाई समाज मे कुछ समानता है। उदाहरण के लिए, बगदाद की खिलाफत की छाया, जिसे तेरहवी शताब्दी मे, जब कैरो के ममलूको ने बगदाद के खलीफो के भूत को फिर से सजीव करने की चेष्टा की थी, उसी प्रकार थी जैसी आठवी शती में कस्तुनतुनिया मे सीरिया के लियो ने रोमन साम्राज्य के भूत को सजीव करने की चेष्टा की थी। ममलूको का राजनीतिक सगठन लियो के सगठन के समान सरल था जो निकट के ही ईरानी प्रदेश की तुलना मे स्थिर और प्रभावशाली था। पड़ोस के ईरानी प्रदेश का तैमूर का साम्राज्य विस्तृत और अस्पष्ट और अस्थिर था जो पश्चिम के शार्लमन के साम्राज्य की भाँति था जो बनता और बिगड़ता रहा। अरब प्रदेश मे उनकी सस्कृति की क्लासिकल भाषा

१. बाद के कैरो के अब्बासी खलीफे बगदाद के खलीफों के छाया मात्र थे। अर्थात् 'पूर्वी रोमन साम्राज्य' और 'पावन रोमन साम्राज्य' की ही भाँति थे। तीनों अवस्थाओं में ऐसा समाज बना जो पुराने समाज की छाया मात्र रह गया।

अरबी थी जो बगदाद के अब्बासी खलीफों की सस्कृति की भाषा थी । ईरानी प्रदेश में फारसी नाम की भाषा का जन्म हुआ जो अरबी भाषा पर कलम लगाकर बनी थी, जैसे लैटिन ग्रीक पर कलम लगा कर बनी थी । सोलहवी शताब्दी मे ईरानी प्रदेश के इस्लामी समाज ने अरब प्रदेश के इस्लामी समाज पर विजय प्राप्त की और उसका समावेश कर लिया यह उसी प्रकार था, जैसे क्रुसेड[1] के समय पश्चिमी ईसाई समाज ने परम्परावादी ईसाई समाज के साथ किया था । सन् १२०४ ई० में यह संग्राम समाप्त हुआ और चौथा क्रुसेड कुस्तुनतुनिया के विरुद्ध आरम्भ हुआ । तब इस्लामी समाज ने थोड़ी देर के लिए सोचा कि परम्परावादी ईसाई समाज सदा के लिए पराजित हो जायेगा और पश्चिमी ईसाई समाज मे उसका लय हो जायेगा । तीन सौ साल के बाद यही बात अरब समाज के साथ हुई जब ममलूक की शक्ति का विनाश हुआ और सन् १५१७ मे उस्मानिया बादशाह सलीम प्रथम ने कैरो के अब्बासी खलीफे को नष्ट कर दिया ।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेगे कि वह कौन अज्ञात समाज था जो बगदाद के अब्बासी खिलाफत का अन्तिम रूप हुआ, जैसे हेलेनी समाज का रोम साम्राज्य । यदि हम अब्बासी खलीफो के इतिहास के पीछे की ओर चले तो क्या हमे वैसी ही घटना मिलेगी जो हेलेनी समाज के अन्तिम समय मिलती है ?

इसका उत्तर नकारात्मक है । बगदाद के अब्बासी खलीफो के पीछे दमिश्क के उम्मैया खलीफे मिलते है और उसके पहल सहस्रो वर्षो तक हेलेनी लोगो का प्रवेश मिलता है जो ईसा के पहले चौदहवी शती के अन्तिम पचास वर्षो मे हुआ था जब मकदूनिया के सिकन्दर का जीवन आरम्भ होता है । और जिसके पश्चात् सीरिया मे यूनानी सेल्यूकस के वश का राज्य था । और फिर पाम्पे के आक्रमण हुए, रोमनो को विजय हुई और अन्त मे ईसा की सातवी शती मे पूर्व की ओर से बदले के रूप मे मुसलमानो का आक्रमण हुआ । आदिम मुसलिम अरबो की जो घनघोर विजय थी वह सिकन्दर की घनघोर विजय का मानो जवाब था । पाँच-छ वर्षो मे इन्होने दुनिया की सूरत बदल दी, किन्तु सिकन्दर की विजय ने ऐसा परिवर्तन किया कि विजेता देशा का स्वरूप एकदम बदल गया और उसका यूनानी रूप हो गया । किन्तु अरबो की विजय ने परिवर्तन करके उनका फिर पहला-सा स्वरूप कर दिया । जिस प्रकार मकदूनिया ने अकामीनिया के साम्राज्य (खुसरो तथा उसके उत्तराधिकारियो का फारसी साम्राज्य) को ध्वस्त करके यूनानी सस्कृति (हेलिनिज्म) का बीजारोपण किया उसी प्रकार अरबी विजय ने उम्मैयो के लिए दरवाजा खोल दिया और उनके बाद अब्बासियो के लिए सार्वभौम राज्य बनाने के लिए राह तैयार कर दी जो अकामीनियो के साम्राज्य के समान था । यदि हम दोनो साम्राज्यो के नकशो को एक के ऊपर दूसरे को रख दे तो दोनो को सीमा लगभग एक ही पर पडती है । यह अनुरूपता केवल भौगोलिक नही, बल्कि शासन मे और सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन मे भी समान मिलती है । अब्बासी खलीफो का ऐतिहासिक कार्य अकामीनिया के साम्राज्य को फिर से स्थापित करना और पुनरुज्जीवित करता था । इसके राजनीतिक स्वरूप को बाहरी आक्रमणो ने छिन्न-भिन्न कर दिया था सामाजिक जीवन को भी विदेशी आक्रमणो ने अवरुद्ध कर दिया था । अब्बासी खिलाफत उस

१. ईसाइयों और मुसलमानों का धार्मिक युद्ध ।

सार्वभौम राज्य का नया रूप था जो उस अज्ञात समाज का अन्तिम स्वरूप था जिसका पता अभी हम लोगों को नहीं मिला है । और जिसे हजारो वर्ष पहले हमें ढूँढ़ना होगा ।

अब हम अकामीनियाई साम्राज्य के ठीक पहले के समाज की खोज करेगे जिससे हमें उन घटनाओं का पता लगे जो हमे अब्बासी खिलाफत के पहले के समाज मे नही मिल सकी । अर्थात् वह संकट काल जो हेलेनी इतिहास में रोमन साम्राज्य की स्थापना के पहले था ।

अकामीनियाई साम्राज्य तथा रोमन साम्राज्य की उत्पत्ति की साधारण समानता स्पष्ट है । सूक्ष्मता से देखने में मुख्य अन्तर यह है कि हेलेनी सार्वभौम राज्य उसी राज्य से उत्पन्न हुआ जिस राज्य ने संकट के समय उसका विनाश किया था । अकामीनियाई साम्राज्य की उत्पत्ति अनेक राज्यो के रचनात्मक तथा विध्वसात्मक कार्यों का परिणाम थी । विध्वस का कार्य असीरियो ने किया, किन्तु जब असीरिया उस समाज में सार्वभौम राज्य स्थापित करने को हुआ, जिसका उसने विनाश किया था, तब अपने ही सैनिकवाद की गुरुता से उसने अपना ही विनाश कर डाला । ज्यो ही वह अपना महान् कार्य समाप्त करने वाला था उसके ऊपर नाटकीय ढग से गहरा प्रहार हुआ (ईसा के पूर्व ६००) और एक ऐसा अभिनेता मच पर आ गया जिसकी भूमिका अभी तक बहुत छोटी थी । जो बीज असीरियो ने बोया था उसकी फसल को अकामीनियो ने काटा । एक अभिनेता की जगह दूसरा अवश्य आ गया, किन्तु कथानक नही बदला ।

इन उपद्रवों को ध्यान मे रखकर हम उस समाज का पता लगा सकते है जिसकी हम खोज कर रहे है । नकारात्मक ढग से हम यह कह सकते है कि यह समाज असीरियो का समाज नही था । यूनानियो के समान असीरियाई भी इस लम्बे और जटिल इतिहास के अन्तिम काल में आक्रमणकारियो के समान आये और चले गये । इस अज्ञात समाज मे, जिसकी एकता अकामीनियाई साम्राज्य में स्थापित हुई हम उस प्रतिक्रिया को देख सकते है जिसके द्वारा संस्कृति के उन तत्वों का शान्तिमय ढंग से उन्मूलन किया गया जिसे असीरियो ने घुसा दिया था । अर्थात् अक्कादी भाषा और कीलाक्षर लिपि (क्युनिफार्म) के स्थान पर अरामी भाषा और वर्णों की स्थापना की गयी ।

असीरियो ने स्वय अपने अन्तिम दिनो में अपनी प्राचीन कीलाक्षर लिपि के साथ-साथ अरामी लिपि में चर्म-पत्रो पर लिखना आरम्भ कर दिया था । मिट्टी के फलक पर अथवा पत्थर पर वह कीलाक्षरो का प्रयोग करते रहे । जब उन्होने अरामी लिपि का प्रयोग किया तब सम्भवतः अरामी भाषा का भी प्रयोग वह करते रहे होगे । असीरी राज्य के विनाश के बाद और उसके पश्चात् के अल्पकालिक नये बैबिलोनी साम्राज्य (नबूकदनजर का साम्राज्य) के विनाश के बाद से अरामी भाषा का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता गया । ईसा के पहले अन्तिम शताब्दी मे कीलाक्षर लिपि अपनी जन्मभूमि मेसोपोटामिया से लोप हो गयी ।

इसी प्रकार का परिवर्तन ईरानी भाषा के इतिहास मे भी देखा जा सकता है जो अरामी साम्राज्य के शासको की अर्थात् मीडियो और फारस वालों की भाषा थी और जिसे अन्धकार से निकाला गया । जब ईरानी अर्थात् पुरानी फारसी मे लिखने की आवश्यकता पड़ी तब इसकी अपनी कोई लिपि नही थी । फारस वालो ने पत्थर पर अंकित करने के लिए कीलाक्षर और चर्म-पत्रों पर लिखने के लिए अरामी लिपि अपनायी । अरामी लिपि ही फारसी भाषा की लिपि रह गयी ।

वास्तव में संस्कृति के दो तत्त्व, एक सीरिया से एक ईरान से, साथ ही साथ एक-दूसरे के सम्पर्क में भी आ रहे थे और अपना-अपना प्रभुत्व भी जमा रहे थे । अकामीनी साम्राज्य के स्थापित होने के पहले तो संकट-काल था । उसके अन्तिम समय में अरामी लोग अपने असीरी विजेताओं को पराजित करने लगे थे । और यह प्रतिक्रिया चलती रही । यदि हम इसके पहले की घटनाओं को जानना चाहें तो हमको धर्म के आड़ में देखना होगा । हम देखेंगे कि उसी सकट-काल ने ईरान में जरथुष्ट्र को प्रेरणा प्रदान की और इसराइल तथा जूडा के पैगम्बरो को भी जन्म दिया । सचमुच देखा जाय तो ईरानी की तुलना में अरामी अथवा सीरियाई तत्त्व का गहरा प्रभाव था और यदि हम संकट काल के और पीछे देखे तो ईरानी तत्त्व लोप हो जाता है और सीरिया मे हम ऐसे समाज की झलक पाते है जब सम्राट् सुलेमान और उनके समकालीन सम्राट् हिरम का शासन काल था । यह समाज अतलान्तक तथा हिन्द महासागर की खोज कर रहा था और इसने लिपियो का पता लगा लिया था । यहाँ उस समाज का हमने पता लगा लिया जिससे दो इस्लामी समाज उत्पन्न हुए थे और जो बाद मे एक हो गये । इन्हे हम सीरियाई समाज कहेंगे ।

इस आलोक की दृष्टि में यदि हम इस्लाम की ओर देखें तो वह ऐसा सार्वभौम धार्मिक संघ है जिसके माध्यम से सीरियाई समाज का सम्बन्ध ईरानी और अरबी समाजो से स्थापित होता है । इस्लाम और ईसाई धर्म के विकास मे हम अब मनोरंजक अन्तर देख सकते हैं । हमने देखा है कि ईसाई धर्म मे जो सर्जनात्मक शक्ति का बीज है वह हेलेनी नही, किन्तु विदेशी है (वास्तव मे उसका मूल सीरियाई है) । इसी के साथ तुलना करने से हम यह देखते है कि इस्लाम की सर्जनात्मक शक्ति विदेशी नही है, सीरियाई समाज से ही निकली है । इस्लाम के प्रवर्त्तक मोहम्मद साहब को यहूदी धर्म से प्रेरणा मिली जो विशुद्ध सीरियाई धर्म था और फिर नेस्टोरी सम्प्रदाय से प्रेरणा मिली जो ईसाई धर्म का एक रूप था और जिनमे हेलेनी से अधिक सीरियाई तत्त्व था । सच बात तो यह है कि कोई सार्वभौम धार्मिक सघ केवल एक समाज से नही उत्पन्न होता । हम जानते है कि ईसाई धर्म मे हेलेनी तत्त्व है जो हेलेनी रहस्यवादी धर्म से और हेलेनी दर्शन से लिये गये है । उसी प्रकार इस्लाम पर भी हेलेनी प्रभाव पड़ा है, यद्यपि बहुत कम मात्रा में । साधारणतः हम कह सकते है कि ईसाई धर्म वह सार्वभौम धर्म है जिसकी उत्पत्ति का बीज विदेशी है और इस्लाम की उत्पत्ति का बीज उसी के अपने देश का है ।

अब हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि ईरानी और अरबी समाजो का उनके मूल निवास स्थानो से कहाँ तक स्थानान्तरण हुआ और सीरियाई समाज के मूल निवास स्थान से इनका कहाँ तक स्थानान्तरण हुआ । ईरानी-इस्लामी समाज अनातोलिया से भारत तक फैला हुआ है । अर्थात् इसका काफी स्थानान्तरण हुआ है । दूसरी ओर अरबी-इस्लामी समाज केवल सीरिया और मिस्र मे फैला है जिसका अर्थ है स्थानान्तरण अपेक्षाकृत कम हुआ ।

भारतीय समाज

जिस दूसरे सजीव समाज का अध्ययन हम करना चाहते है वह हिन्दू समाज है । इसकी पृष्ठभूमि मे भी हमें इससे पहले के समाज की ओर देखना पड़ेगा । इस समाज का सार्वभौम राज्य गुप्त साम्राज्य है (३७५-४७५ ई०) सार्वभौम धर्म हिन्दू धर्म है जो गुप्तकाल में चरम शक्ति को पहुँच गया । इसने इसी देश मे उत्पन्न बौद्ध धर्म को निष्कासित किया जो ७०० साल तक यहाँ

जमा रहा । गुप्त साम्राज्य के पतन के समय यूरेशिया के स्टेप से हूणों का रेला आया । इसी समय हूण लोग रोमन साम्राज्य पर भी आक्रमण कर रहे थे । गुप्त साम्राज्य के उत्तराधिकारियों और हूणों का कार्यकलाप लगभग ३०० साल तक अर्थात् ४७५–७७५ ई० तक चलता रहा । इसके बाद जो हिन्दू समाज उभरा वह आजतक जीवित है । हिन्दू-दर्शन के प्रवर्तक शंकर ८०० ई० के लभगभग वर्तमान थे ।

यदि हम उस पुरातन समाज की खोज करने के लिए और पीछे जायँ जिससे हिन्दू समाज निकला था तो हमको छोटे पैमाने में वही सब बातें मिलेगी जो सीरियाई समाज के खोजने में प्राप्त हुई थी अर्थात् हेलेनी प्रवेश । भारत में हेलेनी प्रवेश सिकन्दर के आक्रमण के साथ नही आरम्भ हुआ । इस समय इसका प्रभाव भारतीय सस्कृति पर नही के बराबर था । भारतवर्ष में हेलेनी प्रवेश बैकट्रिया के यूनानी बादशाह डिमिट्रियस के आक्रमण से आरम्भ होता है जो लगभग १८३–१८२ ई० के पूर्व हुआ था । और इसकी समाप्ति ३९० ई० के लगभग हुई जब अन्तिम हेलेनी आक्रमणकारी नष्ट कर दिये गये । इसी समय गुप्त साम्राज्य का भी आरम्भ हुआ था । जिस प्रकार दक्षिण-पश्चिम एशिया मे हमने सीरियाई समाज की उत्पत्ति का अध्ययन किया था उसी प्रकार भारत मे हेलेनी प्रवेश के पूर्व के उस सार्वभौम समाज की खोज करें जिसके परिणाम-स्वरूप गुप्त साम्राज्य का आविर्भाव हुआ तो हमें मौर्यो का साम्राज्य मिलता है जिसकी स्थापना ईसा के ३२३ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त ने की थी । सम्राट् अशोक ने इस साम्राज्य को महत्ता प्रदान की और ईसा के पूर्व सन् १८५ मे पुष्यमित्र ने इसका ध्वंस किया । इस साम्राज्य के पहले सकट-काल था जब स्थानीय राज्य आपस मे लड़ते रहे । यही समय था जब गौतम बुद्ध पैदा हुए और उन्होंने अपने धर्म का प्रचार किया । गौतम का जीवन और जीवन की ओर उनकी भावना उनके काल की जो प्रवृत्ति थी उसका सबसे अच्छा प्रमाण है । जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर के जो बुद्ध के समकालीन थे, जीवन से भी इस प्रमाण का समर्थन होता है । उस युग के और लाग भी ससार के इस जीवन से मुख मोड़कर तपस्या के द्वारा दूसरे ससार की राह खाज रहे थे । इन सबके पीछे, सकट-काल के भी पीछे, एक समाज का पता चलता है जिसका वर्णन वेदो मे मिलता है । इस प्रकार हमने ऐसे समाज का पता लगा लिया जो हिन्दू समाज के पहले था । उसे हम भारतीय समाज कहेगे । भारतीय समाज का आदिम स्थान गगा की पश्चिमी घाटी थी । और यही से वह सारे देश मे फैला । इस समाज का भौगोलिक स्थान वही था जो इनके उत्तराधिकारियो का हुआ ।

चीनी समाज

अब एक जीवित समाज रह गया है जिसका निवास स्थान सुदूर पूर्व है जिसकी पृष्ठभूमि की खोज करनी है । यहाँ का सार्वभौम वह राज्य साम्राज्य है जिसको स्थापना २२१ ई० पूर्व त्सिन तथा हेन वंशो द्वारा हुई थी । यहाँ का सार्वभौम धर्म महायान था । बौद्ध धर्म की इस शाखा का प्रवेश हेन साम्राज्य के समय हुआ था । और यह आज के सुदूर उत्तर पूर्वी समाज की प्रारम्भिक अवस्था थी । इस सार्व भौमराज्य का पतन उस समय हुआ जब सन् ३००ई० के लगभग यूरेशिया के स्टेप के खानाबदोशो का रेला आया और उसने हेन साम्राज्य को नष्ट किया । यद्यपि १०० वर्ष पहले से ही हेन साम्राज्य तितर-वितर होने लगा था । हेन साम्राज्य के पहले की घटनाओ

को जब हम देखते हैं तब हमें स्पष्ट रूप से संकट-काल मिलता है जिसे चीनी इतिहास में 'चान क्वो' कहते हैं। इसका अर्थ है राज्यों के संघर्ष का काल। यह समय कनफूशियस की मृत्यु (४७९ ई० पू०) से २५० साल बाद तक था। इस काल की दो बातें महत्त्वपूर्ण है। आत्मघातक राजनीति और व्यावहारिक जीवन के प्रति शक्तिशाली बौद्धिक दर्शन। यह समय हेलेनी इतिहास के उस समय की याद दिलाता है जब वैराग्य (स्टोइसिज्म) के प्रवर्त्तक जीनो का समय था और जब (ऐकटियम) का युद्ध हुआ था जिससे हेलेनी काल संकट-काल का अन्त हुआ। इन दोनो कालों में उपद्रवों की अन्तिम शतियो में जो अव्यवस्था बहुत पहले आरम्भ हो गयी थी उसी का अन्त हुआ। कनफूशियस के बाद जो सैनिक वाद अपनी ही अग्नि में जलकर भस्म हो गया वह अग्नि उसी समय प्रज्वलित हो चुकी थी जब कनफूशियस मानव समाज के जीवन के सिद्धान्त बना रहा था। इस दार्शनिक का सासारिक दर्शन और इसके समकालीन दार्शनिक लाओत्से का शान्तिवादी दर्शन परलोक सम्बन्धी था, दोनो इस बात के प्रमाण है कि इन्होने अनुभव किया कि हमारे समाज मे विकास का काल पहले जा चुका है। उस समाज का नाम हम क्या रखे जिसके भूतकाल की ओर कनफूशियस सम्मान की दृष्टि से देखता था, और लाओत्से जिसकी ओर से मुख मोड़ रहा था। इस समाज का नाम हम सुविधा के लिए 'चीनी समाज' रखेगे।

महायान बौद्ध धर्म की वह शाखा है जिस रूप मे चीनी समाज आज के उत्तर-पूर्व समाज के रूप में आया है। ईसाई धर्म से इस बात मे यह मिलता-जुलता है कि यह उसी देश के समाज का नही है, बल्कि बाहर से आया। इस्लाम और हिन्दू धर्म उसी देश में उत्पन्न हुए जहाँ वह प्रचलित है, इसलिए चीनी समाज का धर्म इससे भिन्न है। महायान धर्म सम्भवत. भारत के उन प्रदेशों में पैदा हुआ जिनमे बैकट्रिया के यूनानी राजाओ और उनके अर्ध-हेलेनी उत्तराधिकारी कुषाणो का शासन था। निस्सन्देह महायान ने कुषाण प्रान्त तारिम के बेसिन मे जड़ जमा लिया था। जहाँ हेन वंश के पश्चात् कुषाणो का शासन था और जिन्हें हरा कर हेन वंशियो ने फिर से शासन किया। इसी दरवाजे से चीनी ससार में महायान ने प्रवेश किया और चीनी जनता ने उसे अपने अनुकूल बना लिया।

चीनी समाज का मूल स्थान हागहो नदी का बेसिन था। यहाँ से वह यांगत्सी नदी के बेसिन तक फैला। सुदूर पूर्व समाज का मूल स्थान इन दोनों नदियो का बेसिन था। यहाँ से ये लोग दक्षिण-पश्चिम की ओर फैले और फिर चीनी तट तक पहुँचे और फिर उत्तर-पूर्व की ओर कोरिया और जापान तक इनका विस्तार हुआ।

जीवाश्म चिह्न (फासिल)

अभी तक जो तथ्य हमें ज्ञात हुए है वे सजीव समाजो के सम्बन्धो मे है। इन्ही के द्वारा हम उन मृत समाजो को भी ढूँढ निकालेगे और यह भी पता लगायेंगे कि किन लुप्त समाजों से उनका सम्बन्ध था। यहूदी और पारसी उस सीरियाई समाज के जीवाश्म हैं जो सीरियाई समाज हेलेनी आक्रमण के पहले था। मोनोफाइसाइट तथा नेस्टोरी ईसाई समाज उस समाज और उस समय के चिह्न हैं जब सीरियाई समाज में हेलेनी आक्रमण की प्रतिक्रिया हुई थी। इस समय सीरियाई समाज में जो हेलेनी परिवर्तन हो रहे थे उनका घोर प्रतिवाद तथा विरोध उस समाज द्वारा हो रहा था। भारत के जैनी और लका, बर्मा, श्याम और कम्बोडिया के हीनयानी बौद्ध उस समय

के अवशिष्ट चिह्न हैं, जब मौर्य साम्राज्य था और भारत पर यूनानियों का हमला नही हुआ था। तिब्बत और मंगोलिया का लामा वाला महायान बौद्ध धर्म नेस्टोरियो के समान है। यह उस असफल प्रयत्न का परिणाम है जो भारतीय बौद्ध धर्म के विरुद्ध महायान रूप के परिवर्तन में हो रहा था। इनके परिवर्तन में हेलेनी तथा सीरियाई प्रभाव था और अन्त में चीनी समाज ने यह परिवर्तित रूप ग्रहण किया।

इन अवशिष्ट समाजों से दूसरे समाजो का कुछ पता नही लगता। किन्तु हमारे साधन समाप्त नहीं हो गये। हम और पीछे जायेंगे और उन समाजों के पूर्वजो का पता लगायेगे जो स्वय आज के जीवित समाजों के पूर्वज है।

मिनोई समाज (मिनोअन सोसाइटी)

हेलेनी समाज के पूर्व एक और समाज के होने का स्पष्ट सकेत मिलता है। यह सार्वभौम राज्य समुद्री राज्य था जिसका शासन एजियन सागर के क्रीट अड्डे से होता था। यूनानी परम्परा में 'थैलोसोक्रेसी' नाम अब भी चला आता है जिसका अर्थ है समुद्री शक्ति। इसका सम्बन्ध मिनोस से ही है। हाल मे 'क्नोसोस' और 'फीस्टस' मे जो अभी खुदाई हुई है उससे तथा उसके महलो के ऊपरी सतह से भी इसका प्रमाण मिलता है। इस सार्वभौम राज्य पर जो जनरेला हुआ था उसका कुछ आभास प्राचीन साहित्य 'इलियड' और 'ओडेसी' में मिलता है और कुछ पता उस समय के अर्थात् मिस्र के अठारहवे-उन्नीसवें तथा बीसवे राज्य-वश के सरकारी अभिलेखो मे मिलता है। यह जनरेला यूरोपीय पृष्ठभूमि में एकियाई तथा इसी प्रकार की और बर्बर जातियो को पराजित करते हुए समुद्र तक पहुँचा और क्रीट के समुद्री राज्य को उसी के घर में परास्त किया। क्रीट के महलो के विध्वस का प्रमाण पुरातत्त्व की खोज मे मिलता है। यह वही युग है जिसको पुरातत्त्व वाले द्वितीय मिनोआ का अन्तिम काल कहते हैं। यह रेला मानवी हिमस्राव के समान था जो एजीयन लोगो पर टूट पड़ा और विजयी तथा पराजित दोनो ने अनातोलिया के खत्ती साम्राज्य को नष्ट किया तथा मिस्र के 'नये साम्राज्य' पर आक्रमण किया, किन्तु उसे हरा न सके। विद्वान् लोग क्नोसोस के विनाश का काल १४०० ई० पू० मानते है। मिस्र के अभिलेखो से पता चलता है कि 'मानवी हिमस्राव' का समय १२३० से ११९० ई० पू० था। इसलिए हम यह युग १४२५–११२५ ई० पू० मान सकते हैं।

इस पुरातन समाज का इतिहास जब हम देखने लगते है तब कठिनाई यह पड़ती है कि क्रीटी लिपि हम नही पढ़ सकते, किन्तु पुरातत्त्व के प्रमाण से ऐसा जान पड़ता है कि क्रीट की विकसित भौतिक सभ्यता एजियन सागर के पार ई० पू० सातवी शती मे आरगोलिड मे पहुँची थी और यहाँ से धीरे-धीरे यूनान देश के प्रत्येक भाग मे दो सौ साल मे फैली थी। यह भी प्रमाण मिलता है कि क्रीट की सभ्यता पीछे नव पाषाण युग तक फैली थी। इस समाज को हम मिनोई समाज कह सकते है।

किन्तु क्या हम मिनोई और हेलेनी समाजो में वही सम्बन्ध स्थापित कर सकते है जो हेलेनी तथा पश्चिम के उन समाजो में हमने स्थापित किया है, जिनका पता हमने लगाया है। अन्तिम दोनों समाजों की बीच की लड़ी वह सार्वभौम धार्मिक स्वरूप था जिसे पुराने समाज की आन्तरिक जनता ने जन्म दिया था। और जो नये समाज का उद्गम बन गया। मिनोई समाज में भी हेलेनी

ग्राम-देवता की पूजा ओलिम्पी मन्दिरों में नहीं होती थी । इस प्रकार की भावना मिनोई समाज में नहीं थी । इस देव-कुल को होमर के महाकाव्यों द्वारा क्लासिकी महत्ता प्राप्त हुई । मिनोई समाज में जो देवता थे वे उन बर्बरो की मूर्तियो के अनुरूप थे, जो बर्बर जनरेला मे उनके ऊपर चढ़ आये थे और जिन्होंने विनाश किया था । जीयुस एकियाई युद्ध देवता है यह ओलिम्पस पर्वत पर राज्य करता था । इसने अपने पूर्व के शासक क्रोनस को जबरदस्ती हटाकर अधिकार जमा लिया था और विश्व की लूट की सम्पत्ति को बाँट लिया । जल और थल को उसने अपने भाइयों पोसाइडन और हैड्स को दिया और आकाश अपने पास रखा । देवताओं का यह स्वरूप एकियाई है और मिनोई समाज के बिलकुल बाद का है । हटाये गये देवताओं में मिनोई धर्म की छाया भी नही है । क्रोनस और टाइसन उसी प्रकार के है जैसे जीयूस और उनके साथी । इस पर हमें टघुटनी बर्बरो के धर्म की याद आती है । उनमे से अधिकाश ने रोमन साम्राज्य पर धावा बोलने से पहले अपने धर्म को छोड़ दिया था । उनके सम्बन्धियो ने इसी धर्म को कायम रखा और उसका परिष्कार किया और जब इन्होंने छ: सौ साल के बाद स्वय धावा बोला (नार्थमैनो का धावा) तब उस धर्म को छोड़ दिया । यदि मिनोई समाज मे किसी प्रकार का सार्वभौम धर्म उस समय था जब बर्बरो का धावा उस पर हुआ था तो वह यूनानी धर्म से उतना ही भिन्न रहा होगा जितना ईसाई धर्म ओडिन तथा थार की पूजा से था ।

क्या ऐसी बात थी ? इस विषय के सबसे बडे विशेषज्ञ के कथन से मालूम होता है कि ऐसा था।

"जहाँतक प्राचीन क्रीटी धर्मके अध्ययन से ज्ञात होता है हम उसमे आत्मिक भावना ही नहीं पाते, बल्कि पूर्व के ईरानी, ईसाई तथा इस्लामी धर्मों मे विगत दो हजार वर्षों में जो श्रद्धा थी उसी के समान श्रद्धा भी पाते है । इस भावना मे एक प्रकार की कट्टरता थी जो हेलेनी दृष्टिकोण मे नही थी । साधारण रूप से कहा जा सकता है कि प्राचीन यूनानियो के धर्म की तुलना में इसमे आत्मिक तत्त्व अधिक था । दूसरी दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि इसमें व्यक्तिगत भाव अधिक था । 'नेस्टर के वलय' में (रिग आव नेस्टर) देवी के सिर के ऊपर तितली तथा उसके कोष (काइसेलिस) के रूप मे पुनरुज्जीवन का जो प्रतीक बनाया गया है उसका अभिप्राय है कि देवी द्वारा उसके उपासको को मृत्यु के बाद भी जीवन प्राप्त होता है । वह अपने पूजको के बहुत निकट है । ...मृत्यु के बाद भी वह अपने बच्चो की रक्षा करती है । ....यूनानी धर्म मे भी रहस्य की बाते है । किन्तु पुरुष और स्त्री दोनो प्रकार के यूनानी देवताओं मे, जिनकी शक्ति प्रायः समान है, इस प्रकार का निकट का व्यक्तिगत सम्बन्ध नही पाया जाता जैसा मिनोई देवताओं में । यूनानी देवताओ मे झगडे और मतभेद बहुत है और उनके रूप तथा गुण भी अनेक हैं । इसके विपरीत मिनोई ससार में बार-बार वे ही देवियाँ जाती है ।.. इस कारण हम इस प्रमाण पर पहुँचते हैं कि इनका धर्म अधिकाश रूप में एकेश्वरवादी था और देवी का ही प्रमुख स्थान था ।"[१]

१. सर आर्थर इवेन्स : दि आर्लियर रिलिजन आव ग्रीस इन द लाइट आव क्रीटन डिसकवरीज, पृ० ३७–४१ ।

हेलेनी परम्परा में भी इस विषय के कुछ प्रमाण मिलते हैं। यूनानियो ने क्रीट में जीयूस की कथा को सुरक्षित रखा, किन्तु यह वही देवता नही था जो ओलिम्पस का देवता था। क्रीट का जीयूस वह सेनानी नही था जो हथियारों से लैस होकर बलपूर्वक राज्य को छीन लेता है। वह नवजात शिशु है। सम्भवतः वह उस शिशु के समान है जिसे मिनोई कला में इस प्रकार दिखाया गया है जिसे दिव्य माता पूजा के लिए उठाये हुए है। यह शिशु जन्म लेता है और मर भी जाता है। उसका जन्म और मृत्यु थ्रेस के देवता डायनिसस के जन्म और मृत्यु में सम्भवतः पुनःस्थापित किया गया था और जो 'इल्युसीनी रहस्य' (इल्युसीनियन मिस्ट्रीज) के ईश्वर के समान था। क्लासिकी रहस्य वर्तमान यूरोप के जादू-टोना के समान तो नही हैं जो एक लुप्त समाज के धर्म के अवशेष है?

यदि ईसाई जगत् वाइकिगों से पराजित हो जाता अर्थात् उनके शासन में हो जाता और उन्हे धर्म में परिवर्तित कर पाता तो हम ऐसी कल्पना कर सकते है कि शतियों तक एक नये समाज में ईसाई धर्म का पालन होता रहा हो जब कि प्रचलित धर्म 'ईसर' की पूजा रही हो। हम कल्पना कर सकते है कि जब यह नया समाज प्रौढ होने पर स्कैण्डिनेविया के बर्बरो के धर्म से सन्तुष्ट न होता तब उसी देश के धर्म को अपनाता जिस देश में यह समाज स्थापित हो गया था। ऐसी धार्मिक भूख के समय इसके बजाय कि पुराना धर्म नष्ट कर दिया जाता, जिस प्रकार पश्चिमी समाज ने जादूगरी का विनाश किया, पुराने ही धर्म को फिर से स्थापित किया जाता जैसे कोई गडे हुए धन को खोज कर उसका उपभोग करता है। और ऐसे समय कोई धार्मिक नेता निकल आता जो लुप्तप्राय ईसाई धर्म के संस्कारो को बर्बरो के धार्मिक कृत्यो से, जो 'फिन्नों' और 'मगयरो' द्वारा ले आये गये थे, मिला कर एक नये धर्म की स्थापना करता।

इसी उदाहरण के अनुसार हेलेनी जगत् के वास्तविक धार्मिक इतिहास की हम फिर से रचना कर सकते हैं। यहाँ पुराने और परम्परागत 'इल्युसिस' के रहस्य कृत्यो को 'आरफियुज' के नये संस्कारो को मिला कर नये धर्म की उत्पत्ति की गयी। 'निलसन' के अनुसार किसी बौद्धिक प्रतिभा ने इस चिन्तनशील धर्म की स्थापना की होगी और थ्रेस के डायोनाइसस के आमोद-प्रमोद और मिनोई क्रीट के जीयूस के जन्म और मृत्यु के रहस्यवाद को मिला कर यह धर्म बना होगा। क्लासिकी युग में हेलेनी समाज की आत्मिक आवश्यकताओ को इल्युसिनी रहस्यवाद आरफियुजी धर्म ने पूरा किया क्योकि ओलिम्पियाई देवताओ से वह पूरा नही पडता था। उसके लिए ऐसे देवता की आवश्यकता थी जो कष्ट के समय सहायक हो सके। क्योकि किसी समाज में जब जनता का पतन होने लगता है तब ऐसे ही धर्म और देवता का आविष्कार होता है। इसी समानता के आधार पर इल्युसिनी रहस्यवाद और आरफियुजी धर्म में मिनोई सार्वदेशिक धर्म की छाया की कल्पना करना असंगत न होगा। यह कल्पना यदि सत्य भी हो (आगे चलकर जहाँ इस पुस्तक मे आरफियुजी धर्म की उत्पत्ति पर विचार किया गया है इस सचाई पर शका की गयी है) तब भी यह कहना बिलकुल ठीक न होगा कि हेलेनी समाज अपने पूर्व के समाज से सचमुच सम्बन्धित है। हेलेनी समाज का यह धर्म यदि मरा न होता तो उसके जी उठने की बात कहाँ से आती और उसके हत्यारे उन बर्बरों के सिवा और कौन होगे जिन्होने मिनोई समाज को रौंद डाला। इन्हीं एकियाई हत्यारो और नगर-ध्वंसको के देवताओ को हेलेनी समाज ने अपनाया और इन्ही हत्यारों को अपना पूर्वज चुना। जब तक हेलेनी समाज एकियाइयो की

हत्याओं को अपने सिर पर न ओढ़ता, वह मिनोई समाज से अपना सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता था।

अब हम यदि सीरियाई समाज के पूर्व इतिहास को देखें तो वही अवस्था मिलेगी जो हेलेनी समाज के पूर्व के इतिहास में मिलती है। अर्थात् वैसा ही सार्वभौम राज्य जैसा मिनोई इतिहास के अन्तिम अध्यायों में हम पाते हैं। मिनोई रेला के बाद जो अन्तिम उपद्रव हुआ वह उन लोगो के द्वारा हुआ जो मानवी हिमस्राव की भाँति नये निवास की खोज मे अव्यवस्थित ढंग से आये और जिनको उत्तर के लोगों ने जिन्हे 'डोरियन' कहा जाता है निकाल बाहर कर दिया था। मिस्र से भगाये जाने पर ये मिस्री साम्राज्य के उत्तर पूर्वी तट पर बस गये और वही पुराने बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेण्ट) में वर्णित फिलिस्तीन है। यहाँ मिनोई जगत् के फिलिस्तीनी आगन्तुको से और उन हिब्रू खानाबदोशो से मुठभेड हुई जो अरब के उन भागों से, जहाँ किसी का शासन नही था, मिस्र के सीरियाई अधीन राज्यो मे घूमते-फिरते पहुँचे गये थे। इसके और उत्तर लेबनान के पहाड़ों के कारण अरबो का आना रुक गया था और इन्ही पहाड़ो में फिनीशी बस गये जो फिलिस्तीनियो के आक्रमण से बच गये थे। जब उपद्रव शान्त हुआ तब इन्ही तत्त्वों मे से सीरियाई समाज का जन्म हुआ।

जितना सीरियाई समाज मिनोई समाज से सम्बन्धित था उतना ही हेलेनी समाज भी मिनोई समाज से। इसमे कमी-बेशी बिलकुल नही थी। मिनोई समाज से सीरियाई समाज को वर्णमाला शायद मिली हो (किन्तु यह अनिश्चित है)। दूसरी बात शायद समुद्र यात्रा का प्रेम मिला हो।

एकाएक हमे आश्चर्य होता है कि सीरियाई समाज मिनोई समाज से उत्पन्न हुआ है। सम्भवतः लोग यह आशा करते रहे होंगे कि सीरियाई समाज की पृष्ठभूमि मे मिस्र का 'नया साम्राज्य' होगा और यहूदियो का एकेश्वरवाद 'इखनेतन' के एकेश्वरवाद का पुनरुज्जीवन है, किन्तु प्रमाण इसके विरुद्ध है। न इसका कोई प्रमाण है कि सीरियाई समाज का सम्बन्ध अनातोलिया के खत्ती समाज (हिटाइट) से है या इसका समाज 'उर' के सुमेरी वश से है या उसका सम्बन्ध बैबिलन के ऊमरी वश से है। इन समाजो का अब हम अध्ययन करेंगे।

सुमेरी समाज

जब हम भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हैं तब पहली बात जो हमे मिलती है वह वेदो का धर्म है। ओलिम्पिाई धर्म के समान इसकी भी उत्पत्ति बर्बरो के जनरेला मे हुआ था। इसमे धर्म के कोई ऐसे लक्षण नही मिलते कि सकट-काल मे किसी समाज के पतन के काल में उस समाज की जनता द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई हो।

इस स्थिति मे बर्बर लोग जो भारतीय इतिहास के आरम्भ मे उत्तर-पश्चिम भारत मे उसी प्रकार आये जिस प्रकार हेलेनी इतिहास में एजीमन सागर में एकियाई लोग आये। जिस प्रकार हेलेनी समाज का सम्बन्ध मिनोई समाज से था उसी प्रकार भारतीय समाज की पृष्ठभूमि की यदि हम खोज करें तो हमको इसकी सीमा के पार कोई ऐसा सार्वभौम राज्य और अस्तव्यस्त प्रदेश मिलना चाहिए जहाँ आर्यों के पूर्वज विदेशी जनता के समान रहते थे और जब सार्वभौम राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तब वे भारत भूमि की ओर चले आये। क्या हम उस सार्वभौम राज्य और अस्तव्यस्त प्रदेश का पता लगा सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर दो और प्रश्न पूछने पर शायद

मिल जाय । भारत में आर्य किस ओर से आये । एक ही केन्द्र से चलने पर इनमें से कोई किसी और जगह तो नहीं पहुँचा ।

आर्य लोग इण्डो-यूरोपियन भाषा बोलते थे । इसकी एक शाखा यूरोप मे बोली जाती थी और दूसरी भारत और ईरान में । इन भाषाओं के विस्तार से यह पता चलता है कि आर्य लोग यूरेशियाई स्टेप से भारत में उसी रास्ते से आये होंगे जिस रास्ते से बाद मे तुर्की आक्रमणकारी. आये और जिस रास्ते से ग्यारहवी शतीमें महमूद गजनी और सोलहवी शती मे मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर आये । तुर्क लोगों में से कुछ तो दक्षिण-पूर्व की ओर भारत में आये और कुछ दक्षिण-पश्चिम की ओर अनातोलिया और सीरिया में गये । महमूद गजनी के ही समय में सलजुकी तुर्कों ने जो आक्रमण किया उसी के परिणामस्वरूप पश्चिमी समाज ने धार्मिक युद्ध आरम्भ किया । प्राचीन मिस्र के अभिलेखों से पता चलता है कि २०००–१५००ई० पू० में यूरेशियाई स्टेप से आर्य लोग उन स्थानों में फैले जिन स्थानो मे तीन हजार साल बाद तुर्क फैले । भारतीय प्रमाणों से पता चलता है कि कुछ आर्य भारत आये और कुछ ईरान, इराक, सीरिया और मिस्र में फैले । मिस्र में इहोने ईसा के पूर्व सातवी शती में शासन स्थापित किया । मिस्र के इतिहास मे बर्बर 'हाइक्सो' लड़ाकुओं के नाम से विख्यात है ।

आर्यों का रेला क्यों आया ? इसका उत्तर इस प्रश्न से हम दे सकते है कि तुर्कों का जनरेला क्यो आया ? अन्तिम प्रश्न का उत्तर ऐतिहासिक अभिलेखो से मिलेगा । अब्बासी खिलाफत का जब विघटन हुआ तब अपने देश मे तथा सिन्धु घाटी में इन पर आक्रमण होने लगा और ये दोनों तरफ फैले । इससे क्या आर्यों के विस्तार का कारण मालूम होता है? हाँ । जब हम २०००–१९०० ई० पू० के समय का दक्षिण-पश्चिमी एशिया का राजनीतिक नकशा देखते है तब हमे पता चलता है कि बगदाद के खिलाफत के समान यहाँ भी एक सार्वभौम राज्य था जिसकी राजधानी ईराक में थी और इसी केन्द्र से दोनों ओर के प्रदेशो में (जहाँ पहले खलीफा का राज्य था) इनका भी शासन होता था ।

यह सार्वभौम राज्य सुमेर और अक्काद का साम्राज्य था जिसे ऊर के सुमेरी ऊर-ऐंगूर ने लगभग २१४३ या २०७९ ई० पू० मे स्थापित किया था । और जिसे लगभग १७५४ या १६९० ई० पू० में अमोरी हम्मूरबी ने पुनःस्थापित किया था । हम्मूरबी की मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और आर्यों के जनरेला का युग आरम्भ हुआ । ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलता कि सुमेर और अक्काद का साम्राज्य भारत तक फैला था । किन्तु इसकी सम्भावना का सकेत इससे मिलता है कि सिन्धु घाटी में जो खुदाई हुई है उसकी सस्कृति (पहले जो खुदाई हुई उसका काल सम्भवतः २५०० से १५०० ई० पू० तक का है) का निकट सम्बन्ध ईराक की सुमेरी सभ्यता से है ।

क्या हम उस समाज को निर्धारित कर सकते हैं जिसके इतिहास में सुमेर और अक्काद का सार्वभौम राज्य था ? इस साम्राज्य का पूर्व इतिहास देखने से इस बात का प्रमाण मिलता है कि एक बार संकट-काल में अक्कादी लड़ाकू अगादें का सरगोन विख्यात नेता था । उसके पहले भी विकास और सर्जन का युग था । पूर्व में जो इधर खुदाई हुई है उससे यहँ बात प्रकाश में आयी है । यह युग ईसा के चार हजार वर्ष पहले था या उससे भी पहले था कहा नही जा सकता। जिस समाज का हमने निर्धारण किया है उसे सुमेरी समाज कह सकते हैं ।

खत्ती (हिताइत) और बैबिलन के समाज

सुमेरी समाज को जान लेने के पश्चात् हम इसके बाद के दो समाजों का निर्धारण करेंगे।

सुमेरी सभ्यता अनातोलिया प्रायद्वीप के पूर्वी भाग मे फैली हुई थी। इस प्रदेश का नाम बाद में 'कैपेडोशिया' पडा। पुरातत्त्व वेत्ताओ ने कैपेडोशिया में जो मिट्टी के फलक पाये हैं, जिनमें कील वाले अक्षरों में व्यापारिक लेखो के छाप हैं, इस बात के प्रमाण है। हम्मूरबी की मृत्यु के बाद जब सुमेरी सार्वदेशिक राज्य नष्ट हो गया तब उत्तर-पश्चिम के बर्बरों ने कैपेडोशिया प्रदेश पर अधिकार कर लिया। और १५९५ अथवा १५३१ ई० पू० के लगभग खत्ती के राजा मुरसिल प्रथम ने बैबिलन पर आक्रमण किया और उसको नष्ट कर डाला। लुटेरे लूट का माल लेकर लौट गये और ईरान से दूसरे बर्बर 'कसाइतो' ने ईराक पर अपना राज्य स्थापित किया जो छः सौ साल तक था। खत्ती साम्राज्य (हिताइत) समाज का केन्द्र बन गया। इसका थोड़ा-बहुत ज्ञान हमें मिस्र के अभिलेखो से मिलता है क्योंकि मिस्र के तोतमीज तृतीय (१४९०–१४३६ ई० पू०) ने जब सीरिया तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया उसके बाद के हिताइतो से बराबर युद्ध होता रहा। हिताइत साम्राज्य का विनाश उसी जनरेला द्वारा हुआ जिसने क्रीटी साम्राज्य का विनाश किया। भविष्यवाणी की प्रथा की सुमेरी प्रणाली को हिताइतो ने भी अपना लिया था, परन्तु उनका धर्म अपना अलग था और उनकी लिपि भी चित्र लिपि थी जिसमे कम से कम पाँच हिताइती भाषाएँ लिखी मिलती हैं।

दूसरे समाज का पता जिसका सम्बन्ध सुमेरियो से है सुमेरी समाज के निवास स्थान बैबिलन में मिलता है। इसका वर्णन पन्द्रहवी शती ई० पू० के मिस्र के अभिलेखो में मिलता है। यहाँ बारहवी शती ई० पू० तक कसाइतो का शासन चलता रहा है। इस युग में बैबिलोनिया का नाम असीरिया और एसाम हो गया था। सुमेरी प्रदेश में जो पीछे वाला समाज बना उसका पूर्व-सुमेरी समाज से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि यह नही समझ मे आता कि उसे नया समाज काहा जाय अथवा सुमेरी समाज का उपसहार कहा जाय। संदेह लाभ निवारण करने के लिए हम उसे बैबिलनी समाज कहेंगे। उसके अन्तिम काल में, अर्थात् सातवी शती ई० पू० मे अपने ही प्रदेश में सौ वर्ष तक उसे घनघोर युद्ध करना पडा। यह युद्ध असीरिया के लड़ाकुओ और बैबिलोनी निवासियों में होता रहा। असीरिया के विनाश के बाद सत्तर वर्षों तक बैबिलोनी समाज जीवित रहा और अन्त मे खुसरो (साइरस) के एकेमीनी समाज का सार्वभौम राज्य उसे निगल गया। इन सत्तर वर्षों में नबुकदनजार का राज्य था और यहूदियों पर इस युग में बहुत सताप था। जिन्होंने खुसरो को ईश्वर-प्रदत्त त्राता समझा था।

मिस्री समाज

इस विख्यात समाज का प्रादुर्भाव चार हजार वर्ष ई० पू० हुआ। और ईसा के बाद पाँचवी शती में इसकी समाप्ति हुई। हमारा पश्चिमी समाज आज तक जितने काल तक जीवित है उसके तिगुने काल तक यह समाज रहा। इसके न तो पूर्वज थे, न उत्तराधिकारी। आज का कोई समाज भी इसे अपना पूर्वज कहने का दावा नही कर सकता। इसकी एक और भी विजय है कि पत्थरों में इसने अपने को अमर बनाया है। इसकी पूर्ण सम्भावना है कि पिरामिड जो पाँच हजार वर्षों तक अपने निर्माताओ के जीवन को प्रमाणित करते रहे हैं वे अभी लाखों वर्षों तक मौजूद

रहेंगे। यह असम्भव नहीं है कि ये उस समय भी रहें जब पृथ्वी पर उनका सदेश पढ़ने वाला कोई मनुष्य न रह जाय और तब भी वे यह कहते रहें 'इब्राहीम' (अब्राहम) के पहले से मैं भी हूँ।

ये जो पिरामिड के रूप में बड़ी-बडी कब्रें हैं इनसे कई रूपों में मिस्री समाज के इतिहास का पता लगता है। हमने ऊपर कहा है कि यह समाज लगभग चार हजार वर्षों तक बना रहा। किन्तु इसके आधे काल तक मिस्री समाज का अस्तित्व तो था, परन्तु उसी प्रकार जैसे कोई जन्तु मर गया हो, किन्तु दफन न किया गया हो। मिस्री इतिहास का आधे से अधिक भाग किसी घटना के महान् उपसंहार के समान है।

यदि हम इस इतिहास पर ध्यान दे तो इसका चौथाई भाग विकास का काल था। इस काल में अपने वातावरण की भौतिक कठिनाइयो पर मिस्री लोगो ने विजय प्राप्त की। नील नदी के डेल्टा और उसकी निचली घाटी के निर्जन स्थानो को उन्होने साफ किया, उसका पानी निकाला और वहाँ खेती आरम्भ की। और तब तथाकथित पूर्व डाइनास्टिक युग के अन्त मे मिस्री ससार में अभूतपूर्व एकता स्थापित की और जिसने चौथी पीढी मे महान् भौतिक कार्यों को सम्पन्न किया। इस पीढ़ी में मिस्री समाज अपने कार्यों की कुशलता मे उच्चतम शिखर पर पहुँचा। इसी समय बडे-बडे इजीनियरी के कार्य सम्पन्न हुए, जैसे दलदलो को कृषि योग्य बनाया गया और पिरामिडों का निर्माण हुआ। राजनीतिक शासन और कला का भी उच्चतम विकास हुआ। इसी युग मे ऐसे धर्म का भी, जो सामान्यत: कष्ट और दुख के समय प्रकट होता है, प्रादुर्भाव हुआ। इसकी पहली मजिल वह थी जब दो धार्मिक आन्दोलनो में संघर्ष हुआ अर्थात् सूर्य और 'ओसाइरिस' का सघर्ष। और यह पूर्णता पर उस समय पहुँचा जब मिस्री समाज का ह्रास हुआ।

उत्कर्ष का काल समाप्त हो गया और पाँचवी पीढी तक लगभग २३५० ई० पू० मे पतन आरम्भ हो गया। और इस समय हम पतन के वही चिह्न देखने लगते हैं जो हमे दूसरे समाजो के इतिहास मे मिलते हैं। मिस्री साम्राज्य टूट कर छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया और हमें संकट काल स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सकट काल के बाद २०५२ ई० पू० के लगभग एक सार्वभौम राज्य स्थापित हुआ जिसकी नीव थीबीज के एक स्थानीय वंश ने डाली और बारहवी पीढ़ी अर्थात् १९९१–१७८६ ई० पू० के लगभग उसे मजबूत किया। बारहवी पीढी के बाद यह सार्वभौम राज्य विघटित होने लगा और इसी समय हाइक्सो लोगो का जनरेला आरम्भ हुआ।

इस जगह शायद हम समझें कि इस समाज का अन्त है। यदि हम अपनी खोज की साधारण प्रणाली को अपनायें और ईसा की पाँचवीं शती से पीछे की ओर देखें तो हम इस स्थान पर कहेंगे कि हमने मिस्री इतिहास के भूतकाल का अध्ययन कर लिया और इक्कीस शतियो के बाद ईसा की पाँचवी शती मे उस इतिहास का अन्त देख लिया और यह भी देखा कि एक सार्वभौम राज्य के बाद जनरेला आरम्भ हुआ। मिस्री समाज के उद्गम तक हमने देखा और हमे पता चला कि मिस्री समाज के आरम्भ के पूर्व एक और समाज का अन्त है जिसे हम 'नाइलोटिक' समाज कहेंगे।

किन्तु हम इस ढंग को नही अपनायेंगे। क्योंकि यदि हम आगे की खोज करें तो हमे नया समाज नहीं मिलेगा, बल्कि कुछ भिन्न परिस्थिति मिलेगी। बर्बर 'उत्तराधिकारी राज्य' पराजित

हो जाता है, हाइक्सो लोग देश से निकाल दिये जाते हैं और निश्चित तथा आयोजित ढंग से सार्वभौम राज्य की फिर से स्थापना होती है जिसकी राजधानी थीबीज बनती है ।

हमारी दृष्टि से ई० पू० छठी शती से पाँचवीं शती ई० तक के बीच (इखनातन की विफल क्रान्ति को छोड़ कर) थीबीज के राज्य का पुनःस्थापन ही एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । यह सार्वभौम राज्य दो हजार वर्षों तक था । इस बीच कभी वह ध्वंस होता, कभी पुनरुज्जीवित होता था । परन्तु कोई नया समाज नही बना । अगर हम मिस्री समाज के धार्मिक इतिहास का अध्ययन करें तो सकट काल के बाद जो धर्म प्रचलित था वह पतन काल पहले के सबल अल्पसंख्यकों से लिया गया था । किन्तु यह धर्म बिना संघर्ष के प्रचलित नही हुआ । इसे उस सार्वभौम धर्म से समझौता करना पडा जो मिस्र की देशी जनता ने ओसाइरिस वाले धर्म से उस समय स्थापित किया था जो पतन के पहले का युग था ।

ओसाइरिस का धर्म नील के डेल्टा मे उत्पन्न हुआ । यह दक्षिणी मिस्र से नही आया जहाँ मिस्री समाज का निर्माण हुआ था । मिस्र का धार्मिक इतिहास दो देवताओं के द्वन्द्व का परिणाम है । एक पृथ्वी और पृथ्वी का पाताल का देवता जिसमे यह भाव निहित है कि वनस्पति जगत् भूमि के ऊपर प्रकट होता है और फिर पृथ्वी के नीचे लय हो जाता है और दूसरा आकाश का देवता सूर्य । यह धार्मिक भावना समाज के दो अंगों के राजनीतिक और सामाजिक सघर्षों की अभिव्यक्ति है । इन्ही दोनों समाजों मे अलग-अलग एक देवता की पूजा आरम्भ हुई । सूर्य देवता 'री' था । इसका नियत्रण हीलियोपोलिस के पुजारी करते थे । फेरो री का प्रतिमूर्ति था । ओसाइरिस सार्वजनिक देवता था । यह सघर्ष राज्य द्वारा स्थापित धर्म में और सार्वजनिक धर्म में था, जिसमें व्यक्तिगत विचारो की स्वतन्त्रता थी ।

दोनों धर्मों के मूल रूप में मुख्य अन्तर यह था कि मृत्यु के बाद किस धर्म के मानने वाले को क्या लाभ होता है । ओसाइरिस का शासन पाताल के अंधकारमय संसार मे लाखों—करोड़ो मुर्दों पर था । री कुछ पूजा के बदले मृत्यु के पश्चात् अपने भक्तो को जीवति करके ऊपर स्वर्ग में पहुँचाता था । किन्तु यह स्वर्गीकरण उन्ही लोगो के लिए सुरक्षित था जो अच्छी भेंट चढ़ा सकते थे । इस पूजा का मूल्य बराबर बढता गया, यहाँ तक कि यह अमरता फेरो और उसके उन दरबारियों का एकाधिपत्य हो गयी जो अपनी अमरता के लिए अधिक से अधिक साज-सज्जा प्रदान कर सकते थे । महान् पिरामिड की विशालता में इसी अमरता के प्रयत्न की सुरक्षा की गयी है ।

किन्तु ओसाइरिस का धर्म बढता गया । इसके द्वारा जो अमरता मिलती थी वह स्वर्ग में जो री की पूजा से स्थान मिलता था उसकी तुलना मे बहुत हेय थी, किन्तु जीवन में जो कठोर यातना मिलती थी उसके कारण यही सन्तोष उनके लिए पर्याप्त था । मिस्री समाज इस समय दो टुकडों मे विभाजित हो गया था । एक अधिकार प्राप्त अल्प संख्यक और दूसरा आन्तरिक जनता । इस खतरे का सामना करने के लिए ही लियोपोलिस के पुजारियों ने ओसाइरिस की शक्ति समाप्त करने के लिए ओसाइरिस को अपना लिया, किन्तु इस कार्य से ओसाइरिस की शक्ति घटने के बजाय बढ़ गयी । जब ओसाइरिस का सम्बन्ध फेरो के सूर्य वाले धर्म से हो गया तब ओसाइरिस का प्रभाव ऐसा हो गया कि सूर्य की पूजा सभी मनुष्यों के लिए हो गयी । इस

धार्मिक संयोजन की स्मृति 'मानव की अमरता का पथ-प्रदर्शक'[१] नाम की पुस्तक में है। मिस्री समाज के अन्तिम दो हजार वर्षों में इसी पुस्तक का प्रभाव वहाँ के धार्मिक जीवन में था। यह भावना प्रबल रही कि री पिरामिड के बजाय सत्य आचरण चाहता है और ओसाइरिस पाताल का न्यायाधीश बनकर बैठा जो मनुष्य के मरती पर किये गये कर्मों के अनुसार उसे पुरस्कार या दण्ड देता था।

यहाँ मिस्री सार्वभौम राज्य में हमको ऐसे सार्वभौम धर्म का आभास मिलता है जिसका आन्तरिक सर्वहारा ने निर्माण किया था। यदि मिस्री सार्वभौम राज्य का पुनरुज्जीवन न हुआ होता तब ओसाइरी धर्म का भविष्य क्या होता? क्या वह नये समाज का जन्मदाता होता? हम शायद यह आशा करते कि वह हाइक्सो लोगों को पराजित करता जिस प्रकार ईसाई धर्म ने बर्बरों को पराजित किया। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। हाइक्सो लोगों के प्रति जो घृणा थी उसके कारण ओसाइरी धर्म और प्रबल अल्प संख्यकों के धर्म के अस्वाभाविक मिलाप के कारण ओसाइरी धर्म विकृत और पतित हो गया। अमरता फिर बिकने लगी, किन्तु इस बार इसका मूल्य पिरामिड नही था, बल्कि पेपाइरस के पुलिन्दों पर कुछ लेख थे। हम कल्पना कर सकते हैं कि इस सस्ती वस्तु के बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण उत्पादक को मुनाफा बहुत होता होगा। इस प्रकार सोलहवीं शती ई० पू० मे मिस्री सार्वभौम राज्य केवल पुनरुज्जीवित ही नहीं हुआ, पुनःस्थापित भी हुआ। यह जीवित ओसाइरी धर्म और मृतप्राय मिस्री समाज का एक संकरण था। मानो एक सामाजिक कांक्रीट था जिसे नष्ट होने में दो हजार वर्ष लगे।

मिस्री समाज के मृत होने का सबसे बडा प्रमाण यह है कि एक बार उसे जगाने की चेष्टा की गयी, किन्तु सफलता नही मिली। इस बार फेरो इखनातन ने नया धर्म स्थापित करने की चेष्टा की जिस प्रकार शतियों पहले आन्तरिक सर्वहारा वाले ओसाइरी धर्म ने विफल प्रयत्न किया था। इखनातन ने ईश्वर और मनुष्य, जीवन और प्रकृति के सम्बन्ध में नयी कल्पना उपस्थित की और इसे नयी कला और कविता द्वारा व्यक्त किया। किन्तु मरा समाज इस प्रकार जीवित नही हो सकता। उसकी असफलता इस बात का प्रमाण है कि सोलहवीं शती ई० पू० के बाद से मिस्री इतिहास की सामाजिक परिस्थितियों का जो वर्णन किया गया है वह ठीक है अर्थात् उस समय के मिस्री समाज का इतिहास किसी नये समाज के इतिहास का आरम्भ से अन्त नही है, बल्कि उपसंहार है।

ऐण्डी, यूकारी, मेक्सिकी तथा मायासमाज

स्पेनियों के आने के पहले ये चार समाज अमरीका मे थे। ऐण्डी समाज सार्वभौम राज्य की स्थिति को पहुँच चुका था और 'इनका' साम्राज्य बन चुका था जिसे १५३० ई० में पिजारो ने ध्वंस किया। मैक्सिकी समाज में भी एजटेक साम्राज्य बन चुका था और उसकी भी गति वही हो रही थी जो इनका की थी। जिस समय कारटेज का अभियान हुआ उस समय 'ट्लैक्सकाला' ही ऐसा स्वतन्त्र राज्य था जिसका कुछ महत्त्व था। परिणामस्वरूप ट्लैक्सकाला वालो ने कारटेज की सहायता की। यूकेटन के यूकेटी समाज को चार सौ साल पहले मैक्सिकी समाज ने अपने

१. ऐन एवरी मॅन्स गाइड टु इम्मोरटैलिटी।

में मिला लिया था। मैक्सिकी तथा यूकेटी समाज दोनों एक पहले के समाज के वंशज थे जिसका नाम माया समाज था। इसकी सभ्यता अपने दोनों वंशजों से बहुत ऊँची थी। सातवीं ई० में बहुत शीघ्र और रहस्यपूर्ण ढंग से इसका अन्त हो गया। अब उसके चिह्न यूकेटा के जंगलों में खण्डहरो के रूप में मिलते हैं। माया समाज ज्योतिष और गणित की गणनाओं में बहुत कुशल था। कारटेज मैक्सिको में जो भयंकर धार्मिक कृतियों की खोज की गयी वह माया समाज के धर्म का बर्बर रूप था।

हमारी खोज ने उन समाजो का पता लगा लिया जो किसी के पितामह थे अथवा किसी के वंशज थे। इनकी नामावली इस प्रकार है :—पश्चिमी, परम्परावादी ईसाई धर्म वाले, ईरानी, अरबी (यह अन्तिम दोनो मिल कर अब इस्लामी समाज बन गये), हिन्दू, सुदूरपूर्वी, हेलेनी, सोरियाई, भारती, चीनी, मिनोई, सिन्धु घाटी वाले, सुमेरी, हिताइती, बैबिलोनी, मिस्री, ऐंडी, मैक्सिकी, यूकेटी तथा माया। हमने इस बात पर सन्देह प्रकट किया है कि बैबिलोनी और सुमेरी समाज अलग-अलग थे। सम्भव है कि मिस्री समाज के समान और भी दो-दो समाज किसी एक समाज के उपसंहार रहे हो। किन्तु हम उन्हें अलग-अलग समाज ही मानेंगे जब तक कोई अच्छा प्रमाण उनको अलग न मानने के लिए न मिल जाय। शायद यह ठीक हो कि परम्परावादी ईसाई समाज के दो भाग हों अर्थात् एक परम्परावादी बैजन्तिया समाज और दूसरा परम्परावादी रूसी समाज। और इसी प्रकार सुदूर पूर्वी को एक चीनी समाज दूसरा कोरिया—जापानी समाज। इस प्रकार इनकी संख्या बाईस हो जाती है। यह पुस्तक लिखने के बाद एक तीसरे समाज का पता चला है जो हांग हो की घाटी मे चीनी सभ्यता के पहले था जिसे शाग सभ्यता कहते हैं। इस सम्बन्ध में और विवेचन अगले अध्याय मे किया जायेगा।

३. समाज की तुलना

(१) सभ्यताएँ और आदिम समाज

इसके पहले कि हम इक्कीसों समाजों की विधिवत् तुलना करें, जो इस पुस्तक का अभिप्राय है, हम कुछ आपत्तियों का उत्तर देना चाहते हैं, जो उठायी जा सकती हैं। जिस पद्धति का अनुसरण हम करने जा रहे हैं उसके विरुद्ध पहला तर्क यह हो सकता है :—'इन समाजों में इसके अतिरिक्त कोई सामाजिक गुण नही है कि वह 'अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र' हैं। किन्तु यह गुण इतना अस्पष्ट और साधारण है कि अध्ययन में उससे कोई व्यावहारिक सहायता नही मिल सकती।'

इसका उत्तर यह है कि जो समाज 'अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र' हैं वे वंश (जीनस) हैं, और इसके अन्दर हमारे इक्कीस प्रतिनिधि विशेष जातियाँ (स्पीसीज) है। इन जातियों के समाज को ही साधारणतः सभ्य समाज कहते है। इनसे भिन्न आदिम समाज भी हैं। ये भी 'अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र' है। और इसी वश के अन्दर दूसरी जातियाँ हैं। हमारे इक्कीस समाजो मे, इसलिए, एक विशेष गुण सबमे पाया जाता है कि वे ही सभ्यता की राह पर है।

दोनो जातियो में एक और अन्तर अपने-आप स्पष्ट हो जाता है। जिन आदिम समाजो का हमें ज्ञान है उनकी सख्या बहुत अधिक है। सन् १९१५ ई० मे पश्चिम के तीन नृतत्व-शास्त्रियो (एन्थ्रोपोलोजिस्ट) ने आदिम समाजो का तुलनात्मक अध्ययन किया। जो कुछ सूचनाएँ प्राप्त थीं, केवल उन्ही को उन्होने अपना आधार माना। और ६५० ऐसे समाज उन्हे मिले जो जीवित हैं। इस बात की कल्पना नही हो सकती कि जबसे मनुष्य मानव हुआ, शायद आज ३००,००० वर्ष बीते होंगे, तब से आज तक कितने आदिम समाज जन्मे होंगे और मर गये होंगे। किन्तु इतना स्पष्ट है कि उनकी सख्या हमारे सभ्य समाजो से कही अधिक है।

जहाँ तक व्यक्तिगत विस्तार का सम्बन्ध है सभ्य समाजों का बाहुल्य आदिम समाजो से अधिक है। आदिम समाज असख्य है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से उनका जीवन काल थोड़ा है। और सभ्य समाजों की तुलना में उनके क्षेत्र की सीमा भी कम है और सभ्य समाजो की तुलना में उनमें लोगों की संख्या भी कम है। यदि आज जो पाँच सभ्य समाज जीवित है उनकी जन-गणना की जाय तो जितनी थोड़ी शतियो में ये जीवित चले आ रहे हैं, उनकी एक-एक की सख्या उन सब आदिम समाजो की सख्या, जो मानव जाति के आरम्भ से आज तक चले आ रहे है, सभ्य समाजों की संख्या से अधिक होगी। किन्तु हम व्यक्तियो का नहीं, समाजो का अध्ययन कर रहे है। हमारे लिए महत्त्व की बात यह है कि सभ्यता के क्रम मे जो समाजो का विकास हुआ उनकी संख्या तुलनात्मक दृष्टि से कम है।

(२) 'सभ्यता की अन्विति का भ्रम'

इक्कीस समाजों की तुलना करने के विरोध में जो दूसरा तर्क है वह पहले का विरोधी है।

वह यह है कि ये इक्कीस भिन्न प्रतिनिधि समाज की जातियों के नहीं हैं, बल्कि केवल एक ही सभ्यता है—वह हमारी है।

समाजों की सभ्यता एक है (यूनिटी) यह भ्रम है। पश्चिम के इतिहासकारों ने अपने वातावरण के प्रभाव के कारण यह दावा किया है। इस भ्रम का कारण यह है कि वर्तमान युग मे पश्चिमी सभ्यता ने अपनी आर्थिक प्रणाली का जाल विश्व भर में फैला रखा है। यह आर्थिक एकता पश्चिम के आधार पर है। इसी के परिणामस्वरूप राजनीतिक एकता भी उतनी ही हो गयी है। क्योंकि पश्चिम की सेनाओं ने तथा सरकारो ने उतनी विस्तृत और उतनी पूर्ण विजय नही प्राप्त की जितनी पश्चिम के कारखाने वालो और शिल्पियो ने (टेकनीशियन)। फिर भी यह तथ्य है कि आज के युग के संसार के सारे राज्य एक ही राज्य प्रणाली के अग हैं जिसका आरम्भ पश्चिम में हुआ है।

ये तथ्य जोरदार है, किन्तु इन्हे सभ्यता की एकता का प्रमाण मान लेना केवल सक्कीपन होगा। विश्व के राज्यों का आर्थिक और राजनीतिक नकशा पश्चिमीय हो गया है, परन्तु उनका सास्कृतिक नकशा वही है जो आर्थिक और राजनीतिक विजय के पहले था। जिन लोगों को आँखे हैं वे देख सकते है कि सांस्कृतिक धरातल पर चारो जीवित अ-पश्चिमीय (नान-वेस्टर्न) सभ्यताएँ स्पष्ट है। किन्तु बहुत लोगों के पास ऐसी आँखे नही है और उनकी दृष्टि का उदाहरण अंग्रेजी शब्द 'नेटिव' (देसी) अथवा इसी प्रकार के पश्चिम की भाषाओ मे और शब्द है।

जब हम पश्चिमी लोग 'नेटिव' शब्द का प्रयोग करते तब हम लोग उनकी सस्कृति का ध्यान नही करते। हम लोग जिस देश में जाते है वहाँ उन्हे जगली जानवरो की भाँति समझते है जो उस देश मे फैले हुए है। जिस प्रकार हम वहाँ के पशु-पक्षी और पेड़-पौधो को देखते है वैसे ही उन्हें भी समझते है। यह नही समझते कि हमारी ही तरह उनमें भी आवेग (पैशन्स) होते हैं। जब तक हम उन्हे 'नेटिव' समझते हैं हम उनका विनाश कर सकते हैं या उन्हें सभ्य बना सकते हैं या शायद ईमानदारी से उनके वश की उन्नति कर सकते है। (शायद इसमे सचाई भी हो)। किन्तु उन्हें समझने की चेष्टा नहीं करते।

विश्व भर मे पश्चिमी सभ्यता की भौतिक विजय के भ्रम के अतिरिक्त 'इतिहास की एकता' की यह मिथ्या धारणा है कि सभ्यता की एक ही सरिता है जो हमारी है और शेष सब या तो उसकी सहायक है या मरुभूमि में खो गयी है। इस भ्रान्ति के तीन कारण है। एक अहंवादी (एगोसेण्ट्रिक) भ्रम; दूसरा यह भ्रम कि पूर्व के देश अ-परिवर्तनशील है, और तीसरा यह भ्रम कि उन्नति की गति सीधी रेखा मे होती है।

अहंवादी भ्रम स्वाभाविक होता है और इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हम पश्चिम वाले ही इसके शिकार नहीं है। यहूदियों को यही भ्रम नही रहा कि हम 'विशेष लोक-समुदाय, (पीपुल) है, बल्कि हमी विशेष लोक समुदाय है। जैसे हम 'नेटिव' शब्द का प्रयोग करते है उसी प्रकार वह 'जेण्टाइल' (गैर यहूदी, नास्तिक) का प्रयोग करते थे। अहंवादी सनक का सबसे अच्छा उदाहरण वह पत्र है जो चीन के दार्शनिक सम्राट् चिएन लंग ने सन् १७९३ ई० में अंग्रेजी राजदूत को अपने मालिक सम्राट् तृतीय जार्ज को देने के लिए दिया था।

"ए सम्राट्! आप अनेक सागरो के पार रहते हैं। फिर भी अपनी विनीत इच्छा से प्रेरित होकर कि हमारी सभ्यता से आप लाभ उठाने के लिए आपने एक शिष्ट-मण्डल भेजा है जो आपका

आदरयुक्त स्मृति-पत्र (मेमोरियल) लाया है। मैंने आपका स्मृति-पत्र पढ़ा। जिस उत्साहपूर्ण भाषा में यह लिखा गया है उससे आपकी सम्मानपूर्ण विनम्रता प्रकट होती है जो बहुत प्रशंसा-जनक है।

"आपकी यह प्रार्थना कि आपके राष्ट्र का एक प्रतिनिधि मेरे स्वर्ग समान दरबार मे रहे और चीन तथा आपके देश के बीच के व्यापार का नियन्त्रण करे, नही स्वीकार हो सकती क्योकि यह मेरे वश की परम्परा के विरुद्ध है। यदि आपका आग्रह है कि हमारे दिव्य वश के प्रति आपका सम्मान हो और आप हमारी सभ्यता को ग्रहण करना चाहते हैं तो हमारे रीति-रिवाज और हमारे कानून और नियम आपके रीति-रिवाज और कानून से इतने भिन्न हैं कि यदि आपके प्रतिनिधि उसका प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त कर ले तो हमारे आचार-व्यवहार, रस्मो-रिवाज आपकी उस विदेशी धरती पर पनप नही सकते। इसलिए आपका प्रतिनिधि कितना भी पटु हो जाय कोई लाभ नही हो सकता।

"इस विशाल ससार पर शासन करते हुए मेरा एक ही लक्ष है कि मेरा शासन कुशल हो और मै राज्य के कार्यों का ठीक निर्वाह कर सकूँ। विचित्र और मूल्यवान् वस्तुओ के प्रति मुझे आकर्षण नही है। आपने जो उपहार नजर के रूप मे भेजे है उन्हे स्वीकार करने की आज्ञा, ए राजा, मैंने इसलिए दे दी कि आपने जिस भावना से उन्हे इतनी दूर भेजा है उसका मैंने आदर किया। हमारे वश के महान् गुण आकाश के नीचे प्रत्येक देश मे समाविष्ट हो गये है और सभी राष्ट्रो के राजाओ ने जल और थल के मार्गों से अपनी बहुमूल्य भेटे मेरे पास भेजी हैं। आपके प्रतिनिधि देख सकते है कि हमारे पास सब कुछ है। विचित्र तथा विलक्षण वस्तुओ का मेरे सामने कोई मूल्य नही है। आपके देश की बनी वस्तुओ की यहाँ कोई आवश्यकता नही है।"[१]

इस पत्र के भेजने के बाद की ही शती में चिएन लग के देशवासियों की अनेक पराजय हुई। कहा भी गया है कि घमण्ड का यही परिणाम होता है।

'अपरिवर्तनशील पूर्व' इतना प्रचलित भ्रम है और गम्भीर अध्ययन के लिए इतना निराधार है कि उसका कारण ढूँढ़ने में कोई महत्त्व या रुचि नही हो सकती। सम्भवतः इसका कारण यह है कि इस सन्दर्भ में 'पूरब' से अभिप्राय कोई भी स्थान मिस्र से चीन तक हो सकता है। किसी समय यह पश्चिम से कही आगे था और अब बहुत पीछे रह गया है। अतएव जब हम लोग गतिशील थे यह निश्चल रहा होगा। विशेषत हमें याद रखना चाहिए कि साधारण पश्चिम वालो को 'पूरब' के प्राचीन इतिहास की जानकारी पुराने बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेण्ट) की कथाओं से ही प्राप्त हुई है। पश्चिम के यात्रियो ने आज जब आश्चर्य और आनन्द से यह देखा कि अरब के रेगिस्तान की सीमा पर ट्रासजार्डीनिया में आज भी लोगों का जीवन वैसा ही है जैसा उत्पत्ति की पुस्तक (बुक आव जनेसिस) मे सरदारो (पेट्रिआर्क) के बारे में लिखा है, तब पूरब की अप्रगतिशीलता प्रमाणित हो गयी। किन्तु इन यात्रियो ने 'अपरिवर्तनशील पूरब' को नही देखा, अपरिवर्तनशील अरब के स्टेप को देखा। स्टेप पर भौतिक वातावरण मनुष्यो के लिए उतना कठोर है कि उसके अनुकूल बना लेने की सीमा बहुत सकुचित है। सभी

१. ए० फ० ह्वाइट : चाइना एण्ड फारेन पावर्स, पृ० ४१।

कालों में उन लोगों का, जिनका इस कठिन वातावरण में रहने का साहस था जीवन अपरिवर्तनशील और कठोर हो गया। 'अपरिवर्तनशील पूरब' के लिए ऐसा प्रमाण लचर है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी जगत् मे आल्प्स की घाटियों में जहाँ नवयुग के यात्रियों का धावा नहीं हुआ है, ऐसे निवासी है जो उसी प्रकार रहते हैं जैसे उनके पूर्वज अब्राहम के युग में रहते थे। यह तर्क उतना ही युक्ति-संगत होगा कि 'पश्चिम अपरिवर्तनशील' है।

उन्नति का यह भ्रम कि वह कोई ऐसी चीज है जिसकी गति सीधी रेखा मे होती है ऐसी प्रवृत्ति का उदाहरण है कि मनुष्य का मन (माइण्ड) सदा सब कार्यों को सरलतम बनाना चाहता है। हमारे इतिहासकार सीधे एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सिलसिले में समय का विभाजन कर देते है, जैसे बाँस के पोर लगातार एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक होते हैं, या जैसे चिमनी साफ करने के नवीन डण्डे के टुकड़े होते हैं जिसके सिरे पर ब्रश लगा होता है और जिसे चिमनी साफ करने वाला एक के बाद एक बढ़ाता जाता है। हमारे इतिहासकारों को जो ब्रश का हैंडिण्ल उत्तराधिकार मे मिला है मूल मे उसकी दो ही गाँठे थी। प्राचीन और वर्तमान जो ठीक-ठीक तो नही, किन्तु ये प्रायः नयी और पुरानी बाइबिल के समान हैं और ईसा के पहले युग और ग्रीक के बाद के युग को लक्षित करता है। यह द्वि-वर्गीकरण (डाइकोटोमी) हेलेनी समाज की आन्तरिक जनता के दृष्टिकोण की यादगार है जिसने इस प्रकार हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यकों से अपना अलगाव व्यक्त किया था और इस प्रकार पुराने हेलेनी विमुक्ति (डिसपेंसेशन) और ईसाई धर्म समाज से पूर्ण विरोध प्रकट किया था। और इस प्रकार इस अहंवादी भ्रम के वे शिकार हुए कि हमारे इक्कीस समाजो में एक दूसरे में संक्रमण हुआ और इसी से इतिहास में परिवर्तन हुआ। (उनके लिए यह क्षम्य है क्योंकि उनका ज्ञान हमसे कम था।)

समय की गति के साथ-साथ हमारे इतिहासकारों ने अपनी सुविधा के लिए एक और गाँठ जोड़ दी और उसे 'मध्यकाल' कहा क्योंकि वह दोनो के बीच था। 'प्राचीन' और वर्तमान काल का विभाजन हेलेनी और पश्चिमी इतिहास के व्यवधान के कारण था, 'मध्यकाल' और 'वर्तमान काल' पश्चिमी इतिहास के एक अध्याय से दूसरे अध्याय का केवल सक्रमण है। यह फारमूला—प्राचीन काल, मध्यकाल, वर्तमान काल अनुपयुक्त है। यह यों होना चाहिए, हेलेनी + पश्चिमी (मध्य + वर्तमान) किन्तु इससे काम नही चलेगा। क्योंकि यदि हम पश्चिमी इतिहास के एक अध्याय-विभाजन को अलग 'काल' मानते है तो दूसरों के लिए यही मानना उचित होगा। यदि हम कोई विभाजन सन् १४७५ के आस-पास करते हैं तो सन् १०७५ के आस-पास क्यों नहीं। और इस बात के पक्ष मे भी समुचित तर्क है कि अभी हम लोगों ने एक नया अध्याय आरम्भ किया है जिसका आदि काल हम सन् १८७५ के आस-पास रख सकते है। इस प्रकार यह विभाजन होगा :—

पश्चिमी १ (अंधकार युग, डार्क एज) ६७५—१०७५

पश्चिमी २ (मध्यकाल) १०७५—१४७५

पश्चिमी ३ (वर्तमान) १४७५—१८७५

पश्चिमी ४ (उत्तर वर्तमान, पोस्ट-माडर्न) १८७५—?

किन्तु हम अपने विषय से दूर चले गये। विषय यह है कि हेलेनी और पश्चिमी इतिहास का, उसे चाहे प्राचीन और वर्तमान कह लीजिए, समीकरण (इक्वेशन), केवल संकीर्णता और धृष्टता

है। यह इसी प्रकार है कि भूगोलवेत्ता 'ससार के भूगोल' पर पुस्तक लिखे और देखने पर पता चले कि पुस्तक केवल भूमध्यसागर के बेसिन और यूरोप पर है।

इतिहास की अन्विति की एक दूसरी और भिन्न धारणा है जो उस प्रचलित और परम्परागत भ्रम से मिलती है जिसपर विचार किया गया है और जो इस पुस्तक की स्थापना के विरुद्ध है। हम किसी बाजारू खिलौने की बात नही कर रहे है, बल्कि नृशास्त्र के सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप जो बातें लिखी गयी है उनपर हम उस विसरण (डिफ्यूजन) के सिद्धान्त की बात कर रहे हैं जो जी० ईलियट स्मिथ के 'द ऐशेंट इजिपशियन्स एण्ड दि ओरिजिन आव सिविलिजेशन' और डब्लू० एच० पेरी के 'द चिल्ड्रन आव द सन · ए स्टडी इन द अर्ली हिस्ट्री आव सिविलिजेशन' में लिखा गया है। ये लेखक 'सभ्यता की एकता' को विशेष रूप मे जानते हैं। इन लेखकों का विश्वास इतिहास की एकता में विशेष ढग का है। ये इस तथ्य पर विश्वास नही करते कि निकट भविष्य में या निकट भूतकाल मे एकमात्र पश्चिमी सभ्यता के विश्व भर मे विस्तार से सभ्यता की एकता स्थापित हुई है। बल्कि वह उसे तथ्य मानते हैं जो हजारो वर्ष पहले मिस्री सभ्यता के प्रसार मे पूरा हुआ, जो उन मरी हुई सभ्यताओ में हमने माना है जिसका कोई उत्तराधिकारी नही है। उनका विश्वास है कि मिस्री सभ्यता ही एक मात्र ऐसी सभ्यता है जिसका जन्म बिना किसी बाहरी सहायता के, स्वतन्त्र रूप से हुआ। उनके अनुसार सब जगह सभ्यता यही से फूली, अमेरिका मे भी इसका प्रभाव पडा जहां यह हवाई द्वीप तथा पूर्वी द्वीप से होते हुए पहुँची होगी।

यह ठीक है कि प्रसार भी एक माध्यम है जिसके द्वारा तकनीक, कुशलता, सस्थाएँ, विचार-धाराएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती है। वर्णमाला से लेकर सिगर की सीने की मशीन तक एक समाज से दूसरे समाज को मिली है। प्रसार से ही सुदूर पूरब की चाय, अरब का पेय काफी, मध्य अमेरिका का पेय कोको, अमेजन प्रान्त का रबड, मध्य अमेरिका का तम्बाकू, गणित की सुमेरी द्वादश द्वीप (डुओडेसियल) पद्धति जो हमारी शिलिंग से प्रकट होती है और तथाकथित अरबी अक जो सम्भवत. हिन्दुस्तान से आया, सर्वव्यापी हुए है। ऐसे अनेक उदाहरण है। यह बात कि राइफिल का किसी एक स्थान मे ही आविष्कार हुआ और एक ही केन्द्र से चारो ओर फैली इस बात का प्रमाण नही है कि तीर कमान का भी एक ही स्थान मे आविष्कार हुआ और वही से वह विश्व भर में फैली। यह भी तर्क ठीक नही है कि शक्ति से चलने वाले करघे मेंचेस्टर से सब संसार मे फैले तो धातु गलाने का तकनीक भी एक ही केन्द्र से प्रसारित हुआ होगा। बल्कि इस सम्बन्ध मे प्रमाण उलटा है।

भौतिक सभ्यता के भ्रष्ट विचारो के बावजूद सभ्यता की नीव ऐसी ईटो पर नही पड़ी है। सीने की मशीनो, बन्दूको और तम्बाकू पर सभ्यता का निर्माण नही होता। वर्णमाला और अको पर भी नही। आज के व्यावसायिक जगत् मे पश्चिमी तकनीक का दूसरे देशो मे पहुँचना सरल है। किन्तु पश्चिमी कवि अथवा सन्त का अपने उन विचारो का जिनका प्रकाश उनके अपने देश मे फैला है, दूसरे देशो मे पहुँचाना इससे कही अधिक कठिन है। प्रसारवादी सिद्धान्त का जितना औचित्य है उसे मान लेने पर भी मानव के इतिहास मे आरम्भिक सर्जन का जो योगदान हुआ है उसके महत्त्व पर जोर देना आवश्यक है। और हमे स्मरण रखना चाहिए कि आरम्भिक सर्जन का बीज अथवा उसकी चिनगारी जीवन की किसी अभिव्यक्ति में फूल अथवा लौ मे फूट सकती है क्योकि प्रकृति की एकता का सिद्धान्त निश्चित है। हम यहाँ तक कह सकते है कि

मनुष्य की कोई उपलब्धि प्रसार के कारण है अथवा नही, इसके प्रमाण का भार प्रसारवादियो के ऊपर होना चाहिए।

सन् १८७३ में फ्रीमैन ने लिखा था—"इसमे सन्देह नही कि सभ्यता के विकास में ऐसा समय आया कि किसी देश अथवा जाति को किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ी तो उन्ही-उन्ही वस्तुओ का आविष्कार विभिन्न देशो और विभिन्न युगो मे बार-बार हुआ है। जैसे मुद्रण कला का आविष्कार स्वतन्त्र रूप से चीन मे हुआ और मध्ययुगीन यूरोप में भी। यह भी अच्छी तरह मालूम है कि इसी प्रकार की कुछ क्रिया प्राचीन रोम मे भी अनेक कार्यो के लिए की जाती थी। यद्यपि इस प्रणाली का प्रयोग पुस्तक प्रकाशन के काम मे नही किया जाता था, किन्तु दूसरे तुच्छ कामो में इसका प्रयोग होता था। जैसे छपाई की बात है उसी प्रकार लेखन कला की भी है। दूसरी कला का भी उदाहरण हम दे सकते है। मिस्र, यूनान, इटली तथा ब्रिटिश टापुओ के पुराने भवनों के खँड़हरो तथा मध्य अमरीका के ध्वस्त नगरो की तुलना करने से हमें पता चलता है कि तोरण (आर्च) और कलश (डोम) का आविष्कार मानव कला के इतिहास मे अनेक बार हो चुका है। हमे इसमें भी सन्देह नही है कि सभ्य जीवन की अनेक आवश्यक कलाओ का, जैसे आटा पीसने की चक्की का, तीर-कमान का, घोड़े पालने का, डोंगी (कैनो) बनाने इत्यादि का आविष्कार अनेक युगो मे अनेक देशो मे हुआ है। यही बात राजनीतिक सस्थाओ की भी है। एक ही प्रकार की सस्था भिन्न-भिन्न देशों और कालो मे दिखाई देती है। इसका कारण यही है कि समय-समय पर अलग-अलग देशो में ऐसी परिस्थितियाँ हुई कि उनका जन्म हुआ।"[1]

एक वर्तमान नृतत्त्व-शास्त्री ने यही विचार प्रकट किया है —

"मनुष्य के आचार और विचार की समानता इस कारण है कि सब जगह मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट एक-सी है, और इस प्रकार उसका स्वभाव भी वैसा ही है। मानव के इतिहास की जहाँ तक जानकारी है उसकी प्रत्येक मंजिल पर मनुष्य के भौतिक अवयव की बनावट मे और उसकी स्नायविक क्रियाएँ एक ही प्रकार की रही हैं, इसलिए मन की विशेषताएँ, शक्तियाँ और कार्यप्रणाली भी एक-सी रही है। मस्तिष्क कैसे एक ही ढंग से काम करता है इसका उदाहरण उन्नीसवी शती के विचारक डार्विन तथा रसेल वैलेस की रचनाओं मे मिलता है। इन्होंने समाज सामग्री (डेटा) के आधार पर कार्य करते हुए एक साथ ही विकास सिद्धान्त का पता लगाया और इसी युग मे अनेक लोगो ने एक ही आविष्कार (इनवेशन) और खोज (डिस-कवरी) के लिए दावा किया कि मैंने पहले पता लगाया है। इसी प्रकार की और भी क्रियाएँ मानव प्रजातियो (रेस) मे समान रूप से पायी जाती है, जैसे टोटेमवाद (टोटेमिज्म), गोत्रान्तर विवाह (एक्सोगेमी) तथा अनेक परिष्कारात्मक संस्कार जो ससार की विभिन्न जातियो और देशो मे पाये जाते है, जो एक-दूसरे से बहुत दूर है। यद्यपि इन बातो की सामग्री अपूर्ण है, इनकी शक्ति अविकसित है और परिणाम अस्पष्ट है।"[2]

१. ई० ए० फ्रीमैन : कम्परेटिव पालिटिक्स, पृ० ३१–२।
२. जे० मरफ़ी : प्रिमिटिव मैन : हिज़ एसेंशल क्वेस्ट, पृ० ८–९।

(३) सभ्यताओं के सादृश्य (कम्पेरेबिलिटी) का दवा

हमने अपने तुलनात्मक अध्ययन की योजना की दो विरोधी आपत्तियो का उत्तर दिया है । एक तो यह कि हमारे इक्कीस समाजो मे इसके सिवाय और कोई समानता नही है कि वे सभी 'ऐतिहासिक अध्ययन के सुबोध क्षेत्र' हैं, दूसरे यह कि 'सम्यता की एकता' के फलस्वरूप देखने में जो अनेक सभ्यताएँ है, वे असल मे एक है। फिर भी हमारे आलोचक इन आपत्तियों के हमारे उत्तर को मान भी ले तो यह तर्क उपस्थित कर सकते है कि इन इक्कीस सभ्यताओं की तुलना नहीं हो सकती क्योंकि वे समकालीन नही है । इनमें सात अभी जीवित हैं, चौदह लोप हो गयी जिनमें से कम से कम तीन—मिस्री, सुमेरी और मिनौसी—का अस्तित्व 'इतिहास के प्रभात' मे था। इन तीनों मे और सम्भवतः औरों मे भी तथा जीवित सभ्यताओं में एक दूसरे से पूरे 'ऐतिहासिक युग' (हिस्टारिकल टाइम) का अन्तर है ।

इसका उत्तर यह है कि काल सापेक्ष (रेलेटिव) है । और छः हजार साल से कम की जो छोटी अवधि प्राचीनतम सभ्यता के आविर्भाव और वर्तमान काल के बीच है उसे हमे अध्ययन की दृष्टि से उचित समय मान (टाइम-स्केल) के हिसाब से नापना होगा । अर्थात् सभ्यताओ के बीच के काल-विस्तार (टाइम-स्पेन) की इकाइयो द्वारा नापना होगा । समय के सम्बन्ध से सभ्यताओ के सर्वेक्षण मे अधिक से अधिक जो क्रमागत पीढियाँ हमे मिली हैं उनकी सख्या तीन है । तीन-तीन पीढ़ियो की प्रत्येक सभ्यता छः हजार वर्षो से अधिक अवधि की है। और प्रत्येक क्रम की अन्तिम अवधि (टर्म) वह सभ्यता है जो जीवित है ।

तथ्य की बात यह है सभ्यताओ के सर्वेक्षण में हमने यह देखा कि किसी सभ्यता मे क्रमागत पीढ़ियाँ तीन से अधिक नही है । इसका यह अर्थ हुआ कि यह जाति (स्पीसीज़) अपने ही कालमान के अनुमार बहुत नयी है । दूसरी बात यह है कि इसकी अद्यतन निरपेक्ष आयु प्रारम्भिक समाज की सहोदरा जातियो की तुलना मे कम है क्योकि ये मानव के समवयस्क हैं और इसलिए औसत अनुमान से तीन लाख वर्ष से हैं । यह कहने की आवश्यकता नही है कि बहुत-सी सभ्यताओं का आरम्भ 'इतिहास के प्रभात' से है क्योंकि जिसे हम इतिहास कहते हैं वह मनुष्य का इतिहास सभ्य समाज आरम्भ होने के इतिहास से है । यदि हमारा अभिप्राय इतिहास से जब से मनुष्य पृथ्वी पर पैदा हुआ तब से है तो हमे ज्ञात होगा कि सभ्यता का इतिहास तथा मनुष्य का इतिहास समवयस्क नही है । सभ्यता का इतिहास केवल दो प्रतिशत है, मानव जीवन के इतिहास का केवल एक बटे पचासवाँ भाग । इसलिए हमारे अभिप्राय के लिए हमारी सभ्यताएँ प्रायः समकालीन ही है ।

हमारे आलोचक काल-विस्तार का तर्क छोड़कर यह कह सकते हैं कि इन सभ्यताओ के मूल्यो (वेल्यू) में अन्तर है, इसलिए इनकी तुलना नही हो सकती । क्या बहुत-सी कही जाने वाली सभ्यताएँ प्रायः मूल्यहीन नही हैं । वास्तव मे वे इतनी 'असभ्य है कि उनकी और वास्तविक' सभ्यताओं (जैसी कि हमारी मानी जाती है) के जीवन से तुलना करना मानसिक शक्ति का विनाश करना है । इस विषय पर पाठकों को अपने निर्णय को तब तक के लिए रोक रखना चाहिए जब तक वे यह न देख लें कि हम जिस प्रकार के मानसिक परिश्रम की अपेक्षा करते हैं उसका परिणाम क्या होता है । साथ ही पाठको को यह भी जानना चाहिए कि काल के समान

मूल्य भी सापेक्ष संकल्पना (कान्सेप्ट) है, और यदि प्राचीन समाजों से तुलना की जाय तो हमारे इक्कीस समाजो की बहुत उपलब्धियाँ है और यदि किसी आदर्श मानक से इनको नापा जाय तो ये इतनी पायी जायँगी कि इनमें कोई एक दूसरे पर उँगली न उठा सकेगा।

सच पूछिए तो हमारा निश्चित मत है कि यह अनुमान कर के चलना चाहिए कि दार्शनिक दृष्टि से हमारे इक्कीस समाज समकालीन है और समान है ।

और अन्त मे हम यह मान भी ले कि हमारे आलोचक यहाँ तक हमसे सहमत है तो वे यह कहेंगे कि सभ्यताओ के इतिहास और कुछ नही है, केवल घटनाओ की लडी है और प्रत्येक ऐतिहासिक घटना वास्तव मे अकेली है तथा इतिहास की पुनरावृत्ति नही होती ।

इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक घटना, प्रत्येक व्यक्ति की भाँति अलग है और इस कारण कि उन्ही बातो मे इनकी आपस मे तुलना नही हो सकती, किन्तु और बातो मे वह एक वर्ग का सदस्य हो सकती है और जहाँ तक एक ही वर्गीकरण मे आते है उसी वर्ग के एक दूसरे सदस्य की तुलना हो सकती है । कोई दो जीवित प्राणी चाहे जन्तु हो या वनस्पति हो, बिलकुल समान नही होता तो इससे क्रिया-विज्ञान (फिजियालोजी) जीव-विज्ञान (बायलोजी) वनस्पति-विज्ञान (बौटनी) जन्तु-विज्ञान (जुआलोजी) और मानवजाति विज्ञान (एनीलोजी) अमान्य ही हो सकते । मनुष्य का मान तो और भी मायावी और भिन्न है, किन्तु हमे मनोविज्ञान का अस्तित्व मान्य है और चाहे आज तक की उसकी उपलब्धियो के सम्बन्ध मे हमारा मतैक्य न हो उसके प्रभाव को हम मानते है । इसी प्रकार आदिम समाजो का तुलनात्मक अध्ययन हम मानव-विज्ञान के नाम से करते है । जो कार्य मानव-विज्ञान आदिम जातियों का कर रहा है वही हम समाज की 'सभ्य' जातियो के सम्बन्ध मे करना चाहते है ।

हमारी स्थिति इस अध्याय के अन्तिम परिच्छेद मे स्पष्ट हो जायेगी ।

(४) इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य (फिकशन)

अपने विचारो की अनुभूति और उनकी अभिव्यक्ति तथा उनमे जीवन की घटनाओ की अनुभूति और अभिव्यक्ति के तीन प्रकार है । पहला तो यह है कि तथ्यो की खोज की जाय और उन्हे लेखबद्ध किया जाय, दूसरा यह कि तथ्यो के तुलनात्मक अध्ययन से सामान्य नियम बना कर उनका स्पष्टीकरण किया जाय, तीसरा यह कि उन तथ्यो के आधार पर पुन कलात्मक सर्जन किया जाय जो कल्पना-साहित्य होता है । साधारणत यह माना जाता है कि तथ्यो की खोज और उनका अभिलेखन इतिहास का तकनीक (टेकनीक) है और इस तकनीक के क्षेत्र मे सभ्याताओ की सामाजिक घटनाओ का समावेश रहता है, सामान्य नियमो का बनाना और उनका स्पष्टीकरण विज्ञान का तकनीक है । मानव-जीवन के इस प्रकार अध्ययन के विज्ञान को मानव-विज्ञान (एन्थ्रोपालोजी) कहा गया है । और आदिम समाज की सामाजिक घटनाएँ इस वैज्ञानिक तकनीक के क्षेत्र मे आती है । नाटक और उपन्यास का तकनीक कल्पना-साहित्य है । इसका क्षेत्र है मनुष्य का व्यक्तिगत सम्बन्ध । अरस्तु की पुस्तको मे ये सब बाते मूलरूप मे पायी जाती है ।

इन तीनो विभागो के तीनो तकनीको के विस्तार मे जितना अन्तर समझा जाता है उतना है नही । उदाहरण के लिए, इतिहास मे मानव-जीवन के सभी तथ्यो का उल्लेख नही होता ।

आदिम समाज के सामाजिक जीवन के तथ्य उसमें नही सम्मिलित होते । इन तथ्यो से मानव-विज्ञान की विधियाँ (लाज) बनती है। व्यक्तिगत जीवन के तथ्य जीवन चरित (बायोग्राफी) में चले आते है । यद्यपि ऐसे व्यक्तिगत जीवन जो इस योग्य होते है जिन्हे लेखबद्ध किया जाय, आदिम समाज में नही पाये जाते, उन समाजों मे पाये जाते है जो सभ्यता की राह पर है और ये परम्परा के अनुसार इतिहास के क्षेत्र मे आ जाते है । इस प्रकार इतिहास मे मानव जीवन के कुछ तथ्य आते है, सब नही । इतिहास कल्पना-साहित्य से भी सहायता लेता है और विधियो से भी ।

नाटक और उपन्यास के समान इतिहास का आरम्भ भी पुराणो से हुआ है । ये मनुष्य के ज्ञान तथा अभिव्यक्ति के आदिम स्वरूप है, जैसे परियो की कहानियाँ होती है जिन्हे बच्चे सुनते है अथवा जैसे दुनियादार युवक सपने देखा करते है जिनमे कल्पना और तथ्य का अन्तर नही होता । उदाहरण के लिए, कहा जाता है अगर 'ईलियड' कोई इतिहास के रूप मे पढना चाहे तो उसे वह हानियो से भरा मिलेगा और यदि कोई कथा के रूप मे पढ़ना आरम्भ करे तो उसमे उसे इतिहास ही इतिहास मिलेगा । सभी इतिहास इस रूप मे ईलियड के समान है कि कल्पना के तत्त्व को वे बिलकुल निकाल नही सकते । तथ्यो का चुनाव, उनका विन्यास और उपस्थापन कल्पना-साहित्य के क्षेत्र के तकनीक है और यह लोकमत ठीक है कि कोई इतिहासकार तब तक 'महान्' नही हो सकता जब तक वह महान् कलाकार भी न हो। उनका कहना है कि गिबन और मेकाले के समान इतिहासकार उन नीरस इतिहासकारो से अधिक महान् है जो अपने साथी इतिहासकारो के तथ्यो की भूलो की उपेक्षा कर गये है । जो कुछ हो, ऐसे काल्पनिक प्रतिरूपो (फिकटिशस परसानिफिकेशन्स) के प्रयोग किये बिना, जैसे 'इग्लैंड', 'फ्रास', 'द कन्जर्वेटिव पार्टी' 'द चर्च', 'द प्रेस' (पत्र) अथवा 'जनमत' । थ्युसिडाइड्स ने ऐतिहासिक व्यक्तियो के द्वारा काल्पनिक भाषणो और सवादो को कहला कर नाटकीय ढग से इतिहास लिखा है । लेकिन उसकी सीधी-सादी वाणी अधिक सजीव है और उन आधुनिक लेखको से अधिक काल्पनिक नही है जो घुमा-फिरा कर जनमत का मिला-जुला चित्रण करते है ।

दूसरी ओर इतिहास मे अनेक सहायक विज्ञानों का समावेश होता है जिनके द्वारा सामान्य विधिया बनती है जो आदिम समाजो के नही सभ्य समाजो के होते है । जैसे अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान और समाज-विज्ञान-(सोशियालोजी) ।

यद्यपि यह तर्क देने की आवश्यकता नही है फिर भी हम कह सकते है कि जिस प्रकार इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य के तकनीको से अछूता नही रहता उसी प्रकार विज्ञान और कल्पना-साहित्य केवल अपने तकनीको मे ही सीमित नही रहते । सभी विज्ञानो को ऐसी मंजिल से गुजरना होता है जिनमें उनका काम केवल तथ्यो का खोजना और उनका लेखन रहता है । और मानव विज्ञान अभी इस अवस्था से गुजर रहा है । अन्त में यह भी बता देना है कि नाटक और उपन्यास मे मानव सम्बन्ध का चित्रण कोरी कल्पना ही नही होती । यदि ऐसा होता तो इन कृतियो को अरस्तू की वह प्रशंसा प्राप्त न होती जो उसने कहा कि ये इतिहास और दर्शन से अधिक सच्ची होती हैं । और ये केवल ऊटपटाँग और गप नही होते । साहित्य की किसी कृति को जब हम कल्पना-साहित्य कहते है तब उसका यही अभिप्राय होता है कि इनके पात्रो का किसी ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध नही है जो कभी जीवित रहा हो, न घटनाओं को किसी ऐसी घटना से मिला सकते है जो सचमुच घटी हों । सचमुच हमारा यह अभिप्राय होता है कि इन पात्रो की पृष्ठभूमि

काल्पनिक है और यदि हम इसका जिक्र नहीं करते कि इनका आधार वास्तविक सामाजिक तथ्यों पर है तो इसका यही कारण है कि उन्हें हम मान लेते है कि वे स्वयं सिद्ध और स्पष्ट हैं । जब हम किसी कल्पना-साहित्य के सम्बन्ध में कहते है कि यह जीवन का सच्चा चित्रण है और लेखक ने मानव स्वभाव का गम्भीर अध्ययन किया है तब हम उसकी वास्तविक प्रशंसा करते है । उदाहरण के लिए, यदि किसी उपन्यास में यार्कशायर के ऊनी कारीगरों के काल्पनिक परिवार का वर्णन है तो हम लेखक की प्रशंसा यो कर सकते है कि वेस्ट-राइडिंग के कल-कारखाने वाले नगरो का उसे पूरा-पूरा ज्ञान है ।

फिर भी इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य के तकनीकों में जो अन्तर अरस्तू ने बतलाया है वह साधारणत. ठीक है और यदि हम इन तकनीकों पर फिर से विचार करे तो पता चलेगा कि ऐसा क्यो है । हमको अन्तर यह मिलेगा कि ये अपनी दी हुई सामग्री की भिन्न-भिन्न मात्राओ का भिन्न ढंग से प्रयोग करते है । जहाँ सामग्री कम है उस क्षेत्र का अध्ययन केवल विशेष तथ्यो को खोजकर और उन्हे लिपिबद्ध करके हो सकता है । जहाँ सामग्री इतनी अधिक है कि उनकी सारणी बनायी जा सके, किन्तु इतनी अधिक नही है कि उनका सर्वेक्षण किया जा सके वहाँ यह सम्भव है और आवश्यक भी है कि विधि बनायी जाय और उन्हे स्पष्ट किया जाय । जहाँ सामग्री अत्यधिक है वही कल्पना साहित्य के तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है जिसमे कलात्मक सर्जन तथा अभिव्यक्ति काम में लायी जाती है । तीनो तकनीको में इसमे सबसे अधिक मात्रा का अन्तर होता है । भिन्न-भिन्न मात्राओ की सामग्रियो के प्रयोग मे तकनीको की उपयोगिता मे भी अन्तर है । क्या इसी प्रकार का अन्तर हमे उन सामग्रियो की मात्राओ में मिल सकता है जिन्हे हमने अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाया है ।

पहले हम व्यक्तिगत सम्बन्धो को ले ले जिन्हे हम कल्पना-साहित्य कहते हैं । हमको तुरत पता लग जायेगा कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनका वैयक्तिक सम्बन्ध इतने महत्त्व का और इतना मनोरंजक है कि उनके कारनामो को लिखा जाये या उनके जीवन का ऐसा विषय है जिसे हम उस रूप में लिखे जिसे जीवन-चरित कहते हैं । इन अपवादो को छोडकर मानव जीवन के व्यक्तिगत सम्बन्धो के क्षेत्र के अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो के सामने असख्यो उदाहरण ऐसे आयेगे जिनकी अनुभूतियाँ समान है । उन सबकी सूची बनाने का विचार ही हास्यास्पद है । इनकी अनुभूतियो के आधार पर कोई 'विधि' बनाना नितान्त निरर्थक और बिलकुल भद्दा होगा । इस परिस्थिति मे सामग्रियो का ठीक-ठीक उपयोग बिना किसी ऐसे माध्यम के नही हो सकता जिससे हमे असीम का ससीम भावो मे ज्ञान हो । कल्पना-साहित्य ही वह माध्यम है ।

हमे मात्रा की दृष्टि से इतना पता चला कि कम से कम आंशिक सत्य यह है कि वैयक्तिक सम्बन्धो के अध्ययन के लिए कल्पना-साहित्य का प्रयोग किया जाता । अब हमे इसी भाँति यह देखना चाहिए कि क्या आदिम समाजो के अध्ययन के लिए विधि-निर्माण की तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है और सभ्यताओ के अध्ययन के लिए तथ्यों की खोज की तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है ।

पहली बात यह देखने की है कि अन्तिम दोनों अध्ययन मनुष्य के सम्बन्ध से तो हैं, लेकिन वह सम्बन्ध उस प्रकार का निजी नही है जो प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के जीवन में प्रतिदिन प्रत्यक्ष रूप से होता है । मनुष्यो के सामाजिक जीवन के सम्बन्ध निजी सम्बन्धों से और अधिक

विस्तृत होते है, जो अवैयक्तिक होते हैं। इन अवैयक्तिक सम्बन्धों का जिन सामाजिक तन्त्रों द्वारा निर्वाह होता है उन्हें संस्था कहते हैं। सस्था बिना समाज का अस्तित्व नही हो सकता। सच पूछिए तो समाज सबसे ऊँची संस्था है। चाहे समाज का अध्ययन किया जाय चाहे संस्थाओं के सम्बन्ध का, बात एक ही है।

हमें तुरत पता चल जायेगा कि संस्थाओं में मनुष्यो के जो सम्बन्ध हैं उन्हें अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को सामग्री की मात्रा कम मिलेगी और लोगो के व्यक्तिगत सम्बन्ध के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को कही अधिक सामग्री मिलेगी। हम यह भी देखते हैं कि आदिम समाजो के समुचित अध्ययन करने के लिए संस्थागत सम्बन्धों की जो लिखित सामग्री मिलती है वह उस सामग्री से कहीं अधिक है जो सभ्य समाजो के उचित अध्ययन के लिए मिलती है। क्योकि जो ज्ञात आदिम समाज हैं उनकी संख्या ६५० से भी अधिक है। और जो समाज उन्नति के पथ पर है उनकी सख्या इक्कीस से अधिक नही है। ६५० समाजों के उदाहरण से कल्पना-साहित्य का निर्माण नही हो सकता। उनके द्वारा विद्यार्थी विधियो के बनाने का कार्य केवल आरम्भ कर सकता है। जिस समाज में एक या दो दर्जन उदाहरण मिलते हैं उसमे तथ्यो के सारणीकरण के अतिरिक्त और कुछ नही सम्भव है। हमने देखा है कि इसी सीमा तक इतिहास अभी पहुँचा है।

पहले हमें यह विरोधाभास-सा मालूम होगा कि सभ्यताओ के अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो के पास सामग्री की मात्रा बहुत कम है जबकि आधुनिक इतिहासकार यह शिकायत करते है कि हमारे पास इतनी सामग्री है कि हम घबड़ा जाते हैं। किन्तु सत्य यह है कि ऊँचे प्रकार के तथ्य 'अध्ययन के सुबोध क्षेत्र' इतिहास की तुलनात्मक इकाइयाँ वैज्ञानिक तकनीक द्वारा अध्ययन करने के लिए और विधियो को बनाने और स्पष्ट करने के लिए बहुत कम है। फिर भी अपने लिए खतरा उठाकर भी हम इस प्रकार के अध्ययन का साहस करते है और हम जिस परिणाम पर पहुँचे हैं वह आगे इस पुस्तक मे मिलेगा।

२

सभ्यताओं की उत्पत्ति

४. समस्या और उसका न सुलझाना

(१) समस्या का रूप

जब हमारे सामने यह समस्या आती है कि जो समाज सभ्यता के पथ पर है वे क्यो और कैसे उत्पन्न हो गये तब हम देखते है कि जहाँ तक इन समस्याओ का सम्बन्ध है जिन इक्कीस समाजो का हमने वर्णन किया है उनके दो वर्ग है । इनमें से पन्द्रह के पूर्वज एक ही जाति के है । इनमे से कुछ का सम्बन्ध तो इतना निकट है कि उनके अलग व्यक्तित्व की बात केवल विवाद का विषय हो सकता है । कुछ का सम्बन्ध इतना ढीला-ढाला है कि उसे सम्बन्ध कहना बहुत ठीक न होगा । किन्तु इस प्रश्न को छोडिए । ये पन्द्रह समाज कम या बेश उन छ समाजो से अलग है जो हमारे विचार से सीधे आदिम जीवन से निकले है । सम्प्रति हम इन्ही के सम्बन्ध मे विचार करेंगे । वे है—मिस्री, सुमेरी, मिनोई, चीनी, माया और एडियाई (एडीज) ।

आदिम तथा विकसित समाजो मे क्या अन्तर है ? यह अन्तर इस बात मे नही है कि उनमे सस्थाएँ है या उनका अभाव है । क्योकि सस्थाएँ व्यक्तियो के अवैयक्तिक सम्बन्धो की माध्यम है । और सभी समाजों मे उनका अस्तित्व है । व्यक्तियो का जो आपसी सीधा सम्बन्ध होता है उसका दायरा छोटा होता है और छोटे से छोटे आदिम समाज का विस्तार उससे बडा होता है । सस्थाएँ सारे समाज के वशो (जीनस) मे पायी जाती है । इसलिए समाज की दोनो जातियो (स्पीसीज) में समान रूप से वे मौजूद है । आदिम समाजो की भी अपनी सस्थाएँ है—जैसे कृषि सम्बन्धी वार्षिक धार्मिक पूजा, टोटेमवाद[1] और विजातीय विवाह (एक्समेगेमी), निषेध, संस्कार और अवस्था के अनुसार वर्ग-विभाजन (एज-क्लासेस), विशेष वय तक दोनो सेक्सो को अलग-अलग सामुदायिक सघटनो मे रखना इस प्रकार की कितनी ही सस्थाएँ है जिनकी कार्य-प्रणाली उतनी ही विस्तृत और सूक्ष्म है जैसी सभ्य समाजो मे ।

सभ्य समाजो और आदिम समाजों का अन्तर श्रम विभाजन के आधार पर भी नही माना जा सकता क्योकि आदिम समाजो के जीवन मे भी श्रम विभाजन के अकुर पाये जाते है । राजा, जादूगर, लोहार, गायक सभी का अपना-अपना विशेष स्थान है । यद्यपि हेलेनी आख्यान का लोहार 'हिफीस्टस' लँगडा है, और हेलेनी कथा का कवि होमर अन्धा है । इससे यह ध्वनि निकली है कि आदिम समाज के विशेषज्ञ असामान्य लोग होते थे जिनमे सब कार्य करने की क्षमता नही होती थी, जो हरफन मौला नही होते थे । सभ्य तथा आदिम समाजो का अन्तर यह है कि उनकी अनुकरण की शक्ति किस दिशा मे है । अनुकरण सामाजिक जीवन का विशेष गुण है । सभी सामाजिक कार्यो मे आदिम समाजो मे भी यह क्रिया हमे देखने को मिलती है । आज की

१. गणचिह्नवाद । उत्तर अमरीका के प्राचीन एंडियनों में प्रतीकों की पूजा ।

फिल्म तारिकाओ से लेकर पहले की साधारण महिलाओ तक मे यह बात पायी जाती है। किन्तु दोनों समाजों में इनकी दिशाएँ भिन्न हैं। जितनी हमे जानकारी है उसके अनुसार अनुकरण की दिशा पहले की पीढ़ी की ओर तथा मरे हुए पूर्वजो की ओर होती है जो दिखाई तो नही देते, किन्तु उनकी अनुभूति होती रहती है और जिनका प्रभाव जीवित बुजुर्गों पर पड़ता है। ऐसे समाज में जहाँ अनुकरण पीछ की ओर और भूतकाल की ओर होता है उसमे रूढि आचार का शासन रहता है और समाज गतिहीन रहता है। इसके विपरीत जो समाज सभ्यता की ओर बढ रहे है उनमे अनुकरण की प्रवृत्ति समाज के सर्जनशील व्यक्तियो की ओर होती है जिनके पीछे बहुत-से लोग चला करते है क्योकि वे अगुआ होते है। ऐसे समाज मे, जैसा कि वाल्टर बेजहाट ने अपनी पुस्तक 'फिजिक्स एण्ड पोलिटिक्स' मे लिखा है 'रूढियो की रोटी (केक)' तोड़ दी जाती है और समाज परिवर्तन तथा विकास की ओर गतिशील रहता है।

किन्तु यदि हम अपने से यह सवाल करे कि यह अन्तर आदिम तथा सभ्य समाजों के बीच स्थायी और मौलिक है तो हमारा उत्तर होगा, नही। क्योकि आदिम समाजो की अवस्था हमे गतिहीन इसलिए मालूम पडती है कि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान हमे उनके इतिहास की अन्तिमअ वस्था से प्राप्त होता है। यद्यपि प्रयत्क्ष ज्ञान नही है, फिर भी तर्क से यह पता चलता है कि आदिम समाजो मे भी ऐसा समय अवश्य रहा होगा जब उनकी गति तीव्र रही होगी जितनी किसी सभ्य समाज की अब तक नही हुई। हमने पहले कहा है कि आदिम समाज उतना ही पुराना है जितनी मनुष्य जाति, मगर हमे कहना चाहिए था कि वह उससे भी पुराना है। मनुष्य के अतिरिक्त और जो विकसित स्तनधारी जीव है उनमे भी एक प्रकार का सामाजिक और सस्थात्मक जीवन होता है और यह स्पष्ट है कि मनुष्य बिना सामाजिक वातावरण के मानव नही बन सकता था। जिन परिस्थियो मे अव मानव (सब-मैन) से मान मे परिवर्तन हुआ उसका कोई आलेखन हमारे पास नही है। आदिम समाज की छत्रछाया मे जो परिवर्तन हुआ वह महान् था और विकास मे बहुत बडा कदम था। सभ्यता की छत्रछाया मे अभी तक ऐसी कोई उन्नति नही हुई है।

प्रत्यक्ष ज्ञान से आदिम समाजों को जो हमने पाया है उसकी तुलना ऐसे लोगो से की जा सकती है जो पहाड के एक कगार पर चुपचाप पडे हुए है और उस कगार के नीचे खड्डा है और ऊपर चट्टान है। सभ्यता की तुलना इन पडे हुए लोगो के उन साथियो से की जा सकती है जो अभी उठ खडे हुए है और ऊपर चट्टान की ओर चढना आरम्भ कर रहे है और हम लोग दर्शक है जो अभी-अभी आये हैं, जिनकी दृष्टि की सीमा कगार तथा ऊपर वाली चट्टान के निचले भाग तक सीमित है और जो इन्हे भिन्न-भिन्न स्थितियो में देख रहे हैं। एकाएक हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि चढने वाले पहलवान हैं और जो पड़े हुए है उनके अंग लकवा से शिथिल है, किन्तु अधिक सोचने पर हमें अपना निर्णय रोक लेना अधिक बुद्धिमत्ता होगी।

सच पूछिए तो जो लोग पड़े हुए है वह लकवा के रोगी नही हो सकते। कगार पर वह पैदा नही हुए होगे और खड्डे से इतनी ऊपर स्वयं आये होगे, कोई दूसरा उन्हे लाया न होगा। उनके दूसरे साथी जो अभी चढ़ रहे है उन्होने अभी इस कगार को छोडा है और ऊपर की चट्टान की ओर जा रहे है। ऊपर का कगार दिखाई नही दे रहा है. इसलिए हम नही कह सकते कि वह कितना ऊँचा है और उस तक चढ़ाई कितनी कठिन होगी। हम इतना जानते हैं कि दूसरे कगार तक पहुँचे बिना न वे ठहर सकते है, न आराम कर सकते हैं। चाहे जहाँ हो वहाँ पहुँचना

होगा। हम प्रत्येक चढ़ने वाले की शक्ति, कौशल और साहस जान भी ले तब भी हम यह नहीं कह सकते कि ऊपर के कगार पर, जहाँ तक पहुँचने की चेष्टा वे कर रहे हैं, सब पहुँच जायेंगे। हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उनमें से कुछ कभी नही पहुँचेंगे। हम यह कह सकते है कि एक-एक व्यक्ति जो परिश्रम से चढ रहा है उसकी दूनी संख्या (हमारी नष्ट सभ्यताए) थक कर और हार कर नीचे के कगार पर गिर पडी है।

अभी हम जिस बात की खोज कर रहे थे उसमें हमें सफलता नही मिली कि आदिम समाजो और सभ्य समाजो में स्थायी तथा मौलिक अन्तर क्या है, किन्तु हमे इस बात का कुछ आभास मिला कि सभ्यताओ की उत्पत्ति तथा प्रकृति क्या है। यही हमारे अनुसंधान का मुख्य विषय है। आदिम समाज का सभ्य समाज में कैसे परिवर्तन हुआ। यहाँ से आरम्भ करते हुए हमको पता चला कि यह परिवर्तन इस बात मे है कि गतिहीन अवस्था से गतिशील अवस्था मे समाज पहुँचा। हम देखेंगे कि यही सिद्धान्त सभ्यताओं के विकास मे भी लागू होता है। अर्थात् आन्तरिक सर्वहारा वर्ग उन पहले की सभ्यताओं के शक्तिशाली अल्पसख्यको से अलग हो गया जिनकी सर्जनात्मक शक्ति समाप्त हो गयी थी। ये शक्तिशाली अल्पसख्यक वर्ग हमारी परिभाषा के अनुसार गतिहीन हैं। क्योंकि यह कहना कि उन्नतिशील सभ्यता की सर्जनशील अल्पसंख्या पतित या भ्रष्ट होकर छिन्न-भिन्न होती हुई सभ्यता की शक्तिशाली अल्पसख्या हो गयी का अर्थ यही है कि जिस समाज का वर्णन हो रहा है वह गतिशील से गतिहीन अवस्था मे आ गयी। इस गतिहीन अवस्था से सर्वहारा वर्ग का अलग होना गतिशील प्रतिक्रिया है। इस दृष्टि से हम देखेगे कि शक्तिशाली अल्पसख्या से सर्वहारा का पृथक् होना एक नयी सभ्यता की उत्पत्ति है जिसका परिवर्तन गतिहीनता से गतिशीलता की ओर होता है। यह उसी प्रकार है जैसे आदिम समाज से सभ्य समाज मे परिवर्तन होता है। चाहे सभ्यताएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हो या न हो, सबकी उत्पत्ति समान है। और जेनरल स्मटस के शब्दो मे 'मानवता एक बार फिर गतिमान् है।'

स्थैतिकता और गतिशीलता, चाल, विश्राम और फिर चलना यह लयपूर्ण अदल-बदल विश्व की मौलिक प्रकृति है, ससार के अनेक विद्वानो ने अनेक समय मे ऐसा कहा है। चीनी समाज के विद्वानो ने अपनी सुन्दर भाषा मे कहा है कि यह अदल-बदल 'यिन' और 'याग' का है। 'यिन' गतिहीन और 'याग' गतिशील। चीनी लिपि मे यिन इस प्रकार लिखा जाता है कि अक्षर के बीच काले बादल सूर्य के चारो ओर फैल कर उसे ढक रहे है और 'यान' इस प्रकार लिखा जाता है कि निर्मल सूर्य से चारो ओर किरणें फैल रही हैं। चीनी वर्णमाला में 'यिन' पहले आता है। हम उसमे देखते है कि तीन लाख वर्ष पहले आदिम मनुष्य उस कगार पर पहुँच गया है और याग सभ्यता मे प्रवेश करने के पहले मनुष्य इस काल के अट्ठानबे प्रतिशत समय तक आराम करता रहा। आगे हमे उस स्पष्ट तत्त्व को खोजना है जिससे मानव समाज मे फिर गति आयी और पहले हम उन दो राहो में प्रवेश करेंगे जो बन्द गली निकलेंगी।

(२) प्रजाति (रेस)

यह स्पष्ट और निश्चित तथ्य है कि 'यिन' के रूप में, जो मनुष्य का आदिम समाज था, वह गत ६००० वर्षों में यांग के सभ्य समाज के ऊपर चट्टान पर चढ़ा तो उसके कारण यही हो सकते हैं कि जिन लोगों में गति हुई उन मनुष्यों में विशेष गुण थे अथवा जिस वातावरण में उन्होंने उन्नति की उसमें कोई विशेषता थी अथवा दोनों के घात-प्रतिघात में कोई विशेष बात थी। हम पहले

यह विचार करेंगे कि जिन बातों की खोज हम कर रहे हैं वे इनमें से किसी में मिल जायें। क्या यह सम्भव है कि सभ्यता की उत्पत्ति इस कारण हुई हो कि किसी जाति या प्रजातियो मे विशेष गुण रहे हों ?

प्रजाति मानव समाज के उस विशेष वर्ग को कहते है जिसमे कोई विशेष गुण हो और वह वंशानुगत हो। प्रजाति के जिन गुणों की हम कल्पना करते हैं वे मानसिक अथवा आत्मिक हैं और वे कुछ समाजो में जन्मजात होते हैं। किन्तु मनोविज्ञान, और विशेषतः सामाजिक मनोविज्ञान अभी बाल्यकाल में है। जब हम सभ्यता की प्रगति में प्रजाति को एक कारण मानते हैं तब हम यह स्वीकार करते हैं कि विशेष मानसिक गुणो और भौतिक विशेषताओ मे परस्पर सम्बन्ध है।

प्रजाति सिद्धान्त के पश्चिमी देश के हिमायती जिस भौतिक गुण पर साधारणतः जोर दिया करते हैं वह रंग है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आत्मिक और मानसिक श्रेष्ठता और खाल का रंगीन न होना एक दूसरे से सम्बन्धित है। यद्यपि जीवन-विज्ञान की दृष्टि से ऐसा सम्भव नही मालूम होता। सभ्यता के प्रजाति वाले सिद्धान्तों में सबसे प्रसिद्ध वह है जिसमे सफेद चमडे वाले, पीले बाल वाले (जनथ्रोटिकस) नीली-भूरी आँख वाले (ग्लाकोपियन) और लम्बे सिर वाले (डालिकोसिफ़ासिस) मनुष्यो को सबसे ऊँचा माना जाता है जिन्हे कुछ लोग नार्डिक मानव कहते हैं और जिन्हे निट्शे ने 'स्वर्णकेश वाला पशु' (द ब्लाड बीस्ट) कहा है। ट्यूटानिक बाजार मे इस मूर्ति का मूल्य जाँचना उचित होगा।

सबसे पहले नार्डिक मानव की उच्चता फ्रास के एक रईस काम्टे डि गोबिनो ने उन्नीसवी शती के आरम्भ में प्रकट की थी। इस 'स्वर्णकेश वाले पशु' की उच्चता फ्रांस की क्रान्ति के समय के विवाद की एक घटना के कारण सामने आयी थी। जब फ्रांस के रईसों की जागीरे छीनी जा रही थी और उन्हे देश से निकाला जा रहा था या फाँसी दी जा रही थी तब क्रान्तिकारी दल के पण्डितों को तब तक चैन नही मिलता था जब तक वे उस समय की घटनाओं को शास्त्रीय रूप नही दे देते थे। उन्होने घोषणा की कि 'गाल' लोग जो चौदह शतियो तक पराधीनता में रहे है अब अपने फ्रांस विजेताओं को राइन के पीछे अंधकार में खदेड़ रहे हैं जहाँ से वे जनरेला के समय आये थे और इन बर्बरो के जबरदस्ती अधिकार के बावजूद गाल की धरती पर अपना अधिकार जमा रहे हैं जो सदा से अपनी ही रही।

इस ऊलजलूल बात का गोबिनो ने और भी अधिक ऊलजलूल उत्तर दिया। उसने कहा "मै आप की बात स्वीकार करता हूँ। मै यह मान लेता हूँ कि फ्रांस की जनता गआल की वंशज है और फ्रास के रईस फ्राको के वशज हैं और दोनो के शारीरिक तथा मानसिक विशेषताओ में सम्बन्ध भी है। तो क्या आप सचमुच यह समझते है कि गआल सभ्यता के प्रतीक है और फ्राक बर्बरता के ? गआल की सभ्यता कहाँ से आयी ? रोम से। रोम कैसे महान् बना ? उसी नार्डिक रक्त के आरम्भ से जिस फ्राकी रक्त ने हमारे शरीर मे प्रवेश किया। प्रारम्भिक रोमन लोग और उसी प्रकार प्रारम्भिक यूनानी—वे एकीयन जिनका वर्णन होमर ने किया है—वे पीले बाल वाले विजेता थे जो उत्तर के शक्तिशाली लोगों के वंशज थे और जिन्होंने दुर्बल कर देने वाले मध्य सागर के किनारे के कमजोर निवासियों पर अपना प्रभुत्व जमाया। कुछ दिनों के बाद उनके रक्त में मिश्रण हुआ और उनकी नस्ल दुर्बल हो गयी और उनकी शक्ति और वैभव

का ह्रास हो गया। फिर वह समय आया कि उत्तर से पीले बाल वाले विजेताओं का दल उनकी रक्षा के लिए आया और उसने सभ्यता को फिर से जीवित किया। ये फ्रांक लोग थे।"

यह उन तथ्यों की शृंखलाओ का मजेदार वर्णन है जिसका हमने पहले हेलेनी और फिर पश्चिमी सभ्यता की उत्पत्ति का दूसरे ढंग से किया है। उसका चतुराई से भरा राजनीतिक मजाक इसलिए जँचा कि उस समय एक खोज हुई थी और गोबिनो ने उससे लाभ उठाया। खोज यह थी कि सारे यूरोप की सभी जीवित भाषाएँ तथा ग्रीक और लैटिन और ईरान और उत्तरी भारत की सभी जीवित भाषाएँ तथा क्लासिकी ईरानी और क्लासिकी संस्कृत एक दूसरे से सम्बन्धित है और एक बड़े भाषा-परिवार के सब अंग हैं। यह ठीक ही परिणाम निकाला गया था कि आरम्भ मे कोई एक मौलिक भाषा रही होगी जैसे 'आर्य' या 'इण्डोयूरोपियन' और उसी भाषा से सब भाषाएँ निकली होंगी। इसका गलत परिणाम यह निकाला गया कि जिन लोगों में ये भाषाएँ प्रचलित थीं उनका भौतिक सम्बन्ध भी उतना ही है जितना इन भाषाओं का और वे लोग किसी आदि 'आर्य' अथवा 'इण्डो यूरोपियन' जाति के वंशज है जो अपने आदि निवास स्थान से पूर्व पश्चिम, उत्तर-दक्खिन विजय करते हुए फैल गये और यह जाति वह थी जिसने जरथुष्ट और बुद्ध जैसी धार्मिक प्रतिभाएँ उत्पन्न की, और जिसने यूनान की कलात्मक प्रतिभाओं को तथा रोम की राजनीतिक प्रतिभाओ को जन्म दिया और जिसने हम लोगो के समान महान् जातियो को जन्म दिया। इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि मानव सभ्यता की प्राय सभी उपलब्धियाँ इसी जाति के द्वारा हुई।

इस मनमौजी फ्रासीसी ने जो खरहा दौडाया उससे जर्मनो की मजबूत टाँगे बाजी मार ले गयी। जर्मन शब्द-शास्त्रियो ने इण्डो-यूरोपियन शब्द के स्थान पर इण्डो-जर्मन शब्द बैठाया और इस कल्पित जाति का निवास प्रशा का राज्य-क्षेत्र निर्धारित किया। १९१४–१८ के युद्ध के कुछ पहले एक अग्रेज हाउस्टन स्टुवर्ट चैम्बरलेन ने जिनका प्रेम जर्मनी से हो गया था एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था—'द फाउण्डेशन्स आव द नाइनटीन्थ सेचुरी' जिसमे इण्डो-जर्मन लोगो मे उसने दान्ते और ईसामसीह का भी नाम रखा।

अमेरिकनों ने भी इस 'नार्डिक मानव' का उपयोग किया। १९१४ के पहले पच्चीस वर्षों में बहुत-से दक्षिण यूरोप निवासी अमेरिका मे प्रवास कर गये। कुछ समय मैडिसन ग्राट तथा लाथाप स्टाडर्ड ऐसे लेखकों ने कहा कि इस प्रकार का प्रवास रोकना चाहिए जिससे सामाजिक मान्यताओं की शुद्धता अक्षुण्ण रहे। वे यह शुद्धता अमरीकी सामाजिक मान्यताओ की नही, बल्कि नार्डिक जाति की अमरीकी शाखा की चाहते थे।

ब्रिटेन का इसरायलवाद का सिद्धान्त भी इसी प्रकार का था। केवल भाषा दूसरी थी और इसमें काल्पनिक इतिहास का एक विचित्र धर्म-दर्शन से समर्थन किया गया था।

विचित्र बात यह है कि हमारी सभ्यता के प्रजातिवाद के प्रचारक इस बात पर जोर देते हैं कि गोरा चमडा आध्यात्मिक महत्ता का चिह्न है और दूसरी प्रजातियों से यूरोपीय प्रजाति महान् है तथा नार्डिक प्रजाति दूसरी यूरोपीय प्रजातियों से महान् है, किन्तु जापानी दूसरा भौतिक प्रमाण उपस्थित करते हैं। जापानियो के शरीर पर बाल नही होते उनके पडोसी उत्तरी द्वीप में एक आदिम जाति रहती है जो दूसरे प्रकार की है। वह प्राय सामान्य यूरोपियनों के समान होती है जिन्हें 'बाल वाले ऐनू' कहते हैं। इसलिए स्वभावत· बाल का न होना वे आध्यात्मिक

महत्ता का चिह्न मानते हैं । यद्यपि उनका दावा भी उतना ही निराधार है जितना हमारा गोरे चमड़े वाला दावा फिर भी, हम कह सकते हैं कि ऊपरी ढग से उनका दावा ठीक जान पडता है क्योकि जहाँ तक बाल का सम्बन्ध है बिना बाल वाला आदमी अपने भाई बन्दरो से बहुत दूर है ।

मानव-जाति के इतिहासकारो ने (एथनोलोजिस्ट) सफेद रंग के मनुष्यो को शारीरिक गुणो के अनुसार विभाजित किया है । ये है, जैसे लम्बे सिर या गोल सिर वाले, गोरे चमडे या काले चमडे वाले तथा इसी प्रकार और । उन्होने सफेद 'प्रजातियो' के तीन प्रकार बताये है, नार्डिक, आल्पीय तथा मध्यसागरी । इस कथा का जो भी मूल्य हो हम इस बात पर विचार करेगे कि इन जातियो ने सभ्यता के निर्माण मे क्या योगदान किया है । नार्डिक प्रजातियो ने चार या सम्भवत पाँच सभ्यताओ का निर्माण किया है । वे हैं भारतीय (इडिक), हेलेनी, पश्चिमी, रूसी परम्परावादी ईसाई और सम्भवतः हिताइत । आल्पीय जातियो ने सात सभ्याताओ का अथवा सम्भवत. नौ का निर्माण किया है—सुमेरी, हिताइत, हेलेनी, पश्चिमी परम्परावादी ईसाई तथा उसकी रूस की दोनो शाखाएँ, ईरानी और सम्भवत. मिस्री और मिनोई । मध्य-सागरी प्रजाति ने दस सभ्यताओं का निर्माण किया है—मिस्री, सुमेरी, मिनोई, हेलेनी, पश्चिमी परम्परावादी ईसाई समाज का मूल रूप, ईरानी, अरबी और बैबिलोनी । मानव जाति के भूरे वर्ग ने (ब्राउन)—जिसमे भारत की द्रविड और इण्डोनेसिया की मलय प्रजातियाँ शामिल है—दो सभ्यताओ का निर्माण किया है—भारतीय और हिन्दू । पीली प्रजाति ने तीन सभ्यताओ का निर्माण किया है—चीनी और सुदूर पूर्व की चीनी और जापानी सभ्याताएँ । अमरीका की रक्त वर्ण की प्रजाति ने चार अमरीकी सभ्यताओं का निर्माण किया है । केवल काली जातियो ने अभी तक किसी सभ्यता का निर्माण नही किया है । सफेद प्रजातियाँ इस विषय में अगुआ है, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि बहुत-सी सफेद जातियाँ ऐसी है जिन्होने काली जातियो के समान ही सभ्यता के निर्माण मे कोई योगदान नही किया है । यह जो विभाजन किया गया है उससे यदि कोई तथ्य की बात निकलती है तो यह कि हमारी आधी सभ्यताओ के निर्माण मे एक से अधिक प्रजातियो का हाथ है । पश्चिमी और हेलेनी प्रजातियो मे प्रत्येक ने तीन-तीन सभ्यताओ का निर्माण किया है । यदि सफेद प्रजाति के नार्डिक, आल्पीय और मध्यसागरी उपजातियो के समान पीली, भूरी और लाल प्रजातियो का भी उप-जातियो मे विभाजन किया जाय तो हमे पता लगेगा कि इन्होने भी एक से अधिक सभ्यताओ का निर्माण किया है । इन उप-विभाजनो का क्या महत्त्व है अथवा ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से कभी वे विशिष्ट प्रजातियाँ थी, कहा नही जा सकता । और यह सारा विषय अन्धकार मे है ।

किन्तु पर्याप्त रूप से कहा जा चुका है जिससे यह सिद्ध होता है कि कोई एक विशिष्ट प्रजाति थी जिसके द्वारा 'यिन' से 'याग' तक अर्थात् गतिहीनता से गतिशीलता की ओर छ हजार वर्ष पहले सभ्यता का विकास ससार के एक भाग से दूसरे भाग की ओर हुआ है ।

(३) वातावरण

विगत चार शतियो में हमारे पश्चिमी समाज का जैसा विस्तार हुआ है उसके कारण आधुनिक पश्चिमी विद्वान् इतिहास में प्रजातीय तथ्य को बहुत अधिक महत्त्व देने लगे है । इस विस्तार के कारण पश्चिम के लोग ससार की ऐसी प्रजातियो के सम्पर्क मे आये है जो इनसे सस्कृति मे ही नही, शारीरिक गठन मे भी भिन्न थे । यह सम्पर्क बहुधा अमित्रता का था ।

ऐसे सम्पर्कों का परिणाम यह हुआ कि शारीरिक उत्पत्ति के आधार पर ऊँची और नीची प्रजातियों की भावना उत्पन्न हुई। उन्नीसवी शती में जब चार्ल्स डारविन तथा और वैज्ञानिक अन्वेषको न खोज की तब उसके आधार पर पश्चिम के लोगो में जीव-विज्ञान के अनुसार जातियों के बड़े-छोटे होने की भावना जाग उठी थी।

प्राचीन यूनानी भी व्यापार के लिए और उपनिवेश बनाने के लिए ससार मे फैले, किन्तु उस समय का संसार छोटा था। उसमे संस्कृतियाँ तो अधिक थी, किन्तु शारीरिक दृष्टि से प्रजातियाँ इतनी अधिक नही थी। यूनानियो की दृष्टि में (जैसे हेरोडोटस) मिस्री और सीरियाइयों में बहुत अन्तर रहा हो और उनके आचार-विचार भिन्न रहे हो, किन्तु शारीरिक दृष्टि से वे यूनानियों से उतने भिन्न नही थे जितना पश्चिम अफ्रीका का नेग्रो और अमरीका का रक्त वर्ण का मनुष्य यूरोपियनो से है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि यूनानियो ने जो सास्कृतिक अन्तर इन लोगो में पाया उसका आधार शारीरिक और भौतिक उत्पत्ति अर्थात् जातिगत आधार नही माना। उन्होने इस अन्तर का आधार भौगोलिक आवास, धरती और जलवायु का समझा।[1]

एक पुस्तक है 'इन्फ्लुएन्सेज आव एटमास्फियर, वाटर एण्ड सिचुऐशन', जो ईसा के पूर्व पाँचवीं शती मे लिखी गयी थी और जो बोकराती (हिपोक्रिटीज) परम्परा की औषधियो की पुस्तको के सग्रह में है। इससे इस विषय पर यूनानियो का मत व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए, उसमें हम पढ़ते हैं 'मानव आकृति-विज्ञान का इस प्रकार विभाजन हो सकता है—'जगल' और जल से भरा हुआ पहाड़ी वर्ग, जलहीन और क्षीण मिट्टी के प्रदेश के रहने वाले, दलदली घास वाले क्षेत्र के रहने वाले, और उस प्रदेश के रहनेवाले जहाँ जंगल नही है और पानी का निकास अच्छा है. . . . । उस प्रदेश के रहने वाले जो शैलमय (राकी) धरती और ऊँचाई पर है, जहाँ पानी भी खूब है, और जहाँ जलवायु के परिवर्तन का अन्तर अधिक है, बड़े डील-डौल वाले होते हैं। उनका शरीर कष्टो को सहने वाला और साहसी कार्य के उपयुक्त होता है . . । उन देशो के रहने वाले जो निचला होता है जहाँ दलदली घास होती है, उमस होती है, जहाँ ठण्डी के बजाय गर्म हवा अधिक बहती है, उष्ण पानी पीने को मिलता है, उतने ऊँचे और पतले दुबले नही होते बल्कि मोटे, गठे, ठिगने और काले बाल वाले होते है और उनका रग भी काला होता है और उनके शरीर में बलगम कम और पित अधिक होता है। साहस और सहनशीलता उनके स्वभाव में उतनी नही होती, किन्तु सस्थाओ के सहयोग से उनमे यह गुण उत्पन्न हो सकते हैं. . । अधिक ऊँचाई के रहने वालों का, जहाँ तेज हवाएँ चलती है, जल की अधिकता है और ऊँचाई-नीचाई है गठन भारी भरकम होती है। उनमे व्यक्तित्व (परसनाल्टी) की कमी होती है और उनके चरित्र में कायरता और भीरुता होती है . . । अधिकाश अवस्थाओ मे मनुष्य का शरीर और उसका चरित्र देश की भौतिक परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते है।'[2]

१. इस सम्बन्ध में बर्नर्ड शा यूनानियों से सहमत है। जिन्होंने 'जान बुल्स अदर आइलड' की भूमिका पढ़ी है उन्हें याद होगा कि 'केल्टिक जाति' की कल्पना को वे तिरस्कार से टाल देते हैं और उनका कहना है कि अंग्रेज और आइरिश में जो अन्तर है वह दोनों द्वीपों की आबोहवा के कारण है।

२. हिपोक्रेटीज : इन्फ्लुएन्सेज आव एटमास्फियर, वाटर एण्ड सिचुएशन—अनुवादक, ए० जे० ट्वायनबी, अध्याय १३ और २४ : ग्रीक हिस्टारिकल थाट फ्राम होमर टु दि एज आव हेराक्लियस—पृ० १६७–८।

किन्तु 'वातावरण का सिद्धान्त' का हेलेनी उदाहरण दो प्रदेशो की तुलना से लिया गया था । एक नील की निचली घाटी के जलवायु का प्रभाव मिस्रियो के शरीर, चरित्र और संस्थाओं पर, दूसरा यूरेशियाई स्टेप के जलवायु का प्रभाव सीथियनो के शरीर, चरित्र और संस्थाओं पर । मानव समाज के विभिन्न भागों मे जो मानसिक (बौद्धिक तथा आत्मिक) अन्तर पाया गया है उनके सम्बन्ध में यह बताने की चेष्टा की जाती है कि उनके कारण प्रजाति सिद्धान्त और वातावरण सिद्धान्त दोनो है । यह मान लिया जाता है कि यह मानसिक अन्तर प्रकृति के भौतिक अन्तर से स्थायी रूप से कारण और कार्य की भाँति सम्बन्धित है । मनुष्य के शरीर की गठन के अनुसार जाति-सिद्धान्त बनाया गया और विभिन्न जलवायु तथा भौगोलिक परिस्थितियो में जो समाज रहते है उनके अनुसार वातावरण सिद्धान्त बनाया गया । दोनो सिद्धान्तों का सार दो परिवर्तन-शील सम्बन्धो पर बनाया गया है । एक मे शरीर और चरित्र और दूसरे मे वातावरण और चरित्र । यदि इन सिद्धान्तो को स्थापित करना है तो यह प्रमाणित करना होगा कि यह सम्बन्ध स्थायी और अचल है । हमने ऊपर देखा है कि इस परीक्षा मे प्रजाति-सिद्धान्त नही ठहरता और अब हम देखेगे कि वातावरण-सिद्धान्त यद्यपि उतना असगत नही है, फिर भी प्रमाणित न हो सकेगा । हेलेनी सिद्धान्त की परीक्षा हम दो उदाहरणो द्वारा यूरेशियाई स्टेप तथा नील घाटी से करेगे । हम पृथ्वी पर और भी क्षेत्र ढूँढ़ेगे जो जलवायु तथा भौगोलिक दृष्टि से इनके समान है । यदि हम यह देखेगे कि वहाँ की जनता का चरित्र और उनकी सस्थाएँ भी सीथियन तथा मिस्री लोगो के समान है तो वातावरण-सिद्धान्त प्रमाणित होगा, नही तो वह कट जायेगा ।

पहले हम यूरेशियाई स्टेप को ले । यह वह विस्तृत क्षेत्र है जिसके केवल दक्षिणी-पश्चिमी भाग से यूनानी परिचित थे । इसके साथ हम अफ्रेशिया (एफ्रेशियन) स्टेप का मिलान करे जो अरब से उत्तरी अफ्रीका तक फैला हुआ है । एशियाई और अफ्रेशियाई समानता के साथ-साथ क्या वे मानव समाज भी समान हैं जो इन दोनो क्षेत्रो मे पैदा हुए है ? उत्तर मिलता है—हाँ । दोनो क्षेत्रो मे खानाबदोश समाज उत्पन्न हुए । दोनो क्षेत्रों मे जो समानताएँ और अन्तर है उसी के समान उनमे समाजो मे भी समानताएँ और अन्तर है । अन्तर, जैसे पशुओं के पालने मे है । अधिक परीक्षा मे यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । क्योकि ससार के इस प्रकार के दूसरे प्रदेशो मे जैसे उत्तरी अमरीका के 'प्रेयरी', वेनेजुअला के 'लान्तो', अरजेटिना के 'पम्पा' और आस्ट्रेलिया की गोचर भूमि मे खानाबदोश समाजो का वातावरण है, किन्तु वहाँ उनके निजी खानाबदोश समाज नही उत्पन्न हुए । इन क्षेत्रों की समता मे सन्देह नही क्योकि आधुनिक काल मे पश्चिमी समाज ने अपने उद्यम से इससे लाभ उठाया है । पश्चिमी पशुपालको (स्टाक-मैन) के अग्रगामियो ने, जैसे उत्तरी अमरीका के ग्वाले (काउ-ब्वायज़) दक्षिणी अमरीका के 'गाचो' (अमरीका के मूलवासी और यूरोपियनो की सम्मिलित नस्ल) और आस्ट्रेलिया के पशुपालक (कैट्लमैन), इन निर्जन प्रदेशो पर कई पीढ़ियो तक दखल जामये रखा जब नये हल और नयी चक्कियाँ नहीं चली थी । सीथियनो, अरबों और तातारो की भाँति उनकी ओर भी मानव समाज आकृष्ट हुआ था । अमरीकी और आस्ट्रेलियाई स्टेपो मे अवश्य ही शक्तिशाली क्षमता होती, यदि कुछ ही पीढियों के लिए समाज के इन अगुओं को, जिनके पास कोई खानाबदोशी परम्परा नही थी और जो आरम्भ से ही खेती और निर्माण (मैनुफैक्चर) के सहारे जीवन-यापन करते थे, खानाबदोश बना लेते । यह भी ध्यान देने योग्य है कि पश्चिमी गवेषको (एक्सप्लोरर)

को इन प्रदेशों में जो लोग मिले वे इन खानाबदोशो के स्वर्ग मे खानाबदोशी का जीवन नही बिताते थे, बल्कि शिकार की वृत्ति से जीवन-निर्वाह करते थे ।

यदि हम नील नदी की निचली धारा की भी इसी प्रकार की परीक्षा कर दे तो यही परिणाम होगा ।

अफ्रेशियाई भू-दृश्य (लैंडस्केप) मे निचली नील की घाटी 'विडबना है, । मिस्र का जलवायु उतनी ही गर्म है जितना उसके चारो ओर के विशाल क्षेत्रो का । केवल एक सुन्दर अपवाद है । इस महान् नदी द्वारा लाया हुआ अक्षय जल भण्डार और कछारी मिट्टी (अल्यूवियम) । यह नदी स्टेप के बाहर ले जाती है जहाँ अपार वर्षा होती है । मिस्री सभ्यता के निर्माताओ ने इस सम्पत्ति को ऐसे समाज के निर्माण मे उपयोग किया जो इस घाटी की दोनो ओर के खानाबदोशियो से भिन्न थी । तो क्या मिस्र मे नील के कारण जो विशेष वातावरण बन गया है उसी के प्रभाव से मिस्री सभ्यता की उत्पत्ति हुई है । इस दावे को प्रमाणित करने के लिए हमें यह देखना होगा कि जहाँ नील के प्रदेश मे ऐसा वातावरण है वहाँ-वहाँ ऐसी ही सभ्यता का निर्माण हुआ है ।

यह सिद्धान्त पड़ोस के क्षेत्र मे अर्थात् दजला (यूफ्रेटीज) और फरात (टाइग्रिस) की निचली घाटी मे, जहाँ वैसी ही परिस्थितियाँ है, ठीक उतरता है । यहाँ वैसा ही भौतिक वातावरण है और वैसे ही समाज, सुमेरी का विकास हुआ है । किन्तु यह सिद्धान्त उसी प्रकार की किन्तु उससे छोटी जार्डन की घाटी में ठीक नही उतरता । यह घाटी कभी किसी सभ्यता का केन्द्र नही रही है । अगर हमारी यह बात ठीक है कि सिन्ध घाटी की सभ्यता सुमेरी लाये तो यह सिद्धान्त सिन्ध घाटी के लिए भी ठीक नही उतरता । गंगा की निचली घाटी इस परीक्षा मे नही सम्मिलित की जा सकती क्योकि वहाँ का जलवायु बहुत नम और उष्ण है । याग्त्सी और मिसिसिपी की निचली घाटियाँ भी सम्मिलित नही की जा सकती क्योकि वहाँ की आबोहवा बहुत नम और शीतोष्ण है । किन्तु बहुत छिद्रान्वेषी आलोचक भी इस बात से इनकार नही कर सकता कि जो भौगोलिक वातावरण मिस्र और मिसोपोटामियाँ मे है वही यूनाइटेड स्टेट्स की कोलोरेडो नदी की घाटी मे और रायोग्रेण्डे की घाटी मे है । आधुनिक यूरोपीय उपनिवेशियो के हाथो, जिनके पास यूरोपीय साधन थे, अमरीका की इन नदियो द्वारा वही चमत्कार हुए जो नील और फरात मे मिस्री और सुमेरी इन्जीनियरो द्वारा हुए थे । किन्तु यह चमत्कार कोलोरेडो और रायोग्रेण्डे ने उन लोगो को नही दिखाया जिन्होने कही और से पहले से यह चतुराई सीखी नही थी ।

इन प्रमाणो से सिद्ध होता है कि 'नदी वाली' सभ्यता वातावरण के कारण नही उत्पन्न हुई और यदि हम इस बात पर ध्यान दे कि उसी प्रकार के वातावरणो मे एक जगह सभ्यता विकसित हुई और दूसरी जगह नही तो हमारा यह कथन पुष्ट हो जायेगा ।

एण्डियाई सभ्यता ऊँचे पठार पर उत्पन्न हुई । इसकी उपलब्धियाँ अमेजन की तराई के लोगो की उपलब्धियो से भिन्न थी क्योकि ये लोग असभ्य थे । तो क्या पठार इसका कारण है जिससे एण्डियाई सभ्यता अपने असभ्य पडोसियों से आगे बढ़ गयी । इस विचार को ठीक मानने से पहले हमें अफ्रीका के विषुवत् रेखा के निकट के उन अक्षाशो की ओर देखना चाहिए जो पूर्वी अफ्रीका, कागो बेसिन के जगलो की बगल मे है । यहाँ हमको पता चलेगा कि न तो अफ्रीका के पठार पर किसी सभ्यता का विकास हुआ और न पास की नदी के हरे-भरे जगलो मे ।

उसी प्रकार हम देखते हैं कि मिनोई सभ्यता थल से घिरे हुए सागर में कुछ द्वीपो के समूह

में उत्पन्न हुई जहाँ मध्यसागरी जलवायु था। किन्तु उसी प्रकार का वातावरण होते हुए जापान के अन्तर्देशीय सागर मे उस प्रकार की द्वीप वाली सभ्यता नही उत्पन्न हुई। जापान में कभी किसी स्वतन्त्र सभ्यता का जन्म नही हुआ। वहाँ की सभ्यता चीन की सभ्यता द्वारा उत्पन्न हुई है।

कभी-कभी कहा जाता है कि चीन की सभ्यता हागहो की घाटी के कारण उत्पन्न हुई क्योंकि उसी प्रदेश मे इसका जन्म हुआ, किन्तु वही जलवायु, मिट्टी, मैदान और पहाड़ होते हुए डेन्यूब नदी की घाटी में उस प्रकार की सभ्यता नही पैदा हुई।

गाटेमाला तथा ब्रिटिश हाण्ड्युराज मे जहाँ उष्ण कटिबन्धीय वर्षा होती है और जो बहुत हरा-भरा है माया सभ्यता का जन्म हुआ। किन्तु वैसी ही परिस्थिति मे अमेजन तथा कागो नदियों की घाटियो मे किसी सभ्यता का जन्म नही हुआ। यह ठीक है कि ये दोनो नदियाँ विषुवत् रेखा के इधर और उधर बहती है और माया सभ्यता का विकास विषुवत् रेखा के पन्द्रह अश उत्तर हुआ है। अगर हम पन्द्रहवे अक्षाश के साथ-साथ चले तो ससार की दूसरी ओर अंगकोर बाट के खण्डहर मिलेगे जो कम्बोडिया के उष्ण कटिबन्धीय जलवायु और हरियाली के क्षेत्र मे है। अवश्य ही माया के कोपन और इक्सुकन नगरो से इनकी तुलना हो सकती है। किन्तु पुरातत्त्व के प्रमाणो से सिद्ध होता है कि यह सभ्यता कम्बोडिया की नही थी, बल्कि हिन्दू सभ्यता की एक शाखा थी जिसका जन्म भारत मे हुआ।

इस पर और भी विवेचन किया जा सकता है, किन्तु हम समझते है कि इतना कहा जा चुका है कि पाठको को विश्वास हो जायेगा कि अलग-अलग न तो प्रजाति, न तो वातावरण ने गत छ. हजार वर्षो मे ऐसा प्रभाव डाला है कि मानव के गतिहीन आदिम समाज को ऐसी प्रेरणा मिली हो कि सभ्यता के सकटपूर्ण मार्ग की खोज मे वह चला हो। जो भी हो अभी तक जितना देखा गया है उससे न तो प्रजाति न तो वातावरण से यह रहस्य खुलता है कि मनुष्य के इतिहास मे यह परिवर्तन क्यो किसी विशेष प्रदेश मे ही हुआ, बल्कि विशेष युग मे भी हुआ।

५. चुनौती और उसका सामना

(१) पौराणिक संकेत (माइथोलोजिकल क्लू)

अभी तक जो हमने सभ्यता की उत्पत्ति के मूल तत्त्व खोजने का प्रयास किया है उसमे हमने आधुनिक भौतिक विज्ञान की क्लासिकी शैली का प्रयोग किया है। हम अमूर्त भाषा मे विचार कर रहे थे और प्रजाति तथा वातावरण की निर्जीव शक्तियो का प्रयोग कर रहे थे, किन्तु इस प्रणाली से कोई लाभ नही हुआ। हम जरा इस बात पर विचार करे कि हमारी असफलता इस कारण तो नही है कि हमारी प्रणाली में कोई दोष रहा है। विगत काल के मायावी प्रभाव के कारण शायद हम उस भावना के शिकार हो गये जिसे हम असवेदाभास (अ-पैथेटिक फैलेसी) कह सकते है। रसकिन ने हमे चेतावनी दी थी कि हमे निर्जीव पदार्थों को मजीव मानने की कल्पना के 'सवेदाभास' (पैथेटिक फैलेसी) से बचना चाहिए, किन्तु हमारे लिए यह भी इतना ही आवश्यक है कि हम इसकी विपरीत भावना की भूल से भी बचें और ऐतिहासिक विचारो मे उसका प्रयोग न करें। क्योकि इसमे सजीव लोगों का अध्ययन है और यह निर्जीव पदार्थों के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली नही है। अब इस समस्या को हल करने के लिए हमे दूसरे ढग का अनुसरण करना चाहिए जिसे प्लेटो ने बताया है। विज्ञान के सूत्र की ओर से एक क्षण के लिए हम आँखे मूंद ले और अपने कान पुराण की भाषा के लिए खोले।

यह स्पष्ट है कि यदि सभ्यताओं की उत्पत्ति विज्ञानीय तथा वातावरण तत्त्वो के अलग-अलग प्रभाव के कारण नही है तो दोनो की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया उसका कारण होगी। दूसरे शब्दो में जिस तत्त्व को हम खोज रहे है वह एक नही है अनेक है, वह अलग एक सत्ता नही है, बल्कि एक से अधिक का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को चाहे हम दो अमानवीय (इनह्यूमन) शक्तियो का घात-प्रतिघात समझें या दो अतिमानव व्यक्तित्व का। अन्तिम वाली बात पर आइए हम विचार करें। सम्भव है इससे हमे प्रकाश मिले।

दो अतिमानव व्यक्तित्वो के सघर्ष की बुनियाद पर मनुष्य की कल्पना ने कुछ महान् नाटकों की वस्तु (प्लाट) तैयार की है। जेहोवा और सर्प का सघर्ष इजील की पहली पुस्तक (बुक आव जेनेसिस) मे मनुष्य के पतन का कथानक है। इन्ही दोनो विरोधियो के संघर्ष से उन्नतिशील सीरियाई लोगो को एक और वस्तु (प्लाट) मिली जिसके आधार पर नये बाइबिल (न्यू टेस्टामेंट) में मोक्ष (रिडेम्पशन) वाली कथा है। 'जाब के पुस्तक' (बुक आव जाब) का कथा-विन्यास ईश्वर और शैतान की लडाई है। गोएटे के फाउस्ट का कथा-विन्यास ईश्वर और मेफिस्टोफिलीज का संघर्ष है। स्कैंडिनेवियाई 'वोलुस्पा' का कथा-विन्यास ईश्वर और दैत्यो का सघर्ष है और युरिपीडीज के हिपोलिटस की कथा आर्टिमीज और अफ्रोडाइट का सघर्ष है।

इसी कथा का दूसरा रूप उस सर्वव्यापक और बार-बार सुनी जाने वाली कहानी, जिसे हम आदि कहानी कह सकते है—यदि कोई आदि कहानी हो सकती है—कुमारी और उसकी संतान के पिता के बीच का सघर्ष है। इस पौराणिक कथा को भिन्न-भिन्न नामो से हजारो स्थान पर हम पाते है। जैसे डैनी और सोने की बौछार, यूरोपा और बैल, घायल धरती समेले और

आकाश, जीयूस जो बिजली से धरती पर प्रहार करता है, युरिपिडीज के 'आयन' मे क्र्यूसा और अपोलो, मन (साइक) और काम, ग्रेचेन और फाउस्ट। आधुनिक काल मे यह अति परिवर्तनशील कथा पश्चिम में दूसरे रूप मे प्रकट हुई है। हमारे ज्योतिषियों ने ग्रह-निकाय (प्लेनेटरी सिस्टम) की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है जिसमे धर्म का कितना विश्वास है :—

"हमारा विश्वास है कि लगभग बीस अरब साल हुए एक दूसरा तारा अन्तरिक्ष में इधर-उधर घूम रहा था। वह सूर्य के बहुत निकट आ गया। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के कारण ज्वार उठता है उसी प्रकार सूर्य के धरातल पर भी ज्वार आ गया होगा। किन्तु जितना छोटा ज्वार छोटे से चाँद के कारण हमारे सागरो मे उठता है उससे वह भिन्न रहा होगा। इस ज्वार के कारण विशाल ज्वार की लहर सूर्य के चारो ओर फैली होगी। और वह अन्त में उत्तुग पर्वत बन गया होगा। ज्यों-ज्यो यह तारा सूर्य के निकट आता रहा होगा यह ज्वार का पर्वत ऊँचा उठता जाता होगा। इसके पहले कि यह दूसरा तारा लौटने लगे, उसके ज्वार का खिचाव इतना प्रबल हो गया होगा कि उस पर्वत के टुकडे-टुकडे हो गये होंगे। और जिस प्रकार तरंगो के ऊपर से पानी की बूंदे इधर-उधर छहर जाती है ये टुकडे अन्तरिक्ष मे छितरा गये होगे। ये टुकड़े अपने पिता के चारो ओर तब से चक्कर लगा रहे है। यही छोटे-बडे ग्रह हैं जिनमे हमारी पृथ्वी भी है।"[१]

इस प्रकार जटिल गणनाओ को पूरा करने के बाद गणितज्ञ ज्योतिषी के मुख से एक बार वही कथा इस रूप मे निकली कि सूर्य की देवी और उसपर बलात्कार करने वाले में सघर्ष हुआ। इसी कथा को अपढ़ लोग पुराने ढग से कहते आये है। जिन सभ्यताओ का हम अध्ययन कर रहे है उनकी उत्पत्ति मे यह द्वैत शक्ति वर्तमान है। इसे पश्चिम के एक आधुनिक पुरातत्त्व वेत्ता ने स्वीकार किया है और उन्होने वातावरण के प्रभाव से आरम्भ किया है और अन्त में जीवन के रहस्य की अन्त.प्रज्ञा पर बल दिया है—

"सस्कृति के निर्माण का कुल कारण वातावरण ही नही है—निश्चय ही यह एक प्रमुख तत्त्व है. . .किन्तु एक और भी तथ्य है जो अनिश्चित है और जिसे हम 'एक्स' कह सकते हं जो अज्ञात राशि है जिसके स्वरूप का आभास मनोवैज्ञानिक है. . . .'एक्स' सबसे स्पष्ट तत्त्व इस विषय मे न भी हो तो भी सबसे महत्त्व का है और सबसे अधिक प्रभावशाली है।"[२]

इतिहास के इस अध्ययन मे अतिमानव का यह सघर्ष बार-बार आता है और हमने इसका प्रभाव देखा। आरम्भ मे हमने देखा कि 'किसी समाज के जीवन में अनेक समस्याएँ एक के बाद एक आती रहती है। और 'प्रत्येक समस्या किसी अग्नि-परीक्षा की चुनौती होती है।'

इस कथा अथवा नाटक का कथा-विन्यास जो अनेक रूपो और अनेक सन्दर्भों मे बार-बार आया है, हमें उसका विश्लेषण करने की चेष्टा करनी चाहिए।

हम दो साधारण लक्षणो से आरम्भ कर सकते है : सघर्ष असाधारण और कभी-कभी विशिष्ट घटना माना जाता है। प्रकृति की स्वाभाविक गति मे इसके कारण जो बड़ा व्यवधान पड़ जाता है उसी के अनुसार इस सघर्ष का परिणाम भी बहुत बड़ा होता है।

१. सर जेम्स जीन्स : द मिस्टीरियस युनिवर्स, पृ० १ तथा २।
२. पी० ए० मीग्स : एन्शेंट सिविलिजेम्श आव द एण्डीज, पृ० २५–६।

हेलेनी पुराण के सरल ससार मे देवता लोग मनुष्यो की सुन्दर कन्याओ को देखते थे और उनसे स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार करते थे । इन विपद्ग्रस्तो की सख्या इतनी है कि काव्यों मे उनकी सूचियाँ प्रस्तुत है । ऐसी घटनाएँ सनसनीपूर्ण समझी जाती थी और इनके फलस्वरूप वीरो का जन्म होता था । इन कथाओ मे जहाँ दोनो ओर अतिमानव का सघर्ष हुआ है घटना की असाधारणता और उसका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है । जाब की पुस्तक मे 'जिस दिन ईश्वर के पुत्र ईश्वर के सम्मुख आये शैतान भी उनके साथ आया ।' इस घटना की असाधारण रूप मे कल्पना की गयी है । इसी प्रकार गोएटे के फाउस्ट में 'स्वर्ग मे प्रस्तावना' मे ईश्वर और मेफिसटोफिलीस का जो सघर्ष आया है, वह इसी प्रकार का है । अवश्य ही इस कथा की कल्पना जाब की पुस्तक के आरम्भिक भाग से ली गयी है । इन दोनो नाटको मे स्वर्ग मे जो सघर्ष हुआ है उसका परिणाम पृथ्वी पर महत्त्वपूर्ण है । कल्पना की भाषा में जाब और फाउस्ट की जो व्यक्तिगत कठोर परीक्षाएँ हुई है वे मानवता की कठोर परीक्षाओ की रूपक हैं । धर्म की भाषा मे यही महान् परिणाम जो अतिमानव के सघर्षो से उत्पन्न हुए उत्पत्ति की पुस्तक (बुक आव जेनेसिस) और नयी बाइबिल में चित्रित किया गया है । जेहोवा और सर्प के सघर्ष के फलस्वरूप आदम और हौवा का अदन के बाग से निकाला जाना मनुष्य के पतन का ही चित्र है । तभी बाइबिल मे ईसा की यन्त्रणा मानवता के उद्धार का रूपक है । दो सूर्यों के सघर्ष से हमारे ग्रह-निकाय की उत्पत्ति जिसकी कल्पना हमारे आधुनिक ज्योतिषी ने की है उस सम्बन्ध मे भी उसका कहना है कि 'यह अद्भुत और असाधारण घटना है ।"

प्रत्येक कथा का आरम्भ पूरी यिन अवस्था अर्थात् समाज के गतिहीन रूप से होता है । फाउस्ट का ज्ञान पूर्ण है, जाब आनन्द और भलाई मे पूर्ण है, आदम और हौवा आनन्द और अबोधता का जीवन बिताते है; ग्रेचेन और डेवी तथा और कुमारियाँ पूर्ण रूप से सुन्दर और पवित्र है । ज्योतिषी के विश्व मे सूर्य भी पूर्ण पिण्ड है और अपने वृत्त मे एक ढग से बराबर चलता रहता है । जब 'यिन' की स्थिति पूरी हो गयी तब 'याग' की ओर गति होती है । किन्तु इस गति का प्रेरक कौन है । जब कोई स्थिति अपने ढग से पूर्ण है तब उसमें परिवर्तन किसी बाहरी प्रेरणा अथवा शक्ति से ही सम्भव है । यदि भौतिक सन्तुलन की स्थिति है तो दूसरे तारे की आवश्यकता पडती है । यदि मानसिक मोक्ष अथवा निर्वाण की स्थिति है तो मच पर दूसरे अभिनेता को आना पडता है जो सशय का वातावरण उपस्थित करने मन मे नये विचारो को उत्पन्न करता है और जो असन्तोष, कष्ट, भय अथवा विरोध के भाव उत्पन्न करके हृदय मे नये भावो को प्रेरित करता है । बाइबिल की उत्पत्ति की पुस्तक (जेनेसिस) मे सर्प की यही भूमिका है । जाब की पुस्तक मे शैतान की, फाउस्ट मे मेफिस्टोफिलीस की, स्कैण्डीनेबियाई भूमिकाएँ इसी प्रकार की हैं । कुमारी कन्या की कथाओं मे ईश्वरीय प्रेमियो की भी कथा इसी प्रकार है ।

विज्ञान की भाषा में हम यह कह सकते है कि आक्रमणकारी तत्त्व गतिहीन तत्त्व को इस प्रकार शक्ति उत्पन्न करने को प्रेरित करता है जिससे शक्तिशाली सर्जनात्मक परिवर्तन हो सके । पुराण और धर्म के रूप में जो शक्ति यिन स्थिति से याग स्थिति मे परिवर्तन करती है वह ईश्वर के विश्व मे शैतान का आक्रमण है । पुराणों मे इस प्रकार की कथाएँ बहुत अच्छी तरह से बनायी जा सकती है क्योकि तर्क द्वारा जो असंगति उत्पन्न होती है उसकी ऐसी कथाओं में गुजाइश नही है । तर्क के आधार पर देखा जाय तो यदि ईश्वर का विश्व पूर्ण है तो शैतान उसके हरबा

कैसे रह सकता है और यदि शैतान का अस्तित्व है तो जिस पूर्णता को वह नष्ट करने आता है वह पूर्ण कहाँ से हुई । इस प्रकार का विरोध जो तर्क की कसौटी पर नही ठहर सकता कवि और ईश-दूतों (प्रोफेट) की कल्पनाओ से इन तर्कों से मुक्त हो जाता है और वह ईश्वर को इतना सर्वशक्तिमान् बनाता है कि वह दो महत्त्वपूर्ण सीमाओ में बँध जाता है ।

पहली सीमा यह है कि जिसका ईश्वर ने निर्माण किया वह पूर्ण हो गया अब उसके आगे कोई सर्जनात्मक शक्ति की गुजाइश नही रह गयी । यदि ईश्वर अति उत्कृष्ट गुणो से युक्त है तो उसकी सृष्टि सर्वश्रेष्ठ है फिर श्रेष्ठता से श्रेष्ठता की ओर कैसे जा सकता है । दूसरी सीमा ईश्वर की उस शक्ति मे है कि जब बाहर से नयी सृष्टि का अवसर आता है तो वह उसे स्वीकार करने के लिए विवश होता है । जब शैतान उसे चुनौती देता है तब उसे स्वीकार करना ही पडता है । ईश्वर को यह विकट परिस्थिति स्वीकार करनी पडती है क्योकि यदि वह उसका सामना न करे तो वह ईश्वर नही रह जाता ।

यदि तर्क के अनुसार इस प्रकार ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो क्या पौराणिक दृष्टि से भी यह अजेय है ? यदि वह शैतान की चुनौती स्वीकार करता है तो क्या यह आवश्यक है कि वह सग्राम मे विजयी भी होगा । युरिपिडीज के हिपोलाइट्स नाटक मे जहाँ आरटिमिस ईश्वर की भूमिका मे है और अफ्राडाइट शैतान की भूमिका मे है, आरटिमिस लड़ने से इनकार नही करता, किन्तु उसकी पराजय निश्चित है । ओलिम्पियन देवताओ के सम्बन्ध क्रान्तिकारी है । उपसहार मे आरटिमिस इसी बात पर सन्तोष करती है कि अफ्रोडाइट के स्थान पर एक दिन वह स्वय शैतान की भूमिका मे आयेगी । इस स्थिति मे परिणाम सर्जन नही, विनाश है । स्केण्डेनेवियाई सस्करण मे 'रागनेरोक' मे भी विनाश ही परिणाम हुआ जब देवता और दैत्यो ने एक दूसरे का सहार कर दिया । यद्यपि वोलसपा के लेखक की अद्वितीय प्रतिभा द्वारा यह दिखाया गया है कि सिविल अन्धकार को विच्छेद कर उसके पार नया प्रकाश देखती है । यह कथा एक दूसरे रूप मे यह है कि चुनौती के बाद जो सग्राम होता है उसमे शैतान विजयी नही होता और वह स्वय हार जाता है । जिस क्लासिकी पुस्तक से यह दाँव वाला विषय लिया गया है वह जाब भी पुस्तक और गोएटे का फाउस्ट है ।

गोएटे के नाटक मे यह बात स्पष्ट है । स्वर्ग मे जब ईश्वर ने मेफिसटोफिलीस की चुनौती स्वीकार कर ली तब पृथ्वी पर मेफिसटोफिलीस और फाउस्ट से आपस मे इस प्रकार शर्त तय हुई—

"फाउस्ट–शान्त हो, और चुप रहो ! यह सब
मेरे लिए नही है—मै न उन्हे माँगता हूँ न खोजता हूँ
यदि मै कभी आलस्य की शय्या पर—
लेटूँ और आराम करूँ—तब मेरे लिए
वह समय आये कि सदा के लिए सो जाऊँ
तुम मुझे झूठ और चाटुकारिता से—
आत्मतुष्टि की मुसकान से धोखा नही दे सकते,
तुम मुझे शान्ति की प्रवचना से छल नही सकते
इसलिए आओ, इस जीवन के आज अन्तिम दिवस पर
तुम्हारा स्वागत करता हूँ

तो आओ बाजी लग जाय ।

मेफिसटोफिलीस—स्वीकार है

फाउस्ट—मै भी स्वीकार करता हूँ, सौदा पक्का हो गया

यदि मै कभी शान्ति से बैठूं

और शान्ति की सुखद विस्मृति मे सोऊँ

और ऐसे आनन्दमय अवसर का स्वागत करूँ

और उस सुख मे अपना समय बिताऊँ

तो मै अपनी इच्छा से

अपना विनाश स्वीकार करता हूँ ।

सभ्यता की उत्पत्ति की समस्या का इस पौराणिक कथा से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है कि फाउस्ट जब दाँव स्वीकार करता है तब वह उस चट्टान पर सोने वालो के समान है और जो बहुत दिनो तक अकर्मण्य रहे है और अब चट्टान पर से उठे हैं और ऊपरी चट्टान की ओर चढ रहे हैं । हमने जो उपमा दी है उसकी भाषा में फाउस्ट यह कह रहा है, 'मैने यह चट्टान छोडने का निश्चय कर लिया है और ऊपर नयी चट्टान की खोज में चढ रहा हूँ । मै जानता हूँ कि इस प्रयत्न मे वह स्थान छोड रहा हूँ जहाँ सुरक्षित रहा फिर भी सफलता की सम्भावना मे गिर पडने और नष्ट हो जाने का खतरा उठाऊँगा ।'

गोएटे वाली कथा में साहसी चढ़ने वाला अनेक खतरो और विफलताओ की कठिनाइयाँ झेलता हुआ ऊपर की चट्टान पर चढ़ने में सफल होता है । नयी बाइबिल में भी उसी प्रकार का परिणाम है, जिसमें दोनो विरोधी दूसरी बार सघर्ष करते है । उत्पत्ति की पुस्तक (जेनेसिस) के मूल रूप में सर्प और जेहोवा के सघर्ष का वही परिणाम है जो हिपोलाइट्स मे आर्टिमिस और अफ्रोडाइट के सघर्ष का परिणाम होता है ।

जाब की पुस्तक, फाउस्ट और नयी बाइबिल मे स्पष्ट रूप से दिखलाया गया है कि शैतान विजयी नही हो सकता । जब शैतान ईश्वर के काम मे विघ्न डालता है तब वह ईश्वर के कार्य को विफल नही करता, बल्कि उसके कार्य मे सहायक होता है । ईश्वर परिस्थिति का मालिक रहता है और शैतान को लम्बी रस्सी प्रदान करता है जिससे वह स्वय फाँसी लगा लेता है । तो क्या शैतान को धोखा दिया जाय ? क्या ईश्वर ने ऐसी बाजी स्वीकार की जिसे वह जानता था कि हारूँगा नही ? यदि ऐसा है तो यह अनुचित बात होगी और सारा मामला पाखण्ड होगा । ऐसा सघर्ष जो वास्तव मे सघर्ष नही है उससे सघर्ष का फल नही निकल सकता क्योकि इसी सघर्ष द्वारा सृष्टि में परिवर्तन होता है और यिन से याग की ओर प्रगति होती है । सम्भवत इसकी व्याख्या यह होगी कि शैतान जो चुनौती देता है और जिसे ईश्वर स्वीकार करता है उसमें सृष्टि का केवल एक अश ही संकट मे पड़ता है, सारी सृष्टि नही । यद्यपि केवल एक अश की बाजी है और सारी सृष्टि की नही फिर भी जिस अश मे परिवर्तन होगा और जिस पर विपत्ति आयेगी उसका प्रभाव पूर्ण सृष्टि पर पडे बिना नही रह सकता । पौराणिक भाषा मे, जब ईश्वर की एक सृष्टि वस्तु शैतान के फन्दे मे आ जाती है तो ईश्वर स्वय ऐसा अवसर प्राप्त करता है कि ससार का फिर से निर्माण करें । शैतान के विघ्न डालने के कारण, जिसमे वह सफल हो या असफल—क्योकि दोनो सम्भव है—वह यिन से याग परिस्थिति उत्पन्न कर देता है, जिसके लिए ईश्वर इच्छा करता है ।

जहाँ तक मानवी अभिनेता का प्रश्न है प्रत्येक नाटक का मूल कष्ट ही है चाहे अभिनेता ईसामसीह हो या जाब या फाउस्ट या आदम और हौवा । अदन के बाग में आदम और हौवा का जो चित्रण है वह इन अवस्था की यादगार है जब आदिम मानव फल एकत्र करने वाली सामाजिक व्यवस्था मे पहुँचा था । यह अवस्था उस समय आयी जब मनुष्य ने पृथ्वी के पशु तथा वनस्पति जगत् पर विजय प्राप्त कर ली थी । ज्ञान के वृक्ष से अच्छाई और बुराई का फल खाने से जो पतन हुआ वह उस चुनौती के स्वीकार करने का प्रतीक है जिसमे इस सगठन को छोड़कर विघटन की चुनौती स्वीकार की गयी जिसके फलस्वरूप नया सगठन हो या न हो । आदम का बाग से निकाला जाना और ऐसे वैरपूर्ण जगत् में आना जहाँ कष्ट सहकर स्त्री सन्तान उत्पन्न करे और पुरुष परिश्रम द्वारा अपना भोजन उत्पन्न करे, वह अग्नि-परीक्षा है जिसे सर्प की चुनौती के कारण स्वीकार करना पडा । इसके बाद आदम और हौवा का शारीरिक सभोग सामाजिक सृष्टि के लिए था । परिणाम-स्वरूप दो पुत्र उत्पन्न हुए जो दो नवजा त सभ्यताओ के स्वरूप है : एबेल-भेड पालने वालो की और कैन-खेत जोतने वालो की ।

हमारे ही युग मे एक विद्वान्, जिन्होने मानवीय जीवन पर भौतिक वातावरण के प्रभाव का बहुत गहरा अध्ययन किया है, यही बात अपने ढग से कहते हैं :—

"युगो पहले नगे गृह-विहीन और आग का ज्ञान न रखने वाले असभ्यो का एक झुड ऊष्ण-कटिबन्ध के अपने गर्म निवास को छोडकर उत्तर की ओर बसन्त ऋतु से लेकर ग्रीष्म ऋतु तक बराबर चलता गया । इस झुड के लोगो ने यह अनुमान नहीं किया था कि हम निरन्तर गर्म रहने वाले प्रदेश को छोड़ रहे है । इस बात का अनुभव उन्हे तब हुआ जब सितम्बर की रात मे उन्हें कष्ट दायक ठड का सामना करना पडा । यह कष्ट दिन प्रतिदिन बढ़ता गया । इस कष्ट का कारण उन्हे मालूम न था । इसलिए अपनी रक्षा के लिए वे इधर-उधर गये । कुछ दक्षिण की ओर चले गये, मगर बहुत थोड़े अपने पुराने निवास स्थान पर पहुँच सके । वहाँ उन्होने वही पुराने ढग का जीवन आरम्भ किया और उनके वशज आज भी अपढ और असभ्य है । जो लोग दूसरी दिशाओ मे गये उनमे से एक समूह को छोडकर शेष सब नष्ट हो गये । यह जानकर कि कठोर ठडी हवा से हम बच नही सकते इस समूह के लोगो ने मनुष्य के दिमाग की सबसे ऊँची शक्ति, आविष्कार की शक्ति, का प्रयोग किया । कुछ धरती को खोदकर उसके नीचे रहने लगे । कुछ ने टहनियो और पत्तियों को एकत्र किया और उनसे झोपड़े और गर्म बिस्तर बनाये और कुछ ने अपने को उन पशुओ कि खाल से लपेटा जिन्हे उन्होने मारा था । इन असभ्य लोगो ने सभ्यता की ओर अनेक कदम उठाये । जो नगे थे उनके तन ढक गये, जो घर-विहीन थे उनको आश्रय मिला, जो असावधान थे उन्होंने मास को और फलो को सुखाना और उसे सुरक्षित रखना सीखा और अन्त मे अपने को गरम रखने के लिए आग जलाने का आविष्कार उन्होने किया । इस प्रकार जहा वे समझते थे कि हम नष्ट हो जायेगे वे सुरक्षित हो गये । कठोर वातावरण से सामजस्य स्थापित करते-करते उन्होने विशाल प्रगति की और ऊष्ण-कटिबन्ध मे रहने वाले मनुष्यो को बहुत पीछे छोड़ दिया ।"[1]

१. एलसवर्थ हंटिगटन : सिविलिजेसन एण्ड क्लाइमेट, पृ० ४०५–६ ।

इसी कथा को एक क्लासिकी विद्वान् ने आज के युग की वैज्ञानिक भाषा मे इस प्रकार लिखा है :—

"प्रगति का एक विरोधाभास यह है कि यदि आवश्यकता आविष्कार की जननी है तो कठोरता पिता है अर्थात् यह दृढता कि हम प्रतिकूल वातावरण मे जीवन व्यतीत करते रहेंगे बजाय इसके कि मुसीबतो को कम करेगे और ऐसे स्थान पर चले जायेगे जहाँ जीवन-यापन सरल होगा। यह केवल सयोग नही है जिस सभ्यता का हमे ज्ञान है उसका जन्म चार हिमकालो के जलवायु, जीव तथा वनस्पति के वातावरण मे हुआ। वे अगुआ जो अभी उस स्थिति से थोडा-सा ही बाहर हुए थे जब वृक्षवासी जीवन (आरबोरियल कडिशन) शिथिल हो रहा था, प्रकृति के नियमो के दासो के तो अगुआ बने रहे, किन्तु प्रकृति पर विजय उन्होने नही प्राप्त की। दूसरे जिन्होने प्रकृति पर विजय प्राप्त की वे मनुष्य हुए। उन्होने जहाँ बैठने के लिए वृक्ष नही थे, रहने का स्थान बनाया, जब खाने के लिए पके फल नही मिलते थे मास खाने का प्रबन्ध किया। उन्होने धूप का भरोसा नही किया, आग और कपडो का निर्माण किया, उन्होने अपनी गुफाओ को सुरक्षित किया, अपने बच्चो को प्रशिक्षित किया और उस ससार को बुद्धियुक्त बनाया जो पहले अविवेकी जान पडता था।"[१]

मानव नेता की परीक्षा की पहली मजिल यिन से याग तक वह परिवर्तन है जो गत्यात्मक शक्ति द्वारा हुआ है। ईश्वर की सृष्टि मानव द्वारा अपने विरोधी के प्रलोभन से सघर्ष करने से, जिसके परिणामस्वरूप ईश्वर स्वय अपने सर्जन के कार्य मे सशक्त होता है, बनी है। फिर अनेक परिवर्तनो के बाद पीडित विजयी नेता बन जाता है। ईश्वरीय नाटक मे मानवी नेता ईश्वर की इसी प्रकार सेवा नही करता कि वह उसे अपनी सृष्टि के पुन: निर्माण की शक्ति प्रदान करता है वह मनुष्यो की भी सेवा इस प्रकार करता है कि वह उन्हे आगे बढने के लिए रास्ता दिखाता है।

(२) पौराणिक कथा के आधार पर समस्या

अदृष्ट तत्त्व

पौराणिक कथा के प्रकाश मे सघर्ष और उसकी प्रतिक्रिया के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है। हमने देखा कि सर्जन (क्रिएशन), सघर्ष (एन्काउण्टर) का परिणाम है, और उत्पत्ति (जेनेसिस) अन्योन्यक्रिया (इण्टर एक्शन) की। अब हम उस बात की ओर ध्यान दे जिसकी खोज हमे इस समय करनी है। उस निश्चयात्मक तथ्य की खोज करनी है जिसने विगत छ हजार वर्षों मे मानव को 'प्रथाओ के एकीकरण' (इण्टेग्रेशन आव कस्टम्स) को छिन्न-भिन्न करके 'सभ्यता की मित्रता' की ओर मोडा है। हम अपनी इक्कीस सभ्याताओ के आरम्भ को क्रमबद्ध रूप मे देखे और आनुभविक (एपिरिक्ल) परीक्षा से समझे कि सघर्ष और प्रतिक्रिया की सकल्पना से जो हम खोज रहे है उसका कुछ अधिक सन्तोषजनक उत्तर मिलता है, कि कुल और वातावरण की प्राक्कल्पना (हाइपोथेसिस) से, जिसकी परीक्षा हमने की और जो ठीक नही उतरी।

इस नये सर्वेक्षण में हम कुल और वातावरण का विवेचन करेंगे, किन्तु नयी दृष्टि से। हम सभ्यता की उत्पत्ति के किसी ऐसे सरल कारण की खोज नही करेगे जिसके फलस्वरूप, सब समय और सब स्थानो मे एक ही परिणाम निकलता है। हमे इस बात पर आश्चर्य नही होना चाहिए

१. जे० एल० मायर्स : हू वेयर द ग्रीक्स, पृ० २७७–७८।

यदि सभ्यताओ की उत्पत्ति में समान प्रजाति या समान वातावरण से एक जगह नयी सभ्यता की उत्पत्ति होती है और दूसरी जगह नही होती । हम अब प्रकृति की समानता की वैज्ञानिक अभि-धारणा (पोस्चुलेट) को आधार नही मानेगे । अभी तक हमने इस सिद्धान्त को माना है क्योकि हम वैज्ञानिक दृष्टि से इस समस्या पर विचार करते रहे कि सभ्यताओ की उत्पत्ति निर्जीव शक्तियों की गति की क्रिया है । हम इस बात को स्वीकार करने के लिए अब तैयार है कि यदि प्रजातीय तथा वातावरण सम्बन्धी तथा और सभी वैज्ञानिक सामग्री का ज्ञान भी हमें हो तब भी हम यह भविष्यवाणी नही कर सकते कि इन सामग्रियो के घात-प्रतिघात का परिणाम क्या होगा । जिस प्रकार कोई सैनिक विशेषज्ञ किसी युद्ध का परिणाम नही बता सकता चाहे उसे दोनो सेनाओं के सेनापतियो की प्रवृत्ति तथा साधनों के बारे मे 'आन्तरिक ज्ञान' भी हो । अथवा जिस प्रकार ब्रिज का विशेषज्ञ नही बता सकता कि परिणाम क्या होगा चाहे उसे सबके हाथो के ताशो का पता हो ।

इन दोनो उदाहरणो मे जानकार 'आन्तरिक ज्ञान' ठीक-ठीक परिणाम निकालने के लिए पर्याप्त नही है क्योकि 'आन्तरिक ज्ञान' और सम्पूर्ण ज्ञान एक ही बात नही है । उत्तम से उत्तम जानकार के लिए यह अज्ञात है क्योकि सैनिक अथवा खेलाडी स्वय उस बात को नही जानता । और यह अज्ञात तथ्य इस समस्या को सुलझाने के लिए बहुत आवश्यक है । यह अज्ञात राशि (क्वाटिटी) यह है कि जब अभिनेताओं के सामने कठिनाइयां आयेगी तब उनपर क्या प्रतिक्रिया होगी । ये मनोवैज्ञानिक क्षण स्वभावत नापे-तौले नही जा सकते और इसलिए पहले से इनके सम्बन्ध मे कुछ कहना असम्भव होता है । और इन्ही पर सघर्ष का परिणाम निर्भर रहता है । इसी कारण बड़े से बड़े सेनापतियो ने अपनी सफलता के कारणो मे इस अज्ञात तत्त्व को स्वीकार किया है । यदि वे क्रामवेल की भाँति धार्मिक है तो उन्होने ईश्वर को सफलता का कारण बताया है, और नैपोलियन की तरह अधविश्वासी है तो 'ग्रहो' को ।

मिस्री सभ्यता का जन्म

इसके पहले के अध्याय मे हमने यह कल्पना की थी कि वातावरण गतिहीन तथ्य है, वातावरण सिद्धान्त के मानने वाले हेलेनी प्रणेताओ का भी यही विचार था । विशेषत 'ऐतिहासिक' काल में अफ्रेशियन स्टेप तथा नील की घाटी की भौतिक स्थिति सदा एक समान रही है । अर्थात् आज भी वह वैसी है जैसी चौबीस शती पहले जब यूनानियोने इस सिद्धान्त को बनाया, किन्तु वास्तविक बात यह है कि ऐसा नही है । "जब उत्तरी यूरोप हार्ज पर्वत तक बर्फ से ढका था और आल्प्स तथा पिरेनीज ग्लेशियर से ढका था, आर्कटिक प्रदेश के भारी दबाव के कारण अतलान्तिक का वर्षा-तूफान दक्षिण की ओर मुड़ गया । जो चक्रवात (साइक्लोन) मध्य यूरोप मे बहता था और लेबानन होते हुए, जहाँ उसके जल का निपात नही होता था, मोसोपोटामिया होते हुए, अरब पार करते हुए फारस और भारत मे पहुँचता था । शुष्क सहारा मे उन दिनों बराबर वृष्टि होती थी । उससे और पूरब यही नही कि आज से अधिक पानी बरसता था, बल्कि और जाडे में ही नही वर्ष भर वर्षा होती थी ।

उन दिनों उत्तरी अफ्रीका, अरब, फारस और सिन्ध की घाटी में हरे-भरे घास के मैदान थे जैसा कि आज भूमध्यसागर के उत्तर मे है । उस समय फ्रांस और दक्षिणी इग्लैंड में मैमथ,

बाल वाले गैंडे और बारह सिंहे विचरते थे । उत्तरी अफ्रीका मे वैसे जन्तु पाये जाते थे जैसे इस समय रोडेसिया मे जंबेसी के किनारे पाये जाते है ।

उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी एशिया के घास के मैदानो मे मनुष्यो की उतनी ही घनी आबादी थी जितनी यूरोप के बर्फीले स्टेप पर । यह आशा करना उचित होगा कि ऐसे अनुकूल तथा स्फूर्तिप्रद वातावरण मे मनुष्य अधिक उन्नति करेगा बजाय बर्फीले उत्तर के प्रदेश के ।[१]

किन्तु हिमकाल के बाद अफेशियन क्षेत्र में महान् भौतिक परिवर्तन होने लगा और वह सूखने लगा । और दो या अधिक सभ्यताओ ने इस क्षेत्र मे साथ-साथ जन्म लिया, जिस क्षेत्र मे, पहले, ससार के अन्य बसे हुए क्षेत्रो के समान पुरापाषाणिक (पैलियेलिथिक) काल का आदिम समाज था । हमारे पुरातत्त्ववेत्ता कहते हैं कि अफ्रेशिया का यह सूखना एक प्रकार की चुनौती थी जिसका परिणाम इन सभ्यताओं का जन्म था । अब हम क्रान्ति के द्वार पर है और शीघ्र ही हमको ऐसे मनुष्य मिलेगे जो पशुओ को पालकर और अनाज बोकर अपना भोजन स्वय उत्पन्न करेगे । इस क्रान्ति का और उस भौतिक परिवर्तन का सम्बन्ध निश्चित है जब उत्तरी ग्लेशियर गल गये और उसके फलस्वरूप यूरोप पर आर्कटिक का उच्च दबाव कम होने लगा और अतलान्तिक का बर्फ-तूफान दक्षिणी भूमध्यसागरी प्रदेश से मध्य यूरोप की ओर मुड़ गया, जैसा इस समय है ।

'इस प्रकार की घटना से पहले के घास के मैदान के रहने वालो की बुद्धि को बहुत परिश्रम करना पडता . '

"जैसे-जैसे यूरोपीय हिम-नदी छोटी होती गयी और अतलान्तिक चक्रवात की पेटी उत्तर की ओर मुडती गयी और इसके फलस्वरूप यह प्रदेश धीरे-धीरे सूखता गया, यहाँ की शिकारी जनता के सामने तीन विकल्प थे । जिस जलवायु के वे अभ्यस्त थे उसके अनुसार अपने शिकार के साथ-साथ वे भी उत्तर या दक्षिण चले जाते, अपने पुराने निवास में ही रहते और जो कुछ शिकार सूखे को बरदाश्त करके रह जाता उसी पर सन्तोष करके दयनीय जीवन बिताते, या इसी पुराने निवास स्थान में ही रह कर वातावरण पर विजय प्राप्त करते और पशुओं को पालते तथा खेती करते ।"[२]

जिन लोगो ने न तो निवास स्थान छोड़ा, न रहन-सहन का ढग बदला, वे सूखी परिस्थिति का सामना नही कर सके और नष्ट हो गये । जिन लोगो ने निवास नही छोड़ा और रहन-सहन का ढंग बदल लिया और शिकारी से गड़ेरिये हो गये वही अफ्रेशियाई स्टेप के खानाबदोश हो गये । उनके कार्य और उपलब्धियो के सम्बन्ध मे इस पुस्तक के अन्य भाग मे विचार किया जायेगा । जिन लोगो ने रहन-सहन नही बदला और निवास बदल दिया, और सूखे का सामना न करके चक्रवात की पेटी के साथ-साथ उत्तर की ओर चले गये उन्हे अनजाने नयी परिस्थिति का सामना करना पडा । अर्थात् उन्हे उत्तर की मौसमी ठण्ड का, और जो लोग इस ठण्ड को बरदाश्त कर गये उन्होने नये ढग से जीवन आरम्भ किया । जिन लोगों ने यह सूखा प्रदेश

१. बी० जी० चाइल्ड : द मोस्ट ऐंशेन्ट ईस्ट—अध्याय २ ।
२. बी० जी० चाइल्ड : द मोस्ट ऐन्शेन्ट ईस्ट—अध्याय ३ ।

छोड़ा और दक्षिण के मानसूनी प्रदेश की ओर आये वे ऊष्ण-कटिबन्ध के प्रभाव मे आ गये और वहाँ की सदा एक समान रहने वाले जलवायु मे जीवन बिताने लगे । पाँचवें ढग के कुछ और लोग थे जिन्होंने सूखी परिस्थिति का सामना किया, इस प्रकार सामना किया कि निवास भी बदला और रहन-सहन का ढंग भी बदला । यह दोहरा कार्य बहुत शक्तिशाली था और इसी के कारण उन आदिम समाजों से, जो लोप होने वाले अफ्रेशियाई घास के मैदानो में रहने वाले थे, मिस्री तथा सुमेरी सभ्यताओ का जन्म हुआ ।

इन सर्जनशील समाजो के रहन-सहन में पूरा परिवर्तन हो गया । खाद्य-सामग्री एकत्र करने और शिकार करने के स्थान पर वे खेतिहर हो गये । यद्यपि उनके निवास की दूरी में बहुत परिवर्तन नही हुए तथापि जो घास का मैदान वे छोड आये थे और जिस नये भौतिक वातावरण मे उन्होंने नया निवास स्थान बनाया था अन्तर बहुत था । जब नील नदी की निचली घाटी के निकट का मैदान लीबियन मरुस्थल मे परिर्तन हो गया और दजला और फरात की निचली घाटी के निकट का घास का मैदान रब्बुल खाली और दश्तेलूत में परिवर्तित हुआ ये माहसी अगुआ लोग—साहस से अथवा विवशता के कारण—घाटी के भीतर उन जगली दलदलों में घुस गये जहाँ कभी मनुष्य ने पाँव नही रखा था और अपनी शक्ति द्वारा इन्हे उन्होने मिस्र की और शिनार की उपजाऊ भूमि मे बदल दिया । उनके पडोसी को, जिन्होंने दूसरा रास्ता पकडा जैसा ऊपर बतलाया गया है निराशा का सामना करना पड़ा क्योंकि उस पुरातन काल मे जब अफ्रेशियाई स्टेप धरती पर स्वर्ग बन रहा था, नील नदी की तराई तथा मेसोपोटामिया ऐसे दलदली जगल थे और उजाड़ थे जिनमे मनुष्य घुस नही सकता था । परिणाम यह निकला कि यह साहसपूर्ण कार्य ऐसा हुआ कि बहुत कम अग्रगामियो को ऐसी सफलता मिली होगी । प्रकृति के मनमानेपन पर मनुष्य के कार्यों ने विजय प्राप्त की । जहाँ जगल और दलदल थे वे ताल, बाँध और खेत बने । जगलो को हटाकर मिस्र और शिनार की धरती का निर्माण हुआ और मिस्री तथा सुमेरी समाजो का महान् साहसिक जीवन यहाँ से आरम्भ हुआ ।

नील की निचली घाटी जहाँ हमारे अगुआ पहुँचे आज जैसा हम उसे पाते हैं उससे बहुत भिन्न थी क्योंकि वहाँ छ. हजार वर्षों के मनुष्य के कौशलपूर्ण परिश्रम का प्रभाव अकित है । किन्तु यदि मनुष्य का कौशल न भी लगा होता और प्रकृति पर ही वह स्थान छोड दिया गया होता तब भी आज से बहुत भिन्न होता । अग्रगामियो के पहुँचने के हजारो वर्ष बाद तक अर्थात् प्राचीन और मध्य राज्यकाल में भी हिपोपोटमस, घडियाल तथा अनेक जगली पक्षी निचली घाटी मे पाये जाते थे जो आज पहले जलप्रपात के उत्तर में नही पाये जाते, जैसा कि उस युग के चित्रो और मूर्तियो से पता चलता है । जो बात पशु-पक्षियो के सम्बन्ध मे है वही वनस्पति के सम्बन्ध में भी है । यद्यपि सूखा पड़ना आरम्भ हो गया था, मिस्र मे खूब पानी बरसता था और नील का डेलटा पानी से भरा हुआ दलदल था । यह सम्भव है कि डेलटा के ऊपर निचली नील उन दिनो वैसी ही थी जैसा सुडान के भूमध्य प्रदेश में ऊपरी नील का बहरुल जबल प्रदेश है और डेलटा नो झील के प्रदेश के समान था जहाँ बहरुल जबल और बहरुल गजाल नदियाँ मिलती है । आज जिस रूप मे वह अभागा प्रदेश है उसका वर्णन इस प्रकार है—

'बहरुल जबल के सारे मार्ग का दृश्य 'सड' (बहते हुए पेड़-पौधे) से भरा हुआ है और एक समान है । दो-एक जगह को छोड़कर, न कही तट है, न पानी के किनारे कही टीला है । दोनों

किनारे किलोमीटरो तक दलदल हैं जिसमें नरकुल उगे हुए है । फैलाव मे कही-कही थोडी-थोडी दूर पर लागून हैं । जब नदी में पानी की ऊँचाई कम से कम होती है लागून मे पानी की सतह कुछ सेण्टी मीटर ऊँची होती है और जब नदी के पानी मे आधा मीटर ऊँची बाढ आती है लागून का पानी बहुत दूर तक फैल जाता है। इन दलदलो मे नरकुल और घास बहुत घने रूप मे जमी रहती हैं और चारो ओर फैली रहती हैं।

'सारे प्रदेश मे मुख्यत बोर और नो झील की बीच मानव जीवन का कोई चिह्न नही दिखाई पड़ता। सारा प्रदेश इतना उजाड है कि भाषा मे उनके वर्णन करने की शक्ति नही है। बिना देखे वहाँ की स्थिति नही समझ मे आ सकती।'[१]

यह इसलिए निर्जन है कि आज जो लोग उसकी सीमा पर रहते हैं उनके सामने वह परिस्थिति नही है जो मिस्री सभ्यता के जनको के सामने थी जब वे छ हजार वर्ष पहले निचली नील नदी की घाटी के किनारे बैठे हुए थे। उनके सामने यह समस्या थी कि वे अहितकर सड का सामना करे अथवा अपने प्राचीन स्थान मे रहना स्वीकार करे जो स्वर्ग समान भूमि से निष्ठुर मरुभूमि मे परिवर्तित हो रही थी। यदि विद्वानो का निष्कर्ष ठीक है तो आज जो लोग सुडान के सड वाले प्रदेश के किनारे रहते है वे उस समय वहा रहते थे जिसे आज लीबिया का रेगिस्तान कहते है। ये लोग मिस्री सभ्यता के संस्थापको के पास-पास उस समय रहते थे जब इन्होने सूखेपन का सामना करने का महत्त्वपूर्ण रूप से निश्चय किया। ऐसा जान पडता है कि उस समय आधुनिक 'डिनका' और 'शिल्लुक' लोगो के पूर्वज अपने साहसी पडोसियो से अलग हो गये और सरल परिस्थिति का सामना करते हुए दक्षिण की ओर ऐसे प्रदेश मे चले गये जहाँ अपने रहन-सहन को बिना बदले हुए ऐसे भौतिक वातावरण मे रहने लगे जैसा उनका पहले का अभ्यास था। वे सुडान के ऊष्ण-कटिबन्ध मे बस गये जहाँ विषुवत् रेखा वाली बरसात होती रही। आज तक उनके वशज रहते है जो अपने पूर्वजो के समान ही जीवन व्यतीत करते है। इस नये निवास मे वे आलसी और सन्तोषी लोग रहते है और ऐसी ही जगह रहने की उनकी इच्छा थी।

'ऊपरी नील के किनारे आज वे लोग रहते है जो पुराने मिस्रियो से चहरे-मोहरे मे, डील-डौल मे, खोपड़ी की बनावट मे, भाषा और भेष मे मिलते-जुलते है। इन पर या तो पानी बरसाने वाले जादूगर या ईश्वरीय राजे शासन करते है। कुछ दिनो पहले इन राजाओ की धार्मिक बलि होती थी। इन उप-कुलो (ट्राइब) का सगठन टोटेम कुलो के आधार पर होता है। ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी नील के पास रहने वाले इन उप-कुलो का सामाजिक विकास उस समय रुक गया जब मिस्री लोग वहाँ से चले गये और उनका इतिहास नही आरम्भ हुआ था। वहाँ हमे एक सजीव अजायब घर मिलता है जिसमे हमे प्रागैतिहासिक जातियो के उदाहरण मिलते है।'[२]

नील बेसिन के एक भाग की प्राचीन परिस्थिति और दूसरे भाग की आज की परिस्थिति के समानान्तर होने के कारण कुछ विचार करना आवश्यक है। मान लीजिए, नील बेसिन के उन भागो के निवासियो के सम्मुख, जहाँ आज विषुवत् रेखा की वर्षा नही होती, सूखा पड़ने की

१. सर विलियम गारस्टिन : रिपोर्ट अपान द बेसिन आव द अपर नाइल, १९०४, पृ० ९८-९।

२. वी० जी० चाइल्ड : द मोस्ट एन्शेन्ट ईस्ट, पृ० १०-११।

समस्या न उत्पन्न होती । तो क्या उस अवस्था मे डेलटा और नील की निचली घाटी अपनी स्वाभाविक स्थिति मे रह जाती ? क्या मिस्री सभ्यता का उदय न हुआ होता ? क्या ये लोग निचली नदी की घाटी के किनारे उसी प्रकार बैठे रहते जैसे शिल्लुक और डिनका बहरुल जबल के किनारे आज भी बैठे हुए है ? दूसरे ढग से भी विचार किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध भविष्य से है, भूत से नही । हमे याद रखना चाहिए कि विश्व के, या इस धरती के या जीवोत्पत्ति के या मनुष्य की उत्पत्ति के भी समय-मान (टाइम-स्केल) में छ हजार वर्ष का समय नगण्य है । मान लीजिए कि जिस प्रकार के सघर्ष का सामना निचली नील की घाटी के निवासियो को अभी कल ही हिमकाल की समाप्ति पर करना पड़ा उसी प्रकार के सघर्ष का सामना ऊपरी नील के बेसिन के निवासियो को आगामी किसी दिन करना पडे तो क्या उनमे गतिमान् कार्य करने की क्षमता न होगी जिसका परिणाम वैसा ही सर्जनशील न होगा ?

हमे यह जानने की आवश्यकता नही है कि शिल्लुक और डिनका के सम्मुख यह काल्पनिक सघर्ष वैसा ही होगा जैसा मिस्री सभ्यता के जनको पर हुआ था । मान लीजिए कि यह सघर्ष अथवा चुनौती भौतिक न होकर मनुष्य की ओर होती । जलवायु के परिवर्तन से न होकर विदेशी सभ्यता के आक्रमण से होती । क्या हमारी आँखो के सामने इस प्रकार का सघर्ष नही हो रहा है ? जब अफ्रीका के ऊष्ण-कटिबन्ध के निवासियो पर पश्चिमी सभ्यता का आक्रमण हो रहा है । यह मानवीय सस्था है जो हमारी पीढी मे इस पृथ्वी पर की सभी वर्तमान सभ्यताओं के प्रति और सभी वर्तमान आदिम समाज के प्रति मेफिसटोफिलीस की पौराणिक भूमिका अदा कर रहा है । यह चुनौती इतनी नयी है कि हम यह भविष्यवाणी नही कर सकते कि जिन समाजो पर आक्रमण हुआ है उनकी प्रतिक्रिया क्या होगी । हम यही कह सकते है कि यदि आज की पीढी इस सघर्ष का सामना करने में असफल रही तो यह आवश्यक नही है कि उनकी सन्तति भी आगे किसी सघर्ष का सामना करने मे असफल हो ।

सुमेरी सभ्यता का जन्म

इस प्रश्न पर हम सक्षेप मे विचार करेगे क्योकि यहाँ भी उसी प्रकार का सघर्ष हुआ था जिस प्रकार का सघर्ष मिस्री सभ्यता के जनको के सम्मुख उपस्थित हुआ था और उसका सामना भी उसी प्रकार किया गया था । उसी प्रकार अफ्रेशिया मे सूखा पडने के कारण सुमेरी सभ्यता के जनको को दजला और फरात की निचली घाटी के जगली दलदल से जूझना पड़ा और उसे शिनार की भूमि में बदलना पडा । दोनो की उत्पत्ति का भौतिक स्वरूप प्राय समान है । दोनो से जो सभ्यताएँ उत्पन्न हुई उनकी आध्यात्मिक विशेषताओ में, तथा उनके धर्म, उनकी कला और उनके सामाजिक जीवन मे वैसी समानता नही है । हमारे अध्ययन के लिए इससे यह संकेत मिलता है कि हम पहले से ही यह नही मान सकते कि यदि कारण एक प्रकार के है तो कार्य भी एक प्रकार के होंगे ।

सुमेरी सभ्यता के जनको को जिस विपत्ति का सामना करना पडा वह उनके आख्यानो मे वर्णित है । मारडूक देवता का टायमट नाग का मार डालना और उसके मृत शरीर से ससार की रचना करना इस बात का प्रतीक है कि प्राचीन उजाड़ खण्ड पर विजय प्राप्त की गयी और नहरो द्वारा पानी की निकासी करके धरती को सुखाकर शिनार की भूमि का सर्जन किया गया । बाढ़ की कथा का यह अभिप्राय है कि मनुष्य के साहस ने प्रकृति पर जो नियन्त्रण किया था उसका

प्रकृति ने विरोध किया। बाईबिल के विवरण मे, जो यहूदियो मे साहित्यिक उत्तराधिकार मे मिला है, जिसमें वे बैबिलोन की बाढ़ के कारण वहां से निकल भागे थे, बाढ (द फ्लड) का अर्थ ही घर-घर में पश्चिमी समाज हो गया है। आज के पुरातत्त्ववेत्ताओं का यह काम है कि इस आख्यान के मूल रूप की खोज करे और बाढ द्वारा लायी हुई मिट्टी की मोटी तह मे, जो प्राचीन-तम स्तर और उस नये स्तर के बीच जो मनुष्य के सुमेरी सभ्यता के कुछ प्रमुख ऐतिहासिक स्थानो पर निवास करने के कारण पड गयी है, किसी असाधारण उग्र और विशेष बाढ की खोज करे।

नील के बेसिन के समान दजला और फरात का बेसिन भी हमारे अध्ययन के लिए एक प्रकार का अजायब घर है जहाँ हम दोनो बातो का अध्ययन कर सकते है। जगली अवस्था मे निर्जीव प्रकृति का वह साधारण और स्वाभाविक रूप जिसे मनुष्य ने परिवर्तित किया है और वह जीवन भी जिस रूप में पहले सुमेरी अग्रगामी जगल मे व्यतीत करते थे। किन्तु मेसोपोटामिया में इस प्रकार का अजायब घर हमे नही मिलेगा जिस प्रकार नील नदी के बेसिन की उस ओर जाने पर मिलता है जिधर से नदी निकलती है। यह फारस की खाडी के नये डेल्टा पर स्थित है जो दोनों नदियो के सगम से सुमेरी सभ्यता के जन्म से पहले ही नही बना था, बल्कि उसके विनाश के बाद और उनके उत्तराधिकारी बैबिलोनी सभ्यता के विनाश के बाद भी बना। यह दलदल जो विगत दो-तीन हजार वर्षो मे धीरे-धीरे बना है वह आज तक अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे है क्योकि किसी मानव समाज मे यह शक्ति नहीं थी कि उनपर विजय प्राप्त कर सके। यहाँ जो लोग इस दलदल मे रहते है वह इस वातावरण के वश मे ही होकर रहने लगे है जैसा उनके पुकारे जाने वाले नाम (निक नेम) 'द वेब फीट' से मालूम होता है। यह नाम अग्रेज सिपाहियो ने १९१४–१८ के युद्ध मे रखा था जब उनसे सामना हुआ था। किन्तु आज तक वे उस कार्य के करने में सफल नही हुए जिसे ऐसे ही प्रदेश मे पाँच-छ हजार वर्ष पहले सुमेरी सभ्यता के जनको ने किया था अर्थात् दलदलो को नहरो और खेतो के जाल मे परिवर्तित कर दिया था।

चीनी सभ्यता की उत्पत्ति

यदि हम पीली नदी (ह्वागहो) की निचली घाटी मे चीनी सभ्यता की उत्पत्ति पर विचार करे तो यहाँ हम देखेगे कि दजला और फरात और नील नदियो ने जो कठिन भौतिक परिस्थिति उपस्थित की थी उससे कही अधिक कठोर परिस्थिति का सामना मनुष्य को यहाँ करना पड़ा। इस उजाड़ प्रदेश मे जिसे मनुष्य ने किसी समय सभ्यता का केन्द्र बनाया दलदल, झाड-झखाड और बाढ़ की कठिनाई तो थी ही उसके ऊपर ताप की कठिनाई थी जो गर्मी मे बहुत अधिक और जाडे मे बहुत कम हो जाता था। चीनी सभ्यता के जनक उन लोगो की प्रजातियो से भिन्न नही थे जो दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम के उस महान् क्षेत्र मे रहती थी जो पीली नदी से ब्रह्मपुत्र तक और तिब्बती पठार से चीनी सागर तक फैला हुआ है। यदि इस विस्तृत प्रजाति के कुछ लोगो ने एक सभ्यता का निर्माण किया और शेष सब सास्कृतिक दृष्टि से निष्फल रहे तो इसका कारण यह हो सकता है कि जो सर्जनात्मक शक्ति सबमे छिपी रहती है वह केवल कुछ ही लोगो मे जाग्रत हुई क्योकि उन लोगो के सामने चुनौती आयी और शेष लोगो के सामने वह सघर्ष नही उपस्थित हुआ। उस सघर्ष का ठीक-ठीक स्वरूप इस समय जानना सम्भव नही है क्योंकि इस समय हमारे पास उतना ज्ञान नही है। निश्चित रूप से हम इतना ही कह सकते हैं कि चीनी सभ्यता के जनको को पीली नदी के पास के उनके निवास स्थान में वह काल्पनिक,

किन्तु भ्रान्तिपूर्ण सरल वातावरण नही था जो उनके पड़ोसियो के सामने था। इन्ही से सम्बन्धित सुदूर-दक्षिण के लोगों को, अर्थात् यांगत्सी घाटी में, जहाँ यह सभ्यता उत्पन्न नही हुई, जीवन के लिए कठिन संघर्ष नही करना पडा।

माया तथा एन्डियाई सभ्यताओ की उत्पत्ति

माया सभ्यता के सामने जो चुनौती थी वह ऊष्ण-कटिबन्ध के जगलो की प्रचुरता थी। 'माया सस्कृति इसी कारण सम्भव हो सकी कि उर्वर निचली जमीनों पर विजय प्राप्त कर इन लोगो ने खेती आरम्भ की। प्रकृति की बहुलता यहाँ मनुष्य के आयोजित चेष्टा से ही नियंत्रित हो सकती है। उच्च भूमि पर धरती की तैयारी साधारणतया सरल है क्योंकि वहाँ प्राकृतिक वनस्पति कम होती है और सिचाई से निन्यत्रण होता है। निचली जमीन पर बड़े-बडे पेडो को गिराना पड़ता है, झाडियो को जो जल्दी-जल्दी उग आती हैं काटते रहना पडता है, किन्तु जब प्रकृति पर विजय प्राप्त हो जाती है तब उसका बदला किसानो को कई गुना अधिक मिलता है। एक बात यह भी है कि जगलो के कट जाने से जीवन की परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल हो जाती हैं जो घने जगलो मे सम्भव नही है।"[1]

इस सघर्ष के परिणामस्वरूप पनामा डमरूमध्य के उत्तर माया सभ्यता का जन्म हुआ, किन्तु इस डमरूमध्य के दक्षिण की ओर इस प्रकार की कोई बात नही हुई। दक्षिण अमेरिका में जिन सभ्यताओ का जन्म हुआ उनके सामने दो भिन्न चुनौतियाँ थी। एक एण्डियाई पठार से और दूसरी पडोस के पैसिफिक तट से। पठार पर एण्डियाई सभ्यता के जनको के सामने कठोर जलवायु और अनुपजाऊ धरती थी। किनारे पर गर्म और सूखा था, विषुवत् प्रदेश का वर्षा विहीन समुद्र-स्तर (सी-लेबल) का रेगिस्तान था, जहाँ मनुष्य के प्रयत्न से ही कुछ उग सकता था। समुद्र तट की सभ्यता के अगुओ ने, मरुभूमि में पश्चिमी पठार से जो नदियाँ आती थी, उनका जल एकत्र किया और सिंचाई द्वारा वहाँ खेती आरम्भ की। पठार के अगुओ ने पहाड़ी ढालों पर मिट्टी डाल-डाल सीढ़ीनुमा खेत बनाये और हर जगह बडे परिश्रम से दीवार बनाकर उनकी रक्षा में लगे रहे।

मिनोई सभ्यता की उत्पत्ति

हमने छ असम्बन्धित सभ्यताओ से पॉच के सम्बन्ध मे विवरण उपस्थित किया है कि किस प्रकार भौतिक वातावरण की चुनौती का सामना करके उनका जन्म हुआ। इस सर्वेक्षण मे हमने उस संघर्ष का विवरण नही दिया जो दूसरे प्रकार की भौतिक चुनौती थी। यह सागर की चुनौती थी।

'मिनोस के सागर राज्य' के अगुआ कहाँ से आये ? यूरोप से, एशिया से या अफ्रीका से ? नकशा देखने से जान पडेगा कि यह यूरोप या एशिया से आये होगे क्योकि यह टापू उत्तरी अफ्रीका की तुलना में दोनो महाद्वीपो की मूल-भूमि से अधिक निकट है। क्योकि यह टापू डूबे हुए पहाड़ो की चोटियाँ है जो यदि प्रागैतिहासिक काल मे धँस न गयी होती और जल की बाढ न आ गयी होती, तो अनातोलिया से यूनान तक लगातार फैली होती। पुरातत्त्व वेत्ताओ को उल्टा, किन्तु

१. एच० जे० स्पिन्डेन्ड : एन्शेन्ट सिविलिजेशन्स आव मेक्सिको एण्ड सेन्ट्रल अमेरिका, पृ० ६५।

निश्चित प्रमाण यह मिलता है कि मनुष्य के प्राचीनतम निवास का चिह्न क्रीट मे है । यह टापू यूनान और अनातोलिया दोनों से दूर है यद्यपि अफ्रीका की तुलना मे दोनो से निकट है । मानव जाति-विज्ञान (एथनालोजी) उस विचार का समर्थन करता है जिसका पुरातत्त्व सकेत करता है । क्योकि यह प्राय सिद्ध है कि एजियन सागर के सामने के महाद्वीपो के निवासियो के रहने वाले विशेष शारीरिक रचना के लोग थे । अनातोलिया और यूनान के प्राचीनतम निवासी चौड़े माथे वाले थे, अफ्रेशियाई घास के मैदान के प्राचीनतम निवासी लम्बे सिर वाले थे । क्रीट के प्राचीनतम निवासियों की शारीरिक रचना के विश्लेषण से पता लगता है कि इस द्वीप के निवासी मुख्यत या सब लम्बे सिर वाले थे । और चौडे माथे वाले, यद्यपि बाद मे इनकी प्रधानता हो गयी, क्रीट के रहने वालो मे नही थे, या यदि थे तो बहुत कम सख्या मे । मानव जाति-विज्ञान के प्रमाण मे हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि एजियाई द्वीप समूह पर पाँव रखने वाला पहला मनुष्य अफ्रेशियाई घास के मैदान मे सूखा पडने से वहां का प्रवासी रहा होगा ।

सूखा पडने के कारण जिन पाँच समाजो ने यह चुनौती स्वीकार की, उसका वर्णन हम कर चुके है । अब छठे का वर्णन हम करेंगे । इनमे ये हैं—वे जो अपने निवास में ही रह गये और नष्ट हो गये, जो अपने-अपने निवास पर ही रह गये और खानाबदोश हो गये, जो दक्षिण की ओर चले गये और जिन्होने अपने पुराने रहन-सहन को बनाये रखा, जैसे डिनका और शिल्लुक, जो उत्तर की ओर गये और यूरोपीय महाद्वीप पर बस गये और नव-पापाण युग के खेतिहर हो गये, जो जंगली दलदलो मे पैठे और मिस्री और सुमेरी सभ्यताओं का जिन्होने निर्माण किया । इसके साथ ही एक और चुनौती को हम जोडना चाहते है—जो लोग उत्तर गये, किन्तु उस समय के अथवा आज के डमरूमध्यो की सरल राह उन्होंने नही पकडी । उन्होने भूमध्यसागर के भयानक सागर का सामना किया, उसे पार किया और मिनोई सभ्यता को जन्म दिया ।

यदि यह विश्लेषण ठीक है तो यह इस सचाई का नया उदाहरण है कि सभ्यताओ की उत्पत्ति मे चुनौती और उसका सामना ही मुख्य तथ्य है, निकटता नही जैसे अन्तिम उदाहरण । यदि निकटता ही द्वीप-समूह पर बस जाने के लिए निश्चयात्मक बात होती तो निकटतम महाद्वीपो के निवासी अर्थात् एशिया और यूरोप के रहने वाले सबसे पहले एशियाई द्वीपो मे बस गये होते । इनमे से बहुतेरे टापू इन महाद्वीपों के बहुत ही समीप है, जब क्रीट अफ्रीका के निकट से निकट स्थान से दो सौ मील दूर है । यूरोप और एशिया मे जो सबसे निकट द्वीप है, जहाँ कि जान पडता है लोग क्रीट के बहुत दिनो बाद तक नही बसे थे, उनमे लम्बे सिर वाले और चौडे माथा वाले साथ ही बस गये । इससे यह सकेत मिलता है कि अफ्रेशियनो की मिनोई सभ्यता की स्थापना के बाद दूसरे उनका स्थान लेने आये । इन लोगो ने, चाहे पहले अग्रगामियो की नकल की हो या चुनौती का दबाव पडा हो, जिसको हम ठीक-ठीक बता नही सकते, उसी प्रकार सामना किया जैसे आरम्भ मे क्रीट पर बसने वाले अफ्रेशियनो ने अधिक भीषण परिस्थिति मे किया थी ।

सम्बद्ध सभ्यताओ की उत्पत्ति

जब हम असम्बद्ध सभ्यताओ से जो आदिम समाज की इन अवस्था से विकसित हुई बाद की सभ्यताओ पर विचार करते है, जो किसी न किसी रूप मे 'सभ्य' पूर्वजो से सम्बन्धित थी, तब इनके बारे मे स्पष्ट जान पडता है कि इन्हे स्फूर्ति प्रदान करने के लिए थोडी-बहुत भौतिक चुनौती रही हो, किन्तु इनकी मुख्य चुनौती मानवीय थी जो उन समाजो द्वारा उपस्थित हुई जिनसे ये

सम्बद्ध थे । यह चुनौती, सम्बन्ध मे ही विद्यमान रहती है, जो विभेद से उत्पन्न होती है और अलगाव से अन्त होती है । यह विभेद पूर्ववर्ती सभ्यता के समाज के अन्दर ही उस समय उत्पन्न होता है, जब उस सभ्यता की सर्जनात्मक शक्ति कम होने लगती है---जो शक्ति में अपने विकास के समय समाज के अन्दर अथवा उसके बाहर लोगो के हृदयो मे अपने आप समाज के प्रति निष्ठा जाग्रत करती है । जब ऐसा होता है ह्रासोन्मुख सभ्यता के पतन का दण्ड यह होता है कि वह बिखर कर शक्तिशाली अल्पसंख्यक हो जाती है । उसके शासन मे नृशंसता बढती जाती है, किन्तु उसमें नेतृत्व की शक्ति नही रह जाती और एक सर्वहारा वर्ग (बाहर और भीतर) बन जाता है जो अनुभव करने लगता है कि हममे भी आत्मा है और वह इस आत्मा को सजीव रखने का निश्चय करता है । इसी प्रकार की चुनौती इस रोगी समाज को मिलती है । शक्तिशाली अल्पसख्यक दबाना चाहते हैं जिसके कारण सर्वहारा मे अलग होने की भावना उत्पन्न होती है । दोनो भावनाओ के कारण सघर्ष चलता रहता है । पतनोन्मुख सभ्यता विनाश की ओर चलती है और जब वह मृतप्राय हो जाती है, तब सर्वहारा वर्ग स्वतन्त्र हो जाता है और उसके लिए जो पहले कभी जीवनी शक्ति देने वाला घर था अब कारागार बन जाता है और अन्त मे विनाश का नगर हो जाता है । सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसख्यक का यह सघर्ष जिस प्रकार आरम्भ से अन्त तक चलता है उसमे हमे उन नाटकीय आत्मिक संघर्षों का उदाहरण मिलता है जिसमें विश्व के जीवन के सर्जन का चक्र चला करता है---पतझड की निष्क्रियता से शिशिर की पीडा और उसके पश्चात् बसत का उत्साह । सर्वहारा का अलगाव गतिशील क्रिया है । यह चुनौती का सामना है जिसके द्वारा यिन का याग मे परिवर्तन होता है और इस गतिमान् अलगाव से सम्बन्धित सभ्यता का जन्म होता है ।

इस सम्बन्धित सभ्यता के आरम्भ मे क्या कोई भौतिक सघर्ष भी हमे मिल सकता है ? दूसरे अध्याय मे हमने देखा कि सम्बद्ध सभ्यताओ का सम्बन्ध अपने पूर्वजो से भौगोलिक स्थिति के विचार से भिन्न-भिन्न अशो में रहा है । एक ओर बैबिलोनी सभ्यता अपने पूर्वज सुमेरी समाज के स्थान पर ही विकसित हुई । यहाँ नयी सभ्यता की उत्पत्ति मे भौतिक सघर्ष का सामना नही करना पडा होगा । हाँ, यह सम्भव है कि दोनो सभ्यताओ के बीच के काल मे उनका जन्मस्थान प्राचीन प्राकृतिक अवस्था मे परिवर्तित हो गया हो और उनका सामना करने के लिए बाद की सभ्यता के जनकों को वही कार्य करना पड़ रहा हो जो उनके पूर्व की सभ्यता के जनको को करना पडा था ।

जब सम्बद्ध सभ्यता ने नवजीवन आरम्भ किया होगा और पहले की सभ्यता के क्षेत्र के पूर्णत: या अंशत. बाहर कार्य आरम्भ किया होगा तब अपने नये वातावरण का सामना उन्हे करना पड़ा होगा और उस पर विजय उन लोगों ने प्राप्त की होगी । हमारी पश्चिमी सभ्यता को अपनी उत्पत्ति के समय आल्प्स के पार (ट्रास-आल्पाइन) जगलो और वर्षा का सामना करना पड़ा होगा यद्यपि उसके पूर्वज हेलेनी सभ्यता को ऐसा नही करना पड़ा होगा । भारतीय (इण्डिक) सभ्यता की उत्पत्ति के समय इन लोगों को गंगा की घाटी के ऊष्ण प्रदेशीय जगलों तथा वर्षा का सामना करना पड़ा था, किन्तु उनके पहले की सुमेरी सभ्यता के पूर्वजो को सिन्धु की घाटी में तथा

उस प्रदेश में ऐसा नही करना पडा ।[१] हिताइत सभ्यता की उत्पत्ति के समय अनातोलिया के पठार से संघर्ष करना पडा, किन्तु उसके पूर्वज सुमेरी सभ्यता को ऐसा नही करना पडा । हेलेनी सभ्यता को अपनी उत्पत्ति के समय समुद्र से सघर्ष करना पडा, जो ठीक वैसा ही था जो उसके पूर्वज मिनोई सभ्यता को करना पडा । यह सघर्ष बाहरी सर्वहारा के लिए बिलकुल नया था क्योंकि मिनोई सागर राज्य की यूरोपीय स्थल सीमा के बाहर उन्हे सामना करना पडा । ये महाद्वीपी बर्बर, जो एकियाई तथा उसी के समान और जातियो के समान थे जब मिनोई जनरेला के युग के बाद सागर पर विजय प्राप्त करने के लिए आये, तब उनके सामने वही कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं जो मिनोई सभ्यता के नेताओं के सामने उनके काल मे हुई थी ।

अमेरिका में यूकेटी सभ्यता को अपनी उत्पत्ति के समय जल-विहीन, वृक्षहीन, अनुपजाऊ, चूने से मिली धरती का यूकेटी प्रायद्वीप से सघर्ष करना पडा और मेक्सिकी सभ्यता को आरम्भ मे मेक्सिकी पठार से सघर्ष करना पडा, किन्तु इनके पूर्वज माया सभ्यता को इन दोनों मे से किसी से संघर्ष नही करना पडा ।

अब रह जाती है बात हिन्दू, सुदूर-पूर्व, परम्परावादी ईसाई, अरबी और ईरानी सभ्यताओ की । ऐसा जान पडता है कि इनको किसी भौतिक सघर्ष का सामना नही करना पडा । क्योंकि इनके निवास स्थान यद्यपि बैबिलोनी सभ्यता की भाति अपनी पूर्व सभ्यताओं के निवास स्थानो के समान नही थे, फिर भी उन पर इन सभ्यताओ ने अथवा दूसरी सभ्यताओ ने विजय प्राप्त कर ली थी । हमने सकारण परम्परावादी ईसाई सभ्यता तथा सुदूर-पूर्वी सभ्यता को विभाजित किया था । रूस वाली परम्परावादी ईसाई सभ्यता की उपशाखा को जितने कठोर जगलो, वर्षा और ठड से सामना करना पडा उतना पश्चिमी सभ्यता का नही और कोरिया और जापान मे सुदूर-पूर्वी उपशाखा को समुद्र से जो सघर्ष करना पडा वह उस सघर्ष से भिन्न था जो चीनी सभ्यता के नेताओ को करना पडा ।

इस प्रकार हमने स्पष्ट किया है कि सम्बद्ध सभ्यताओं को निश्चय ही उस मानवी सघर्ष का सामना करना पडा जो उनकी पूर्व सभ्यता के विघटन मे निहित था, जिस सभ्यता से उनकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु सबमे नही । कुछ अवस्थाओ मे उन्हे उसी प्रकार के भौतिक वातावरण से भी सघर्ष करना पडा जिस प्रकार असबद्ध सस्थाओं को करना पडा । इस समीक्षा को पूरा करने के लिए हमे यह भी जानना चाहिए कि क्या असम्बद्ध सभ्याताओ को भौतिक सघर्ष के अतिरिक्त मानवी सघर्ष का भी सामना करना पडा, जब वे आदिम समाजो मे अलग हुए । इस पर हम इतना ही कह सकते है कि ऐतिहासिक प्रमाण हमे नही मिलते । यह सम्भव है कि हमारी छ असम्बद्ध सभ्यताओ को प्रागैतिहासिक काल मे जहाँ उनकी उत्पत्ति छिपी हुई है, उसी प्रकार मानवी सघर्षों का सामना करना पड़ा हो जिस प्रकार सम्बद्ध समाजो के पूर्वजो को अपने शक्तिशाली अल्पसख्यको की नृशसता से । किन्तु इस विषय पर अधिक कहना शून्य मे कल्पना करना होगा ।

१. हमने श्री टॉयनबी के उस विवाद का वर्णन यहाँ नहीं दिया जो पुस्तक के पहले अंश में उन्होंने किया है कि सिन्धु घाटी की संस्कृति अलग थी अथवा सुमेरी सभ्यता का ही एक अंश । उन्होंने इसका निश्चय नहीं किया, किन्तु पुस्तक के दूसरे अध्याय में उन्होंने कहा है कि सिन्धु घाटी की संस्कृति सुमेरी समाज का अंश थी । ——सम्पादक ।

६. विपत्ति के गुण[1]

एक कठोर परीक्षा

हमने इस प्रचलित धारणा को अस्वीकार कर दिया है कि सभ्यताओ का उदय उस समय होता है जब ऐसा वातावरण होता है जहाँ जीवन के साधन सरल होते है और इसके उल्टे तर्कों को स्वीकार किया है। प्रचलित धारणा इस कारण पैदा हो गयी कि इस युग का दर्शक जो मिस्री सभ्यता का निरीक्षण करेगा—और इस दृष्टि से प्राचीन यूनानी भी हमारी ही भाँति 'आधुनिक' थे—वह वहाँ की धरती को उस रूप मे देखेगा जैसा मनुष्य ने उसे बना सँवार रखा है। वह समझता है जब सभ्यता के जनको ने कार्य आरम्भ किया तब यह धरती ऐसी ही थी। हमने यह बताने की चेष्टा की है कि निचली नील की घाटी किस रूप मे थी जब नेताओ ने वहाँ विकास का कार्य आरम्भ किया। इसके उदाहरण के लिए वह चित्र भी उपस्थित किया जिस रूप मे आज भी ऊपरी नील की घाटी है। भौगोलिक परिस्थिति के अन्तर का यह चित्र शायद विश्वासप्रद न लगा हो। इसलिए इस अध्याय मे हम उदाहरण देकर निश्चित रूप से प्रमाणित करेगे कि कुछ सभ्यताएँ विकसित होकर उसी क्षेत्र मे फिर नष्ट हो गयी और मिस्र के विपरीत वे आदिम अवस्था को लौट गयीं।

मध्य अमेरिका

एक उदाहरण माया सभ्यता के जन्म की घटती है। यहाँ हमे विशाल और शानदार तथा अलकृत सार्वजनिक भवनो के खण्डहर मिलते है जो इस समय ऊष्ण प्रदेशीय जगलो मे मानव बस्तियो से बहुत दूर है। मानो अजगर की भाँति जगल इन्हे निगल गया है और अब धीरे-धीरे उन्हे चबा रहा है और इसकी तन्तुएँ (टेण्ड्रिल) सुन्दर गढ़े हुए और जुड़े हुए पत्थरो के बीच पैठ कर उन्हे उघाड़ रही हैं। आज जो रूप इस प्रदेश का है और माया सभ्यता के समय जो रूप रहा होगा—दोनो मे महान् अन्तर है। इतना महान् कि उसकी कल्पना भी नही की जा सकती। एक समय रहा होगा जब ये विशाल सार्वजनिक भवन बड़े और बसे हुए नगरो के बीच रहे होंगे और ये नगर बड़े-बड़े उपजाऊ क्षेत्रो के बीच रहे होगे। इन जगलो ने पुन. फैल कर पहले खेतो को उदरस्थ किया और अन्त मे प्रासादो और नगरो को वे खा गये। यह मानव उपलब्धियो की नश्वरता का कितना करुणापूर्ण उदाहरण है! फिर भी कोपन, या टिकल या पैलेन्क की वर्तमान स्थिति से सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा यही नही मिलती। ये ध्वसावशेष जोरदार शब्दो में कह रहे है कि माया सभ्यता के जनकों को अपनी भौतिक परिस्थिति से अपने समय मे कितना सघर्ष करना पड़ा होगा। ऊष्ण कटिबन्ध की प्राकृतिक शक्ति ने जिस प्रकार बदला लिया और जिसमे उसका भयावह रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है, वही यह भी बताती है कि वे लोग कितने साहसी और शक्ति-

१. ट्वायनबी ने इस अध्याय का नाम यूनानी भाषा में रखा जिसका अर्थ होता है—'जो सुन्दर है उसकी प्राप्ति कठिन है' या 'उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए कठिन परिश्रम चाहिए, —सम्पादक।

शाली रहे होंगे जिन्होंने, इस शक्ति से संघर्ष किया और चाहे थोड़े ही समय के लिए हो, उस पर विजय प्राप्त की ।

लंका (सीलोन)

इसी प्रकार का अद्भुत और महान् कार्य वह भी था जो लंका के सूखे मैदानों को खेती के अनुरूप बनाने के लिए किया गया था । उसकी स्मृति आज भी टूटे हुए बाँधों और वृक्षों से से भर गये तालाबों के फर्शों में सजीव है । इन्हें पहाड़ी प्रदेश के जल वाले पार्श्व में किसी समय उन सिंहालियों ने बनाया था जिन्होंने भारतीय हीनयान दर्शन को स्वीकार कर लिया था ।

"ऐसे बड़े-बड़े ताल किस प्रकार बने इसे जानने के लिए लंका के इतिहास की जानकारी आवश्यक है । इस प्रणाली के निर्माण के अन्दर जो योजना है वह सरल, किन्तु महान् है । इन ताल बनाने वाले राजाओं ने सोचा कि पहाड़ के इस ओर जो विपुल पानी बरसे वह मनुष्य को अपनी भेंट दिये बिना समुद्र में न जाय ।

"लंका के दक्षिणी भाग के बीच विस्तृत पहाड़ी क्षेत्र है, किन्तु पूरब और उत्तर में हजारों वर्गमील सूखा मैदान है जिसमें आजकल बहुत कम आबादी है । मानसून के वेग के समय जब दिन प्रतिदिन बादलों की प्रबल सेना पहाड़ों पर आक्रमण करती है, प्रकृति ने एक रेखा बना दी है जिसे वर्षा पार नहीं कर पाती । कुछ स्थान तो ऐसे हैं जहाँ सूखे और नम प्रदेशों के बीच इतना कम अन्तर है कि एक ही मील के पार जान पड़ता है कि किसी दूसरे देश में आ गये हैं । यह रेखा सागर के एक तट से दूसरे तट तक चली गयी है । यह रेखा अचल है और मनुष्य के कार्यों का जैसे जंगल काटना—इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।"[1]

किन्तु लंका में भारतीय सभ्यता के प्रचारकों ने एक समय ऐसी असाधारण शक्ति अर्जित की कि मानसून से प्रताड़ित पहाड़ियों को विवश किया कि जो मैदान सूखे और उजाड़ थे वे उनके द्वारा जीवन और संपत्ति के स्रोत बनें ।

"पहाड़ी नदियों के पानी की निकासी की गयी और उनका जल नीचे बड़े-बड़े तालों में लाया गया । कुछ ताल चार हजार एकड़ के थे, उनमें से फिर नालियों द्वारा पहाड़ियों से दूर दूसरे बड़े तालों में पानी लाया गया और उनमें से और दूर तालों में । प्रत्येक बड़े ताल के नीचे धरातल पर और बड़ी-बड़ी नालियों में सैकड़ों छोटी नालियाँ और छोटे ताल थे । प्रत्येक छोटा ताल एक गाँव का केन्द्र था । और इस प्रकार सभी जगह पहाड़ों से पानी आता था । धीरे-धीरे प्राचीन सिंहालियों ने सारे मैदान पर विजय प्राप्त कर ली और आज वही मैदान निर्जन है ।"[2]

इन प्राकृतिक ऊसरों को मानव सभ्यता का स्थल बनाने में कितना कठोर परिश्रम करना पड़ा होगा, लंका में दो प्रमुख भू-दृश्यों से आज भी जान पड़ता है । जो ऊजाड़ धरती एक समय सींच कर उपजाऊ बस्ती बनाया गया थी वह फिर उजाड़ हो गयी, और आधे द्वीप में जहाँ वर्षा होती है आज चाय, काफी, तथा रबड़ उत्पन्न किया जाता है ।

१. जान स्टिल : द जंगल टाइड, पृ० ७४–७५ ।
२. वही, पृ० ७६–७७ ।

उत्तरी अरब की मरुभूमि

हमारे विषय का बहुत विख्यात और बहुत प्रचलित उदाहरण पेट्रा और पालमिरा की वर्तमान स्थिति है । इस दृश्य से इतिहास के दर्शन को बहुत प्रेरणा मिली है, 'बोलने' के 'ला सइने' (१७९१) से आज तक । आज सीरियाई सभ्यता के ये पुराने निवास स्थान उसी स्थिति मे हैं जिसमें माया सभ्यता के पुराने निवास स्थान । यद्यपि जिस प्रतिकूल परिस्थिति ने अरबी क्षेत्र पर प्रहार किया वह अफ्रेशियाई स्टेप था और ऊष्ण प्रदेशीय जगल नही । खण्डहरो द्वारा यह ज्ञात होता है कि ये कलापूर्ण मन्दिर, ये मण्डप, ये चैत्य जब अपने अविच्छिन्न रूप मे रहे होगे तब वे बडे-बडे नगरों की शोभा रहे होगे । और यहाँ पुरातत्त्व से जो प्रमाण मिलते हैं और जो माया सभ्यता का चित्र उपस्थित करने के लिए मात्र आधार है लिखित ऐतिहासिक अभिलेखो द्वारा भी पुष्ट होते हैं । हम जानते है कि सीरियाई सभ्यता के नेता जिन्होने मरुभूमि में इन विशाल नगरो की कल्पना की वे उस 'जादू' के पण्डित रहे होंगे जिसके जानकार सीरियाई कथा में मूसा को बताया जाता है ।

ये जादूगर जानते थे कि सूखी चट्टानो मे से कैसे पानी निकाला जा सकता है और किस प्रकार उजाड़ मरुभूमि मे से उन्हें ले जा सकते हैं । अपने प्रौढ काल मे पेट्रा और पालमिरा ऐसे बागो के बीच रहे होंगे जहाँ सिचाई की अच्छी व्यवस्था रही होगी । जैसे बाग आज भी दमिश्क के चारो ओर है । किन्तु पेट्रा और पालमिरा उस युग मे भी केवल सकीर्ण मरु-उद्यान (ओएसिस) के बल पर ही नही जीवित थे, जैसे आज दमिश्क भी नही है । उनके सेठ शाक-सब्जी उत्पन्न करने वाले माली नही थे, व्यापारी थे जिन्होने एक मरु-उद्यान से दूसरे मरु-उद्यान तक, तथा महाद्वीप से महाद्वीप तक सम्बन्ध स्थापित कर रखा था और उनके कारवाँ इन मरु-उद्यानो के बीच के स्टेप तथा मरुभूमि के आरपार करने मे सदा व्यस्त रहते थे । उनकी वर्तमान स्थिति यही नही बताती कि अन्त में मरुस्थल ने मनुष्य पर विजय पायी, बल्कि यह भी कि इसके पहले मनुष्य की विजय मरुस्थल पर कितनी विशाल थी ।

ईस्टर द्वीप

ईस्टर द्वीप की वर्तमान स्थिति से पोलिनीशियाई सभ्यता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम उसी परिणाम पर पहुँचते हैं । इस युग में जब दक्षिण-पूरब प्रशान्त महासागर के एक दूरस्थ स्थान मे इस द्वीप का अन्वेषण हुआ वहाँ दो जातियाँ रहती थी । एक जाति सजीव रक्त और मास की, और दूसरी जाति पत्थर की । पोलिनीशियाई शरीर वाली आदिम जाति तथा सिद्ध कौशल की मूर्तियाँ । उस पीढी के जीवित निवाससियों मे जैसी मूर्तियाँ ये है वैसी मूर्तियाँ गढ़ने की क्षमता नहीं थी, न उन्हे समुद्र-यात्रा का इतना विज्ञान मालूम था कि खुले सागर मे हजारो मील की यात्रा करते क्योकि ईस्टर द्वीप और पोलिनीशियाई द्वीप-समूह के निकटतम द्वीप में इतना अन्तर है । यूरोपियन नाविको ने जब इसका पता लगाया उस समय यह अज्ञात काल से ससार से अलग रहा था । वहाँ के दोनो प्रकार के निवासियो, मनुष्यो और मूर्तियो से पता चलता है जैसा पालमिरा और कोपन के खण्डहरों से कि उनका भूतकाल कुछ भिन्न रहा होगा । ये मनुष्य उन लोगो की सन्तान होगे और ये मूर्तियाँ उन लोगो ने गढी होंगी जिन्होने भद्दी खुली डोंगियो मे नकशे और दिक्सूचको (कम्पास) के बिना प्रशान्त सागर की यात्रा की होंगी ।

और ऐसा नहीं हो सकता कि केवल एक बार इन्होंने यात्रा की हो और संयोगवश ईस्टर द्वीप में अग्रगामियो को लाये हो । मूर्तियो की संख्या इतनी अधिक है कि उन्हे बनाने में पीढियाँ लगी होंगी । इन बातो से सिद्ध होता है कि हजारों मील की खुले समुद्र की यात्रा बहुत दिनों तक बराबर जारी रही होगी । और अन्त में कुछ ऐसे कारण हुए होगे, जो हमे ज्ञात नही है कि जिस सागर को विजय कर मनुष्य वीरता से यात्रा करता रहा, उसने इस द्वीप को घेर लिया जैसे मरुभूमि ने पालमिरा को घेर लिया या कोपन को जंगल ने ।

ईस्टर द्वीप का यह प्रमाण पश्चिमी प्रचलित विचारो से भिन्न है जिसके अनुसार दक्षिण सागर के द्वीप धरती पर स्वर्ग है और उनके निवासी पतन के पूर्व के समान, आदम और हौवा की भाँति प्रकृति की सन्तानो की तरह रहते हैं । यह भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ कि यह मान लिया गया कि पोलिनीशियाई वातावरण का एक भाग ही सपूर्ण द्वीप समूह है । यहाँ का भौतिक वातावरण जल और थल का है । पोलिनीशियाइयो के पास समुद्र यात्रा के जो साधन थे उनके बिना किसी मनुष्य का यात्रा करना भीषण सघर्ष करना था । ऐसे नमकीन अपरिचित सागर का वीरता और सफलतापूर्वक सामना करके ही विजय प्राप्त हुई । अदम्य साहस से एक द्वीप से दूसरे द्वीप मे बराबर यात्रा हुई होगी और तब इन अगुओ ने किसी सूखे द्वीप पर पांव रखा होगा क्योकि ये द्वीप आकाश के तारो की भाँति प्रशान्त सागर मे बिखरे हुए है ।

न्यू इग्लैंड

आदिम प्राकृतिक अवस्था मे लौट जाने पर विचार समाप्त करने के पहले लेखक दो उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता है । एक कुछ दूर का है और एक स्पष्ट है । लेखक ने अपनी आंखो मे दोनो स्थान देखते है ।

मैं[1] न्यू इंग्लैड के कनेक्टिकर प्रदेश के एक गाव मे जा रहा था । राह मे एक उजडा गाव मिला । मुझसे बताया गया कि ऐसे अनेक गाँव हैं । किन्तु किसी यूरोपीय के लिए यह दृश्य अजीब और विलक्षण जान पड़े । 'टाउन हिल' इस गाँव का नाम था । दो शतियो तक यह ऐसा ही रहा है । गाँव के मैदान में लकडी का बना हुआ जाजी (ज्यारजियन) गिरजाघर था । गाँव, बाग, बगीचे और खेत थे । गिरजाघर प्राचीन स्मृति के रूप मे अभी था, किन्तु घर सब लोप हो गये थे । फलों के पेड जगली हो गये थे और खेत नष्ट हो गये थे ।

विगत एक सौ साल मे न्यू इग्लैड के निवासियो ने अपनी सख्या से कही अधिक अनुपात मे परिश्रम करके अमरीका महाद्वीप मे अतलान्तक से प्रशान्त सागर तक जगली प्रकृति से लडकर विजय प्राप्त की है । किन्तु इन्ही दिनों इस गाँव में जो उनके प्रदेश के केन्द्र में बसा था प्रकृति को पुन:विजय प्राप्त करने का अवसर मिला जिस प्रकृति को उनके पितामहों ने पराजित किया था और जहाँ वे शायद दो सौ वर्षों तक रहे थे । ज्यो ही मनुष्य ने अपना शासन इस पर से हटा लिया त्यों ही जिस तीव्रता, पूर्णता तथा स्वतन्त्रता से टाउन हिल पर प्रकृति ने अपना राज्य फिर से स्थापित किया था, इस बात को स्पष्ट करता है कि उस ऊसर धरती पर विजय प्राप्त करने के

१. जहाँ-जहाँ यह सर्वनाम पुस्तक में आया है लेखक श्री ट्वायनबी से सम्बन्धित है ।

लिए मनुष्य को कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। जितनी प्रबल शक्ति टाउन हिल को पराजित करने में लगी होगी उतनी अमरीका के पश्चिमी भाग पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त थी। इस परित्यक्त भूमि से यह बात समझ में आती है कि ओहियो, इलिनायस, कोलोरेडो, तथा कैलिफोरनिया आदि नये-नये नगर किस प्रकार जल्दी बन गये।

द रोमन कैम्पेग्ना

जो प्रभाव मुझपर टाउन हिल का हुआ वही रोमन कैम्पेग्ना का लिवी पर हुआ। उसे आश्चर्य हुआ कि असंख्य योद्धाओं ने ऐसे प्रदेश में निवास किया जो उसके समय में, जैसा हमारे समय में भी है,[१] दलदल और नितान्त ऊसर था। आज जो जंगली उजड़ा प्रदेश है वह उसे लैटिन तथा बोलशियन अगुओं ने उर्वर और बसने योग्य ग्राम बनाया था जो आज पुन: अपनी पूर्वावस्था में बदल गये। जिस शक्ति ने किसी समय इस कठोर छोटे इटालियाई प्रदेश को उर्वर और बसने योग्य बनाया था उसी शक्ति ने बाद में मिस्र से ब्रिटेन तक विजय प्राप्त की।

विश्वासघाती कैपुआ

ऐसी परिस्थितियों के अध्ययन के पश्चात् जहाँ सचमुच सभ्यताओं का जन्म हुआ था, जहाँ मनुष्य को और विशेष सफलताएँ प्राप्त हुईं और यह भी ज्ञान प्राप्त कर कि वे परिस्थितियाँ मनुष्य के लिए सरल नहीं थी, बल्कि इसके विपरीत थी, हम उस परिस्थिति का अब अध्ययन करें जो इनके पूरक है। हम उस वातावरण की परीक्षा करें जहाँ परिस्थितियाँ सरल थी और मानव जीवन पर उनका क्या प्रभाव पड़ा। इस अध्ययन में हमें दो विभिन्न परिस्थितियों का अन्तर समझ लेना आवश्यक है। एक तो वह जहाँ कठिन परिस्थिति का सामना करने के बाद सरल वातावरण में मनुष्य आया। दूसरी वह सरल परिस्थिति जिसे छोड़कर आदिम काल से जब से उसका विकास हुआ दूसरे और वातावरण में मनुष्य गया ही नहीं। दूसरे शब्दों में हमें यह अन्तर देखना है कि सरल वातावरण का प्रभाव सभ्यता की प्रगति में मनुष्य पर क्या पड़ा और आदिम मानव पर सरल वातावरण का क्या प्रभाव पड़ा।

इटली के क्लासिकी युग में कैपुआ में रोम को विपरीत परिस्थिति मिली। कैपुआ का कैम्पेग्ना मनुष्य के लिए उतना ही सहज था जितनी रोमन कैपेग्ना कठोर। रोमन लोग अपने अनाकर्षक देश से निकल कर एक के बाद एक अपने पड़ोसी देशों को जीतने चले गये, किन्तु कैपुआई अपने देश में पड़े रहे और एक के बाद दूसरा पड़ोसी उनको जीतता रहा। इनके अन्तिम विजेता सैमनाइट रहे और अपनी इच्छा से रोमनों को बुलाकर कैपुआइयो ने अपनी मुक्ति करायी। और रोम के इतिहास में सबसे संकटपूर्ण युद्ध के सबसे संकटपूर्ण समय, कैनी के युद्ध के बाद ही कैम्पेग्नाइयो ने रोम से यहाँ बदला लिया कि हैनिबल का स्वागत किया। कैपुआइयो के रुख बदलने के सम्बन्ध में रोमनों और हैनिबल के मत एक ही थे। क्योंकि यह युद्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण, शायद निश्चयात्मक परिणाम था। हैनिबल कैपुआ चला गया और जाड़े में वह वहीं रहा।

१. अब यह बात नहीं है। मुसोलिनी ने सफल परिश्रम द्वारा इसे सदा के लिए सुन्दर रहने योग्य बस्ती बना दिया है।

जिसका परिणाम ऐसा हुआ जो सबकी आशाओ के विपरीत था । जाड़े भर मे हैनिबल की सेना का इतना पतन हो गया कि फिर उसमे विजय की वह क्षमता नही रह गयी ।

आर्टेम्बेयर्स की सलाह

हेरोडोटस ने एक कथा लिखी है जिससे यह बात बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है । कोई आर्टेम्बेयर्स और उसके मित्र खुसरो (साइरस) के पास आये और यह परामर्श दिया—

"अब जब भगवान् जीयुस ने ऐसटाइनस को पराजित कर दिया है और फारस के राष्ट्र को और श्रीमन् आपको व्यक्तिगत रूप से इस राज्य का आधिपत्य सौपा है तब क्यो न हम इस पहाडी तथा संकीर्ण प्रदेश को जिसमें हम इस समय रहते है छोडकर किसी अच्छे देश मे चलकर बसे । ऐसे अनेक देश हमारे निकट और दूर है । हमे केवल चुन लेना है और हम ससार मे भी अब से अधिक प्रभाव जमा सकेगे । साम्राज्यवादियों के लिए यह स्वाभाविक नीति है । इस नीति को काम मे लाने के लिए अब से उपयुक्त और दूसरा समय न होगा जब कि हमारा साम्राज्य विस्तृत लोगो पर और सारे एशिया महाद्वीप पर फैला है ।"

"खुसरो ने सुना, किन्तु उस पर कुछ प्रभाव न पडा । इन अभ्यर्थियो मे उसने कहा कि जैसी उनकी इच्छा हो वैसा करे, किन्तु इसके लिए भी वे तैयार रहे कि उन्हे अपनी वर्तमान प्रजा का स्थान ग्रहण करना होगा । सुकुमार देशो मे सुकुमार मनुष्य पैदा होते है ।"[1]

ओडेसी और प्रस्थान

यदि हम हेरोडोटस के इतिहास से भी विख्यात पुराने साहित्य की ओर दृष्टि डाले तो हम देखते है कि ओडीसियस को साइक्लोप्स अथवा ऐसे दूसरे भयानक बैरियो से उतना भय नही था जितना उन लोगों से जो उसे आराम का जीवन बिताने के लिए आमन्त्रित करते थे । जैसे सरसी और उसके आतिथ्य का अन्त सुअरबाडे मे हुआ, लोटस-भक्षियों के देश मे, जहाँ कुछ बाद के कुछ विद्वानो के अनुसार सदा मध्याह्न काल ही रहता था, सायरेनो के देश मे जहाँ उसने अपने नाविकों को आज्ञा दी कि अपने कानो को मोम से बन्द कर ले जिससे उनका मधुर गान न सुन सके, और फिर कहा कि मुझे मस्तूल मे बाँध दो, और कैलिप्सा के यहाँ जिसकी सुन्दरता पेनिलोप से भी बढकर ईश्वरीय थी, किन्तु जो मनुष्य की सगिनी बनने के लिए नितान्त अयोग्य थी ।

इसरायलियो के प्रस्थान का जहाँ तक सम्बन्ध है पेन्टाट्यूक के क्षुब्ध लेखको ने उन्हे गुमराह करने के लिए सायरेन या सरसी का वर्णन तो नही किया, किन्तु हम यह अवश्य पढते है कि वह मिस्र की ऊँची रहन-सहन के लिए अवश्य लालायित रहते थे । यदि उनका वश चलता तो हमे विश्वास है कि पुरानी बाइबिल न बनी होती । भाग्यवश मूसा के विचार भी वैसे ही थे जैसे खुसरो के ।

मनमाना करने वाले

कुछ आलोचक कह सकते है कि जो उदाहरण हमने दियें है वे विश्वसनीय नही है । वे कहेगे कि यह तो माना जा सकता है कि जो कठोर जीवन से सरल जीवन की ओर गये उनका पतन हो जायगा जिस प्रकार भूखे मनुष्य को पूरा भोजन मिल जाय तो वह ठूँसकर भर लेगा

१. हेरोडोटस : पुस्तक ९, अध्याय १२२ ।

किन्तु जिन्होंने सदा कोमल परिस्थिति में जीवन बिताया है वे तो उसका ठीक उपयोग करेंगे। पहले जिन दो परिस्थितियों का भेद बताया गया था उसमें दूसरी पर हम विचार करेंगे। अर्थात् उन लोगों के बारे में जो कोमल परिस्थिति में सदा से रहते आये और दूसरी परिस्थिति का उन्हें अनुभव नही था। संक्रमण काल में जो अव्यवस्था होती है उसे छोड़ दिया जाय तो हम बिल्कुल कोमल परिस्थिति का ठीक अध्ययन कर सकेंगे। पचास वर्ष हुए एक पश्चिमी प्रेक्षक ने न्यासालैंड को जिस रूप मे देखा था उसकी सच्ची तस्वीर यो है—

"इन अपार जंगलों में पेड़ों पर पक्षी के घोसलो के समान छोटे-छोटे वहाँ के निवासियो के गाँव हैं जहाँ के लोग सदा एक दूसरे से तथा सामान्य बैरियो से भयभीत रहते हैं। यहाँ स्वाभाविक सरलता का जीवन आदिम मनुष्य व्यतीत करते है। न उनके पास कपड़े है, न सभ्यता है, न शिक्षा है, न धर्म है। प्रकृति की ये सच्ची और सहज सन्तान हैं। ये विचार रहित, चिन्ता से मुक्त और सन्तुष्ट हैं। ये मनुष्य प्राय. आनन्द मे जीवन बिताते है, उन्हे किसी वस्तु की आवश्यकता नही है। बहुधा लोग अफ्रीकियो को काहिल कहते हैं, किन्तु यह इस शब्द का अशुद्ध प्रयोग है। उसे परिश्रम करने की आवश्यकता नही है। इतनी उदार प्रकृति के होते हुए परिश्रम करना निरर्थक होगा। जिसे उसकी काहिली कही जाती है वह उसके जीवन का वैसा ही स्वाभाविक अश है जैसे उसकी चिपटी नाक। उसे मुस्ती के लिए दोष देना वैसा ही होगा जैसा कछुए को।"[१]

विक्टोरियन युग के कठोर परिश्रमी जीवन के समर्थक चार्ल्स किंग्सले दक्षिण-पश्चिमी पवन के बजाय उत्तर-पूर्वी पवन को अधिक पसन्द करते थे। उन्होने एक कहानी लिखी थी 'द हिस्टरी आव द ग्रेट एण्ड फेमस नेशन आव डू-एज-यू-लाइक्स, जो कठिन परिश्रम के देश से भाग आये क्योकि वह दिन भर सारंगी (ज्यूज हार्प) बजाना चाहते थे।' परिणाम यह हुआ कि पतित होकर गोरिल्ला हो गये।

आधुनिक नैतिकवादियो और हेलेनी कवियो के अफीमचियो (लोटस-ईटरो) के प्रति विभिन्न मत मनोरजक है। हेलेनी कवियो के हिसाब से अफीमची तथा उनका प्रदेश सभ्यता के प्रचारक यूनानियो के मार्ग मे पिशाचो की ओर से फन्दा है। इसके विपरीत किंग्सले आधुनिक अंग्रेजी मनोवृत्ति प्रदर्शित करता है। वह डू-एज-यू-लाइको को इतनी घृणा से देखता है कि उसके लिए उनका कुछ भी आकर्षण नही है और वह यह कर्तव्य समझता है कि उन्हे अंग्रेजी साम्राज्य मे, अपनी नही, उनकी भलाई के लिए ले लिया जाय और पहनने के लिए पतलून दी जाय और पढ़ने के लिए बाइबिल।

हमारा अभिप्राय इसे स्वीकार या अस्वीकार करना नही है। हमे तो समझना है। इस दृष्टान्त का परिणाम बाइबिल की उत्पत्ति की पुस्तक (बुक आव जेनेसिस) के आरम्भिक अध्यायो में स्पष्ट है। जब आदम और हौवा अदन के लोटस प्रदेश से निकाल दिये गये उसके बाद ही उनके वशज खेती, धातुविज्ञान और वाद्य-यन्त्रो के आविष्कार करने के योग्य हुए।

१. एच० ड्रमंड—ट्रापिकल अफ्रीका, पृ० ५५-६।

७. वातावरण की चुनौती

(१) कठोर देशों की प्रेरणा (स्टिमुलस)

खोज की पद्धति

सम्भवत. हमने इस सत्य को प्रमाणित कर दिया है कि सुख का जीवन सभ्यता का बैरी है। क्या हम इसके एक कदम आगे जा सकते हैं ? क्या हम यह कह सकते हैं कि जितनी ही परिस्थिति कठोर होती जाती है उतनी ही सभ्यता की प्रगति को स्फूर्ति प्राप्त होती है ? इसके पक्ष में तथा इसके विरोध में प्रमाणो की हम परीक्षा करे और देखे कि क्या परिणाम निकलता है ? इस बात का प्रमाण कि परिस्थिति की कठिनाइयाँ और सभ्यता की स्फूर्ति साथ-साथ चलती है, खोजना कठिन नही है। बल्कि इस पक्ष में इतने अधिक प्रमाण मिलते है कि उलझन हो जाती है। इस प्रकार के बहुत-से तुलनात्मक उदाहरण मिलते है। हम अपने उदाहरणो के दो वर्ग बनाये। भौतिक वातावरण का वर्ग और मानवीय परिस्थिति का वर्ग और पहले भौतिक वर्ग पर विचार करें। इसके दो उपविभाजन होते है। उन प्रभावो की तुलना जो विभिन्न अशो की भौतिक कठिनाइयो के कारण उत्पन्न हुई है और नये तथा पुराने प्रदेशो के प्रभावो की तुलना, इस बात का विचार छोडकर, कि स्वाभाविक रूप मे वह भू-प्रदेश कैसा है।

हांगहो और याग्त्सी नदियाँ

आरम्भिक उदाहरण के लिए हम इन दो नदियो को निचली घाटियो को देखे कि उनसे कितनी कठिनाई उत्पन्न हुई होगी। ऐसा जान पडता है कि जब पहले-पहल मनुष्य ने हागहो की निचली घाटी में रहना आरम्भ किया, यह नदी वर्ष मे किसी समय भी नौका चलाने योग्य नही थी। जाड़े में या तो वह जमी रहती थी या उसमे बर्फ के बडे-बडे टुकडे तैरा करते थे और बसन्त में यह बर्फ गल जाती थी जिससे नदी मे बाढ आ जाती थी जिससे नदी अपना रास्ता बदल देती थी और पुराने रास्ते मे जगल से भरे दलदल बन जाते थे। आज भी, तीन-चार हजार साल के बाद, जब मनुष्य के श्रम से दलदल सुखा दिये गये, जंगल साफ कर दिये गये है और बाँध बन गये है, बाढ़ से कभी-कभी पहले जैसा ही विनाश होता है। अभी सन् १८५२ मे निचली हागहो ने अपना रास्ता बदल दिया और जो धारा पहले शान्तुग प्रायद्वीप के दक्षिण गिरती थी, प्रायद्वीप के उत्तर दो सौ मील की दूरी पर गिरने लगी। याग्त्सी सदा से नौका चलाने योग्य थी और यद्यपि उसमे भीषण बाढ़ आती रही है, किन्तु वह इतने बहुतायत से नही आती थी जितनी हांगहो मे। याग्त्सी की घाटी मे जाडा इतना कठोर नही पडता। फिर भी हांगहो नदी के किनारे चीनी सभ्यता का जन्म हुआ, यांग्त्सी के नही।

अटिका और बेओशिया

कोई यात्री जो समुद्र से नही, धरती की राह से, उत्तर के पृष्ठ-प्रदेश की ओर से यूनान में आये या ऊपर से जाय तो वह यह अनुभव किये बिना नही रह सकता कि हेलेनी सभ्यता का

मूल स्थान कठोर, पहाड़ी और सूखा है, उस धरती की तुलना में जो उसके उत्तर है जहाँ किसी सभ्यता का जन्म नहीं हुआ। ऐसा ही अन्तर एजियाई क्षेत्र में मिलता है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई रेल से एथेन्स से सैलोनिका होते हुए मध्य यूरोप की ओर चले तो यात्रा के पहले भाग में पश्चिमी या मध्य यूरोपीय यात्री को ऐसा दृश्य देखने को मिलेगा जिससे वह परिचित है। कुछ घंटों के बाद जब गाडी पारनेस पहाड़ की पूरबी ढाल से घूमती चलती है जहाँ नीबू के छोटे पेड़ और चूना-पत्थर के शृंग मिलते हैं तो यात्री को आश्चर्य होता है कि मैं धीरे-धीरे लहरियादार, गहरी मिट्टी वाले उपजाऊ क्षेत्र में चला जा रहा हूँ। किन्तु यह भू-दृश्य थोड़ी देर के लिए ही मिलता है। ऐसा दृश्य उसे फिर तभी मिलेगा जब वह नीश के आगे मोरावा से उतर कर मध्य डैन्यूब तक पहुँचेगा। हेलेनी सभ्यता के समय इस विशेष क्षेत्र का क्या नाम था ? इसे बेओशिया कहते थे और हेलेनी लोगों के मन मे इसका विशेष अर्थ था। वे इस शब्द से उस विशिष्ट प्रकृति का मनुष्य समझते थे जो गँवार, निष्क्रिय, कल्पनाविहीन और कठोर होता था और ऐसी प्रकृति हेलेनी सस्कृति के बिलकुल प्रतिकूल थी। यह अन्तर और भी तीव्र इस कारण हो गया था कि सिथीरोन पहाड़ के पीछे और पारनेस पहाड के कोने पर जिधर से आज रेल घूम कर जाती है अटिका था जो हेलेनी सभ्यता का महान् क्षेत्र समझा जाता था। इस प्रदेश की प्रकृति हेलेनी सभ्यता का विशुद्धतम रूप थी। और यह प्रदेश ऐसे क्षेत्र के सन्निकट था जिसकी प्रकृति हेलेनी प्रकृति से नितान्त भिन्न थी। दोनो का अन्तर ऐसे वाक्यो से स्पष्ट होता है—'बेओशियाई सुअर' और 'ऐटिक नमक'।

इस सम्बन्ध मे मनोरजक बात यह है कि जिस सास्कृतिक भेद का प्रभाव हेलेनी बुद्धि पर इतना प्रबल पड़ा वह भौगोलिक दृष्टि से उसी के अनुरूप था अर्थात् सस्कृति के भेद के साथ भौतिक भेद भी था। क्योकि अटिका 'यूनान का यूनान' था, केवल आत्मिक दृष्टि से नही, शारीरिक दृष्टि से भी। उसका एजियाई देशो से वही सम्बन्ध है जो उनका दूर के देशों से है। यदि आप यूनान मे पश्चिम की ओर कोरिंथिया की खाड़ी की ओर से जायँ तो गहरी कोरिंथ नहर के चट्टानो के समान किनारो तक आपको सब जगह यूनानी भू-दृश्य मिलेंगे जो सुन्दर किन्तु अनाकर्षक है, किन्तु जब आपका जहाज सरोनिक खाड़ी में पहुँचता है आप ऐसा रूखा दृश्य देख कर चकित होगे जिसे देखने की, स्थल डमरूमध्य के उस पार के दृश्य के कारण, आपको आशा न होगी। यह कठोरता उस समय सबसे अधिक मिलती है जब सलामिस के कोने से घूमकर आप अपने सामने अटिका फैला हुआ देखते हैं। अटिका की मिट्टी पथरीली और हल्की है क्योकि अनाच्छादन (डिनुडेशन) की क्रिया वर्षा के जल से पहाड़ों की मिट्टी को समुद्र में बहा ले जाना, बहुत पहले आरम्भ हो गयी थी और अफलातून के समय में पूरी हो चुकी थी जैसा कि 'क्रीटियास' मे विस्तार से दिया हुआ है। बेओशिया में आज तक ऐसा नहीं हुआ है।

एथेन्स के निवासियों ने अपने गरीब देश में क्या किया ? हम जानते है कि उन्होने वह किया कि एथेन्स यूनान का शिक्षक बना। अटिका के चरागाह जब सूख गये और उर्वर धरती जब नष्ट हो गयी तब यूनानियों ने अपना पुराना व्यवसाय, पशुपालन और खेती छोड दी। यही उस युग में यूनान का विशेष उद्यम था। उन्होने जैतून के बाग लगाना आरम्भ किया और नीचे की मिट्टी (सब स्वायल) से काम लेना आरम्भ किया। एथेन्स का यह सुखमय पेड पहाड़ों की रक्षा करता है और पहाडों पर जीता भी है। किन्तु मनुष्य केवल जैतून का तेल पीकर जीवित

नहीं रह सकता। अपने जैतून के कुंजों के सहारे जीवित रहने के लिए उसने जैतून के तेल का का परिवर्तन सीथिया के अनाज से किया। सीथिया के बाजार में जैतून का तेल भेजने के लिए उसने बेड़े बनाये और जहाजों द्वारा भेजा जिसके कारण आटिका के मिट्टी के बर्त्तनों का निर्माण हुआ और व्यापारिक जहाजी बेडा भी तैयार हुआ। व्यापार के लिए मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है इसलिए आटिक की चाँदी की खानो की खोज हुई।

किन्तु यह सम्पत्ति एथेन्स की राजनीतिक, कलात्मक तथा बौद्धिक संस्कृति की नींव मात्र थी। इन संस्कृतियों ने एथेन्स को 'हेलास का शिक्षक' और बेओशियाई पशुता के जवाब में 'आटिक नमक' की संज्ञा दी। राजनीतिक स्तर पर परिणाम था एथेन्स का साम्राज्य। कलात्मक स्तर पर मिट्टी के बर्त्तनों पर आटिक के कलशो की चित्रकारी का अवसर मिला जिसके द्वारा नवीन सौन्दर्य की सृष्टि हुई जिसने दो हजार वर्ष बाद भी अंग्रेजी कवि कीट्स को मुग्ध कर दिया।

बाइजान्टियम और कालचिडान

हेलेनी ससार का जो विस्तार हुआ उसका कारण हम पहले अध्याय मे वर्णन कर चुके है। (पृ० ४ देखिए) इससे हमारे विषय के सम्बन्ध मे एक और हेलेनी उदाहरण मिलता है। वह है दो यूनानी उपनिवेशो का अन्तर। एक कालचिडान जो मर्मर सागर से बासफरस में प्रवेश करते हुए एशिया की ओर था और दूसरा बाइजान्टियम जो यूरोप की ओर था।

हेरोडोटस कहता है कि इन दोनो नगरो के निर्माण के लगभग एक सौ साल बाद मेगाबाजस के फारसी राज्यपाल ने 'एक लतीफा बनाया जिसने उसे हेलासपाटी यूनानियों मे अमर कर दिया। बाइजान्टियम मे उसने सुना कि कालचिडोनियनो ने बाइजान्टिनियो से सत्रह साल पहले अपना नगर बनाया। सुनते ही उसने कहा—कि कालचिडोनी सब अन्धे रहे होगे। उसका अभिप्राय यह था जब उपयुक्त स्थान उन्हे उपलब्ध था तब उन्होंने अनुपयुक्त स्थान क्यों चुना।'[1]

किसी घटना के बाद बुद्धि अर्जन करना सरल है। मेगाबाजस के समय (जब फारसियों ने यूनान पर आक्रमण किया) दोनों नगरो के भाग्यों का फैसला हो चुका था। कालचिडान साधारण कृषि उपनिवेश अब भी था जैसा उसे बनाने का अभिप्राय था। और कृषि की दृष्टि से वह बाइजाण्टियम से बहुत उत्तम था। बाइजान्टीनी बाद में आये और जो बच रहा था उसे ग्रहण किया। कृषि में वे असफल रहे क्योकि थ्रेस के बर्बर सदा उनपर धावा बोलते रहे। किन्तु सयोग से उन्हे गोल्डन हार्न बन्दरगाह मिल गया। वह उनके लिए मानो सोने की खान था। क्योकि जो धारा बासफारस से आती है वह जहाज को गोल्डन हार्न की ओर दोनों ओर से ले जाने में सहायक होती है। यूनानी उपनिवेश की स्थापना के पाँच सौ साल बाद और सार्वभौम राजधानी कुसतुनतुनिया के रूप मे परिवर्तित होने के पाँच सौ साल पहले दूसरी शती ई०पू० में पोलीबियस ने लिखा था :—

'बाइजान्टिनी ने ऐसे स्थान पर अधिकार जमा लिया है जो सुरक्षा तथा समानता दोनों दृष्टियों से हेलेनी ससार मे सागर की ओर सबसे अनुकूल है और स्थल की ओर सबसे अनुपयुक्त। सागर की ओर काले सागर के मुहाने पर बाइजान्टियम का इतना प्रभुत्व है कि किसी व्यापारिक

१. हेरोडोटस : चौथी पुस्तक, अध्याय १४४।

जहाज का सागर के भीतर अथवा बाहर जाना बाइजान्टीनियों की इच्छा बिना असम्भव है ।'[१]

किन्तु मेगाबाजस को उसके लतीफे के कारण दूरदर्शिता की जो ख्याति मिली वह उसके योग्य न थी । इसमें बिलकुल सन्देह नही कि जिन उपनिवेशियों ने बाइजान्टियम चुना वे यदि बीस साल पहले आये होते तो उन्होंने रिक्त कालचिडान को ही चुना होता । और यह भी सम्भव है कि यदि थ्रेसी आक्रमणकारियो से उनकी खेती बची होती तो वे अपने स्थान का व्यापारिक विकास की ओर उपयोग न करते ।

इसरायली, फोनीशी तथा फिलस्तीनी

यदि हम हेलेनी इतिहास से सीरियाई इतिहास की ओर ध्यान दे तो हम देखेगे कि मिनोई काल के बाद जो जनरेला हुआ और सीरिया मे अनेक लोग जो आये वे उसी अनुपात मे विभिन्न जनपदो मे बसे जिस अनुपात मे भौतिक वातावरण की कठिनाइयाँ थी । दमिश्क की अबाना और फारपर नदियो के आरमियनों ने सीरियाई सभ्यता के विकास का नेतृत्व नहीं ग्रहण किया, न वे दूसरे आरमियन जो ओरोन्टेज के किनारे बसे जहाँ बहुत दिनों बाद सेल्युकी वश ने एटियोक राजधानी बनायी, न इसरायल के उपकुल के वे लोग थे जो जार्डन नदी के पूरब ठहरे कि गिलीड के बढिया चरागाहो मे 'बाशन के बैलो' को मोटा करे । सबसे अद्भुत बात यह है कि सीरियाई समार के विकास की प्रधानता उन लोगो के हाथ मे नही थी जो एजियाई द्वीपो से भाग कर सीरिया मे आये थे और जो बर्बर नही थे, बल्कि मिनोई सभ्यता के वे उत्तराधिकारी थे जिन्होंने कारमेल के दक्षिण तराई तथा बन्दरगाहो पर अधिकार कर लिया । हमारा अभिप्राय फिलस्ती-नियो से है । यूनानियो मे बेओशियो के समान इनका नाम भी घृणा से लिया जाता है । फिलस्तीनी और बेओशी उतने मलिन न भी रहे हो जितने यूनानियो ने उन्हे चित्रित किया है, और हमारा ज्ञान उनके विरोधियो (यूनानियो) द्वारा ही हमे प्राप्त होता है, तब भी इसका क्या उत्तर है कि उनके इन यूनानी विरोधियो का नाम आने वाली सन्तति श्रद्धा और सम्मान से स्मरण करती है ।

सीरियाई सभ्यता की प्रतिष्ठा तीन विशेषताओ के लिए है । उसने वर्णमाला का आविष्कार किया, उसने अतलान्तक महासागर को ढूंढ निकाला और उसने ईश्वर के सम्बन्ध मे एक विशेष धारणा स्थापित की जो यहूदी, पारसी, इसाई और इस्लामी धर्मों मे समान रूप से वर्तमान है और जो मिस्री, सुमेरी भारतीय तथा हेलेनी विचार धाराओ से असम्बद्ध है । वह कौन सीरियाई समाज था जिसके द्वारा ये उपलब्धियाँ प्राप्त हुई ?

वर्णमाला के सम्बन्ध में हम लोगो को ठीक-ठीक ज्ञान नही है । यद्यपि परम्परा से इसके आविष्कारक फीनिशियाई कहे जाते है, सम्भव है आरम्भिक रूप मे मिनोई लोगों से लेकर फिलिस्तीनियो द्वारा यह हुआ हो । इसलिए सम्प्रति जो ज्ञान हमारा है उसके आधार पर इसके आविष्कार का यश किसी को निश्चय रूप से नही दिया जा सकता । अब दूसरी दोनों बातो पर विचार करना चाहिए ।

१. पोलीबियस : चौथी पुस्तक, अध्याय ३८ ।

वे कौन सीरियाई साहसी नाविक थे जो सारा भूमध्यसागर पार कर, जिबराल्टर डमरूमध्य पार कर आगे गये ? निश्चय ही फिलस्तीनी नही । यद्यपि ये मिनोई वंश के थे फिर भी एसड्रेलन[1] और शेफेला[2] के उर्वर क्षेत्र के लिए युद्ध करते हुए इफ्राइम[3] और जूदा[4] के पहाड़ी क्षेत्रो के रहने वाले इसराइलियो से हारे जो उनसे अधिक वीर थे । अतलान्तक की खोज करने वाले टायर[5] और सिडन[6] के फिनिशियाई थे ।

ये फिनिशियाई की जातियो के अवशेष थे जो फिलिस्तीनियो और हिब्रुओं के आने के पहले वहाँ के स्वामी थे । यह बात बाइबिल के प्रारम्भिक अध्याय मे वश परम्परा मे दी गयी है जहाँ हम पढ़ते हैं कनआँ (नोआ के पुत्र, हेम के पुत्र) ने सिडन को उत्पन्न किया जो उनका प्रथम पुत्र था । वे इस कारण बच गये कि उनका निवास जो सीरियाई तट के मध्य भाग मे था जो आक्रमणकारियो के लिए पर्याप्त आकर्षक नही था । फिनीशिया में, जिसे फिलिस्तीनी छोड़कर चले आये थे और शेफेला मे बहुत अन्तर है । तट के इस भाग में कोई उपजाऊ मैदान नही है । लेबेनान पर्वत सागर से सीधे आरम्भ होता है । यह इतना खडा है कि सड़क अथवा रेल बनाने की गुजाइश नही । फिनीशियाई नगरो मे बिना समुद्र से गये आपस मे भी सरलता से सम्पर्क नहीं स्थापित हो सकता था । इनका सबसे विख्यात नगर टायर करण्ट के खोते की भाँति पहाड़ी टापू पर बसा है । इस प्रकार जब फिलस्तीनी भेडो की भाँति घास चरने मे मग्न थे, फिनीशियाइयो ने, जिनका सामुद्रिक आवागमन अभी तक केवल बाइब्लस और मिस्र के बीच तक सीमित था, मिनोइयो की भाँति खुले समुद्र मे प्रवेश किया और अफ्रीकी तथा पश्चिमी भूमध्यसागर के स्पेनी तट पर नया निवास बनाकर अपने ढग से सीरियाई सभ्यता स्थापित की । फिनीशियाइयों के इस सागर पार के प्रतापलशाली नगर कारथेज ने फिलिस्तीनियो को स्थल-युद्ध मे भी परास्त किया, जिसमे ये कुशल समझे जाते थे । फिलिस्तीनियो का सबसे विख्यात समर्थक सैनिक गाथ का गोलियथ है । फिनीशियाई हैनिबल की तुलना मे यह तुच्छ है ।

अतलान्तक सागर की खोज भौतिक दृष्टि से मनुष्य की शक्ति का चमत्कार अवश्य है, किन्तु आत्मिक दृष्टि से इन लोगो ने एकेश्वरवाद की जो खोज की उसके सामने वह कुछ नही है । और यह चमत्कार उस सीरियाई समाज की देन है जिसे जनरेला ने ऐसे स्थान पर छोड दिया था जिसकी भौतिक स्थिति फिनीशियाई तट अर्थात् एफ्राइम तथा जूदा के पहाडी प्रदेश से भी अनाकर्षक थी । ऐसा जान पड़ता है कि पतली मिट्टी की तह वाला, पहाडी जंगल से भरा यह छोटा प्रदेश निर्जन था । यह ईसा के पूर्व चौदहवी शती मे मिस्र के 'नये साम्राज्य' के पतन के बाद उस अन्त काल मे बसा जब उत्तरी अरब के स्टेप से हिब्रू खानाबदोश का अग्रदल सीरिया

१. एसड्रेलन—उत्तरी फिलस्तीन में कारमेल और गिलबोआ पहाड़ों के बीच का मैदान ।
२. शेफेला ।
३. फिलस्तीन के दो राज्य ।
४. वही ।
५. फीनीशिया का बन्दरगाह ।
६. सीरिया का बन्दरगाह ।

के किनारों पर पहुँचा। यहाँ उन्होंने अपना जीवन खानाबदोशी पशुपालको से बदलकर खेतिहर बना दिया और स्थावर बनकर पथरीली धरती जोतने-बोने लगे। और उस समय तक अज्ञात थे जब तक सीरियाई सभ्यता चरम सीमा को नहीं पार कर गयी। यहाँ तक कि पाँचवीं शती ई० पू० तक जब सभी पैगम्बर अपनी वाणी सुना चुके थे हेरोडोटस को इसरायल का नाम भी नही मालूम था। और हेरोडोटस ने जो सीरियाई ससार का चित्र खीचा है उसमें भी फिलिस्तीनी देश के सामने इसरायली देश छिपा हुआ है। उसने लिखा है 'फिलस्तीनियों का प्रदेश'[1] और आज भी वह फिलस्तीन (या पैलेस्टाइन) कहा जाता है।

एक सीरियाई कथा में बताया गया है कि किस प्रकार इसराइलियों के ईश्वर ने इसरायल के राजा की परीक्षा ली। ऐसी कठोर परीक्षा जैसी किसी मनुष्य की ईश्वर ले सकता है।

"सुलेमान के सामने ईश्वर एक रात सपने में प्रकट हुआ। उसने कहा, 'जो चाहो मुझसे मांगों, मै तुम्हे दूंगा।' और सुलेमान ने कहा—'इस सेवक को ऐसा हृदय दीजिए जिसमे सूझ-बूझ हो। ईश्वर इस बात से प्रसन्न हुआ और उससे कहा—'तूने मुझसे यह माँगा है अपने लिए अधिक जीवन नही माँगा, अपने लिए धन-दौलत नही माँगी, अपने बैरियों की पराजय नही माँगी, किन्तु अपने लिए बुद्धि माँगी जिससे विवेक आ सके, तो मै तेरे वचन के अनुसार ही वरदान देता हूँ। तुझे ऐसा हृदय देता हूँ जिसमें सूझ-बूझ हो, विवेक हो, जैसा किसी के पास न पहले था न कभी आगे होगा। मै तुझे वह भी देता हूँ जो तूने नही माँगा है—धन और प्रतिष्ठा भी और तेरे समान राजा आगे कभी नही होगा।"[2]

सुलेमान की इच्छा का आख्यान विशेष जाति के इतिहास का दृष्टान्त है। इसरायलियो के आत्मिक ज्ञान की शक्ति फिलस्तीनियो की सैनिक शक्ति से तथा फिनीशियो की सामुद्रिक शक्ति से बढ़कर थी। वे उन वस्तुओं के पीछे नही दौड़े जिनके लिए अ-यहूदी (जेण्टाइल) दौडते थे। वे ईश्वर के राज्य की कामना करते थे और सब वस्तुएँ साथ में मिल जाती थी। जहाँ तक बैरियो के जीवन का प्रश्न था, फिलस्तीनी उनके हाथो मे सौंप दिये गये। जहाँ तक सम्पत्ति का प्रश्न है टायर और कारथेज के उत्तराधिकारी यहूदी हुए जिनका व्यवसाय ऐसा था कि फिनीशियो ने कभी कल्पना भी नही की होगी और ऐसे देशो से उनका व्यवहार चलता था जिनका ज्ञान भी फिनीशियो को नही था। जहाँ तक दीर्घ जीवन का प्रश्न है, यहूदी आज भी जीवित है जब फिनीशियाई और फिलस्तीनी का शेष भी नही रहा। इनके पुराने सीरियाई पड़ोसी गल गये और नये सिक्कों में ढल गये जिन पर नये चित्र और नये मूल्य अंकित हो गये, इसराइलियों पर उस रासायनिक क्रिया का प्रभाव नही पड़ा जिसे इतिहास ने सार्वजनिक राज्य तथा सार्वजनिक धर्मतन्त्रो (चर्चों) और राष्ट्रो के संचरण की घरिया (क्रूसिल्ल) मे पिघला कर नवीन रूप दिया और जिसके शिकार हम सभी अ-यहूदी (जेण्टाइल) बारी-बारी से हुए।

ब्रैण्डेनबुर्ग तथा राइन प्रदेश

अटिका और इसरायल से ब्रैण्डेनबुर्ग का बहुत दूर का फासला और बहुत अधिक उतार है।

१. हेरोडोटस: दूसरी पुस्तक, अध्याय १०४। सातवीं पुस्तक, अध्याय ८९।
२. किंग्ज, ३।५–१३।

किन्तु जिस नियम पर विचार हो रहा है उसका एक और उदाहरण है । यदि आप उस अनाकर्षक प्रान्त की यात्रा करें जो फ्रेडरिक महान् का प्रारम्भिक निवास था—अर्थात् ब्रैण्डेनबुर्ग, पोमेरेनिया तथा पूर्वी प्रशा की, जहाँ चीड़ के बन हैं और रेतीला मैदान है तो आप समझेंगे कि यूरेशियाई स्टेप के किसी बाहरी क्षेत्र में यात्रा कर रहे हैं । यहाँ से बाहर जिस ओर जाइए चाहे डेनमार्क के चराई के मैदान और सफेदा (बीच) के जगलो की ओर, या लिथुएनिया के काली मिट्टी के प्रदेश की ओर या राईन प्रान्त के अगूर के प्रदेश की ओर, सभी ओर सुखमय तथा सुन्दर प्रदेश मे आप प्रवेश करते है । किन्तु मध्ययुगीन उपनिवेशको के जिन वशजो ने इन 'असुन्दर' प्रदेशों मे प्रवेश किया उन्होने हमारे पश्चिमी समाज के इतिहास के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान किया । इतना ही नही कि उन्नीसवी शती मे उन्होंने जरमनी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और बीसवी शती मे जरमनो को प्रेरित किया कि हमारे समाज मे वे सार्वभौम राज्य की स्थापना करे ? प्रशियनों ने अपने पड़ोसियों को यह भी सिखाया कि बलुई धरती मे कृत्रिम खाद डालकर अनाज कैसे उत्पन्न किया जाता है, किस प्रकार अनिवार्य शिक्षा प्रणाली द्वारा सारी जनता में अभूतपूर्व सामाजिक दक्षता इन्होंने उत्पन्न की और अनिवार्य स्वास्थ्य तथा बेकारी के बीमे की प्रणाली द्वारा अभूतपूर्व सामाजिक सुरक्षा स्थापित की ।

स्काटलैंड और इंग्लैंड

यह तर्क उपस्थित करने की आवश्यकता नही है कि स्काटलैंड इग्लैंड से 'कठोर' देश है । दोनो जातियो के स्वभावो मे जो कुख्यात अन्तर है उस पर भी विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नही है । जैसे स्काट गम्भीर, मितव्ययी, सुनिश्चित, दृढ, सावधान, जागरूक तथा सुशिक्षित होता है, इसके विपरीत अग्रेज छिछला, खर्चीला, अस्पष्ट, उग्र (स्पासमोडिक), असावधान, स्वच्छन्द, सरल तथा पुस्तकी ज्ञान के अनुकूल होता है । इस परम्परागत तुलना को अग्रेज शायद विनोद समझे । अधिकाश बातो को वह विनोद ही समझता है । स्काट ऐसा नही समझता । जानसन बासवेल से सदा खीझ कर कहा करता था कि स्काट को यदि कोई सुन्दर दृश्य दिखाई देता है तो वह इग्लैंड की ओर की सडक है । जानसन के जन्म के पहले ऐन रानी के एक विनोदी दरबारी ने कहा था कि यदि केन स्काट होता तो उसे जो दण्ड दिया गया वह उलटा होता । उसे दण्ड दिया गया था कि वह जीवन भर ससार में भ्रमण करता रहे इसके बजाय उसे दण्ड दिया जाता कि वह घर पर ही रहे । साधारणत यह धारणा कि अंग्रेजी साम्राज्य के निर्माण मे और धार्मिक तथा राज्य के ऊँचे स्थानो को ग्रहण करने मे स्काट लोगो की सख्या उनकी आबादी के अनुपात से कही कधिक है, बिलकुल ठीक है । विक्टोरिया के काल के इग्लैंड मे पार्लिमेण्ट में जो ऐतिहासिक संघर्ष चला था वह एक विशुद्ध स्काट और एक विशुद्ध यहूदी के बीच था । ग्लैडस्टन के बाद जो इंग्लैंड में आज तक प्रधान मन्त्री हुए उनमे लगभग आधे स्काट थे ।[1]

१. रोजबरी, बालफोर, कैम्बेल-बैनरमैन और मैकडोनल्ड ; इनमें बोनरला का नाम भी जोड़ा जा सकता है, जो कैनेडा में स्काट-आइरिश परिवार में पैदा हुए थे । किन्तु उनकी माता शुद्ध स्काट थी और वह ग्लासगों में रहने लगे । इस प्रकार पाँच हुए । सात ऐसे थे जो स्काट नहीं थे—सम्पादक । (इसी सूची में मैकमिलन का नाम भी जोड़ देना चाहिए—अनुवादक ।)

उत्तरी अमरीका के लिए संघर्ष

इस विषय का क्लासिकी उदाहरण हमारे पश्चिमी यूरोप का इतिहास है। लगभग आधे दर्जन उपनिवेशकों ने उत्तरी अमरीका पर आधिपत्य स्थापित करने का होड़ लगाया। इसमे न्यू इंग्लैंड वाले विजयी हुए। इसके पहले के अध्याय में हमने बताया है कि जो लोग अन्त मे उस प्रायद्वीप के मालिक हुए उन्हे किन स्थानीय कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इस न्यू इंग्लैंड के वातावरण (एनवायरनमेंण्ट) की जिसकी बानगी टाउन हिल का स्थल है, तुलना उन अमरीकी वातावरण से हम करें जिनमे न्यू इग्लैंड के प्रतियोगी असफल रहे। इनमे डच, फ्रेंच, स्पेनी, तथा वे अंग्रेजी उपनिवेशी थे जो अतलान्तक समुद्र के दक्षिणी क्षेत्र मे और वरजिनिया के इधर-उधर बसे थे।

सत्रहवी शती के मध्य जब ये सब दल अमरीकी महाद्वीप के किनारे पहले-पहल बसे तब सरलता से यह भविष्यवाणी की जा सकती थी कि अन्दर के प्रदेश के आधिपत्य के लिए इनमे संघर्ष होगा। किन्तु १६५० मे सबसे दूरदर्शी भी नही बता सकता था कि विजयी कौन होगा। शायद वह इतना बुद्धिमान् होता कि कह देता कि स्पेनी विजयी नही होंगे यद्यपि स्पष्टत उनके पास दो सम्पदाएँ (असेट) थी। एक तो यह कि वे मैक्सिको के स्वामी थे। अमरीकी क्षेत्र का यही प्रदेश था जिसका परिष्कार एक पूर्ववर्ती सभ्यता से किया जा सकता था, दूसरी उनकी अमरीकी शक्तियो मे ख्याति थी जिसके योग्य अब वे नही रह गये थे। भविष्य-वक्ता मैक्सिको के स्वामित्व की इसलिए गणना न करता कि वह दूर था। स्पेनी दबदबा की गणना इसलिए न करता क्योंकि जो यूरोपीय युद्ध (तीस वर्षीय) अभी समाप्त हुआ था उसमे स्पेन की प्रतिष्ठा गिर चुकी थी। उसने कहा होता कि यूरोप मे फ्रास स्पेन की सैनिक शक्ति पर विजय प्राप्त कर लेगा और सामुद्रिक शक्ति मे हालैंड और इंग्लैंड उमसे बढ़ जायगा। और उत्तरी अमरीका की प्राप्ति का होड़ हालैड, फास और इंग्लैंड मे रह जायगा। निकट की दृष्टि से हालैंड की विजय सबसे आशापूर्ण है। उसकी सामुद्रिक शक्ति इग्लैड तथा फ्रास दोनो से बढ़कर है। और हडसन नदी की घाटी द्वारा अन्दर के प्रदेश मे प्रवेश करने के लिए उसके पास सुगम जलमार्ग है। किन्तु दूर की दृष्टि से देखा जाय तो फ्रांस की विजय ठीक जान पड़ती है। सेंट लारेस नदी के मुहाने से उसका जलमार्ग अधिक उत्तम है और अपनी प्रबल सैनिक शक्ति द्वारा वह यूरोप में हालैंड की सैन्यशक्ति को क्षीण करके पस्त कर मकता है। सम्भवत. वह प्रेक्षक यह भी कहता है कि मै विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि दोनो अंग्रेजी दल कही न ठहरते। शायद दक्षिण के अंग्रेज उपनिवेशक बच जाते और एक घेरे मे रह जाते और फ्रेंच चाहे डच जो भी मिसिसिपी की घाटी का विजेता होता उन्हे अन्दर के प्रदेश से अलग कर देता। एक बात निश्चित है कि न्यू इंग्लैंड की बजर और उजाड़ धरती पर के रहने वाले लोप हो जायगे क्योकि हडसन के किनारे रहने वाले डचो ने उन्हें उनके सम्बन्धियो से अलग कर दिया है और उधर सेंट-लारेस से फ्रेंच उन्हें दबा रहे है।

मान लीजिए, हमारे प्रेक्षण सोलहवी शती की समाप्ति के बाद भी जीवित है। १७०१ मे वह प्रसन्न होगा कि मैंने डचों की तुलना मे फ्रेंच के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी की थी वह सच निकली क्योकि इन लोगो ने हडसन का क्षेत्र १६६४ में फ्रेंच को सौंप दिया। इसी बीच फ्रेंच सेंट-लारेस होते हुए ग्रेट झीलों तक बढ़ गये और बढ़ते हुए मिसिसिपी की बेसिन तक पहुँचे।

लासाले से बढ़ते-बढ़ते नदी के मुहाने तक पहुँचे। वहाँ नयी फ्रासीसी बस्ती लुइसियाना स्थापित हुई और उसके बन्दरगाह न्यू आरलियन्स का भविष्य उज्ज्वल था। फ्रास और इग्लैंड के सम्बन्ध में हमारे प्रेक्षक को अपना विचार बदलने की आवश्यकता न थी। न्यू इग्लैंड वालो ने न्यूयार्क ले लिया था इस कारण नष्ट होने से बच गये थे, किन्तु उनका भविष्य उतना ही साधारण था जितना उनके दक्षिण निवासी सम्बन्धियो का। प्रायद्वीप का भविष्य प्राय निश्चित था, फ्रेंच ही इसके विजेता होने वाले है।

आइए अपने प्रेक्षक की आयु हम अस्वाभाविक रूप से बढ़ा दे कि वह १८०३ की परिस्थितियों को भी देख सके। यदि उस समय तक भी उसे हम जीवित रखे तो उसे यह स्वीकार करने के लिए विवश होना पडेगा कि अवस्था के अनुसार उसकी बुद्धि नही बढी। १८०३ तक उत्तरी अमरीका के राजनीतिक मान चित्र से फ्रास का झडा लोप हो गया था। गत चालीस वर्षों से कैनेडा अंग्रेजी राज्य के अधीन था, लुइसियाना को जिसे फ्रास ने स्पेन को दे दिया और जिसे फिर स्पेन ने फ्रास को लौटाया, नेपोलियन ने सयुक्त राज्य के हाथो बेच दिया। वही सयुक्त राज्य जो तेरह अंग्रेजी उपनिवेशो से महान् शक्ति मे परिवर्तित हुआ।

इस सन् १८०३ मे सारा प्रायद्वीप सयुक्त राज्य की जेब मे है और भविष्यवाणी की सीमा कम हो गयी। अब इतना ही देखना शेष रह गया है कि सयुक्त राज्य का कौन भाग इस महान् राज्य का अधिकाश हथिया लेना है। निश्चय ही इस सम्बन्ध की भविष्यवाणी मे भूल नही हो सकती। दक्षिणी राज्य इस सघ के अधिपति जान पडते है। देखिए कि किस प्रकार पश्चिम पर विजय प्राप्त करने की दौड मे वे आगे है। वर्जिनिया के जगली निवासियो ने केंटकी की स्थापना की। पहाडो की श्रेणियों के पश्चिम स्थापित होने वाला यह पहला राज्य है। इन पर्वतों की सहायता से फ्रासीसियो ने अंग्रेजो को पश्चिम जाने से रोक रखा था। साथ ही लकाशायर की रुई-मिलो ने दक्षिण वालो के लिए जहां के जलवायु और मिट्टी के कारण रुई बहुत उत्पन्न होती है, रुई का अच्छा बाजार बना रखा है।

१८०७ मे दक्षिण वाला कहता है, 'हमारे याकी[1] भाई ने एक भाप से चलने वाले जहाज की ईजाद की है, जो मिसिसिपी मे प्रवाह के विरुद्ध जा सकती है, एक मशीन की ईजाद की है जिससे रुई धुनी जा सकती है और उसकी डोड़ी साफ की जा सकती है। ये 'याकी विचार' उनके ईजाद वालो के बजाय हम लोगो के लिए अधिक लाभकारी है।'

यदि हमारा बूढा और अभागा भविष्यवक्ता दक्षिण वाला के उस समय के और उसके कुछ दिनो बाद के भविष्य के सम्बन्ध मे दक्षिण वालो के ही मूल्याकन के आधार पर कुछ कहता तो निश्चय ही उसका सठियाना होता। क्योंकि अन्तिम होड मे दक्षिण वालो की भी वैसी ही तीव्र और घोर पराजय होने वाली थी जैसी डच अथवा फ्रासीसियों की हुई।

१८०७ की तुलना मे १८६५ मे परिस्थिति बिलकुल बदल गयी थी। पश्चिमी अमरीका की विजय मे उत्तर वालो ने अपने दक्षिणी प्रतिद्वद्वियो को पछाड़ दिया था। इडियाना होते हुए बृहद् झीलो तक पहुँचने के बाद और मिसोरी पर भी विजय प्राप्त करके (१८२१) कसास मे

१. उत्तरी अमरीका का निवासी।—अनुवादक।

वे पूर्ण रूप से पराजित हो गये (१८५४–६०) और प्रशान्त तक कभी नही पहुँच सके। न्यू इंग्लैंड वाले आज सिएटिल से लेकर लोस ऐजेल्स तक सारे प्रशान्त तट के स्वामी हैं। दक्षिण वालों ने अपने भाप के जहाजो के बलपर सोचा था सारे पश्चिम को हम एक आर्थिक तथा राजनीतिक सूत्र में बाँध लेंगे। किन्तु 'याकी विचार' समाप्त नही हो गये। भाप के जहाजो को रेल के इंजन ने मात कर दिया और वह सब दक्षिण वालो से ले लिया जो भाप के जहाजो की सहायता से उन्हे मिला था क्योंकि हडसन की घाटी और न्यूयार्क से जो अतलान्तिक का महाद्वार है, पश्चिम जाने की राह रेल के युग से साकार हुई। शिकागो से न्यूयार्क तक रेल द्वारा यातायात उससे अधिक हो रहा है जो नदी द्वारा सेंट लुई से न्यू आरलियन्स तक होता है। महाद्वीप के भीतर यातायात की प्रगति उत्तर-दक्षिण की अपेक्षा पूरब-पश्चिम अधिक है। उत्तर-पश्चिमी भाग दक्षिण से अलग हो गया है और लाभ तथा भावनात्मक दृष्टि से उत्तर-पूरब से मिल गया है।

इस प्रकार पूरब वालों ने जो पहले दक्षिण वालो को जहाज और बिनौले निकालने की मशीन देते थे, उत्तर पश्चिम वालों को दो वरदान दिये कि एक ओर तो उसने रेलवे इंजन दिया, दूसरी ओर अनाज काटने और बाँधने की मशीन दी। और उनकी दो समस्याओं को हल किया। यातायात का और श्रमिकों का। इन दो 'याकी कल्पनाओ' द्वारा उत्तर-पश्चिम की मुक्ति निश्चित हो गयी। और दक्षिण घरेलू युद्ध (सिविल वार) आरम्भ होने के पहले हार गया। आर्थिक पराजय का प्रतिकार करने के लिए दक्षिण ने सैनिक युद्ध ठाना जिससे वह विनाश जो अवश्यम्भावी था पूरा हो गया।

यह कहा जा सकता है कि उत्तरी अमरीका मे जितने उपनिवेशक थे सभी को अपनी परि-स्थितियो का कठोर सामना करना पडा। केनेडा में फ्रांसीसियो को आर्कटिक की कठोर शीत का सामना करना पडा और लुइसियाना मे नदियाँ वैसी ही विध्वंशकारी और अविश्वसनीय थी जितनी चीन की हागहो जिसके सम्बन्ध मे इस प्रकार की तुलनाओ में पहले कहा जा चुका है। फिर भी जब मिट्टी, जलवायु, यातायात के साधन इत्यादि का विचार किया जाता है तब इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि न्यू इग्लैड वालो का उपनिवेश सब प्रदेशो से कठोर था। इस प्रकार उत्तरी अमरीका के इतिहास से भी हमारे मन्तव्य का समर्थन होता है कि जितनी ही अधिक कठिनाई का सामना करना होगा उतनी ही अधिक स्फूर्ति मिलेगी।

(२) नयी भूमि द्वारा प्रेरणा

इतना तो भौतिक परिस्थितियो के प्रभाव की तुलना के सम्बन्ध मे कहा गया कि विभिन्न अशों में कठिनाइयाँ उपस्थित हुई है। इसी प्रश्न पर अब दूसरी दृष्टि से विचार किया जाय। भू-प्रदेश (टेरेन) के वास्तविक स्वरूप के अतिरिक्त यह देखा जाय कि पुरानी भूमि तथा नयी भूमि की तुलना मे कौन अधिक स्फूर्तिदायक होती है। क्या नयी भूमि मे किसी काम का प्रभाव स्वय स्फूर्तिदायक होता है? इसका उत्तर अदन से निष्कासन की ओर मिस्र से प्रस्थान की कथाओ मे 'हा' मिलता है। अदन के तिलिस्मी बाग से आदम का क्रियाशील ससार मे प्रवेश करना आदिम मानव का फल एकत्र करने वाली आर्थिक व्यवस्था को त्यागकर कृषि तथा पशु-पालन वाली सभ्यता की ओर जाने का द्योतक है। मिस्र से इसरायल के वंशजों ने जो प्रस्थान किया तो उन्होने ऐसी पीढ़ी को जन्म दिया जिसने सीरियाई सभ्यता की नीव रखी। इन पौराणिक कथाओ से हटकर जब हम धार्मिक इतिहासो को देखते हैं तब इस अन्तर्ज्ञान की भावनाओ को

पुष्टि होती है। हमें इस प्रकार के उदाहरण मिलते है। जो लोग पूछते थे कि नजारेथ[1] मे क्या कोई अच्छी वस्तु निकल सकती है। उन्हे यह जानकर भय उत्पन्न हुआ कि अ-यहूदियो के अज्ञात गाँव गैलिली मे यहूदियो का मसीहा उत्पन्न हुआ। यह गाव वही नयी भूमि थी जिसे ईसा के जन्म से सौ से कुछ कम वर्ष पहले मक्काबियो[2] ने यहूदियो के लिए जीता था। और जब यह गैलीलिया का सरसो का बीज असख्य दानो मे उगा तब यहूदियो का आतक सक्रिय विद्वेष मे परिवर्तित हो गया। यह विद्वेष केवल जूडिया[3] मे ही नही, इधर-उधर जो यहूदी बिखरे थे उनमें भी प्रविष्ट हुआ। और नये धर्म के प्रचारक जानबूझ कर अ-यहूदियो की ओर मुडे और ईसाइयों के लिए उन्होने नया-नया ससार विजय किया जो मक्काबी राज्य की अन्तिम सीमा से भी परे थे। बौद्ध इतिहास भी यही बताता है। इस भारतीय धर्म की निश्चित विजय भारतीय जगत् की पुरानी भूमि पर नही हुई। हीनयान सीलोन मे गया जो भारतीय सभ्यता का उपनिवेश था। महायानी अपने भावी राज्य सुदूर पूर्व की ओर, लम्बी तथा चक्करदार राह से तब गये जब भारतीय प्रान्त पंजाब पर, जो सीरियाई तथा हेलेनी सभ्यता ग्रहण कर चुके थे उन्होने विजय प्राप्त की। विदेशी ससार की इन नयी भूमियो पर सीरियाई और भारतीय धर्मो की प्रतिभा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति हुई जिसने इस सत्य को प्रमाणित किया कि 'अपने घर और अपने देश को छोड़ कर पैगम्बर का हर जगह आदर होता है।'

इस सामाजिक नियम की एक अनुभवसिद्ध सरल परीक्षा उन सभ्यताओं द्वारा होती है जो ऐसे 'सम्बन्धित' समाज मे विकसित हुई जो कुछ तो ऐसी भूमि पर बसे जहाँ उनके पहले एक सभ्यता विकसित हो चुकी थी और कुछ ऐसी भूमि पर जहाँ नये समाज ने अपनी नयी सम्बन्धित सभ्यता का विकास किया। इस नयी तथा पुरानी भूमियों के प्रेरणात्मक प्रभाव की परीक्षा इन 'सम्बन्धित' सभ्यताओ मे से किसी एक के जीवन वृत्त का अध्ययन करके कर सकते हैं। हम उनमे उन बातों को देखे कि किस क्षेत्र मे उन्होने विशेषता अर्जित की है और तब हम यह देखे कि जिस भूमि पर यह विशेषता प्राप्त की गयी है वह नयी थी या पुरानी।

पहले हम हिन्दू-सभ्यता पर विचार करे। हम यह देखे कि हिन्दू-समाज के जीवन मे जो नया सर्जनात्मक तत्त्व था, विशेषत धर्म मे, जो सदा से हिन्दू-समाज के जीवन का मुख्य तथा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है, वह कहाँ से आया। हम देखते है कि इसका स्रोत दक्षिण था। हिन्दू-धर्म के विशेष रूपो का विकास यही हुआ। जैसे देवताओं का पार्थिव रूप म तथा मूर्तियों के रूप मे निर्माण करना और मन्दिरो मे स्थापित करना, भावात्मक व्यक्तिगत सम्बन्ध जो उपासक और उसके उपास्य देवता मे है, पार्थिव पूजन का तात्त्विक (मेटाफिजिकल) उदात्तीकरण (सबलियेशन), और बौद्धिक कुतर्क पर आधारित दर्शन (हिन्दू धर्म दर्शन के प्रतिष्ठापक शकराचार्य ७८८ ई० के लगभग मलाबार मे पैदा हुए)। दक्षिण भारत नयी भूमि थी या पुरानी ? यह नयी भूमि थी।

१. पैलेस्टाइन का नगर, जहाँ ईसा का आरम्भिक जीवन बीता था।—अनुवादक।

२. यहूदी परिवार जो सीरियाइयो के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए इतिहास में विख्यात है।—अनुवादक।

३. पैलेस्टाइन के दक्षिण में जारडन के पश्चिमी किनारे एक जिला।—अनु०।

इसके पहले के भारतीय समाज में यह सम्मिलित नहीं हुई थी । यह अपने जीवन के अन्तिम काल मे, मौर्य साम्राज्य के काल में जो भारतीय समाज का सार्वभौम राज्य था सम्मिलिति हुई । (लगभग ३२३ से १८५ ई० पू०) ।

सीरियाई समाज से दो सम्बद्ध समाजो की उत्पत्ति हुई—अरब और ईरानी । दूसरी अधिक सफल हुई और अपनी 'बहन' को हजम कर गयी । ईरानी सभ्यता किस क्षेत्र में बहुत स्पष्ट रूप में विकसित हुई ? युद्ध, राजनीति, वास्तुकला, साहित्य आदि में इसकी सभी उपलब्धियाँ ईरानी संसार के एक अथवा दूसरी छोर पर पूर्ण हुई । या तो हिन्दुस्तान में या अनातोलिया मे । पहली मे मुगल साम्राज्य के रूप मे और दूसरी मे उसमानिया (आटोमन) साम्राज्य के । दोनों उपलब्धियो की भूमि पहले की सीरियाई सभ्यता से सुदूर नयी भूमि थी । एक भूमि हिन्दू से छीनी गयी थी और दूसरी परम्परावादी ईसाई समाज से । इन दोनो उपलब्धियो की तुलना यदि मध्य की ईरानी सभ्यता से की जाय, जो सीरियाई सभ्यता से ग्रहण की गयी पुरानी भूमि पर थी, तो वह सभ्यता महत्त्वहीन है ।

परम्परावादी ईसाई सभ्यता ने सबसे अधिक शक्ति किस प्रदेश मे दिखायी ? इतिहास पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है विभिन्न कालो मे इसके गुरुत्व का केन्द्र भिन्न क्षेत्रो मे था । हेलेनी अन्त.काल से निकलने पर पहले युग मे परम्परावादी ईसाइयत का जीवन सबसे सशक्त अनातोलिया के पठार के मध्य तथा उत्तरपूर्वी भागों मे था । उसके पश्चात् नवी शती के मध्य से तथा उसके बाद यह गुरुत्व केन्द्र जलडमरूमध्यो के एशियाई भाग से हटकर यूरोपीय भाग की ओर चला गया । और जहाँ तक परम्परावादी ईसाई समाज के आरम्भिक तने (स्टेप) का प्रश्न है वह तबसे बालकन प्रायद्वीप में ही है । किन्तु वर्तमान युग मे परम्परावादी ईसाई धर्म का मुख्य तना अपनी शक्तिशाली सभी शाखाओ से ऐतिहासिक महत्त्व मे दब गया है ।

ये तीनो क्षेत्र नये माने जायँ या पुराने ? जहाँ तक रूस का प्रश्न है उत्तर स्पष्ट है । मध्य तथा उत्तर-पूर्वी अनातोलिया परम्परावादी ईसाई समाज की दृष्टि से नयी भूमि है यद्यपि दो दो हजार वर्ष पहले यह हिताइती सभ्यता का आवास था । इस क्षेत्र का हेलेनी करण रुक गया और सदा अपूर्ण रहा । हेलेनी सस्कृति को इसको पहली तथा अन्तिम देन हेलेनी समाज के जीवन काल की अन्तिम अवस्था मे ईसा की चौथी शती मे चर्च के केपाडोशियाई[1] पिताओ द्वारा हुई ।

परम्परावादी ईसाई समाज का शेष गुरुत्व-केन्द्र बालकन प्रायद्वीप का भीतरी भूभाग था । वह भी नयी भूमि थी । क्योकि रोमन साम्राज्य के काल मे यह प्रदेश लैटिन माध्यम मे हेलेनी सभ्यता का हल्का परदा मात्र था और साम्राज्य के विघटन के पश्चात् अन्तकाल मे इस परदे का पूर्ण रूप से विनाश हो गया था । उसका कोई चिह्न भी शेष नही रह गया था । साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्तों मे ब्रिटेन को छोड़कर कहीं इतना पूर्ण विनाश नही हुआ था । ईसाई रोमन प्रान्तो पर गैर-ईसाई (पेगन) बर्बर आक्रमणकारियो ने विजय ही नही प्राप्त की, इन बर्बरो ने स्थानीय सस्कृति की सारी बाते इस पूर्णता से मिटा दी कि इनके वशजो को अपने पूर्वजो के इस

१. प्राचीन भूगोल में यह एशिया माइनर का एक जनपद था । ईसा के पहले यह स्वतन्त्र राज्य था । बाद में १७ ई० में यह रोमन प्रदेश हो गया । —अनु०

दुष्कर्म पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। यहाँ तक कि तीन सौ साल के बाद नये सिरे से खेती करने के लिए बाहर से बीज लाने पड़े। आगस्टीन[1] के शिष्ट-मण्डल भेजने के समय ब्रिटेन की धरती जितने दिनों तक बजर थी उसके दूने समय तक यहाँ की धरती ऊसर पडी रही। इस प्रकार परम्परावादी ईसाई सभ्यता ने जो दूसरा गुरुत्व-केन्द्र स्थापित किया उस भूमि को इन लोगो ने नये सिरे से ऊसर से आबाद किया।

हम देखते है कि जिन तीन क्षेत्रो मे परम्परावादी ईसाई समाज ने विशेषता प्राप्त की वे सब नयी भूमियाँ थी। यह और भी महत्त्व की बात है कि यूनान ने स्वय जो इसके पहले की सभ्यता का प्रकाशयुक्त केन्द्र था, परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास मे कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नही किया। हाँ, ईसा की अठारहवी शती मे वह जलमार्ग बना जिसके द्वारा परम्परावादी ईसाई दुनिया में पश्चिमी प्रभाव जबर्दस्ती घुसा।

हेलेनी इतिहास के सम्बन्ध मे वही प्रश्न हमे उन दो क्षेत्रो के लिए पूछना चाहिए जो एक के बाद दूसरे हेलेनी समाज मे प्रमुख रहे, अर्थात् एजियन का एशियाई तट तथा यूरोप मे यूनान का प्रायद्वीप। मिनोई सभ्यता की दृष्टि से ये कलम नयी भूमि पर लगे थे कि पुरानी ? यहाँ भी भूमि नयी थी। जिस समय मिनोई सभ्यता का सबसे अधिक विस्तार था उस समय भी यूरोप मे यूनानी प्रायद्वीप की केवल दक्षिणी तथा पूर्वी तटरेखा पर मिनोइयो की कुछ दुर्गो की शृंखला थी। अनातोलिया के तट पर हमारे पुरातत्त्व वेत्ताओं ने मिनोई सभ्यता का कोई चिह्न या प्रभाव भी नही पाया है। यह बात इतनी असाधारण है कि केवल सयोग की बात नही कही जा सकती। बल्कि इससे यह होता है कि ये क्षेत्र मिनोई सभ्यता के प्रभाव के बाहर थे। इसके विपरीत साइ-कलेड द्वीपो ने, जो मिनोई सभ्यता के केन्द्र थे, हेलेनी इतिहास मे निम्न कोटि का प्रभाव दिखाया। ये द्वीप सागर के अधिपतियो के विनम्र चाकर मात्र थे। हेलेनी इतिहास मे क्रीट का, जो मिनोई सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, कार्यकलाप और भी आश्चर्यजनक है।

यह आशा की जा सकती थी कि क्रीट का महत्त्व रहता। केवल ऐतिहासिक कारणो से नही क्योकि यहाँ मिनोई सभ्यता अपने शिखर पर पहुँची, किन्तु भौगोलिक कारणो से भी। एजियाई द्वीप समूह मे क्रीट सबसे बडा टापू है और हेलेनी ससार के दो महत्त्वपूर्ण सामुद्रिक राह के बीच पडता है। पेरिस से सिसिली को जो जहाज जाते थे उनमे प्रत्येक को क्रीट के पश्चिमी छोर और लेकोनिया से होकर जाना पडता था। पेरिस से मिस्र को जो जहाज जाते थे उनमे प्रत्येक को क्रीट के पूरबी छोर से और रोड्स से होकर जाना पड़ता था। किन्तु जहाँ लेकोनिया और रोड्स का हेलेनी इतिहास मे प्रमुख योगदान था क्रीट अन्त तक अलग, अज्ञात और अन्धकारमय था। जिस समय हेलास मे राजनीतिज्ञ, कलाकार और दार्शनिक उत्पन्न हो रहे थे क्रीट मे केवल जादूगर, डाकू और लोभी पैदा हो रहे थे और बाद में तो बोएशियाई की भाँति हेलेनी लोग भी क्रीटियाई को अपमानजनक अर्थ मे प्रयोग करते थे। क्रीटियो ने कविता की एक पक्ति मे जो ईसाई धर्म शास्त्र मे लिखित है अपने ही लिए इस प्रकार फतवा दिया है—उनके एक पैगम्बर ने कहा है—'क्रीटियाई झूठे, पशुवत् और काहिल होते हैं।'[2]

१ ईसाई सन्त (सन् ३५३-४३० ई०)।—अनु०

२. टाइटस को पत्र—(१) इस पंक्ति का लेखक एमिमेनिलीज कहा जाता है।

अन्त में इसी कसौटी से सुदूर पूर्वी समाज को जो चीनी समाज से सम्बन्धित है परखना चाहिए, अपने क्षेत्र के किस भाग में उसने सबसे अधिक शक्ति दिखायी है ? इस समय जापानी तथा दक्षिण चीन वाले[1] इनके सबसे शक्तिशाली प्रतिनिधि है । और सुदूर पूर्वी इतिहास की दृष्टि से इनकी उत्पत्ति नयी भूमि में हुई है । चीन का उत्तरी-पूरबी समुद्र तट इस प्रजनित (ऐप-पैरेण्टेड) चीनी समाज के क्षेत्र में पहले नही सम्मिलित था । चीनी इतिहास मे बहुत बाद मे इसका समावेश हुआ है । वह भी राजनीति की दृष्टि से हैन साम्राज्य के सीमा प्रदेश के रूप मे और साधारण ढंग से । इसके निवासी बर्बर रहे । सुदूर पूर्वी सभ्यता की जो शाखा जापानी द्वीप समूह मे पल्लवित हुई वह ईसा की छठी तथा सातवी शती में कोरिया की राह से गयी । यहाँ की भूमि पर किसी पहले की सस्कृति का चिह्न नही था । सुदूर पूर्वी सभ्यता की इस शाखा का जापान की नयी भूमि पर जो बलवान् पेड़ हुआ उसकी तुलना परम्परावादी ईसाई सभ्यता की उस शाखा से की जा सकती है जो अनातोलिया के पठार से जाकर रूस की अछूती भूमि पर उगी ।

जैसा हमारे प्रमाणों से सकेत मिलता है, यदि यह ठीक है कि पुरानी भूमि की अपेक्षा नयी भूमि मे क्रियाशीलता को अधिक प्रेरणा मिलती है तो ऐसी प्रेरणा उन नयी भूमियों में अधिक स्पष्ट है जहाँ पुरानी भूमियो से सागर की यात्रा करके लोग आये हैं । सागर पार स्थापित उप-निवेशो मे जो यह विशिष्ट प्रेरणा की बात कही गयी है वह मध्यसागर के ई० पू० अन्तिम पाँच सौ वर्षों (१०००-५००) के इतिहास मे बहुत स्पष्ट है । जब उसके पश्चिमी बेसिन में लेवाण्ट की तीन सभ्यताओ से तीन सागरी अग्रगामी दल (पायोनियर) उपनिवेश बसा रहे थे । उदाहरण के लिए इनमे से दो महान् उपनिवेश सीरियाई, कारथेज तथा हेलेनी साइराक्यूज़ अपने मूल नगर टायर और कोरिंथ से कही अधिक बढ गये । मैगता ग्रीशिया (दक्षिणी इटली और सिसिली) मे एकियाई उपनिवेश वाणिज्य और उच्च विचारो के केन्द्र बन गये, किन्तु पेलोपेनीज के उत्तर तट पर मूल एकियाई समुदाय हेलेनी सभ्यता की उच्चतम अवस्था तक अवरुद्ध अवस्था मे पडे रहे । इसी प्रकार जो लोक्रियन यूनान मे रह गये उनसे कही अधिक उन्नति इटली के एपि-जेफ़ियाई लोक्रियन कर गये ।

सबसे आकर्षक उदाहरण एट्रसकनो का है । यह तीसरा दल था जो पश्चिमी मध्यसागर के उपनिवेशीकरण में 'फोइनीशियनो' तथा यूनानियो से होड मे था । जो एट्रसकन पश्चिम गये वे यूनानियों और फोइनीशियनो के विपरीत जिस सागर को पार करके आये थे उसके निकट रहने मे सन्तुष्ट नही थे । वे इटली के पश्चिमी तट से आगे अन्दर की ओर चले गये और अपेनाइन पहाड़ तथा तो नदी को पार करते हुए आल्प्स की तराई तक पहुँच गये । जो एट्रसकन घर पर रह गये उनका चिह्न तक नही रह गया क्योकि इतिहास उनसे अनभिज्ञ है और उनके निवास का भी ठीक-ठीक पता नही है । यद्यपि मिस्री अभिलेखों में यह संकेत मिलता है कि मूल एट्रसकन उस जनरेला मे सम्मिलित थे जो मिनोइयो के बाद हुआ था और उनका क्रिया-कलाप लेवाण्ट के पूर्वी तट पर कहीं हो रहा था ।

जनरेला मे समुद्र पार करके जाने का बहुत स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़ता है । ऐसी घटना

१. मूल पुस्तक में 'कैन्टनीज' शब्द का प्रयोग किया गया है । —अनुवादक

असाधारण है। इस विषय के लेखक को एक ही ऐसा उदाहरण मिलता है और वे है एजियन सागर पार कर के अनातोलिया के पश्चिमी तट की ओर ट्युक्रियनो, आयोलियनों, आयोनियनो तथा डोरियनो का मिनोइयो के बाद वाला जनरेला, ट्युक्रियनों और फिलस्तीनियो का सीरिया के तट की ओर का जनरेला, और एथिलो तथा जूटो का ब्रिटेन की ओर हेलेनी सभ्यता के बाद का जनरेला। क्रिटनो का सागर पार कर उस जगह आना जिसे ब्रिटानी कहते है, उसी समय आइरिश स्काटो का आरजिल को जाना, और स्काडिनेवियाई वाईकिगो का जनरेला जो उस समय हुआ था जब कैरिलिजियनो ने मृत रोमन साम्राज्य को पुनरुज्जीविति करने का असफल प्रयास किया था। कुल छ उदाहरण हैं। इनमे से फिलस्तीनियो का प्रव्रजन प्राय निष्फल रहा। जैसा कि पहले (पृ० ७७) बताया गया है। ब्रिटनो के बाद के इतिहास मे भी कोई विशेषता नही है। शेष चार सागर के पार के प्रव्रजनो मे कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ पायी जाती हैं जो थल पर के प्रव्रजनो में नही मिलती।

सागर को पार करके जो प्रव्रजन हुए हैं उनमे एक बात सबमे पायी जाती है। सागर पार करने वाले प्रवासियों को अपने सामाजिक उपकरणो को अपने पुराने देश से अपने साथ ले जाना पडा और नये देश में उसका प्रयोग करना पडा। सभी उपकरण—व्यक्ति और समाज, तकनीक और सस्थाएँ तथा विचार इसी नियम के अधीन हैं। उन सभी वस्तुओ को जो समुद्र यात्रा सहन नहीं कर सकती पीछे छोड़ देना पडना है। केवल भौतिक पदार्थ ही नही जिन्हे यात्रा मे प्रवासी ले जाते है और उन्हे अलग-अलग करके ले जाना पडता है और नये विकास मे पहुँचने पर उन्हे अपने मूल रूप मे सम्भवत फिर जोडा नही जाता। नये देश मे पहुँचकर उपकरणों का यह बडल जब वह खोलता है तब उसे पता चलता है समुद्र की यात्रा मे इन उपकरणों मे विचित्र और सूक्ष्म परिवर्तन हो गया है। इस प्रकार का सामुद्रिक प्रवास जब जनरेला द्वारा होता है तब चुनौती अधिक भीषण होती है और प्रेरणा और भी तीव्र होती है। क्योकि जिस समाज पर यह प्रतिक्रिया हो रही है वह कोई प्रगतिशील समाज नही होता (जैसे यूनानी या फोएनीशियाई उपनिवेशक जिनके सम्बन्ध मे पहले विचार किया जा चुका है) वह ऐसा समाज होता है जो गतिहीन है और जो आदिम मानव की अन्तिम अवस्था मे होता है। जनरेला मे यह कर्मण्यता एकाएक वेग और गति मे परिवर्तित हो जाती है। इससे समुदाय के जीवन को शक्ति प्राप्त होती है। और जब यह प्रवास भूमि पर से न होकर, जहाज द्वारा होना है तब यह गति अधिक तीव्र हो जाती है। क्योकि जहाज से जाने पर बहुत-सा सामाजिक उपकरण छोड देना पड़ता है जिन्हे भूमि पर की यात्रा मे प्रवास करने वाले अपने साथ ले जाते हैं।

"(समुद्र यात्रा के बाद) दृष्टि मे अन्तर हो गया जिसके कारण देवताओ तथा मनुष्यो के सम्बन्ध में नयी धारणाएँ बन गयी। स्थानीय देवताओ के स्थान पर, जिनकी शक्ति उपासको के निवास के क्षेत्र मे इतनी व्यापक थी, अब ऐसे समवेत (कारपोरेट) देवता हो गये जो विश्व भर पर शासन करते थे। जो मन्दिर कलकित गृह के साथ 'मिडिलगाथ' का केन्द्र था वह ईश्वरीय प्रसाद बनाकर सम्मानित किया गया। काल-सम्मानित कथाएँ जिनमें अलग-अलग देवताओ के गुण-गान थे ईश्वरीय गाथाओ मे बदल गयी। उसी प्रकार जैसे पहले की वाइकिग जाति

होमरी यूनानियों में बदल गयी । इस धर्म ने एक नये देवता ओडिन को जन्म दिया जो मनुष्यो का नेता और युद्ध का देवता था ।"[1]

कुछ-कुछ इसी प्रकार जो स्काट आयरलैंड से उत्तरी ब्रिटेन मे आये उन्होने नये धर्म की नीव डाली । यह केवल संयोग की बात नही है कि सागर पार डालरियाडा सन्त कोलम्बा[2] के धार्मिक कार्यों का मुख्य स्थान बना और आयोना उसका केन्द्र ।

समुद्र पार के प्रवास की विशेष घटना यह होती है कि विभिन्न जातीय प्रवृत्तियाँ एक दूसरे में मिल जाती हैं । इसमें पहला उपकरण जो त्याग दिया जाता है वह है आदिम कुटुम्ब दल । क्योकि किसी एक जहाज में एक ही श्रेणी का दल रह सकता है । अनेक जहाज सुरक्षा के लिए एक साथ चलते है और अपने नये निवास मे एक साथ रहने लगते हैं । वे विभिन्न स्थानो के होते है । थल की राह से जो प्रवास होता है उसमे बाल-बच्चों समेत अपने घर का सरो-सामान लेकर सारा कुटुम्ब एक साथ धीरे-धीरे घोघे की गति से चलता है ।

समुद्र पार के प्रव्रजन की दूसरी विशेषता यह है कि आदिम सस्थाओ का, जिनमे एक ही प्रकार के सामाजिक जीवन की मुख्यत अभिव्यक्ति होती है, विनाश हो जाता है । इस प्रवास के पहले ऐसा नही होता । प्रवास मे विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक प्रवृत्तियाँ, विभिन्न धर्म तथा कलाएँ मिलती है और नयी सामाजिक चेतना जाग्रत हो जाती है । यदि इस सस्कार की महिमा हम देखना चाहे तो स्काडिनेवी संसार मे देख सकते हैं । जो स्काडिनेवी घर पर ही रह गये उनकी तुलना करके देखिए—

"आइसलैंड मे मई दिवस के खेल-कूद, वैवाहिक सस्कार तथा प्रेम के दृश्य उपनिवेशको के बस जाने के बाद नही रह गये । एक तो इस कारण कि बसने वाले यात्रा करके आये थे और प्रबुद्ध श्रेणी के थे, दूसरे यह कि ये ग्रामीण समारोह कृषि से सम्बन्धित थे जो आइसलैंड के महत्त्व का कार्य नही हो सकता था ।"[3]

चूँकि आयरलैंड मे भी किसी न किसी प्रकार की खेती होती ही थी । इसलिए जो दो कारण बताये गये है उनमे पहला अधिक महत्त्व का है ।

जिस पुस्तक का अवतरण उद्धृत किया गया है उसका प्रतिपाद्य विषय यह है कि जो स्काडिनेवियाई कविताएँ 'दि एडलर एड्डा' के नाम से लिपिबद्ध की गयी उनमे आदिम स्काडिनेवियाई कृषि-नाट्य (फरण्टिलिटी ड्रामा) की बोली के शब्दों का व्यवहार किया गया है । यही भाग था जो स्थानीय संस्कारो मे जड पकडे हुए था और जिन्हें प्रवासी अपने साथ जहाज पर लेकर आये । इस सिद्धान्त के अनुसार आदिम सस्कार जो नाटको मे विकसित होते थे उन्हें प्रवासियो ने रोक दिया । इस सिद्धान्त का समर्थन हेलेनी इतिहास में भी होता है । क्योकि यह निश्चित

१. **बी० ग्रावबेख : द कलचर आव द ट्यूटन्स, भाग २, पृ० ३०६–७ ।**

२. **आयरलैंड के एक सन्त जिन्होंने स्काटलैंड और उत्तरी इंग्लैंड में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए मिशनरी भेजे ।—अनु०**

३. **बी० एस० फिलपाट्स : दि एलडर एड्डा ऐंड एन्शेन्ट स्कांडिनेवियन ड्रामा, पृ० २०४ ।**

तथ्य है कि यद्यपि हेलेनी सभ्यता का विकास सागर पार आयोनिया मे हुआ, आदिम संस्कारों के आधार पर जो हेलेनी नाटको का विकास हुआ वह यूनान के प्रायद्वीप की भूमि पर हुआ। अपसाला के मन्दिर का प्रतिरूप हेलास मे एथेन्स का डायोनाइसस की नाट्यशाला थी। दूसरी ओर आयोनिया, आइसलैंड तथा ब्रिटेन में सागर पार आने वाले प्रवासियो ने हेलेनी, स्काडिनेवियाई तथा एग्लो सैक्सन महाकाव्यो की रचना की अर्थात् होमर, दि एड्डा और बेओवल्फ्।

गाथा तथा महाकाव्यो का निर्माण उन मानसिक आवश्यकताओ के परिणामस्वरूप होता है जो शक्तिशाली व्यक्तियों के नवीन जागरण तथा महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक घटनाओ के कारण उत्पन्न होते है। होमर कहता है—'उस काव्य की लोग अधिक प्रशसा करते है जिनमे कानो मे कुछ नवीनता सुनाई देती है।' किन्तु महाकाव्य मे नवीनता से अधिक एक बात का मूल्य होता है। वह है कथानक में वास्तविक मानव की अभिरुचि। वर्तमान मे तभी तक रुचि रहती है जबतक वीरकाल का वेग और संघर्ष रहता है। किन्तु सामाजिक सवेग अस्थायी होता है और जब वेग समाप्त हो जाता है महाकाव्य तथा गाथा के प्रेमी अनुभव करने लगते है कि हमारे युग का जीवन निस्तेज हो गया है। तब वे पुरानी की अपेक्षा नयी कविता पसन्द करने लगते है। तब नये युग के कवि सुनने वालों के मनोभाव के अनुसार पुरानी पीढी की कथाओ को अलकृत करते और दोहराते है। इसी बाद के युग मे महाकाव्य तथा गाथाएँ साहित्यिक पराकाष्ठा को पहुँची। फिर भी यह समझना चाहिए कि ये महान् रचनाएँ कभी न विद्यमान होती यदि सागर पार करने के कष्टो से प्रेरणा न प्राप्त होती। हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते है कि 'नाटक का विकास पुराने निवास में होता है—और महाकाव्य का प्रवासियो मे।'[1]

सागर पार प्रवास की अग्नि-परीक्षा के फलस्वरूप दूसरी निश्चयात्मक रचना जो जनरेला के पश्चात् होती है वह साहित्यिक नही, राजनीतिक होती है। यह नये ढग का राज्यतन्त्र कौटुम्बिक नही होता, सविदा (कन्ट्रेक्ट) पर आधारित होता है।

सबसे प्रमुख उदाहरण वे नागरिक राज्य है जिन्हे समुद्रगामी यूनानी प्रवासियो ने अनातोलिया के तट पर उन जनपदो मे स्थापित किया जो बाद म आयोलिस, आयोनिया और डोरिस के नाम से विख्यात हुए। हेलेनी वैधानिक इतिहास के अल्प अभिलेखों से पता चलता है इन सागर पार की बस्तियों मे जो सगठन हुए उनके आधार विधि और वे प्रदेश थे, कुटुम्ब और रीति-रिवाज नही। बाद मे यूरोपीय यूनान ने इनका अनुकरण किया। इस प्रकार सागर पार जो नगर राज्य स्थापित हुए, जो नये राजनीतिक सगठन के शक्ति केन्द्र कुटुम्ब नही थे, जहाज की कम्पनियाँ थीं। जिन लोगों ने जहाज पर आपस मे सहयोग किया, जैसे एक जहाज के सब साथी सागर की विपत्तियों को झेलते हुए करते है, उसी प्रकार वे किनारे आकर तट की धरती की उस पतली पट्टी पर भी करते हैं जिसे उन्होने परिश्रम से जीता है और जहाँ उन्हे पृष्ठप्रदेश के बैरियो से भय बना रहता है। जिस प्रकार सागर मे उसी प्रकार किनारे पर भी, कुटुम्ब से अधिक सगत का महत्त्व होता है और चुने हुए तथा विश्वसनीय नेता की आज्ञा रीति-रिवाज की भावनाओ मे अपर कार्य करती है। वास्तविकता यह है कि जो जहाजो का गिरोह मिलकर समुद्र पार किसी स्थान पर

१. बी० एस० फिलपाट्स : दि एल्डर एड्डा, पृ० २०७।

विजय प्राप्त करता है, वह स्वभावत नगर-राज्य मे परिवर्तित हो जाता है और स्थानीय दल बन जाता है जिसपर एक चुना हुआ मजिस्ट्रेट शासन करता है ।

जब हम स्काडिनेवियाई जनरेला पर दृष्टि डालते है तब वहाँ भी हमें इसी प्रकार के राजनीतिक विकास का अंकुर दिखाई देता है । यदि अकाल प्रसूत स्काडिनेवियाई सभ्यता को पश्चिमी यूरोप खा न गया होता और वह विकसित होती तो जो कार्य आयोलिस और आयोनिया के नगर राज्यो ने किया था वही आयरिश तट पर ओस्टमन के पाँच नगर-राज्य करते या वे पाँच नगर (लिकन, स्टैम्फोर्ड, लाइसेस्टर, डरबी और नाटिंघम) जिन्हे डैनियो ने मरशिया मे अपनी भूमि की सीमा की रक्षा के लिए संगठित किया था । सागर पार स्काडिनेवियाई राजतन्त्र का सबसे सुन्दर उदाहरण आइसलैंड का लोकतन्त्र था जो देश अपनी जन्मभूमि (स्काडिनेविया) से पाँच सौ मील दूर आर्टिक सागर के फेरो द्वीप समूह मे एक टापू था जहाँ की धरती ऊसर थी ।

जहाँ तक एगलियो और जूटो का समुद्र पार करके ब्रिटेन मे आने की घटना है केवल सयोग की ही बात नही है, कुछ अधिक भी है, कि जिस द्वीप पर पश्चिमी इतिहास के प्रभात में उन प्रवासियो ने अधिकार किया, जिन्होने सागर पार कर आदिम कौटुम्बिक बन्धनो को तोड डाला था, उसी द्वीप मे हमारे पश्चिमी समाज के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विकास हुए । जिन डेनियों तथा नारमन आक्रमणकारियों ने एगिलियो के बाद प्रवेश किया और जिन्हे भी बाद के राजनीतिक उन्नति का श्रेय मिलता है उन्हे भी ऐसे ही बन्धनो के तोडने का अनुभव हुआ था । इन जातियो ने मिलकर राजनीतिक उन्नति की जिसके लिए यहाँ बहुत उपयुक्त वातावरण मिला। इसमें आश्चर्य की बात नही है कि हमारे पश्चिमी समाज ने इग्लैंड मे पहले राजा का निर्माण किया और उसके बाद ससदीय शासन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की । इसके विपरीत यूरोप के महाद्वीप मे पश्चिमी राजनीतिक विकास रुक गया क्योकि फ्राको और लम्बार्डों मे कौटुम्बिक भावना का अस्तित्व बना रहा इस कारण से कि यह सामाजिक दोष आरम्भ मे सागर यात्रा से मिट न सका ।

(३) आघात से प्रेरणा

भौतिक वातावरण द्वारा जो प्रेरणा प्राप्त होती है उसकी परीक्षा हमने की । इस अध्ययन को हम यह देखकर पूरा करेंगे कि इसी प्रकार मनुष्य द्वारा उत्पन्न की हुई परिस्थिति का क्या परिणाम होता है । दो परिस्थितियो का अन्तर इसमे देखना होगा । एक तो वह मानवी परिस्थिति जो भौगोलिक दृष्टि से उस समाज के बाहर की है जिसपर उनकी प्रतिक्रिया होती है और दूसरी वह जो भौगोलिक दृष्टि से उस समाज से मिली हुई है । पहले वर्ग मे वे प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित हैं जो उन समाजो अथवा राज्यो द्वारा अपने पडोसियो पर होती हैं जब दोनो दल किसी विशेष क्षेत्र मे अलग-अलग अधिकारी होते हैं । संगठन ऐसे सामाजिक सम्पर्क में शिथिल होता है और सगठन की दृष्टि से मानवी परिस्थिति, जिसका सामना उन्हे करना पडता है वह 'बाहरी' अथवा 'विदेशी' हैं । दूसरा रूप वह है जिसमे दोनो वर्ग एक ही क्षेत्र मे मिले हुए अधिकारी हैं और एक वर्ग की प्रतिक्रिया दूसरे वर्ग पर होती है । इस प्रकार के सम्बन्ध को हम 'आन्तरिक' अथवा 'घरेलू' कहेंगे । इस आन्तरिक मानवी परिस्थिति की जाँच हम बाद मे करेंगे । बाहरी आघात के हम और विभेद करेंगे । आकस्मिक आघात और उसके परिणामस्वरूप जो बराबर

दबाव पड़ता है । इस प्रकार हमारी परीक्षा के लिए तीन विषय हैं । बाहरी आघात, बाहरी दबाव और आन्तरिक दण्ड ।

आकस्मिक आघात का क्या प्रभाव पडता है ? हमारी जो प्रस्तावना है कि जितनी ही बडी चुनौती होगी उतनी ही अधिक प्रेरणा मिलेगी, क्या यहाँ भी सत्य उतरती है ? स्वभावतः पहले वे स्थितियाँ सामने आती है जहाँ किसी सैनिक शक्ति को अपने पडोसियो से बराबर संघर्ष करते रहने से प्रेरणा प्राप्त हुई है और फिर असैनिक शक्तियों को किसी ऐसे बैरी से पराजय मिली है जिनके बल की उन्होने पहले कल्पना नही की थी । जब आरम्भिक साम्राज्य निर्माताओ का अपने कार्य-काल के बीच ही नाटकीय ढग से पतन होता है तब साधारणतः क्या होता है ? क्या वे धराशायी होने पर सिसेरा की भाँति धरती पर पड रहते है कि हेलेनी कथा के दैत्य (जायण्ट) ऐण्टीयस की भाँति दुगनी शक्ति लेकर फिर उठते है ? ऐतिहासिक उदाहरण ऐसे ही मिलते हैं कि दूसरी ही बात साधारणतया होती है ।

उदाहरण के लिए विदेशी आक्रमण द्वारा पराजय का प्रभाव रोम की गति-विधि पर क्या पडा ? एट्रस्का के वेइआई से लगातार पाच वर्षो के युद्ध के पश्चात् रोम ने विजय प्राप्त की और उसी के पश्चात् यह पराजय हुई । और उसी के पश्चात् रोम की ऐसी स्थिति हुई कि उसने लैटियम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया । रोमन सेना का एलिया मे पराजय और पीछे से बर्बरो द्वारा रोम पर आक्रमण करना और उस पर अधिकार जमा लेना इतना पर्याप्त था कि रोम ने अभी जो शक्ति और कीर्ति अर्जित की थी वह एक क्षण मे मिट जाय । किन्तु ऐसा नही हुआ । गैलिक पराजय से रोम इतनी शीघ्रता से पुनरुज्जीवित हो गया कि पचास साल से कम ही अवधि मे बाद मे अपने इटालियाई पडोसियो से और अधिक दिनो तक लडता रहा और अन्त मे ऐसी विजय पायी कि सारे इटली पर उसका प्रभुत्व हो गया ।

और भी देखिए । उसमानलियो की शक्ति का क्या हुआ जब तैमूर खाँ ने बजा जेत के सुलतान बेयजीद यिलदरीम को अगौरा के रण-क्षेत्र मे बन्दी बनाया ? यह दुर्घटना उस समय हुई जब उसमानली परिवार बाल्कन प्रायद्वीप मे परम्परावादी ईसाई समाज को पूर्ण रूप से पराजित करने वाला ही था । इसी सकटकाल मे जलडमरूमध्य के एशियाई तट पर ट्रास आक्जेनिया की ओर से वज्र प्रहार हुआ और वे धराशायी हो गये । यह सम्भावना थी कि साम्राज्य का अपूर्ण प्रासाद ढह जाता । किन्तु वास्तव मे ऐसा नही हुआ । पचास साल के बाद विजयी मुहम्मद साहब ने कुसतुनतुनिया पर विजय प्राप्त करके बैयजीद प्रासाद के मुँडेरे का पत्थर रखा ।

रोम के असफल प्रतिद्वन्द्वियो के इतिहास से प्रकट होता है कि जिस समय समाज की घोर पराजय होती है उसे उस पराजय के परिणामस्वरूप क्रियात्मक शक्ति प्राप्त होती है यद्यपि और अधिक पराजय के कारण वह शक्ति नष्ट हो जाती है और जिस कार्य के लिए वह शक्ति उत्पन्न होती है, वह कार्य नही हो पाता । पहले प्युनिक युद्ध मे हेमिलकार बारका की पराजय हुई । उससे उसे उत्तेजना मिली और उसने अपने देश के लिए विजय प्राप्त करके स्पेन मे साम्राज्य स्थापित किया । सिसिली जो साम्राज्य यह हार चुका था उससे बडा यह नया साम्राज्य था । दूसरे प्युनिक युद्ध मे हैनिबल की पराजय के पश्चात् कारथेजिनियनो ने पचास वर्षों में अपने सम्पूर्ण विनाश के पहले दो कार्यों से संसार को चकित कर दिया । पहला तो यह कि उन्होंने अपने ऊपर लगी युद्ध की क्षतिपूर्ति बडी शीघ्रता से कर दी और अपना वाणिज्य

वैभव फिर से प्राप्त कर लिया । दूसरे अपने अन्तिम विनाशकारी युद्ध मे वीरता से उनकी सारी जनता पुरुष, स्त्री और बच्चों ने लड़कर अपने प्राणों की आहुति दे दी । और देखिए । मैसेडन का पाँचवाँ फिलिप जो पहले निष्क्रिय राजा था, साइनोरिनफिली की लडाई के बाद इतना वीर हो गया और इसने अपने देश को इतना शक्तिशाली बना दिया कि उसके पुत्र परसियुस ने अकेले रोम से मोर्चा लिया और पिडना में अपने सम्पूर्ण पराजय के पहले उसे लगभग हरा चुका था ।

इसी प्रकार का एक और उदाहरण है यद्यपि उसका परिणाम भिन्न है । जब आस्ट्रिया ने क्रान्तिकारी और नेपोलियन के युद्धो मे पाँच बार हस्तक्षेप किया, पहले तीन बार जब उसने हस्तक्षेप किया उसमें उसे पराजय ही नही, अप्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई । आस्टरलिट्स के युद्ध के बाद इसने अपनी कमर कसनी आरम्भ कर दी । यदि आस्टरलिट्स उसके लिए साइनोसेफेली था तो वैगरम उसका पिडना था । किन्तु मैसेडन से वह अधिक भाग्यशाली था । उसने फिर हस्तक्षेप किया और १८१३ मे विजय पायी ।

इन्ही युद्धो के चक्रो मे प्रशिया का कारनामा और भी आश्चर्यजनक है । उन चौदह वर्षों मे जिसका अन्तिम स्वरूप जेना का युद्ध था, जिसमे उसे अच्छी तरह मुँह की खानी पड़ी, प्रशिया की नीति निरर्थक और अपमानजनक थी । आइलाऊ में शीतकाल का भयकर युद्ध हुआ और टिल्सिट मे जो कठोर शर्तें उसपर लगायी गयी उनसे प्रेरणा मिली जो जेना के पहले धक्के से आरम्भ हुई थी । इस स्फूर्ति से प्रशिया ने जो शक्ति अर्जित की वह आश्चर्यजनक थी । उसके कारण केवल प्रशिया की सेना ने ही नही नया जीवन प्राप्त किया, उसकी शासन तथा शिक्षा व्यवस्था ने भी नया रूप धारण किया । असल मे इसके कारण प्रशिया वह पात्र बना जिसमे जरमन राष्ट्रीयता की नयी शराब रखी जा सके । इसी के कारण स्टाइन, हारडनबुर्ग, हमबोल्ट और बिसमार्क तक का क्रमश. विकास हुआ ।

यही क्रिया हमारे युग मे दोहरायी गयी । यह घटना इतनी दुखद है कि कहने की आवश्यकता नही । सन् १९१४-१८ मे जरमनी की जो पराजय हुई और इस पराजय को और तीव्र कर दिया । १९२३-२४ मे फ्रासीसियो द्वारा रूर की घाटी पर कब्जा, उसी का परिणाम हुआ नाजियों का असफल, किन्तु अमानुषिक बदला ।[१]

किन्तु प्रहार से स्फूर्ति प्राप्त होने का क्लासिकी उदाहरण साधारण हैलास का तथा विशेषत. एथेन्स का है । जब ४८०-४७९ ई० पू० मे फारस का आक्रमण हुआ जो सीरियाई सार्वभौम राज्य था । जितनी ही एथेन्स को पीडा पहुँची उसी के अनुपात में उसका उत्कर्ष हुआ । यद्यपि बेओएशिया के उपजाऊ खेतों की रक्षा उनके मालिको के विश्वासघात के कारण स्वय हो गयी

१. पुस्तक के इस भाग को ट्वायनबी ने १९३१ की गर्मियों में लिखा था । उस समय तक डा० बुइनिंग चांसलर थे । मगर जब सितम्बर १९३० में राइखस्ताग के चुनाव में नाजियों की अभूतपूर्व विजय हुई और इन लोगों को ४९१ स्थानों में १२ के बजाय ५७७ में १०७ स्थान मिले । उन्होंने लिखा—'यह स्पष्ट हो गया कि जो प्रहार १९१८ के युद्धविराम के पश्चात् जरमनी पर हुए हैं उनसे उसे वही स्फूर्ति मिली है जो एक सौ साल पहले १८०६–७ में प्रशिया को उसकी पराजय के पश्चात् प्राप्त हुई थी । —सम्पादक ।

और लेसिडेमान के उपजाऊ खेतो की रक्षा एथेनी जहाजी बेड़ो ने की, एटिका की साधारण धरती दो आक्रमणो मे उजड़ गयी। एथेन्स को दखल कर लिया गया और उसके मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये। एटिका की सारी जनता को अपना देश खाली कर देना पड़ा और सागर पार कर के पैलोपोनीस में शरणार्थी के रूप मे जाना पड़ा। इस परिस्थिति मे एथेनी जहाजी बेडे को लड़ना पड़ा और सलामिस का युद्ध उसने जीता। इसमे आश्चर्य नहीं। जिस प्रहार ने एथेनी जनता की अजेय आत्मा को उत्तेजित किया वह उस अद्वितीय उपलब्धियों की भूमिका थी जिसने अपनी चमक तथा विविधता से मानव के इतिहास को प्रकाशित किया है। उनके मन्दिर उनके देश के पुनरुत्थान के प्रतीक थे। उनके पुनर्निर्माण मे जो समता पेरिक्लीजयुगीन एथेन्स ने दिखायी वह १९१८ के बाद वाले फ्रास से कही अधिक सजीव थी। जब रीम्स के ध्वस्त गिरजा घर को फ्रास ने फिर से प्राप्त किया तब उसने हरएक पत्थर के टुकड़े को और मूर्ति के टूटे टुकड़े को यथास्थान स्थापित किया। एथेनियनो ने जब हैकाटाम्पेडन को ऊपर से नीव तक भस्म पाया तब उन्होने उस नीव को वही रहने दिया और नये स्थान पर पारथियन का निर्माण किया।[१]

प्रहारो के कारण जो स्फूर्ति मिलती है उसका सबसे अच्छा उदाहरण सैनिक पराजयो मे मिलता है। खोजने पर इसके बहुत-से उदाहरण मिल सकते है। हम केवल एक धार्मिक उदाहरण तक अपने को सीमित रखेगे 'शिष्यो के विधान' (एक्ट्स आव द अपासिल्स) मे जोरदार विधान इसलिए बनाये गये थे कि हेलेनी समाज पर ईसाई विजय प्राप्त करे। इनका विचार ऐसे समय आया जब उनका गुरु आश्चर्यजनक रीति से पुनरुज्जीवित होकर फिर लोप हो गया। सूली पर चढ़ाने वाली घटना से यह दूसरी घटना अधिक निराशाजनक होती। किन्तु इस प्रकार के ही अनुपात में उनकी आत्माओ मे मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई जिसकी कथा के रूप मे दो अभिव्यक्तियाँ इस प्रकार है। दो मनुष्य धवल वस्त्र मे दृष्टिगोचर हुए और पेटिकास्ट[२] के समय आग की लपटो का अवतरण हुआ। पवित्र आत्मा (होली गोस्ट) की शक्ति के रूप मे उन्होने सूली पर चढ़े हुए तथा लोप हुए ईसू के ईश्वरत्व का प्रचार यहूदी जनता मे ही नही उनके सबसे ऊँचे न्यायालय[३] मे भी किया। और तीन सौ साल के भीतर ही रोमन सरकार उस धर्म से पराजित हो गयी जो ऐसे समय स्थापित हुआ था जब उनका मन बहुत गिरा हुआ था।

(४) दबाव द्वारा प्रेरणा

अब ऐसी स्थितियो की परीक्षा की जायगी जहाँ आघात का स्वरूप दूसरे ढग का है अर्थात् लगातार बाहरी दबाव। राजनीतिक भूगोल की शब्दावली मे ऐसी जातियाँ, राज्य अथवा नगर जिन्हे ऐसे दबाव का सामना करना पड़ता है, 'मार्च' अर्थात् सीमा प्रदेश कहे जाते है। और इसका

१. लन्दन में १०६६ के विशाल अग्निकाण्ड के बाद प्राचीन गोथिक वास्तुकला को पुनरुज्जीवित न करके रेन ने सन्तपाल का गिरजा घर बनाया। यदि युद्ध में वेस्टमिनिस्टर ऐबे या सन्तपाल का गिरजा घर ध्वस्त हो जाता तो आज के लन्दन वाले क्या करते?—सम्पादक।

२. यहूदियों का फसल काटने का त्योहार।—अनु०

३. सैनहैडराइन—यहूदियों का सबसे ऊँचा न्यायालय—जिसमे ७१ सदस्य होते थे।—अनु०

अनुभव जनित अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते है कि समाजो में ऐसे सीमा प्रदेशो ने उस समय क्या किया है जब उनपर बाहरी दबाव पड़ा है और इसकी तुलना हम उन प्रदेशों के कार्यों से करे जो देशों के बीच सुरक्षित रूप से स्थित है ।

मिस्री संसार में :—मिस्री सभ्यता के इतिहास मे तीन ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर आये हैं जब घटनाओ का सचालन ऊपरी मिस्र के दक्षिण की शक्तियों द्वारा हुआ । सयुक्त राज्य (यूनाइटेड किंगडम) की स्थापना लगभग ३१०० ई० पू० हुई, सार्वभौम राज्य की स्थापना लगभग २०५८ ई० पू० और इसका पुन स्थापन लगभग १५८० ई० पू० । ये सब घटनाएँ उस छोटे सँकरे प्रदेश द्वारा सम्पादित हुई । मिस्री साम्राज्य की यह जननी सच पूछिए तो मिस्री संसार की दक्षिणी सीमा थी जिसपर न्यूबिया के कबीलो का दबाव पडता रहा । किन्तु मिस्री इतिहास के पिछले काल मे—अर्थात् नये साम्राज्य के पतन और ईसा की पाँचवी शती में जब मिस्री समाज का पूर्ण लोप हो गया, इन सोलह धुँधली शक्तियो मे—राजनीतिक सत्ता डेलटा मे चली गयी जो उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया की सीमा थी । यह सत्ता उसी प्रकार इधर आती गयी जिस प्रकार पहले दो हजार वर्षो मे दक्षिणी सीमा की ओर आती रही । इस प्रकार मिस्री ससार का राजनीतिक इतिहास अथ से इति तक उत्तरी और दक्षिणी सीमा की राजनीतिक सत्ताओ के बीच के खिँचाव के अनुसार ही थी । ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता जिसमे महान् राजनीतिक घटनाएँ सीमा पर न होकर अन्तरदेशवर्ती हो ।

क्या हम इसका कोई कारण दे सकते है कि मिस्री इतिहास के पहले आधे युग मे उत्तरी सीमा का प्रभुत्व क्यों रहा और अन्तिम आधे काल मे दक्षिणी सीमा का ? कारण यह जान पड़ता है कि न्यूबियनो की सैनिक पराजय और तोतमीज प्रथम (लगभग १५८५–१४९५ ई० पू०) के काल मे उनकी सास्कृतिक विलीनता के पश्चात् दक्षिणी सीमा पर दबाव कम हो गया अथवा समाप्त हो गया । और उसी समय अथवा थोड़े ही समय के बाद सीबिया के बर्बरों तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया के राज्यो का दबाव जोरो से बढने लगा । इस प्रकार मिस्र के राजनीतिक इतिहास पर सीमा प्रान्तो का प्रभाव केन्द्रीय प्रान्तो की अपेक्षा अधिक पड़ता है । इतना ही नही, जिस सीमा पर सबसे अधिक आक्रमण का भय रहता है उसी का प्रभाव सबसे अधिक होता है ।

ईरानी संसार में :—यही परिणाम दूसरी परिस्थिति मे दो तुर्की जातियो, उसमानलियो तथा करमानलियों के विरोधी इतिहासो से मिलता है । ये दोनो जातियाँ चौदहवी शती मे अनातोलिया के एक-एक भाग पर राज्य करती थी । ये भाग ईरानी संसार के पश्चिमी प्राचीर थे ।

ये दोनों तुर्की जातियाँ अनातोलिया के मुसलिम सलजुक सुलतानो की उत्तराधिकारिणी थी । ग्यारहवी शती मे धार्मिक युद्ध[1] के पहले, सलजुक तुर्की योद्धाओ ने परम्परावादी ईसाई समाज को हराकर दारुलइस्लाम का विस्तार किया और इस लोक तथा परलोक मे अपने लिए जगह बनायी । ईसा की तेरहवी शती मे जब यह सुलतानी शासन नष्ट हो गया तब सलजुको के राज्य का करमानलियों को सबसे श्रेष्ठ तथा उसमानलियो को सबसे निकृष्ट भाग मिला ।

१. ईसाइयों तथा मुसलमानों का वह युद्ध जो ईसाइयों ने अपने धार्मिक स्थानों की प्राप्ति के लिए किया था ।—अनुवादक

करमानली को राज्य का हीर मिला जिसकी राजधानी कोनिया थी और उसमानली को बाहरी भाग जो भूसी के समान था।

उसमानलियों को सलजुकों के राज्य का निकृष्ट भाग इसलिए मिला कि वे सबसे पीछे और दीन अवस्था में आये। 'उसमान' जो उनकी जाति का उपनाम था, और जो किसी अरतोगरल का लड़का था कुछ अज्ञात शरणार्थियों के गिरोह का नेता बन गया। ये अव्यवस्थित रूप मे थे और जब पूर्वी यूरेशियाई स्टेप के मध्य से ईरानी समाज की उत्तर-पूर्वी सीमा पर आक्रमण होने लगा तब ये सीमा के अन्तिम छोर तक ढकेल दिये गये। अनातोलिया सलजुक के अन्तिम शासक ने इन शरणार्थियों को, जो उसमानलियों के पूर्वज थे अनातोलिया के पठार की उत्तर-पश्चिमी सीमा का एक टुकडा दे दिया। यहाँ सलजुकों के राज्य की और बाइजेंटी (बाइजेन्टाइन) साम्राज्य की सीमाएँ मिलती थी, जो मर्मर सागर के एशियाई किनारे तक विस्तृत था। इस भाग मे सदा आक्रमण का भय बना रहता था। इसी से इसका नाम 'सुलतान ओनू' था जिसका अर्थ है सुलतान का युद्ध-क्षेत्र। इन उसमानलियों को करमानलियों के भाग्य से ईर्ष्या हुई होगी, किन्तु भिखमगों को तो भिक्षा से ही सन्तोष करना पड़ता है। उसमान ने अपने भाग्य पर सन्तोष किया और अपने पड़ोसी परम्परावादी ईसाई समाज पर बराबर आक्रमण करके अपनी सीमा का विस्तार आरम्भ किया। जिसमे पहला आक्रमण बाइजेंण्टियाई नगर ब्रूसा पर था। ब्रूसा पर विजय प्राप्त करने में उसे नौ वर्ष लगे (१३१७–२६ ई०)। उसमानलियों ने अपने वंश का नाम ठीक ही 'उसमान' नाम पर रखा क्योंकि उसमानी साम्राज्य का वही संस्थापक था।

ब्रूसा के पतन के तीस साल के भीतर ही उसमानलियों ने दर्रादानियाल (डार्डानिलीज) के यूरोपीय तट पर पाँव जमाना आरम्भ कर दिया और यूरोप में उनके भाग्य का सितारा चमका। और इसी शती की समाप्ति के पहले ही उन्होंने एक ओर करमानलियों तथा अनातोलिया के दूसरे तुर्की समूहों पर विजय प्राप्त की और साथ ही साथ दूसरी ओर सर्वो यूनानियों तथा बुलगारियों को हराया।

राजनीतिक दृष्टि से सीमा होने से इसी प्रकार प्रेरणा मिलती है। इतिहास के इसके पहले के काल की परीक्षा से ज्ञात होता है कि उसमानलियों के पहले निवास-स्थान अनातोलिया मे, करमानलियों की अपेक्षा वीरता उत्पन्न करने की कोई विशेषता न थी जिससे सुलतान ओनू का नाम इस अध्याय के पहले भाग मे आता। यदि हम सलजुक तुर्कों के आक्रमण के पहले ईसा की ग्यारहवी शती के तीसरे चतुर्थांश की ओर ध्यान दे, जब अनातोलिया पूर्वी रोमन साम्राज्य की सीमा के अन्दर था तो हम देखेंगे कि जो प्रदेश बाद में करमानलियों ने अधिकृत किया वह प्राय वही था जिसमें पहले अनातोलिया की सेना (अनातोलिया आरमी कोर) रहती थी जो परम्परा-वादी ईसाई समाज के आरम्भिक इतिहास मे पूर्वी रोमन सेना में प्रमुख थी। दूसरे शब्दों मे कोनिया प्रदेश मे करमानलियों के पूर्वी रोमन पूर्वज अनातोलिया मे प्रमुख थे और बाद में यही स्थान सुलतान ओनू के उसमानलियों ने ग्रहण किया। कारण स्पष्ट है। पहले समय मे कोनिया अरबी खिलाफत के सामने ही पूरबी रोमन साम्राज्य का सीमा प्रदेश था और उसमानलियों ने बाद मे जिस प्रदेश पर अधिकार किया वह देश के अन्दर की ओर था जिसे कोई जानता भी न था।

रूसी परम्परावादी ईसाई समाज में :—और स्थानों की भाँति हम यहाँ भी देखते हैं कि समाज की शक्ति क्रम से एक सीमा से दूसरी सीमा मे उसी प्रकार केन्द्रीभूत होती रही है जिस प्रकार, और जिस शक्ति से, तथा जिस तीव्रता से उस पर बाहरी दबाव पडता रहा है। पहले-पहल जिस प्रदेश में परम्परावादी ईसाई समाज ने कुसतुनतुनिया से जाकर अपनी जड जमायी, वह काले सागर के पार, यूरेशियाई स्टेप के पार नीपर नदी का उपरला (अपर) बेसिन था। बारहवी शती मे सीमा-निवासियो ने बोलगा के उपरले बेसिन मे प्रस्थान किया। ये उत्तर-पूर्वी जगल के विधर्मियो को हराकर अपनी सीमा का उस ओर विस्तार कर रहे थे। किन्तु कुछ ही दिनो के बाद शक्ति का केन्द्र नीपर के निचले बेसिन की ओर चला गया क्योंकि उपरले बेसिन में यूरेशियाई खानाबदोशों का सामना उन्हे करना पडता था। रूसियो पर बाटू खाँ मंगोल के आक्रमण का जो १२३७ ई० से आरम्भ हुआ था, दबाव कठोर तथा बहुत दिनो तक रहा। यहाँ पर यह मनोरजक बात ध्यान देने योग्य है कि और उदाहरणो के समान यहाँ भी जिस प्रकार आक्रमण का सामना किया वह नये ढंग का और मौलिक था।

इस सामने का रूप नये ढग के जीवन का विकास था और नया सामाजिक सगठन था जिसके परिणामस्वरूप इतिहास मे पहली बार एक शिथिल समाज ने केवल यूरेशियाई खानाबदोशो का सामना ही नही किया, केवल उनको आगामी आक्रमणो से दण्ड ही नही दिया, किन्तु शाश्वत रूप से खानाबदोशो की धरती पर विजय प्राप्त की और खानाबदोशो के चराई के मैदानो के स्थान पर किसानो के झोपडे स्थापित करके उस धरती का रूप बदल दिया। उनके चल खेमो की जगह गाँव बसा दिये। कज्जाक[१] जिन्होने यह अभूतपूर्व चमत्कार कर दिखाया, रूसी परम्परावादी ईसाई समाज के सीमा-निवासी थे। सीमा प्रान्त के युद्ध की भट्ठी मे जो यूरेशियाई खानाबदोश दो सौ साल तक बाटू खाँ के दलो के साथ गये थे उसी की निहाई पर इनका निर्माण हुआ था। यह नाम इनके बैरियो का दिया हुआ है। तुर्की मे कज्जाक उसे कहते है जो अपने वैधानिक मालिक की आज्ञा नही मानता और विरोध करता है।[१] यह इतनी दूर बसा हुआ कज्जाक समुदाय, जो १९१७ की रूसी साम्यवादी (कम्युनिस्ट) क्रान्ति में नष्ट हो गया, एशिया मे डान नदी से उस्सूरी तक समानान्तर रेखा के समान फैला हुआ था, नीपर के किनारे वाले कज्जाक समुदाय से उत्पन्न हुआ था।

यह मौलिक कज्जाक अर्ध-साधिक (सेमी मोनास्टिक) सैनिक सम्प्रदाय था जो हेलेनी स्पार्टे के सम्प्रदाय से तथा धार्मिक युद्ध वाले सरदारो के सघटन से (क्रूसेडिग आर्डर्स आव नाइटहुड) बहुत कुछ मिलता-जुलता था। खानाबदोशों से निरन्तर युद्ध से उन्हे यह शिक्षा मिली थी कि यदि सभ्य लोगो को बर्बरो से लडना है और विजय प्राप्त करनी है तब उनके हथियारों को छोडकर दूसरे हथियारों तथा साधनो से लडना होगा। जिस प्रकार आज के पश्चिमी

१. सच पूछिए तो कज्जाक का तुरकी अर्थ वैसा ही है जैसा आयरिश शब्द 'टोरी' का है। किन्तु शाब्दिक अर्थ कज्जाक का 'खोदने वाला' है। अर्थात् स्टेप की सीमा पर वह खेत जोतने वाला किसान जो खानाबदोश मालिक की सत्ता से इनकार करता है। दूसरे शब्दों में 'केन और एबेल'—जो कथा खानाबदोशों की दृष्टि से बनायी गयी है।

साम्राज्यवादियो ने अपने आदिम बैरियो को आधुनिक उद्योगवाद के उत्कृष्ट साधनो द्वारा पराजित किया है उसी प्रकार कज्जाको ने कृषि के उत्तम साधनो द्वारा खानाबदोशो पर विजय प्राप्त की। और जिस प्रकार आज की पश्चिमी सेना की दक्षता ने खानाबदोशो की गतिशीलता पर रेल, मोटर तथा हवाई जहाज के द्वारा विजय प्राप्त कर उन्हे बलहीन बना दिया है, उसी प्रकार कज्जाको ने नदियो पर जो स्टेप के विनाशलक्षण है, और जो खानाबदोशो के नियन्त्रण के परे थी, काबू करके उन्हे पराजित कर दिया। खानाबदोश घुडसवारो के लिए यातायात मे नदियो से रुकावट होती थी, किन्तु रूसी किमान और लकडहारे (लम्बर मैन) नदी द्वारा आने-जाने मे अभ्यस्त थे। कज्जाक लोग खानाबदोशो से घुडसवारी मे बाजी मारने की चेष्टा तो करते ही थे, किन्तु नदियो द्वारा आवागमन उन्होने नही छोडा और इसी के द्वारा उन्होने यूरेशिया पर विजय प्राप्त की। नीपर से वह डान गये और डान से वोल्गा पहुँचे। वहाँ से उन्होने १८५६ ई० में वोल्गा और ओब के बीच के जल विभाजक को पार किया और सन् १६३८ तक उन्होने साइबीरिया की नदियो को खोज डाला और उन्हे पार करते हुए प्रशान्त सागर के तट पर ओखाटस्क के सागर तक पहुँचे।

उसी शती में जब कज्जाको ने दक्षिण पूरब मे खानाबदोशो के दबाव को असफल करके शानदार विजय प्राप्त की एक दूसरी सीमा पर बाहरी दबाव पड रहा था और वह रूसी सजीवता का क्षेत्र बन रहा था। ईसा की सत्रहवी शती मे पहली बार रूसियो ने अपने इतिहास मे पश्चिमी ससार के दबाव का अनुभव किया। दो वर्षो तक (१६१०–१२) पोल सेना मास्को को दबाये हुए थी। और थोडे ही दिनो बाद गस्टेवस अडल्फस के शासन मे स्वीडन फिनलैंड से लेकर पोलैंड की उत्तरी सीमा तक जो उस समय रीगा से कुछ ही मील दूर थी अधिकार करके सारे बाल्टिक का मालिक बन बैठा और रूस की राह इधर से बन्द कर दी। किन्तु सौ साल भी नही बीतने पाये थे जब इस पश्चिमी दबाव का उत्तर पीटर महान् ने १७०३ ई० मे पीटर्सबर्ग की स्थापना करके दिया। जिस धरती पर यह बन्दरगाह बना उसे उसने स्वीडो से जीता था। उसने रूसी नौ-सेना का झण्डा बाल्टिक सागर मे पश्चिमी ढग पर फहराया।

पश्चिमी संसार महाद्वीपी बर्बरों के विरोध में:—जब हम अपनी पश्चिमी सभ्यता की ओर देखते है तब सबसे पहले सबसे भारी दबाव पूरब की ओर अर्थात् थल की ओर पडा। यह दबाव मध्य यूरोप के बर्बरो पर था। उतना ही नहो कि सीमा की रक्षा विजयपूर्ण हुई बल्कि सीमा को पीछे की ओर ढकेलते गये, यहाँ तक की बर्बर वहाँ रह न पाये। परिणामस्वरूप पश्चिमी सभ्यता का आमना-सामना बर्बरो से नही रह गया, उसकी पूर्वी सीमा पर उसका सामना दूसरी सभ्यता से हुआ। यहाँ पर इतिहास के केवल प्रथम चरण से उदाहरण लिया जायगा कि दबाव की प्रेरण शक्ति कितनी होती है।

पश्चिमी इतिहास के प्रथम चरण मे महाद्वीपी बर्बरो के दबाव के परिणामस्वरूप फ्रैंको के प्रदेश मे एक नये सामाजिक सगठन का उदय हुआ जो अर्ध-बर्बर था। मेरोविजियाई पहले फ्रैंको का प्रदेश था। यहाँ की सरकार पुराने रोम की ओर देखती थी, किन्तु बाद के केरोलिजियाई शासको ने भविष्य की ओर दृष्टि डाली। यद्यपि इसने पुराने रोमन साम्राज्य के प्रेत का आह्वान किया। किन्तु यह आवाहन मात्र था जिससे उसकी आत्मा से इन्हे अपने कार्यों मे बल प्राप्त हो। और क्या आप जानते है फ्रैंको के प्रदेश किस भाग में मेरोविजियाई पतन के स्थान

पर केरोलिजियाइयो ने यह कार्य सम्पन्न किया ? देश के भीतरी भाग मे नही, सीमा पर। यह कार्य न्युस्ट्रिया मे (जो उत्तरी फ्रास के बराबर है) जिस धरती को प्राचीन रोमन सभ्यता ने उपजाऊ बनाया था, जो बर्बरों के आक्रमणो से सुरक्षित थी बल्कि आस्ट्रेशिया (राइनलैंड) मे जो रोमन सीमा के सामने थी। यहाँ उत्तरी-यूरोपीय जगलो के सेक्सनो के लगातार आक्रमण होते रहे और यूरेशियाई स्टेप के 'अवार' धावा बोलते रहे। इस बाहरी दबाव से कितनी स्फूर्ति मिली उसका उदाहरण है शार्लमान की विजय, उसके अठारह सैक्सन हमले, उसके द्वारा अवारो का विनाश, और केरोलिजियाई पुनर्जागरण जो पश्चिमी समार की पहली सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है और बौद्धिक शक्ति का पहला प्रदर्शन है।

आस्ट्रेशिया पर इस दबाव से जो प्रेरणा प्राप्त हुई उसके बाद वह फिर पुरानी गति को पहुँच गया। हम देखते हैं कि दो सौ वर्षों से कम ही समय मे ओटो प्रथम के नेतृत्व मे प्रतिक्रिया हुई। शार्लमान की, स्थायी उपलब्धि यह थी कि उसने सैक्सन बर्बरो के राज्य को पश्चिमी ईसाई जाति मे मिला लिया था। किन्तु इस सफलता का परिणाम यह भी हुआ कि सीमा मे परिवर्तन हो गया और उसी के साथ प्रेरणा की भी। विजयी आस्ट्रेशिया मे विजित सैक्सनी मे सीमा चली गयी। ओटो के काल मे सैक्सनी मे वही स्फूर्ति उत्पन्न हुई जो शार्लमान के समय आस्ट्रेशिया मे हुई। जिस प्रकार शार्लमान ने सैक्सो को पराजित किया था उसी प्रकार ओटो ने बैडो को पराजित किया और पश्चिमी ईसाई-जगत् की सीमा और पूरब की ओर बढ़ गयी।

तेरहवी और चौदहवी शती मे अवशिष्ट महाद्वीपी (यूरोपीय) बर्बरो को सभ्य बनाने का काम शार्लमान तथा ओटो ऐसे वशानुगत राजाओ ने जिन्होंने रोमन साम्राज्य वाली पदवी ग्रहण कर ली थी, नही किया। यह कार्य दो नयी सस्थाओ ने किया। नगर-राज्य ने तथा सैनिक मठ सम्प्रदाय ने। हसा नगरो तथा टयूटानिक वीरो ने पश्चिमी ईसाई जगत् की सीमा ओडर से बढाकर ड्वीना तक पहुँचा दी। धर्म निरपेक्ष युद्ध की यह अन्तिम घटना थी। क्योकि चौदहवी शती बीतते-बीतते ये महाद्वीपी बर्बर जो मिनोई, हेलेनी तथा पश्चिमी सभ्यताओ की सीमाओ को तीन हजार वर्षों तक दबाये चले आ रहे थे, समार से लोप हो गये। १४०० ई० के आते, पश्चिमी ईसाई समाज और परम्परावादी ईसाई समाज जो महाद्वीप मे बर्बरो के कारण अलग हो गये थे, वे अब महाद्वीप मे एड्रियाटिक सागर से आरटिक सागर तक साथ-साथ अभियान करने लगे।

यह मनोरजक बात है कि बढती हुई सभ्यता और भागती हुई बर्बरता के बीच जो सीमा का विस्तार होता चला जा रहा था उससे दबाव उस समय से बराबर पडा रहा जब से ओटो प्रथम ने शार्लमान का कार्य अपने हाथो मे लिया। और जैसे-जैसे पश्चिम का प्रत्याक्रमण बढता गया प्रेरक शक्ति भी स्थानान्तर होती रही। उदाहरण के लिए ओटो की बेडो पर विजय के बाद सैक्सनी की डची भी निस्तेज हो गयी जिस प्रकार दो सौ साल पहले सैक्सनो पर शार्लमान की विजय के बाद आस्ट्रेशिया पराभूत हो गया था। १०२४ ई० मे सैक्सनी का नेतृत्व समाप्त हो गया था और साठ साल के पश्चात् वह छिन्न-भिन्न हो गयी। सैक्सन वश के बाद जो साम्राज्य-वाला वश आया वह पूरब की ओर बढ़ती हुई सीमा पर नही उत्पन्न हुआ जिस प्रकार सैक्सन वश केरोलिजियाई के पूरब स्थापित हुआ। बल्कि फ्रैंकोनियाई वंश तथा उसके पीछे के सब वश जिन्होंने साम्राज्यिक पदवी धारण की जैसे होहेन स्टाउफेन, लक्सेम बुर्ग तथा हैप्स बुर्ग, राइन

नदी के किसी न किसी सगम पर उत्पन्न हुए । साम्राज्यिक वशो को दूर की सीमा से कोई प्रेरणा नहीं मिली और हमें यह जानकर आश्चर्य न होना चाहिए कि यद्यपि कुछ सम्राट् अवश्य महान् हुए जैसे फ्रेडरिक बारबरोसा फिर भी साम्राज्यिक शक्ति का ग्यारहवी शती के अन्त से क्रमश ह्रास होता गया ।

फिर भी जिस साम्राज्य को शार्लमान ने पुन सजीव किया था और जो यद्यपि छाया की छाया था, जीवित रहा । वह न तो पावन था, न रोमन था और न साम्राज्य था फिर भी पश्चिमी समाज के राजनीतिक जीवन मे उसका महत्त्वपूर्ण योगदान था । उसके पुनर्जीवित होने का यह कारण था कि मध्ययुग के अन्तिम समय कुछ तो वंशीय व्यवस्था और कुछ घटनाओ के फलस्वरूप आस्ट्रिया मे हैप्सबुर्ग का रीनी (रीनिश) घराना गद्दी पर बैठ गया । सीमा-प्रदेश के भी उत्तरदायित्व को इसने सँभाला और उसके साथ जो नयी प्रेरणा मिली उसके अनुरूप कार्य किया । इस विषय को हम नही छोडते है ।

पश्चिमी संसार में दबाव उसमानिया साम्राज्य के विरोध मे

उसमानलियो और हगरी मे जो शत वर्षीय युद्ध चला उसी समय पश्चिमी समार तथा उसमानिया तुर्कों मे भिडन्त आरम्भ हुई । और इसके परिणामस्वरूप सन् १५२६ ई० में मोहाक्ज के युद्ध में मध्ययुगीन हगरी की समाप्ति हो गयी । हगरी जान हुनयादी तथा उसके पुत्र मत्तियास कोरनिवस के नेतृत्व में जब उसमानलियो से लडा तब उसमानलियो को बहुत शक्तिशाली बैरी का सामना करना पड़ा । किन्तु दोनो सेना का अन्तर इतना अधिक था कि विजय पाना हगरी की शक्ति के बाहर था यद्यपि इसे सन् १४९० ई० के बाद से बोहीमिया से सहायता मिलती रही क्योंकि इसी साल दोनो का एकीकरण हो गया था । परिणाम मोहाक्ज का युद्ध हुआ । इतनी बडी विपत्ति का ऐसा मानसिक प्रभाव हुआ कि बचा-खुचा हगरी बोहीमिया और आस्ट्रिया हैप्सबुर्ग वंश के नेतृत्व मे एक हुए और एकता स्थायी हुई और यह वश सन् १४४० ई० से आस्ट्रिया पर राज्य करता आ रहा है । चार सौ साल जब वही उसमानिया सल्तनत अन्तिम रूप से छिन्न-भिन्न हो गयी जिसने चार सौ साल पहले मोहाक्ज के युद्ध मे आस्ट्रिया को धराशायी किया था ।

सच बात तो यह है कि जिस समय डैनूबियाई हैप्सबुर्ग वश का जन्म हुआ उसका भाग्य भी उसके बैरी के भाग्य के अनुसार चलता रहा जिसके दबाव के फलस्वरूप उसकी (हैप्सबुर्ग वश) उत्पत्ति हुई थी और डैन्यूबियाई राज्य की वीरता का काल वही था जब पश्चिमी संसार ने उसमानिया दबाव का सबसे अधिक अनुभव किया । यह वीरता का काल सन् १५२९ से आरम्भ होता है जब उसमानिया सेना ने वियना पर असफल आक्रमण किया और १६८२–८३ मे समाप्त होता है जब दूसरा आक्रमण हुआ । इन दोनो आक्रमणो मे पश्चिमी ससार द्वारा उसमानिया आक्रमणों का सामना करने में आस्ट्रिया की राजधानी ने वही कार्य किया जो १९१४–१८ के युद्ध में जरमन आक्रमण रोकने के लिए वरदून ने जी तोडकर फ्रांस की ओर से सामना किया था । पहले आक्रमण की असफलता के परिणामस्वरूप उसमानिया विजय का ज्वार रुक गया जो सौ साल से डैन्यूब की घाटी में फैल रहा था । और शायद बहुत-से लोग बिना जाँचे-परखे विश्वास न करें कि नक्शे से स्पष्ट है कि वियना और कुसतुनतुनिया का अन्तर, डोवर (जलडमरूमध्य) और वियना से जितना अन्तर है उससे आधे से अधिक है । दूसरे आक्रमण की

बिफलता का परिणाम यह हुआ कि अनेक परिवर्तनों और विराम के होने पर भी तुर्की सीमा जो १५२९ से १६८३ तक वियना के दक्षिण-पूर्वी किनारे थी, खिसकती गयी और एड्रियानोप्ल के उत्तर-पश्चिमी किनारे तक पहुँच गयी ।

किन्तु उसमानिया साम्राज्य के पतन से डैन्यूबियाई हैप्सबुर्ग के राज्य का कोई लाभ नही आ, क्योकि उसमानिया साम्राज्य के पतन के बाद डैन्यूबियाई राज्य की वीरता का युग भी रह नही सका । उसमानिया शक्ति के ह्रास के कारण दक्षिण-पूर्वी यूरोप मे ऐसा क्षेत्र मिल गया जिस पर और शक्तियो ने अधिकार कर लिया । साथ ही डैन्यूबियाई राज्य पर से दबाव भी हट गया, जिसके कारण उसे प्रेरणा मिलती रही । डैन्यूबियाई शक्ति का ह्रास भी उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार उस शक्ति का जिसके थपेडो से इसमे जाग्रति आयी थी। और अन्त में इसका भी वही अन्त हुआ जो उसमानिया साम्राज्य का ।

यदि हम उन्नीसवी शती मे आस्ट्रियाई साम्राज्य की ओर देखें, जब किसी समय का वीर उसमानली 'यूरोप का रोगी' हो गया था तो हमको पता चलेगा कि आस्ट्रिया के साम्राज्य मे दो दुर्बलताएँ आ गयी थी । एक तो यह कि यह राज्य अब सीमा राज्य नही रह गया था, दूसरे यह कि उसका अन्तरराष्ट्रीय संगठन जिसके द्वारा सोलहवी तथा सत्रहवी शती मे उसने उसमानी चुनौती स्वीकार की, अब उसके लिए रुकावट हो गयी क्योकि उन्नीसवी शती में राष्ट्रीय भावना के नये विचार उत्पन्न हो गये थे । हैप्सबुर्ग ने अपने जीवन की अन्तिम शती इस प्रयत्न मे बितायी कि राष्ट्रीय सिद्धान्तो के अनुसार यूरोप का मानचित्र बन पाये, किन्तु ऐसे सब प्रयत्नो मे वह विफल रहा । उसने जरमनी पर से अपना नेतृत्व छोड़ दिया और इटली पर से अपना अधिकार हटा लिया । इतना मूल्य चुकाकर उसने जरमन साम्राज्य और इटली के राज्य के बगल-बगल अपना अस्तित्व बनाये रखा । उसने सन् १८६७ की आस्ट्रो-हगरी की सन्धि स्वीकार की (आउसग्लाइच[1]) और उसी के परिणामस्वरूप गैलीशिया मे आस्ट्रोपोली सन्धि की । उसे इसमे सफलता मिली कि उसने अपना स्वार्थ तथा मगयार और पोलो का स्वार्थ बताया एक और जरमनो ने यह भी बताया कि उसके राज्य मे जो जरमन है उनका तथा उसका स्वार्थ भी एक ही है । किन्तु रोमानियनो, चेकोस्लोवायो, यूगोस्लावो से उससे समझौता न हो सका और सराजिवो मे जो हत्या हुई वह आस्ट्रिया को नकशे से मिटा देने का सकेत था ।

अन्त में हम युद्धरत आस्ट्रिया तथा युद्धरत तुर्की की तुलना करे । १९१४–१८ के युद्ध के अन्त मे दोनो लोकतन्त्र राज्य हो गये और उनका वह साम्राज्य निकल गया जो कभी उनके पड़ोसी थे और दुश्मन भी । किन्तु इतने ही पर समानता समाप्त हो जाती है । जो पाँच पराजित देश थे उनमे आस्ट्रिया की सबसे अधिक हानि हुई थी और उसने सबसे अधिक दीनता दिखायी थी । नयी व्यवस्था को उन्होने बहुत दुख के साथ पूर्णरूप से आत्मसमर्पण किया । इसके विपरीत सन्धि के एक साल बाद ही, विजेताओ से तुर्क युद्ध के लिए फिर कटिबद्ध हुए और विजेताओ ने जो शर्तें सन्धि के समय उन पर लादी थी उन्हे सफलतापूर्वक बदलवाया । ऐसा करके तुर्कों ने

१. आस्ट्रिया और हंगरी में राजनीतिक समझौता, जो हर दसवें साल बदला जा सकता था ।—अनुवादक

फिर शक्ति प्राप्त की और अपने भाग्य में परिवर्तन किया । इस बार वे पतनोन्मुख उसमानिया वश के झण्डे के नीचे असहाय साम्राज्य के इस या उस प्रदेश की रक्षा के लिए नही लड रहे थे । उसमानिया राजघराने ने उन्हे त्याग दिया था, अब वे फिर सीमा का युद्ध कर रहे थे और ऐसे नेता के नेतृत्व मे लड रहे थे जिसमे वैसे ही गुण थे जैसे पहले सुलतान उसमान मे । यह युद्ध वे अपने राज का विस्तार करने के लिए नही कर रहे थे, बल्कि अपने देश की रक्षा करने के लिए । १९१९-२२ के ग्रीक-तुर्की युद्ध मे इनओनू के रणक्षेत्र मे वही पैतृक धरोहर उन्हे मिली जो अन्तिम सलजुक ने छ सौ साल पहले उसमानलियो को समर्पित की थी । चक्र पूरा घूम गया ।

पश्चिमी संसार में उसकी पश्चिमी सीमा पर

पश्चिमी समाज के आरम्भिक दिनो मे उसे पूर्वी सीमा पर ही दबाव का अनुभव नही हुआ, बल्कि पश्चिम की ओर भी तीन दिशाओ से दबाव का सामना करना पडा । अग्रेजी द्वीपो तथा ब्रिटानी मे केल्टिक लोगो का, स्कैंडिनेवियाई जहाजी-डाकुओ का अग्रेजी द्वीप समूह तथा पश्चिमी यूरोप के अतलान्तक तट पर, और सीरियाई सभ्यता का जिसके प्रतिनिधि मुसलमान विजेता थे आइबीरियाई प्रायद्वीप पर । पहले हम केल्टिक प्रभाव पर विचार करेगे ।

यह कैसे सम्भव हुआ कि आदिम तथा स्वल्पायु बर्बर तथा कथित स्वल्पायु सप्तशासन (हेप्टकी) के बीच के जीवन-सघर्ष के परिणामस्वरूप पश्चिमी राजनीतिक जगत् मे दो प्रगतिशील तथा शाश्वत राज्यो का उदय हो गया ? यदि इस बात पर ध्यान दे कि इंग्लैंड तथा स्काटलैंड के राज्यो ने किस प्रकार सप्तशासन को हटाया जो हम देखेगे कि मुख्य कारण यही था कि बाहरी दबाव का प्रत्येक पग पर सामना करना पडा । स्काटलैंड राज्य की उत्पत्ति का पिछला इतिहास देखा जाय तो उसके जन्म का कारण है पिक्टो तथा स्काटो का एग्लो-सेक्सनो पर आक्रमण । स्काटलैंड की वर्तमान राजधानी की नीव नार्थब्रिया के एडविन ने डाली थी । (आज भी उसका नाम उसमे सम्मिलित है) यह नगर नार्थब्रिया की सीमा पर किले के रूप मे बना था जिससे फर्थ आव फोर्थ के पास के पिक्ट और स्ट्रैक क्लाइड के ब्रिटन के आक्रमणो से रक्षा की जा सके । चुनौती दी गयी सन् ९५४ ई० मे जब पिक्टो तथा स्काटो ने एडिनबरा पर विजय प्राप्त की और नार्थब्रिया को विवश करके सारा लोथियन ले लिया । इस समर्पण से यह समस्या उठ खडी हुई— पराजित होने पर भी पश्चिमी ईसाई समाज को अपनी पश्चिमी ईसाई संस्कृति सुरक्षित रखनी होगी अथवा 'सुदूर पश्चिमी' केल्टिक सस्कृति से पराभूत होना पडेगा । अपराजित लोथियन ने इस चुनौती को इस प्रकार स्वीकार किया कि जैसे एक बार पराजित यूनान ने रोम को अपने वश मे कर लिया था उसी प्रकार लोथियन ने अपने विजेताओ को पराजित कर लिया ।

पराजित देश की सस्कृति स्काटी राजाओ को इतनी भायी और इतनी आकर्षक लगी कि उन्होंने एडिनबरा को अपनी राजधानी बनाया और इस प्रकार का व्यवहार करने लगे कि लोथियन ही उनका निवास है और उच्च-भूमि (हाइलैंड) उनके लिए विदेश है । परिणामस्वरूप स्काटलैंड का पूर्वी समुद्रतट मोरे फोर्थ तथा उपनिवेश बना लिया गया और उच्चभूमि क्षेत्र को पीछे खिसकाया गया । यह कार्य लोथियन के अग्रेजी निवासियो ने उन केल्टिक शासको के सरक्षण मे किया जो स्काटी राजाओ के प्राचीन सम्बन्धी थे । एक और परिणाम हुआ जो नामो के परिवर्तन में भी विरोधाभास प्रकट करता है । 'स्काटी भाषा' का अर्थ वह अंग्रेजी हो गया जो लोथियन मे बोली जाती थी, न कि गैलिक जो मूल स्काट बोलते थे। पिक्टो और स्काटो

द्वारा लोथियन के विजय का अन्तिम परिणाम यह नही था कि पश्चिमी ईसाई संसार की सीमा फोर्थ से ट्वीड की ओर खिसकाते बल्कि उस सीमा को आगे बढाते गये और अन्त मे ग्रेट ब्रिटेन का सारा द्वीप उसमें आ गया ।

इस प्रकार अग्रेजी 'सप्तशासन' का एक छोटा-सा राज्य वर्तमान स्काटलैड के राज्य का केन्द्र बन गया और यह स्मरण रखने की बात है कि यह छोटा-सा राज्य नार्थंब्रिया जिसने यह कौशल दिखलाया ट्वीड और फोर्थ के बीच की सीमा थी, ट्वीड तथा हबर के बीच का आन्तरिक प्रदेश नही था । यदि कोई बुद्धिमान् यात्री दसवी शती मे नार्थब्रिया गया होता, जिस समय स्काटो और पिक्टो को लोथियन समर्पित हुआ, उसने यही कहा होता कि एडिनबरा का कोई भविष्य नही है और यदि एक सभ्य राज्य का कोई नार्थब्रिया का नगर राजधानी हो सकता है तो वह यार्क है । उत्तरी ब्रिटेन के सबसे बडे उपजाऊ क्षेत्र मे वह बसा हुआ था, रोमन प्रदेश का सैनिक केन्द्र था, धार्मिक केन्द्र था और अस्थायी स्कैंडिनेवियाई राज्य 'डेनला'[१] की राजधानी था । किन्तु ९२० ई० मे डेनला को वेसेक्स के राजा ने जीत लिया और उसके बाद से यार्क साधारण प्रान्तीय नगर था और जो इग्लैंड के जनपदो मे यार्कशायर का क्षेत्रफल इतना बडा है, वह इस बात का स्मरण करता है कि किसी समय इसका भविष्य उज्ज्वल रहा होगा ।

हबर के दक्षिण सप्तशासन के प्रान्तो मे कौन इस प्रकार का नेतृत्व ग्रहण करता कि वह इग्लैंड के भावी राज्य का केन्द्रबिन्दु बन सकता । हम देखते है कि ईसा की आठवी शती मे प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी महाद्वीप के निकट वाले राज्य नही थे, बल्कि मरशिया और वेसेक्स थे । ये दोनो, सीमा पर, वेल्स तथा कार्नवाल के अविजित केल्ट की सीमा पर रहने के कारण शक्तिशाली हुए । यह भी हम देखते है कि युद्ध के पहले चक्र मे परशिया विजयी हुआ । अपने समय मे परशिया का राजा वेसेक्स के सभी राजाओ से शक्तिशाली था क्योंकि मरशिया पर वेल्स का दबाव अधिक था और कार्नवाल का वेसेक्स पर उतना नही । यद्यपि कार्नवाल मे 'पश्चिमी वेल्सो' ने डटकर सामना किया जिसका वर्णन आर्थर की कहानियों मे अमर है, परन्तु इस विरोध पर पश्चिमी सैक्सनो ने बडी सरलता से विजय प्राप्त कर ली । मरशिया पर दबाव कितना कठोर था वह उस शब्द की व्युत्पत्ति ही बताती है (यह शब्द मार्च से निकला है जिसका अर्थ है सीमा । मरशिया का अर्थ है बहुत बड़ी सीमा) । पुरातत्त्व की दृष्टि से भी यह सार्थक है । डी के मुहाने से सेवर्न के मुहाने तक बहुत बडे-बड़े मिट्टी के बाँध का अवशेष है जिसे 'ओफ का बाँध' कहते है । उस समय ऐसा जान पडता था कि भविष्य मरशिया का है, वेसेक्स का नही । किन्तु नवी शती मे जब केल्टिक सीमा का सघर्ष धीमा जान पडा और नया तथा उससे शक्तिशाली सघर्ष स्कैंडिनेविया से हुआ तब भविष्य का रूप बदल गया । ३४ बार मरशिया सामना नही कर सका और आलफ्रेड के नेतृत्व मे वेसेक्स ने खूब सामना किया, विजय प्राप्त की और ऐतिहासिक इग्लैंड के राज्य का केन्द्रबिन्दु बना ।

पश्चिमी ईसाई जगत के सामुद्रिक तट पर जो स्कैंडिनेवियाई दबाव पडा उसका परिणाम यही नही हुआ कि सप्तशासन राज्य से करडिक के घराने ने इंग्लैड के राज्य की स्थापना की

१. दसवीं शती में इंगलैंड का प्रदेश ।—अनुवादक

बल्कि शार्लमान के बचे-खुचे टुकड़ों को जोड़कर कैपेट के घराने ने फ्रांस के राज्य का भी निर्माण किया । इस दबाव के कारण इग्लैड ने अपनी राजधानी वेसेक्स की पहली वाली राजधानी विंचेस्टर को, जो पश्चिमी वेल्स के निकट था, नही बनाया, बनाया लदन को जिसने कठिनाइयों का सामना किया था और जिसके कारण सन् ८९५ के युद्ध मे विजय मिली थी और जिसने डेन की नाविक सेना को टेम्ज मे आने से रोका था । इसी प्रकार फ्रास ने अपनी राजधानी साओन में नहीं बनायी जो अन्तिम कैरोलिजियनो की राजधानी थी बल्कि पेरिस को राजधानी बनाया जिसने प्रथम कैपेट राजा के नेतृत्व मे आक्रमण का सामना किया था और वाइकिगो को सेना द्वारा आगे बढ़ने से रोका था ।

इस प्रकार स्कैंडिनेवियाई सामुद्रिक आक्रमणो के कारण पश्चिमी ईसाई जगत ने दो नवीन राज्यो को जन्म दिया—इग्लैंड और फ्रास । इस युद्ध मे अपने विरोधियो पर विजय पाने के क्रम मे फ्रास तथा इंग्लैंड ने सामती सैनिक तथा सामाजिक प्रथा को भी जन्म दिया और इंग्लैंड ने तो अपनी भावनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति महाकाव्य मे की जिसका अश 'द ले आव द बेट्ल आव माल्डन' में सुरक्षित है ।

यह भी देख लेना चाहिए कि जो उपलब्धि अग्रेजो को लोथियन मे हुई, वही फ्रास को नारमण्डी मे हुई और उसने नारमण्डी के स्कैंडिनेवियाई विजेताओ को विजितो की सभ्यता का रगरूट बना दिया । रोलो और उसके साथियो ने कैरोलिजियाई चार्ल्स द सिम्प्ले से जो सन्धि की थी जिसके फलस्वरूप फ्रास के अतलातक तटपर उसे स्थायी स्थान मिल गया था (९१२ ई०) उसके सौ वर्ष के कुछ ही दिनो के बाद उसके वशजो ने पश्चिमी ईसाई जगत की सीमा का विस्तार परम्परावादी ईसाई जगत तथा इस्लामी जगत को जीत-जीतकर बढाना आरम्भ कर दिया । और पश्चिमी सभ्यता का प्रकाश जिस रूप मे फ्रास मे फैला था उस रूप मे इग्लैंड और स्काटलैंड मे भी फैलाने लगे जो अभी तक छाया मे ही थे । नारमनो ने इग्लैंड पर जो विजय प्राप्त की वह क्रिया-विज्ञान (फिजिआलोजिकल) दृष्टि से असन्तुष्ट वाइकिगो की मनोकामना की अन्तिम पूर्ति हो सकती है, किन्तु सास्कृतिक दृष्टि से इस विजय को विजय कहना मूर्खता है । नारमनो ने अपने प्राचीन धार्मिक विचारो को इसलिए नही अस्वीकार किया कि इग्लैंड मे जो पश्चिमी ईसाइयत के विचार थे उन्हे नष्ट कर दे, बल्कि उनकी पुष्टि करे । हेस्टिंग्ज़ के युद्ध मे जब नारमन योद्धा टाएलेफर नारमन वीरो के आगे-आगे गाता हुआ घोडे पर चल रहा था तब वह नार्स भाषा में नही गा रहा था, फ्रेच मे गा रहा था और उस गीत का विषय साइगर्ड की गाथा नहीं थी, चान्सन डी रोलैंड की कथा थी । पश्चिमी ईसाई सभ्यता ने इस प्रकार स्कैंडिनेवियाई सभ्यता को हटाकर अपनी सभ्यता की जड जमायी । इस विषय पर हम आगे फिर कहेंगे जब अविकसित सभ्यताओ का वर्णन करेंगे ।

उस सीमा प्रान्त के दबाव को हमने अन्त के लिए छोड रखा जो समय की दृष्टि से पहले आया और जो सबसे प्रबल था । उस शक्ति को नापा जाय तो हमारी शिशु सभ्यता उसके सामने नगण्य थी । और गिबन की दृष्टि मे तो वह अविकसित सभ्यता की श्रेणी में आती है ।[1]

१. 'जिब्राल्टर के चट्टानों से ल्वायर तक लगभग एक हजार मील तक विजित सीमा बन गयी थी । उसी प्रकार यदि विजय की सीमा बढ़ती तो सरसन लोग पोलैण्ड और स्काटलैंड की

पश्चिमी शिशु सभ्यता पर जो अरबों का आक्रमण हुआ वह उस आक्रमण की अन्तिम सीरियाई प्रतिक्रिया थी, जो हेलेनी आक्रमण, सीरियाई राज्य में हुआ था। क्योंकि जब अरब इस्लाम के जोर पर आगे बढ़े तब उन्होने तब तक चैन नही लिया जब तक उन्होंने उन सब प्रदेशों पर विजय नहीं प्राप्त कर ली। जो किसी समय सीरियाई राज्य था। उन्हें सीरियाई सार्वभौम राज्य को जो किसी समय अकेमेनीडी का फारस का साम्राज्य था, अरब साम्राज्य बना देने से ही सन्तोष नही हुआ उन्होंने पुराने फीनिशियाई राज्य, अफ्रीका में कारथेज तथा स्पेन पर भी विजय प्राप्त की। ७१३ ई० में हैमिलकर और हैनिबल का अनुसरण करते हुए उन्होने जिब्राल्टर जलडमरू-मध्य को ही नही पार किया पिरिनीज को भी पार किया। उसके बाद यद्यपि उन्होने हैनिबल की भाँति रोम और आल्प्स का रास्ता नही पकडा वे ल्वायर की ओर गये जिधर हैनिबल कभी नहीं गया।

७३२ ई० में टूर्स का युद्ध, जिसमें शार्लमान के पितामह के नेतृत्व मे फैंकों ने अरबो को पराजित किया, इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। सीरियाई दबाव की पश्चिम पर जो प्रतिक्रिया हुई उससे पश्चिम की शक्ति बढती गयी और इस ओर गति तीव्र होती गयी। यहाँ तक कि सात-आठ शतियों के बाद पश्चिमी ईसाई समाज के अग्रगामी पुर्तगाली आइबीरी प्रायद्वीप से चलकर अफ्रीका के तट का चक्कर लगाते हुए जो आ पहुँचे, मलक्का और मकाओ तक गये और कास्टिली अनुगामी दल अतलान्तक पार करते हुए मैक्सिको पहुँचा और प्रशान्त सागर को पारकर मनीला तक पहुँचा। इन आइबीरी अग्रगामियो ने पश्चिमी ईसाई समाज की अद्वितीय सेवा की। उन्होने उस समाज के क्षितिज का विस्तार किया जिसके वे प्रतिनिधि थे और इस प्रकार संसार भर की धरती तथा सागर पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। आरम्भ मे यह इसी आइबीरी शक्ति का परिणाम है कि पश्चिमी ईसाई समाज का विकास हुआ और बाइबिल की सरसों के बीज की कथा के समान उग कर 'महान् समाज' बना। और ऐसा वृक्ष बना जिसकी शाखाओ मे ससार के सभी लोग आ गये और बसे।

मूरो के दबाव के कारण ही आइबीरी शक्ति का प्रवाह हुआ। यह इसी बात से जाना जा सकता है कि ज्योही मूरों का दबाव समाप्त हो गया आइबीरी शक्ति भी समाप्त हो गयी। सत्रहवी शती मे पुर्तगाली और कास्टीला उसी नयी दुनिया में से हटाये गये जिसे उन्होंने बनाया था। उन्हे हटाने वाले पश्चिमी ईसाई समाज के पिरिनीज के उस पार वाले बीच मे कूद पड़ने वाले लोग—डच, अंग्रेज तथा फ्रांसीसी थे। समुद्र पार के प्रदेश की यह असफलता उसी समय की है जब मूरो को निष्कासन से, हत्या से, जबरदस्ती धर्मपरिवर्तन से आइबीरी प्रायद्वीप से समाप्त किया गया और इस प्रकार ऐतिहासिक उत्प्रेरणा की समाप्ति हो गयी।

ऐसा जान पड़ता है कि मूरों पर आइबीरी आक्रमण वैसा ही था जैसा हैप्सबुर्ग राजाओ का उसमानलियों पर था। जब तक दबाव कठोर रहा दोनो शक्तिशाली रहे, जब दबाव में कमी

पहाड़ियों तक पहुँच जाते।···तब शायद आक्सफोर्ड में कुरान की व्याख्या होती और वहाँ के गिरिजाघरों में मुहम्मद साहब की शिक्षा की पढ़ाई होती।'

'द हिस्टरी आव दि डिक्लाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर', अध्याय ५२।

हुई प्रत्येक—स्पेन, पुर्तगाल, आस्ट्रिया—शिथिल होते गये और पश्चिमी संसार में उनका नेतृत्व समाप्त हो गया।

(५) दण्डात्मक दबाव की प्रेरणा

लँगड़े स्मिथ और अंधे कवि

किसी जन्तु का यदि एक अग, उसी प्रकार के जन्तुओ की तुलना मे, इस कारण खण्डित या बेकार हो जाता है कि उसका उपयोग नही हो सकता तो इस कमी को वह जन्तु इस प्रकार पूर्ण करता है कि उसका दूसरा अग अधिक शक्तिशाली तथा उपयोगी बन जाता है। इस प्रकार वह अपनी एक कमी को दूसरे प्रकार पूरी करके अपने साथियो से दूसरे अगो की उपयोगिता मे बढ जाता है। उदाहरण के लिए अन्धे की स्पर्श शक्ति उन लोगो की अपेक्षा तीव्र हो जाती है जिनके पास आँखे हैं। वही बात हम समाज के किसी दल अथवा समुदाय मे भी देखते है : जिसे किसी घटनावश अथवा अपने कारण या जिस समाज मे वे रहते है उनके और सदस्यो के कारण किसी प्रकार का दण्ड मिलता है। यदि किसी क्षेत्र मे उनका कार्य बन्द कर दिया जाता है तो दूसरे क्षेत्रो मे उनकी कार्य-कुशलता बढ जाती है। क्योकि शक्ति उधर केन्द्रित हो जाती है।

साधारण उदाहरण मे आरम्भ करना उचित होगा जिसमे समाज के कुछ व्यक्तियो को शारीरिक अवरोध हो गया हो जिससे समाज के साधारण कार्य करने मे उन्हे बाधा उपस्थित होती है। मान लीजिए कि किसी बर्बर समाज मे एक अधा और एक लँगडा आदमी है। उस समाज का कार्य युद्ध है जिसके लिए ये दोनो बेकार है। लँगडे बर्बर पर क्या प्रतिक्रिया होती है ? उसके पाँव उसे रणक्षेत्र मे नही ले जा सकते, किन्तु हाथो से वह अस्त्र बना सकता है। और उसमे वह इतनी दक्षता प्राप्त कर लेता है कि दूसरे उस पर उसी प्रकार आश्रित हो जाते है जिस प्रकार वह दूसरो पर। वह पुराणो के लँगडे 'हेफेस्टस' (वलकन) की अथवा वैलेड (वेलेडस्मिथ) की प्रतिमूर्ति बन जाता है। अधे बर्बर की क्या अवस्था होती है ? वह लोहारी मे हाथ का भी प्रयोग नही कर सकता। किन्तु वह वीणा के तार झनझना सकता है, अपने गले का उपयोग कर सकता है। जो कार्य वह रणक्षेत्र मे जाकर नही कर सकता उसके सम्बन्ध मे कविता गढ सकता है। यद्यपि उन घटनाओ को वह दूसरो के मुँह से, उन सिपाहियो के मुख से, जो बिना अलकरण के सीधी-सादी भाषा मे कहते है—सुनता है। वह उसे अमरता दिलाने का साधन बन जाता है, जिसकी बर्बर को इच्छा होती है।

"एक बलशाली तथा वीरो की जाति ने अट्राइडो का सामना किया और वे मर मिटे। उस समय कोई होमर नही था कि पावन गीतो द्वारा उनके महान् कार्यों को पवित्रता प्रदान करता। अप्रतिष्ठित, अज्ञात, अनादृत वे पडे हुए है, असीम अन्धकार मे उनकी आत्मा कष्ट झेल रही है, कोई कवि न था जो उनके नाम को प्रकाश मे लाकर उज्ज्वल करता।"[१]

दासता

वह दण्ड जो प्रकृति ने नही दिया मनुष्य द्वारा दिया गया, दासता है। जो सार्वजनिक

१. होरेस : ओड ४, ९—कोनिंग्टन के अंग्रेजी अनुवाद से।

तथा सबसे कठोर है । उदाहरण के लिए उन प्रवासियों को लीजिए जो हैनिबली युद्ध और आगस्टी शान्ति के बीच दो शतियों मे मध्य-सागर के चारो ओर के देशों से दास होकर इटली में आये । जिस कठिनाई में इन दासो ने अपना यहाँ का जीवन आरम्भ किया उसकी कल्पना नही की जा सकती । उनमे कुछ हेलेनी सभ्यता के सांस्कृतिक उत्तराधिकारी थे और उन्होंने अपनी आँखो से अपने भौतिक तथा आत्मिक ससार को ढहते देखा । जब उन्होने अपने नगरो का लूट-पाट देखा और देखा कि हमारे नागरिक साथी दासो के बाजार मे बिक रहे हैं । दूसरो ने जो पूरब से हेलेनी समाज के 'आन्तरिक सर्वहारा' थे यद्यपि अपना सास्कृतिक उत्तराधिकार खो दिया था, फिर भी उन्हे दासता की कठोर यातना सहने की शक्ति थी । जो उन्होने नही खोयी थी । एक पुरानी यूनानी कहावत है कि 'दासता से आधा मनुष्यत्व चला जाता है' और यह मसल रोम के दासो के नागरिक वशजों पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होता था जिनका पतन चरम सीमा को पहुँच गया था । ईसा के पूर्व दूसरी शती मे लेकर छठी ई० तक वे केवल रोटी पर जीवित नही रहते थे, शारीरिक व्यवसाय भी करते थे और परिणामस्वरूप धरती पर से उनकी समाप्ति हो गयी । यह दीर्घकालिक परिस्थिति, जब कि जीवन मृत्यु के ही समान था, वह दण्ड था जो दासता की चुनौती का मामना न करने के कारण उपस्थित हुआ । और अधिकाश मानव जो विभिन्न परम्पराओ के तथा विभिन्न वशो के थे और जिन्हें सामूहिक रूप से हेलेनी युग के दुष्काल मे दास बना दिया गया था, विनष्ट हो गये । किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिन्होने चुनौती का सामना किया और किसी-न-किसी रूप मे परिस्थिति को सुधारा ।

कुछ तो अपने मालिक के कार्य में कुशलता के कारण ऊँचे उठे और बडी-बडी जागीरो के उत्तरदायी शासक बन गये । सीजर की जागीर स्वय जो बढते-बढते हेलेनी जगत् की सार्वभौम राज्य बन गयी उन दासो द्वारा शासित होती थी जिन्हे सीजर ने मुक्त किया था । दूसरे दासो ने जिन्हे उनके मालिको ने छोटे-मोटे धन्धों में लगा दिया था, अपनी मजदूरी की बचत के रुपयो से अपनी स्वाधीनता खरीद ली और रोम के व्यापारिक ससार मे उन्होने सम्पत्ति तथा महत्ता प्राप्त की । दूसरे इस ससार में तो दास ही रहे, किन्तु वे दार्शनिक राजा हो गये अथवा दूसरे ससार के लिए धार्मिक नेता हो गये । और असली रोमन जो नारसिमस के अवैध अधिकार को घृणा से देखते थे और ट्रिमालशियो जैसे नये धनिको पर हँसते थे, लँगडे दास एपिक्टिटस के ज्ञान का सम्मान करते थे और उन असख्य दासो तथा मुक्त हुए दासो के उत्साह पर आनन्दमय आश्चर्य प्रकट करते थे जिनका विश्वास पहाड़ो को हिला रहा था । हैनिबली युद्ध तथा कान्सेन्टाइन के धर्म-परिवर्तन के बीच पाँच शतियो मे रोमन शासको ने अपनी आँखो से दासो के बौद्धिक तथा आर्थिक विकास के चमत्कार को देखा यद्यपि बलपूर्वक इसे रोकना चाहते थे । किन्तु वे नही रोक सके और अन्त मे स्वयं पराभूत हो गये । क्योकि जो दास बनकर आये थे वे अपना परिवार, घरबार और सम्पत्ति तो छोड आये थे किन्तु अपना धर्म उन्होने नही छोडा था । यूनानी दास अपने साथ बकेनेलियो का त्योहार अपने साथ लाये थे, अनापोलियाई साइबिल (हितायती देवी जिसका अस्तित्व उस समाज के लोप हो जाने पर भी बना रहा, जिस समाज मे उसका प्रादुर्भाव हुआ था) की पूजा अपने साथ लाये, मिस्री दास, 'आइसिस' की पूजा लाये, बैबिलोनियाई नक्षत्रों को पूजा लाये, ईरानी 'मित्र' की पूजा लाये और सीरियाई दास ईसाई धर्म लाये । जुवेनल ने ईसा की दूसरी शती में लिखा था—'सीरियाई सरिता ओरोटीज़ का जल टाइबर नदी मे

गिरा । इन दोनो जलो के मिश्रण का ऐसा परिणाम हुआ कि अपने मालिकों के प्रति दासों के बन्धन की सीमा निश्चित हो गयी ।

विचारणीय विषय यह था कि आन्तरिक सर्वहारा का प्रवासी धर्म हेलेनी समाज के स्थानीय शक्तिशाली अल्पसंख्यकों के धर्म पर विजय प्राप्त कर लेगा । जब एक बार जल का संगम हो गया तब यह असभव था कि वे घुल-मिल न जायँ और जब एक बार दोनो मिल गये तब यह सन्देह नही रह गया कि धारा किस ओर बहेगी जबतक कि उसका विरोध बल से अथवा कौशल से न किया जाय । क्योकि हेलेनी जगत् के त्राता देवताओ की वह शक्ति समाप्त हो गयी थी जिसने कभी अपने उपासको को जीवन प्रदान किया था । जब कि सर्वहारा के देवता इनके (सर्वहारा) लिए शान्ति तथा बल प्रदान करने वाले थे क्योकि विपत्ति के समय इनसे बहुत सन्तोष और सान्त्वना मिलती है । रोमन अधिकारी इन दो परिस्थितियो के बीच पाँच शतियों तक विचार करते रहे कि किधर जायँ । विदेशी धर्मों के प्रति वह जेहाद बोल दें अथवा उन्हे ग्रहण करे । विदेशी प्रत्येक देवता केवल रोम के किसी-न-किसी वर्ग को आकृष्ट करता रहा । सेना को 'मित्र' प्रिय थे, महिलाओं को 'आइसिस', बौद्धिको को आकाश के नक्षत्र, फिलहेलेनियो को 'डायोनाइसस', भूत-प्रेत पूजको को 'माईबल' रुचा । ई० पू० सन् २०५ मे जब हैनिबली युद्ध की विभीषिका उपस्थित थी, रोमन सिनेट ने पाँच सौ साल बाद होने वाली घटना का कि कान्स-टैनटाइन ईसाई धर्म स्वीकार करेगा, प्रतिरूप ही उपस्थित किया जब उसने शासकीय सम्मान से आकाश से गिरे जादू के पत्थर (उल्का) की प्राप्ति का स्वागत किया । इसे इन लोगो ने अना-तोलियाई के पेसिनस से मन्त्रसिद्ध कवच समझकर मँगाया था । बीस साल बाद उन्होंने डायोक्ली-शियन द्वारा ईसाइयो पर होने वाले अत्याचार की पूर्वपीठिका हेलेनी देवता बैकेनेलिया का दमन करके उपस्थित की । देवताओ के प्रगत जो दीर्घकालिक युद्ध था वह प्रवासी दासो तथा रोमन मालिको के युद्ध का प्रतिरूप ही था । और इस द्वन्द्व मे दासो तथा उनके देवताओ की विजय हुई ।

दण्ड द्वारा जो प्रेरणा प्राप्त होती है उसका उदाहरण हिन्दू-समाज मे जाति (कास्ट) प्रथा द्वारा जो भेद किया जाता है उसमे भी मिलता है । यहाँ हम देखते है जिस जाति या वर्ग को एक व्यापार या रोजगार मे अलग कर दिया जाता था वह दूसरे में दक्षता प्राप्त कर लेता था । नेग्रो जो उत्तरी अमरीका प्रवासी दास है वह दो प्रकार के दण्डो से पीड़ित है । वर्णभेद और वैधानिक दासता से । अस्सी वर्ष हुए दूसरी बाधा तो हटा ली गयी, किन्तु पहली बाधा मुक्त हुए काले वर्ण के दासो पर अब भी बनी हुई है । इस बात के यहाँ विस्तार से कहने की आवश्यकता नही है कि दासो के पश्चिमी जगत् के अमरीकी तथा यूरोपीय व्यापारियो तथा उनके मालिको ने नेग्रो जाति पर कितना कष्ट पहुँचाया है । जो निष्कर्ष हम निकालना चाहते है और हेलेनी उदाहरण को देखकर बिना आश्चर्य के कह सकते है वह यह कि अमरीकी नेग्रो यह देखकर कि इस लोक मे उसके लिए कोई त्राण नही है, परलोक की ओर अधिक ध्यान दे रहा है ।

यदि सिंहावलोकन किया जाय तो हमारी भीषण चुनौती को नेग्रो ने धार्मिक दृष्टि से उसी प्रकार स्वीकार किया जैसे पूरब के दासो ने रोम के मालिको की चुनौती स्वीकार की थी । नेग्रो अफ्रीका से अपने साथ अपने पूर्वजो का कोई धर्म नही लाया था जो अमरीका के अपने गोरे सह-नागरिको के हृदय पर प्रभाव डालता । उसकी आरम्भिक सामाजिक विरासत इतनी दुर्बल थी कि पश्चिमी सभ्यता के आघात से छिन्न-भिन्न हो गयी । वह अमेरिका में शरीर से भी और

आत्मा से भी नंगा ही आया। और इस नंगेपन को उसने अपने मालिकों के उतारे हुए कपडो से ढका। नेग्रो ने अपनी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार अपने को इस प्रकार बनाया कि ईसाई धर्म में कुछ ऐसे मौलिक अर्थ निकाले और नये मूल्य स्थापित किये जिसे पश्चिमी ईसाई जगत् बहुत दिनों से भूल बैठा था। बाइबिल का सरल तथा सादेपन से अध्ययन करके उसने प्रकाशित किया कि ईसू पैगम्बर होकर ससार मे इसलिए नही आया कि बलवानों को उनके स्थान पर सुरक्षित करे, बल्कि इसलिए कि दीनो और विनम्रो को ऊँचा उठाये। सीरियाई प्रवासी दास रोमन इटली में ईसाइयत लाये थे और वहाँ उन्होने पुराने धर्म के स्थान पर जो मर चुका था नये धर्म की स्थापना करके चमत्कार दिखाया। सम्भव है नेग्रो प्रवासी दास जिन्होने ईसाइयत की स्थापना अमरीका मे की, उससे भी बढ़कर चमत्कार दिखायें और मृत को जीवन प्रदान करे। उनमें जो शिशु के समान आत्मिक अंतर्ज्ञान (इन्ट्यूशन) है और भावनात्मक धार्मिक अनुभूति को स्वाभाविक कलात्मक ढंग से व्यक्त करने की जो प्रतिभा है उससे सम्भव है कि हमने उन्हे जो ईसाइयत की बुझी हुई सफेद राख प्रदान की है, उससे उनके हृदयों मे आग धधक उठे। और सम्भव है कि दूसरी बार मर रही सभ्यता मे जीता-जागता ईसाई धर्म सजीव हो जाय। यदि अमरीकी नेग्रो ईसाई धर्म यह चमत्कार कर दे तो सामाजिक दण्ड की प्रतिक्रिया का अभूतपूर्ण उदाहरण होगा।

फनारिओट वर्ग का जानअली वर्ग और लैवाटाइन वर्ग

जो सामाजिक अत्याचार किसी समशील (होमोजीनस) समुदाय के धार्मिक अल्पसख्यको पर होता है वह सबको भलीभाँति मालूम है। उसका उदाहरण देने की आवश्यकता नही। सब लोग जानते हैं कि सत्रहवी शती मे अग्रेज प्युरिटनो ने इस प्रकार की चुनौती का किस प्रकार सामना किया। जो इग्लैड मे रह गये उन्होने पहले पार्लिमेट के द्वारा और फिर क्रामवेल की सेना द्वारा विधान मे उलट-फेर करके ससदीय शासन के प्रयोग को सफल किया और जो लोग समुद्र-पार गये उन्होंने सयुक्तराज्य (यूनाइटेड स्टेट्स) की नीव डाली। कुछ ऐसे उदाहरण देना अधिक मनोरजक होगा जो बहुत विख्यात नही है। जहाँ उत्पीड़ित तथा अधिकार प्राप्त समुदाय भिन्न-भिन्न सभ्यताओ के थे यद्यपि बहुसख्यको की शक्ति के दबाव के कारण एक ही राजनीतिक सघटन मे रहते थे।

उसमानिया साम्राज्य मे मुख्यत परम्परावादी ईसाई धर्म मानने वाले थे। विदेशी धर्म तथा सभ्यता वालों ने वहाँ सार्वभौम राज्य स्थापित किया, जो ईसाई नही कर सके थे, परिणाम यह हुआ कि सामाजिक अक्षमता के कारण अपने ही घर मे ईसाई वर्ग मालिक नही बन सका। मुसलिम विजेताओं ने परम्परावादी ईसाई जगत् मे शान्ति स्थापित की। ईसाइयो से धार्मिक भेदभाव के रूप में कर वसूल किया क्योंकि ईसाई प्रजा की वे राजनीतिक सेवा करते थे। इसके परिणामस्वरूप उत्पीड़ित वर्ग के लोग आगे चलकर उन कार्यों के कुशल और विशेषज्ञ हो गये जो उनसे इस समय जबरदस्ती कराये जाते थे।

पुराने उसमानिया राज्य में जो उसमानलियो में नही थे, वे शासन मे योग नही दे सकते थे, न सेना मे भरती हो सकते थे और साम्राज्य के बड़े-बड़े टुकड़ो की खेती-बारी भी ईसाइयों से निकाल कर मुसलिम शासकों ने ले ली और उनसे अधिकार भी छीन लिया। ऐसी परिस्थिति में अनेक परम्परावादी ईसाई धर्म की जातियों के इतिहास में पहली और अन्तिम बार अप्रकाश्य

रूप से और सम्भवत अज्ञात, किन्तु प्रभावशाली ढग से आपसी समझौता किया । अभी तक जो आपस मे आनन्दपूर्वक विनाशकारी लडाइयाँ लडते थे उनको उन्होने बन्द कर दिया । ऐसे व्यवसाय जैसे वकालत, अध्यापकी, डाक्टरी आदि उन्होने छोड दिये । और छोटे-छोटे व्यवसायों मे लग गये और व्यापारियो के रूप मे साम्राज्य की राजधानी मे उन्होने घर बना लिया जहाँ से विजेता मुहम्मद साहब ने उन्हे जबरदस्ती और पूर्णरूप से निकाल दिया था । रूमेलिया के पहाडो के बलाचा बनियो का काम करने लगे, यूनानी द्वीपसमूह के यूनानी बोलने वाले यूनानी, और अनातोलिया के करमान के तुर्की बोलने वाले यूनानियो ने और अच्छा और बडे पैमाने पर व्यापार आरम्भ किया, अलबेनिया के ईसाई राज बन गये, मॉटोनेगरो निवासी दरबान और हरकारे का काम करने लगे, देहाती बुलर्गेरियन भी गाँवा में साईस और माली का काम करने लगे ।

जिन परम्परावादी ईसाइयो ने फिर से कुसतुनतुनिया मे रहना आरम्भ किया उनमे एक दल यूनानियो का था जिन्हे फनारिओट कहते थे । उत्पीडन की चुनौती से इनमे इतनी स्फूर्ति जागी कि उसमानलियो के शासन तथा साम्राज्य के नियन्त्रण मे इनका प्रभुत्व हो गया और इनका शक्तिशाली सहयोग अनिवार्य हो गया । जिस स्थान से इस यूनानी परिवार का नामकरण हुआ था उसे फनार कहते थे, वह इसतबोल का उत्तर-पश्चिमी कोना था जिसे उसमानिया सरकार ने परम्परावादी ईसाइयो को रहने के लिए अलग छोड दिया था । जब सन्त सोफिया का गिरजाघर मसजिद बना दिया गया तब अखिल ईसाई सम्प्रदाय के मुखिया भागकर यही आये और यूनानी परम्परावादी ईसाइयो का दल, जिसने व्यापार मे उन्नति की थी, इन्ही के नेतृत्व मे रहने लगा। फनारिओटो ने दो कार्यों में कुशलता प्राप्त की थी । बडे पैमाने के व्यापारी होने के नाते पश्चिमी जगत् से उन्होने अपना व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया और पश्चिम के आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज और भाषा का ज्ञान प्राप्त किया । ईसाई सरदारो के क्षेत्र के वे प्रबन्धक बन गये थे इससे उन्हे उसमानिया शासन का व्यावहारिक तथा आन्तरिक ज्ञान हो गया था क्योकि पुरानी उसमानिया प्रणाली में उसमानिया सरकार तथा सभी प्रदेशो की परम्परावादी ईसाई प्रजा के बीच मुखिया ही राजनीतिक अफसर था । जब उसमानिया साम्राज्य और पश्चिमी ससार मे लौकिक सघर्ष चला और वियना के दूसरे असफल घेरे, सन् १६८२–८३ मे उसमानलियो की निश्चित पराजय हुई, फनारियोटो के भाग्य का सितारा चमका ।

सैनिक पराजय के कारण उसमानिया सरकार के कार्यों मे अनेक भारी उलझने हो गयी । १६८३ के पहले उसमानिया सरकार पश्चिमी ससार के बीच का सारा मामला सैनिक शक्ति से तय करती थी । सैनिक पराजय के कारण उनके सामने दो समस्याएँ उपस्थित हुई । जिन्हे वे रणक्षेत्र में हरा नही सके । उनके साथ सम्मेलन मे बैठकर बातचीत करनी थी और उन्हे ईसाई प्रजा की भावनाओ का भी ध्यान रखना था क्योकि उन्हे अब वे दबाकर नही रख सकते थे । दूसरे शब्दो मे, जो कुशल ईसाई राजनीतिक तथा शासक थे उन्हे वे हटा नही सकते थे । जो अनुभव आवश्यक था उसकी उसमानलियो मे कमी थी और उनकी प्रजा में केवल फनारिओटो के पास ही वे अनुभव थे । परिणामस्वरूप उसमानलियो ने विवश होकर और पुरानी परम्परा को छोडकर तथा अपने शासन में परिवर्तन करके राज्य मे चार प्रमुख स्थान फनारिओटों को ही दिया । नयी राजनीतिक परिस्थिति मे उसमानिया साम्राज्य मे ये विशिष्ट स्थान थे । इस प्रकार ईसा की अठारहवीं शती मे फनारिओटो की राजनीतिक शक्ति बहुत बढ गयी । और ऐसा जान पड़ा

कि पश्चिमी दबाव के परिणामस्वरूप शतियो के धार्मिक और जातिगत उत्पीड़ित लोगो मे से एक नवीन शासक वर्ग उत्पन्न होगा ।

अन्त में फनारिओट अपनी आकाक्षा की पूर्ति में असफल रहे क्योंकि अठारहवी शती के अन्त मे उसमानिया सामाजिक समूह पर पश्चिमी दबाव इतना तीव्र हो गया कि इस समाज मे एकाएक परिवर्तन हो गया । उन यूनानियो में, जो उसमानिया प्रजा मे पश्चिम से सम्बन्ध स्थापित करने में अगुआ थे, नवीन पश्चिमी राष्ट्रीयता के विपाणु (वाइरस) भी प्रवेश कर गये । यह फ्रास की राज्यक्रान्ति का परिणाम था । फ्रांस की क्रान्ति और यूनानी स्वतन्त्रता के युद्ध के बीच यूनानी लोग दो विरोधी आकाक्षाओ के वशीभूत थे । एक ओर तो उनकी आकांक्षा थी कि उसमानलियों के उसमानी साम्राज्य को यूनानी प्रबन्ध मे बनाये रखे क्योकि अभी तक उसका वे प्रबन्ध करते रहे, साथ ही साथ उनकी महत्त्वाकाक्षा थी कि स्वतन्त्र यूनानी राज्य स्थापित करे । ऐसा यूनान यूनानियों के लिए जैसा फ्रास फ्रासीसियो के लिए था । १८२१ में स्पष्ट हो गया कि ये दोनों आकाक्षाएँ कितनी विरोधी हैं जब यूनानियो ने इस बात की चेष्टा की कि दोनो की पूर्ति हो जाय ।

जब फनारिओट के राजकुमार हाइपसिलाटी ने रूस के अपने अड्डे से प्रूथ को पार किया कि मै उसमानिया साम्राज्य का मालिक बन जाऊँ और मैनिओट के सरदार पेट्रो-बे-मावरोमिखालिस मोरिया के अपने किले से उतरा, कि स्वतन्त्र यूनान की स्थापना की जाय, तब परिणाम पहले से समझा जा चुका था । इस युद्ध ने फनारिओटो के सपने को भग कर दिया । जिस सरकण्डे के सहारे सौ वर्ष से अधिक तक उसमानली वश खडा रहा उसने उनका हाथ छेद दिया इससे उनका क्रोध इतना भडका कि उस सरकण्डे को तोड़ डाला और अपने पाँव पर खड़े हुए । राजकुमार हाइपसिलाटी के आक्रमण का उत्तर उन्होने इस प्रकार दिया कि जिस शक्ति का ढाँचा १६८३ से शान्तिपूर्वक फनारिओट खडा कर रहे थे उसे एक प्रहार में नष्ट कर दिया । यह उस प्रक्रिया का पहला चरण था जिसके द्वारा उसमानिया जगत् से सारे अतुर्की तत्त्वो को निकाल बाहर करना था और जिसकी पराकाष्ठा उस समय हुई जब उन्होंने १९२२ मे अनातोलिया से परम्परावादी ईसाई धर्म वालो को निकाल दिया । यूनानी राष्ट्रीयता की प्रथम चिनगारी ने तुर्की राष्ट्रीयता की आग भी भडका दी ।

इस प्रकार फनारिओट उसमानिया साम्राज्य मे वह प्रमुख अधिकार नही प्राप्त कर सके जिसे समझा जाता था कि वे पायेंगे । किन्तु यह भी सत्य है कि वे सफलता के बहुत निकट पहुँच गये थे । जिस बल से उन्होने उत्पीडन का सामना किया था वह इसका प्रमाण है । उसमानलियो से उनका सम्बन्ध चुनौती और उसका सामना करने के नियम का सुन्दर उदाहरण है । यूनानियो और तुर्कों का विरोध जिसमे लोगो को इतनी अभिरुचि उत्पन्न हुई है और जिस घटना मे इतनी सजीवता प्राप्त हो गयी है इसी परिस्थिति मे समझा जा सकता है । इसका कारण धर्म अथवा प्रजातिगत (रेशल) नही है जिस पर दोनो दल साधारणत· जोरो मे विवाद करते है । तुर्क-प्रेमी तथा यूनानी-प्रेमी दोनो सहमत है कि यूनानी ईसाइयो और तुर्की मुसलमानो मे कुछ ऐतिहासिक प्रजातिगत स्वाभाविक अन्तर है और यह अन्तर धर्म अथवा जाति की कुछ ऐसी विशेषताओं के कारण है जो अमिट है और हटायी नहीं जा सकती । केवल उस समय वे असहमत होते है जब इन अस्पष्ट विशेषताओं के मूल्यो को इधर से उधर कर देते है । यूनानी भक्त यूनानी रक्त तथा परम्परावादी ईसाई धर्म मे जन्मजात गुण मानते है और तुर्की रक्त तथा इसलाम मे जन्मजात

दोष । तुर्की भक्त इस गुण तथा दोष उलट कर यूनानियों पर आरोपित करते हैं । किन्तु तथ्य जानने से दोनों के विचार गलत प्रमाणित होते है ।

उदाहरण के लिए यह निर्विवाद है कि जहाँ तक प्रजाति का प्रश्न है वर्तमान तुर्कों में अलतो-गरल के मध्य एशिया के तुर्की साथियों का रक्त अत्यल्प मात्रा में है । उसमानिया तुर्की राष्ट्र में परम्परावादी ईसाई समाज भी घुलमिल गया है जिनके साथ गत छ शतियो से उसमानली की पीढ़ी रहती चली आयी है । जहाँ तक प्रजाति का प्रश्न है दोनो मे कोई अन्तर नही रह गया है ।

यदि इस तर्क से यूनानी-तुर्की विरोध के विवाद का समाधान हो सकता है तो इसी प्रकार का तर्क धार्मिक विरोध के सम्बन्ध में हम दूसरा उदाहरण देकर उपस्थित कर सकते है । कुछ तुर्की मुसलमान बहुत दिनो से ऐसी अवस्था मे रहते चले आये है जिनका रहन-सहन उसमानियाँ तुर्कों के समान नही है, उसमानलियो की पुरानी परम्परावादी यूनानी प्रजाओ के समान है । बोल्गा के किनारे एक तुर्की मुसलिम समुदाय रहता है जिसे काजानली समुदाय कहते है । शतियो से ये रूस के परम्परावादी ईसाई शासन मे रहते आये है और इन्हे भी उतनी प्रजातीय तथा धार्मिक यातना सहनी पडी जितनी उसमानलियो के शासन मे परम्परावादी ईसाइयो को । ये काजानली किस प्रकार के लोग है । हम पढते है कि वे "अपनी ईमानदारी, सयम, मितव्ययिता तथा परिश्रम के लिए प्रसिद्ध है । उनका मुख्य व्यवसाय व्यापार है' ' ' उनका मुख्य उद्यम साबुन बनाना, कातना और बुनना है वे जूते बहुत अच्छा बनाते है और साईसी का काम भी अच्छा करते है । सोलहवी शती के अन्त तक काजान मे कोई मसजिद नही बन सकती थी और तातारो को अलग महल्लो मे रहने को विवश किया जाता था, किन्तु धीरे-धीरे मुसलमानो की अधिकता हो गयी ।"[१]

मुख्य रूप में यह विवरण जो तुर्कों का जार के काल मे उत्पीडन का है वैसा ही जैसा उसमानिया साम्राज्य के उन्नत काल मे तुर्कों द्वारा कट्टर मुसलमानो की यातना का था । धर्म के नाम पर जो यातना दोनो समुदायो की हुई, वह दोनो की समान थी और दोनो के विकास का मुख्य कारण थी । शतियो तक जो इस समान यातना की प्रतिक्रिया दोनो समुदायो पर हुई उससे दोनो मे एक प्रकार की 'पारिवारिक समानता' उत्पन्न हो गयी जिसके परिणामस्वरूप परम्परावादी ईसाई धर्म तथा इस्लाम में जो आरम्भिक भेद थे वे मिट गये । यह 'पारिवारिक समानता' दूसरे धार्मिक समुदायो मे भी दिखाई पडती है जिन्हे धार्मिक विचारो के कारण दण्ड दिया गया और जिन्होने उसी प्रकार उसका सामना किया । उदाहरण के लिए पुराने उसमानिया साम्राज्य मे 'लेवांटीनी' रोमन कैथोलिक । फनारिओटो के समान लेवांटीनी अपना धर्म छोडकर और शासको का धर्म अंगीकार करके यातना से बच सकते थे । किन्तु बहुत कम ने ऐसा किया । जो कुछ बन्धन जबर्दस्ती उन पर लगाये गये थे उन्ही के बीच जो अवसर उन्हे मिला उसी का लाभ उन्होने उठाया । इस प्रकार के आचरण मे उन्होने चरित्र की शक्ति तथा आशावादिता की मनोवृत्ति का विचित्र तथा सुन्दर मिश्रण दिखाया जैसा इस प्रकार की सीमाओ से बँधे और ऐसी परिस्थिति में पड़े सामाजिक समुदायो मे बहुधा मिलती है । इस बात की चिन्ता उन्होने

१. द ब्रिटिश एडमिराल्टी : मैनुअल आन द तूरानियन्स एण्ड पान-तूरानियनिज्म ।

नही की कि हम पश्चिमी ईसाई जगत के वीर और गौरवशाली वश के है, अर्थात् मध्ययुगीन वेनिशियाई, जेनोई या आधुनिक फ्रेंच, डच या अंग्रेजों के वशज है । उसमानिया साम्राज्य की जिस संकीर्ण परिस्थिति मे रहने को वे विवश थे उसमे या तो वे धार्मिक यातना का उसी प्रकार सामना करते जिस प्रकार उन्ही के समान विभिन्न धार्मिक उत्पीडित समुदायो ने किया था या समाप्त हो जाते ।

उसमानलियो के उत्कर्ष के युग के आरम्भिक शतियो मे वे पश्चिमी ईसाई संसार के केवल लेवांटीनियो को ही जानते थे जिन्हें वे फाक-फिरगी कहते थे । उनकी कल्पना थी कि पश्चिमी यूरोप मे ऐसे ही निम्न कोटि के धर्मभ्रष्ट लोग रहते है । जब उन्हे और अनुभव हुआ तब उन्हे अपनी सम्मति बदलनी पडी । और उन्होने दो प्रकार के फिरगियो मे विशिष्ट अन्तर माना—एक तो 'खारे पानी वाले फिरगी' और दूसरे 'मीठे पानी वाले फिरगी' । 'मीठे पानी वाले फिरंगी' वे थे जो तुर्को मे लेवाटी वातावरण मे जन्मे और पनपे और लेवाटी आचार-व्यवहार का विकास किया । 'खारे पानी वाले' वे फिरगी थे जो फ्रैंकों के देश मे पैदा हुए और बढ़े और प्रौढ़ होकर दृढ चरित्र लेकर तुर्की मे आये । तुर्को को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उनमे और 'मीठे पानी वाले फिरगियो में' जो उन्ही के बीच रहते आये थे, जो मनोवैज्ञानिक अन्तर था, उसके कारण उस समय कोई व्यवधान नही पडता था जब वे खारे पानी वाले फिरगियो का सामना करते थे । जो फिरंगी भौगोलिक दृष्टि से तुर्कों के पडोसी थे और देशवासी थे वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विदेशी थे और जो फिरगी दूर देश से आये थे उनकी भावनाएँ तुर्कों जैसी ही थी । इसका कारण स्पष्ट था । तुर्क और खारे पानी वाले फिरगी एक दूसरे को समझते थे । क्योकि दोनो की सामाजिक पृष्ठभूमि साधारणत. समान थी । प्रत्येक का विकास ऐसे वातावरण मे हुआ था जिसमे अपने घर का वह स्वय मालिक था । इसके विपरीत दोनो ही मीठे पानी वाले फिरगियों को समझने अथवा उनका समादर करने मे कठिनाई का अनुभव करते थे क्योकि मीठे पानी वाले फिरंगियो की सामाजिक पृष्ठभूमि दोनो के लिए विदेशी थी । वह घट का लडका नही था वह 'गेट्टों'[१] की सन्तान था। इस यातना के जीवन के कारण उनमे (मीठे पानी वाले फिरगियों मे) एक विशिष्ट जातिगत मनोवृत्ति उत्पन्न हो गयी जो तुर्की के तुर्कों अथवा फ्रैंकलैंड के फिरंगियो मे नही थी ।

यहूदी

बिना विस्तार मे गये हुए हमने देखा कि धार्मिक भेद-भाव का परिणाम क्या होता है । वह स्थिति भी देखी जहाँ उत्पीड़ित तथा यातना पहुँचाने वाले एक ही समाज के थे जिसका अच्छा उदाहरण अंग्रेज प्युरिटन है और उसमानिया साम्राज्य के इतिहास से वह उदाहरण देखा जहाँ उत्पीड़ित समुदाय दूसरी सभ्यता का था और धार्मिक यातना पहुँचाने वाले दूसरी सभ्यता के । अब ऐसी स्थिति को देखना है जहाँ धार्मिक उत्पीड़न का शिकार एक विनष्ट जाति है जो जीवाश्म (फासिल) के रूप में अवशेष है । ऐसे फासिलो की सूची आरम्भ मे दी गयी है । जिसमे प्रत्येक

१. गेट्टों उस बस्ती को कहते थे जो साधारण जन से अलग यहूदियों को रहने के लिए बना दी गयी थी । यहाँ अभिप्राय है तिरस्कृत समुदाय ।—अनुवादक

ही ऐसी यातना का उदाहरण है । किन्तु उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण फासिल अवशेष सीरियाई समाज के यहूदी लोग हैं । लम्बी दुखमय कहानी कहने के पहले जिसका अन्त अभी नही हुआ है,[१] हम देखेंगे कि एक और सीरियाई अवशेष पारसियो ने हिन्दू-समाज मे वही कार्य किया है जो यहूदियो ने और स्थानो मे—जैसे व्यापार और आर्थिक बातो मे दोनो ने विशेषता प्राप्त की है। इसी प्रकार एक और सीरियाई अवशेष आरमीनियन, ग्रेगोरियन, मनोफाइमाइटो ने मुसलिम जगत् मे वही कार्य किया है ।

उत्पीड़ित यहूदियो की विशेषताएँ अच्छी तरह विदित है । हमे यहाँ यह देखना है कि यहूदियो के ये गुण उनकी जाति या धर्म के कारण अर्थात् उनके 'यहूदीपन' के कारण है, जैसा कि साधारणतः समझा जाता है अथवा यातना के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो गये है । दूसरे उदाहरणो से जो परिणाम निकलता है वह तो ऐसा ही है, किन्तु हम निष्पक्ष ढग से इस समस्या पर विचार करेगे । प्रमाणो की परीक्षा दो प्रकार हो सकती है । जब धार्मिक कारणो से यहूदियो का उत्पीडन होता था उस समय के उनके आचार की तथा जब यह उत्पीडन कम कर दिया गया अथवा बिलकुल ही समाप्त कर दिया गया उस समय के उनके आचार की तुलना हम कर सकते है । हम उन यहूदियो के आचार की तुलना, जो उत्पीडित किये जा रहे है या किये गये है उन यहूदियो के आचार से कर सकते है जो कभी उत्पीडित हुए नही ।

आजकल जिन यहूदियो मे वे विशेष आचरण बहुत स्पष्ट है जिन्हे हम यहूदी आचरण कहते है और अ-यहूदी जिन्हे यहूदियो की हर जगह और हर काल मे विशेपता मानते आये है, वे पूरबी यूरोप के आशकेनाजी यहूदी है । वे रूमानिया तथा निकटवर्ती प्रदेशो मे, जो रूसी साम्राज्य मे तथाकथित 'यहूदी घेरे' मे सम्मिलित थे, वैधानिक न सही नैतिक दृष्टि से दबाये हुए है । और दबाने वाली पिछड़ी हुई ईसाई जातियाँ है। यहूदियो का विशेष आचरण हालैड, ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रास तथा सयुक्त राज्य द्वारा विमुक्त किये हुए यहूदियो मे नही पाया जाता । और जब हम इस बात पर विचार करते है कि इन देशो मे यहूदियो की विमुक्ति को कितना कम समय हुआ है और पश्चिम के प्रबुद्ध देशों मे भी उनकी नैतिक विमुक्ति अभी पूर्ण रूप से नही हुई है तब इस यहूदियों के आचरण के परिवर्तन को कम महत्त्व न देगे ।[२]

यह भी हम कहेंगे कि पश्चिम के विमुक्त यहूदियो मे जो आशकेनाजी वश के है और यहूदी घेरे से आये है अधिक यहूदी आचरण दिखाई पडता है और हमारे बीच जो सेफारडिम वंश के है

१. जब श्री ट्वायनबी ने यह भाग लिखा था नाजियों द्वारा यहूदियों की यातना आरम्भ नहीं हुई थी, इसलिए उसका विवरण इसमें नहीं आया है ।—सम्पादक

२. पब्लिक स्कूल के अध्यापक के नाते मे (सम्पादक) कह सकता हूँ कि मैने देखा है कि पब्लिक स्कूल में जो यहूदी लड़के अच्छे खिलाड़ी होते है और इस कारण अपने साथियों के प्रेमपात्र हो जाते है, उतना 'यहूदी-आचरण' नहीं प्रदर्शित करते जितना और यहूदी बालक जो खेलाड़ी नहीं है । साधारण अ-यहूदी बालक उन्हें यहूदी समझते ही नहीं चाहे उनके नाम और चेहरे की बनावट जैसी भी हो ।—सम्पादक

जो मूलतः दारुस्सलाम से आये है उनमें यह बात नहीं है । और इस कारण दोनो वशों के इतिहास की भिन्नता है ।

आशकेनाजिम उन यहूदियों के वशज है जिन्होंने उस परिस्थिति का लाभ उटाया जब रोमनो ने यूरोप का द्वार खोला । उन यहूदियो ने आल्प्स के पार के अर्ध बर्बर प्रदेशो से खुदरा व्यापार से लाभ उटाना आरम्भ किया । रोमन साम्राज्य के समाप्त हो जाने पर इन आशकेनाजियो को दोहरा कष्ट उठाना पड़ा । ईसाइयों की कट्टरता से और बर्बरो के क्रोध से । कोई बर्बर यह नही देख सकता कि एक विदेशी आकर और उनके बीच दूसरे प्रकार का जीवन बिताकर इस प्रकार व्यापार करके लाभ उठाये जो बर्बर की क्षमता के बाहर है । इन्ही प्रकार की भावनाओ से प्रेरित होकर पश्चिमी ईसाइयो ने तब तक उन्हें यातना दी जब तक वे अनिवार्य समझे गये और जब ईसाइयो ने समझा कि उनकी आवश्यकता नही है उन्हे निष्कासित कर दिया । इस प्रकार पश्चिमी ईसाई समाज के उत्कर्ष और प्रसार के साथ-साथ आशकेनाजिम पूरब की ओर चलते गये । राइन प्रदेश के पुराने रोमन साम्राज्य की सीमा से वर्तमान ईसाई समाज की सीमा तक, उसी यहूदियो के घेरे मे वे गये । पश्चिमी ईसाई समाज का ज्यो-ज्यो विस्तार होता गया और पश्चिम के लोगो मे ज्यो-ज्यो आर्थिक दक्षता आती गयी यहूदी लोग एक देश से दूसरे देश मे निकाले जाते रहे, जैसे इग्लैड से एडवर्ड प्रथम ने (१२७२–१३०७) निकाला । महाद्वीपो के तटीय उन्नतिशील देशों ने इन यहूदी निष्कासितो का स्वागत किया और पश्चिमीकरण की आरम्भिक अवस्था मे उन्हे व्यावसायिक नेताओ के रूप मे स्वागत भी किया और ज्योंही ईसाई समाज ने देखा कि अब आर्थिक जीवन के विकास मे इनकी आवश्यकता नही है इन्हे अस्थायी शरणालय से निकाल बाहर किया । इस घेरे के अन्दर आशकेनाजी यहूदियो को पश्चिम से पूरब की ओर की निकासी बन्द कर दी गयी और उनका बलिदान सीमा तक पहुँच गया । क्योकि यहाँ पश्चिमी तथा रूसी परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय का मिलन केन्द्र था । यहाँ यहूदी चक्की के दोनो पाटी के बीच पड़ गये । जब वे पूरब की ओर प्रस्थान करना चाहते थे 'पवित्र रूस' ने उनकी राह रोकी । आशकेनाजियो के भाग्य से पश्चिम के मुख्य राष्ट्र, जो मध्य युग मे यहूदियो को निकालने मे सबसे आगे थे अब ऐसे आर्थिक स्तर पर पहुँच गये कि स्वावलम्बी थे और यहूदियो की प्रतियोगिता से आशका नही रह गयी । उदाहरण के लिए कामनवेल्थ शासन के समय क्रामवेल ने (१६५३–५८ ई०) यहूदियो को पुन इग्लैड मे रहने की आज्ञा दे दी । पश्चिम मे यहूदियो का विस्तार उसी समय हुआ और आशकेनाजियो को पश्चिम की ओर जाने का नया द्वार खुला, जब पूरब की ओर 'पवित्र रूस' की पश्चिमी सीमा उनके लिए बन्द कर दी गयी । विगत शती में आशकेनाजियों का प्रवास पूरब से पश्चिम की ओर ही रहा है । 'घेरे' मे से वे इग्लैंड तथा सयुक्त राज्य में गये हैं । इन अतीत की परिस्थितियो के कारण इसमे आश्चर्य नही कि जो आशकेनाजिम हम लोगो के यहाँ आ गये हैं उनमें यहूदियो के आचारो की विशेषताएँ अधिक स्पष्ट है बजाय उनके सहधर्मी सेफार्डियो के जो अधिक सुखी स्थानों मे रहे है ।

स्पेन तथा पुर्तगाल से आये हुए सेफ़ार्डियों में जो 'यहूदीपन' दिखाई देता है उसका कारण उनका दारुस्सलाम मे अतीत का निवास है । जो यहूदी फारस मे तथा रोमन साम्राज्य के प्रान्तों में फैल गये, जो प्रदेश बाद में अरबो के हाथ मे आये, वे अपेक्षाकृत अधिक सुखी परिस्थिति मे थे । अब्बासी खलीफों के शासन में उनकी स्थिति उन यहूदियो से खराब नही थी जो पश्चिमी

देशों में आये और जिनका निस्तार आज हुआ है। सेफार्डियों पर जो ऐतिहासिक विपत्ति आयी उसका कारण था मूरों से धीरे-धीरे आइबीरी प्रायद्वीप का पश्चिमी ईसाइयों के हाथ में जाना जो क्रम पन्द्रहवीं शती के अन्त में समाप्त हुआ। ईसाई विजेताओं ने उनके सम्मुख तीन विकल्प रखे, विनाश, देश छोड़ देना अथवा धर्म-परिवर्तन। हम उन सेफार्डियों के बाद के इतिहास को देखें जिन्होंने देश छोड़कर अपनी जान बचायी और जिनके वंशज आज जीवित हैं। जो देश से निकल गये वे कैथोलिक स्पेन तथा पुर्तगाल के बैरियों की शरण में गये अर्थात् तुर्की, हालैंड अथवा टसकनी में।[1] जो तुर्की पहुँचे उन्हें उसमानलियों ने कुसतुनतुनिया में सेलानि का तथा रुमिली के नागरिक क्षेत्रों में रहने के लिए प्रोत्साहित किया। इससे उन्होंने उस कमी की पूर्ति की जो उच्च मध्य-वर्गीय नागरिक यूनानियों के विनाश अथवा निष्कासन से हो गयी थी। ऐसी उपयुक्त परिस्थिति में उसमानी साम्राज्य में सेफार्डी प्रवासी शरणार्थियों ने व्यापार में विशेषता प्राप्त की तथा उन्नति की। उनमें आशकेनाजी यहूदियों के आचार नहीं पनप सके।

वे आइबीरी यहूदी जिन्हें मरानो कहते हैं और जिन्होंने चार-पाँच शती पूर्व ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया, उनमें यहूदियों के लक्षण प्राय लोप हो गये। इस बात के विश्वास करने के कारण है कि उच्च तथा मध्य आइबीरी लोगों की नसों में धर्म परिवर्तित यहूदियों का रक्त है। किन्तु चतुर से चतुर मनोविश्लेषण वाले के सामने यदि उच्च तथा मध्य वर्ग के स्पेनी और पुर्तगाली लोगों को परीक्षा के लिए रखा जाय तो वे कठिनाई से बता सकेंगे कि इनके पूर्वज यहूदी थे।

आधुनिक काल में मुक्त यहूदियों का एक दल यहूदियों के लिए पश्चिम के ढंग का आधुनिकतम राष्ट्र बना कर अपने समाज को पूर्ण रूप से मुक्त करना चाहता है।[2] जायनिष्टों का अन्तिम लक्ष यह है कि शतियों के उत्पीडन से जो एक विचित्र मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि उत्पन्न हो गयी है उससे यहूदियों को मुक्त किया जाय। इस अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध से मुक्त यहूदियों का दूसरा दल है वह भी सहमत है। 'मिल जाने वाले' यहूदी और जायनिस्ट दोनों चाहते हैं कि यहूदी को 'विशेष जाति' रूपी बीमारी से मुक्त किया जाय। किन्तु जायनिस्ट 'मिल जाने वालों' के उपचार से सहमत नहीं हैं और यही उनमें भेद है।

'मिलने वालों' का आदर्श यह है कि हालैंड के यहूदी, इग्लैंड अथवा अमेरिका के यहूदी को डच, अंग्रेज अथवा अमेरिकन होना चाहिए जिनका धर्म यहूदी हो। उनका तर्क है कि किसी प्रबुद्ध देश में किसी यहूदी नागरिक को वह नागरिक बनने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए चाहे वह रविवार को गिरजाघर जाने के बजाय शनिवार को अपने उपासना-गृह में जाता हो। जायनिस्ट इसका दो उत्तर देते हैं। एक तो यह कि मान भी लिया जाय कि 'मिलने वालों' की उपचार-विधि से वांछित परिणाम प्राप्त भी हो तो वह कुछ प्रबुद्ध देशों में ही हो सकता है जहाँ संसार भर के यहूदियों की बहुत कम संख्या है। दूसरा उत्तर यह है कि बहुत ही उपयुक्त वातावरण में भी इस प्रकार यहूदियों की समस्या का हल नहीं हो सकता क्योंकि यहूदी होना केवल

१. डिसरायली अपने को इन्हीं का वंशज कहता था। यह सम्भवतः ठीक है, किन्तु उसका अपने पूर्वजों का इतिहास अति रंजित जान पड़ता है।

२. जब यह पुस्तक लिखी गयी उसके बाद यहूदियों का राष्ट्र बन गया है। —अनुवादक

यहूदी धर्म का होने से बहुत कुछ अधिक है। जायनिस्टो की दृष्टि मे जो यहूदी डच या अंग्रेज या अमरीकी बनना चाहता है वह अपने व्यक्तित्व को नष्ट करता है, किन्तु डच या अंग्रेज अथवा जिस भी अ-यहूदी राष्ट्रीयता को ग्रहण करता है उसका व्यक्तित्व उसे प्राप्त नही होता। जायनिस्टो का कहना है कि यदि और राष्ट्रो के समान यहूदियों को भी होना है तो मिलने की प्रक्रिया व्यक्तिगत रूप से न होकर राष्ट्रीय ढग से होनी चाहिए। इसके बजाय कि छिट-पुट यहूदी एक-दो डच अथवा अंग्रेज बनने का व्यर्थ प्रयास करे, यहूदियो को अंग्रेज या डच में इस प्रकार मिलना चाहिए कि उन्हे अपने लिए एक राष्ट्रीय भूमि बनानी चाहिए जहाँ यहूदी उसी प्रकार रह सके जैसे इग्लैड मे अंग्रेज या हालैंड मे डच रहते हैं—जहाँ वे अपने देश के स्वत्वाधिकारी हो।

यद्यपि जायनिस्टो के आन्दोलन का व्यावहारिक रूप केवल पचास साल पुराना है, उसके सामाजिक दर्शन का परिणाम ठीक निकला है। पैलेस्टीन के कृषि-उपनिवेश मे यहूदियो की सन्तान पहचानी नही जाती। वे अब ऐसे अच्छे खेतिहर हो गये हैं। वैसे ही उपनिवेश के खेतिहर जैसे और अ-यहूदी देश वाले। दुर्भाग्य यह है कि वहाँ पहले की रहने वाली अरब जनता से उनका समझौता नही हो सका है।

केवल अब उन थोडे-से यहूदियों के अस्तित्व के सम्बन्ध मे बता देना है जो सुदूर ऐसे स्थलो मे भाग गये और इस प्रकार जिन्होंने उत्पीडन से अपनी रक्षा कर ली। वहाँ उनके लक्षण कठोर किसानो के समान हैं अथवा पहाडी देश के रहने वालो के समान वे असभ्य हैं, जैसे अरब के दक्षिण-पश्चिम मे यमन के यहूदी अबीसीनिया के फालाशा, काकेशिया के पहाडी यहूदी और क्रीमिया के तुर्की बोलने वाले क्रिमचक यहूदी।

८. सुनहला मध्यम मार्ग

(१) पर्याप्त और आवश्यकता से अधिक

हम ऐसी जगह पहुँच गये है कि अन्तिम तर्क उपस्थित कर सकते है। हम इस निर्णय पर पहुँचे है कि सभ्यता ऐसे वातावरण में जन्म लेती है जो कठोर होते हैं, अथवा जहाँ जीवन सरल नही होता। इससे हमने यह खोज करने की चेष्टा की कि यह किसी सामाजिक नियम का उदाहरण तो नही है जिसे हम इस फारमूला द्वारा व्यक्त कर सकते है—कि 'जितनी ही जबरदस्त चुनौती होगी उतनी ही अधिक प्रेरणा होगी।' हमने पाँच प्रकार की प्रेरणाओ द्वारा उत्पन्न परिस्थितियो का अध्ययन किया है—कठोर देश, नयी धरती, आघात, दबाव तथा उत्पीडन। और इन पाँचो सर्वेक्षणो मे हमारे नियम का औचित्य सिद्ध हुआ है। किन्तु हमे यह देखना है कि यह नियम निरपेक्ष है कि नही। यदि हम चुनौती की तीव्रता यावदनन्त (एड इनफिनिटम) बढाते जायँ तो क्या यह निश्चित है कि प्रेरणा भी उसी अनुपात में बढती जायगी और बराबर उसी अनुपात में चुनौती का सामना सफलतापूर्वक होता जायगा? या हम बढते-बढते किसी ऐसे स्थान पर पहुँचेगे जहाँ चुनौती के अनुपात मे प्रेरणा कम होने लगती है। और यदि इस स्थिति के भी हम आगे पहुँचते है तो क्या ऐसी स्थिति पर पहुँच जाते है जब चुनौती इतनी तीव्र हो जाती है कि सफलता के साथ उसका सामना करना असम्भव हो जाता है? यदि यह है तो नियम यह होगा—'कठोर और सबसे सरल चुनौती के औसत वाली चुनौती मे सबसे अधिक प्रेरणा मिलेगी।'

क्या बहुत अधिक चुनौती के ढग की कोई वस्तु हो सकती है? हमे ऐसा कोई उदाहरण नही मिला है। चुनौती की चरम सीमा और उसके सामना करने के क्रियाकलाप के कुछ उदाहरण है जिसका वर्णन हमने अभी नही किया है। हमने वेनिस की बात नही कही जो झील के किनारे मिट्टी मे लकडी की बल्लियाँ धँसा कर बना है और जिसने सम्पत्ति और गौरव में पो के किनारे ठोस धरती पर बने सब नगरो से बाजी मार ली, हालैंड की भी बात हमने नही कही जो देश सागर में से पानी हटाकर और धरती निकाल कर बना है और अपने ही क्षेत्रफल के बराबर उत्तर यूरोप के मैदान के किसी टुकड़े से अधिक गौरवशाली इतिहास का निर्माण जिसने किया है। स्विटजरलैंड जो पहाड़ो का ढेर है उसके सम्बन्ध में भी नही कहा है। ऐसा जान पडता है कि पश्चिमी यूरोप के इन तीन कठोर प्रदेशों ने विभिन्न ढंगों से सामाजिक उन्नति के उच्चतम स्तर को प्राप्त किया जहाँ पश्चिम का कोई प्रदेश अबतक नही पहुँच सका।

किन्तु और बातें विचारणीय है। इन तीनो प्रदेशों की चुनौती बहुत कठोर अवश्य रही है, किन्तु वे समाज की दो या एक ही परिस्थिति तक सीमित रही हैं। भौतिक कठोरता अवश्य रही है, किन्तु जहाँ तक मानवी कठोरता का सम्बन्ध है, जैसे आघात, दबाव, दमन—इनसे भौतिक कठोरता ने रक्षा की है और इस प्रकार भौतिक कठोरता चुनौती नहीं, सुख ही रही है। इसके कारण मानवी कष्टों से उनकी रक्षा हुई जिनसे उनके पडोसी पीड़ित हुए। मिट्टी के किनारो

वाला वेनिस मुख्य प्रायद्वीप से झीलो द्वारा अलग रहा जिसके फलस्वरूप एक हजार साल तक (८१०–१७९७) कोई विदेशी सेना उस पर अधिकार न कर सकी। हालैंड ने अनेक बार कुछ काल के लिए अपने बाँधो को तोड़ अपने प्रमुख केन्द्रों की रक्षा की। उसी के साथ तुलना कीजिए उसके पडोसी लम्बार्डी और फ्लैंडर्स की जो सदा यूरोप के रणक्षेत्र रहे।

ऐसे अनेक उदाहरण सरलता से दिये जा सकते हैं जो विशेष चुनौतियों का सामना नही कर सके। इससे कुछ प्रमाणित नही होता क्योकि प्रत्येक चुनौती जिसका सफलतापूर्वक सामना किया गया है, कभी-न-कभी सौवी बार अथवा सहस्रवी बार सामना करने वाले पर विजय प्राप्त करती है। प्रकृति का ऐसा ही विधान है। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए उत्तरी यूरोप के जंगलों की प्राकृतिक चुनौती ने आदिम मनुष्य को पराजित किया। उनके पास पेड़ो को गिराने के साधन नही थे और न उन्हे इसका ज्ञान था कि यदि पेड़ गिरा भी दिये जायँ तो उसके बाद जो उपजाऊ धरती मिलेगी उसमें खेती किस प्रकार की जाय। इसलिए उत्तरी यूरोप के आदिम निवासियो ने जगलो का बहिष्कार किया और बालू के ढूहो तथा खडिया मिट्टी की पहाडियो पर अड्डा जमाया। जहाँ खोदाई करने पर आज भी उनकी हड्डियाँ डोलमेन और चकमक के रूप में अवशेष मिलती है। इन्ही धरतियो को उनके उत्तराधिकारियो ने, जो जगल के पेडों को गिराने मे सफल हुए, अनुपयुक्त धरती माना। आदिम मनुष्यो के समशीतोष्ण कटिबन्ध के जगल बर्फीले टूड्रा से अधिक दुर्जेय थे। उत्तरी अमरीका मे न्यूनतम प्रतिरोध के पथ पर चलते हुए आदिम मनुष्यो ने जगलो को छोड़ दिया और सुदूर ध्रुव की ओर गये जहाँ उन्होने उत्तर-ध्रुव वृत्त की चुनौती का सामना किया और एसकिमा सस्कृति को जन्म दिया। किन्तु आदिम मनुष्य के अनुभव से यह नही प्रमाणित होता कि उत्तर यूरोप के जंगल इतने दुर्जेय है कि मनुष्य उनका सामना नही कर सकता। इनके बाद जो बर्बर उधर आये उन्होने अपने यन्त्रों तथा तकनीको से कुछ सामना किया क्योकि जिस सभ्यता से उनका सम्पर्क था उससे उन्हे अनुभव प्राप्त था और थोड़े दिनो मे पश्चिमी तथा रूसी परम्परावादी सभ्यता के नेता आये और पूर्ण रूप से यहाँ विजय प्राप्त कर ली।

ईसा के पूर्व दूसरी शती में पो की घाटी मे उत्तर यूरोपीय जगलों के दक्षिणी अग्रभाग जिसपर पहले वाले रोमन नही विजय प्राप्त कर सके थे बाद के रोमन दल के अग्रगामियो ने विजय प्राप्त कर ली। यूनानी इतिहासकार पोलीबियस उस समय गया था जब यह प्रदेश बसने लगा था। उसने रोम के गैलिक पूर्ववर्ती अन्तिम वंशज की जो आल्पस के जगलो में अभी रहते थे। उसने दरिद्रता तथा असफल जीवन की तुलना उन लोगो से की जो उन प्रदेशो में रहते थे, जिन पर रोम ने विजय प्राप्त की थी। इसी प्रकार का चित्र उन्नीसवी शती मे उपस्थित किया जाता था जब केंट की अथवा ओहिया के आदिकालिक जंगलो में रेड इंडियनो के निकृष्ट जीवन से एंग्लो-अमरीकी अग्रगामियो से तुलना की जाती है।

भौतिक वातावरण से मानवी परिस्थिति की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तब वहाँ भी हमे यही स्थिति मिलती है। एक चुनौती जिससे एक सामना करने वाला पराजित हो जाता है वही दूसरे सामना करने वाले से स्वयं पराजित होती है।

उदाहरण के लिए हेलेनी समाज तथा उत्तर यूरोपीय बर्बरों के सम्बन्ध को हम देखें। यहाँ एक दूसरे पर दबाव पारस्परिक था। किन्तु हम केवल हेलेनी समाज के बर्बरो पर दबाव के

विचार तक सीमित रखेंगे । जैसे-जैसे यह सभ्यता प्रायद्वीप के अन्दर गहरी घुसती गयी बर्बरों के जीवन-मरण का प्रश्न एक के बाद दूसरी पक्ति के सामने उपस्थित होता गया । उसके सामने प्रश्न था कि हम इस विदेशी बलवती शक्ति द्वारा अपने सामाजिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर दें और हेलेनी समाज मे घुल-मिल जायँ ? या हम इसका सामना करें और बाहरी विरोधी हेलेनी सर्वहारा के साथ हो जायँ और समय पाकर बर्बर समाज के शव पर बैठकर उसका भक्षण करें । अर्थात् हम गिद्ध हों कि शव हो ? बार-बार इस प्रकार की चुनौती केल्टो और ट्यूटनों के बीच आती रही । बहुत संघर्ष के पश्चात् केल्ट धराशायी हो गये और ट्यूटन विजयी हुए ।

केल्टो की पराजय प्रभावोत्पादक थी क्योकि उनका आरम्भ अच्छा था और उन्होने आरम्भ में परिस्थितियो से अच्छा लाभ उठाया । एट्रस्कनों की भूल से उन्हे अच्छा अवसर भी मिला । पश्चिमी भूमध्यसागर के आरम्भिक प्रवेश के समय अपने प्रतिद्वन्द्वी हेलेनी सस्कृति के ग्रहण करने वाले ये हितायती इटली के तट पर अधिकार जमाने से ही सन्तुष्ट नही हुए । उनके अगुआ अपेनीन पहाड को पार कर के अन्दर घुसे और पो के बेसिन में दूर तक इधर-उधर फैल गये । इस कार्य मे उन्होंने अपनी शक्ति का ह्रास किया और इन्हे नष्ट करने की शक्ति केल्टों को प्राप्त हो गयी । उसका परिणाम 'केल्टो का आवेग' (फ्यूरोर केलिटकस) उत्पन्न हुआ जो दो शताब्दियो तक स्थिर रहा और केल्टो की बाढ अपेनाइन पार करते हुए रोम ही नही पहुँची, (३९० बी० सी० के विदेशी आक्रमण के) बल्कि मेसिडोनियाँ (२७९–६ बी० सी०) में, यूनान मे, पूरब मे अनातोलिया तक ये पहुँचे जहां वे 'गैलेशियन' नाम और अपना प्रभाव छोड गये । हैनिबल ने पो बेसिन के विजेताओं को अपना मित्र बनाया, किन्तु ये सफल नही हुए और केल्टो के आवेग ने रोमन साम्राज्यवाद की चुनौती को बल प्रदान किया । पश्चिमी प्रदेश मे रिमिनी से राइन तथा टाइन तक और पूरब मे डैन्यूब तथा हैलिस की चौकियों तक केल्ट छिन्न-भिन्न हो गये और अन्त मे रोमन साम्राज्य इन्हे निगल गया ।

यूरोपियन बर्बरो के केल्टिक भाग के नष्ट हो जाने से उनके बाद वाला ट्यूटनी भाग सामने आ गया और उसे भी उसी चुनौती का सामना करना पडा । आगस्टी युग के इतिहासकार को ट्यूटनो के भविष्य का क्या स्वरूप समझ में आया होगा जिन्होने यह देखा कि ट्यूटनो के वेग को मैरियस ने पूर्णत: नष्ट कर दिया और सीजर ने ट्यूटनो को गआल से पूर्णत: निष्कासित कर दिया । उस इतिहासकार ने कहा होता कि ट्यूटनो का भी वही हाल होगा जो केल्टो का हुआ और सम्भवत: और सरलता से । किन्तु उसकी भविष्यवाणी गलत होती । रोमन सीमा एल्ब तक पहुँची, किन्तु कुछ ही समय के लिए । रोमनो को राइन-डैन्यूब रेखा तक लौटना पड़ा और वही तक रहना पडा । जब सभ्य और बर्बरो के बीच की सीमा स्थिर हो जाती है तब समय सदा बर्बरो के पक्ष मे रहता है । केल्टो के विपरीत ट्यूटनों पर हेलेनी संस्कृति का कुछ भी प्रभाव नही पडा । न तो सेना, न व्यापारी न प्रचारक (मिशनरी) उनका कुछ कर सके । ईसा की पाँचवी शती आते-आते जब गोथ और वण्डल पेलोपोनीशियनो को लूट रहे थे और तबाह कर रहे थे और रोम की स्वतन्त्रता को खतरे मे डाल दिया था, तथा गआल, स्पेन और अफ्रीका पर अधिकार जमा लिया था, यह स्पष्ट हो गया कि जहाँ केल्ट असफल रहे वहाँ ट्यूटन विजयी हुए । यह इस बात का प्रमाण है कि हेलेनी दबाव इतना तीव्र नही था कि उस पर विजय प्राप्त करना असम्भव हो ।

एक बात और। सिकन्दर की सेना द्वारा हेलेनी संस्कृति का जो आक्रमण सीरियाई संसार पर हुआ वह सीरियाई समाज के प्रति बलपूर्वक चुनौती थी। सीरियाई समाज के सामने यह प्रश्न था कि वह हेलेनी आक्रमण का विरोध करे कि नही। इस चुनौती का सामना करने के लिए सीरियाइयों ने अनेक प्रयत्न किये। इन सब प्रयत्नो में एक बात सब मे थी। प्रत्येक में हेलेनी आक्रमण के विरोध का आधार धार्मिक आन्दोलन था, किन्तु पहले चार विरोधो तथा अन्तिम विरोध में एक विशेष अन्तर था। जोरो आस्ट्री, यहूदी, नेस्टोरी, तथा मोनोफाइसाइटो के विरोध विफल हुए, इस्लामी विरोध सफल हुआ। जोरोआस्ट्री तथा यहूदी विरोध उन धर्मों के द्वारा हेलेनी चुनौती का विरोध करना चाहता था जो हेलेनी आक्रमण के पहले सीरियाई जगत् मे वर्तमान थे। जोरोआस्ट्री धर्म के बल पर सीरियाई संसार के पूर्वी भाग में ईरानी हेलेनियो के विरुद्ध खड़े हुए और सिकन्दर की मृत्यु के दो सौ वर्ष के भीतर ही फरात (यूफ्रेटीज) के पूरब के सब प्रदेशो से उन्हे निकाल बाहर कर दिया। किन्तु जहाँ जोरोआस्ट्री चरम सीमा तक पहुँच गये और सिकन्दर की शेष विजित भूमि का उद्धार रोम ने हेलेनीवाद के लिए किया। मकाकीज के नेतृत्व मे यहूदियों की जो प्रतिक्रिया हुई थी कि अपने पश्चिमी मातृभूमि को सीरियाई सभ्यता से मुक्त करने के लिए भीतरी क्रान्ति की जाय, वह भी असफल रही, यद्यपि यह चेष्टा साहस के साथ की गयी थी। सिल्युसिडो पर जो क्षणिक विजय प्राप्त हुई थी उसका बदला रोम ने ले लिया। सन् ६६–७० ई० मे जो रोम-यहूदी युद्ध हुआ था उसके परिणाम मे फिलस्तीन में यहूदियो की शक्ति चकनाचूर हो गयी और अपने पवित्र नगर से मकाबीज ने जिन 'विनाशकारी रोमनो' को निकाल दिया था वे उस समय वापस आ गये और टिक गये जब हैड्रियन ने उस स्थान पर एलिया कैपिटोसिना नाम का उपनिवेश बसाया। जहाँ आजकल जरुसलेम है।

जहाँ तक नैस्टोरी और मोनोफाइसीटी प्रतिक्रिया की बात है एक-दूसरे का प्रयत्न हेलेनी सभ्यता का विरोध, उस यन्त्र से करना था, जो आक्रमणकारी सभ्यता ने हेलेनी तथा सीरियाई तत्त्वो को मिलाकर तैयार किया था। आदिम ईसाई धर्म मे जिसमें अनेक ईसाई विचारो का समन्वय था सीरियाई धार्मिक भावनाओ का कुछ सीमा तक हेलेनीकरण किया गया था। यह धर्म हेलेनियों के अनुकूल था, किन्तु सीरियाई इसके विरोधी थे। नेस्टोरी तथा मोनोफाइसाइटी दोनों अधार्मिक विचार ईसाई धर्म पर से हेलेनी प्रभाव हटाना चाहते थे, किन्तु हेलेनी प्रभाव को ये नही रोक सके। नेस्टोरीवाद फरात के पार भगा दिया गया। मोनोफाइसाइटीवाद सीरिया, मिस्र और आरमीनिया में जमा रहा क्योंकि वहाँ के किसानो के हृदय पर हेलेनीवाद का प्रभाव नही पड़ा, किन्तु नगर की चहारदीवारी के भीतर जहाँ शक्तिशाली अल्पसख्यक थे कट्टरपन तथा हेलेनीवाद को वह नही हटा सका।

सम्राट् हेराक्लियस के समय का कोई व्यक्ति जिसने पूर्वी रोमन साम्राज्य की ससानिदों पर अन्तिम युद्ध में विजय देखी होगी, और जिसने परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय की विजय नेस्टोरियो तथा मोनोफाइसाइटो के अन्तिम युद्ध मे देखी होगी, वह ६३० ई० में ईश्वर को धन्यवाद देता कि उसने रोम, कैथोलिकवाद तथा हेलेनीवाद को एक कर दिया और यह अपराजेय है। किन्तु इसी समय हेलेनीवाद के विरुद्ध पाँचवी सीरियाई प्रतिक्रिया आने ही वाली थी। सम्राट् हेराक्लि-यस का दुर्भाग्य था कि वह उस समय तक जीवित रहा जब उसके सामने पैगम्बर मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी उमर उसके राज्य मे आये और जिन्होंने सदा के लिए सिकन्दर के बाद से जो

कुछ सीरियाई राज्य में हेलेनीकरण किया गया था नष्ट कर दिया । क्योंकि इस्लाम वहाँ सफल हुआ जहाँ उसके पहले आने वाले असफल हो चुके थे । सीरियाई संसार से उसने हेलेनीवाद को निष्कासित कर दिया । उसने फिर से अरब के खलीफा के राज्य का सयोजन किया और सार्वभौम सीरियाई राज्य बनाया जिसे सिकन्दर ने फारसी राजा अकेमिनीडी को हरा कर छोटा कर लिया था । अन्त में इस्लाम ने सीरियाई समाज में देशी सार्वभौम धर्म की स्थापना की और शतियों के मूर्छित समाज को ऐसा रूप प्रदान किया कि वह बिना अपना उत्तराधिकारी बनाये समाप्त न होगा । क्योंकि इस्लामी धर्म वह कोष (क्राइसेलिस) हुआ जिसमे से समय पाकर अरबी तथा ईरानी सभ्यताओ का जन्म हुआ ।

उपर्युक्त उदाहरणों से हमे पता चलता है कि जो समस्या हमारे सामने है उसके निराकरण की कोई समुचित प्रणाली हमे नही मिली, जहाँ हमे कोई स्पष्ट उदाहरण मिलता कि यहाँ चुनौती की कठोरता बहुत अधिक प्रमाणित हुई हो । दूसरे ढग से हमे इस समस्या पर विचार करना चाहिए ।

(२) तीन स्थितियों की तुलना

समस्या पर नयी दृष्टि

क्या हम कोई दूसरी ऐसी प्रणाली ढूंढ़ सकते है जिससे और अच्छा परिणाम निकल सकता है । अभी तक हमने इस प्रकार आरम्भ किया जब चुनौती द्वारा विरोधी पक्ष की हार हो जाती है । अब हम उन उदाहरणो को देखे जहाँ चुनौती के कारण प्रेरणा और स्फूर्ति मिली है और विरोधी सफल हुआ है । ऊपर के अध्याय के कई भागो में इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखे गये है और ऐसे समाजो की तुलना, जिन्होने सफलतापूर्वक चुनौती स्वीकार की, ऐसे ही समान समाजो से की गयी है, जिन्होने जब चुनौती कम कठोर थी तब उसी प्रकार की चुनौती का सामना कम सफलता से किया । अब कुछ इस प्रकार की तुलना को दो स्थितियो मे देखना चाहिए और यह देखना चाहिए कि तीन स्थितियो तक क्या उसे बढा सकते है ?

प्रत्येक स्थिति मे हमे किसी तीसरी ऐतिहासिक परिस्थिति को खोजना चाहिए जहाँ चुनौती कम कठोर नही, बल्कि जिस चुनौती से हमने आरम्भ किया उससे अधिक कठोर रही । यदि हम इस प्रकार की किमी तीसरी स्थिति को खोज सके तब वह परिस्थिति जो मिस्र से हमने आरम्भ की थी—अर्थात् चुनौती का सफल सामना—दो चरम स्थितियो के बीच, मध्यम स्थिति हो जाती है । इन दोनो चरम स्थितियो मे चुनौती की कठोरता मध्य वाली स्थिति से कम अथवा अधिक होती है । चुनौती का सामना करने से सफलता मिलती है कि नही ? हमने देखा है कि जिस परिस्थिति में चुनौती कम कठोर थी वहाँ सामना करने में भी कम तीव्रता थी । परन्तु तीसरी परिस्थिति में क्या होता था, जिसपर पहली बार हम विचार कर रहे हैं । जहाँ चुनौती सबसे कठोर है वहाँ सामना करने से सफलता भी अधिकतम हुई है । मान लीजिए कि हमे ऐसा निष्कर्ष मिले कि चुनौती मध्यम स्थिति से अधिक कठोर रही हो और सफलता की वृद्धि सापेक्ष अधिक न हुई बल्कि सामना करने की शक्ति में कमी आ गयी हो । यदि ऐसा प्रमाणित हो जाय तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि चुनौती तथा सामना का नियम 'क्रमागत ह्रास' के नियम के अनुसार होगा । हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि कठोरता की एक मध्यम स्थिति होती है जब प्रेरणा अधिकतम

होती है इसे हम अधिकतम (आप्टिमम) कहेंगे। सबसे अधिक जब होती है उसे महत्तम (मैक्सिमम)।

नारवे-आइसलैंड-ग्रीनलैंड

हमने यह देखा है कि नारवे, स्वीडन तथा डेनमार्क में नही, बल्कि आइसलैंड मे अकाल प्रसूत (अबार्टिव) स्कैंडिनेवियाई सभ्यता ने साहित्य तथा राजनीति में उच्च सफलता प्राप्त की। यह उपलब्धि दो प्रेरणाओं के फलस्वरूप हुई। एक तो समुद्र पार से लोग आये और दूसरे यह कि जिस देश से स्कैंडिनेवियाई आये उससे आइसलैंड अधिक उजाड़ और कठोर जलवायु का था। मान लीजिए कि जिस चुनौती का इन्हें सामना करना पडा उससे दूनी कठोर चुनौती होती। मान लीजिए कि नार्स लोग पाँच सौ मील चलकर ऐसे देश मे पहुँचते और बसते जो आइसलैंड से उतना ही कठोर होता जितना नारवे से आइसलैंड है। क्या 'थूल' के आगे 'थूल'' का प्रदेश ऐसा स्कैंडिनेवियाई समाज पैदा करता जो साहित्य और राजनीति मे ऐसी ही प्रतिभा प्राप्त करता जो आइसलैंड मे हुई। यह प्रश्न काल्पनिक नही है क्योकि जिस अवस्था का हमने वर्णन किया है वही वास्तव में हुई जब ये सामुद्रिक यात्री आगे ग्रीनलैंड गये। और हमारे प्रश्न के उत्तर में किसी प्रकार का सन्देह नही हो सकता। पाँच सौ वर्ष से भी कम समय मे ग्रीनलैंड वाले ऐसी भौतिक परिस्थिति से युद्ध करते-करते पराजित हो गये, जो उनके लिए अति कठोर थी।

डिक्सी-मसाचसेट्स-मेन

हमने पहले ही इस बात की तुलना की है कि किस प्रकार इंग्लैंड के कठोर जलवायु और पथरीली धरती के द्वारा कठोर भौतिक चुनौती बृटिश-अमरीकी उपनिवेशको के सम्मुख उपस्थित हुई और वरजीनिया तथा कैरोलिना की कम कठोर भौतिक चुनौती सामने आयी। प्रायद्वीप पर अधिकार करने की होड में न्यू इंग्लैंड वालो ने सब प्रतिद्वन्द्वियो को पराजित किया। मैसन[2] और डिक्सन[3] रेखा स्पष्टत. श्रेष्ठतम चुनौती के क्षेत्र की दक्षिणी सीमा है। हमे यह देखना है कि इस जलवायु की कठोर चुनौती के क्षेत्र की कोई उत्तरी सीमा भी है। यह प्रश्न उठाते ही हमें पता चल जाता है कि हाँ ऐसा है।

श्रेष्ठतम भौतिक क्षेत्र की उत्तर सीमा न्यू इंग्लैंड को विभाजित करती है। क्योंकि जब हम न्यू इंग्लैंड का नाम लेते है और अमरीकी इतिहास में जो योगदान इसने दिया है उसे देखते है तब हम छ राज्यो मे केवल तीन की बात कहते है अर्थात् मसाचसेट्स, कनेक्टिकट तथा र्‍होड द्वीप की। न्यू हेम्पशर, वरमांट और मेन की नही। उत्तर अमेरिका के अंग्रेजी बोलने वाले समाज में मसाचसेट्स सदा आगे रहा है। अठारहवीं शती मे अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन के विरोध मे वह आगे रहा और तब से बौद्धिक तथा कुछ सीमा तक औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र मे उसने अपने नेतृत्व का स्थान सुरक्षित रखा यद्यपि संयुक्त राज्य का तब से महान् विकास हुआ है। इसके विपरीत मेन का, जो १८२० तक मसाचसेट्स का ही भाग रहा—उसी सन् मे वह अलग राज्य बना—कोई महत्त्व नही रहा और आज सत्रहवी शती की केवल यादगार है जब वहाँ लकड़हारे, मल्लाह और शिकारी

१. ब्रिटेन के उत्तर में किसी टापू का नाम।—अनुवादक
२–३. दक्षिण पूरबी संयुक्त राज्य के दो नगर।—अनुवादक

रहते थे । अब वह अजायबघर की वस्तु रह गयी है । इस कठोर प्रदेश के निवासी आज अपना निर्वाह उत्तरी अमरीका से जो पर्यटन करने आते है, जो ग्रामीण वातावरण मे छुट्टियाँ बिताने आते है, उनके पथ प्रदर्शक बनकर रहते है । क्योकि मेन आज भी उसी दशा मे है जिस दशा में पहले था । आज मेन अमरीकी यूनियन का सबसे प्राचीन प्रदेश है, उसका सबसे कम संस्कार हुआ है और उसमें सबसे कम कृत्रिमता है ।

मेन और मसाचसेट्स मे जो यह अन्तर है उसका कारण क्या है ? यह पता चलेगा कि न्यू इंग्लैंड की जो कठोर भौतिक परिस्थिति है वह मसाचसेट्स में अधिकतम है और मेन मे वह परिस्थिति इतनी अधिक हो जाती है कि मनुष्य के सामना करने में उसका ह्रास आरम्भ होने लगता है । हम अपना सर्वेक्षण और दूर तक ले जायें तो हमारी बात ठीक निकलेगी । कैनाडा के न्यू ब्रन्जविक, नोवा-स्कोशिया तथा प्रिस एडवर्ड द्वीप सबसे कम समृद्ध तथा प्रगतिशील है । और उत्तर चलिए तो न्यूफाउण्डलैंड ने भौतिक युद्ध मे सामना न कर सकने के कारण अपने पाँव पर खडा होने का विचार छोड दिया और सहायता के बदले ग्रेट ब्रिटेन का एक प्रकार 'क्राउन कोलोनी' होना स्वीकार कर लिया है । उससे भी उत्तर चलिए तो लैब्रैडर मे वही अवस्था देखते है जो नार्स उपनिवेशको को ग्रीनलैंड मे मिली थी । यह महत्तम चुनौती थी, अधिकतम नही थी । बल्कि उसे 'निकृष्टतम' कह सकते हैं ।

ब्राजील-ला प्लाटा-पेटेगोनिया

दक्षिण अमरीका के अतलान्तक तट का भी स्पष्टतः यही रूप है । उदाहरण के लिए ब्राजील राष्ट्रीय सम्पत्ति, साधन, आबादी तथा शक्तिशाली देश के एक छोटे भाग मे सीमित है जो बीसवी डिगरी दक्षिणी अक्षाश के दक्षिण है । यह भी देखने की बात है कि दक्षिणी ब्राजील दक्षिण के दूसरे क्षेत्रो से जैसे ला प्लाटा के मुहाने के दोनो ओर के राज्यो से, अर्थात् उरुगे तथा ब्यूनसऐर्स का आरजेटाइन राज्य से निम्न कोटि का है । यह स्पष्ट है कि दक्षिण अमरीका का अतलान्तक तट के विषुवत् रेखा का क्षेत्र स्फूर्तिदायक नही है, बल्कि शिथिल करने वाला है । किन्तु यह भी स्पष्ट है कि ला प्लाटा नदी के मुहाने का ताप तथा जलवायु अधिक नम है । यदि हम इस तट पर और दक्षिण चले तो चुनौती का दबाव तो अधिक है, किन्तु उसका सामना करने की शक्ति नही है जैसे पेटेगोनिया के उजाड पठार में ।

गोलोवे-अल्सटर-अपेलेशिया

अब हम ऐसे उदाहरण पर विचार करेगे जिसमें चुनौती केवल भौतिक नही है । कुछ भौतिक है, कुछ मानवी । आज अल्सटर और शेष आयरलैंड में भयंकर अन्तर है । दक्षिणी आयरलैंड पुराने ढर्रे का खेतिहर प्रदेश है और अल्सटर आधुनिक पश्चिमी यूरोप का बहुत बड़ा औद्योगिक केन्द्र है । बेलफास्ट उसी श्रेणी मे है जिसमे ग्लासगो, न्यूकासिल, हैमबुर्ग या डेट्रायट । और वहाँ के आदमी अपनी दक्षता के लिए उतने ही विख्यात हैं जितने रूक्षता के लिए ।

अल्सटर वाले किस चुनौती के कारण इस योग्य हुए ? उन्हे दो चुनौतियो का सामना करना पडा । एक तो वे स्काटलैंड से सागर पार करके आये, दूसरे उन्हे आयरिश निवासियो का सामना करना पड़ा जिनको उन्हे वहाँ से हटाना था । इन दोनो कठिनाइयो के कारण उनको प्रेरणा प्राप्त हुई जिसे हम यो नाप सकते है कि अल्सटर की सम्पत्ति और शक्ति कितनी अधिक है और

अपेक्षाकृत उन जनपदों की साधारण स्थिति से जो इंग्लैंड और स्काटलैंड के बीच की सीमा के स्काटलैंड की ओर पड़ते हैं । और जो हाइलैंड रेखा की तराई के किनारे बसे है जहाँ से सत्रहवी शती के स्काटलैंड के उपनिवेशी अल्सटर में आये ।[१]

आधुनिक अल्सटर वाले ही इस समुद्र पार से आने वाले उपनिवेशियो के प्रतिनिधि नही हैं । क्योकि जो अग्रगामी स्काटलैंड से अल्सटर मे आये उनकी आयरलैंड से मिली-जुली सन्तानें हुईं । ये लोग अठारहवीं शती में फिर अल्सटर से उत्तरी अमरीका मे गये और आज भी वे अपेलेशियन पर्वत के दुर्ग रूपी प्रदेश में मौजूद हैं । यह प्रदेश ऊँचा है और अमरीकी यूनियन मे पेनसिलवानिया से ज्यार्जिया तक फैला हुआ है । इस दूसरे स्थानान्तरण का क्या प्रभाव पडा ? सत्रहवी शती मे राजा जेम्स की प्रजा ने (अर्थात् स्काटो ने) सेट जार्ज चेनल पार किया और जगली पठार निवासियो से न लड़कर जगली आयरिशो से लड़े । अठारहवी शती मे उनके वशजो ने अतलान्तक पार किया और अमरीकी जगलो में इडियन योद्धा बने । स्पष्टत. यह अमरीकी चुनौती भौतिक तथा मानवी दोनो रूपो मे आयरिश चुनौती से प्रबल थी । क्या इस तीव्रतर चुनौती का सामना भी तीव्रतर हुआ ? यदि आज हम अल्सटर वालो तथा अपेलेशियन निवासियो की तुलना, उनके अलग हो जाने के दो सौ साल बाद करे, तो इसका उत्तर नकारात्मक है । आज के अपेलेशियन निवासी ने यही नही कि प्रगति नही की, वह और पीछे चला गया है और बहुत बुरी तरह । सच पूछिए तो आज अपेलेशियन के 'पहाडी लोग' बर्बरो से ऊपर नही हैं । आज वे मूढ़ तथा जादू-टोना वाले हो गये हैं । उनमे दरिद्रता है, गन्दगी है और अस्वस्थता है । वे पुरानी दुनिया के पिछले गोरे बर्बरो के अमरीकी प्रतिरूप हैं—जैसे रिफी, अलबेनियन, कुर्द पठान तथा रोएँ वाले ऐनू । अन्तर केवल इतना है—ये पुराने बर्बरो में से आज बचे-खुचे लोग हैं । अपेलेशियन लोग ऐसी जाति के खेदजनक स्वरूप है जिन्होने सभ्यता ग्रहण की और फिर उसे खोकर बर्बर हो गये ।

युद्ध की प्रतिक्रिया

अल्सटर-अपेलेशिया के उदाहरण मे चुनौती भौतिक भी थी और मानवी भी । किन्तु 'क्रमागत ह्रास' का नियम और उदाहरणो मे भी लागू होता है जहाँ चुनौती का कारण केवल मानव ही है । जैसे युद्ध के द्वारा विनाश के कारण जो चुनौती मिलती है । हमने दो उदाहरण दिये हैं जिनमे इस प्रकार की चुनौती का विजयपूर्ण सामना किया गया है । फारस के आक्रमण के बाद एथैन्स 'यूनान का शिक्षा गृह' बन गया, नैपोलियन के आक्रमण के बाद प्रशा बिसमार्क वाला जरमनी बना । क्या इस रूप की ऐसी चुनौती का उदाहरण मिल सकता है जहाँ युद्ध की बरबादी का घाव इतना तीव्र हुआ कि अन्त में उसने जाति को मुर्दा कर दिया । ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं ।

हैनिबल ने इटली का ध्वंस किया, उस चुनौती से इटली को कोई स्फूर्ति नही मिली जैसी और कम कठोर आक्रमणों से मिली थी । दक्षिणी इटली की उपजाऊ जमीन का कुछ भाग चराई का मैदान बन गया और कुछ में अगूर तथा जैतून के बाग लग गये । इस नयी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था,

१. ऊपर के पैराग्राफ में, शीर्षक में, 'गैलोवे' नाम जो दिया गया है उससे ठीक-ठीक उस प्रदेश का बोध नहीं होता जहाँ के उपनिवेशी अल्सटर में आये ।—सम्पादक

पशुपालन तथा बागवानी का कार्य दास लोग करने लगे । जहाँ स्वतन्त्र किसान उसके पहले खेती करते थे—जब हैनिबल के सैनिको ने किसानो के घरों को जला दिया और फलस्वरूप उजाड़ खेतों में घास-फूस और कँटीली झाड़ियाँ उगने लगी । इस प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन ने, जिसमें खाने के अनाज के बदले तुरत पैसा देने वाली वस्तुओ की खेती आरम्भ हुई, कुछ दिनो तक धरती का आर्थिक मूल्य बढ़ा दिया, किन्तु इससे कही अधिक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी । गाँव निर्जन हो गये और निर्धन जनता तथा पुराने किसान नगरो मे जा बसे । हैनिबल के इटली से जाने के बाद तीसरी पीढ़ी मे ग्रैकची ने कानून द्वारा इस प्रवृत्ति को रोकने की चेष्टा की, किन्तु इससे रोमन राष्ट्रमण्डल और भी अधिक उत्तेजित हुआ जिसका परिणाम राजनीतिक झगड़ों से फिर घरेलू युद्ध आरम्भ हो गया और टाइबीरियस ग्रैकस के शासन के सौ साल बाद रोमनो ने इन बुराइयो के निराकरण के लिए विवश होकर आगस्टस को स्थायी अधिनायक बनाया । इस प्रकार हैनिबल ने जो इटली का विध्वंस किया उससे रोमन जाति ने वैसी स्फूर्ति नही प्राप्त की जैसी जरक्सीस के ऐटिका के विध्वस होने पर एथेन्स वालो ने प्राप्त की । सच पूछिए तो इटली को ऐसा धक्का पहुँचा जिससे वह कभी सँभल नही सका । फारसी शक्ति द्वारा की गयी बरबादी से जो स्फूर्ति प्रदान हुई, उसी प्रकार की बरबादी जब प्यूनिक तीव्रता से हुई तब इटली मे वह भयंकर हो गयी ।

प्रवास की चुनौती पर चीनियो की प्रतिक्रिया

हमने अनेक श्रेणियो की भौतिक चुनौतियो का प्रभाव बृटिश प्रवासियो के अनेक दलो पर देखा । अब हम यह देखें कि मानवी चुनौती की प्रतिक्रिया प्रवासी चीनियो पर क्या होती है । जब चीनी कुली बृटिश मलयद्वीप अथवा डच ईस्ट इडीज मे जाता है तब उसके साहस तथा परिश्रम का पर्याप्त पुरस्कार मिलता है । वह जब घर छोड़ता है सामाजिक कठिनाइयो का सामना करता है । वह विदेशी सामाजिक वातावरण मे प्रवेश करता है । ऐसे वातावरण से, जहाँ प्राचीन परम्पराओ के परवश होकर वह दुर्बल और निर्धन हो गया है, वह ऐसे वातावरण मे आता है जहाँ उसे अपनी उन्नति करने का अवसर मिलता है । और बहुधा वह धनी हो जाता है । मान लीजिए कि हम उन सामाजिक कठिनाइयो को बढ़ा दे जिसका सामना उसे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए करना पड़ता है । मान लीजिए कि मलय या इंडोनेशिया भेजने के बजाय उसे आस्ट्रेलिया या कैलिफोर्निया मे भेज दे । हम 'गोरे आदमियो, के देश मे, हमारा साहसी कुली, यदि प्रवेश पा भी जाय तो उसे बहुत कठोरता का सामना करना पड़ेगा । यहाँ नये देश मे वह केवल अजनबी ही नही रहेगा, उसे विदेशी होने का दण्ड भी भोगना पड़ेगा । कानून का भेदभाव भी उसके विरोध में होगा और उसकी वैसी सहायता नही कर सकेगा, जैसी मलय मे उसे मिलती है जहाँ दयालु उपनिवेशिक सरकार ने 'चीनी सरक्षक' नाम के अफसर की नियुक्ति कर रखी है । इन सामाजिक कठिनाइयो की चुनौती के कारण क्या उसी अनुपात मे शक्तिशाली स्फूर्ति भी उत्पन्न होती है । ऐसा नही होता । हम यदि उन चीनियो की सम्पन्नता की, जो मलय तथा इंडोनेशिया में गये है, उन चीनियो की सम्पन्नता से तुलना करें जो कैलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया में गये है ।

स्लाव-एक्रियन-ट्यूटन-केल्ट

अब उस चुनौती पर दृष्टि डालनी चाहिए जिसमें बर्बरों की सभ्यता का सामना करना पड़ता

है। यह चुनौती यूरोप के विभिन्न स्तरों के बर्बरों को क्रमबद्ध रूप से पुरातन काल में उन अनेक सभ्यताओं से मिली जो एक समय असभ्य यूरोप के भीतर घुसते चले आये।

जब हम इस नाटक का अध्ययन करते हैं तब हमारा ध्यान एक ऐसी घटना की ओर जाता है जब एक चुनौती के सामना के कारण अद्वितीय प्रतिभा को स्फूर्ति मिली। हेलेनी सभ्यता ऐसा सुन्दर सुमन कभी नही खिला। और वह तब खिला जब मिनोई सभ्यता की चुनौती का सामना यूरोपीय बर्बरों को करना पड़ा। जब सागरवर्तीय मिनोई सभ्यता का चरण यूनानी प्रायद्वीप पर पड़ा तब पृष्ठभूमि के एकियाई बर्बर न तो नष्ट किये गये, न उन्हें परतन्त्र किया गया और न उन्हे उन्होने अपने में मिलाया। इसके विपरीत उन्होने मिनोई सागर-तन्त्र (थेलेसोक्रैसी) के बाहरी सर्वहारा के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखा और जिस सभ्यता ने उन्हें चुनौती दी उसकी सभ्यता से सीखते भी रहे। समय पाकर उन्होने सामुद्रिक कला सीखी। मिनोई लोगों के सागरतन्त्र को उन्ही के तत्त्व पर अर्थात् समुद्र पर ही पराजित किया और हेलेनी सभ्यता को जन्म दिया। हेलेनीवाद के पितामह एकियाई हैं। इससे प्रमाणित होता है कि ओलिमपियाई देवकुल देवताओ की रूपरेखा स्पष्टत. एकियाई बर्बरों के देवताओ से उत्पन्न हुई है। यदि हेलेनी देवालयो मे कही भी मिनोई जगत् के देवताओ का आभास मिलता है तो कदाचित् गाँवों मे अथवा हेलेनी मन्दिरों के इधर-उधर तहखानो मे और गुप्त धार्मिक मन्दिरो मे।

इस घटना मे जो स्फूर्ति प्राप्त हुई वह हेलेनीवाद की प्रतिभा के कारण हुई। इसे हम दूसरे उदाहरण से नाप सकते है। इन एकियाई बर्बरों के भाग्य की तुलना हम दूसरे स्तर के बर्बरों के भाग्य से करे जो इतनी दूर और सुरक्षित स्थान मे थे जहाँ सभ्यता की कोई किरण उस चुनौती के दो हजार वर्ष तक भी नही पहुँच पायी थी, जो मिनोइयो ने एकियाइयो को दी थी और जिसका शानदार सामना एकियाइयो ने किया था। ये लोग स्लाव थे जो शान्तिपूर्वक उस काल मे 'प्रिपेट' के दलदलो मे छिपे पड़े थे जिस काल में बर्फ पिघल कर यूरोप महाद्वीप से हट गयी थी। ये यहाँ शतियो तक यूरोपीय बर्बरो के रूप मे आदिम जीवन बिता रहे थे और जब ट्यूटनों के जनरेला ने उस लम्बे हेलेनी नाटक को समाप्त किया जो एकियाई जनरेला ने आरम्भ किया था, तब भी स्लाव लोग वही थे।

यूरोपीय बर्बर सभ्यता के इस अन्तिम समय खानाबदोश 'आवारो'[1] ने स्लावों को वहाँ से निष्कासित किया। ये आवारे अपने निवास स्थान यूरोपीय स्टेप से इस लालच से आगे बढ़े कि ट्यूटनों की भाँति हम भी रोमन साम्राज्य को लूटे और उसका विनाश करे। इस नये वातावरण में, जहाँ खेती होती थी, स्टेप की ये गुमराह सन्तानें (आवारे) जीवन की अपनी पुरानी गति-विधि अपनाना चाहते थे। आवारा लोग स्टेप पर ढोर चराकर जीवन-यापन करते थे। जब खेती की धरती पर वे आये तब उन्होंने देखा कि यहाँ के पशु तो खेती करने वाले किसान हैं। इसलिए बुद्धिमानी पूर्वक वह मनुष्यो के चरवाहे बने। जिस प्रकार वे अपने किसी पड़ोसी खानाबदोश पर छापा मार के उसके पशु को लाते थे कि हम उन्हें नयी जोती हुई चराई की भूमि पर रखें उसी प्रकार उन्होंने मानव रूपी पशु की खोज की जिससे उन रोमन प्रदेशों को बसाये जिन्हे उन्होने

१. एक खानाबदोश जाति।—अनुवादक

जीता था और जो निर्जन हो गये थे । स्लाव लोग वैसे ही थे जिस प्रकार के लोगों को आवारा खोज रहे थे । पशुओ के झुण्ड के समान उन्होने उन्हे हाँका, हगेरियाई मैदान के चारों ओर उन्हें रखा और मैदान मे अपने खेमे गाडे । ऐसा जान पडता है कि स्लाव दल के अग्रगामियों ने इसी अपमानजनक ढग से इतिहास मे प्रवेश किया । ये आधुनिक चेक, स्लोवाक तथा ज्यूगोस्लावों के पूर्वज थे ।

स्लावों तथा एकीयाइयों की तुलना से यह प्रमाणित होता है कि आदिम समाज यदि सभ्यताओ के संघर्ष से पूर्ण रूप से सुरक्षित रहें तो उनकी प्रगति मे बाधा पड़ती है। यह भी प्रमाणित होता है कि यदि यह संघर्ष अपनी कठोरता मे परिमित हो तो स्फूर्तिदायक होता है। मान लीजिए कि सघर्ष तीव्रतर हो जाय, मान लीजिए कि मिनोई सभ्यता ने जो शक्ति प्रासारित की वह और अधिक होती तो क्या हेलेनीवाद के एकियाई पूर्वजो ने जो प्रतिभा दिखायी उससे अधिक प्रतिभा दिखाते ? या क्रमागत ह्रास का नियम लागू हो जाता । इस सम्बन्ध मे शून्य मे कल्पना करना हम नही चाहते क्योकि एकियाइयो तथा स्लावो के बीच और अनेक बर्बर हुए है जिन्हे अनेक सभ्यताओ से अनेक दर्जे की कठिनाइयो का सामना करना पडा है । उनका क्या हुआ ?

यूरोपीय बर्बरो मे से एक का उदाहरण तो हमने देखा जो सभ्यता का सामना करने मे नष्ट हो गये । हमने देखा कि किस प्रकार केल्ट अल्प काल तक अपनी शक्ति दिखलाकर एट्रसकनो द्वारा सघर्ष मे या तो नष्ट हो गये या मिला लिये गये या पराधीन कर दिये गये । हमने बताया है कि किस प्रकार अन्त में हेलेनी सघर्ष मे केल्ट विफल हुए और ट्यूटन उनकी अपेक्षा अधिक सफल हुए । हमने यह भी बताया कि यूरोपीय बर्बरो के ट्यूटनी माँग ने केल्टी भाग के विपरीत, हेलेनियो को विच्छिन्न करने की क्रिया का यहाँ तक सामना किया कि हेलेनी जगत् के बाहरी भाग के वे सर्वहारा बन गये और हलेनियो पर अन्तिम प्रहार करके उनका बुरी तरह विध्वस किया । केल्टो के इस पराजय की तुलना में ट्यूटनो की प्रतिक्रिया सफल हुई । किन्तु जब हम ट्यूटनो की विजय की तुलना एकियाइयो से करते है तब हमें जान पडता है कि ट्यूटनो की विजय सत्यानाशी विजय थी । हेलेनी समाज की मृत्यु तो हुई, किन्तु साथ ही मृत हेलेनी समाज के सर्वहारा उत्तराधिकारियो के हाथो इनका विनाश हो गया । इस अवसर पर ट्यूटनी लडाकू विजयी नही हुए बल्कि रोमन कैथोलिक धर्मतन्त्र (चर्च) विजयी हुआ जो हेलेनी समाज के भीतरी भाग के सर्वहारा थे । ईसा की सातवी शती के समाप्त होते-होते अरियन अथवा मूर्तिपूजक (हीथेन) ट्यूटन सेना का प्रत्येक व्यक्ति, जिसने रोमन धरती पर पाँव रखने का साहस किया वह या तो रोमन कैथोलिक हो गया या समाप्त हो गया । यह नयी सभ्यता, जिसका सम्बन्ध हेलेनियो से था, अपने पूर्वजों के बाहरी नही, भीतरी सर्वहारा के कारण विकसित हुई। पश्चिमी ईसाई समाज कैथोलिक धर्मतन्त्र से निर्मित हुआ था, इसके विपरीत हेलेनीवाद का निर्माण एकियाई बर्बरो ने किया था ।

जिन सघर्षों का वर्णन किया गया है उन्हे कठोरता की दृष्टि से आरोही क्रम से देखा जाय । स्लाव लोगो को बहुत दिनो तक किसी सघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा । प्रेरणा की दृष्टि से उनकी स्थिति खराब रही । प्रतिक्रिया की दृष्टि से देखा जाय तो एकियाइयों को अधिकतम सघर्ष का सामना करना पडा । ट्यूटनों से हेलेनी सभ्यता का सफलतापूर्वक सामना किया, पर कैथोलिकवाद से वे पराजित हो गये । केल्टो ने हेलेनी समाज का सामना उसकी उन्नतावस्था

में किया—ट्यूटनों ने पतनावस्था में किया था—और उनसे पराजित हुए। स्लाव तथा केल्टो को पराकाष्ठा का सामना करना पड़ा—पहले को निर्जीव शान्ति का, तथा दूसरे को अति तीव्र आक्रमण का। इस तुलना में एकियाई और ट्यूटनों की 'मध्यम स्थिति' है। अब इस तुलना मे तीन के स्थान पर चार स्थितियाँ है। किन्तु अधिकतम सामना की दृष्टि से एकियाई ही औसत में रखे जा सकते है।

(३) दो अकाल प्रसूत (अबार्टिव) सभ्यताएँ

ट्यूटनी जनरेला का पृष्ठभाग

यूरोपीय बर्बरों तथा प्रभावशाली सभ्यताओ के बीच जो क्रमश: सघर्ष हुए है और उनमें जब क्रमागत ह्रास का नियम चलने लगा है उस समय का क्या हम अधिक स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन करा सकते है? हाँ, हो सकता है. क्योकि दो उदाहरण ऐसे है जिनका विचार हमने नही किया है। इनमे एक तो है वह संघर्ष, जो पश्चिमी समाज के स्रोत, रोमन धर्मतन्त्र से 'केल्टिक किनारे' के अकाल प्रसूत सुदूर ईसाई समाज के बीच हुआ था। दूसरा हमारी प्रारम्भिक अवस्था के पश्चिमी समाज और सुदूर उत्तरी अर्थात् वाइकिंगो के स्कैण्डिनेवियाई समाज से हुआ था। इन दोनो सघर्षो मे विरोधी थे बर्बरो के पृष्ठभाग वाले, जो रोमन शासन के सदा बाहर थे। इन्होंने उस समय अपने को अलग रखा जब ट्यूटनो का अग्रभाग नाश करने के लिए और स्वय नाश हो जाने के लिए मृतप्राय हेलेनी समाज के शरीर मे ये ट्यूटन बर्बर तलवार भोक रहे थे। इन दोनो पृष्ठभागो ने थोडी सफलता भी प्राप्त कर ली जो एकियाइयो के इतनी तो नही किन्तु ट्यूटनो से कही अधिक थी। हमारी तुलना की चार स्थितियो मे एकियाइयो के बाद ट्यूटन ही आते है। एकियाइयो ने मिनोइयो पर आक्रमण किया और एक महान् सभ्यता के निर्माण करने में सफलता प्राप्त की। ट्यूटनी अग्रभाग ने चार दिन चाँदनी पायी और विनाश करने का आनन्द उठाते रहे किन्तु कुछ विशेष लाभ न उठा सके। सुदूर पश्चिम के ईसाई और सुदूर उत्तर के वाईकिग, दोनो ने सभ्यताओं का निर्माण किया किन्तु दोनो को जब और अधिक बली सभ्यताओं का सामना करना पड़ा तो अल्पकाल मे ही वे नाश हो गये। हमने कई बार सकेत के रूप मे अकाल प्रसूत सभ्यताओ की बात कही है। हमने अपनी पहली सूची मे इन सभ्यताओ का नाम नही गिनाया क्योकि सभ्यता की सत्ता उसकी परिपक्वता प्राप्त करने मे है और ये जन्मजात ही मृत हो गयी। अब हम इस अवसर की समीक्षा करेगे।[१]

अकाल प्रसूत सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता

केल्टी किनारे के लोगो की प्रतिक्रिया ईसाइयत पर अपने विशेष ढग से हुई। जिस प्रकार गोथिको ने अरियनवाद का परिवर्तन स्वीकार किया तथा ऐग्लो-सैक्सनो ने कैथोलिकवाद स्वीकार

१. आगे के अध्याय में एक और प्रकार का वर्णन करेंगे जिसे 'अविकसित सभ्यता' (अरेस्टेड सिविलिजेशन) कहेंगे। इनकी 'शिशु मृत्यु' नहीं हो गयी, बल्कि इन्हें 'बाल पक्षाघात' (इनफेंट पैरेलिसिस) हो गया। ये सभ्यताएँ जन्मी, किन्तु जादू के जगत के शिशुओं के समान (जैसे पीटर पैन) बढ़ न सकीं।

किया उसके विपरीत केल्टो ने विदेशी धर्म को उसी रूप में स्वीकार नही किया जिस रूप में वह उनके सामने आया । इसके बजाय कि यह नया धर्म उनकी परम्पराओ पर आघात करे, इन्होने उस धर्म को अपने बर्बर सामाजिक परम्परा के अनुसार बनाया । रेनन का कहना है—'किसी दूसरी जाति ने ईसाई धर्म स्वीकार करने मे इतनी मौलिकता न दिखायी ।' रोमन शासन मे ब्रिटेन मे जो ईसाई केल्ट थे उनमें भी हम यह बात देख सकते हैं । उनके बारे मे हम बहुत कम जानते हैं किन्तु इतना मालूम है कि उनमे पेलाजियस ऐसा अधर्मी पैदा हुआ जिसने अपने समय के ईसाई ससार में हलचल पैदा कर दी । पेलाजियसवाद से भी अधिक महत्त्व की बात यह हुई कि पेलाजियस के देशवासियों तथा पेट्रिक ने रोमन ससार की सीमा के बाहर आयरलैंड मे ईसाई धर्म फैलाया ।

अंग्रेजो के समुद्र पार के जनरेला ने (ब्रिटेन पर ऐंग्लो सैक्सन आक्रमण) जिसने ब्रिटिश केल्टों को पराजित किया, आयरिश केल्टों का भाग्योदय कर दिया । उसने उस समय आयरलैंड को, ठीक उस काल के जब ईसाई धर्म का बीजारोपण वहाँ हुआ था, पश्चिमी यूरोप के उन प्रान्तो से अलग कर दिया जहाँ नयी ईसाई सभ्यता का विकास हो रहा था जिसका झुकाव रोम की ओर था । अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अलग होने के कारण 'सुदूर पश्चिमी ईसाई समाज' का अलग से प्रारम्भिक स्वरूप बनाने मे वह समर्थ हुआ । उसका केन्द्र आयरलैंड था और उसका आगमन उसी समय हुआ जब महाद्वीपी पश्चिमी ईसाई समाज का जन्म हुआ । इस सुदूर ईसाई समाज की मौलिकता उसके धार्मिक सगठन, उसकी पूजा-पद्धति तथा उसके सन्तो के जीवन-चरित से स्पष्ट है ।

सन्त पेट्रिक के मिशन के सौ साल के भीतर ही (जिसका समय ४३२–६१ ई० कहा जा सकता है) आयरिश धर्म ने अपनी विशेषताओ का ही विकास नही किया बल्कि महाद्वीपी कैथोलिकवाद से कई बातों मे आगे बढ गया था । यह बात उससे प्रमाणित होती है कि जब अलगाव का काल बीत गया आयरिश मिशनरियो और विद्वानो का ब्रिटेन तथा यूरोपीय महाद्वीप मे बडे उत्साह से स्वागत हुआ और बडे उत्साह से ब्रिटेन तथा यूरोप के विद्यार्थी आयरिश विद्यालयो मे जाते थे । यह आयरिश सास्कृतिक प्राधान्य आयरलैंड मे सन् ५४८ मे क्लानमेक्न्वाय के मठ की स्थापना तक रहा । आयरलैंड तथा यूरोप के बीच यह सास्कृतिक सचरण ही इस नवीन सपर्क का परिणाम नही था । दूसरा परिणाम शक्ति की प्रतिद्वन्दिता भी थी । निर्णय इसका होना था कि पश्चिमी यूरोप की भावी सभ्यता आयरिश स्रोत से निकले कि रोमन । और इस निर्णय मे शीघ्र ही आयरिश सास्कृतिक प्राधान्य समाप्त हो गया ।

यह झगडा सातवी शती मे सीमा पर पहुँच गया जब केंटरबरी के सन्त आगस्टीन के शिष्यो तथा आयोना के सन्त कोलम्बा के शिष्यो मे प्रतिद्वद्विता आरम्भ हुई कि नार्थम्ब्रिया के एंगिलो का धर्म परिवर्तन कौन करे । इनके प्रतिनिधियो की नाटकीय भिड़न्त व्हिटबी की परिषद् (साइनाड) (६६४ ई०) मे हुई और नार्थम्ब्रिया के राजा ने रोम के समर्थक सन्त विल्फिड के पक्ष मे निर्णय दिया । रोमन विजय उसी समय रुक गयी जब रोमन धार्मिक प्रथा पर इग्लैंड के धार्मिक समाज का संगठन करने के लिए महाद्वीप से टारसस के शियोडोर आये और केंटरबरी और यार्क के मुख्य क्षेत्रो में कार्य आरम्भ किया । अगले पचास वर्षो मे सभी केल्टी किनारे के लोग, पिक्ट, आयरिश, वेल्श तथा ब्रिटेन और अन्त में आयोना ने भी रोमन प्रणाली स्वीकार कर ली और साथ

ही रोमन ईस्टर की तिथि निकालने की विधि भी जो व्हिटबी के झगड़ों का एक विषय था स्वीकार की। और भी मतभेद थे जो बारहवीं शती तक समाप्त नही हुए।

व्हिटबी की परिषद् के बाद से सुदूर पश्चिमी सभ्यता अलग पड़ गयी और विनाश की ओर उन्मुख हो गयी। ईसा की नवी शती मे वाईकिगो के आक्रमण आयरलैंड में होते रहे और ऐसा एक भी मठ नही बचा जहाँ लूट-पाट न हुई हो। जहाँ तक पता है नवी शती मे आयरलैंड मे एक भी पुस्तक लैटिन में नहीं लिखी गयी यद्यपि इसी समय जो आयरिश भाग कर यूरोप चले गये थे उनकी विद्वत्ता चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। स्कैण्डिनेवियाई चुनौती के कारण ही इंग्लैंड और फ्रास का निर्माण हुआ क्योकि इससे इन देशो को अधिकतम स्फूर्ति प्राप्त हुई। किन्तु आयरलैंड का इसके फलस्वरूप इतना अधिक अलगाव (आइसोलेशन) हो गया कि वह केवल एक अल्पकालिक विजय आक्रमणकारियो पर प्राप्त कर सका—क्लोनटार्फ पर ब्रायनबोरू द्वारा। अन्तिम आघात उस समय हुआ जब एंग्लोनारमन एजेबिन राजा हेनरी द्वितीय ने बारहवी शती के मध्य पोप का आशीर्वाद लेकर आयरलैंड पर विजय प्राप्त की। केल्टिक किनारे के लोग अपनी निजी सभ्यता की नीव न डाल सके। उनके आत्मिक नेता के भाग्य मे यह बदा था कि उन्ही प्रतिद्वंद्वियो के ऋणी हो जो उनकी स्वतन्त्र सभ्यता के जन्मसिद्ध अधिकार को छीन रहे थे। आयरिश विद्वत्ता पश्चिमी महाद्वीपी सभ्यता के विकास मे सहायता दे रही थी। क्योकि आयरिश विद्वान् स्कैण्डिनेवियाई आक्रमण के कारण आयरलैंड से भाग कर विस्थापितो के रूप में वहाँ गये। केरोलिंजियाई पुनर्जागरण में उनकी सेवाओ से काम लिया गया। इनमे आयरिश हेलेनीवादी दार्शनिक तथा धर्मशास्त्री जोहानस स्कोटस एरिजेना निस्सन्देह सबसे योग्य व्यक्ति था।

अकाल प्रसूत स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता

हमने देखा कि पश्चिमी सभ्यता के निर्माण करने के एकाधिकार प्राप्त करने के लिए जो सघर्ष रोम तथा आयरलैंड के बीच चला उसमें रोम सम्मिलित हुआ। और जब पश्चिमी ईसाई समाज अभी नवजात ही था। उसे थोड़े ही अवकाश के पश्चात् इसी कार्य के लिए संघर्ष करना पडा। इस बार उत्तरी यूरोपीय बर्बरो से जो ट्यूटनों के सबसे पीछे की पक्ति मे थे और स्कैण्डिनेविया मे तैयार बैठे थे। इस समय परिस्थिति अधिक कठिन थी। सैनिक तथा सास्कृतिक दोनो स्तरो पर सघर्ष हुआ। दोनो विरोधी पक्ष एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली और भिन्न थे। दो शती पहले आयरिश और रोमन दल जो पश्चिमी ईसाई समाज की नीव रख रहे थे एक दूसरे से शक्तिशाली तथा भिन्न नही थे।

स्कैण्डिनेवियाइयों और आयरिशो का पश्चिमी ईसाई समाज से जो संघर्ष चला, उसके पहले का इन देशों का इतिहास, यहाँ तक समान है कि दोनो अपने भावी विरोधी से एक काल तक अलग रहे। ऐंग्लो-सैक्सन अधर्मियो (पेगन) ने इंग्लैंड मे जो अभियान किया उसके कारण आयरिश लोग अलग रहे। ईसा की छठी शती की समाप्ति के पहले अधर्मी स्लावों के बीच में आ जाने के कारण स्कैण्डिनेवियाई लोग रोमन ईसाई समाज से अलग हो गये। ये स्लाव बाल्टिक के दक्षिणी तट के नीमर से एल्ब नदी की रेखा के सीधे स्थल मार्ग पर चले और उस स्थान मे आये जो ट्यूटनी बर्बरों के हट जाने से खाली पड़ गया था। ये हेलेनियो के बाद के जनरेला मे हटे। स्कैण्डिनेवियाई लोग अपने निवास स्थान में ही रह गये। इस प्रकार आयरिश अपने ईसाई साथियों से बिछुड़

गये और स्कैण्डिनेवियाई साथियो से भी क्योंकि इनके बीच बर्बर लोग आ गये । किन्तु दोनो मे महत्त्वपूर्ण अन्तर था । एंग्लो-सैक्सन प्रवेश के पहले रोमनो ने आयरिशों मे ईसाई धर्म की चिनगारी सुलगा दी थी जो अलगाव (आइसोलेशन) के समय आग के रूप में भड़क उठी मगर स्कैण्डिनेवियाई अधर्मी बने ही रहे ।

दूसरे जनरेलों के समान स्कैण्डिनेवियाई जनरेला उस संघर्ष का परिणाम था जो एक बर्बर समाज का एक सभ्य समाज से हुआ । यह शार्लमान के साम्राज्य में हुआ । यह साम्राज्य नितान्त असफल रहा क्योकि यह केवल आडम्बर था और असमय था । यह महत्त्वाकाक्षापूर्ण राजनीतिक ढाँचा मात्र था जो अविकसित सामाजिक तथा आर्थिक नीव पर बिना उचित ध्यान दिये बना था । इसी निस्सारता का सबसे बड़ा उदाहरण है शार्लमान का सैक्सनी की विजय मे असाधारण शक्ति का प्रयोग । जब ७७२ ई० मे शार्लमान सैनिक बल पर सैक्सनी को रोमन ईसाई जगत् मे लाने चला, वह उस शान्तिमय प्रवेश की नीति का बहुत बुरी तरह उल्लघन कर रहा था जिसका पालन पिछले एक शती मे आयरिश और अग्रेजी मिशनरियो ने किया था । इस शान्तिमय नीति से इन लोगो ने बवेरियनो, थ्युरिजियनो, हेसियनो तथा फ्रीसियनो का धर्म परिवर्तन करके ईसाई जगत् की सीमा बढा दी थी । फ्रेको-सैक्सन के तीस वर्षीय युद्ध की अग्नि-परीक्षा ने नवजात पश्चिमी समाज के दुर्बल तन्तुओ को जर्जर कर दिया और स्कैण्डिनेवियाइया के हृदय में वही बर्बरी उत्साह उत्पन्न कर दिया जो कभी केल्टो के हृदय मे उभड़ा था जब आल्प्स के नीचे एट्रस्कनो का उत्साहपूर्ण बढ़ाव उन्होने रोका था ।

ईसा की आठवी तथा नवी शती मे स्कैण्डिनेवियाइयो का बढ़ाव, ईसा के पूर्व पाँचवी से तीसरी शती के केल्टो के बढाव से विस्तार मे और प्रखरता मे कही आगे था । केल्टो ने जो हेलेनी जगत् को घेरने की विफल चेष्टा की वे अपना दाहिना पक्ष स्पेन के मध्य तक ले गये और बायाँ पक्ष एशिया माइनर के मध्य तक ले गये । किन्तु यह प्रयास, वाइकिगो की सैनिक कार्यवाहियो के कारण, जिन्होने परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय पर अपने वामपक्ष द्वारा रूस मे घुसकर और दाहिने पक्ष द्वारा उत्तरी अमरीका मे घुसकर, आक्रमण किया, विफल हो गया । एक बार पुन दोनो ईसाई सभ्यताएँ उस समय खतरे मे पड़ गयी जब वाईकिग दल टेम्स पार करके लन्दन मे घुस रहे थे, सेन पार कर के पेरिस मे और बासफरस पार करके कुसतुनतुनिया मे । यह खतरा उस समय से अधिक था जब केल्ट कुछ काल के लिए रोम और मैसेडोनिया के अधिकारी बन गये थे । अकाल प्रसूत स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता, जिसका विकास आइसलैंड मे ईसाइयत के उष्ण श्वास से वहाँ के हिमखण्डो को गलाकर फैल रही थी, केल्टी सस्कृति से उपलब्धि और भविष्य की आशा में कही आगे बढ़ गयी थी । इसके अवशेष आधुनिक पुरातत्वविदो ने ढूँढ निकाले है ।[1]

जिस प्रणाली से हम अध्ययन कर रहे है उसमे स्वाभाविक है कि वही ऐतिहासिक घटनाएँ भिन्न-भिन्न सन्दर्भ मे बार-बार आयें । हमने ऊपर उस सघर्ष का वर्णन किया है जो इग्लैड और फ्रांस के लोगो को स्कैण्डिनेवियाई आक्रमण के समय करना पडा और यह भी दिखाया है कि इस

१. इसे 'लाटेने कलचर' कहते हैं । इस कारण कि इसका पहले-पहल पता, समुचित प्रमाण न्यूचेटेल झील की बाढ़ के बाद लगा ।

चुनौती में दोनो जातियो ने अपनी एकता स्थापित करके और स्कैण्डिनेवियाई अधिवासियों (सेट्लर्स) को अपनी सभ्यता में मिला करके विजय प्राप्त की। (देखिये पृष्ठ १०४) जिस प्रकार केल्टी ईसाई सस्कृति की समाप्ति पर, उसके वशजों ने रोमन ईसाई जगत् को समृद्ध किया, उसी प्रकार दो शतियों के बाद नारमन लोग लैटिन लोगो पर आक्रमणकारी नेता बने। एक इतिहासकार ने तो प्रथम धार्मिक युद्ध (क्रूसेड) को, विरोधाभास मे यह कहा है कि वह ईसाई-वाइकिंग चढ़ाई थी। हमने स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता के अविकसित जीवन मे आइसलैंड के महत्व को भी बताया है और यह भी कल्पना की कि यदि स्कैण्डिनेवियाई अधर्मी एकियाइयो के बराबर सिद्धि प्राप्त करते और ईसाइयों को भगा कर सारे पश्चिमी यूरोप में अपनी अधर्मी सभ्यता का शु दृष्टि से प्रसार करते, कि हेलेनी सभ्यता के हमी एक मात्र उत्तराधिकारी हैं तो क्या परिणाम होता ? हमें अभी यह देखना है कि स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता पर उसकी ही भूमि पर किस प्रकार विजय हुई और किस प्रकार उसका विनाश हुआ। विजय उसी समर-तन्त्र (टेक्टिक्स) से हुई जिसे शार्लमान ने त्याग दिया था। पश्चिमी ईसाई जगत् को विवश होकर अपनी रक्षा सैनिक ढंग से करनी पडी। परन्तु ज्यों ही पश्चिमी रक्षात्मक सैनिक शक्ति ने स्कैण्डिनेवियाई सैनिक आक्रमण को रोक दिया पश्चिम वालो ने शान्तिमय अभियान का ढंग पकड़ा। पश्चिम मे जो स्कैण्डिनेवियाई बस गये उनका धर्म परिवर्तन करके उनको पुराने धर्म से हटाया और यही नीति उन्होंने स्कैण्डिनेविया में जो रह गये उनके प्रति अपनायी। उसमे स्कैण्डिनेवियाइयो के एक गुण ने बडी सहायता की। वह थी उनकी ग्रहण करने वाली प्रबल शक्ति। इसे एक समकालीन पश्चिमी ईसाई विद्वान् ने कविता मे वर्णन किया है—'जो लोग उनके झडे के साथ आते है उनकी भाषा, रीति-रिवाज वे ले लेते हैं, परिणाम यह होता है कि वे एक जाति बन जाते हैं।'

यह विचित्र बात है कि ईसाई धर्म स्वीकार करने के पहले ही स्कैण्डिनेवियाई शासक शार्लमान की वीर पूजा करने लग गये थे, यहाँ तक कि अपने पुत्रो का नाम कार्ल्स या मैगनस रखने लग गये थे। उसी काल मे यदि पश्चिमी ईसाई जगत् के शासको मे मुहम्मद और उमर ईसाइयो के प्रिय नाम होने लगते तो निश्चय ही हम इस परिणाम पर पहुँचते कि इस्लाम से सघर्ष मे पश्चिमी ईसाई जगत् का भला नही होने वाला है।

रूस, डेनमार्क तथा नारवे के स्कैण्डिनेवियाई राज्यो मे तीनो स्कैण्डिनेवियाई राजाओ ने, जो समकालीन थे, दसवी शती के अन्त के लगभग मनमानी आदेश जारी कर दिया था जिससे सब लोग बलपूर्वक ईसाई धर्म मे दीक्षित कर दिये गये। नारवे में पहले इसका जोरदार विरोध हुआ किन्तु डेनमार्क और रूस मे परिवर्तन चुपचाप स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार स्कैण्डिनेवियाई समाज पराजित ही नही हुआ, विभाजित भी हो गया क्योकि हर ईसाई जगत् ने जिसने वाइकिंगों के आक्रमण का भार सहन किया था, उसके बाद के धार्मिक और सास्कृतिक प्रत्याक्रमण (कोंटर-अफैंसिव) का भी बोझ उठाया।

रूस के (स्कैण्डिनेवियाई प्रदेश के) व्यापारी अथवा राजदूत जंगलो की मूर्ति पूजा को कुसतुन-तुनिया के रमणीय अन्ध विश्वास से तुलना करते थे। उन्होने सन्त सोफिया के गुम्बद को सराहना की दृष्टि से देखा था, उन्होंने सन्तों तथा शहीदो के सजीव चित्रो को, पूजा के स्थान (आलटर) की सम्पत्ति को देखा था, पादरियों की वेशभूषा और उनकी संख्या को, उनकी पूजा तथा संस्कारों के आडंबर को देखा था, मौन तथा उसके बाद संगीतमय भजन सुनकर उनकी आत्मा का उत्कर्ष

हुआ था, और इसमें कठिनाई नहीं हुई कि उन्हें विश्वास हो जाय कि प्रतिदिन ईसाइयों का प्रार्थना में सम्मिलित होने के लिए स्वर्ग से देवदूत आते हैं।[1]

इसके बाद शीघ्र ही १००० ई० मे आइसलैड में धर्म परिवर्तन हुआ और आइसलैंडी संस्कृति समाप्त हो गयी। यह सही है कि बाद के आइसलैंडी विद्वानो ने जिन्होने सागाओ को लिपिबद्ध किया और जिन्होने एड्डाई (एड्डिक) कविताओ का संग्रह किया और स्कैण्डिनेवियाई पुराणों, (माइथा-लोजी) वंशावली, विधियों का सक्षेप बनाया उन सबमे ईसाई तथा उत्तरी सम्मिश्रण था, उन्होंने यह कार्य धर्म परवर्तन के पश्चात् पचास से ढाई सौ साल के भीतर किया था। किन्तु विद्वत्ता का विहगावलोकन आइसलैंडी प्रतिभा का अन्तिम चमत्कार था। इससे हम हेलेनी इतिहास में होमरी कविताओ के योगदान की तुलना कर सकते हैं। ये कविताएँ विहंगावलोकन की विद्वत्ता का प्रमाण थी। क्योकि होमर ने इनका साहित्यिक स्वरूप उस समय के बाद दिया जब वीरकाल, जिनसे वे उत्प्राणित हुई, बीत चुका था। परन्तु हेलेनी प्रतिभा, इन महाकाव्यो को पूरा करके उसी परिमाण के दूसरे क्षेत्रो मे कार्य करने लगी और आइसलैडी प्रतिभा अपनी 'होमरी' उपलब्धि के बाद, ११५०–१२५० ई० मे समाप्त हो गयी।

(४) ईसाई जगत् पर इस्लाम का आघात

इस अन्वेषण को समाप्त करते हुए हम यह भी देख ले कि क्या ईसाई जगत् पर इस्लाम के आघात से 'तीन स्थितियों की तुलना' का उदाहरण मिलता है, जिससे हमारे पाठक अब परिचित हो गये है। एक दूसरे सम्बन्ध मे हमने देखा है कि इस्लाम की चुनौती से अधिकतम स्फूर्ति मिली है। ईसा की आठवी शती मे इस्लाम ने फ्रंको को चुनौती दी जिसके परिणाम में अनेक शतियों तक ईसाइयो की ओर से प्रत्याक्रमण होता रहा जिसने मुसलमानो को आइबीरी प्रायद्वीप से निकाल बाहर ही नही किया, किन्तु अपने मूल अभिप्राय से अधिक स्पेनी और पुर्तगाली लोग सागर पार करके ससार के सभी देशो मे पहुँच गये। इस सम्बन्ध मे एक घटना पर हमे ध्यान देना चाहिए जिसे हम सुदूर पश्चिमी तथा स्कैण्डिनेवियाई सभ्यता के पराजय पर विचार करते हुए देख चुके है। आइबीरी प्रायद्वीप से इस्लाम के पूर्णतः निष्कासित होने के पहले मुसलिम संस्कृति से उसके विजयी विरोधियो ने वहाँ बहुत लाभ उठाया। मध्ययुगीन पश्चिमी ईसाई दार्शनिको ने जो दार्शनिक महल खड़ा किया था उसके निर्माण मे अज्ञात रूप से स्पेन के मुसलिम विद्वानो ने योग दान किया और हेलेनी दार्शनिक अरस्तू की कुछ पुस्तके पश्चिमी ईसाई जगत् मे अरबी अनुवाद द्वारा पहुँचीं। यह भी सत्य है कि पश्चिमी संस्कृति पर जो 'पूर्वी' (ओरिएंटल) प्रभाव पडा है इसका कारण यह बताया जाता है कि वह धार्मिक युद्ध करने वालों के राज्य, सीरिया के प्रदेशों से, आया किन्तु सत्य यह है कि वह मुसलिम आइबीरिया से आया।

आइबीरिया से और पिरिनीज के ऊपर से पश्चिमी ईसाई जगत् पर मुसलमानो का जो आक्रमण हुआ वह इतना प्रबल नही था जितना वह प्रतीत होता है क्योकि इस्लामी शक्ति के स्रोत दक्षिण-पश्चिमी एशिया तथा आइबीरी सीमाग्र (फ्रंट) के बीच की गमनागमन की रेखा बहुत लम्बी थी। ऐसे स्थल मिलते है जहाँ संचरण की रेखा छोटी थी और वहाँ मुसलिम आक्रमण

१. ई० गिबन : द हिस्ट्री आव द डिक्लाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर, अध्याय ५५।

बहुत तीव्र हुआ। ऐसा प्रदेश है अनातोलिया जो उस समय परम्परावादी ईसाई सभ्यता का दुर्ग था। अरब आक्रमण का पहला रूप यह देना चाहते थे कि 'रूम' को (वे रोम को रूम कहते थे) निष्कान्त कर दें और अनातोलिया पर आक्रमण करते हुए साम्राज्य की राजधानी पर विजय प्राप्त कर पश्चिमी ईसाई जगत् को धराशायी कर दें। मुसलमानों ने ६७३–७७ ई० मे और फिर ७१७–१८ में कुसतुनतुनिया को घेरा किन्तु असफल रहे। दूसरे घेरे की असफलता के बाद भी जब दोनो शक्तियों की सीमा टारस पहाड़ की रेखा मान ली गयी, मुसलमान शक्ति अनातोलिया के बचे-खुचे परम्परावादी ईसाई जगत् पर साल में दो बार आक्रमण करते रहे।

परम्परावादी ईसाई जगत् ने इस दबाव का सामना राजनीतिक युक्ति से किया। और यह प्रतिरोध देखने में तो सफल रहा क्योंकि इसके कारण अरब दूर रखे जा सके, किन्तु वास्तव में यह ठीक नही था क्योकि परम्परावादी ईसाई समाज के आन्तरिक जीवन और विकास पर इसका प्रभाव घातक था। यह युक्ति थी सीरियाई लीओ का परम्परावादी ईसाई जगत् मे रोमन साम्राज्य की 'छाया' का आह्वान। यही काम दो पीढी बाद पश्चिम मे शार्लमान ने किया था और वह असफल रहा और इस कारण उससे कोई क्षति भी नही हुई। सीरियाई लिओ की उपलब्धि का सबसे घातक परिणाम यह हुआ कि परम्परावादी ईसाई धर्म की हानि करके बाइज़ेन्टायन राज्य का उत्कर्ष हुआ। उसका फल यह हुआ कि सौ साल तक पूर्वी रोमन साम्राज्य तथा ईसाई धार्मिक सत्ता और बुलगेरियाई साम्राज्य तथा ईसाई धार्मिक सत्ता मे आपसी विनाशकारी युद्ध होते रहे। इस प्रकार परम्परावादी ईसाई समाज का विनाश अपने आप ही घातक प्रहार करने से, अपने ही घर में, अपने ही ढंग से हुआ। इन तथ्यो से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि परम्परावादी ईसाई समाज पर जो इस्लामी प्रहार हुआ उससे अत्यधिक था जो प्रहार इस्लाम का पश्चिमी ईसाई जगत् पर हुआ था।

क्या हमें ऐसा कोई उदाहरण मिल सकता है जहाँ इस्लामी आघात ने पर्याप्त रूप से कठोर न होने के कारण कोई प्रेरणा न दी हो? हाँ, आज भी इस प्रकार के आघात का परिणाम अबिसीनिया में मिलता है। इस अफ्रीकी गढ़ में जो मोनोफाइसाइट[1] ईसाई समाज मिलता है वह संसार का एक सामाजिक आश्चर्य है। इसलिए कि वह अभी तक जीवित है, और जब अरबो ने मिस्र पर विजय प्राप्त की उससे आज तेरह शतियो के बीतने पर भी सारे ईसाई समाज से वह अलग है। दूसरे यह कि उसका सांस्कृतिक स्तर बहुत नीचा है। यद्यपि ईसाई अबिसीनिया कुछ हिचकिचाहट के साथ लीग आव नेशन्स में सम्मिलित कर लिया गया, यह अपनी अव्यवस्था और बर्बरता के लिए कुख्यात था। वहाँ सामन्ती और कबीलो के झगड़े होते रहते थे और दासो का व्यापार होता था।

लाइबीरिया को छोड़कर, जिसने अपनी स्वतन्त्रता स्थिर रखी, इस एक अफ्रीकी राज्य की

१. वे लोग जो ईसा की केवल एक प्रवृत्ति मानते हैं।—अनुवादक

अवस्था ऐसी थी कि शेष अफ्रीका का यूरोपीय शक्तियों द्वारा विभाजन उचित समझा जा सकता है।[1]

विचार करने पर ज्ञात होता है कि अबिसीनिया की विशेषताएँ उसकी स्वतन्त्रता का अस्तित्व तथा उसकी संस्कृति का गतिरोध—दोनो का कारण एक ही है। ऐसी गढी में उसकी स्थिति है जो दुर्भेद्य और अश्मीभूत (फासिल) होकर स्थिर हो गयी। इस्लाम की ज्वार और पश्चिमी सभ्यता की और भी प्रखर लहरे उसके पहाड़ो के चरणो तक ही पहुँच सकी, केवल कभी-कभी उसके शिखर तक पहुँच पायी जिसे वे कभी अपने मे डुबा नही सकी।

जिन अवसरो पर विरोधी तरगो ने इस पठार की चोटी का स्पर्श किया वे बहुत क्षणिक थे और ऐसे अवसर भी कम थे। सोलहवीं शती के पहले पचासे मे अबिसीनिया को लालसागर के तट निवासी मुसलिमो से पराजित होने का भय था, जब अबिसीनिया से पहले इन्होने आग्नेयास्त्र प्राप्त कर लिया था। किन्तु ये अस्त्र, जो सोमालियो ने उसमानलियों से प्राप्त किया, अबिसीनियनो के पास पुर्तगालियो से ठीक ऐसे समय पहुँच गये कि ये नष्ट होने से अपने को बचा ले। जब पुर्तगाली यह सहायता कर चुके और अबीसीनियनों को मोनोफाइसाइटवाद से कैथोलिक ईसाई बनाने का घृणित कार्य करने लगे वहाँ ईसाई धर्म का पश्चिमी रूप एकदम दबा दिया गया और पश्चिमी आगन्तुक सन् १६३० ई० के आस-पास वहाँ से निष्कासित कर दिये। उस समय यही नीति जापान ने भी बरती थी।

सन् १६८८ का ब्रिटिश अभियान सफल हुआ किन्तु उसका कुछ परोक्ष परिणाम नही निकला, यद्यपि इसके विपरीत पन्द्रह वर्ष पहले अमरीकी जलसेना जापान का आवरण हटाने मे सफल हो गयी थी। उन्नीसवी शती के अन्त मे जब 'अफ्रीका की छीना-झपटी' चल रही थी, कोई-न-कोई अफ्रीकी शक्ति अबिसीनिया को हडपती रही और इटालियनो ने भी चेष्टा की। जो कार्य ढाई सौ साल पहले पुर्तगालियो ने किया था वही इस समय फ्रासीसियो ने किया। इन्होने सम्राट् मेनेलिक को ब्रीच-लोडिग[2] बन्दूके दी जिनकी सहायता से १८९६ मे अडोवा मे इटालियनो को उसने बेतरह हराया। जब इटालियनो ने जो जान-बूझकर एक नयी वर्बरता का विकास करके अपने को उसमे दुष्टतापूर्वक दृढ कर चुके थे—१९३५ मे अधिक दृढतापूर्वक आक्रमण किया तब क्षण भर के लिए जान पडा कि अबिसीनिया की अभेद्यता समाप्त हो जायगी और साथ ही पीड़ित पश्चिमी जगत् की नव-जनित सामूहिक सुरक्षा की आशा भी। किन्तु इथियोपिया के इटालियन साम्राज्य की घोषणा करने के चार ही साल के अन्दर मुसोलिनी को १९३९–४५ के विश्वयुद्ध मे सम्मिलित होना पडा। इसके कारण ब्रिटिश जो १९३५–३६ में लीग आव नेशन्स की रक्षा करने की भावना से अभी तक अबिसीनिया की रक्षा करने नही आये थे, १९४१–४२

१. जब यह पुस्तक लिखी गयी तबसे अफ्रीका में काफी जागरण हो गया और बहुत-से राज्य विदेशी सत्ता को हटाकर स्वतन्त्र हो गये। अबिसीनिया की भी अब वह अवस्था नहीं रही।—अनुवादक

२. अपराजेयता तथा अभेद्यता के दार्शनिक आदर्शों के सम्बन्ध में आगे देखिए।

में उन्होने अपनी रक्षा करने के अभिप्राय से अबिसीनिया के लिए वही किया जो पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों ने इससे पहले ऐसे ही संकट के समय किया था ।

ये ही चार विदेशी आक्रमण है जिनका ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद सोलह सौ वर्षों में अबिसीनिया को सामना करना पडा । इनमें पहले तीन पर इतनी जल्दी विजय मिल गयी कि उनसे किसी प्रकार की स्फूर्ति नही मिल सकती थी । नही तो इसकी अनुभूति नितान्त कोरी रही है । यह बात इस कथन को झूठ प्रमाणित कर सकती है कि वह राष्ट्र सुखी है जिसका कोई इतिहास नही है । इसका इतिहास जड़ता (अपेथी) के प्रति निरर्थक तथा नीरस विरोध के अतिरिक्त और कुछ नही है । 'अपेथी' का अर्थ मूल यूनानी भाषा मे है कष्ट अथवा अनुभूति के प्रति जड़ रहना अर्थात् स्फूर्ति की भावना न होना । १९४६ में सम्राट् हेल सेलासी तथा उसके उदार सहकर्मियो ने सुधार करने की प्रबल चेष्टा की फिर भी देखना है कि क्या चौथे विदेशी आक्रमण से, इसके पहले के आक्रमणो की अपेक्षा अधिक प्रेरणा मिलेगी ।

३

सभ्यताओं का विकास

९. अविकसित सभ्यताएँ

(१) पोलिनेशियाई, एसकिमो और खानाबदोश

अपने अध्ययन के पिछले भागों में हम इस कठिन प्रश्न का उत्तर ढूंढने का प्रयास कर रहे थे कि सभ्यताओ की उत्पत्ति कैसे हुई। किन्तु अब हमारे सामने ऐसी समस्या है जिसे लोग बहुत सरल समझ सकते हैं और सोच सकते है कि इस पर विचार करने की आवश्यकता ही नही है। एक बार एक सभ्यता जन्मी और यदि आरम्भ मे ही वह नष्ट नही हो गयी, जैसा कि उन सभ्यताओ का अन्त हुआ, जिन्हे हमने अकाल प्रसूत सभ्यताएँ कहा है, तो उनका विकास एक प्रकार स्वाभाविक घटना मानी जा सकती है। इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरे प्रश्न द्वारा बहुत अच्छा मिल सकता है। क्या यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जिन सभ्यताओ ने अपनी उत्पत्ति के समय और बचपन के समय कठिनाइयाँ झेली है, उन्होंने क्या पूरे यौवन को प्राप्त किया है। दूसरे शब्दो में क्या समय पाकर अपने वातावरण तथा जीवन की गतिविधि को वे वश में कर सकी, कि हम उन्हे उस सूची में सम्मिलित कर सकें जो इस पुस्तक के दूसरे अध्याय मे हमने दी है। इसका उत्तर है कि कुछ सभ्यताएँ ऐसी नही है। जिन दो सभ्यताओं का उल्लेख हमने किया है, अर्थात् विकसित सभ्यताएँ और अकाल प्रसूत सभ्यताएँ उनके अतिरिक्त एक तीसरी सभ्यता है—अविकसित सभ्यताएँ। ऐसी सभ्यताएँ है जिनका अस्तित्व तो है किन्तु जिनका विकास रुक गया है। इसलिए विकास की समस्या का अध्ययन हमारे लिए आवश्यक है। हमारा पहला कदम यह होगा कि हम ऐसी सभ्यताओ के सम्बन्ध मे प्राप्य सामग्री एकत्र करे और उनका अध्ययन करे।

ऐसे आधे दर्जन उदाहरण हमें आसानी से मिल सकते है। भौतिक चुनौतियो के फलस्वरूप जिन सभ्यताओं का जन्म हुआ है उनमें पोलिनेशियाई, एसकिमो तथा खानाबदोश हैं। मानवी चुनौतियो के परिणामस्वरूप जिन सभ्यताओ का जन्म हुआ है वे है परम्परावादी ईसाई जगत् मे उसमानली परिवार और हेलेनी जगत् में स्पार्टन। ये (पीछे वाली) सभ्यताएँ उस समय जब प्रचलित मानवी चुनौतियों में शक्ति स्फुरित हुई, और जब असाधारण कठोरता उनमें उत्पन्न हुई तब स्थानीय तीव्रता के कारण उत्पन्न हुई। ये अविकसित सभ्यताओ के उदाहरण है और तुरत हमें पता चल जाता है कि सब एक समान है।

ये सभी अविकसित सभ्यताएँ असाधारण शक्ति प्राप्त करने के फलस्वरूप स्थिर हो गयी। इन्हें ऐसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा जो उस सीमा पर है जिसके एक ओर विकास करने की स्फूर्ति मिलती है दूसरी ओर पराजय होती है। पहले हमने (देखिए पृष्ठ ४१-४२) जो पहाड़ पर चढ़ने वालों का दृष्टान्त दिया उनमें ये ऐसे चढ़ने वाले है जो कुछ ऊपर आये हैं और ठहर

गये हैं। वे न तो आगे बढ़ सकते हैं न पीछे लौट सकते हैं। वे शक्ति से पूर्ण किन्तु अचल हैं। और हम यहाँ पर बता दें कि जिन पाँच का हमने नाम लिया है उनमे चार को अन्त में पराजित होना पड़ा। उनमें केवल एक अर्थात् एसकिमो अभी जीवित है।

उदाहरण के लिए पोलिनेशियनों ने समुद्र-यात्रा करने में अपनी साहसपूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। ये बड़ी-बड़ी यात्राएँ उन्होंने खुली हुई क्षीण डोंगियों (कैनो) मे कुशलतापूर्वक की। उसका दण्ड उन्हें यह मिला कि अज्ञात किन्तु दीर्घकाल तक प्रशान्त सागर के विस्तृत क्षेत्र को पार तो करते रहे किन्तु कभी सरलता अथवा आत्मविश्वास के साथ उन्होंने इस सागर को पार नही किया। परिणाम यह हुआ कि इस असह्य तनाव के कारण उनमें शिथिलता आ गयी। और मिनोई तथा वाइकिंगो के समान अफीमचियो तथा अकर्मण्यो की जाति मे पतित हो गयी। सागर पर से उनका अधिकार जाता रहा और अपने-अपने द्वीप के स्वर्ग मे ये भटकते रहे और अन्त मे पश्चिमी नाविको ने उनपर आक्रमण किया। हम यहाँ इस पर विचार नहीं करेंगे कि पोलिनेशियनो का अन्त क्या हुआ क्योकि ईस्टर द्वीप के प्रसंग मे इस सम्बन्ध मे लिख दिया है (देखिए पृष्ठ ६९)।

जहाँतक एसकिमो की बात है उनकी संस्कृति उत्तरी अमरीकी इंडियनो के जीवन-यापन का विकास था और इसे उन्होने आर्कटिक सागर के तट के जीवन के अनुकूल बना लिया। एसकिमों की शक्ति का कौशल यही था कि जाडे मे बर्फ मे रहे और सीलो का शिकार करें। ऐतिहासिक प्रेरणा जो भी मिली हो, यह स्पष्ट है कि एसकिमो के पूर्वजो ने अपने इतिहास मे किसी समय आर्कटिक वातावरण का साहस के साथ सामना किया होगा और पूर्ण कौशल से संकटकाल मे अपने जीवन को परिस्थिति के अनुकूल बनाया होगा। इस कथन को पुष्ट करने के लिए उन उपकरणो की सूची मात्र गिना देनी है जिनका उन्होंने आविष्कार किया है 'कायक' (लकड़ी की हल्की डोगी जिसपर सील का चमडा लपेटा रहता है), यूमिअक (स्त्रियो की नाव), हारपून (वह भाला जिससे बड़ी-बड़ी मछलियो का शिकार होता है) पक्षियो के शिकार करने वाला तीर और निशाने वाला तख्ता, सामन मछली के शिकार करने वाला त्रिशूल, कम्पाउण्ड-धनुष जिसके ऊपर नसों को बाँधकर मजबूत बनाते हैं, कुत्ते वाला स्लेज (बर्फ पर चलने वाली बिना पहिए की गाड़ी), बर्फ पर चलने वाला जूता, जाडे मे रहने के लिए घर और बर्फ (स्नो) का घर जिसमें चरबी का तेल जलाने का लम्प होता है, चबूतरे, गर्मी के मौसम के खेमे और खाल के वस्त्र'।[1]

उनकी बुद्धि तथा इच्छा-शक्ति का यह बाहरी दिखायी देने वाला चमत्कार है, फिर भी—कुछ दिशाओं में, उदाहरण के लिए सामाजिक संगठन में एसकिमो का विकास निम्न कोटि का है। प्रश्न यह है कि यह निम्न कोटि का सामाजिक अन्तर उनके पुरानेपन के कारण है अथवा उस प्राकृतिक वातावरण के कारण तो नहीं है जिसमें एसकिमो अनन्त काल से रहते चले आये हैं। यह जानने के लिए कि इनकी सस्कृति ऐसी है कि इनकी शक्ति का बहुत बडा भाग उस

१. एच० पी० स्टीन्सबी : ऐन एन्थ्रोपोलाजिकल स्टडी आव दि ओरिजिन आव दि एसकिमो कलचर, पृ० ४३।

साधन के विकास में व्यय होता था जिसके द्वारा ये अपनी जीविका अर्जित कर सकें, एसकिमो संस्कृति के बहुत गम्भीर ज्ञान की आवश्यकता नही है[१]।'

एसकिमों ने जिस साहस से आर्कटिक वातावरण पर विजय प्राप्त की उसका उन्हें दण्ड भी भुगतना पड़ा। वह यह कि आर्कटिक प्रदेश में ऋतुओ का जो वार्षिक चक्र है उसके अनुसार उनका जीवन जड़वत् हो गया। कबीले (ट्राइब) के जितने जीविका उपार्जन करने वाले पुरुष हैं वे वर्ष की विभिन्न ऋतुओ मे विभिन्न कारोबार करते है। आर्कटिक प्रदेश की भौतिक परिस्थिति वहाँ के शिकारियों के ऊपर समय पर कार्य करने का उतना ही कठोर नियन्त्रण करती है जितना नृशंसता मनुष्य पर किसी कारखाने में 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' द्वारा होती है। वास्तव मे हम पूछ सकते है कि एसकिमो आर्कटिक परिस्थिति के दास है अथवा प्रभु। इसी प्रकार का प्रश्न हमारे सामने उस समय भी उपस्थित होगा जब हम स्पार्टनों और उसमानलियो के जीवन का अध्ययन करेगे। और इतनी ही कठिनाई उत्तर देने मे भी पडेगी। किन्तु पहले हम एक दूसरी अविकसित सभ्यता का अध्ययन करेंगे जिसे एसकिमो की भाँति भौतिक चुनौती का सामना करना पड़ा।

एसकिमो बर्फ से लड़ रहे थे और पोलिनेशियाई सागर से। इधर खानाबदोश लोगों ने स्टेप की चुनौती स्वीकार की। इन्हे भी वैसे ही दुर्दम तत्त्व से लडना पड़ा जैसा कि पहले को। स्टेप में जो घास और कंकरीला मैदान था वह (होमर के शब्दो में) 'बिना फसल काटे हुए सागर' के ही समान था। वह उस धरती से भिन्न था जिसमें हल और कुदाली चल सकती है। स्टेप और सागर की सतह इस बात में समान है कि उसपर मनुष्य केवल यात्री रह सकता है और थोड़े समय के लिए ठहर सकता है। द्वीपो और नखलिस्तानों को छोड़कर दोनो के विस्तृत पृष्ठ पर मनुष्य निश्चल होकर रह नही सकता। दोनो में इतनी सुविधा तो मिलती है कि यात्रा की जा सके और सरलता से परिवहन किया जा सके जैसा कि उन प्रदेशो में कठिन है जहाँ मनुष्य ने अपना स्थायी निवास कर लिया है। किन्तु दोनो को आर-पार करने का दण्ड देना पड़ता है, वह यह कि, या तो बराबर स्थान परिवर्तन करता रहे या उनके चारो ओर जो ठोस धरती है (टेरा फर्मा) उसके तट पर जाकर बस जाय। इस प्रकार खानाबदोश समूह मे, जो चराई के लिए गरमी और जाड़े में एक स्थान से दूसरे स्थान मे घूमते रहते है और मछुओ के समूह मे, जो ऋतु के अनुसार एक किनारे से दूसरे किनारे तक घूमते रहते है, एक प्रकार की समानता है। वे व्यापारी जो एक तट के माल को दूसरे तट पर ले जाते है और ऊँटो के कारवाँ जो स्टेप के एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाते है एक ही ढग के लोग है। सागर के डाकू और मरुभूमि के लुटेरे समान हैं। मानव के उस विस्फोटक हलचल ने, जिसने मिनोइयो अथवा नार्सों (नासमेन) को जहाजों पर जाकर लहरों को चीरकर यूरोप के तट अथवा भूमध्यसागर के पूर्वी तट पर जाने को विवश किया और जिस हलचल ने खानाबदोश अरबो, सीथियो, तुर्को अथवा मगोलो को अपने साधारण पथ को छोड़कर उसी उग्रता तथा तीव्रता से मिस्र, इराक, रूस, भारत और चीन पर धावा बोलने पर विवश किया, एक समान है।

यह देखा जायगा कि पोलिनेशियनो और एसकिमो की भाँति खानाबदोशो ने भौतिक शक्ति

१. स्टीन्स बी : वही, पुस्तक पृ० ४२।

की चुनौती का जो सामना किया वह असाधारण शौर्य का कार्य था । और दूसरी घटनाओ (केसेस) के विपरीत इस घटना में ऐतिहासिक प्रेरणा केवल अनुमान नही है । हमें इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि खानाबदोशी भी उसी प्रकार की चुनौती को उत्तेजना का परिणाम है जिस उत्तेजना ने मिस्री, सुमेरी और मिनोई सभ्यता को चेतना दी और जिसने डिनका, शिल्लुक और एक्वेटोरिया के पूर्वजों को अपना स्थान छोड़ने पर विवश किया अर्थात् सूखा पड़ा । खानाबदोशी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो सबसे स्पष्ट ज्ञान कैसपियन के पार के अनाम के नखलिस्तान में जो पंपेली अभियान हुआ था उससे प्राप्त हुआ है ।

यहाँ हम देखते है कि सूखा पडने की चुनौती ने पहले-पहल उन समुदायो को प्रेरित किया जो शिकार करके अपना जीवन-यापन करते थे । वे अनुपयुक्त परिस्थिति मे प्रारम्भिक रूप की खेती करने लगे । इस प्रमाण से पता चलता है खानाबदोशी स्थिति के पहले निश्चय ही रूप से खेती की स्थिति थी ।

खेती-बारी एक दूसरा प्रभाव है जो अप्रत्यक्ष किन्तु महत्त्वपूर्ण इन पहले के शिकारियो के सामाजिक इतिहास पर पडा । बनैले पशुओ से इनका नये प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो गया । शिकारी का कार्य ऐसा है कि विशेष परिस्थिति को छोड़कर पशुओ के पालने की कला उसे नही आ सकती । खेतिहरों के लिए बहुत अधिक सम्भावनाएँ है । शिकारी भेड़िये या सियार को जिसकी सहायता से वह शिकार करता है या जिसकी उससे प्रतिद्वंद्विता है, भले ही पाल ले किन्तु वह उस पशु को नही पालता जिसका वह शिकार करता है । शिकारी का कुत्ता नही, किसान का पहरा देने वाला कुत्ता ही वह परिवर्तन कर सकता है जिसके परिणामस्वरूप गडेरिया और उसके ढोर की रक्षा करने वाला कुत्ता उत्पन्न होता है । किसान वह अनाज पैदा करता है जिसे जुगाली करने वाले पशु जैसे बैल या भेड़ पसन्द करते हैं । उन्हें कुत्तो की भाँति शिकार का मास पसन्द नही होता ।

अनाऊ के पुरातत्वीय प्रमाणो से पता चलता है सामाजिक विकास मे यह घटना ट्रास कैसपिया मे उस समय हुई जब सूखने का दूसरा चक्र आया । जुगाली करने वाले पशुओ को पाल कर यूरेशिया के मानव ने वह गति पुन. प्राप्त कर ली जो उस समय समाप्त हो गयी थी जब वह शिकारी से किसान बना । पुरानी चुनौती के उत्तर में इस बार उसकी नयी अर्जित गति दो विभिन्न दिशाओ की ओर हुई । ट्रास कैसपिया के कुछ किसान अपनी गति को केवल आगे बढ़ाते रहे । ज्यो-ज्यो ऋतु अधिक सूखी होती जाती थी वे आगे बढ़ते जाते थे । वे ऐसी भौतिक परिस्थिति के साथ ही रहते थे कि अपने जीवन की गतिविधि बनाये रखे । उन्होंने अपने निवास-स्थान को बदला, अपनी प्रवृत्ति को नहीं बदला । किन्तु दूसरों ने इनका साथ छोड़ दिया । उन्होने इसी (सूखे पड़ने की) चुनौती का सामना दूसरे ढग से साहस के साथ किया । इन यूरेशियनो ने उन नखलिस्तानो को छोड़ दिया जहाँ रहना सम्भव नही था और अपने परिवार और अपने पशुओ तथा भेड़ो के झुण्ड को लेकर स्टेप की अनाकर्षक भूमि पर आ गये । ये भगोड़े बनकर विदेश में नही आये । इन्होने अपना मुख्य काम खेती को छोड़ दिया जैसे इनके पूर्वजों ने मुख्य धन्धा शिकार का छोड़ दिया था और नव अर्जित पशु-पालन की कला के आधार पर अपना जीवन बिताने लगे । वे स्टेप पर इसलिए नही आये कि उसकी सीमा से बाहर जायें अपितु इसलिए कि उसके अनुसार अपना जीवन बनाये । ये खानाबदोश हो गये ।

यदि हम उन खानाबदोशों की सभ्यता की तुलना, जिन्होने खेती का धन्धा छोड़ दिया और स्टेप पर बस गये, उनके उन बन्धुओं की सभ्यता से करें जिन्होंने अपना स्थान छोड़ दिया और खेती का कार्य करते रहे तो हम देखेंगे कि खानाबदोशी मे अनेक विशिष्टताएँ है। पहली बात तो यह है कि पशु-पालन पौधों के लगाने से ऊँची कला है क्योकि पशु-पालने में मानव इच्छाशक्ति तथा बुद्धि की विजय कम मर्यादा वाले जीव पर होती है। किसान से गड़ेरिया बड़ा कलाकार है। इसकी सच्चाई सीरियाई पुराण की एक कथा मे इस प्रकार है :—

"हौवा आदम की पत्नी थी, वह गर्भवती हुई और केन का जन्म हुआ ···उसका फिर एक भाई पैदा हुआ एबेल। एबेल भेडें पालता था और केन खेत जोतता था। कुछ दिनो के बाद खेत से उत्पन्न हुए अनाज को वह ईश्वर को भेट चढाने के लिए लाया। एबेल भी भेड़ों के पहले उत्पन्न बच्चो को भेट चढ़ाने के लिए लाया। ईश्वर ने एबेल की भेट स्वीकार की, केन की भेंट की ओर ध्यान नही दिया।"

खानाबदोश का जीवन मानव कौशल की सफलता है। जो कठोर घास वह स्वयं नही खा सकता उसे उसके पालतू पशु खाते हैं, और वह दूध और मास में परिवर्तित हो जाता है। और इस विचार से कि उसके पशुओ को अनुपजाऊ और कठोर स्टेप से सब ऋतुओ मे चारा मिलता है उसे ऋतुओ के चक्र के अनुरूप अपने जीवन तथा गति को सावधानी से बनाना पडता है। वास्तविक यह है कि खानाबदोशी के लिए बहुत ऊँचे चरित्र और आचार की आवश्यकता है और जिस कठिनाई का सामना खानाबदोश को करना पडता है वह वैसी है जैसी एसकिमो की। जिस कठोर परिस्थिति पर उसने विजय प्राप्त की उसी ने धोखे से उसे दास बना लिया। एसकिमों की भाँति खानाबदोश भी वार्षिक ऋतु तथा वानस्पतिक चक्र के दास हो गये हैं। स्टेप में नेतृत्व ग्रहण किया उन्होने, किन्तु ससार मे नेतृत्व ग्रहण करने योग्य नही रह गये। सभ्यता के इतिहास के पन्नो मे उनका चिह्न अवश्य मिलता है। समय-समय पर अपने क्षेत्र को छोड़कर पड़ोस की शिथिल सभ्यताओं पर उनका धावा हुआ और कभी-कभी क्षणिक सफलता भी उन्हे मिली किन्तु ये धावे अपनी इच्छा से नहीं हुए। जब खानाबदोश लोग स्टेप छोड़कर किसानो की भूमि पर आये, उन्होंने जान-बूझकर अपने अभ्यास के ऋतु-चक्र को नही छोड़ा। वे मशीनवत् किसी ऐसी शक्ति से प्रेरित होकर आये जिस पर उनका वश न था।

ऐसी दो बाहरी शक्तियाँ हैं जिनके वे दास हैं—एक शक्ति जो उसे दाबती है, दूसरी जो उसे खीचती है। कभी-कभी बहुत सूखा पड़ने से उसे दबकर स्टेप से बाहर निकलना पड़ता है जब उसके पुराने निवास मे उसका रहना उसकी सहन-शक्ति के बाहर हो जाता है, और कभी-कभी उसे स्टेप से बाहर इसलिए जाना पड़ता कि उसके निकट सामाजिक शून्यक (वैकुअम) में जो किसी ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण शिथिल समाज में बन जाता है वह खिच जाता है। जैसे जब शिथिल सभ्यता के विघटन के कारण जनरेला होता है। ये कारण खानाबदोशों के अपने अनुभवो के बाहर की बाते है। यदि यह सर्वेक्षण किया जाय कि कब-कब खानाबदोशो ने शिथिल समाज के इतिहास मे हस्तक्षेप किया है तो सभी हस्तक्षेपो का कारण इन्हीं में मिलेगा।[1]

१. ट्वायनबी ने इसी आधार पर विस्तृत खोज की है और इस अध्याय के बाद एक लम्बी सूची दी है, जो यहाँ नहीं दी जा सकती।—सम्पादक

यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं में खानाबदोशों ने हस्तक्षेप किया है, फिर भी इनके समाज का कोई इतिहास नहीं है। एक बार जब वह अपने वार्षिक कक्ष में आ गया खानाबदोशों का गिरोह अनन्तकाल तक उसमें घूमता रह जाय, यदि कोई ऐसी बाहरी शक्ति उसपर अपना प्रभाव न डाले जिसके विरोध में खानाबदोशों का वश नही चलता, और जो इस गिरोह की गति को समाप्त करके उसके जीवन को समाप्त न कर दे। यह शक्ति उस शिथिल सभ्यता का दबाव है जो खानाबदोशो के गिरोह को चारो ओर से घेरे है। क्यों ईश्वर एबेल तथा उसकी भेंट का सम्मान करे और केन का न करे कोई शक्ति ऐसी नही है जो केन को एबेल की हत्या करने से रोक सके।

आधुनिक मौसम विज्ञान सम्बन्धी खोजो से पता चला है कि अपेक्षाकृत सूखे और नम ऋतुओ में विश्व भर में लय (रिघ्म) के समान परिवर्तन होता रहता है। जिसके कारण किसान कभी एक क्षेत्र में, कभी दूसरे क्षेत्र मे प्रवेश किया करते हैं। जब सूखा इस दर्जे पर पहुँच जाता है कि खानाबदोशों के पास जितना ढोर है उसे उसके लिए चारा नही मिलता तो ये पशुपालक अपने वार्षिक अभ्यस्त पथ को छोड़कर अपने निकट के उन देशो में घुस पड़ते हैं जहाँ उनके तथा उनके पशुओ के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री मिल जाती है। इसके विपरीत जब इतनी तरी हो जाती है जब स्टेप मे बोये हुए धान्य और मूल (रूट) वाली खाद्य सामग्री उपजने लगती है तब किसान खानाबदोशो पर जवाबी हमला कर देते हैं। उनके आक्रमण के ढग एक समान नही होते। खानाबदोशो का आक्रमण रिसाले (केवेलरी) की भाँति आकस्मिक आवेग से होता है। किसानो का आक्रमण पैदल सेना की भाँति धीरे-धीरे बढ़ता है। हरएक कदम पर यह फावड़े से अथवा भाप वाले हल से खोदता जाता है और सड़क तथा रेल का निर्माण करके अपने सचारण व्यवस्था को दृढ़ करता जाता है। खानाबदोशो के हमले का सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण तुर्कों और मगोलों का आक्रमण है जो एक को छोड़ सबसे अन्तिम सूखा के युग मे हुआ था। किसानो के आक्रमण का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जब रूस पूरब की ओर बढा। दोनों प्रकार के आक्रमण असाधारण हैं और जिस पर आक्रमण होता है उसके लिए दुखदायी है। किन्तु एक बात मे दोनो समान हैं कि वे ऐसी भौगोलिक परिस्थिति के कारण होते है जिन पर नियन्त्रण नही हो सकता।

खानाबदोशों के बर्बर तथा आकस्मिक आक्रमण की अपेक्षा किसान का आक्रमण समय पाकर आक्रान्त देश को अधिक कष्टकर होता है। मंगोलो के आक्रमण दो-तीन पीढ़ियो मे समाप्त हो गये किन्तु उनके बदले में रूसियों ने जो उपनिवेशन (कोलोनाइजेशन) आरम्भ किया वह चार सौ साल तक चलता रहा—पहले कजाक पंक्ति के पीछे जो उत्तर के चराई के मैदान के चारों ओर थी, फिर ट्रासकैसपियन रेलवे के किनारे जिसकी शाखाएँ दक्षिणी सीमा पर चारो ओर फैली हुई हैं। खानाबदोश की दृष्टि में रूस के समान किसानो की शक्ति उस दबाने वाले बेलन की मशीन की भाँति है जिसके द्वारा पश्चिमी उद्योगवाद अपनी रुचि के अनुसार गर्म स्टील को ढालता है। उस दबाव में खानाबदोश या तो दबकर नष्ट हो जाता है या उस ढाँचे में निर्जीव वस्तु ढलकर निकलता है। प्रवेश की विधि भी सदा शान्तिपूर्ण नही होती। ट्रांसकैसपियन रेलवे की सड़क गोकटेप के तुर्कमेनों की हत्या करके बनी थी। परन्तु खानाबदोशो की मृत्यु की चीख शायद ही कभी सुनी जाती हो। यूरोपीय युद्ध में जब इंग्लैंड इस खोज में संलग्न था कि उसमानिया तुर्की के खानाबदोशों के पूर्वज कौन थे जिससे पता चले कि छः लाख आरमीनियाइयों के हत्यारे कौन थे, किरगिज-कजाक संघ के तुर्की बोलने वाले पाँच लाख मध्य एशिया के खानाबदोशों

का विनाश किया जा रहा था, और यह भी ऊपर की रूसी मुजाहक की आज्ञा से जो 'सबसे न्याय प्रिय मानव' कहा जाता था ।[१]

यूरेशिया में खानाबदोशों का विनाश सत्रहवी शती मे उसी समय से निश्चित था जब दो स्थावर (सिडेंटरी) साम्राज्य मसकोवी और मंचू ने अपनी-अपनी बाँहें यूरेशियाई स्टेप की दो विपरीत दिशाओ से फैलायी । आज जब हमारी पश्चिमी सभ्यता ने अपनी बाँहें विश्व के चारो ओर फैला रखी है, उन खानाबदोशो को उनके अपने प्राचीन निवासो से निकालने का कार्य पूरा कर रही हैं । केनया में मसाई चरागाहों को साफ करके यूरोपीय किसानो के लिए स्थान बनाया गया है । सहारा मे इमोशाग जो अपने रेगिस्तानी भूमि को अगम्य समझते थे, आज देखते है कि हवाई जहाज और आठ पहिए वाली लारियाँ उनमें घुस रही हैं । अरब में भी, जो अफ्रेसियाई खानाबदोशो का पुराना निवास स्थान था आज बद्दुओ को फलाहीन (किसान) बनाया जा रहा है । और यह भी किसी विदेशी द्वारा नही बल्कि अरबो के अरब नज्द और हजाज के बादशाह मुसलमान विशुद्धवादी (प्युरिटन) वहाबियों के सरदार अब्दुल अजीज अल साऊद की निश्चित नीति के अनुसार । जब वहाबी अधिपति अरब के केन्द्र मे ही अपनी शक्ति को बख्तरबन्द गाडियो (आरमर्ड कार) की सहायता से दृढ़ कर रहे हैं और अपनी आर्थिक समस्याओ को पेट्रोल पम्पो, पताल तोड कूओं से तथा अमरीकी तेल की कम्पनियो को सुविधा प्रदान करके सुलझा रहे है तब यह स्पष्ट है कि खानाबदोशी का अन्तिम समय आ गया ।

इस प्रकार एबेल को केन ने मार डाला और हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि केन का अभिशाप हत्यारे पर पड़ा । समुचित रूप से पड़ रहा है । 'अब मुझे पृथ्वी का अभिशाप मिला है जिसने तेरे हाथों से तेरे भाई का रक्तपात करने के लिए अपना मुंह खोला है । जब तू खेत को जोतेगा, आज से तुझे उसकी शक्ति नही प्राप्त होगी, पृथ्वी पर तू आवारा घूमा करेगा ।'[२]

केन के शाप का पहला भाग तो बिना प्रभाव के रहा । क्योंकि यद्यपि नखलिस्तान मे खेती करने वाला सूखी स्टेप से उपज नही प्राप्त कर सका, वह ऐसे प्रदेशो मे चला गया जहाँ का जलवायु अनुकूल था । वहाँ से उद्योग की प्रेरणात्मक शक्ति लकर वह लौटा और अपनी तथा एबेल के चरागाह का दावेदार हुआ । अभी देखना है कि केन इस उद्योगीकरण का जिसका उसने निर्माण किया है मालिक होगा कि दास । सन् १९३३ मे जब विश्व की नयी आर्थिक व्यवस्था के ह्रास होने और नष्ट हो जाने की आशका थी यह असम्भव नही था कि एबेल की हत्या का बदला पूरा हो जाता और जो खानाबदोश मृतप्राय था वह जीवित रहता और देखता कि हमारा हत्यारा विक्षुब्ध होकर शिओल के पास जाता ।[३]

(२) उसमानली वंश

इतना उन सभ्यताओ के सम्बन्ध मे कहा गया है जिनकी सभ्यता भौतिक चुनौती के प्रति

१. ए० जे० ट्वायनबी : द वेस्टर्न क्वेस्चन इन ग्रीस एण्ड टर्की, पृ० ३३६–४२ ।

२. जेनेसिस ४, ११–१२ ।

३. यदि ट्वायनबी सन् १९४५ में लिखते होते, जब कि यह सम्पादक लिख रहा तो इस विवरण में केवल सन् के ही परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती ।—सम्पादक

असाधारण शक्ति का प्रयोग करने के फलस्वरूप अविकसित रह गयी। अब हम उन पर विचार करेंगे जिन्हें भौतिक नहीं, मानवी चुनौती का सामना करना पड़ा।

जिस महान् चुनौती का परिणाम उसमानिया प्रणाली से उत्पन्न हुई, वह थी खानाबदोशो का अपने स्टेप के निवास स्थान से नये स्थान पर जाना। उनके सामने ही यह समस्या भी थी कि नये मानव समाज पर शासन करना। हमने पहले देखा है कि किस प्रकार आवार खानाबदोश जब अपने स्टेप के चरागाह से निर्वासित हुए और साधनहीन प्रदेश मे फँस गये। तब उन्होंने जिन आलसी लोगों पर विजय पायी थी उनके साथ ऐसा व्यवहार करने की चेष्टा की जैसा या तो वे मनुष्यों के ढोर थे या भेड़ो के गड़ेरिये के बजाय उन्होंने अपने को मनुष्यों का गड़ेरिया बनाने का प्रयत्न किया। पशुओ को पाल कर उनके माध्यम से स्टेप की घास को अपने भोजन मे परिवर्तन करने के स्थान पर आवारो ने (दूसरे खानाबदोशो ने भी ऐसा ही किया है।) उपजाऊ धरती से भोजन उत्पन्न किया। स्टेप पर वे पशुओं के मास को खाते थे जो घास पचकर बनता था अब वह पाचन के माध्यम से नही विजित मनुष्यो से परिश्रम कराकर उनके उपजाये अन्न को खाते थे। यह तुलना किसी सीमा तक ही ठीक बैठती है, परीक्षा करने पर इसमे एक बड़ा दोष मिलता है।

स्टेप पर खानाबदोशों तथा पशुओ का जो समाज है वह वैसी भौतिक परिस्थिति मे रहने के बहुत ही उपयुक्त है। और खानाबदोश वास्तव मे अपने अमानव साथियो अर्थात् पशुओ के प्रति परजोवी (पैरेसाइट) नही है। वहाँ एक दूसरे से लाभ उठाते हैं। पशु दूध ही नही अपने मास से खानाबदोशो की सहायता करते है, खानाबदोश भी अपने पशुओ के चारे का प्रबन्ध करते रहते है। एक दूसरे की सहायता बिना दो मे से एक भी अधिक दिनो तक जीवित नही रह सकता था। किन्तु खेतो तथा नगरों के वातावरण में स्टेप से निर्वासित खानाबदोशो और स्थानीय 'मानव ढोरों' का समाज आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त है। क्योकि इन मानवो के गड़ेरिये आर्थिक दृष्टि से भले ही नही, राजनीतिक दृष्टि से बेकार है, इसलिए परजीवी है। आर्थिक दृष्टि से ये गड़ेरिये नही रह जाते जो अपने ढोर की देख-रेख करें। ये नर-मधुमक्खी (ड्रोन) की भाँति अकर्मण्य हो जाते हैं और परिश्रमी मक्खियो का शोषण करते है। ये अन्न-उत्पादक शासक वर्ग बन जाते है जो उत्पादक जनता के परिश्रम पर जीते हैं। और यदि वे न होते जो जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी होती।

इस कारण खानाबदोश विजेताओ ने जितने साम्राज्य स्थापित किये वे सब जल्दी ही नष्ट होने लगे और उनकी असामयिक मृत्यु हो गयी। महान् मगरिबी इतिहासकार इब्नखल्दून (१३३२–१४०६ ई०) खानाबदोशी साम्राज्यों को ध्यान मे रखे हुए था जब उसने हिसाब लगाया कि साम्राज्यों की आयु तीन पीढ़ी अर्थात् एक सौ बीस वर्ष से अधिक नही होती। एक बार जब विजय प्राप्त कर ली तब खानाबदोश विजेता का क्षय होने लगता है। वह अपने तत्त्व से बाहर हो जाता है और आर्थिक दृष्टि से बेकार हो जाता है। इसके विपरीत उसके मानवी ढोर शक्ति अर्जित करते है क्योंकि वे अपनी ही धरती पर रहते है और आर्थिक दृष्टि से उत्पादक बने रहते है। ये 'मानवी पशु' अपने गड़ेरिया अधिकारियों को निष्कासित करके

अथवा उन्हे अपने में मिलाकर अपने मनुष्यत्व को स्थापित करते है । स्लावो पर आवारों का राज्य पचास वर्षों से कम रहा और इसने प्रमाणित कर दिया कि स्लावो का निर्माण हुआ और आवारों का विनाश । पश्चिमी हूणो का साम्राज्य केवल एक व्यक्तिअटिला के जीवन कालतक रहा । ईरान तथा इराक में मंगोल के खानो का साम्राज्य अस्सी साल से कम रहा और दक्षिणी चीन में भी खानों का साम्राज्य इससे अधिक नही रहा । मिस्र मे हाइक्सो (गडेरिया राजे) का साम्राज्य कठिनाई से सौ साल रहा होगा । ये अपवाद अवश्य थे कि उत्तरी चीन पर मंगोल तथा उनके पूर्वज किन दो सौ साल (११४२–१३६८ ई०) से अधिक शासन करते रहे और ईरान तथा इराक पर पार्थियन साढे तीन सौ साल से अधिक (१४० बी०सी०—२२६।२३२ ई०) तक राज्य करते रहे।

इस तुलना के मानक (स्टैंडर्ड) से परम्परावादी ईसाई जगत् पर उसमानिया साम्राज्य अद्वितीय था । यदि हम इस साम्राज्य की स्थापना सन् १३७२ ई० मे मैसेडोनिया की पराजय से माने और उसके विनाश का आरम्भ सन् १७७४ ई० मे कुचुक—किनार्जी की रूसी-तुर्की सन्धि से माने और उसके उत्कर्ष और अपकर्ष के समय को छोड दे तो लगभग चार सौ साल होते है इसके इतने दिन तक रहने का क्या कारण है । इसका कुछ कारण तो यह है कि उसमानली वश, यद्यपि आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त था, उसने एक राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति की कि परम्परावादी ईसाई जगत् को सार्वभौम राज्य मे परिवर्तित किया, जो यह स्वय बनने मे असमर्थ था । किन्तु दूसरे कारण मिल मकते है ।

हमने देखा है कि आवार तथा उनके समान और खानाबदोश जातियां जब रेगिस्तान से उपजाऊ जमीन पर आती है तब वे 'मनुष्यो के गडेरिया' बनने की चेष्टा करती है किन्तु असफल रहती हैं । उनकी असफलता से हमें आश्चर्य नही होता क्योकि ये असफल खानाबदोश जिन्होने उपजाऊ धरती पर अपना साम्राज्य स्थापित किया, मानवो के रूप मे कोई ऐसा साथी बनाने की चेष्टा नही की जैसा साथी उन्हे स्टेप मे मिला था । स्टेप मे केवल मनुष्य-गडेरिये और उनका ढोर ही नही रहता । उन पशुओ के अतिरिक्त जिन पर वह अपना जीवनयापन करता है, और पशु भी वह रखता है जैसे कुत्ता, ऊँट और घोडा जो उसे उसके कार्य मे सहायता देते है । ये सहायक पशु खानाबदोशी सभ्यता की मुख्य शक्ति है और उनकी सफलता की कुजी । भेड और गाय को मनुष्य के लाभ हेतु बनाने के लिए पालना पडता है यद्यपि इसमे कठिनाई होती है । कुत्ते, ऊँट और घोड़े को काम के लायक बनाने के लिए उन्हे पालना ही नही पड़ता, प्रशिक्षित करना पड़ता है । मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे जीवधारियो को प्रशिक्षित करना खानाबदोशो की बहुत बड़ी सफलता है । इसी खानाबदोशी कला को स्थावर परिस्थितियो के अनुरूप बनाने मे उसमानिया साम्राज्य और आवार साम्राज्य मे अन्तर है । और इसी के कारण उसमानिया साम्राज्य अधिक टिका । उसमानिया बादशाहों ने दासो को मानवी सहायको के रूप में प्रशिक्षित किया जिससे अपने साम्राज्य की रक्षा की और उन्ही की सहायता से 'मानव-पशुओ' में सुव्यवस्था रखी ।

दासो से सैनिक और शासक बनाने की अद्भुत प्रथा जो खानाबदोशों की प्रतिभा के अनुकूल है और हम लोगो के प्रतिकूल, उसमानियो की खोज नहीं थी । यह बात हम दूसरे खानाबदोश

साम्राज्यो में भी पाते है जो उन्होने स्थावर जातियो पर स्थापित किया था । और यह प्रथा उन्हीं में पायी जाती है जो अधिक दिनों तक टिके ।

पार्थियन साम्राज्य में भी दास-सैनिको का आभास मिलता है क्योंकि एक सेना ने जिसने मार्क एन्तनी की सिकन्दर महान् के नकल करने की महत्त्वाकाक्षा को पूरा होने नही दिया उसमें ५०,००० कुशल सैनिको मे ४०० स्वतन्त्र नागरिक थे । इसी प्रकार और इसी ढंग पर अब्बासी खलीफो ने स्टेप से तुर्की दासो को खरीद कर और उन्हे अच्छे सैनिको तथा शासको में प्रशिक्षित कर अपने अधिकार को सुरक्षित रखा । कारडोवा के उम्मयी खलीफा ने अपने पडोसी फ्राको से दासो को लाकर शरीर रक्षक नियुक्त किया । फ्राक लोग अपने सामने के फ्राकी राज्यो से लोगो को पकड कर लाते थे और कारडोवा के दासो को बाजार मे बेचा करते थे । जो बर्बर इस प्रकार पकड कर लाये जाते थे वे स्लाव होते थे, इसी से अग्रेजी भाषा मे 'स्लेव' (दास) की उत्पत्ति हुई ।

इसी प्रकार का एक और विख्यात उदाहरण मिस्र मे ममलूको का शासन है, अरबी में ममलूक का अर्थ है 'अधिकृत', जिसपर अधिकार हो । ममलूक पहले-पहल उस वश के दास थे जिसे अयूबी सलादीन ने चलाया था । सन् १२५० ई० मे ये दास अपने मालिको से स्वतन्त्र हो गये और अयूबी दास प्रथा को स्वय व्यवहार मे लाने लगे । ये भी बाहर से दास खरीदा करते थे । कठपुतली खलीफा के पीछे यही दासो का घराना मिस्र और सीरिया पर शासन करता रहा और सन् १२५० से १५१७ तक पराक्रमी मगोलो को फरात की रेखा तक रोके रखा, जब उन्ह उनसे भी बली उसमानलियो के दास परिवार ने पराजित किया । परन्तु इस समय भी उनका अन्त नही हुआ क्योंकि मिस्र मे उसमानिया शासन के समय भी उन्हे इसी प्रकार दासो के खरीदने और उन्हे प्रशिक्षित करने की छूट थी । जब उसमानिया शक्ति का ह्रास होने लगा, ममलूको ने अपने को फिर शक्तिशाली बना लिया और अठारहवी शती में मिस्र के उसमानिया पाशा ममलूको के उसी प्रकार राजबन्दी हो गये जैसे तुर्की विजय के पहले कैरीन अब्बासी खलीफे थे । ईसा की अठारहवी और उन्नीसवी शती मे यह प्रश्न विचारणीय हो गया कि मिस्र का उसमानिया वशज ममलूको के हाथ मे जायगा कि किसी यूरोपीय शक्ति के—नैपोलियन वाले फ्रास के अथवा इग्लैड के । अलबानिया के एक मुसलिम मुहम्मद अली ने अपनी प्रतिभा के बल पर दोनो सम्भावनाओ को समाप्त कर दिया । किन्तु उसे ममलूको के नियन्त्रण करने मे उससे अधिक कठिनाई हुई जितनी अंग्रेजो अथवा फ्रासीसियो को दूर रखने मे हुई । उसने अपनी योग्यता और नृशंसता से और यूरेशियाई तथा काकेशियाई जनबल को लेकर इन दासो की सेना को नष्ट किया जिन्होने पाँच सौ साल से अधिक तक मिस्र की विदेशी भूमि पर अपने को जीवित रखा ।

अनुशासन में तथा संगठन मे ममलूक दास घराने से कही अधिक श्रेष्ठ वह बाद का दास घराना था जिसे उसमानिया वश ने परम्परावादी ईसाई जगत् पर शासन करने के लिए स्थापित किया था । खानाबदोशी विजेता के लिए यह बहुत कठिन कार्य था कि किसी विदेशी सभ्यता के सारे समाज पर शासन स्थापित करें । किन्तु इस साहसी कार्य के कारण उसमान और उनके वंश में सुलेमान महान् तक (१२५०–६६ ई०) इन खानाबदोश शासकों को अपने सामाजिक गुणों को पूर्ण रूप से व्यवहार मे लाना पड़ा ।

एक अमरीकी विद्वान् ने उसमानिया दास घरानो की इन विशेषताओ के अध्ययन को इन शब्दों में व्यक्त किया है ।[1]

उसमानिया राज्य-व्यवस्था मे ये तो सम्मिलित थे । सुलतान और उनका परिवार, उनके घर के कर्मचारी, शासन से कार्यकारी (एकजिक्यूटिव) अफसर, पैदल तथा रिसाला सेना, अनेक युवक जिन्हें सेना मे कार्य करने के लिए शिक्षा दी जाती थी, दरबार और शासन । ये लोग तलवार, लेखनी और दण्ड के आधार पर शासन करते थे । न्याय को छोडकर जो शरीयत के नियमों द्वारा होता था और थोड़े उन कार्यों को छोडकर जो विदेशी गैर-मुसलिम प्रजा के हाथो में था, शासन का सारा कार्य ये चलाते थे । गैर-मुसलिम शासन व्यवस्था की विशेषता यह थी कि इसमें कुछ अपवादो को छोड़कर वही लोग थे जो ईसाइयों के वशज थे, दूसरी बात यह थी कि इस संस्था का प्रत्येक सदस्य सुलतान का दास होकर आता था और चाहे वह धन, प्रतिष्ठा और शक्ति में कितना भी महान् हो जाय, जीवन भर वह सुलतान का दास ही रहता था । 'राज परिवार भी दास परिवार मे ही था (क्योंकि) सुलतान की सन्तानो की माता दासी होती थी—सुलतान स्वय दास का पुत्र होता था । सुलेमान के समय से, बहुत पहले से, सुलतानो ने राजघरानों मे विवाह करना बन्द कर दिया था, अपनी सन्तानो की माता को पत्नी का नाम नही दिया करते थे । उसमानिया व्यवस्था मे जान-बूझकर दासो को राज का मन्त्री बनाया जाता था । चरवाहो और हलवाहों को वे लाते थे और उन्हे दरबारी बनाते थे और अपनी राजकुमारियों का पति । वे ऐसे युवको को लाते थे जिनके पितामह सैकड़ो वर्षों से ईसाई थे और बड़े-बडे इस्लामी प्रान्तो का उन्हे शासक बनाते थे और अजेय सेना में उन्हे सैनिक तथा सेनापति बनाते थे जो ईसाइयो को हराकर इस्लाम का झण्डा ऊँचा करने मे अपना गौरव समझते थे । उन मौलिक आचारो को, जिन्हे हम 'मानवी प्रकृति' कहते है, बिलकुल परवाह न करके, तथा उन धार्मिक तथा सामाजिक आग्रहों की भी (प्रिजुडिसेज) जिनकी गहराई उतनी होती है जितनी जीवन की, उपेक्षा करके उसमानिया व्यवस्था मे बच्चों को माता-पिता से सदा के लिए अलग कर दिया जाता था । उन्हे जीवन के क्रियाशील काल मे परिवार की चिन्ता से निवृत्त कर दिया जाता था । वे अपने पास किसी प्रकार की सम्पत्ति नही रख सकते थे । यह भी उन्हे वचन नही दिया जाता था कि उनकी सन्तानो को इन दासो की सफलता तथा त्याग का फल मिलेगा । इस बात की परवाह न करके कि इनके पूर्वज कितने बडे थे अथवा इनमे क्या पहले की विशेषता है, वे उन्नत या अवनत कर दिये जाते थे । उनको विचित्र विधियाँ, नीतियाँ तथा धर्म की शिक्षा दी जाती थी । और इस बात का उन्हे सदा ध्यान दिलाया जाता था कि उनके सिर पर तलवार लटक रही है जो किसी समय किसी अद्वितीय व्यक्ति अथवा विशिष्ट जीवन को भी समाप्त कर सकती है ।

शासन में से स्वतन्त्र उसमानिया रईसो को अलग रखना इस तन्त्र की विचित्र व्यवस्था थी किन्तु परिणाम से इसका औचित्य सिद्ध हुआ । क्योंकि जब सुलेमान के राज्य के अन्तिम दिनों

१. ए० एच० लाइबाइयर : द गवर्नमेन्ट आव दि आटोमन एम्पायर इन द टाइम आव सुलेमान द मैग्निफिसेंट,—पृ० ३६, ४५–४६, ५७–५८ ।

में स्वतन्त्र मुसलिम लोग शासन में जबरदस्ती घुसे, राज व्यवस्था तहस-नहस होने लगी और उसमानिया साम्राज्य का विनाश आरम्भ हो गया।

जब तक पहले वाली व्यवस्था अक्षुण्ण थी और मुसलिम स्रोतो से रँगरूट आते रहे। विदेशों से युद्ध में बन्दी बनाकर, या दासों को बाजार से खरीदकर अथवा अपनी इच्छा से दासों की भर्ती होती रही। कभी-कभी अपने राज्य में ही जबरदस्ती भर्ती की जाती थी। रँगरूटो को बहुत विस्तार से शिक्षा दी जाती थी और प्रत्येक स्तर पर विशेषज्ञता का प्रशिक्षण होता था। अनुशासन कठोर होता और दण्ड भी क्रूर। किन्तु सदा प्रोत्साहित किया जाता था कि वे अपनी महत्त्वाकाक्षा को पूरा कर सकते है और ऐसा करे। हर एक युवक जो उसमानिया बादशाह के दास परिवार में सम्मिलित होता था जानता था कि मै किसी समय प्रधान मन्त्री हो सकता हूँ और मेरा भविष्य मेरी शक्ति और योग्यता पर निर्भर है।

इस शिक्षा प्रणाली का विस्तृत तथा सजीव वर्णन बेलजियम के विद्वान् तथा राजनीतिज्ञ ओजियर गिसेलिन डिबल्सबेने किया है। यह सुलेमान महान् के दरबार मे राजदूत थे। इनका वर्णन उसमानलियों की जितनी प्रशंसा करता है उतना ही पश्चिमी ईसाई जगत् की निन्दा।

वह लिखते है—'मै तुर्कों की इस प्रथा से ईर्ष्या करता हूँ। तुर्कों का सदा यह स्वभाव रहा है कि जब कभी उन्हे ऐसा व्यक्ति मिल जाता है जिसकी योग्यता असाधारण होती तब वे उतने ही प्रसन्न होते हैं मानो उन्हें बहुमूल्य मोती मिल गया है। और उसकी जो कुछ योग्यता होती है और जो रुचि होती है उसके परिष्कार के लिए कुछ भी उठा नही रखते, विशेषतः यदि उसमे सैनिक गुण हो। हम पश्चिम वालो का सचमुच भिन्न ढग है। पश्चिम मे यदि अच्छा कुत्ता, या बाज (पक्षी) या घोड़ा हमे मिल सकता है तो हम बहुत प्रसन्न होते हैं और उसे अधिक से अधिक पटु बनाने के लिए जो कुछ भी बन पड़ता है करते हैं। जहाँतक मनुष्य का प्रश्न है, मान लीजिए कि हमे विशेष योग्यता का व्यक्ति मिल गया, तो हम समझते हैं कि उसे शिक्षित करना हमारा काम नही है। हम पश्चिम वाले घोड़े, कुत्ते या बाज को प्रशिक्षित करके अनेक प्रकार के आनन्द उठाते है और तुर्क मनुष्य के गुणो से, जिसका आचार और चरित्र शिक्षा से परिष्कृत किया गया है, और जिसके कारण वह पशु से बहुत ऊँचा तथा श्रेष्ठ बनता है लाभ उठाते हैं।'[1]

आगे चलकर यह प्रथा नष्ट हो गयी क्योकि सभी चाहते थे कि अधिक से अधिक सुविधा हमें मिले। ईसा की सोलहवी शती के अन्त मे जानिसारी[2] सेना में हबशियो को छोड़कर सब स्वतन्त्र मुसलमानों की भर्ती होने लगी। संख्या बढ़ गयी। साथ ही अनुशासन और दक्षता घटने लगी। सत्रहवी शती के बीच ये मानवी रक्षक-कुत्ते 'प्रकृति की ओर लौट गये' और भेड़िये हो गये जो बादशाह के मानवी ढोरों की रक्षा करने के बजाय उन्हें तग करने लगे। परम्परावादी ईसाई प्रजा को, जिसने उसमानिया शासन को स्वीकार कर लिया था अब धोखा हुआ कि हमने इनसे सुलह कर ली थी। सन् १६८२–९९ में जब उसमानिया साम्राज्य और पश्चिमी ईसाइयो में

१. ओ० जो० बसबेक : लैटिन की पुस्तक जिसमें तुर्कों की सैनिक संस्था का वर्णन है।
२. तुर्की के सुलतान की पैदल सेना। —अनुवादक

महायुद्ध हुआ, उसमानिया प्रदेश का एक टुकड़ा ईसाइयों ने जीत लिया और यह जीत का सिलसिला १९२२ ई० तक जारी रहा। उसमानिया अनुशासन तथा दक्षता पश्चिम की ओर निश्चयरूप से चली गयी।

उसमानिया दास घराने की व्यवस्था नष्ट हो जाने से एक बात प्रकट हो गयी कि उसका मूल दोष उसकी दृढ़ता (रिजिडिटी) थी। एक बार यन्त्र मे गडबडी हो गयी, फिर न तो उसकी मरम्मत हो सकती थी, न उसका प्रतिरूप बन सकता था। सारी व्यवस्था भयावह स्वप्न के समान हो गयी थी। और बाद के तुर्की शासक अपने पश्चिमी वैरियों की नकल मात्र करते थे। यह नीति आधे मन से और अयोग्यता से काम में लायी जाती थी किन्तु अन्त मे पूर्णरूप से इसका पालन हमारे युग मे मुस्तफा कमाल ने किया। पर परिवर्तन उतना ही आश्चर्यजनक तथा शक्तिशाली था जितना पुराने उसमानिया राजनीतिज्ञो के काल मे दास-व्यवस्था। किन्तु इन दोनों प्रथाओ की तुलना से दास-व्यवस्था के दोष प्रकट हो जाते है। उसमानिया दास घराने के निर्माताओ ने ऐसा साधन तैयार किया था जिसके द्वारा वे थोडे खानाबदोश जो अपने निवास स्टेप से निकल आये थे, अजनबी ससार में अपनी स्थिति दृढ ही नही रख सके बल्कि एक ऐसे बडे ईसाई समाज मे शान्ति और व्यवस्था कायम रख सके, जो छिन्न-भिन्न हो गयी थी और उससे भी महान् ईसाई समाज के जीवन को भयावह परिस्थिति मे डाल दिया था, जिसकी छाया आज समस्त संसार पर है। बाद के तुर्की राजनीतिज्ञो ने केवल उस रिक्तता की पूर्ति की है जो पुराने अद्वितीय उसमानिया साम्राज्य के लोप हो जाने से निकट पूर्व मे हो गयी थी। उन्होने उस शून्य स्थान पर पश्चिमी ढाँचे पर तुर्की राष्ट्रीय राज के रूप मे बना-बनाया गोदाम खडा कर दिया है। इस साधारण ग्राम-भवन मे निवास करने मे अविकसित उसमानिया सभ्यता के तुर्की उत्तराधिकारी उसी प्रकार सन्तुष्ट है जैसे उन्ही की बगल मे पथराये (फसिलाइज्ड) सीरियाई सभ्यता के उत्तराधिकारी यहूदी अथवा सडक पार वाले अकाल प्रसूत सुदूर पश्चिमी सभ्यता के उत्तराधिकारी आयरिश। ये अब 'विचित्र जाति' की परिस्थिति से बचकर साधारणत. सुख का जीवन व्यतीत कर रहे है।

जहाँ तक दास घराने का प्रश्न है, उसका वही हाल हुआ जो उस पहरुवे कुत्ते का होता है जो बिगड जाता है और भेडो को तग करने लगता है। १८२६ मे ग्रीक-तुर्की के युद्ध के बीच महमूद द्वितीय ने निष्ठुरता से उसका अन्त कर दिया, ठीक पन्द्रह साल बाद जब उसी प्रकार की सस्था ममलूकों का विनाश महमूद की नाम मात्र की प्रजा ने मिस्र के मुहम्मद अली ने किया, जो कभी उनके मित्र कभी प्रतिद्वंदी बनते थे।

(३) स्पार्टन

उसमानिया संस्था, जहाँतक जीवन में सम्भव हो सकता है प्लेटो के रिपब्लिक के आदर्शों के समीप थे। किन्तु यह निश्चित है कि प्लेटो ने जब अपने यूरोपिया की कल्पना की, उसके मन में स्पार्टा की सस्थाएँ रही होगी और यद्यपि उसमानिया के तथा स्पार्टन सैनिक कार्यों के विस्तार के कारण अन्तर था, उनकी 'विचित्र संस्थाओं' मे निकट की समानता भी थी जिसके आधार पर इन्होने अपने असाधारण शौर्य के कार्य सम्पन्न किये।

जैसा हमने अपने अध्ययन के पहले उदाहरण में (पृ० ४) में बताया था कि जब ईसा के पहले आठवीं शती के सभी हेलेनी राज्यो को समान चुनौती का सामना करना पड़ा और वहाँ की जनसंख्या

भोजन के परिमाण के अनुपात में बहुत बढ़ गयी तब स्पार्टा वालो ने इस समस्या का हल अपने ढंग से किया। सामान्य (नारमल) हल तो उपनिवेशन था। उन्होंने समुद्र पार नयी जगहें खोजी और बर्बरों पर विजय प्राप्त कर अपने देश की सीमा बढ़ायी और वहाँ लोगो को बसाया। बर्बरों का विरोध दुर्बल था इसलिए वह कार्य सरल था। स्पार्टा वाले ही यूनानी महत्त्वपूर्ण समुदाय में ऐसे थे जो सागर के समीप नहीं थे। उन्होंने अपने यूनानी पडोसी मेसेनियों पर विजय प्राप्त की। इसमें उन्हें अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पडा। पहली स्पार्टा-मेसेनियाई लड़ाई (७३६–७२० ई० पू० के लगभग) लडको का खेल थी। दूसरी (६५०–६२० ई० पू० के लगभग) बहुत कठोर थी। मेसेनियाई अपनी विपत्ति के फलस्वरूप स्पार्टनो के विरुद्ध उठ खड़े हुए। यद्यपि उन्होंने स्वतन्त्रता नही प्राप्त की स्पार्टनो के विकास की सारी दिशा बदल दी। मेसेनियाई क्रान्ति इतनी प्रबल थी कि इसके परिणामस्वरूप स्पार्टनो की अवस्था दरिद्रो की सी हो गयी। इसके पश्चात् न तो उन्हे कभी शान्ति मिली, न युद्धेतर विपत्तियो से वे अलग हो सके। उनके विजय ने विजेताओ को ही बन्दी बना लिया जिस प्रकार एसकिमो ने आर्कटिक सागर प्रदेश को जीता किन्तु स्वय उसके बन्दी बन गये। जिस प्रकार एसकिमो ऋतु के वार्षिक चक्र की कठोरता में बँधे हुए है उसी प्रकार स्पार्टन मेसेनियाई दासो को दबाने मे बँध गये थे।

स्पार्टनो ने अपनी शक्ति के प्रयोग करने मे उसी प्रणाली का सहारा लिया जो उसमानलियो ने लिया था। केवल उन्हे नयी परिस्थिति के अनुकूल बना लिया था। अन्तर इतना था कि उसमानली शासको ने 'खानाबदोशो की समृद्ध परम्परा' का सहारा लिया था, स्पार्टनो की सस्थाएँ उन डोरिबी (डोरियन) बर्बरों के आदिम सामाजिक व्यवस्था से ली गयी थी जिन्होने मिनोई जनरेला के पश्चात् यूनान पर आक्रमण किया था। हेलेनी किंवदन्ती के अनुसार यह लाइकरगस की देन है। किन्तु लाइकरगस मनुष्य नही देवता था, और इसके वास्तविक प्रणेता ईसा के पूर्व ६ सौ वर्ष तक अनेक राजनीतिज्ञ थे।

उसमानिया व्यवस्था के अनुसार स्पार्टन व्यवस्था में भी मानव प्रकृति की नितान्त अवहेलना थी जिसके कारण उसमें दक्षता भी थी और कठोरता थी और उसी के कारण उसका अन्त भी हुआ। स्पार्टा के 'अगोगे' उसमानिया दास-घराने की भाँति नही थे। यह बात नही थी कि जन्म तथा वंश के गुणो पर बिलकुल ध्यान नही दिया जाता था। स्पार्टा के स्वतन्त्र नागरिक जमीदार उसमानिया साम्राज्य के स्वतन्त्र मुसलिम जमीदारो से बिलकुल भिन्न थे। मेसेनिया पर स्पार्टन शासन कायम रखने का सारा उत्तरदायित्व इन्ही पर था और साथ ही साथ स्पार्टनी नागरिको मे समता के सिद्धान्त का पालन कठोरता से किया जाता था। प्रत्येक स्पार्टन को बराबर धरती, जिसकी प्रत्येक की उपज भी समान हो, दी जाती थी। यह धरती मेसेनियाई दास जोतते-बोते थे और इनकी उपज इतनी होती थी कि स्पार्टन और उसके परिवार का भरण-पोषण कर सके जिससे वे अपनी सारी शक्ति युद्ध मे लगा सकें। प्रत्येक स्पार्टन बालक यदि दुर्बल हुआ तो मरने के लिए निराश्रय छोड़ दिया जाता था, नही तो उसे सातवें साल से अपनी सारी शक्ति कठोर सैनिक शिक्षा ग्रहण करने में लगानी पड़ती थी। इसका अपवाद बिलकुल नहीं होता था। लड़के-लड़कियो दोनों को व्यायाम की शिक्षा दी जाती थी। बालकों की भाँति बालिकाएँ भी नंगे बदन पुरुष जनता के सामने प्रतिद्वन्द्विताओं में सम्मिलित होती थीं। इन बातों में स्पार्टनों ने सेक्सी भावों पर इतना नियन्त्रण अथवा उदासीनता अर्जित कर ली थी जितनी वर्तमान जापानियो

ने। सन्तानोत्पत्ति कड़े सुजनन (यूजेनिक) नियमों के अनुसार नियन्त्रित था। यदि कोई पुरुष दुर्बल होता था तो उसे प्रोत्साहन दिया जाता था कि बलशाली व्यक्ति से अपने परिवार में बच्चे पैदा करा ले। प्लूटार्क के अनुसार—'दूसरे मानव समाज में केवल अश्लीलता और झूठा अभिमान है जो इस बात का तो ध्यान रखते हैं कि उनकी कुतियों और घोडियों के लिए तो बच्चे उत्पन्न करने के लिए अच्छे जोडे मोल या मँगनी लाते है किन्तु अपनी स्त्रियों को तालों में बन्द रखते हैं कि केवल अपने पति से ही सन्तान उत्पन्न करें। मानो यह पति का कोई अधिकार है चाहे वह रोगी हो, पागल हो अथवा बूढा हो।'[1]

पाठको ने प्लूटार्क के विचार और उसमानलियो के दास-घरानो पर बसबेक के विचारों की जिसका विवरण पहले दिया गया है समानता देखनी होगी।

स्पार्टा की व्यवस्था तथा उसमानिया व्यवस्था की मुख्य बातें समान थीं जैसे निरीक्षण, चुनाव, विशेषज्ञता और प्रतिद्वन्द्विता के भाव, और दोनो मे ये बाते केवल शिक्षण काल तक नहीं थी। स्पार्टन तिरपन साल तक सेना में काम करता था। कुछ बातो मे जानिसारियों से अधिक उसे काम करना पडता था। जानिसारियो को विवाह करने से जहाँ तक सम्भव हो रोका जाता था, किन्तु यदि उन्होने विवाह किया तो विवाहितो के टोले मे रहना पडता था, स्पार्टनों को विवाह के लिए विवश किया जाता था किन्तु वे गार्हस्थ्य जीवन नही व्यतीत कर सकते थे। विवाह के बाद भी उन्हें बैरकों मे खाना और सोना पडता था। इसका परिणाम ऐसा होता था जो अविश्वसनीय जान पड़ता है और वह साधारण जन के भावो को कुचल डालने वाला होता था। ये भावनाएँ ऐसी थी जो युद्ध काल मे भी अग्रेजी विचारधारा के प्रतिकूल और घृणित हैं और दूसरे समय तो वे असह्य हैं और इसी कारण 'स्पार्टन' शब्द बदनाम हो गया है। इस भावना का एक रूप 'थर्मा-पिली के दर्रे और तीन सौ' की घटना मे या लोमडी और बालक की कहानी के उदाहरण में है। दूसरी ओर हमे यह भी स्मरण रखना है कि स्पार्टी लडके की शिक्षा के अन्तिम दो वर्ष गुप्त विभाग में काम करने मे लगाये जाते थे। ये केवल हत्यारे थे। रात को गाँवो मे घूमा करते थे और यदि कोई दास अ-विनय का दोषी होता था उसमे चरित्र दोष पाया जाता था या कोई अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करता था, तो वह मौत के घाट उतार दिया जाता था।

स्पार्टा की प्रणाली की 'एक-मार्गी' प्रतिभा आज वहाँ अजायब घर मे भी दर्शक को मिल सकती है। क्योकि यह अजायबघर और अजायबघरों से भिन्न है, जहाँ हेलेनी कला की वस्तुएँ रखी है। और अजायबघरो की सामग्रियो में दर्शक की आँखें क्लासिकी युग की कुशल कारीगरी का नमूना ढूंढती है और देखती है। यह युग ईसा के पूर्व पाँचवी और चौथी शताब्दी में माना जाता है। स्पार्टा के अजायबघर मे क्लासिकी कला देखने को नही मिलती। क्लासिकी युग के पहले की वस्तुएँ मिलती है और उनकी कला आशाप्रद है किन्तु उनके बाद की वस्तुएँ नहीं मिलती। एक शून्य मिलता है और फिर बाद की हेलेनी तथा रोमन काल की प्रतिभाहीन तथा बँधी-तुली वस्तुएँ मिलती हैं। जिस समय पुरानी स्पार्टन कला परम्परा से टूटती है वह लगभग वही काल है जब ईसा के पूर्व छठी शती के मध्य चिलन शासक था इसलिए इसको इस प्रणाली का

१. प्लूटार्क : लाइकरगस, अध्याय १५।

निर्माता कहा जाता है। पतन काल में जो एकाएक कला की वस्तुओं की उत्पत्ति आरम्भ हुई, वह ई० पू० १८९-१८२ के बाद की है, जिसे विदेशी विजेता ने जबरदस्ती बन्द कर दिया। यह उस कठोर प्रणाली का विचित्र उदाहरण है कि उसके मुख्य अभिप्राय के लोप होने के बाद भी दो शतियों तक चलती रही—उस समय तक जब मसीना पूरा पराजित हो गया। इसके पहले साधारण कथन के रूप में अरस्तू ने स्पार्टा का समाधि लेख (एपिटाफ) इस रूप में लिख दिया था—

"राष्ट्रों को युद्ध की शिक्षा अपने को इसलिए नही देनी चाहिए कि अपने ऐसे पड़ोसियो पर विजय प्राप्त करे जो इस योग्य नही है कि उनपर विजय प्राप्त की जाय। (अर्थात् सहयोगी यूनानियों पर अथवा ऐसे नियम-विधि विहीन जातियों पर जिन्हे यूनानी बर्बर कहते हैं) किसी सामाजिक प्रणाली का मुख्य लक्ष्य, दूसरी संस्थाओ की भाँति, सैनिक व्यवस्था मे भी ऐसा होना चाहिए कि शान्ति के समय भी जब युद्ध नही होता हो, उसकी उपयोगिता हो।"[१]

(४) साधारण विशेषताएँ

इन अविकसित समाजों की दो विशेषताएँ है जो प्रमुख है। श्रेणियाँ और विशेषज्ञता (स्पेशलाइजेशन), ये दोनो बातें एक सूत्र मे सम्मिलित हो सकती है। इन समाजों में जो व्यक्ति हैं वे एक प्रकार के नहीं है, वे दो या तीन विभिन्न श्रेणियों में स्पष्ट रूप से विभाजित हो जाते है। एसकिमो समाज में दो श्रेणियाँ है—शिकारी मानव तथा उनके सहायक कुत्ते। खानाबदोशी समाज में तीन श्रेणियाँ है—मानव गडेरिये, सहायक पशु और ढोर (केट्ल), उसमानिया समाज में खानाबदोशी तीन श्रेणियों के स्थान पर पाँच श्रेणियाँ हमें मिलती हैं—और पशुओ की जगह वहाँ मनुष्य होते है। खानाबदोशो का बहुरूपी (पोलिमारफिक) समाज मानव तथा पशुओ के गिरोह का एक समाज बना हुआ है, जिनमें से कोई अपने साथी के बिना स्टेप पर जीवित नही रह सकता जबकि उसमानिया समाज में विरोधी व्यवस्था है जहाँ एक ही मानव जाति विभिन्न जातियों में बँटी है मानो वे विभिन्न जाति के पशु हैं। किन्तु सम्प्रति हम इस भेद को छोड दे सकते है। एसकिमो के कुत्ते और खानाबदोश के घोडे और ऊँट मनुष्य के साथी होने के कारण आधे मनुष्य बन गये हैं, उसमानिया समाज में प्रजा को 'रिआया' (जिसका अर्थ 'ढोर' है) कहते हैं और लेकोनियाई दासों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार होने के कारण वे अर्ध-पशु हो जाते है। शेष जो मानव इनके साथी है वे राक्षस बन जाते है। पूर्ण स्पार्टन लड़ाकू, पूर्ण जानिसारी साधु, पूर्ण खानाबदोश किन्नर (सेंटार) और पूर्ण एसकिमो समुद्र कुमार (मरमैन) बन जाता है। पेरिक्लीज ने अन्त्येष्ठि भाषण में ऐथेन्स और उसके बैरियों में जो अन्तर बताया है वह यह है कि ऐथेनियन ईश्वर के बिम्ब में मानव हैं और स्पार्टन युद्धक यन्त्र-मानव है। जहाँ तक एसकिमो और खानाबदोशों की बात है जिन लोगो ने वहाँ का वर्णन किया है सभी एकमत हैं कि इन्होने अपने कौशल को इतना ऊँचा उठाया है कि मनुष्य और नाव पहले के यहाँ, तथा मनुष्य और घोड़े दूसरे के यहाँ, एक अंग से हो गये हैं।

१. अरस्तू : पोलिटिक्स—१३३३ बी—१३३४ ए।

इस प्रकार एसकिमो, खानाबदोश, उसमानली वर्ग और स्पार्टन ने ऐसी सफलता प्राप्त की, मानवता के विभिन्न गुणों का तिरस्कार किया और अपरिवर्तनशील पशु प्रकृति को ग्रहण किया। इस प्रकार उन्होंने प्रतिगामिता की ओर पाँव रखा। जीव-विज्ञानियो का कहना है जिस-जिस पशु जाति ने विशेष वातावरण के अनुसार अपने को विशेष रूप से अनुकूल बना लिया वह मृत प्राय हो जाती है और उसका विकास रुक जाता है। यही हाल अविकसित सभ्यताओं का है।

इसी प्रकार के उदाहरण हमें काल्पनिक मानव समाज यूटोपिया मे तथा सामाजिक कीड़ो मे भी मिलते हैं। यदि हम तुलना करें तो चीटियो के झुण्ड, मधुमक्खियो के समूह तथा अफलातून के 'रिपब्लिक' और अल्डस हक्सले के 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' मे वही बाते पायेंगे जो हमने विकसित सभ्यताओं में देखी है—अर्थात् जाति और विशिष्टता।

सामाजिक कीडे आज जिस ऊँचाई पर हैं वहाँ स्थिर हो गये और वे वहाँ लाखो वर्ष उसके पहले पहुँच गये थे जब मनुष्य कशेरूकी (वर्टिबट) प्राणियो के औसत स्तर पर पहुँचा था। जहाँ काल्पनिक आदर्श जातियो का—यूटोपियनों का सम्बन्ध है वे अचल हैं। ये पुस्तकें काल्पनिक समाजवाद (सोशलाजी) के वर्णन के बहाने क्रियाशीलता के कार्यक्रम का वर्णन करती हैं। और जिस कार्यशीलता को जाग्रत करने के लिए उनकी चेष्टा होती है वह किसी एक स्तर पर ऐसे पतनोन्मुख समाज का उद्धन्घन होता है जिसका पतन किसी कृत्रिम ढंग से न रोका जाय। यूटोपिया में अधिक से अधिक यही दिखाया जा सकता है कि पतन किस प्रकार रोका जा सकता है क्योकि किसी समाज मे ऐसी पुस्तकें तभी लिखी जाती है जब उसके सदस्यों को आगे प्रगति की आशा नही रह जाती। इसलिए—अग्रेजी प्रतिभा को छोडकर जिसने यह नाम 'यूटोपिया' साहित्य को दिया है—सभी यूटोपियाओं का अभिप्राय यह होता है कि अपराजेय स्थिरता समाज को दी जाय और समाज की और बाते उससे गौण कर दी जायँ और आवश्यकता हो तो उसके लिए उनकी बलि दे दी जाय।

हेलेनी यूटोपिया के सम्बन्ध में यह सत्य है। इन यूटोपियो की कल्पना उस समय हुई जब पेलोपेनेशियाई युद्ध के पश्चात् एथेन्स में तबाही आ गयी और वहाँ नये दार्शनिको का उत्थान हुआ। इन विचारो की नकारात्मक स्फूर्ति एथेनी लोकतन्त्र के पूर्ण विरोध मे थी। क्योंकि पेरिक्लीज की मृत्यु के पश्चात् वहाँ का लोकतन्त्र एथेनी सस्कृति से अलग हो गया। इस लोकतन्त्र के कारण एक उन्मत्त सैनिकवाद का विकास हुआ था जिसने उस ससार का विनाश किया जहाँ एथेनी संस्कृति फलफूल रही थी, और सुकरात की वैधानिक किन्तु न्याय विरुद्ध हत्या करके अपनी असफलता को सीमा तक पहुँचा दिया और युद्ध मे विजयी न हो पाया।

युद्ध के पश्चात् एथेनी दार्शनिकों का पहला कार्य यह था कि जिन बातो ने पिछले दो सौ सालों के एथेन्स को महान् बनाया था उन सबको अग्राह्य कर दिया। उनका मत था कि यूनान (हेलास) की रक्षा तभी हो सकती है जब एथिनी दर्शन और स्पार्टा की सामाजिक व्यवस्था मिलायी जाय। स्पार्टा व्यवस्था को अपने विचारों के अनुकूल बनाने में वे दो रूप में उसे सुधारना चाहते थे। पहले तो वे उस व्यवस्था को उमकी पूर्ण सीमा तक ले जाना चाहते थे और दूसरे एथेनी दार्शनिको के ही समान एक प्रमुख बौद्धिक वर्ग (अफलातून के 'गारजियन') की स्थापना करना चाहते थे, जिसका कार्य इस आदर्श व्यवस्था में गौण होता।

वर्गवाद को स्वीकार करके, विशेषज्ञता की ओर झुकाव के कारण और किसी भी मूल्य पर सन्तुलन स्थापित करने के जोश के कारण ईसा के पूर्व चौथी शती के एथेनी दार्शनिक ई० पू० छठी शती के स्पार्टा के राजनीतिज्ञों के विनम्र शिष्य मात्र हैं। जहाँ तक जातिवाद का या वर्गवाद की बात है अफलातून और अरस्तू के विचार जातिवाद से रँगे हुए है जो हमारे पश्चिमी समाज में आज भी एक दोष बना हुआ है। अफलातून ने 'कुलीन झूठ' (नोब्ल लाई) को जो दर्पभरी कल्पना की है वह मानव-मानव में उसी प्रकार के भेद उत्पन्न करने की सूक्ष्म चाल है जो विभिन्न जाति के पशुओं में होती है। अरस्तू ने दास-प्रथा का जो समर्थन किया है वह भी इसी प्रकार का है। उसका कहना है कि कुछ लोगों को प्रकृति ने ही दास बनने योग्य बनाया है, यद्यपि वह यह स्वीकार करता है कि बहुत-से जो दास हैं उन्हें स्वतन्त्र होना चाहिए और बहुत-से जो स्वतन्त्र है उन्हें दास होना चाहिए।

अफलातून और अरस्तू के काल्पनिक राज्य मे (अफलातून के रिपब्लिक और 'लाज़' और अरस्तू के 'पालिटिक्स' के अन्तिम दो खण्डो मे) मानव के सुख का लक्ष्य नही है, समाज की दृढता ही लक्ष्य है। प्लेटो कवियो पर बन्धन लगाता है जो जान पडता है स्पार्टा के ओवरसियर की आज्ञा है। वह 'भयकर विचारो' पर भी नियन्त्रण लगाना चाहता है जो आजकल के कम्युनिस्ट रूस, नेशनल सोशलिष्ट जरमनी, फासिस्ट इटली और शितोई जापान के ढग का नियन्त्रण है।

यूटोपियाई कार्यक्रम से यूनान का त्राण नही हो सका। यूनान के इतिहास की समाप्ति के पूर्व ही उसकी अनुपयोगिता प्रकट हो चुकी थी जब यूटोपियाई सिद्धान्तो के अनुसार कृत्रिम ढग से अनेक प्रजातन्त्र स्थापित किये गये थे। जिस लोकतन्त्र की कल्पना अफलातून ने अपने 'लाज़' में क्रीट के उजाड़ द्वीप पर की थी वैसे ही सैकडो नगर-राज्य (सिटी स्टेट्स) बाद के चार सौ सालो मे सिकन्दर ने स्थापित किये और पूर्वीय देशों में सेल्यूकस के उत्तराधिकारियों ने और रोमनो मे बर्बर प्रदेशों में स्थापित किया। इन वास्तविक यूटोपियो मे यूनानी अथवा इटालियो को उपनिवेशको के रूप मे यह स्वतन्त्रता दी गयी कि हेलेनीवाद के प्रकाश कों विदेशो के अन्धकार में प्रज्वलित करे और वहाँ के निवासियो को गदे और नीच कार्यों के लिए विवश करे। गआल के रोमन उपनिवेश के सारे क्षेत्र मे सब बर्बर ही निवासी हो सकते थे।

ईसा की दूसरी शती में जब हेलेनी जगत् भारतीय ग्रीष्म का आनन्द ले रहा था, समकालीन और बाद के लोगों को भी भ्रम हुआ कि यह स्वर्णयुग है और अफलातून की सभी आशाएँ पूर्ण हो गयी। सन् ९६ से १८० ई० तक अनेक दार्शनिक राजा हेलेनी जगत् की गद्दी पर बैठे और इस दार्शनिक साम्राज्य मे सहस्रो नगर-राज्य साथ-साथ शान्ति और एकता मे जीवन-यापन कर रहे थे। किन्तु दोषो की यह निवृत्ति केवल ऊपरी थी, भीतर-भीतर कुशल नही था। सामाजिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप एक सूक्ष्म नियन्त्रण का वातावरण हो गया था, जैसा सम्भवत: साम्राज्य के आदेश से भी न होता। इस नियन्त्रण के कारण ऐसी कलापूर्ण बौद्धिकता अग्रसर हो रही थी जिसे यदि अफलातून जीवित होता और देखता तो चकरा जाता कि मेरे सनकी सिद्धान्तों का क्या परिणाम हो रहा है। दूसरी शती के शान्त प्रतिष्ठित लोगो के पश्चात् तीसरी शती में कष्ट और पीडा का समय आया जब किसान दासों ने अपने मालिको का विनाश किया। चौथी शती आते-आते सारी व्यवस्था उलट गयी और जो किसी समय रोमन नगर-पालिकाओ के स्वतन्त्र

शासक थे, और बच रहे थे, जंजीरों में बँधे थे। आज जो जंजीरों में 'दासों' के समान बँधे थे उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि ये अफलातून के प्रतिष्ठित शासको के वंशज है।

'आज हम यदि इस प्रकार के यूटोपिया को देखें तो वही विशेषताएँ मिलेंगी। आल्डस हक्सले ने 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' को व्यगात्मक शैली में लिखा है। उनके लिखने का अभिप्राय यह था कि इस व्यवस्था से लोगों को घृणा हो, आकर्षण नही। उन्होंने यह बात मानकर पुस्तक आरम्भ की कि वर्तमान उद्योग-वाद (इंडस्ट्रियलिज्म) तभी चल सकता है जब लोग 'प्राकृतिक' (नेचुरल) वर्गों मे विभक्त कर दिये जायें। जीव-विज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक कौशल से यह क्रिया पूरी की जाती है। परिणामस्वरूप अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा, एपसाइलन नाम की जातियों में समाज बँट जाता है। ये जातियाँ भी उसी भाँति की है जैसी अफलातून के अनुसार अथवा उसमानलियो के अनुसार बनी थी। अन्तर केवल इतना था कि हक्सले की वर्णमाला के अनुसार जातियाँ कुत्ते, घोड़े, मनुष्य के रूप में विभिन्न जन्तु बनाये जाते है जो खानाबदोशी समाज मे मनुष्य के सहायक होते है। एपसाइलन जिनके सुपुर्द गन्दे काम करना है, उससे प्रसन्न है और दूसरा काम नही करना चाहते। प्रजनन की प्रयोगशाला मे उन्हे वैसा ही पैदा किया और बनाया गया है। श्री वेल्स की पुस्तक 'द फर्स्ट मैन इन द मून' मे ऐसा समाज चित्रित किया गया है। प्रत्येक नागरिक को अपनी परिस्थिति ज्ञात है। वह उसी स्थिति मे उत्पन्न होता है, और पूर्ण प्रशिक्षण और अनुशासन, शिक्षा तथा शल्य चिकित्सा द्वारा उसे ऐसा बना दिया जाता है कि उस स्थिति के अतिरिक्त वह, न दूसरी बात जानता है, न सोच सकता है।

एक दूसरी दृष्टि से सेमुएल बटलर का 'अरहोन' मनोरजक और विशेषतापूर्ण है। उनका वर्णन करने वाले आगमन के चार सौ साल पहले अरहोनियनो ने समझ लिया था कि नये यान्त्रिक उपकरणो द्वारा हम दास बनाये जा रहे है। मनुष्य तथा यन्त्रो के मेल से एक अव-मानव (सब ह्यूमन) प्राणी का निर्माण हो रहा है जिस प्रकार एसकिमो का मानव-नौका अथवा खानाबदोशों का मानव-अश्व है। इसलिए उन्होने मशीनों को नष्ट कर डाला और अपने समाज को उसी जगह स्थिर कर दिया जहाँ वह औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ के पहले था।

नोट : भाषा के वाहक सागर तथा स्टेप

खानाबदोशो के वर्णन के पहले हमने कहा था कि जैसे सागर बिना जोत के खेत के समान है उसी प्रकार स्टेप में किसी स्थिर मनुष्य के लिए स्थान नहीं है। खेती की भूमि की तुलना मे इसमे यात्रा तथा यातायात की अधिक सुविधा होती है। दोनों की समानता भाषा वाहक के रूप मे स्पष्ट हो जाती है। यह सभी जानते है कि समुद्री जातियाँ जिस तट पर अथवा जिस सागर में जाती हैं, और जहाँ वे निवास बना लेती है वहाँ अपनी भाषा भी ले जाती हैं। पुराने यूनानी नाविको ने भूमध्य सागर के चारों ओर तट पर यूनानी भाषा प्रसारित कर दी थी। मलय के नाविकों ने मलय परिवार की भाषाओ को एक ओर मैडेगास्कर और दूसरी ओर फिलिपीन द्वीप समूह तक फैला दिया था। प्रशान्त सागर मे पालिनेशियाई भाषाएँ फिजी से ईस्टर द्वीप और न्यूज़ीलैंड से हवाई तक आज भी समान रूप से बोली जाती हैं यद्यपि बहुत काल बीता जब पालि-नेशियाई नौकाओं में बैठकर इस महान् सागर के आरपार आया-जाया करते थे। यह भी देखने की बात है कि इंग्लैंड का सागरों पर शासन है इसी कारण संसार-भर में अंग्रेजी भाषा का प्रचार है।

इसी प्रकार स्टेप के चारों ओर उपजाऊ देशों में खानाबदोशो के आवागमन के कारण चार भाषाओं का प्रसार हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रमाणित हो जाता है। वे चार भाषाएँ है—बर्बर, अरबी, तुर्की तथा इंडोयूरोपियन।

बर्बर भाषाएँ आज सहारा के खानाबदोश और सहारा के उत्तरी तथा दक्षिणी तट की स्थावर जातियाँ बोलती है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे मरुभूमि के खानाबदोश इन प्रदेशों में घुसे थे जहाँ बर्बर भाषा के उत्तरी और दक्षिणी रूपों का व्यवहार होता है।

इसी प्रकार अरबी आज अरब स्टेप के उत्तरी तट और सीरिया और इराक मे ही नही बोली जाती, उसके दक्षिणी तट इद्रामार्ट और यमन तथा पश्चिमी किनारे नील की घाटी में भी बोली जाती है। नील की घाटी से और भी पश्चिम बर्बर प्रदेश मे वह चली गयी है और आज वह अतलान्तक के उत्तरी अफ्रीकी तट पर और चड झील के उत्तरी तट पर बोली जाती है।

तुर्की यूरेशियाई स्टेप के विभिन्न तटो पर फैली है और मध्य एशिया में कैसपियन सागर के पूर्वी तट से साव-नार तक और ईरानी पठार के उत्तरी कगार से अलताई पर्वत के पश्चिमी ओर तक किसी न किसी रूप मे बोली जाती है।

तुर्की परिवार की भाषाओ के इस विभाजन से इंडोयूरोपियन भाषाओ के वर्तमान विभाजन का कारण मिलता है। यह भाषा दो भिन्न भौगोलिक वर्गों मे बँट गयी है। एक यूरोप मे रह गयी और दूसरी ईरान तथा भारत मे। इस इडो यूरोपियन भाषा का मानचित्र हमे तब समझ मे आ जायेगा यदि हम इस बात को मान ले कि इसके पहले कि तुर्की भाषाओ के प्रसारकों ने वहाँ अपना निवास बनाया, इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का प्रसार स्टेप के उन खानाबदोशों ने किया जो यूरेशियाई स्टेप पर बस गये थे। यूरोप और ईरान दोनो के किनारे यूरेशियाई स्टेप है और इसी जल-विहीन मार्गों द्वारा ये भाषाएँ फैली है। पहले के उदाहरणो और इनमें अन्तर इतना ही है कि इन भाषाओ का अब वहाँ निशान नही है जहाँ किसी समय इनका अस्तित्व था।

१०. सभ्यताओं के विकास की प्रकृति

(१) दो भ्रामक संकेत

जो पर्यवेक्षण हमने किया, उससे पता चला है कि सबसे अधिक प्रेरणा देने वाली चुनौती कठोरतम और सुगमतम के बीच की चुनौती होती है । चुनौती मे यदि तीव्रता न रही तो प्रेरणा नही मिलेगी, यदि चुनौती बहुत कठोर रही तो मन को ध्वस्त कर देगी । किन्तु वह चुनौती कैसी होगी जिसकी तीव्रता केवल इतनी हो कि मनुष्य सामना कर सके । पहली दृष्टि मे तो ऐसा जान पड़ता है इसी प्रकार की चुनौती से सबसे अधिक स्फूर्ति मिलती है, और उसके उदाहरण पोलिनेशियाइयो, एसकिमो, खानाबदोशों, उसमानलियो तथा स्पार्टनो मे मिलते है । हमने देखा है कि इस प्रकार की चुनौती से इनमे महान् शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है । दूसरे अध्याय मे हमने यह भी देखा कि इन लोगो को इसमे दण्ड भी मिला कि इनकी सभ्यता अविकसित रह गयी । इस कारण जब हम और ध्यान से देखते है तब हमे यह पता चलता है कि चुनौती की अधिकतम तीव्रता हम उसे नही मान सकते जिसमे केवल उसका सामना ही कर लिया जाय अपितु चुनौती मे ऐसा भी बल होना चाहिए कि प्रेरणा स्थगित न हो जाय, आगे भी बढ़ती रहे । एक सघर्ष के बाद एक कदम और आगे बढे । एक समस्या का हल करने के बाद दूसरी समस्या उपस्थित हो और उसका हल हो । यिन से याग की ओर प्रगति होती रहे । केवल ऐसी गति, जो एक आन्दोलन के समाप्त करके सन्तुलन उपस्थित कर दे पर्याप्त नही है, उत्पत्ति के साथ विकास भी होना चाहिए । यह गति सदा लय के रूप मे होनी चाहिए । जिस समाज को चुनौती मिले वह सामना करे, सन्तुलन स्थापित करे, सन्तुलन बिगडे, फिर नयी चुनौती आये, फिर उसका सामना हो, सन्तुलन हो, सन्तुलन बिगडे और चुनौती आये, अनन्त काल तक ऐसा ही होता रहे ।

इस प्रकार के अ-सन्तुलनो की श्रेणी हमे हेलेनी सभ्यता मे उसकी उत्पत्ति से ई० पू० पाँचवी शती तक में, जब उसकी चरम सीमा थी, मिलती है ।

नवीन हेलेनी सभ्यता को पहली चुनौती अव्यवस्था और अन्धकार की थी । मिनोई समाज के विघटन का परिणाम केवल सामाजिक मलबा था जिनमे बचे-खुचे मिनोई और बेघरबार के एकियाई और डोरियन थे । क्या पुरानी सभ्यता नये बर्बरों के तूफानी आक्रमणो मे बह जायगी ? क्या एकियाई मैदानो पर उसके चारो ओर के पहाड़ो का शासन हो जायगा ? क्या मैदान के शान्ति-प्रिय किसानो को पहाडो के लुटेरो, और डाकुओं की दया पर जीना होगा ?

पहली चुनौती के सामना मे विजय हुई । यह निश्चित हुआ कि यूनान नगरो का संसार होगा, ग्रामों का नहीं । यहाँ खेती की व्यवस्था होगी, चराई की नहीं, व्यवस्था का देश होगा दुर्व्यवस्था का नही । किन्तु पहली चुनौती की सफलता से ही उन्हे दूसरी चुनौती का सामना करना पड़ा । विजय के बाद शान्तिपूर्ण खेती आरम्भ हुई, मैदानो में खेती से जनसंख्या बढ़ी,

जनसंख्या का यह वेग (मोमेंटम) कम नही हुआ और जनसंख्या इतनी बढ़ गयी कि हेलेनी प्रदेश सँभालने में समर्थ नहीं हो सका। पहली चुनौती की सफलता ने दूसरी जनसंख्या वाली चुनौती का भी उसी सफलता से सामना किया जैसे पहली का।

अति-जनसंख्या की समस्या के सुलझाने के कई उपाय निकाले गये। सबसे सरल और स्पष्ट उपाय का पहले प्रयोग किया गया। उससे क्रमागत ह्रास होने लगा। उसके पश्चात् एक कठिन और असाधारण प्रयोग किया गया और इस बार समस्या सुलझ गयी।

पहली बार जो ढग अपनाया गया वे वही सस्थाएँ तथा तकनीक थीं जिसका प्रयोग यूनान के मैदान मे रहने वालों ने अपने पड़ोसी पर्वतीय लोगो पर किया था जिससे उनका शासन पर्वतीय लोगों पर स्थापित हो और सागर पार नये प्रदेशों पर विजय प्राप्त हो। सशस्त्र यूनानी सैनिको के व्यूह और नगर राज्य के यन्त्र की सहायता से हेलेनी नेताओ के गिरोह ने इटली तथा कोनेस के बर्बरो को हराकर इटली के दक्षिण मे महान् यूनान की स्थापना की। सिसिली मे बर्बर सिकेलो को हराकर नवीन पेलोपोनेस का निर्माण किया। लीबियनों को पराजित करके साइरेनेका मे नये हेलेनी पेन्टापोलिस (पाँच नगरो का एक समूह) बनाया, और बर्बर थ्रेसियनो को पराजित करके एजियन सागर के उत्तर तट पर कालसिडिसे की स्थापना की। परन्तु इस विजय के परिणाम-स्वरूप ही विजेता को नयी चुनौती का सामना करना पड़ा। क्योकि इन्होने जो कुछ किया था वह भूमध्यसागरीय देशो के लिए स्वय एक चुनौती थी और अन्त मे अ-यूनानी लोगो ने इस यूनानी विस्तार को रोक दिया। उन्होने कुछ तो हेलेनी अस्त्र-शस्त्र तथा उन्ही की कला लेकर उनका आक्रमण रोका और कुछ ने अपनी शक्ति को सचय किया जिसका सामना हेलेनी नही कर सके। इस प्रकार हेलेनी विस्तार जो ई० पू० आठवी शती मे आरम्भ हुआ था छठी शती मे स्थगित हो गया। फिर भी अति-जनसख्या की चुनौती हेलेनी समाज मे रह गयी।

इतिहास की इस विपदा मे एथेन्स ने नयी खोज की। एथेन्स ने जो 'यूनान का शिक्षक' बना था, विस्तार की प्रणाली छोड़कर ज्ञान तथा शिक्षण से हेलेनी समाज को, गहनता की ओर ले चला। इस महत्वपूर्ण परिवर्तन के सम्बन्ध में इस अध्याय में आगे बताया जायगा। इस एथेनी सघर्ष के बारे मे पहले (पृष्ठ ४) में कहा जा चुका है, उसे दोहराने की आवश्यकता नही है।

वृद्धि की इस लय को वाल्ट व्हिटमैन ने समझा था। उसने लिखा था . 'वस्तुओ के मूल मे यह निहित है कि किसी सफलता मे, चाहे वह कैसी भी हो, आगे और भी संघर्ष की आवश्यकता होती है।' यह भाव निराशापूर्ण भाषा मे विक्टोरियन काल के कवि विलियम मोरिस ने प्रकट किया जब उसने लिखा, 'मै विचार करता हूँ कि किस प्रकार लोग लड़ते है और पराजित होते है। और जिस बात के लिए लोग लड़ते है वह उनके पराजय के बावजूद प्राप्त होती है। जब वह प्राप्त होती है तब पता चलता है कि जिस बात के लिए लोग लड रहे थे वह यह नही है। दूसरे लोग दूसरे नाम से उसी बात के लिए फिर लड़ते है।'

सभ्यताओ का ऐसी सजीवता द्वारा विकास होता है जो चुनौती से संघर्ष और सघर्ष से फिर चुनौती की ओर ले जाती है। इसके बाहरी और आन्तरिक दोनो रूप होते है। ब्रह्माण्ड में

(मैक्रोकाज्म) में जो विकास होता है वह क्रमशः बाहरी विजय की प्राप्ति द्वारा होता है, पृथ्वी (माइकाज्म) पर का विकास क्रमश. आत्मनिर्णय अथवा आत्माभिव्यक्ति द्वारा होता है। इन दोनों अभिव्यक्तियों में सजीवता की प्रगति का सिद्धान्त सम्भवत. मिलता है। हम इस दृष्टि से दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियो की परीक्षा करेंगे।

पहले बाहरी परिस्थिति की क्रमागत विजय के विचार के लिए, सरलता के लिए, हम इस परिस्थिति को दो भागो मे विभाजित करेगे। एक तो मानवी परिस्थिति। प्रत्येक मानव समाज को दूसरे मानव समाज के सम्पर्क मे आना पड़ता है और ऐसे भौतिक वातावरण का सामना करना पड़ता है जो मानव परिस्थिति से भिन्न है। मानवी परिस्थिति के क्रमशः विजय का अर्थ होगा कि समाज अपनी भौगोलिक सीमा को बढाता जाय, भौगोलिक परिस्थिति पर विजय का अर्थ होगा कि समाज तकनीको मे उन्नति करता रहे। हम पहले प्रथम बात पर अर्थात् भौगोलिक विस्तार पर विचार करेगे और देखेगे कि सभ्यता के विकास की परीक्षा के लिए कहाँ तक यह उचित कसौटी है।

हमारे पाठक हमसे इस बात पर झगडा नही करेगे यदि बिना बहुत प्रमाणो के और तर्क के हम यह कहे कि भौगोलिक विस्तार सभ्यता के वास्तविक विकास का माप नही है कभी-कभी हम देखते है कि भौगोलिक विस्तार और सभ्यता के विकास का समय एक ही होता है जैसा दूसरे सन्दर्भ मे हेलेनी विस्तार के सम्बन्ध मे बताया गया है। कभी-कभी भौगोलिक विस्तार और वास्तविक पतन साथ-साथ होते है और विघटन भी साथ-साथ होता है। सार्वभौम राज्य के पतन और विघटन के लिए भौगोलिक विस्तार और 'सकट काल' दो कदम है। इसका कारण ढूंढ़ने के लिए दूर नही जाना होगा। सकट-काल से सैन्यवाद का जन्म होता है जो मनुष्य की आत्मा को पारस्परिक विनाश की ओर ले जाता है, और सबसे सफल सैन्यवादी साधारणत. सार्वभौम राज्य का सस्थापक होता है। भौगोलिक विस्तार इस सैन्यवाद का परिणाम होता है। यह उस समय होता है जब वीर लोग अपने ही समाज के बीच के प्रतिद्वन्दियो पर आक्रमण करना छोड़कर पड़ोस के समाज पर आक्रमण करते है।

इस अध्याय मे हम आगे देखेगे कि सैन्यवाद विगत चार-पाँच हजार वर्षों मे सभ्यता के विनाश का सबसे साधारण कारण रहा है। आज तक के इतिहास मे ऐसा ही मिलता है कि दस-बारह सभ्यताओ का पतन इसी प्रकार हुआ है। सैन्यवाद के कारण समाज के स्थानीय राज्य (लोकल स्टेट्स) एक दूसरे से टकरा कर आपसी युद्ध मे लड़कर नष्ट हो जाते हैं। आत्म विनाश की इस प्रक्रिया में सारा सामाजिक ढाँचा इन पिशाचो (मोलोक[१]) के लिए ईंधन का काम करता है। युद्ध की एक कला की प्रगति शान्ति की विभिन्न कलाओं को विनाश करके होती है। इसके पहले कि सैन्यवाद के सब समर्थक नष्ट हो जायें इस हत्या की कला मे वे इतने निपुण हो जाते है कि यदि वे पारस्परिक विनाश से क्षण भर के लिए रुक जायें और दूसरे समाज पर आक्रमण करें तो उन सबका विनाश कर डालते हैं।

१. कनअरनियों का वह देवता जिसके आगे बच्चों की बलि दी जाती थी।—अनुवादक

हेलेनी इतिहास के अध्ययन से ऐसा संकेत मिल सकता है कि जिस परिणाम को हमने अस्वीकार कर दिया है उसी का विपरीत ठीक है । हम यह देख चुके है कि जब हेलेनी समाज को अति-जनसंख्या की चुनौती मिली तब उसने भौगोलिक विस्तार द्वारा उसका सामना किया और दो सौ साल बाद । सम्भवत. (७५०–५५० ई०पू०) उसके चारों ओर की अ-हेलेनी शक्तियो ने इस विस्तार को रोक दिया । इसके पश्चात् हेलेनी समाज रक्षात्मक (डिफेंसिव) हो गया । पूरब की ओर इसके घर मे ही परशियनो ने और पश्चिम से नये विजित प्रदेश मे कार्थेजिनियनों ने आक्रमण कर दिया। इस काल मे जैसा कि थ्यूसिडाइड्स ने देखा था, 'यूनान चारो ओर से बहुत दिनो तक दबाया जा रहा था ।' और हेरोडोट्स ने देखा था कि, 'यूनान पर इतनी अधिक विपत्ति आयी जितनी इसके पहले बीस पीढियो में नही आयी थी ।' आज का पाठक यह नही अनुभव कर सकता कि इन दो यूनानी इतिहासकारो ने जिन विषादपूर्ण वाक्यो मे इस काल का वर्णन किया है वही बाद की पीढ़ी के लिए हेलेनी सभ्यता का मूर्धन्य काल था । यह वही युग था जब हेलेनी प्रतिभा ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे नयी बातो का निर्माण किया जिनके ही कारण हेलेनीवाद अमर है । हेरोडोट्स और थ्यूसिडाइड्स ने हेलेनी सर्जन के इस युग को इस दृष्टि से इसलिए देखा कि यूनान का भौगोलिक विस्तार रुक गया था । किन्तु इस बात पर कोई विवाद नही हो सकता कि हेलेनी सभ्यता में इतनी सजीवता न कभी पहले थी, न बाद में हुई । और यदि ये इतिहासकार किसी प्रकार ऐसी असाधारण जीवनी पा जाते, इस सजीवता का परिणाम देख पाते तो वह देखते एथेनो-पोलिपेनेशियाई युद्ध के अवरोध के पश्चात् ही नवीन रूप से भौगोलिक विस्तार आरम्भ हुआ । यह विस्तार सिकन्दर द्वारा स्थल पर आरम्भ हुआ जो यूनान के सागरी विस्तार से कही बड़ा था । सिकन्दर ने जब हेलेस पार किया उसके बाद दो शतियो में हेलेनीवाद एशिया और नील नदी की घाटी में फैल गया और सीरियाई, मिस्री, बैबिलोनी, भारतीय सभी सभ्यताओ पर, जो सामने आयी, विजय प्राप्त की। उसके दो सौ साल बाद रोमनो की छत्र-छाया मे ये यूरोप तथा उत्तर-पश्चिम अफीका की बर्बर पृष्ठभूमि मे फैलते जा रहे थे । और ये ही वे शक्तियाँ थी जब हेलेनी सभ्यता का विघटन हो रहा था ।

सभी सभ्यताओ के इतिहास से यह उदाहरण मिलता है कि भौगोलिक विस्तार के साथ-साथ गुणो का ह्रास होता है । हम केवल दो उदाहरण लेगें ।

मिनोई सस्कृति का सबसे अधिक विस्तार उस समय हुआ जिसे हमारे पुरातत्ववेत्ता 'अन्तिम' (तीसरी मिनोई) कहते हैं । ऐसा युग उससे पहले नही आया जब १४२५ ई० पू० के लगभग क्नासस का घेरा हुआ था । अर्थात् उस सकट काल के बाद ही जब 'मिनोस के सागर तन्त्र' का सार्वभौम राज्य नष्ट हो गया और अन्तर्काल था, जब मिनोई समाज का अन्त हो रहा था । जितनी वस्तुएँ इस अन्तिम मिनोई काल की, तीसरी अवस्था की, मिलती हैं उन सब पर पतन का प्रमाण अंकित है और उन्ही से यह भी पता लगता है कि मिनोई वस्तुएँ विस्तार से फैली हुई थी । ऐसा जान पड़ता है कि विस्तार का मूल्य गुणो के ह्रास मे चुकाना पड़ा ।

सुदूर पूर्व समाज के पूर्वज चीनी (सिनिक) समाज का भी वही हाल है । चीनी सभ्यता के विकास के समय इसका विस्तार हागहो नदी के आगे नही था । चीनी सकट काल मे 'जब विभिन्न राज्य एक दूसरे से लड़ रहे थे' जैसा कि चीनी कहते हैं चीनी जगत् दक्षिण में याग्त्सी बेसिन तक और दूसरी ओर पीहो के मैदान तक फैल गया था । चीनी सार्वभौम राज्य के प्रतिष्ठापक त्सिन

शी ह्वागटी ने अपनी राजनीतिक सीमा महान् दीवार (ग्रेट वाल) तक बढ़ायी थी। इसके पश्चात् हैन परिवार ने आकर रिसन शी की सीमा को और दक्षिण तक बढ़ाया। इस प्रकार चीनी इतिहास में भौगोलिक विस्तार तथा सामाजिक विघटन समकालीन है।

अन्त मे हम अपनी पश्चिमी सभ्यता के अपूर्ण इतिहास की ओर दृष्टि डाले और उसके उस प्राचीन विस्तार की ओर ध्यान दे जो अविकसित सुदूर पश्चिमी और स्कैंडिनेवियाई सभ्यताओ को पराजित करके हुआ था, तथा जो उत्तरी यूरोपीय बर्बरो पर विजय प्राप्त करके राइन से बिसचूला तक विस्तृत था, जो यूरेशियाई खानाबदोशो के हगेरियन अग्रिम गारद (एडवास गार्ड) को हराकर आल्प्स से कारपेथियन तक फैला और जो भूमध्यसागर के बेसिन के कोने-कोने मे जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य से नील के तथा डान के मुहाने तक विस्तृत था और अल्पकालीन विजय तथा व्यापारिक विस्तार की पताका फहराता रहा, जिसका उन्होने 'द क्रूसेड' का सरल नाप रखा था। इन सबके सम्बन्ध में हम सहमत होगे कि प्राचीन यूनानी सागरी विस्तार के समान इन भौगोलिक विस्तारो के साथ अथवा उसके बाद सभ्यता की वास्तविक उन्नति नही रुकी। किन्तु जब हम इस युग मे इस विश्वव्यापी विस्तार की ओर ध्यान देते है तब हमे रुकना पडता है और हम आश्चर्य मे पड जाते है। इस प्रश्न का उत्तर, हमारी पीढी मे कोई बुद्धिमान् मनुष्य सन्तोषजनक नही दे सकता।

अब हम अपने विषय के दूसरे विभाजन को देखेगे कि यदि भौतिक परिस्थिति पर उन्नत तकनीको द्वारा क्रमश. विजय प्राप्त की जाय तो क्या सभ्यता के विकास का वास्तविक मापदण्ड मिलता है ? क्या तकनीक की उन्नति मे तथा सामाजिक उन्नति और विकास मे कोई सम्बन्ध है ?

अद्यतन पुरातत्त्वविदों ने जो वर्गीकरण किया है उससे इस प्रकार का सम्बन्ध सिद्ध मान लिया जाता है। यह मान लिया जाता है कि क्रमश. प्रत्येक व्यवस्था मे तकनीकी उन्नति सभ्यता के विकास की सूचक है। इम विचारधारा मे मानवी उन्नति का 'युगो' का क्रम वताया गया है और उनका तकनीकी नाम भी रखा गया है। पुरापाषाणिक युग (पेलिओलिथिक एज) नव-पाषाण युग (नियोलिथिक एज), ताम्र-पाषाण-युग (कालकोलिथिक एज), ताम्र-युग, कास्य-युग, लौह-युग और इसमे हम यन्त्र-युग जोड़ सकते है जिसमे रहने का हमे सौभाग्य प्राप्त है। यद्यपि इस वर्गीकरण का बहुत प्रचलन है, हमें ध्यान से इस बात की परीक्षा करनी होगी कि क्या यह सत्य है कि प्रत्येक युग सभ्यता के विकास की अवस्था का द्योतक है। आनुभविक परीक्षा के बिना ही अनेक कारणो से प्रागनुभव (आ प्रायोरो) से हम कह सकते है कि इसमे सन्देह है।

सन्देह का पहला कारण उसकी लोकप्रियता है क्योकि वह ऐसे समाज की ओर हमारे विचारो को ले जाता जिसके सम्बन्ध मे आधुनिक तकनीकी सफलताओ के कारण हमे मोह हो गया है और इस कारण एक धारणा बन गयी है। यह लोकप्रियता उस तथ्य का उदाहरण है, जिसका जिक्र हमने अपने अध्ययन के पहले अध्याय मे किया था कि प्रत्येक पीढी प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध मे जो धारणा बनाती है वह उसके अपने अल्पकालिक विचारो की व्यवस्था के अनुसार होती है।

इस तकनीकी वर्गीकरण को सन्देह से देखने का एक दूसरा कारण यह है कि यह उस प्रवृत्ति का भी स्पष्ट उदाहरण है कि विद्यार्थी उस सामग्री पर ही निर्भर हो जाता है जो संयोग से उसके हाथो पड़ जाती है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह सयोग मात्र है कि 'प्रागैतिहासिक' मानव जिन यन्त्रो

का प्रयोग करता था वे आज प्राप्य हों और उसकी मनोवैज्ञानिक कलाएँ उसके विचार और उसकी संस्थाएँ नष्ट हो गयी हों। वास्तविक बात तो यह है कि जब मानसिक क्रियाएँ काम करती रहती हैं तब मनुष्य के जीवन में भौतिक साधनो से अधिक उनका योगदान होता है। प्रयोग मे लायी हुई भौतिक वस्तुओ का अवशिष्ट रह जाता है और मानसिक धारणाओ के प्रयोग का चिह्न नही रह जाता और पुरातत्त्ववेत्ता मनुष्य उन अवशिष्ट चिह्नो का प्रयोग करता है और उससे मानव इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो पुरातत्त्ववेत्ता मनुष्य (होमो सेपियन्स) को केवल निर्माता के रूप मे ही देखता है। हम प्रमाणो का अध्ययन करेगे तो उस समय के तकनीकी विकास के उदाहरण पायेगे जब सभ्यता स्थिर थी या अवनति की ओर जा रही थी और हमे इसके विपरीत भी उदाहरण मिलेंगे जब तकनीकी विकास स्थिर रहता है और सभ्यता की उन्नति होती है या अवनति।

उदाहरण के लिए सभी अविकसित सभ्यताओं ने उच्च तकनीकी उन्नति की है। पोलिनेशियाइयो ने नौ-चालन मे विशिष्टता प्राप्त की, एसकिमो ने मछुआ बनने मे, स्पार्टनो ने सैनिकता मे, खानाबदोशो ने घोडो को वश करने मे, और उसमानलियो ने मनुष्यो को साधने मे। ये सभी उदाहरण ऐसे है जहाँ सभ्यता तो अविकसित रह गयी और तकनीक उन्नत हुई।

एक उदाहरण उस सभ्यता का जिसका विकास अवरुद्ध हो गया और तकनीक विकसित हुई यूरोप के अपर पुरा-पाषाणिक युग और निचले नव पाषाण-युग की तुलना करने से प्राप्त होता है। क्योकि वह पहले का उत्तराधिकारी है। अपर-पुरापाषाणिक युग वालो को अनगढ यन्त्रो से ही सन्तोष हो गया था। किन्तु उनमे कलात्मक आत्मबोध था और उन्होने उसकी अभिव्यक्ति चित्रो मे की थी। पुरा-पाषाणिक युग वालो ने, जो गुफाओ की दीवारो पर कोयले से पशुओ के चित्र बनाये है, उन्हे देखकर आश्चर्य होता है। निचले नव पाषाण-युग के समाज ने अपने अस्त्र-शस्त्रों को माँज और घिसकर बहुत तीव्र बनाया और पुरा-पाषाणिक युग के मानव के विरुद्ध उसका प्रयोग किया जिसमे वह चित्रकार मानव-पराजित हो गया और वह निर्माता मानव (हामो फेबर) विजयी हुआ। इस परिवर्तन से स्पष्ट है कि तकनीकी विकास तो हुआ किन्तु सभ्यता अवनत ही रही, क्योकि अपर-पुरापाषाणिक मानव की कला लुप्त हो गयी।

और भी। माया सभ्यता तकनीकी दृष्टि से प्रस्तर-युग से आगे नही बढी, जब मेक्सिको और यूकेटी सभ्यताओ ने स्पेनी विजय के पाँच सौ साल पहले विभिन्न धातुओ के प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर ली थी। किन्तु इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है कि माया समाज की सम्पन्नता इन दोनो समाजों की सभ्यताओं से जो केवल दूसरी श्रेणी की थी, कही अधिक विकसित थी।

अन्तिम हेलेनी इतिहासकार सिसेरिया का प्रोकोपियस सम्राट् जसटीनियन के उन युद्धो के इतिहास की भूमिका मे, जिन युद्धो के कारण हेलेनी समाज का विनाश आरम्भ हुआ, लिखता है कि मेरे नायक का जीवन उसके पूर्वजो से अधिक मनोरजक है क्योकि उसके युग की सैनिक तकनीक इसके पहले के युग के किसी भी सैनिक तकनीक से अच्छी थी। वास्तव मे यदि हेलेनी इतिहास की और बातो से उनके सैनिक तकनीक को अलग कर दे तो आरम्भ से अन्त तक, सभ्यता के विकास से अवनति तक भी, हम तकनीक की उन्नति ही पायेगे और हम यह भी देखेंगे कि तकनीक की उन्नति का हर कदम सभ्यता के लिए भयावह सिद्ध हुआ है।

पहले स्पार्टी व्यूह को लीजिए। पहली महत्त्वपूर्ण हेलेनी उन्नति, जिसका वर्णन मिलता है, वह है दूसरा स्पार्टी-मेसेनियाई युद्ध जिसके परिणामस्वरूप स्पार्टा की सभ्यता असमय ही रुक गयी, दूसरा विशेष सुधार था हेलेनी पैदल सेना को दो उग्र भागो में विभाजित करना, एक मैसेडोनियाई जत्था और दूसरी एथेनी हलकी पैदल सेना। मैसेडोनियाई जत्था एकहरे भालो के बजाय दोनों हाथों में दो भालो से लैस था। यह अपने पहले के स्पार्टी सेना से आक्रमण मे अधिक भीषण था किन्तु साथ ही साथ बोझिल भी था और यदि एक बार पंक्ति बिगड गयी तो पराजित होने की अधिक सम्भावना थी। यह युद्ध क्षेत्र मे तभी जा सकता था जब इसके पार्श्व मे रक्षा के लिए पेल्टास्ट रहती थी, जो विशेष प्रकार की हलकी पैदल सेना (लाइट इन्फैंट्री) थी जिसे साधारण सेना से अलग निकाल कर विशेष ढग से छुट-पुट मुठभेड़ के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। यह दूसरा सुधार सौ वर्षों के घमासान युद्ध का परिणाम था जो एथेनो-पेलोपोनेशियाई संग्रामो से आरम्भ हुआ और किरोनिया मे (४३१–३३८ ई० पू०) थीबनो तथा एथीनियनो पर विजय प्राप्त करके समाप्त हुआ। हेलेनी सभ्यता का पहला पतन यह था। दूसरा महत्त्व का सुधार रोमनो ने किया था जब उन्होने अपनी सेना मे हल्की पैदल सेना तथा व्यूह के गुणो को ग्रहण कर लिया और उनके दोषो से सावधान हो गये। इस सेना के सैनिक के पास दो फेकने वाले भाले और एक तलवार रहती थी। रणक्षेत्र मे ये दो तरगो के रूप मे आक्रमण करते थे और तीसरी तरग पुराने व्यूह के ढग पर सज्जित रिजर्व मे रहती थी। यह तीसरा सुधार उस नवीन भयकर युद्ध का परिणाम था जो २२० ई० पू० मे हेनिबली लड़ाइयो से आरम्भ हुआ और १६८ ई० पू० में तीसरे रोमानो-मैसेडोनियाई सग्राम से समाप्त हुआ। चौथा तथा अन्तिम सुधार रोमन सैन्य दल में मैरियस ने आरम्भ किया और सीज़र ने पूर्ण किया। यह एक शती के रोमन विप्लवो और घरेलू युद्धो का परिणाम था और जिसका अन्त रोमन साम्राज्य के रूप मे हेलेनी सार्वभौम राज्य था। जसटीनियन का कवच सैनिक, जो अस्त्र सज्जित घोड़े पर अस्त्रो से सज्जित सवार के रूप में था और जिसे प्रोकोपियस पाठको के सम्मुख हेलेनी सैनिक तकनीक के विशेष सैनिक के रूप में बताता है, हेलेनी सैनिक विकास की श्रेणी मे कोई नयी वस्तु नही है। यह कवच-सैनिक हेलेनी समाज के पतनोन्मुख पीढ़ी द्वारा ईरानी समकालीन विरोधियो का रूपान्तर था। इन ईरानी सैनिको की शक्ति की जानकारी रोम को तब हुई जब उन्होने ५५ ई० पू० मे कर्हा मे क्रैसस को हराया था।

युद्ध की कला ही केवल वह तकनीक नही है जो समाज की सभ्यता से विपरीत चलती है। आइए, हम ऐसी कला को ले जो युद्ध की कला से बहुत दूर है। खेती की तकनीक शान्ति के समय की सर्वोच्च कला कही जाती है। यदि हम हेलेनी इतिहास को देखे तो पता चलेगा कि इस कला की उन्नति के साथ-साथ सभ्यता का ह्रास होता रहा है।

आरम्भ में ही हमे दूसरी कथा मिलती है। हेलेनी युद्ध कला का पहला सुधार उस समुदाय के विकास को अवरुद्ध करके हुआ जिस समाज ने उसका आविष्कार किया था। उसके साथ हेलेनी कृषि में जो उन्नति हुई वह सुखदायी थी। जब सोलन की सलाह पर अटिका ने मिश्रित कृषि की व्यवस्था बन्द कर निर्यात के लिए विशिष्ट खेती आरम्भ की, तकनीकी उन्नति हुई और साथ-साथ एटिकी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सजीवता और शक्ति का आरम्भ हो गया। किन्तु इस कहानी का दूसरा अध्याय दुखदायी है। इस तकनीक का दूसरा कदम यह हुआ कि दासों के

श्रम के बलपर अधिक मात्रा में उत्पादन होने लगा। यह कार्य पहले सिसिली के उपनिवेशिक समुदायों में आरम्भ हुआ और सम्भवतः पहले-पहल एग्रिजेन्टम में। क्योंकि सिसिली वाले यूनानियों को निकट के बर्बर प्रदेशों मे शराब और तेल का बढ़ता हुआ बाजार मिला। यहाँ तकनीकी प्रगति के साथ भयंकर सामाजिक बुराई उपस्थित हो गयी। क्योंकि नयी खेती वाली दासता प्रथा घरवाली दासता प्रथा से अधिक दोषपूर्ण थी। नैतिक दृष्टि से तथा संख्या की भी दृष्टि से यह दोष बड़ा था। व्यक्तित्वहीन और अमानुषिक तो था ही, बहुत बड़ी मात्रा मे भी था। फैलते-फैलते यह सिसिली के यूनानी समुदाय से दक्षिणी इटली के बहुत बड़े क्षेत्र तक मे फैल गया। यह क्षेत्र हेनिबली युद्ध के कारण उजाड और परित्यक्त हो गया था। जहाँ-जहाँ यह प्रथा फैली धरती की उपज जो इसने बढ़ायी जिससे पूँजी वालों को लाभ हुआ, किन्तु धरती सामाजिक दृष्टि से बजर हो गयी। क्योंकि जहाँ-जहाँ दास खेती करने लगे किसानो को उन्होने निकाल बाहर किया और उन्हे कगाल बना दिया जिस प्रकार खोटा सिक्का खरे सिक्के को बाजार से बाहर कर देता है। इसका सामाजिक परिणाम यह हुआ कि गाँव निर्जन हो गये और नगरो मे परोपजीवी जनता का जन्म हुआ विशेषत रोम मे। ग्राची से लेकर उसके बाद तक के कितने ही सुधारको ने रोमन संसार को इस दोष से मुक्त करना चाहा जो कृषि की तकनीकी प्रगति के कारण आ गया था किन्तु असफल रहे। कृषि-दासता की प्रथा तब तक रही जब मुद्रा की आर्थिक व्यवस्था के बैठ जाने से वह अपने से नष्ट हो गयी। क्योंकि इसी मुद्रा पर उसका लाभ निर्भर था। यह आर्थिक विनाश उस साधारण सामाजिक विध्वस का एक अग था जो ईसा की तीसरी शती के बाद आरम्भ हुआ। और विध्वंस एक अंश मे उसी कृषि सम्बन्धी रोग का परिणाम था जो उसके पूर्व चार सौ सालो से रोमन समाज के शरीर को खाये चला जा रहा था। इस प्रकार इस सामाजिक कैंसर का अन्त उस समय हुआ जब वह शरीर समाप्त हो गया जिसमे कैंसर उत्पन्न हुआ था।

इंग्लैंड मे सूती कपड़ो के बनाने की तकनीक में जो उन्नति हुई उसके कारण अमरीकी सघ मे रुई वाले प्रदेशों में दासों की प्रथा का भी विकास हुआ। यह भी पहले ही समान उदाहरण है। अमरीकी गृह-युद्ध ने जहाँ तक दासो की बात थी उस कैंसर को तो समाप्त किया किन्तु उससे वह दोष दूर नहीं हो सका जो स्वतन्त्र हुए नेग्रो के उस अमरीकी समाज के बीच आ जाने के कारण उत्पन्न हो गया था, जो यूरोपीय वंशज थे।

तकनीकी उन्नति और सभ्यता की प्रगति का सह-सम्बन्ध (को-रिलेशन) नही रहा है। यह बात उन सब उदाहरणों से स्पष्ट है जहाँ तकनीक की तो उन्नति हो गयी किन्तु सभ्यता स्थिर रही या पुरोगामी हो गयी। यही बात उन अवस्थाओं मे भी हुई जहाँ तकनीक तो स्थिर रही और सभ्यता या तो विकसित होती रही या पीछे जाती रही।

उदाहरण के लिए यूरोप में अन्तिम तथा अपर पुरापाषाणिक युग मे मानव ने अच्छी प्रगति की।

"अपर-पुरापाषाणिक युग की संस्कृति चौथे हिमनदीय (ग्लेशियल) काल के अन्त में सम्बन्धित है। नानडरताल (नियानडरताल) मानव के अवशेष के स्थान पर हमें विभिन्न प्रकार के अवशेष मिलते हैं जिनसे नानडरताल मानव से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत वे लगभग आधुनिक मानव के निकट दिखाई पड़ते हैं। जब हम यूरोप के इस युग के जीवाश्मों (फासिल) को देखते

है तब एकाएक हमें ऐसा जान पड़ता है कि जहाँ तक शारीरिक रचना का सम्बन्ध है हम आधुनिक मानव को देख रहे है ।"[१]

पुरापाषाणिक युग के मध्य मानव के प्रकार का इस ढग से परिवर्तन ऐसी घटना है जो मानवता के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि उस काल में उप-मानव मानव के रूप मे बदल रहा था और उप-मानव के मानव के रूप में बदलने से आज तक इतना समय बीत गया फिर भी मानव अतिमानव (सुपरमैन) नही बन सका । इस तुलना से हमे उस मानसिक प्रगति के परिणाम का पता चलता है जब नानडरताल मानव उन्नत करके आधुनिक मानव बन गया । परन्तु इस मानसिक क्रान्ति के साथ कोई तकनीकी क्रान्ति नही हुई । इस प्रकार तकनीकी वर्गीकरण के अनुसार अपर-पुरापाषाणिक युग की गुफाओं के जिन चित्रो की हम प्रशसा करते हैं उन्हे हम भ्रमवश लुप्त कडी (मिसिंग लिंक) की बनायी समझते है जबकि वास्तव मे, बुद्धि, आकार तथा मानवता के सभी विशेष लक्षणो से हम यह कह सकते हैं कि श्रेष्ठ पुरापाषाणयुगीन मानव में और निचले पुरा-पाषाणयुगीन मानव मे उतना ही अन्तर है जितना उसमे और हमारे यान्त्रिक मानव मे ।

इन उदाहरणो के, जिनमे तकनीक स्थिर रही है और समाज प्रगतिशील रहा है, विपरीत भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ तकनीक स्थिर रही है और समाज का पतन हुआ है । उदाहरण के लिए लोहे के प्रयोग की तकनीक जिसे एजियाई समार ने पहले पहल उस समय आरम्भ किया था जब महान् सामाजिक पतन हो रहा था और मिनोई समाज का विघटन हो रहा था, स्थिर रही, न उन्नति हो रही थी न अवनति, और हेलेनी समाज अपने पूर्ववर्ती मिनोई समाज की भाँति विघटित हो रहा था । हमारे पश्चिमी समाज ने लोहे के प्रयोग की तकनीक रोमन ससार से बिना किसी त्रुटि के पाया था । लैटिन वर्णमाला और यूनानी गणित भी इसी प्रकार वही से मिला था । किन्तु सामाजिक विप्लव हो गया था । हेलेनी समाज छिन्न-भिन्न हो गया और एक अन्त काल उपस्थित हुआ जिससे अन्त मे पश्चिमी सभ्यता का जन्म हुआ । किन्तु इन तीनो तकनीकों मे किसी प्रकार का व्यवधान नही उपस्थित हुआ ।

(२) आत्म-निर्णय की ओर प्रगति

भौगोलिक विस्तार की भाँति ही तकनीकी प्रगति से हमको ऐसा सिद्धान्त नही मिला जिससे हम सभ्यताओ के विकास का मापदण्ड बना सके, किन्तु उससे एक सिद्धान्त मिलता है जिसके अनुसार तकनीकी उन्नति होती है उसे हम उत्तरोत्तर सरलता का नियम कह सकते है । भारी भरकम भाप के इजन और विस्तृत 'रेल पथ' के स्थान पर सुविधाजनक अन्तदर्हन इजन (इटरनल कम्बस्चन इजन) आ गये जो सडको पर रेलगाडी की गति से चलते हैं और उसी स्वतन्त्रता से चलते जैसे कोई पैदल चलता है । तार की जगह बेतार से समाचार जाने लगे । चीनी और मिस्री जटिल लिपि के स्थान पर स्पष्ट और सरल लैटिन लिपि आ गयी । भाषा में भी इसी प्रकार सरलता की ओर झुकाव है । विभक्तिमय रूप को छोड़कर सहायक शब्दो का प्रयोग होने लगा है जैसा इडो यूरोपीय परिवार की भाषाओ के इतिहास से ज्ञात होता है । इस परिवार की प्राचीन-

१. ए० एम० कार—सांडर्स : द पापुलेशन प्राबलेम, पृ० ११६–१७ ।

तम भाषा संस्कृत में विभक्तियों की भरमार है। और उपसर्गों की कमी है। इसके विपरीत आधुनिक अंग्रेजी में विभक्तियाँ सब हटा दी गयी हैं उनका स्थान प्रिपोजिशनो ने और सहायक क्रियाओं ने ले लिया है। इन दोनों छोरो के बीच क्लासिकी यूनानी भाषा है। आधुनिक पश्चिमी संसार में वेशभूषा भी सरल हो गयी है। एलिजाबेथी काल के बर्बर उलझावपूर्ण कपडो के स्थान पर आज सीधी-सादी वेशभूषा हो गयी है। ज्योतिष आज टोलमी के सिद्धान्तो के स्थान पर कोपरनिक्स का सिद्धान्त मानता है जिसके अनुसार आकाश के नक्षत्रो की गणना उचित, वैज्ञानिक और समझ मे आने वाले ढंग पर होती है।

इन परिवर्तनों के लिए सरलता शब्द का प्रयोग कदाचित् यथार्थ न होगा, कम से कम उचित नही है। सरलता मे नकारात्मक ध्वनि है और यह भाव है कि किसी वस्तु मे कोई कमी कर दी गयी है या कोई चीज हटा दी गयी है। किन्तु जिन बातों का वर्णन ऊपर किया गया है उनमें कुछ कमी नही हुई है बल्कि व्यावहारिक कुशलता बढी है अथवा कलात्मक सन्तोष की वृद्धि हुई है या बौद्धिक क्षमता बढ़ी है, जिसका परिणाम हानि नही लाभ है। यह लाभ सरलता की एक प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रक्रिया द्वारा ऐसी शक्तियाँ निकल पडती जो भौतिक माध्यम मे बँधी रहती हैं और स्वतन्त्र होकर अधिक शक्ति से मानसिक रूप मे प्रकट होती हैं और प्रयोग मे आती है। इससे उपकरण मे सरलता ही नही आती, शक्ति स्थानान्तरित होती है और कार्य की प्रणाली निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर गतिशील होती है। इस प्रक्रिया को यदि हम सरलता न कहकर 'अलौकिकीकरण' (एथीरियलाइजेशन) कहे तो अधिक उपयुक्त होगा।

भौतिक प्रकृति पर मनुष्य ने जो नियन्त्रण प्राप्त किया है उस विकास को एक आधुनिक मानव-विज्ञान वेत्ता ने बड़े काल्पनिक रूप मे यो वर्णन किया है :

"हम लोग धरती छोड़ रहे है, हमारा सम्पर्क छूट रहा है, हमारे रास्ते अस्पष्ट हो रहे है। चकमक पत्थर (फ्लिट) शाश्वत है, ताँबा एक सभ्यता तक रहता है, लोहा कई पीढियो तक और इस्पात एक मनुष्य के जीवन तक। जब गति का युग समाप्त हो जायगा तब कौन लदन-पीकिंग हवाई रास्ते का नकशा बना पायेगा या आज भी ईथर के माध्यम से जो समाचार भेजे जाते है या सुने जाते हैं उसका पथ क्या है कोई बता सकता है? किन्तु समाप्त आइसेनी राज्य की सीमा आज भी ईस्ट एंगलिया की दक्षिणी सीमा पर वर्तमान है, जो सुखाये दलदल और काटे गये जंगल में बनी थी।"[१]

हमारे उदाहरण से यह सकेत मिलता है कि उन्नति की जिस कसौटी की खोज में हम हैं और जिसे हम बाह्य वातावरण पर विजय मे नही पा सके चाहे वह मानवी हो अथवा भौतिक, वह हमें वहाँ मिलती है जहाँ तीव्रता (एम्फेसिस) मे क्रमश. परिवर्तन होता है और कार्य एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे बदलता रहता है। इसमें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे चुनौती और उसका सामना होता रहता है। इस प्रकार के क्षेत्र में चुनौती बाहर से नही आती, अन्दर से ही प्रकट होती है और जो चुनौती पर विजय होती है वह किसी बाहरी शक्ति अथवा बैरी पर

१. जोल्ड हर्ड : दि असेंट आव ह्युमैनिटी, पृ० २७७-८

नहीं । यह विजय आत्म-निर्णय, आत्माभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होती है । जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी एक समाज को चुनौतियों का सामना करते हुए देखते हैं और हम यह जानना चाहते हैं कि जिस क्रम से चुनौती और सामना हो रहा है उसमे उन्नति हो रही है कि नही तो हमें ठीक उत्तर तब मिल जायगा जब हम देखेगे कि प्रतिभा पहले ढंग की है कि दूसरे ।

यह सचाई इतिहास के उन वर्णनो से स्पष्ट हो जाती है जो अथ से इति तक इसी प्रकार बताये जाते है कि उन्नति बाहरी परिस्थितियो पर विजय के कारण होती है । इसी प्रकार के दो महान् इतिहासकारों के वर्णनो के उदाहरण हम प्रस्तुत करते है । दोनों के लेखक प्रतिभाशाली व्यक्ति है । एक पुस्तक है एम० एडमंड डिमोलिन्स की 'कमेट ला रूटे क्री ले टाइप सोशल' और दूसरी है एच० जी० वेल्स की 'आउट लाइन आव हिस्ट्री' ।

एम० डिमोलिन्स ने अपनी पुस्तक की भूमिका मे वातावरण के सिद्धान्त को बहुत स्पष्ट शब्दों में अंकित किया है : 'पृथ्वी पर अगणित प्रकार के लोग रहते हैं, क्या कारण है कि इतने प्रकार के लोग हो गये ? पहला और प्रमुख कारण प्रजातियों के इतने भेदो का यह है कि ये विभिन्न रास्तो से आये-गये । विभिन्न मार्गों के कारण ही विभिन्न प्रजातियाँ तथा सामाजिक प्रकार के लोग हो गये ।'

लेखक के इस विचार से प्रभावित होकर जब हम यह पुस्तक पढ़ते हैं तब यह जान पडता है कि उसके विचार वहाँ तक बहुत ठीक मिलते है जहाँ तक उसके उदाहरण आदिम समाज से लिये गये हैं । इन उदाहरणों से यह समझ में आता है कि बाहरी चुनौती का सामना करने से इन समाजो ने पूर्णता प्राप्त की, किन्तु उनके विकास का इनसे पता नही चलता क्योकि अब ये समाज गतिहीन है । डिमोलिन्स महोदय अविकसित समाजों की स्थिति भी समझाने मे सफल हैं । किन्तु जब लेखक अपने सूत्र को पितृ-सत्तात्मक ग्राम्य समाज पर लगाता है तब पाठक को घबराहट होती है । कारथेज और वेनिस पर जो अध्याय लिखे हैं उन्हें पढने से ऐसा जान पडता है कि लेखक ने कुछ छोड दिया, यद्यपि वह यह नही कह सकता कि क्या छूट गया है । जब वह पाइथोगारस के दर्शन को इटली के दक्षिण के व्यापार-परिवहन पर स्थापित करना चाहता है तब हँसी रोकनी पड़ती है किन्तु 'प्लेटो के मार्ग' और 'अलबेनी और हेलेनी जाति' के अध्याय पर तो ठहर जाना पड़ता है । अलबेनी बर्बरता और हेलेनी सभ्यता को एक साथ रखना, क्योकि किसी समय दोनो के नेता अपने-अपने भौगोलिक लक्ष्य पर एक ही भू-प्रदेश की राह से पहुँचे, आश्चर्यजनक है । यह कहना कि वह महान् मानव घटना जिसे हम हेलेनीवाद कहते हैं बालकन पठार का केवल गौण उत्पादन था, हास्यास्पद है । इस दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय मे अपने ही विषय को लेखक गलत सिद्ध करके अपनी बात को असंगत बना देता है । जब कोई सभ्यता हेलेनी सभ्यता के स्तर तक उन्नति कर लेती है तब यह कहना कि उसका विकास केवल बाहरी परिस्थिति की चुनौती के कारण हुआ, हास्यास्पद है ।

जब वे आदिम सभ्यता के बजाय किसी परिपक्व सभ्यता पर विचार करते हैं वेल्स भी अपने विचारों को पुष्ट नहीं कर पाते । जब वह अपनी कल्पना से किसी अत्यन्त प्राचीन भू-वैज्ञानिक कल्प के किसी नाटकीय घटना को गढते लगते है तब वह पूर्णरूप से सफल होते है । उनकी कहानी कि किस प्रकार ये छोटे जन्तु (थेरियोमारफिस) अत्यन्त प्राचीन स्तनपायी जीव बच

रहे, जब बहुसंख्यक सरीसृप (रेपटाइल्स) धरती के अन्दर चले गये, उसी स्तर की है जिस स्तर की बाइबिल की डेविड और मोलियक की गाथा। जब ये छोटे जन्तु पुरापाषाणिक काल के शिकारी या यूरेशियाई खानाबदोश के रूप मे आ जाते है डिमोलिन्स के समान वेल्स फिर भी हमारी धारणा के अनुसार ही प्रकट होते हैं। किन्तु जब वह हमारी पश्चिमी सभ्यता की कथा कहते हैं और उस जन्तु का वर्णन करते है जो विलियम एवार्ड ग्लैडस्टन के रूप में आया तब उनकी बुद्धि विफल हो जाती है। वह असफल इसलिए होते है कि ज्यो-ज्यो उनकी कथा की गति बढ़ती है, वह अपनी आत्मिक भावना को महान् से इस सूक्ष्म की ओर नही ला सकते। यही असफलता 'द आउट लाइन आव हिस्ट्री' की कमी है, नही तो यह पुस्तक महान् बौद्धिक देन है।

वेल्स की असफलता इसी समस्या को सुलझाने मे, शेक्सपियर की सफलता से नापी जा सकती है। यदि हम अलौकिकता की दृष्टि से शेक्सपियर के पात्रो की विकासात्मक क्रम से सूची बनायें और यह स्मरण रखे कि नाटककार का कौशल यह है कि पात्रो की क्रियाशीलता द्वारा उनके चरित्र की अभिव्यक्ति हो, तो हम देखेगे कि जैसे-जैसे चरित्र के विकास की सीढी पर नीचे से ऊपर की ओर शेक्सपियर चलता है वह अपने पात्रों के कार्यक्षेत्र को इस प्रकार बदलता रहता है और अपने नायकों की भूमिका की इस प्रकार अभिव्यक्ति करता है कि मंच पर इस जगत् का अधिकाधिक समावेश होता है और विश्व को दूर रखता जाता है। यदि हम पाँचवे हेनरी से लेकर मैकबेथ का चरित्र देखते हुए हैमलेट की ओर चले तो यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। पाँचवे हेनरी के चरित्र का स्वरूप अपेक्षाकृत आदिम है और जो मानवी वातावरण उसके चारो ओर है उसी की चुनौती का सामना उसे करना पडता है। उसका सम्बन्ध अपने प्रिय साथियो से है, अपने पिता से है और अगिनकोर्ट के युद्ध के प्रति उसके साथी सैनिको से और राजकुमारी केट से उग्र रूप मे प्रेम याचना मे है। जब हम मैकबेथ के पास आते है तब कार्यक्षेत्र बदलने लगता है क्योकि मैकबेथ का सम्बन्ध मैलेकम से या मैकडफ से या अपनी पत्नी महारानी मैकबेथ से उतने ही महत्त्व का है जितना मैकबेथ का अपने से है। और अन्त मे जब हम हैमलेट की ओर आते है तब हम देखते है कि अखिल ब्रह्माण्ड की भावना प्राय. लुप्त होने लगती है। उसके पिता के हत्यारो से उसके सम्बन्ध मे, ओफीलिया से समाप्त प्रेम की भावना मे, उसके वयोवृद्ध परामर्शदाता होरेशियो मे यह देखा जाता है कि वह आन्तरिक संघर्ष से जूझ रहा है जो नायक की अपनी आत्मा के अन्दर ही काम कर रही है। हैमलेट मे कार्यक्षेत्र प्राय. पूर्ण रूप से अखिल ब्रह्मांड से मानवी जगत् मे आ गया है। शेक्सपियर की कला की इस महान् कृति में, जैसे ऐसकाइलस के 'प्रोमीथ्युज' अथवा ब्राउनिंग के नाटकीय एकपात्री संवादो में (मोनोलोग्ज) एक ही अभिनेता सारे मच पर अधिकार जमा लेता है यह इसलिए कि उसके व्यक्तित्व के अन्दर जो आत्मिक शक्तियाँ व्यक्त होने के लिए विवश हो रही हैं, उन्हें पूरा अवसर मिले।

कार्यक्षेत्र का यह परिवर्तन, जो हम शेक्सपियर के पात्रों मे पाते है जब हम क्रमश आत्मिक विकास में देखते हैं, हमे सभ्यताओं के इतिहास में भी मिलता है। यहाँ भी हम देखते है कि जब अनेक चुनौतियों के संघर्ष विकास के रूप में परिवर्तित होते है तब ज्यो-ज्यो विकास की प्रगति होती है, बराबर कार्यक्षेत्र बाहरी परिस्थिति से हटकर समाज की आन्तरिक परिस्थिति की ओर मुड जाती है।

उदाहरण के लिए, हमने देखा कि जब हमारे पश्चिम के पूर्वजों ने स्कैण्डिनेवियाई आक्रमण

पर विजय पायी, उसका एक कारण यह था कि उन्होने मानवी परिस्थिति पर शक्तिशाली सैनिक तथा सामाजिक सामन्ती प्रथा निर्माण करके विजय प्राप्त की । किन्तु पश्चिमी इतिहास में आगे चलकर जब सामंती प्रथा के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वर्ग उत्पन्न हो गये तब उनके कारण अनेक प्रकार के तनाव और आघात होने लगे और समाज को उनका सामना करना पडा । पश्चिमी ईसाई जगत् को अभी वाइकिंगो को पराजित करके पर्याप्त अवकाश भी नही मिला था कि उन्हे सामन्ती प्रथा के विभिन्न वर्गों को हटाकर स्वतन्त्र राज्य और नागरिकों का नये रूप से सम्बन्ध स्थापित करना पडा । इन दोनों चुनौतियों के परिवर्तन से स्पष्ट है कि बाहरी परिस्थिति से हटकर कार्यक्षेत्र आन्तरिक हो गया ।

यही बात हम इतिहास की दूसरी घटनाओं मे देख सकते हैं जिन्हे हमने दूसरे सदर्भों मे वर्णन किया है । उदाहरण के लिए, हमने देखा कि हेलेनी इतिहास मे सारी प्रारम्भिक चुनौतियाँ बाहरी थीं । यूनान मे पठारों के बर्बरों की चुनौती, तथा जनसंख्या की चुनौती का सामना उन्होने समुद्र पार साम्राज्य का विस्तार करके किया । जिसके परिणामस्वरूप उन्हें वहाँ के बर्बरो तथा प्रतिद्वंद्वी सभ्यता की चुनौती का सामना करना पडा और अन्त मे पाँचवी शती ई० पू० के पहले चतुर्थांश में एक साथ कारथेज और परशिया के आक्रमण का सामना करना पडा । इसके पश्चात् इस मानवी भीषण चुनौती पर विजय होने लगी जो चार शतियो तक चलती रही । जो सिकन्दर के विजय से आरम्भ हुई और रोम पर विजय करके समाप्त हुई । इन विजयो के कारण हेलेनी समाज को पाँच-छ सौ वर्षो की शान्ति मिली जिनके बीच कोई बाहरी महत्त्व की चुनौती का सामना नहीं करना पडा । किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि हेलेनी समाज बिलकुल चुनौतियो से विमुक्त रहा । इसके विपरीत जैसा हमने देखा है यह पतन का युग था अर्थात् इस काल मे उसे ऐसी चुनौतियो का सामना करना पडा जिसपर वह विजय नही पा सका । हमने देखा कि ये चुनौतियाँ किस प्रकार की थी, और यदि हम फिर उनपर विचार करे, तो देखेगे कि ये चुनौतियाँ आन्तरिक थी । ये पहली बहारी चुनौतियो के विजय की परिणाम थी । जिस प्रकार हमारे पश्चिमी समाज मे वाइकिंगो के आक्रमण के परिणाम मे सामन्तवाद की प्रथा हो जाने के कारण चुनौती उपस्थित हुई ।

उदाहरण के लिए परशियनो तथा कारथेजीनियनो के दबाव ने हेलेनी समाज को आत्मरक्षा के लिए दो शक्तिशाली सामाजिक तथा सैनिक साधनों को तैयार करने की स्फूर्ति प्रदान की । एक तो एथेनी नौ-सेना, और दूसरी साइराक्यूज़ी नृशंस सैनिक । इनके कारण दूसरी पीढ़ी मे हेलेनी समाज मे तनाव और दबाव आरम्भ हुआ और उसके फलस्वरूप एथेनी-पेलोपोनेशियाई युद्ध हुआ । साथ ही साइराक्यूज तथा उसकी बर्बर प्रजा और उसके यूनानी सहायकों के प्रति प्रतिक्रिया भी आरम्भ हुई । इन हलचलो के कारण हेलेनी समाज का प्रथम पतन हुआ ।

इसके बाद के हेलेनी इतिहास के अध्यायों में जिन सेनाओं ने सिकन्दर तथा और सेनापतियो के संचालन मे विदेशियो की सेना को पराजित किया था वे मैसेडोनियाई सेनापति तथा रोमन अधिनायक देश के भीतर ही घरेलू युद्ध करने लगे । इसी प्रकार पश्चिमी भूमध्यसागर के आधिपत्य के लिए हेलेनी तथा सीरियाई समाज में जो आर्थिक द्वंद्व चल रहा था वह सीरियाई प्रतिद्वंद्वी की पराजय के बाद अधिक उग्र संघर्ष मे फिर उपस्थित हुआ । इस बार पूर्वी कृषि-

दासों और उनके सिसिली तथा रोम के मालिकों मे । इसी प्रकार हेलेनी तथा पूर्वी सभ्यताओ का सांस्कृतिक संघर्ष—सीरियाई, और मिस्री और बैबिलोनी और भारतीय—हेलेनी समाज के भीतर ही आन्तरिक संकट के रूप में प्रकट हुआ । इस संकट से आइसिस की पूजा, ज्योतिष, सूर्य की पूजा, ईसाई धर्म तथा अनेक सम्मिलित धर्मों का आविर्भाव हुआ ।

पूरब और पश्चिम कोई युद्ध बन्द नही करता
मेरी छाती पर ये लोग मार्च कर रहे है ।[१]

आज तक के अपने पश्चिमी इतिहास मे भी यही प्रवृत्ति हम पाते हैं । प्रारम्भिक काल में मानवी परिस्थिति से चुनौती मिली । वह स्पेन मे अरबो मे आरम्भ हुई और फिर स्कैण्डिनेवियाइयो से और अन्त हुआ उसमानलियो की चुनौती से । उसके पश्चात् पश्चिमी विस्तार संसार भर मे व्यापक हुआ । और कम-से-कम कुछ काल के लिए इस विस्तार के कारण विदेशी मानवी समाजो की चुनौनियो से हम बच गये है ।[२-३]

उसमानली वश जब दूसरी बार वियना लेने मे असफल रहा उसके बाद पश्चिमी समाज पर जो बाहरी चुनौती मिली वह बोलशेविज्म की थी । पश्चिमी जगत् को यह चुनौती उस समय से है जबसे लेनिन तथा उसके साथियो ने सन् १९१७ मे रूस पर अपना आधिपत्य कर लिया । किन्तु यू० एम० एस० आर० की सीमा से बाहर पश्चिमी सभ्यता पर इसका बहुत अधिक प्रभाव नही पडा है । और यदि एक दिन ऐसा भी हो कि रूसी कम्युनिस्टों की यह आशा पूरी हो जाय कि विश्व भर मे साम्यवाद फैल जाय और पूँजीवाद पर वह विजय प्राप्त कर ले तो भी यह विदेशी सस्कृति की विजय नही होगी क्योकि इस्लाम के विपरीत साम्यवाद का स्रोत पश्चिम ही है । वह पूँजीवाद की प्रतिक्रिया मात्र है । बीसवी शती के रूस ने जो इस विदेशी पश्चिमी क्रान्तिकारी सिद्धान्त को अपनाया है उससे पश्चिमी सस्कृति को किसी प्रकार की आशका नही है । वास्तव मे इससे पता चलता है कि यह सस्कृति कितनी बलवती है ।

लेनिन के जीवन वृत्त से जो बोलशेविज्म प्रकट होता है उसमे गम्भीर अस्पष्टता है । पीटर महान् के कार्यों को वह पूरा करने आया कि नष्ट करने ? पीटर की सनकी राजधानी को फिर से केन्द्रीय स्थान मे ले जाकर लेनिन ने अपने को महान् पुजारी अवाकुम तथा पुराने धर्म के विश्वास करने वालो और स्लाव प्रेमियो का वशधर ही घोषित किया । हम यह सम्भवत अनुभव करे कि पवित्र रूस के एक पैगम्बर पश्चिमी सभ्यता के विरोध मे रूस की आत्मा की अभिव्यक्ति कर रहा है । किन्तु जब लेनिन सिद्धान्त बनाता है तब उसे पश्चिमी विचारो वाले जरमन यहूदी कार्ल-मार्क्स के पास जाना पडता है । यह सच है कि पश्चिमी समाज की प्रक्रिया को अस्वीकार करने

१. ए० ई० हाउसमैन : ए शापशायर लैड, २८ ।

२. यदि मिस्टर ट्वायनबी ने कुछ बाद में यह इतिहास लिखा होता तो एक अपवाद बनाते जापान की चुनौती के लिए ।—सम्पादक

३. और बाद में लिखा होता तो उन्हें उन बाहरी चुनौतियों का भी जिक्र करना पड़ता जो इंग्लैड को बाहर से मिलीं ।—अनुवादक

के लिए मार्क्सी सिद्धान्त सबसे निकट आता है। बीसवी शती में पश्चिमी कोई दूसरा सिद्धान्त रूस चुन नहीं सकता था। मार्क्सी सिद्धान्त का नकारात्मक तत्त्व ही रूसी क्रान्तिकार मन को रुचा, स्वीकारात्मक नही। और यही कारण है कि सन् १९१७ मे रूस में पश्चिमी पूँजीवाद के विदेशी तन्त्र को उसी प्रकार के पश्चिमी पूंजीवाद-विरोधी तन्त्र ने उलट दिया। जब हम उस परिवर्तन पर ध्यान देते है जो मार्क्सी दर्शन का रूस मे हो रहा है तब यह व्यवस्था स्पष्ट हो जाती है। वहाँ मार्क्सवाद को परम्परावादी ईसाई धर्म के स्थान पर भावात्मक तथा बौद्धिक विचार के रूप में स्थापित किया जा रहा है। मूसा के स्थान पर मार्क्स और मसीह के स्थान पर लेनिन स्थापित किये जा रहे है। उनके धर्मग्रन्थो के स्थान पर इन लोगों की रचनाएँ नवीन-नास्तिक युद्ध प्रिय धर्म में समाविष्ट हो रही हैं। किन्तु जब हम सैद्धान्तिक भावना से अलग होकर यह देखते है कि लेनिन तथा उसके उत्तराधिकारी रूसी जनता के लिए वास्तव मे क्या कर रहे है तब दूसरा रूप दिखाई पडता है।

जब हम यह प्रश्न करते है कि स्टालिन की पचवर्षीय योजना का क्या अभिप्राय था तब हम यही उत्तर दे सकते है कि इसका एक ही अर्थ था कृषि, व्यवसाय तथा परिवहन को यांत्रिक बना देना। किसानों की जाति को मिस्त्री (मैकानिक) बनाना। पुराने रूस को नया अमरीका बनाना। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि इस आधुनिक ढंग से तथा कठोरता से और बड़ी आकाक्षा के साथ रूस के पश्चिमीकरण की चेष्टा की जा रही है कि महान् पीटर का कार्य भी पीछे पड़ गया। रूस के वर्तमान शासक रूस मे इस पैशाचिक शक्ति से उसी सभ्यता की भाँति सफलता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे है जिसकी वे निन्दा करते है। निस्सन्देह वे एक ऐसे समाज के निर्माण की कल्पना कर रहे है जिसकी आत्मा रूसी हो और साज-सज्जा अमरीकी हो। यह उस राजनीतिज्ञ का विचित्र सपना है जिसका विश्वास इतिहास की भौतिक व्याख्या मे है। मार्क्सी सिद्धान्त पर हमें यही आशा करनी चाहिए कि यदि रूसी किसान अमरीकी मिस्त्री की भाँति रहता है तो मिस्त्री की ही भाँति वह विचार करने लगेगा, वैसी ही उसकी भावना होगी और वैसी ही उसकी इच्छाएँ होंगी। रूस की इस खीचा-खीची मे, जो लेनिन के आदर्शों और फोर्ड की प्रणाली में हो रहा है, हम यह देखेंगे कि सभ्यता पर पश्चिम विजय पा जायगा, चाहे यह बात विचित्र सी क्यो न लगे।

इसी प्रकार की असंगति गांधी के जीवन में भी है। जो अनजाने इसी प्रकार पूर्ण रूप से पश्चिमीकरण कर रहे है। इनका यह कार्य उनके सिद्धान्तों का व्यंग्य है। यह हिन्दू पैगम्बर उन तागो को तोडना चाहते है जिसके पश्चिमी जाल मे भारत फँसा हुआ है। वह प्रचार करते हैं 'अपने हाथों से भारतीय रूई को कातो और बुनो। पश्चिम की मिलो के कपडे मत पहनो। और भारत की धरती पर पश्चिमी ढंग की मिलें खडी करके इन विदेशी वस्त्रो को यहाँ से हटाने की चेष्टा मत करो।' गाधी के इस वास्तविक सन्देश को इसके देशवासी नही मानते। वे सन्त की भाँति उन्हें मानते है और उतना उनके निर्देश पर कार्य करते है जितना वह उन्हें पश्चिमीकरण में सहायक होता है और आज हम देखते हैं कि गाधी भारत की उन्नति पश्चिमी ढंग पर कर रहे है। वह ससदीय ढंग से स्वतन्त्र शासन स्थापित करना चाहते है जिसमे कानफरेसो, वोटों, और प्लेट-फार्मों, समाचार-पत्रों, तथा प्रचार के पश्चिमी तन्त्र अपनाये जा रहे हैं। इस आन्दोलन में वही उनकी बहुत सहायता कर रहे हैं जिन्होने उनके वास्तविक सिद्धान्त की असफलता की भरपूर

चेष्टा की। वे लोग जिन्होंने उद्योगवाद की तकनीक को भारत की धरती पर अच्छी तरह जमाया है।[१]

इसी प्रकार जब बाहरी चुनौतियों का परिवर्तन भीतरी चुनौतियो मे हुआ है, पश्चिमी सभ्यता ने भौतिक वातावरण पर विजय पायी है। तकनीकी क्षेत्र मे औद्योगिक क्रान्ति की जो तथाकथित विजय हुई उसके आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रो मे ऐसी असंख्य कुख्यात समस्याएँ खड़ी कर दी और वे ऐसी उलझी हुई है कि उनपर यहाँ विचार करना सम्भव नही। जरा पूर्व-यान्त्रिक सड़को का ध्यान कीजिए। इन पुरानी सड़को पर अनन्त प्रकार की प्राचीन ढग की गाड़ियों की भीड़ रहती है। ठेलागाड़ी, रिक्शा, बैलगाड़ी, ताँगा, बग्घी सब शारीरिक शक्ति से चलने वाली गाड़ियाँ उनपर चलती है, और कभी-कभी बाइसिकिल भी जो आने वाले युग का सकेत है। सड़को पर भीड़ बहुत होती है इसलिए भिडन्त भी होती है किन्तु उसकी चिन्ता कोई नही करता, क्योकि चोट-चपेट कम लगती है और रास्ता बन्द नही होता। क्योकि यदि धक्का लग भी जाय तो भयावह नही होता। उनकी गति धीमी होती है और जोर भी कम होता है। इन सड़को पर जो यातायात की समस्या है वह दुर्घटनाओ को रोकने की नही है। ये सड़के वैसी ही है जो पुराने काल मे थी इसलिए समस्या है कि यात्रा पूरी होगी कि नही। इसलिए न तो यातायात के कोई नियम है, न पुलिस वहाँ खड़ी रहती है, न रोशनियो का सकेत रहता है।

अब जरा आज की सडको को देखिए जिनपर यांत्रिक यातायात का गर्जन होता रहता है। इन सड़को पर गति और ढुलाई की समस्या नही रह गयी है। मोटर, ट्रके और लारियाँ लदी हुई दौडती चलती है। हाथी के प्रहार से भी अधिक उनमे जोर होता है। या स्पोर्ट की गाड़ियाँ जो गोली अथवा मधुमक्खी से तेज चलती है। किन्तु साथ ही साथ मुठभेड़ की समस्या अधिक बढ गयी है। इसलिए आज सडको की समस्या तकनीकी नही, मनोवैज्ञानिक है। पुरानी चुनौती भौतिक थी, दूरी की। वह बदल कर आज नयी चुनौती मानव-मानव के सम्बन्ध की है। चालक जो दूरी को मिटाते हैं उन्हे बराबर एक दूसरे का नाश करने का भय बना रहता है।

यातायात की इस समस्या का प्रतीकात्मक तथा स्पष्ट तात्पर्य है। एक तो यह उस परिवर्तन का स्वरूप बताता है जो आधुनिक पश्चिमी सामाजिक जीवन की विशेषता हो गयी है जब से युग की दो प्रबल शक्तियाँ इस जीवन मे आ गयी है—औद्योगिकता और लोकतन्त्र शासन। हमारे आधुनिक आविष्कर्ताओ ने भौतिक शक्ति को अनुशासित करने मे जो अद्वितीय उन्नति की है उससे करोड़ो मनुष्य सामूहिक कार्य करने लग गये है और हमारे समाज में भला या बुरा जो कुछ कार्य होता है बड़े धड़ल्ले से होता है। इसका भौतिक परिणाम और भौतिक उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। हो सकता है कि प्रत्येक युग में हरएक समाज मे ऐसे नैतिक विषय उत्पन्न हुए हो जिनसे समाज के भविष्य पर निर्णयात्मक प्रभाव पड़ा हो। चाहे जो भी हो, इसमे सन्देह नही कि हमारे समाज के सामने जो चुनौती उपस्थित है वह नैतिक है, भौतिक नही।

१. चरचिल ने कामन्स सभा में १० सितम्बर, १६४२ के भाषण में इस बात की ओर ध्यान दिलाया था। भारत में इसका जोरों से विरोध हुआ था।—सम्पादक। आज वही हो रहा है और गांधी के सिद्धान्तों के विपरीत औद्योगीकरण भारत का मूलमन्त्र है।—अनुवादक

"आज यांत्रिक उन्नति के सम्बन्ध मे हम विचारकों की भावनाएँ बदली हुई पाते है । प्रशंसा के साथ आलोचना होने लगी है, सन्तोष का स्थान सन्देह ने लिया है, और सन्देह का स्थान धीरे-धीरे भय ले रहा है । उलझन और कुण्ठा के भाव उत्पन्न हो गये है, जैसे किसी को बहुत दूर जाने पर पता चले कि मै गलत राह की ओर मुड़ गया हूँ । लौटना असम्भव है, किधर वह आगे चले ? यदि एक या दूसरा रास्ता पकडे तो वह कहाँ पहुँच जायगा ? प्रयुक्त यांत्रिकी (अपलाइड मैकेनिक्स) के एक पुराने समर्थक होने के नाते मुझे क्षमा किया जाय कि आज जब मै तटस्थ होकर आविष्कारों तथा अनुसन्धानो की बारात देख रहा हूँ तब मेरी भ्रान्ति दूर हो रही है । यह प्रश्न बिना पूछे रहा नही जा सकता कि यह सब जलूस हमे कहाँ ले जायगा ? आखिर इनका लक्ष्य क्या है ? मनुष्य की भावी पीढी पर इसका प्रभाव क्या पडेगा ?"

इन शब्दो से ऐसे प्रश्न उठते है जो हम सबके हृदय के भीतर मुखर होने के लिए बेकल रहते है । क्योकि ये बाते साधिकार कही गयी है । ब्रिटिश असोसिएशन फार दि एडवासमेन्ट आव सायस के अध्यक्ष ने उस ऐतिहासिक सस्था के एक सौ एकवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इन्हे कहा था।[1] उद्योगवाद और जनतन्त्र की नयी सामाजिक प्रेरणात्मक शक्ति पश्चिमी जगत् के सार्वजनिक (धार्मिक) समाज के सगठन मे व्यय होगी कि इस शक्ति से हमारा विनाश होगा ?

यही समस्या कुछ सरल ढग से पुराने मिस्र के शासको के सामने भी आयी थी । जब मिस्री नेताओं ने भौतिक चुनौती पर विजय पायी, जब उन्होंने निचली नील की घाटी के जल, मिट्टी और वनस्पति को मानव की आज्ञा के अधीन कर लिया, तब यह प्रश्न उठा कि मिस्र और मिस्रियो के शासक अपने इस महान् मानवी सगठन को किस प्रकार अपने अनुशासन मे कर सकेंगे । यह नैतिक चुनौती थी । जिस भौतिक तथा मानवी शक्ति को उन्होने अपने वश मे कर लिया था उससे अपनी प्रजा की अवस्था का सुधार कर सकेंगे ? क्या यह शक्ति प्रजा को क्या और आगे उस कल्याण की ओर ले जा सकेगी जिस ओर सम्राट् और उसके कुछ साथी ले जा चुके थे । क्या ये वही उदार कार्य करेंगे जो ऐसकाइलस नाटक मे प्रोमीथ्यूज ने किया अथवा जीयुस का नृशस कार्य करेंगे । हमे उत्तर मालूम है । इन्होंने पिरामिड बनाये और पिरामिडो ने इन नृशस शासकोको अमर कर दिया; अमर देवताओं के रूप मे नही, बल्कि गरीबो को पीसने वालो के रूप मे । उनकी कुख्याति मिस्री लोक-कथाओं मे प्रसारित हुई और अन्त मे हेरोडोट्स ने उन्हे अमर कर दिया । उन्होने अनुचित ढग चुना जिसके बदले मे उस सभ्यता को मृत्यु ने आ दबोचा जब वह चुनौती जिससे उन्हे प्रेरणा मिल रही थी बाहर से आन्तरिक क्षेत्र मे आ गयी थी । आज के संसार में हमारी भी परिस्थिति कुछ वैसी ही है । आज हमारी भी स्थिति कुछ वैसी ही है । आज उद्योगवाद की चुनौती तकनीकी क्षेत्र से नही, नैतिक क्षेत्र से आ रही है । इसका परिणाम अज्ञात है क्योकि नयी परिस्थिति के प्रति हमारी प्रतिक्रिया क्या होगी अभी निश्चित नही है ।

जो भी हो, हमने इस अध्याय मे जो तर्क उपस्थित किया है वह समाप्त है । हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि जब चुनौतियो की श्रृखला उपस्थित होती और एक चुनौती के परिणामस्वरूप दूसरी चुनौती आती जो उन्नति की ओर प्रेरित करती है, तब ज्यो-ज्यो श्रृंखला आगे बढती है,

१. सर आल्फ्रेड इंविंग : १ सितम्बर, १९३२ के 'द टाइम्स' से उद्धृत ।

बाहरी चुनौती के स्थान पर चाहे वह भौतिक हो अथवा मानवी, आन्तरिक चुनौती उपस्थित होती है जो उन्नतिशील सभ्यता की आत्मा होती है । इस प्रकार सभ्यता की ज्यों-ज्यों उन्नति होती है बाहरी चुनौती से कम लडना पड़ता है और आन्तरिक चुनौती से अधिक सग्राम करना पड़ता है । विकास का अर्थ यह है कि सभ्यता की उन्नति स्वय अपनी परिस्थिति बन जाती है, स्वयं ही आक्रामक बनती है और स्वयं ही अपना युद्धक्षेत्र बन जाती है । दूसरे शब्दो मे विकास का मापदण्ड आत्मनिर्णय की ओर प्रगति है । आत्मनिर्णय की ओर प्रगति उस चमत्कार को व्यक्त करने का नीरस-सा ढग है कि किस प्रकार जीवन का प्रवेश उस समाज मे होता है ।

११. विकास का विश्लेषण

(१) समाज और व्यक्ति

यदि हमारी विचारधारा यह रही है कि विकास का मापदण्ड आत्म-निर्णय है, और यदि हम समझते है कि आत्म-निर्णय का अभिप्राय है आत्माभिव्यक्ति, तो हम उस प्रक्रिया का विश्लेषण करे कि किस प्रकार क्रमश· सभ्यताओ द्वारा आत्माभिव्यक्ति हुई है तो सभ्यताओ के विकास को ठीक-ठीक समझ सकेगे । साधारणतः यह स्पष्ट है कि सभ्यताएँ विकास की प्रक्रिया में अपनी आत्माभिव्यक्ति उन व्यक्तियो के माध्यम से करती हैं जो 'उस समाज के हैं' अथवा 'जिनका वह समाज है ।' समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्ध को निरपेक्ष दृष्टि से दोनों मे से किसी सूत्र के अनुसार हम समझ सकते है, यद्यपि वे एक दूसरे के विरोधी है । इस भ्रम से यह जान पडता है कि दोनो सिद्धान्त पर्याप्त नही है, इसलिए इस जॉच के पहले हम इस पर विचार कर ले कि समाज और व्यक्ति में क्या सम्बन्ध है ।

समाज-विज्ञान का यह पुराना प्रश्न है और दो बँधे-बँधाये इसके उत्तर है । एक तो यह कि व्यक्ति ही मूल है जिसका अस्तित्व है, वही समझा जा सकता है और इन्ही व्यक्तियो की इकाई का समूह समाज है । दूसरा उत्तर यह है कि वास्तविक तो समाज है । समाज अपने मे पूर्ण है । व्यक्ति तो इस पूर्ण का केवल एक अंश है । समाज के बिना इस अश का कोई अस्तित्व नही हो सकता, न इसके सम्बन्ध मे कोई कल्पना हो सकती है ।

व्यक्ति की इकाई का क्लासिक चित्र होमर ने साइक्लोप्स के वर्णन मे खीचा है । अफलातून ने उसी भावना से इसे उद्धृत किया है जिस भावना से हम अब करना चाहते है .

> न तो उनकी कोई सभा है, न उनका कोई विधि-विधान है। पहाड़ो की चोटियों पर और माँदो मे वे रहते हैं ।
> जहाँ अपनी पत्नी तथा बाल-बच्चो के प्रति प्रत्येक अपने नियम के अनुसार व्यवहार करता है ।
> और अपने साथियों की बातों की तनिक भी परवाह नहीं करते ।[1]

स्पष्ट है कि इस प्रकार का, परमाणुओ से समाज जीवन, साधारण मानव का जीवन नही हो सकता । और कभी कोई मनुष्य साइल्कोप्स के समान जीवन नही व्यतीत करता था । क्योकि मनुष्य सामाजिक प्रणाली है । अप-मानव से मानवता के विकास के लिए सामाजिक जीवन आवश्यक है । इसके बिना विकास का कोई रूप स्थिर ही नही हो सकता था । तब दूसरे उत्तर का कि व्यक्ति केवल समाज का एक अग है क्या होगा ?

१. ओडेसी : नवीं पुस्तक, ११, ११२–१५ । अफलातून द्वारा लाज पुस्तक २, ६४० पृष्ठ में उद्धृत ।

"ऐसे सामाजिक प्राणी है जैसे मधुमक्खियाँ और चीटियाँ जिनमें व्यक्तियो में किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध सम्बन्ध नहीं है परन्तु सभी अपने लिए नही, सारे समाज के लिए कार्य करते है और यदि समाज से अलग हो जाते है तो उनकी मृत्यु हो जाती है ।

"मूँगे अथवा जल के और पोलिप ऐसी घनी बस्ती बना लेते हैं । उनमें प्रत्येक को अलग से निस्संकोच जीव कहा जा सकता है किन्तु एक दूसरे से वे इस प्रकार लगे रहते है कि सबके साथ मिलकर एक हो जाते हैं । इसमें व्यक्ति कौन रहा ?" औतिकी विज्ञान (हिस्टोलोजी) की कहानी सुनिए । उसके अनुसार सभी जन्तु, जिनमे मनुष्य भी सम्मिलित है, असंख्य इकाइयो से मिलकर बने है जिन्हें कोषाणु कहते हैं । इनमे से कुछ कोषाणु बहुत स्वतन्त्र होते है और हम यह समझने पर विवश होते है कि शरीर का उनसे उसी प्रकार का सम्बन्ध है जैसे मूँगे के पोलिपो की बस्ती में किसी इकाई का होता है, अथवा जिस प्रकार पूरी बस्ती में साइफोनोफोरा होता है । यह निष्कर्ष और भी पुष्ट हो जाता है जब हम यह देखते है कि असंख्य स्वतन्त्र जीव, प्रोटोजोआ, ऐसे है जो उन कोपाणुओं के समान है जिनसे मनुष्य का शरीर बना है । अन्तर केवल यह है कि मनुष्य के शरीर मे ये एक दूसरे से संयुक्त है और वे प्रोटोजोआ अलग स्वतन्त्र हैं ।

"एक प्रकार सारा जैव जगत् (आरगेनिक वर्ल्ड) एक महान् व्यक्ति है । यह ठीक है कि वह अस्पष्ट और उचित ढग से सम्बद्ध नहीं है फिर भी परस्पर निर्भर रहने वाला एक पूर्ण है । यदि कोई ऐसी दुर्घटना हो कि सारी हरी वनस्पति या सब जीवाणु (बैक्टीरिया) नष्ट हो जायँ तो ससार मे कोई जीवधारी रह नही सकता ।"[1]

जबकि प्रकृति के सम्बन्ध मे जो बाते कही गयी है वे मनुष्य के लिए भी ठीक उतरती है? क्या मनुष्य भी साइक्लोप्स की भाँति स्वतन्त्र होकर समाज के शरीर मे केवल एक कोषाणु है? या यह महान् जैविक जगत् केवल एक कोषाणु है ? हाब्स की पुस्तक 'लेवियाथान' के आरम्भ मे सामाजिक मनुष्य का शरीर अनेक अनेक्सोगोरियन तत्त्वों से बना है जिन्हे मनुष्य कहते हैं । मानो सामाजिक सविदा (सोशल कंट्रेक्ट) ने जादू से साइक्लाप्स को कोषाणु बना दिया । उन्नीसवी शती मे हरबर्ट स्पेसर और बीसवी में ऑस्वेल्ड स्पेग्लर ने मानव समाज को गम्भीरतापूर्वक शरीर माना है । दूसरे लेखक का कथन है—"किसी सभ्यता (कुल्टूर) का जन्म उस समय होता है जब स्थायी शैशवमानवता की आदिम मानसिक परिस्थिति मे कोई महान् आत्मा जाग्रत होती है और अपने को अलग कर लेती है । आकारहीन तत्त्वो से एक रूप गढ़ती है । सीमाहीन और स्थायी अवस्था से सीमित और प्रगतिशील जीवन को जन्म देती है । यह आत्मा उस देश की सीमित धरती पर प्रस्फुटित होती है और पौधे के समान उससे लगी रहती है । इसी के विपरीत सभ्यता का विनाश तब होता है जब इस आत्मा ने, जातियो, भाषा, धर्म, कला, विज्ञान तथा राज्य की सारी सम्भावनाओं की अनुभूति प्राप्त कर ली है और तब वह जिस आदिम मानव स्थिति से उत्पन्न हुई उसी में मिल जाती है ।"[2]

इस विचार की आलोचना एक अग्रेजी लेखक ने अपनी पुस्तक मे की है जो उसी साल

१. जे० एस० हक्सले : दि इंडिविजुअल इन दि एनिमल किंगडम, पृ० ३६–८ तथा १२५ ।

२. ओ० स्पेंग्लर : डर उनटरगेंग डेस एबडंलैंडेस, खण्ड १, १५–२२ संस्करण, पृ० १५३ ।

प्रकाशित हुई थी । 'समाज शास्त्र के सिद्धान्तवादियों ने अपने विषय की प्रणाली और शब्दावली के प्रयोग करने के बजाय बार-बार समाज के तथ्यो और मूल्यों को किसी-न-किसी विज्ञान या सिद्धान्त के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । भौतिक विज्ञान की समानता (एनोलोजी) के आधार पर समाज को उन्होने यन्त्र बताया, जीव-विज्ञान से तुलना करके उन्होंने उसे प्राणी प्रमाणित करने की चेष्टा की । दर्शन अथवा मनो-विज्ञान की समता दिखलाकर उन्होने समाज को व्यक्ति बनाने पर जोर दिया और कभी-कभी धार्मिक समानता से उन्होने इसे ईश्वर बनाने का भ्रम उत्पन्न किया ।''[१]

जैविक तथा मनोवैज्ञानिक समानता उतनी हानिकर नही है जब यह आदिम समाज अथवा अविकसित सभ्यताओं के साथ लागू की जाती है । किन्तु जहाँ सभ्यताएँ विकसित हो रही है उनके समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्ध की तुलना इनसे ठीक नही होती । ऐसी समानताओं को लाना ऐतिहासिक बुद्धि की दुर्बलता है अथवा गप्पबाजी है । इसका सकेत ऊपर किया जा चुका है । यह प्रवृत्ति कि 'ब्रिटेन', 'फ्रास', 'धर्मतन्त्र', 'द प्रेस', 'द टर्फ' को सजीव बनाना और सस्था के नाम से पुकारना और इन अमूर्त सस्थाओ को मानव मानना ठीक नही है । यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि समाज को जैविक या व्यक्ति का रूप देकर हम समाज और उसके व्यक्तिगत सदस्यो के सम्बन्ध को समझा नही सकते ।

तब मानव समाज और उसके व्यक्तियो के सम्बन्ध के बताने का कौन ढग उचित हो सकता है । सच्ची बात तो यह है कि मानव समाज मनुष्य के आपसी सम्बन्धो की सस्था है । मनुष्य केवल व्यक्ति नही है, सामाजिक प्राणी है । एक दूसरे से सम्बन्ध बिना वह जी नही सकता । हम कह सकते हैं कि समाज व्यक्तियो के सम्बन्ध का परिणाम है । इसकी उत्पत्ति इस कारण होती है कि एक व्यक्ति का कार्यक्षेत्र दूसरे व्यक्ति के कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित होता है । इस सम्बन्ध के कारण व्यक्तियो का कार्य समान हो जाता है और इसी समान क्षेत्र को हम समाज कहते हैं ।

यदि यह परिभाषा मान ली जाय तो इससे महत्त्वपूर्ण किन्तु स्पष्ट परिणाम निकलता है । समाज 'कार्यक्षेत्र' है किन्तु कार्य का स्रोत व्यक्ति है । इसी बात को बर्गसो ने जोरदार शब्दो मे कहा है : ''हम इतिहास मे 'अचेतन' तत्त्व पर विश्वास नही करते । बहुत-सी अज्ञान विचार-धाराएँ, जिसके सम्बन्ध में बडी चर्चा हुई है, इसलिए प्रवाहित होती है कि एक या अधिक मनुष्य ही अपने समुदाय को किसी एक ओर बहा ले गये हैं । यह कहना कि सामाजिक प्रगति अपने आप समाज के इतिहास के किसी काल मे किसी आत्मिक परिस्थिति के कारण होती है, बेकार है । जब समाज एक प्रयोग का निश्चय कर लेता है और इस कारण आगे कूदता है तब प्रगति होती है । इसका अर्थ यह है कि समाज को विश्वास हुआ होगा अथवा कम-से-कम वह आन्दोलन के लिए तैयार हुआ होगा । और यह आन्दोलन किसी व्यक्ति द्वारा किया गया होगा ।''[२]

ये व्यक्ति, जो समाजो मे जिनमे वे रहते हैं गतिशीलता उत्पन्न करते हैं उनमें साधारण मनुष्यो से कुछ अधिक क्षमता होती है । उनके कार्य ऐसे होते है जो साधारण मनुष्यों को चमत्कार लगते

१. जी० डी० एच० कोल : सोशल थियरी, पृ० १३ ।
२. एच० बर्गसों : लार्ड सोर्स डि ला मोराल एट डि ला रिलिजन, पृ० ३३३ तथा ३७३ ।

हैं क्योंकि वे सचमुच महामानव होते हैं, केवल आलंकारिक भाषा में नही । "मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनने के लिए जो कुछ भी आवश्यक था प्रकृति ने किया । जिस प्रकार प्रतिभाशाली मनुष्य साधारण मनुष्यों की बुद्धि के आगे चला जाता है, उसी प्रकार ऐसी विशिष्ट आत्मा समय-समय पर आती है जो समझती है कि हमारा सम्बन्ध विश्व भर की आत्माओ से है और अपने को अपने समुदाय के भीतर ही सीमित रखने के बजाय प्रेम की शक्ति से प्रेरित होकर सारे विश्व से अपनी बातें कहती है । इस प्रकार की प्रत्येक आत्मा ऐसी है मानो एक व्यक्ति में सारी जाति का समावेश है ।"[१]

इन अतिमानव आत्माओ के चरित्र को जो आदिम समाज के सामाजिक जीवन की शृंखला को छोड़कर नया सर्जन करते है व्यक्तित्व कहा जा सकता है । व्यक्तित्व के आन्तरिक विकास के परिणामस्वरूप ही नये निर्माण का कार्य होता है और इन्ही के द्वारा मानव समाज का विकास होता है । बर्गसो के अनुसार योगी (मिस्टिक) लोग ही अतिमानव व्यक्ति होते है, यही श्रेष्ठ सर्जन करते है और योग की रहस्यवादी अनुभूति के क्षणों मे सर्जनात्मक कार्यों का अंकुर फूटता है । उन्ही के शब्दो में इसका विश्लेषण सुनिए :—

"महान् योगियों (मिस्टिक) की आत्मा रहस्यवादी अनुभूति के सुखद क्षणो मे विराम नही कर लेती कि यात्रा की मंजिल पूरी हो गयी । अनुभूति के क्षण को विश्राम का समय समझना चाहिए । वैसा ही विश्राम जैसा स्टेशन पर रेलवे इंजन का होता है । जिसमे भाप का दबाव भरा रहता है और इसलिए रुकता है कि आगे तीव्र गति से चले । · · ·महान् योगियो के हृदय मे इसी प्रकार सत्य की शक्ति गतिशील होने के लिए निकलती है । उसकी इच्छा होती है कि ईश्वर की कृपा से मानव के सर्जन की क्रिया को पूर्ण करे · · योगी की शक्ति जिस ओर गतिशील होती है उसी ओर जीवन की शक्ति भी प्रवाहित होती है । यही शक्ति है जो पूर्ण रूप से विशिष्ट मनुष्यो को प्रेरित करती है और उनमे यह इच्छा उत्पन्न होती है कि सारे मानव समाज पर अपनी छाप अंकित कर दें । साथ ही एक ऐसी विरोधात्मक बात होती है जिसे वे जानते हैं । वह यह कि जो वस्तु स्वयं निर्मित हो वह निर्माण करने का प्रयत्न करे । जिसकी गति रुक गयी हो वह चलना आरम्भ करे ।"[२]

यह विरोध उस गतिशील सामाजिक जीवन की पहेली है जो रहस्यमय व्यक्तियो के प्रादुर्भाव के समय उपस्थित होती है । यह सर्जनकर्ता इस प्रकार प्रेरित होता है कि अपने साथियो को भी सर्जनशील बना देता है । वह अपने साथियो को भी अपनी ही भावना मे ढाल देता है । योगी पुरुष के सूक्ष्म जगत् में (उसकी आत्मा मे) जो सर्जनात्मक परिवर्तन होता है उसे पूर्ण तथा दृढ़ होने के लिए जगत् मे भी परिवर्तन होना आवश्यक है किन्तु जिस जगत् मे उसका परिवर्तन हुआ है उसी जगत् में उसके ऐसे साथी हैं जिनमे परिवर्तन नही हुआ है । उस अपरिवर्तित जगत् को परिवर्तित करने में अपरिवर्तित लोगो की ओर से रुकावटे उपस्थित होती हैं क्योंकि इनमें गतिहीनता है । यह गतिहीनता उन्हें अपरिवर्तित रूप मे ही रखेगी ।

१. वही, पृ० ६६ ।

२. वही, पृ० २४६–६१ । पाठकों ने यह अनुभव किया होगा कि बर्गसों के इतिहास का दर्शन कारलाइल के दर्शन से कितना मिलता है ।—सम्पादक

इस सामाजिक परिस्थिति से उलझन उत्पन्न हो जाती है। यदि सर्जनकारी प्रतिभा अपने समाज में परिवर्तन करने में विफल होती है तो उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा उसके लिए विनाशकारी सिद्ध होगी। वह अपने कार्यक्षेत्र से अलग हो जायगा। कार्य शक्ति समाप्त हो जाने पर उसकी जीवनी शक्ति भी समाप्त हो जायगी। चाहे उसके साथी उसे सुरलोक न पहुँचा दें जैसे अन्य सामाजिक जन्तुओं अथवा कीड़ों के जीवन में होता है। और यदि यह प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने साथियों की गतिहीनता अथवा विरोध पर विजय पा जाता है तो अपनी परिवर्तित आत्मा के अनुरूप समाज को भी बना देता है और साधारण पुरुष अथवा स्त्री के जीवन को तबतक असह्य बनाये रखता है जबतक कि वे उसी के अनुरूप अपने जीवन को न बना लें।

बाइबिल में जो निम्नलिखित यीसू का कथन बताया गया है, उसका यही अभिप्राय है :—

"यह न समझो कि मै ससार में शान्ति के लिए आया हूँ—मैं शान्ति का सन्देश नही, तलवार का सन्देश देने आया हूँ 'क्योंकि मै इसलिए आया हूँ कि पुत्र को पिता के विरोध मे खड़ा करूँ, पुत्री को माता के विरोध मे और वधू को सास के विरोध में।' और लोगों के बैरी उसके घर वाले ही होगे।"[१]

सामाजिक सन्तुलन कैसे सम्भव है जब एक बार प्रतिभाशाली व्यक्ति के प्रभाव का आक्रमण प्रारम्भ हो जाता है।

इसका सबसे सरल समाधान इस प्रकार हो सकता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से बराबर शक्ति से और सब ओर आक्रमण आरम्भ कर दे। इसका परिणाम यह होगा कि बिना तनाव या विकृति के विकास होने लगेगा। किन्तु यह कहना अनावश्यक होगा कि किसी प्रतिभा के आवाहन के उत्तर मे शत प्रतिशत प्रतिक्रिया नही होती। इतिहास मे ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते है जब कोई 'वैज्ञानिक अथवा धार्मिक' विचार जनता के सम्मुख आता है तब अनेक बुद्धिमानों के मन में एक ही समय और स्वतन्त्र रूप से उसकी प्रतिक्रिया होती है। किन्तु इस प्रकार के उत्तम से उत्तम उदाहरणो मे ऐसे आदमियों की सख्या उँगली पर गिनी जा सकती है जिनके मन में स्वतन्त्र रूप से और एक ही प्रतिक्रिया हुई हो। हजारो और लाखो व्यक्ति ऐसे रहते हैं जिनपर इन विचारो का कुछ भी प्रभाव नही पडता। सच्ची बात तो यह है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा निजी तथा मौलिक सर्जन की विचारधारा प्रवाहित होती है तब सब लोग समान रूप से उसे ग्रहण नही करते। इसका कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सर्जनात्मक शक्ति निहित रहती है और सब एक ही वातावरण मे रहते हैं। इसलिए जब सर्जनशील व्यक्ति उभरता है तब उसे बहुत बड़े निष्क्रिय समूह का सामना करना पड़ता है यद्यपि उसके साथ थोडे से उसी के समान क्रियाशील व्यक्ति भी रहते है। जितना भी सामाजिक निर्माण हुआ है वह या तो एक व्यक्ति की कृति है अथवा कुछ थोड़े से निर्माताओ की है। और प्रगति के हर कदम पर समाज की बहुत बडी संख्या पीछे छूट जाती है। यदि आज हम संसार के महान् धार्मिक सगठनों को जैसे ईसाई, इसलामी तथा हिन्दू, पर विचार करें तो हमको पता चलेगा कि उनके अधिकाश अनुयायी चाहे जितने भी मौलिक रूप से वे अपने धर्म का गुणगान करते हों, ऐसी मानसिक परिस्थिति में रहते हैं जो अंधविश्वास से अधिक दूर नही है। यही हाल आज की भौतिक सभ्यता की उपलब्धि का

१. मैथ्यु.१०। ३४–६ इससे तुलना कीजिए, ल्यूक १२, ५१–३।

भी है। हमारा पश्चिमी वैज्ञानिक ज्ञान और हमारी तकनीक जो उस ज्ञान को कार्यान्वित करती है भयंकर रूप से कुछ चुने हुए सीमित लोगो के हाथों में है। लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की नयी सामाजिक शक्तियाँ बहुत थोड़े मौलिक लोगों द्वारा निर्मित हुई है और अधिकाश मानव उसी बौद्धिक तथा नैतिक स्तर पर है जिसपर वह इन शक्तियों के आविर्भाव के पहले था। सच पूछिए तो इस 'पश्चिम के संसार के नमक' के स्वाद के समाप्त होने का भय है क्योकि पश्चिमी समाज के अधिकांश लोगों को उसका स्वाद मिला ही नही।

यह तथ्य कि सभ्यताओं का विकास कुछ मौलिक विचार के व्यक्तियों अथवा अल्प संख्यको द्वारा होता है यह भी साथ-साथ बताता है कि बहुसंख्यक लोग पीछे छूट जाते है जब तक नेता लोग कोई ऐसी व्यवस्था न करें कि इस अकर्मण्य पिछड़ी बहुसख्या को अपने साथ-साथ न ले चले। इस विचार के कारण हमें सभ्य तथा पिछड़े समाजो के—जिन पर हम अभी तक विचार करते आये है—अन्तर की परिभाषा मे कुछ परिवर्तन करना होगा। इस अध्ययन मे पहले हमने कहा है कि आदिम समाजों का हमे जो ज्ञान है उसके अनुसार वे स्थैतिक (स्टेटिक) है और अविकसित सभ्यताओं को छोड़कर सब गत्यात्मक है। अब हम इस सम्बन्ध मे यह कहना चाहेगे कि प्रगतिशील सभ्यताओं तथा स्थैतिक सभ्यताओ मे गत्यात्मक दृष्टि का सामाजिक संस्थाओ का तथा मौलिक व्यक्तियों का अन्तर है। और इसके साथ हम यह भी कहेंगे कि ये मौलिक व्यक्ति अधिक से अधिक भी जब उनकी संख्या होगी तब भी समाज मे उनकी अल्प संख्या होगी। प्रत्येक विकासशील सभ्यता मे भी उस समाज की बहुत बड़ी सख्या उसी गतिहीन तथा निष्क्रिय स्थिति मे रहती है जिस स्थैतिक परिस्थिति मे आदिम समाज के लोग रहते है। और भी। प्रगतिशील सभ्यता के अधिकांश लोगों मे शिक्षा की ऊपरी वारनिश केवल होती है नही तो उनमे भी आदिम समाज के मनुष्यों की भाँति ही भावनाएँ होती हैं। यहाँ उस कथन की सच्चाई हम पाते हैं कि मानव समाज कभी बदलता नही। विशिष्ट व्यक्ति—प्रतिभा सम्पन्न, रहस्यवादी, महामानव—जो कुछ भी उन्हे कहिए, साधारण मानवता की ढेरी मे केवल अंश मे ही हैं।

अब हमे इस पर विचार करना है कि ये थोड़े गतिशील व्यक्ति समाज के रूढ़िवाद को तोड़ने में किस प्रकार सफल होते है और अपनी विजय को स्थायी बनाते हैं। अपनी प्रगति को सामाजिक पराजय से सुरक्षित रखते है और अपनी सामाजिक परिस्थिति मे प्रगति करते रहते है। इस समस्या को सुलझाने के लिए—

"दोहरे प्रयत्न की आवश्यकता है, कुछ थोड़े लोग नयी बात उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं और शेष इस बात की चेष्टा करते है कि यह नयी बात हमारी परिस्थिति के अनुकूल हो और हम नयी परिस्थिति के अनुकूल हो। समाज को सभ्य तब कहा जाता है जब ये दोनों कार्य प्रारम्भ होने वाले और उसके अनुकूल आचरण होने वाले—साथ-साथ चले। असभ्य समाजो में विशेष व्यक्तियों का अभाव हो, ऐसा नहीं है। (कोई कारण नही है कि प्रकृति ने सब युगों में और सब स्थानों पर ऐसे व्यक्ति न पैदा किये हो)। असभ्य समाजों मे कमी इस बात की जान पड़ती है कि ऐसे व्यक्ति नही हैं जो अपनी विशेषता का इस प्रकार प्रयोग कर सके कि समाज के शेष व्यक्ति उसका नेतृत्व ग्रहण करें।"[१]

१. बर्गसों : पहले वर्णित पुस्तक, पृ० १८१।

निष्क्रिय बहुसंख्यक क्रियाशील अल्पसंख्यकों के नेतृत्व को स्वीकार करें, इस समस्या के सुलझाने के दो ढंग हो सकते है। एक व्यवहारात्मक दूसरा, आदर्श। पहला ढंग है कठोर अनुशासन द्वारा लोगों में सुधार करना---दूसरा रहस्यवाद से। पहले के लिए ऐसी नैतिकता होनी चाहिए जिसमें अहं न रह जाय। दूसरा ढग यह है कि दूसरे के (नेता के) व्यक्तित्व के अनुसरण करने का प्रलोभन औरों को दिया जाय। दोनो मे आत्मिक सयोग की भावना उत्पन्न की जाय, यहाँ तक कि उसके साथ एक हो जाय।'[१]

एक आत्मा दूसरी आत्मा मे मौलिकता की शक्ति का प्रकाश पैदा करे, अवश्य ही आदर्श ढग है, किन्तु इसी पर निर्भर रहना 'पूर्णता' से ही सम्भव है। निष्क्रिय जनता को गतिशील नेताओं के समकक्ष लाने के लिए व्यवहार में अनुकरण की प्रवृत्ति ही उत्पन्न करनी पड़ती है जिसमें प्रेरणा कम, अनुशासन ही अधिक व्यावहारिक होता है।

अनुकरण का प्रयोग इस कार्य के लिए आवश्यक है क्योकि अनुकरण मनुष्य की मूल प्रवृत्तियो मे से है। हमने पहले बताया है कि अनुकरण सामाजिक जीवन का व्यापक गुण है। आदिम समाजों में पुरानी पीढी के जीवित व्यक्तियो का अनुकरण होता है या उन मृत व्यक्तियो का जिन्होने किसी प्रथा का पुन:स्थापन किया था। जिन समाजों की सभ्यता प्रगतिशील है उनमे उन लोगो का अनुकरण किया जाता है जिन्होने किसी नवीन विचार, प्रथा अथवा कार्य की सृष्टि की है। शक्ति वही है किन्तु दोनो मे विरोधी ढग से प्रयुक्त होती है।

आदिम समाज के सम्बन्ध में सामाजिक अनुशासन का जो हमने फिर से विचार किया है और जो बाहर से लादा जाता है तथा जो स्वाभाविक ढग से उन्हे क्रियाशील करता है वह कठिन तथा बौद्धिक सम्पर्क स्थापित कर सकता है, वह घनिष्ठ व्यक्तिगत तादात्म्य ला सकता है जिसके सम्बन्ध मे अफलातून ने कहा था कि यही एक ढग है जिससे एक व्यक्ति से दूसरे तक दार्शनिक विचार लाये जा सकते है। इसके उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि मानव समूह मे जो जडता है उस पर अफलातून की प्रणाली से विजय नही प्राप्त की जा सकती। बहुसख्यक जनता को अल्पसख्यक के साथ ले जाने के लिए यह आदर्श ढग तो है कि व्यक्तिगत बौद्धिक सम्पर्क स्थापित किया जाय किन्तु उसे सफल बनाने के लिए व्यावहारिक ढग सार्वजनिक सामाजिक अनुशासन आवश्यक है। यही आदिम मानव का अभ्यास है। और जब नये नेता कार्यक्षेत्र मे प्रवेश करते है तब जनता को अपने संग ले चलने के लिए और सामाजिक प्रगति के लिए यही ढग सफल होता है।

अनुकरण से वे सामाजिक सम्पदाएँ जैसे रुझान (ऐप्टिचूड) या सवेग (एमोशन) या विचार (आइडिया) ग्रहण की जा सकती है जो ग्रहण करने वालो के पास प्रारम्भ मे नही थीं और जो उन्हे कभी न प्राप्त होती यदि वे उनके सम्पर्क में न आये होते और उनका अनुकरण न करते जिनके पास ये सम्पदाएँ थी। वास्तव मे यह सरल ढग है। आगे चलकर इस अध्ययन में हम देखेगे कि यह लक्ष्य की ओर जाने के लिए आवश्यक राह है किन्तु साथ ही साथ सन्देहपूर्ण भी है। क्योकि लाभ के साथ-साथ सभ्यता का इससे विनाश भी हो सकता है। किन्तु इस खतरे पर यहाँ विचार करना असामयिक होगा।

१. बर्गसों : वही पुस्तक, पृ० ९८-९९।

(२) अलग होना और लौटना : व्यक्ति

गत अध्याय में हमने उन सर्जन व्यक्तियों के सम्बन्ध मे अध्ययन किया है जो उच्चतम आत्मिक स्थिति को प्राप्त करते हैं और तब रहस्यात्मक पथ पर चलते हैं। हमने देखा है कि पहले वह भावातिरेक में समाधि की अवस्था को पहुँचते हैं और क्रियाहीन हो जाते है और तब इस क्रियाहीनता से पुन. नये और उच्चतर स्तर पर क्रियाशीलता की ओर आते है। ऐसी भाषा के प्रयोग से हम मनुष्य की मानसिक अनुभूति शब्दो मे सामाजिक उन्नति का वर्णन करते हैं। इसी दोहरी गति को, हम उस मनुष्य तथा जिस समाज का वह नेता है उसके भौतिक सम्बन्ध का वर्णन करें तो कह सकते हैं कि यह 'हट जाना और फिर लौटना' है। हट जाने पर वह व्यक्ति अपने अन्दर की शक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है। यह शक्ति शायद सुषुप्त रह जाती यदि वह व्यक्ति सामाजिक बाधाओ और सामाजिक उन्नति के लिए जो परिश्रम करना पडता है, उसका पहले थोड़े समय के लिए अनुभव न करता। वह अपने मन से अपने आप अथवा उन परिस्थितियो के कारण हट जाने को विवश हो, जिस पर उसका कोई वश नही है। दोनों अवस्थाओ मे, हट जाने से ऐसा अवसर मिलता है कि वह एकान्तवासी (एंकराइट) बन सके। एकराइट यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'वह जो अलग हो जाता है।' किन्तु एकान्तवास का कोई अभि-प्राय नही है, न कोई अर्थ हो सकता है जब तक कि फिर लौट कर सक्रिय होने की बात न हो। जब तक वह उस सामाजिक वातावरण मे फिर नये रूप मे न आ जाय जिसमें से वह अलग हुआ था। वह सामाजिक प्राणी सदा के लिए अलग नही रह सकता। नही तो वह मानवता से अलग हो जायगा और अरस्तू के शब्दो मे 'या तो पशु हो जायगा या देवता'। सारी प्रवृत्ति का उद्देश्य ही लौटना है। यही उसका मूल कारण है।

सिनाई पर्वत पर हजरत मूसा के अकेले जाने की जो सिरियाई कथा है उससे यह स्पष्ट है। मूसा यहवा[१] की आज्ञा के अनुसार पहाड पर उनसे बात करने गया था। ईश्वर ने केवल मसा को पुकारा। इसरायल[२] के और सारे परिवार को दूर ही रहने के लिए कहा गया। मूसा को बुलाने का मुख्य उद्देश्य यही है कि नये नियमो को वह ले जाकर यहूदियो को दे क्योंकि वे इस योग्य नही हैं कि इन नियमो को प्राप्त कर सके।

"और मूसा ईश्वर के पास गये। पहाड़ो मे ईश्वर ने उसे पुकारा और कहा—'इस प्रकार तू याकूब के घराने वालो से कहेगा और इसरायल के पुत्रों से कहेगा।' और जब ईश्वर उससे बात समाप्त कर चुका तब उसने दो तख्तियाँ इस वार्ता के प्रमाण मे दी जिन पर ईश्वर के हाथ से लिखा था।"[३]

इसी प्रकार 'लौटने' का महत्त्व ई० चौदहवी शती के अरबी दार्शनिक इब्न खलदून ने पैग-म्बरी अनुभूति और पैगम्बरी धर्म प्रचार के अपने वर्णन मे बताया है।

१. यहूदियों के अनुसार ईश्वर का एक नाम।—अनुवादक

२. याकूब का दूसरा नाम। यहूदियों के पूर्वज।

३. एक्सोडस, १९ का ३ तथा २१ का १८। देखिए, मासिम का, १९ वाँ अध्याय।

'मनुष्य की आत्मा का जन्मजात लक्षण है कि वह अपने मानवी स्वभाव को त्याग कर फरिश्तों का स्वरूप ग्रहण करे। क्षण भर के लिए फरिश्ता बन जाय। यह क्षण उतने ही काल तक रहता है जितना पलक मारने में लगता है। और फिर चला जाता है। उसके पश्चात् आत्मा पुनः अपने मानवी स्वभाव को ग्रहण कर लेती है। इसी काल में फरिश्तों के बीच वह उस सन्देश को ग्रहण करता है जो उसे मनुष्यों तक पहुँचाना है।'[१]

इस्लामी पैगम्बरी के इस दार्शनिक व्याख्या में हम हेलेनी दर्शन का प्रतिबिम्ब देखते हैं : अफलातून का गुफा वाला रूपक। इस वर्णन में साधारण मनुष्यो की उपमा वह गुफा में बन्द कैदियों से देता है जो प्रकाश की ओर पीठ किये उसमें खड़े हैं और उनके पीछे जो लोग चल-फिर रहे हैं उनकी परछाईं गुफा की दीवार पर वे देखते हैं। ये कैदी समझते है कि जो छाया हम गुफा की दीवार पर देख रहे हैं वही वास्तविकता है क्योकि इनके अतिरिक्त वे और कुछ देख नही पाते। फिर अफलातून कल्पना करता है कि एक कैदी एकाएक छोड़ दिया जाता है और उसे प्रकाश की ओर मुँह फेरने और बाहर निकलने के लिए विवश किया जाता है। इस मुँह फेरने का पहला परिणाम यह होता है कि वह चकाचौंध मे पड़ जाता है और भ्रमित हो जाता है। किन्तु यह स्थिति अधिक देर तक नही रहती। क्योकि देखने की शक्ति उसमे मौजूद है और धीरे-धीरे उसकी आँखे बताती है कि वास्तविक ससार यह है। उसे फिर गुफा मे भेज दिया जाता है। वह फिर इस धुँधलके में उतना ही चकित और भ्रमित हो जाता है जितना प्रकाश मे पहले। जैसा पहले वह प्रकाश मे जाने पर दुखी हुआ था वैसा ही फिर यहाँ लौटने पर दुखी होता है। इस बार दुखी होने का कारण अधिक उपयुक्त है। क्योंकि जब वह अपने उन साथियों के बीच आता है जिन्होंने कभी सूर्य का प्रकाश नही देखा है तब उसे विरोध के सामना करने का भय है। 'अवश्य ही लोग उस पर हँसेंगे और यह कहा जायगा कि उसके चले जाने का यही परिणाम हुआ कि वह अपनी दृष्टि को नष्ट कर के लौटा है। शिक्षा : ऊपर की ओर भी उठना मूर्खता है। और उस हलचल मचाने वाले व्यक्ति को जो स्वतन्त्र करने तथा ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है, यदि पकड़ जाय और मार डालने का अवसर मिले तो अवश्य ही मार डालेगे।'

राबर्ट ब्राउनिंग की कविता के पाठक इस स्थल पर उसकी लाजरस की कल्पना को स्मरण करेंगे। उसकी कल्पना है—लाजरस जो अपनी मृत्यु के चार दिनों बाद जी उठा 'गुफा' मे लौटा अपनी पहली अवस्था से भिन्न अवस्था मे था। और वह इसी बेथानी के लाजरस का चालीस वर्ष के बाद वृद्धावस्था का विचित्र वर्णन करशीश के 'ऐन एपिस्ल' (एक पत्र) में वर्णन करता है। करशीश एक अरबी चिकित्सक था जो घूमा करता था और अपनी दूकान के मालिक की जानकारी के लिए बराबर विवरण भेजता था। करशीश के अनुसार बेथानी ग्राम के निवासी बेचारे लाजरस को समझ नहीं पाये। उसे वह सरल ग्रामीण मूर्ख समझते थे। किन्तु करशीश ने लाजरस की कहानी सुनी थी और वह गाँव वालो के विश्वास को ठीक नहीं समझता था।

ब्राउनिंग का लाजरस 'लौटने' पर कुछ प्रभावकारी नहीं सिद्ध हुआ। न तो वह पैगम्बर हुआ न शहीद। अफलातून के दार्शनिक की भाँति उसके प्रति लोग उदार तो थे किन्तु उसकी

१. इब्न खलदून : मुकद्दमात : बैरन एम० डी० स्लेन द्वारा फ्रेंच अनुवाद, जि० २, पृ० ४३७।

उपेक्षा करते थे । अफलातून ने 'लौटने' का जो स्वयं चित्रण किया है वह बहुत ही नीरस है और आश्चर्य होता है कि अपने ही बनाये दार्शनिक के प्रति वह इतना हृदयहीन है। किन्तु यदि अफलातूनी व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि नेता दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करें तो साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह दार्शनिक हीन रह जाय । उनके ज्ञान उपलब्धि का अभिप्राय यह है कि वे दार्शनिक शासक बनें। अफलातून ने उन नेताओं के लिए जो प्रणाली बतायी है वह उसी पथ पर ईसाई सन्त (मिस्टिक) भी चले है ।

पथ एक ही है, किन्तु जिस भावना से हेलेनी तथा ईसाई आत्माएँ चली वह अलग-अलग है। अफलातून यह मान लेता है कि स्वतन्त्र तथा ज्ञानप्राप्त दार्शनिक का व्यक्तिगत हित तथा इच्छाएँ उसके साथियों.के हितो के प्रतिकूल हैं क्योकि वे 'अंधकार' और मृत्यु की छाया मे पडे हुए है और दुख तथा लोहे की शृंखला में बँधे है ।'[१] बन्दियो का जो कुछ भी हित हो, अफलातून का दार्शनिक अपने सुख और पूर्णता की पूर्ति नही कर सकता । क्योकि (उसके अनुसार) एक बार जब दार्शनिक को प्रकाश मिल गया उसके लिए उत्तम बात यही होगी कि वह गुफा के बाहर प्रकाश मे सदा सुख मे रहे । हेलेनी दर्शन का मुख्य सिद्धान्त यह रहा है कि जीवन की सबसे अच्छी अवस्था ध्यान की अवस्था है । इसके लिए यूनानी शब्द की जगह अंग्रेजी शब्द थियरी (सिद्धान्त) है जिसके विपरीत हम लोग 'प्रेक्टिस' (व्यवहार) शब्द का व्यवहार करते है । पाइथोगोरस साधना के जीवन को कर्म के जीवन से बढकर मानते है और यही सिद्धान्त सारी हेलेनी परम्परा मे व्याप्त है । प्राचीन काल से लेकर हेलेनी समाज के नव-अफलातूनी युग तक इस समाज का विघटन हो रहा था । अफलातून का विश्वास था कि उसके दार्शनिक कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर ससार के कार्यक्षेत्र मे उतरेगे, पर ऐसा नही हुआ । उन्होने ऐसा नही किया, एक कारण हो सकता है कि अफलातून की पहले की पीढी मे हेलेनी सभ्यता को धक्का लगा जिससे वह कभी फिर स्थिर न हो सकी। हेलेनी दार्शनिको ने कर्मक्षेत्र मे क्यो नही पदार्पण किया इसका कारण स्पष्ट है। उनकी नैतिक सीमा विश्वास की एक भूल का परिणाम है। उन्होने समझा कि इस आत्मिक ओडेसी की जो यात्रा उन्होने आरम्भ की थी उसका अन्तिम तथा पूर्ण ध्येय ध्यान में मग्न होना ही है, लौटना नही । उन्होने समझा कि ध्यान से कर्तव्य क्षेत्र मे लौटना जिस कार्य में वे रहते है उसका बलिदान है । उनकी रहस्यवादी अनुभूति मे उस मुख्य ईसाई प्रेम के गुण की कमी थी जिसके वशीभूत होकर ईसाई सन्त ध्यान की स्थिति से उतर कर नैतिक तथा भौतिक मलिनता की ओर आये जहाँ संसार के लोगो के उद्धार की आवश्यकता थी ।

अलग होने और लौटने का कार्य मनुष्य के जीवन की ही विशेषता नही है जो मनुष्यो और उनके साथियों के सम्बन्ध मे दिखाई देती है। जीव मात्र की यह विशेषता है । बनस्पति जगत् के जीवन मे भी मनुष्य को इसका भास होता है जब वह कृषि की ओर देखता है । इसी कारण खेती के सम्बन्ध में उसकी आशा और निराशा की भावना बन गयी है । अन्न के प्रति वर्ष समाप्त होने और फिर उपजने की कथा और कर्मकाण्ड (रिचुअल) मे ऐसा रूप दिया गया है मानो वे

१. साम (बाइबिल में) १०७, १० ।

मनुष्य हैं। जैसे कोरे या पर्सिफोनी[1] का अपहरण और फिर लौटना या डायोनिसस, एडोनिसस, ओसाइरिस अथवा जो कुछ भी—अन्न के अथवा वर्ष के देवता का स्थानीय नाम हो उनकी मृत्यु और पुनर्जन्म का यही अभिप्राय है। उनकी पूजा अथवा उनकी कथा विभिन्न नामों से सब जगह उसी का रूपक प्रदर्शित करती हैं और उतनी ही व्यापक हैं जितना स्वयं खेती का कार्य।

इसी प्रकार मनुष्य की कल्पना ने अपने जीवन का रूपक पेड़-पौधो के अवसान (विदड्रावल) तथा पुनर्जीवन में स्थापित किया। और इस रूपक के ही आधार पर मृत्यु से द्वंद्व किया है। यह समस्या मनुष्य के मन को, उन्नतिशील सभ्यताओ में, उसी समय चिन्तित करने लगती है जब महान् व्यक्ति साधारण जनता से अलग होने लगते है।

कुछ लोग पूछेगे : 'मृत लोग कैसे जी जाते हैं ? और किस शरीर से वे आते है ?'

'ए मूर्ख, जो कुछ तू बोता है वह जीवन इसीलिए धारण करता है कि वह मरे और जो कुछ तू बोता है वह इस शरीर मे नही बोता जिस शरीर मे वह फिर उपजेगा, बल्कि केवल दाना बोता है। चाहे गेहूँ हो या कोई दूसरा दाना ;'

'परन्तु ईश्वर जैसा उसका मन होता है वैसा शरीर प्रदान करता है, और हर एक बीज अपना शरीर देता है .....'

'इसी प्रकार मृत व्यक्ति का पुनर्जीवन भी है। विकृति (करप्शन) मे वह बोया जाता है (मरता है) और पावनता मे वह पुनर्जीवित होता है'

'अप्रतिष्ठा मे वह बोया जाता है, प्रतिष्ठा मे वह उगता है, दुर्बलता मे वह बोया जाता है, शक्ति लेकर उगता है,'

'प्राकृतिक शरीर मे बोया जाता है, आध्यात्मिक शरीर में वह उगता है,'

'और इसलिए लिखा है : 'पहला मनुष्य आदम, जीवित आत्मा के रूप मे बनाया गया, अन्तिम आदम, सजीव करने वाली आत्मा के रूप मे... '

'पहला मानव मिट्टी का है, धरती का, दूसरा स्वर्ग का मालिक।'[2]

ऊपर के अवतरण में जो कोरिंथियनो को पाल के पहले पत्र से लिया गया है, चार विचार लगातार प्रस्तुत किये गये हैं और प्रत्येक पहले से ऊँचा है। पहला विचार यह है कि हम एक पुनर्जीवन उस समय देखते हैं जब शरत् मे फसल की समाप्ति हो जाती है और वसन्त में फिर उसका आगमन हम देखते है। दूसरा विचार यह है कि अनाज का पुनर्जीवन मनुष्य के पुनर्जीवन की भविष्यवाणी है। यह सिद्धान्त हेलेनी रहस्यवाद के पहले का है। तीसरा विचार यह है कि मनुष्य का पुनर्जीवन सम्भव है और उसकी प्रकृति में परिवर्तन भी होने की सम्भावना होती है। वह परिवर्तन ईश्वर द्वारा उस काल में होता है जो उसकी मृत्यु और पुनर्जीवन के बीच आता है।

१. पर्सिफोनी एक यूनानी देवी थी। जोयूस की पुत्री। वह जब फूल चुन रही थी यम (प्लूटो) उसे लेकर भाग गया। जब तक वह पाताल में थी, पृथ्वी की देवी ने पृथ्वी में कुछ उत्पन्न होना बन्द कर दिया। अन्त में जीयूस ने उसे पाताल से बुलवाया। उसका हरण और लौटना अनाज के बोने तथा उगने का प्रतीक है।

२. कोरिंथियन्स १५.३५–८, ४२–५, ४७।

कहा जाता है कि मृत व्यक्ति के दूसरे रूप धारण करने का प्रमाण यही है कि बीज फूल तथा फल का रूप ग्रहण करता है । मनुष्य की प्रकृति मे यह परिवर्तन यों होता है कि उसमे अधिक सहन-शीलता, सौन्दर्य, शक्ति तथा आध्यात्मिकता के गुण आ जाते हैं । इस अवतरण मे चौथा विचार अन्तिम है और उदात्त है । पहले और दूसरे मानव की कल्पना मे मृत्यु की समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया और व्यक्ति के पुनर्जीवन को थोड़ी देर के लिए बढ़-चढ़कर माना गया है । दूसरा मानव स्वर्ग का मालिक है । उसके आगमन को पाल एक नयी जाति की सृष्टि के रूप मे स्वागत करता है जो एक व्यक्ति मे निहित होकर आता है जो 'न्याय का देवता' है, जो स्वय ईश्वर से प्रेरणा प्राप्त करता है और अपनी प्रेरणा से अपने साथी दूसरे मानवो को अनुप्राणित करता है और महामानव के स्तर पर उन्हें उठाने की चेष्टा करता है ।

अलग होने और फिर शक्ति तथा वैभव के साथ लौटने का अभिप्राय रहस्यवादी आत्मिक उन्नति मे देखा जा सकता है । यही भावना वनस्पति जगत् मे है, यही भावना मनुष्य ने मृत्यु के पश्चात् के सम्बन्ध में जो अनेक कल्पनाएँ है उसमे भी है । जिसमें अमरता की भावना है या नीची श्रेणी से उच्च श्रेणी में परिवर्तन का भाव है । यह विश्वव्यापी विषय है । इसकी बुनियाद पर अनेक प्राचीन पौराणिक कल्पनाएँ हैं । इन कल्पनाओ द्वारा सार्वभौमिक सत्य प्रकट किया गया है ।

इसी अभिप्राय का परिवर्तित रूप ऐसे त्यक्त शिशुओ की पौराणिक कहानियाँ हैं । राजकुल मे उत्पन्न बच्चा फेक दिया जाता है । कभी-कभी स्वयं पिता या प्रपिता उसे छोड़ आते है, जिन्हें स्वप्न द्वारा सूचना मिलती है कि शिशु गद्दी ले लेगा (जैसे ओडिप्स और परस्यूस की कथा मे) उन्हे सपने मे अथवा देववाणी द्वारा सूचना मिलती है कि बच्चा मेरी गद्दी छीन लेगा, कभी (जैसे रोपुलस की कहानी में) गद्दी हड़पने वाला फेंक आता है । उसे यह भय होता है कि बडा होने पर यह बालक बदला लेगा, और कभी-कभी (जैसा कि जेसन, ओरिस्टीज, जीयूस, होरस, मूसा और साइरस की कहानियो मे) मित्र ही बच्चे को उसकी रक्षा के लिए हटा देते हैं । उन्हें भय होता है कि दुष्ट उनकी हत्या कर डालेगा। आगे कथा में त्यक्त शिशु चमत्कारिक ढंग से सुरक्षित हो जाता है और कहानी के अन्तिम भाग मे यह बालक जिसका जीवन कठिनाइयो मे बीतता है, वीर और साहसी युवक हो जाता है और शक्ति तथा वैभव के साथ अपना राज्य पाता है ।

ईसा की कहानी में भी हट जाने और लौटने का अभिप्राय बराबर मिलता है । ईसू राज-परिवार मे जन्म लेता है । वह दाऊद का वशधर है या ईश्वर का पुत्र है । स्वर्ग से आकर वह पृथ्वी पर जन्म लेता है । उसका नाम दाऊद के नागर वैतल्लहरु में होता है । फिर भी उसको सराय में स्थान नही मिलता और उसे चारे की नाँद मे रख देते है जैसे मूसा नौका में व परस्यूस पिटारी मे । अस्तबल मे पशु मित्रवत् उसकी देख-रेख करते है जैसे रोपुलस की देख-रेख भेडिये ने की और साइरस की कुत्ते ने । चरवाहे उसकी सेवा-सुश्रुषा करते हैं और उसका पालन-पोषण, रोपुलस, साइरस और ओडिपस की भाँति साधारण स्थिति का व्यतित करता है । इसके बाद हेरोद की हिंसक योजना से इस प्रकार रक्षा होती है कि उसे चुपके से मिस्र भगा ले जाते हैं जिस प्रकार मूसा की रक्षा फरऊन की हत्याकारी योजना से उसे सेवार में छिपा कर की गयी और जैसे जेसन को राजा पैलिआस से बचाने के लिए पीलियन पर्वत के दुर्गों में रख कर की गयी । और अन्त मे दूसरे वीरों की भाँति ईसू भी अपने राज्य में लौटता है । वह जूडा के राज्य जेरूशलेम में लौटता

है और दाऊद के पुत्र के रूप में उसका स्वागत होता है । और उत्कर्ष में वह स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करता है ।

ईसू की ये सब बातें ऐसे त्यागे बच्चों की कथाओं के समान हैं किन्तु बाइबिल में अलग होने और लौट आने का जो अभिप्राय है उसके और रूप भी हैं । ज्यों-ज्यों ईसू को ईश्वरत्व की आत्मिक अनुभूति होती है त्यों-त्यों क्रमशः इसकी भी अभिव्यक्ति होती है । जब जान के बपतिस्में के बाद ईसू को अपने मिशन का ज्ञान होता है, वह चालीस दिनो के लिए वन में चला जाता है और आत्मिक बल प्राप्त कर वहाँ से लौटता है । इसके पश्चात् जब ईसू को ज्ञात होता है कि मेरे मिशन से मेरी मृत्यु की सम्भावना है, वह पहाड़ों मे चला जाता है जहाँ उसमें परिवर्तन होता है । इस अनुभूति के पश्चात् मृत्यु के लिए तैयार होकर वह लौटता है । इसके पश्चात् जब वह सूली पर चढ़ा दिया जाता है और मनुष्यों की भाँति उसकी मृत्यु हो जाती है, वह कब्र में जाता है जहाँ से पुनर्जीवन प्राप्त कर अमरता प्राप्त करता है । और अन्त मे जब उसका आरोहण होता है, वह स्वर्ग को चला जाता है इसलिए कि 'फिर आयेगा और जीवित तथा मृत लोगों के प्रति न्याय करेगा और उसके राज्य का कभी अन्त न होगा ।'

अलग होने और लौट जाने के अभिप्राय को लेकर जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ ईसू के जीवन में है उसी के समान और भी उदाहरण है । ईसू के पहाडो मे चले जाने के ही समान मूसा के मीडियन में चले जाने की बात भी है । पहाडों मे जो ईसा का परिर्तन हुआ वैसा ही मूसा का परिवर्तन सीनाई पहाड़ पर हुआ । ईश्वरीय प्राणी (ईसू) की मृत्यु और उसके पुनर्जीवन की बात हेलेनी रहस्यवादी कथाओं मे पहले आ चुकी है । वह महान् व्यक्ति जिसका अवतरण होने वाला है और जो इस सृष्टि-प्रलय के समय सूत्रधार होगा जरथूष्ट्री पुराण मे उसकी कल्पना त्राता के रूप में की गयी है, और यहूदी पुराण मे मसीह और 'ईश्वर के पुत्र' के रूप में की गयी है । किन्तु ईसाई पुराण में एक बात है जिसका कोई पहले का दृष्टान्त नही है । वह उस व्यक्ति की है जो ऐतिहासिक व्यक्ति हो और पहले पृथ्वी पर साधारण मनुष्य के रूप मे रहा हो और फिर मृत्यु के पश्चात् त्राता अथवा मसीहा के रूप मे लौट कर आये । यह अन्त:प्रज्ञा का प्रकाश, अनन्त भूतकालात्मक शिशु की कल्पना और अनन्त वर्तमान में कृषि के धार्मिक कृत्यों की कल्पना उस ऐतिहासिक मानवता के रूप मे परिवर्तित की गयी है जो चेष्टा करके अपने उद्देश्य को प्राप्त करती है । दूसरी बार फिर लौटने की भावना मे अलग होने और लौटने का अभिप्राय गम्भीर आध्यात्मिक तात्पर्य है ।

अन्त.प्रज्ञा का प्रकाश, जिसमे ईसाइयों ने दोबारा लौटने की कल्पना की है, किसी विशेष काल तथा देश की चुनौती के फलस्वरूप की गयी होगी । वह आलोचक जो यह समझने की भूल करता है कि किसी वस्तु में इसके अतिरिक्त कुछ नही है जो उसकी उत्पत्ति के समय उसमें होती है, तो वह इस ईसाई सिद्धान्त की इसलिए उपेक्षा करेगा कि इसका आरम्भ निराशा में हुआ होगा । वह सोचेगा कि यह निराशा उस समय आदिम ईसाई समाज में हुई होगी जब उनका प्रभु आया और बिना उस परिणाम के चला गया जिसे देखने के लिए लोग इच्छुक थे । उसकी हत्या कर दी गयी, और जहाँ तक सोचा जा सकता था, उसकी मृत्यु से उसके अनुगामियो का भविष्य अन्धकारमय हो गया । यदि उन्हें अपने प्रभु के मिशन को आगे बढ़ाना है तो उन्हें प्रभु के जीवन की असफलता के काँटे को इस प्रकार निकालना होगा कि उसके भूतकाल के जीवन को भविष्यकाल में परिणत कर दें, वे इस बात का प्रचार करें कि वह फिर से शक्ति और वैभव से पूर्ण होकर आयेगा ।

यह सत्य है कि दोबारा आने के सिद्धान्त को और समाजों ने भी मान लिया है, जिन्हें उसी प्रकार की निराशा या कुण्ठा हो गयी। उदाहरण के लिए, जब आर्थर बर्बर अंग्रेज आक्रमणकारियों पर विजय नहीं पा सका तो पराजित ब्रिटनो ने यह कथा बनायी कि आर्थर फिर आयेगा। जब उत्तर माध्यमिक काल में जर्मन पश्चिमी ईसाई जगत् में अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सके तब उन्होंने यह कथा गढ़ी कि सम्राट् फेडरिक बारबरोसा (११५२–९० ई०) फिर आयेंगे।

"उस हरे-भरे मैदान के दक्षिण-पश्चिम की ओर, जो साल्जबुर्ग पर्वत के चारो ओर है, बड़ा पहाड उनटर्सबुर्ग खडा है। उसी के नीचे से एक सड़क घूमती हुई बखटेसगेडेन झील की तराई की ओर गयी है। वहीं चूने के पत्थरों की चट्टानों में एक स्थान है जहाँ मनुष्य का जाना बहुत कठिन है। वहाँ के किसान एक काली कन्दरा यात्रियो को दिखाते है और कहते है कि उसी के अन्दर बारबरोसा अपने वीरों के साथ मंत्रमुग्ध निद्रा मे सोया है। जब पहाड़ की चोटी पर कौवे न मँडरायेंगे, और नाशपाती के पेड फूलेंगे वह अपने योद्धाओ के साथ घाटी मे आयेगा और जरमनी मे शान्ति, शक्ति और एकता का स्वर्णयुग लायेगा।"[१]

इसी प्रकार मुसलिम जगत् मे शीया समाज की कल्पना है। जब युद्ध मे ये हार गये और प्रताडित वर्ग हो गये उन्होने कल्पना की कि बारहवें इमाम (पैगम्बर के दामाद अली की बारहवी पीढी) मरे नही बल्कि एक कन्दरा में जा बैठे है जहाँ से अपने अनुगामियो को भौतिक तथा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन करते रहते है और एक दिन प्रतिज्ञा के अनुसार मेहदी के रूप में आयेंगे और अत्याचार के शासन का अन्त करेंगे।

किन्तु यदि हम एक बार फिर पुरानी ईसाई अभिव्यक्ति के अनुसार दूसरी बार आने के सिद्धान्त की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि वास्तव मे वह उस आध्यात्मिक वापसी का भौतिक रूपक है जो शिष्यो (अपासिल्स) के हृदय मे उनके पराजित प्रभु ने अंकित कर दिया था। जब शिष्यो ने यह निश्चय किया कि भौतिक रूप से तो हमारे प्रभु चले गये किन्तु अपने साहसी मिशन की पूर्ति का कार्य हमारे सुपुर्द कर गये। थोड़े समय के भ्रम निवारण और निराशा के पश्चात् शिष्यो के साहस और विश्वास ने फिर क्रियात्मक पुनर्जीवन प्रदान किया और वह बाइबिल के 'एक्टस' मे पौराणिक भाषा मे लिखी गयी है जिसमें कहा गया है कि पवित्र आत्मा 'पेंटिकास्ट'[२] के दिन फिर आयेगी।

अलग होने और लौट आने का क्या वास्तव में अभिप्राय है यह समझ लेने के बाद अब हम इसी दृष्टि से मनुष्य के इतिहास की प्रक्रिया का प्रयोगात्मक सर्वेक्षण करेंगे। क्रियाशील व्यक्तियों और क्रियाशील अल्पसंख्यको में किस प्रकार ऐसी ही घटना हुई है। इस प्रकार की क्रिया के विख्यात उदाहरण जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में मिलते हैं। योगियो, सन्तो, राजनीतिज्ञो, सैनिको, इतिहासकारों, दार्शनिको और कवियों मे तथा राष्ट्रो, राज्यों और धर्मों के इतिहासो में हमें ऐसी घटनाएँ मिलती है। जिस सिद्धान्त को हम प्रमाणित करना चाहते हैं उसी सचाई को

१. जेम्स ब्राइस : द होली रोमन एम्पायर, अध्याय ११—अन्त।

२. पेंटिकास्ट : जिस दिन यहूदियों को मिस्र वालों से मुक्ति हुई उसके बाद का पचासवाँ दिन। फसल काटने के बाद इस दिन उत्सव होता है।—अनुवादक

वाल्टर बेजहाट ने इस प्रकार लिखा है : 'सब बड़े राष्ट्रो की तैयारी गुप्त ढग से और लोगो से छिपाकर हुई है । सारे आकर्षणो से अलग उनका निर्माण हुआ है ।'[१]

अब हम विभिन्न उदाहरणो को देखेगे । सर्जनात्मक व्यक्तियो से हम आरम्भ करेंगे ।

सन्त पाल

टारसस के पाल का जन्म यहूदी परिवार मे ऐसे युग मे हुआ था जब सीरियाई समाज पर हेलेनीवाद का आक्रमण हो रहा था और जो रुक नही सकता था । अपने जीवन के प्रथम काल में उसने ईसा के यहूदी अनुगामियो पर अत्याचार किया । उत्साही यहूदियो की दृष्टि मे ये यहूदी समाज में भेद उत्पन्न कर रहे थे । अपने जीवन के अन्तिम काल मे इसने शक्ति बिलकुल दूसरी ओर लगायी । नयी भावना का प्रचार किया जिसमे कहा कि 'जहाँ न यूनानी है न यहूदी, खतना वाले और बिना खतना वाले, बर्बर या सीथियाई (सीथियन) पराधीन या स्वाधीन ।'[२] और इसे उसी सम्प्रदाय के नाम पर यह सान्त्वना युक्त प्रचार किया जिस पर पहले अत्याचार किया था । पाल के जीवन का यह अन्तिम अध्याय सर्जनात्मक अध्याय था । पहला अध्याय मिथ्या अध्याय था । दोनो अध्यायो के बीच बहुत बड़ा व्यवधान था । दमिश्क जाते हुए जब उसे एकाएक प्रकाश प्राप्त हुआ, पाल ने जीवित मनुष्यो से बातचीत नही की बल्कि, अरब चला गया । तीन साल बाद वह यरुशलेम आया और तब पुराने शिष्यो से मिलकर क्रियाशील हुआ ।

सन्त बैनेडिक्ट

नरसिया का बेनेडिक्ट (४८०–५४३ ई० सम्भवत) उसी समय था जब हेलेनी समाज मृत्यु की हिचकियाँ ले रहा था । अपने घर अब्रिया से उसे रोम भेजा गया था कि उच्च वर्ग के परम्परागत शास्त्रो का (ह्युमैनिटीज) अध्ययन करे । वहाँ के जीवन का उसने विरोध किया और प्रारम्भिक जीवन मे ही कही जगल मे चला गया । तीन साल तक एकान्तवास करता रहा । उसके जीवन ने उस समय पलटा खाया जब वह जवान हुआ और उसने एक मठ वाले समाज का अध्यक्ष होना स्वीकार किया, पहले सुवियाको की घाटी मे और उसके बाद माटे कैसिनो मे । अपने जीवन के इस अन्तिम काल मे इस सन्त ने शिक्षा की नयी प्रणाली निकाली और उस पुरानी शिक्षा के स्थान पर, जिसका बचपन मे उसने विरोध किया था, इसे प्रचारित किया । माटे कैसिनो का मठ अनेक मठो का जन्मदाता हुआ जो बढ़ते गये और सुदूर पश्चिम तक बेनेडिक्टी शिक्षा प्रसारित करते रहे । सच पूछिए तो यह शिक्षा-व्यवस्था इस नये सामाजिक सगठन की आधार-शिला थी जो पुरानी हेलेनी व्यवस्था के ध्वसावशेष पर पश्चिमी ईसाई जगत् ने स्थापित किया ।

बेनेडिक्ट की व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अग था शारीरिक श्रम और इसका मुख्य अंश था खेतो मे कृषि कार्य । बेनेडिक्टी आन्दोलन आर्थिक स्तर पर था और कृषि का पुन.स्थापन उसमे था । हैनिबली युद्ध मे जो इटली की आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो गयी थी उसके स्थान पर यह पहला सफल पुन.स्थापन था । बेनिडिक्टी व्यवस्था से वह उपलब्धि हुई जो न तो ग्रैकनो[३] के कृषि-

१. वाल्टर बेजहाट : फिजिक्स एण्ड पोलिटिक्स, १० वाँ संस्करण, पृ० २१४ ।
२. कोलोशियन्स ३, २२ ।
३. ग्रेकस नाम के तीन रोमन शासक ।—अनुवादक

सम्बन्धी कानूनों से न रोमन साम्राज्य के खाद्य पदार्थ सम्बन्धी कानूनों से हुई । क्योंकि ये कानून राज्य की ओर से लादे गये थे और ऊपर से नीचे की ओर इनका कार्य-संचालन होता था, किन्तु बेनेडिक्टी व्यवस्था में व्यक्तिगत प्रेरणा थी, धार्मिक उत्साह था और नीचे से ऊपर की ओर इनका कार्य होता था । इस आध्यात्मिक सजीवता के कारण बेनिडिक्टी समूह ने इटली के आर्थिक जीवन को ही नही परिवर्तित किया, इसने आल्पस के उत्तर के प्रदेशों में जगलो के काटने, दलदलों के सुखाने और खेतों तथा पशुओ के चरागाहों के तैयार करने मे वही पथ-प्रदर्शको का काम किया जो उत्तरी अमरीका मे फ्रांसीसी, और ब्रिटिश जंगल काटने वालो ने किया था ।

सन्त ग्रेगरी महान्

बेनेडिक्ट की मृत्यु के तीस वर्ष बाद ग्रेगरी को, जो रोम मे नागरिक शासक था, असम्भव कार्य का सामना करना पडा । ५७३ ई० में रोम की वही अवस्था थी जो वियना की १९२० ई० मे । रोम शतियो तक एक बड़े साम्राज्य की राजधानी होने के कारण महान् नगर हो गया था । किन्तु एकाएक अपने सारे प्रान्तों से अलग हो गया था और उसके सब ऐतिहासिक कार्य समाप्त हो गये और उसे अपने पाँव पर खड़ा होना पड़ा । जिस साल ग्रेगरी रोम का प्रशासक (प्रिफेक्ट) हुआ रोम का शासन क्षेत्र प्रायः उतना ही रह गया था जितना नौ सौ साल पहले था । उसके पहले जब रोमनों ने इटली के आधिपत्य के लिए सैमनाइटो से युद्ध करना आरम्भ किया । किन्तु जिस क्षेत्र को पहले केवल व्यापारिक नगर का भरण-पोषण करना पडता था उसे अब पराश्रयी राजधानी का पालन करना पडा । इस नयी परिस्थिति का सामना करने में पुरानी व्यवस्था असमर्थ थी । इस रोमन शासक ने इसे भलीभाँति अनुभव किया और कटु अनुभव के परिणाम-स्वरूप ग्रेगरी भौतिक ससार से बाद मे दो वर्षो के लिए अलग हो गया ।

पाल की भाँति तीन वर्षों तक वह अन्तर्धान रहा । इस अवधि के बाद उसकी योजना थी कि मै स्वय अपने मिशन को पूरा करूँ जिसे उसने बाद मे अपने प्रतिनिधि से कराया । जब वह पोप द्वारा रोम मे बुलाया गया उसका मिशन था मूर्तिपूजक अग्रेजो को ईसाई बनाना । अनेक पदो पर रहकर और अन्त मे जब वह स्वय पोप के पद पर आसीन हुआ (५९०–६०४ ई०) । उसने तीन महान् कार्य किये । उसने इटली के तथा सागर पार के ईसाई धर्म द्वारा शासित राज्यो के शासन का पुन.सगठन किया, उसने इटली के साम्राज्य वाले अधिकारियो तथा लोबार्डी आक्रमण-कारियो के बीच समझौता कराया और रोम के पुराने साम्राज्य के स्थान पर, जो अब नष्ट हो गया था, नये साम्राज्य की नीव डाली । यह रोमन साम्राज्य सैनिकों के बलपर नही स्थापित किया गया बल्कि मिशनरी उत्साह से बना । और इसने संसार के ऐसे नये देशो पर विजय प्राप्त की जहाँ पुरानी रोमन सेना पहुँची भी नही और जिसके अस्तित्व की कल्पना भी सीपियो या सीजरों ने नही की थी ।

बुद्ध

गौतम बुद्ध सिद्धार्थ भारतीय संसार में संकटकाल मे पैदा हुए थे । उसने देखा कि मेरी राजधानी कपिलवस्तु लूटी गयी । और मेरे परिवार के लोगो की शाक्यों की हत्या हुई । प्राचीन भारत के जो अभिजात्य (एरिस्टोक्रेटिक) गणतन्त्र थे, जिनमें शाक्य समाज भी था, गौतम के काल में धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था और उसके स्थान पर बड़े स्तर पर एकतंत्रीय (आटोक्रेटिक) राजतन्त्र की स्थापना हो रही थी । गौतम अभिजात्य कुल में जन्मा था । जब उस वर्ग पर नयी

सामाजिक शक्तियों का आक्रमण हो रहा था। इसका उत्तर गौतम ने संसार को त्याग कर दिया क्योंकि वह संसार उसके पूर्वजों के समान अभिजात्य लोगों के अनुकूल नही रह गया था। सात साल घोर तपस्या करके उसने प्रकाश की खोज की। जब वह अपना व्रतभंग कर संसार की ओर लौटने वाला था, उसे प्रकाश मिला और जब उसे प्रकाश मिल गया, उसने अपना जीवन दूसरों को प्रदान करने में बिताया। यह प्रकाश अच्छी तरह लोगों में पहुँचे, इसलिए उसने कुछ शिष्य बनाये। इस प्रकार एक संघ बनाया जिसका केन्द्र और मुखिया वह बना।

मुहम्मद

मुहम्मद का जन्म रोमन साम्राज्य के बाहरी सर्वहारा प्रदेश मे अरब के रेगिस्तान में उस समय हुआ था जब रोमन साम्राज्य और अरब का सम्बन्ध बहुत सकटपूर्ण था। ईसाई संवत् की छठी तथा सातवी शती में यह स्थिति पराकाष्ठा को पहुँच गयी जब रोमन साम्राज्य की संस्कृति का प्रभाव अरब में पहुँचने लगा। अरब की ओर से इसके प्रतिकार में कुछ सजीव प्रतिक्रिया आवश्यक थी। यह प्रतिक्रिया मुहम्मद का चरित था (जिसका जीवन काल सम्भवतः ५७०–६३२ ई०)। इन्ही के जीवन ने निश्चय कर दिया कि इस प्रतिक्रिया का क्या रूप हो। मुहम्मद के जीवन की दो महत्त्वपूर्ण घटनाओ द्वारा यह हुआ। दोनों घटनाएँ 'अलग होने और लौटने' के सिद्धान्त पर आश्रित हैं।

मुहम्मद के समय रोमन साम्राज्य के सामाजिक जीवन में दो बाते ऐसी थी जिनका गहरा प्रभाव अरबी आलोचको के जीवन पर पड़े बिना नही रह सकता था। और उन दोनो का नितान्त अभाव था। एक तो धर्म मे एकेश्वरवाद और दूसरा शासन मे विधि और व्यवस्था। मुहम्मद के जीवन का यही कार्य था कि इन दोनो तत्त्वों को 'रूम' के सामाजिक जीवन में अरबी भाषा के माध्यम से कार्यान्वित करना। और अरबी एकेश्वरवाद तथा अरबी शासन-व्यवस्था का विधि-विधान इस्लाम धर्म मे स्थापित करना। उसने इस धर्म को इतनी गति तथा शक्ति प्रदान की, और एक व्यवस्था अरब के बर्बरो की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए उसके आयोजक ने बनायी थी। उस व्यवस्था ने अरब की सीमा को पार करके अतलान्तक सागर से लेकर यूरेशियन स्टेप तक सारे सीरियाई संसार पर विजय प्राप्त कर ली।

मुहम्मद के जीवन भर का यह कार्य जो उसके चालीसवे वर्ष में आरम्भ हुआ (सम्भवतः ६०९ ई०) दो बार मे समाप्त हुआ। पहली दशा मे मुहम्मद ने केवल धार्मिक मिशन पर ध्यान दिया। दूसरे दौर में धार्मिक कार्य शिथिल हो गया और राजनीतिक मिशन इतना प्रबल हो गया कि धार्मिक कार्य दब-सा गया। मुहम्मद के जीवन के पहले अंश का धार्मिक मिशन उस समय आरम्भ हुआ जब वह पन्द्रह वर्ष बाद ग्राम के जीवन की ओर लौटे। यह पन्द्रह वर्षों का उनका जीवन कारवाँ के व्यापारी का था जब वह रोमन साम्राज्य के उत्तरी स्टेप के किनारे-किनारे सीरियाई रेगिस्तानी नगरों तथा अरब के नखलिस्तानो के बीच आया-जाया करते थे। दूसरा दौर धर्म से मिला राजनीतिक मिशन का था। यह उस समय आरम्भ हुआ जब मुहम्मद अपने निवास-स्थान मक्का से दूसरे नखलिस्तान मगरिब को गये जिसे मदीना कहते हैं। इस अलग हो जाने को हिजर. कहते है। मुसलमान लोग हिजर' को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं और वह इस्लामी संवत् का आरम्भ भी मान लिया गया है। मक्का से मुहम्मद को भागना पड़ा था।

सात साल के निर्वासन के पश्चात् (६२२–९ ई०) वह मक्का लौटे। क्षमा प्राप्त भगोड़े के रूप मे नहीं, आधे अरब के अधिकारी होकर।

मेकियावली

मेकियावली (१४६९–१५२७ ई०) फ्लारेंस का नागरिक था। जब वह पचीस साल का था तब फ्रांस के आठवे चार्ल्स ने, सन् १४९४ मे फ्रासीसी सेना लेकर आल्प्स को पार किया और इटली को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वह ऐसी पीढी मे हुआ जब उसकी अवस्था ऐसी थी कि उसे वह समय याद था जब इटली मे फ्रेंच आक्रमण के पहले सुख और शान्ति का जीवन था। वह इतने दिनों तक जीवित रहा कि उसने वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सघर्ष देखे जो आल्प्स के उस पार वाली अथवा समुद्र पार की शक्तियाँ एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए और नेतृत्व प्राप्त करने के लिए इटली मे सघर्ष कर रही थीं। और उनमे कभी एक शक्ति तथा कभी दूसरी शक्ति ने इटली के नागरिक राज्यो की सत्ता छीन ली। इटली में इटली के बाहर की शक्तियो के आक्रमण का सामना मेकियावली की पीढ़ी को करना पड़ा और उससे अनुभूति भी उन्हे प्राप्त हुई। यह ऐसी अनुभूति थी जो उस पीढी के इटालियनो के लिए कठिन थी क्योकि उनके अथवा उनके पितामहो के सामने ऐसी परिस्थिति ढाई सौ साल से कभी उत्पन्न नही हुई थी।

स्वभावत. मेकियावली मे बड़ी राजनीतिक क्षमता थी और अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने की उसमे तीव्र लालसा थी। भाग्यवश वह फ्लारेस का नागरिक था जो उस प्रायद्वीप का प्रमुख नागरिक राज्य था। अपनी योग्यता के बल पर वह उन्तीस साल की अवस्था मे सरकार का सचिव हो गया। पहले फ्रासीसी आक्रमण के चार साल बाद सन् १४९८ मे उसने यह पद ग्रहण किया। अपने सरकारी कार्यों के बीच उसे इन बर्बर शक्तियो का निजी ज्ञान प्राप्त हुआ। चौदह साल के शासन के इस अनुभव के बाद जीवित इटालियनो मे उसके अतिरिक्त कोई नही रह गया था जो इटली के राजनीतिक उद्धार के लिए सफलता से कार्य कर सकता। उसी समय फ्लारेस की राजनीति का चक्र ऐसा घूमा कि वह निकाल दिया गया। सन् १५१२ मे वह राज्य के मन्त्रिपद से हटाया गया और दूसरे ही वर्ष वह बन्दी बना लिया गया और उसे अनेक यंत्रणाएँ दी गयीं। यद्यपि वह जीवित छूट गया किन्तु जेल से छूटने का मूल्य उसे इस प्रकार चुकाना पड़ा कि उसे फ्लारेंस के गाँव मे अपने फारम पर ग्रामीण जीवन बिताना पड़ा। उसके जीवन पर घोर विपत्ति आयी किन्तु इस व्यक्तिगत चुनौती का सामना करने के लिए उसमे पर्याप्त शक्ति थी और उस शक्ति का उसने उपयोग किया।

ग्राम मे निवासित होने के कुछ ही दिनों बाद उसने अपने एक पुराने मित्र और साथी को एक पत्र लिखा। उसमें पूरे ब्योरे के साथ और विनोदात्मक तटस्थता से उसने लिखा है कि मै किस प्रकार का जीवन अब बिताने जा रहा हूँ। प्रातःकाल उठकर दिनभर वह, जिस नयी परिस्थिति मे आ गया था उसके अनुसार, सामाजिक कार्यों तथा खेल-कूद और क्रीड़ा मे अपना जीवन बिताता था। किन्तु इसी में वह अपना क्रियाकलाप समाप्त नहीं कर देता था। संध्या को जब मै घर लौटता हूँ, पढ़ने के कमरे में चला जाता हूँ, दरवाजे पर मैं अपना ग्रामीण वस्त्र जो कीचड़-मिट्टी से सना होता है उतार देता हूँ और दरबारी वस्त्र धारण करता हूँ। और इस प्रकार फिर कपड़े पहनकर प्राचीन काल के लोगों के साथ पुराने महलों में प्रवेश करता हूँ। वहाँ मेरे आतिथेय

बड़े प्रेम से मेरा स्वागत करते है और मै ऐसे पदार्थ का भोजन करता हूँ जो वास्तव मे मेरा पोषक है और जिसके लिए मैंने जन्म लिया था ।

इसी विद्याव्यसन के दिनो में 'द प्रिंस' की कल्पना हुई और वह लिखी गयी । इसके अन्तिम अध्याय में 'इटली को बर्बरों से मुक्त करने का उद्बोधन है ।' और इससे पता चलता है कि जब मेकियावली ने इसे आरम्भ किया तब उसका अभिप्राय क्या था । एक बार फिर उसने सम-सामयिक इटली की राजनीति के सम्बन्ध मे विचार प्रकट किया । इस आशा से कि शायद अब भी मौलिक सर्जनात्मक विचारों द्वारा लोगों मे वह शक्ति उत्पन्न कर सके, जो कुंठित हो गयी थी और इटली की राजनीतिक समस्या का समाधान उपस्थित हो सके ।

किन्तु जो राजनीतिक आशा 'द प्रिस' से जाग्रत हुई वह सफल नही हुई । लेखक के तात्कालिक लक्ष्य तक वह नही पहुँच सकी । इसका यह अर्थ नही है कि पुस्तक असफल रही । मेकियावली खेत से लौटकर रात-रात भर प्राचीन काल के महापुरुषो के बीच जो लिख रहा था तो उसका यह अभिप्राय नही था कि साहित्य के माध्यम से व्यावहारिक राजनीति को कार्यान्वित करे । अपनी कृतियो द्वारा मेकियावली बहुत ऊँचे धरातल पर पहुँच कर लौटा जहाँ से उसका प्रभाव संसार पर इससे कही अधिक पडा जितना वह फ्लारेस राज का मन्त्री होकर पहुँचा सकता था । विवेचन (कथार्सिस) की उन चमत्कारिक घड़ियो मे जिनमे आत्मपीडा से वह ऊपर उठ चुका था, उसने द प्रिस, द डिसकोर्सेज आन लिबी, दि आर्ट आव वार, तथा द हिस्ट्री आव फ्रास, ऐसे महान् बौद्धिक ग्रन्थों का निर्माण किया । हमारे आधुनिक पश्चिमी राजनीति दर्शन के ये बीज हैं ।

दान्ते

इससे दो सौ साल पहले इसी नगर के इतिहास मे इसी प्रकार का एक उदाहरण मिलता है । दान्ते ने उस समय तक अपना कार्य पूरा नही किया जब तक वह अपने नगर से निष्कासित नही हो गया । फ्लारेस मे दान्ते बीत्रिस से प्रेम करने लगा । उसने अपने सामने ही दूसरे की पत्नी के रूप में उसकी मृत्यु देखी । फ्लारेस मे उसने राजनीति मे प्रवेश किया और वहाँ से वह निकाल दिया गया और वहाँ फिर न लौटा । परन्तु फ्लारेस की नागरिकता भले ही छिन गयी वह विश्व का नागरिक हो गया । क्योकि विदेश मे जिस प्रतिभा ने असफल प्रेम के कारण असफल राजनीति मे प्रवेश किया, उसी के द्वारा उसके जीवन की कृति 'डिवाइना कामीडिया' लिखी गयी ।

(३) अलग होना और लौटना : सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग

हेलेनी समाज के विकास के दूसरे अध्याय मे एथेन्स

अलग होने और लौटने का बडा स्पष्ट उदाहरण दूसरे सम्बन्ध मे हमारे सामने आया है । वह है हेलेनी समाज के उस समय का एथीनियनों का व्यवहार जब ईसा के पहले आठवी शती में जनसंख्या की समस्या उनके सामने आयी ।

हमने देखा कि इस चुनौती के प्रति उनका पहला रुख केवल नकारात्मक था । अपने दूसरे पडोसियो की भाँति उसने समुद्र पार उपनिवेश नही बनाये, न उसने स्पार्टनों की भाँति दूसरे यूनानी राज्यो पर आक्रमण करके, उनको विजय करके, वहाँ के निवासियों को दास बनाया । उस काल मे जब तक उसके पड़ोसियो ने उसे छेडा नही एथेन्स अकर्मण्य रहा । किन्तु जब स्पार्टा के राजा

प्रथम क्लियोमिनीस ने लेसिडिमोनियन शासन में मिलाने की चेष्टा की पहले-पहल उसकी सुषुप्त प्रबल शक्ति का संकेत मिला। लेसिडिमोनियन शक्ति का बलपूर्वक सामना करते हुए और उपनिवेश बनाने की क्रिया से अपने को दूर रखते हुए दो सौ साल तक एथेन्स हेलेनी संसार से अलग रहा। किन्तु ये दो सौ साल निष्क्रियता के नही थे। इसके विपरीत, अलग रहकर उसने साधारण हेलेनी समस्या का अपना एक एथेनी समाधान निकाला। यह सुलझाव, उपनिवेश स्थापित करने के हेलेनी कार्य और स्पार्टा के समाधान से अधिक अच्छा था। क्योकि इनसे क्रमशः ह्रास हो रहा था। जब उसने अपने मन के अनुसार समय लेकर अपनी परम्परागत संस्थाओं को नये जीवन के अनुकूल बना लिया तभी वह अखाड़े मे उतरा। किन्तु जब वह आया तब इतनी शक्ति लेकर जैसी हेलेनी इतिहास मे कभी पैदा नही हुई थी।

एथेन्स ने अपने लौटने की घोषणा फारसी (परशियन) साम्राज्य को ललकार कर की। उस समय एथेन्स ही था जिसने एशियाई यूनानी विद्रोहियों की प्रार्थना ४९९ ई० पू० मे सुनी और उस दिन से बराबर यूनान तथा सीरियाई सार्वभौम राज्य के बीच के पचास वर्षीय युद्ध मे यूनानियो की सहायता की। ईसा के पूर्व पाँचवी शती से दो सौ सालों के हेलेनी इतिहास में ऐथेन्स की भूमिका उसके नितान्त विपरीत थी जो दो सौ साल पहले थी। इस दूसरे काम मे हेलेनी अन्तर-राज्यो के राजनीतिक युद्धों मे वह बराबर योगदान करता रहा और जब वे सिकन्दर के पूरबी योद्धा वीरो से परास्त हो गये तभी विवश होकर उन्होने महान् हेलेनी शक्ति के पद को छोड़ा। जब ई० पू० २६२ मे मैसेडन के युद्ध मे वे पराजित हो गये तब भी हेलेनी इतिहास मे योगदान से वे हट नही गये। सैनिक तथा राजनीतिक दौड मे हार जाने के पहले ही उन्होनें और क्षेत्रो मे 'यूनान के शिक्षक' बनने का पद प्राप्त कर लिया था।

पश्चिमी समाज के विकास के दूसरे अध्याय मे इटली

मेकियावली के सम्बन्ध मे लिखते हुए हमने बताया था कि तेरहवी शती के मध्य से जब होहेन्सटाउफेन विनष्ट हुआ था और पन्द्रहवी शती के अन्त तक जब फ्रासीसियो ने आक्रमण किया—इन दो सौ वर्षों तक इटली आलपीय पार (ट्रांस आलिपाइन) अर्ध बर्बर सामन्ती झगड़ो से अलग रहा। इन ढाई सौ सालों तक अलग रहकर इटली ने विस्तृत नही, गम्भीर, भौतिक नही, आध्यात्मिक उन्नति की। वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, तथा साहित्य और सास्कृतिक तथा सौदर्यात्मक जगत् मे मौलिक सर्जन किया जिनकी तुलना यूनान के ईसा के पूर्व पाँचवी तथा चौथी शताब्दी की उपलब्धियो से की जा सकती है। वास्तव मे इटा-लियनो ने प्राचीन यूनान प्रतिभा से प्रेरणा प्राप्त की। उन्होने मृत यूनानी सस्कृति के भूत को जगाया और यूनानी उपलब्धियों को निरपेक्ष, क्लासिक और आदर्श माना जिसकी नकल की जा सकती है, किन्तु उनसे बढ़ा नही जा सकता। और हम लोगो ने उन्ही के पद-चिह्नो पर चलकर क्लासिक शिक्षा की प्रणाली स्थापित की जो आजकल की तकनीकी शिक्षा की माँग के कारण हट रही है। और अन्त मे यह कहा जा सकता है कि इटालियनो ने विदेशी सत्ता से सुरक्षा प्राप्त कर अपने प्रायद्वीप में जिसकी रक्षा सदिग्ध ही थी, ऐसे ससार का सर्जन किया जिसने पश्चिमी सभ्यता का स्तर समय से पूर्व इतना ऊँचा कर दिया कि केवल मात्रा का अन्तर नहीं रह गया, प्रकार (काइंड) का अन्तर हो गया। पन्द्रहवी शती के अन्त तक उन्होने अपने को दूसरे पश्चिम वालों से इतना ऊँचा समझा कि सचमुच, कुछ घमण्ड मे आल्पस के

पार और टाइरीन सागर के पार के लोगों को बर्बर कहकर इस शब्द को फिर जाग्रत किया। और इस काल के ये 'बर्बर' इस प्रकार क्रियाशील हुए कि सास्कृतिक इटालियनो से राजनीतिक तथा सैनिक दृष्टि से श्रेष्ठ दिखाई दिये।

प्रायद्वीप से इटालियन संस्कृति जब चारो ओर फैली, उसने सभी दिशाओ में लोगों के सांस्कृतिक विकास को जाग्रत किया। पहले उसने सस्कृति के स्थूल तत्त्वो को जीवित किया जैसे राजनीतिक सगठन तथा सैनिक तकनीक को। ऐसी बातो पर बहुत जल्द प्रसार का प्रभाव पडता है। और जब 'बर्बरो' ने इन इटालियन कलाओ को भली प्रकार सीख लिया तब उन्होंने इटालियन नगरराज्यो से अधिक व्यापक रूप मे इसका प्रयोग किया।

'बर्बर' लोग इटालियनो से इस सगठन मे क्यो अधिक सफल हुए इसका कारण यह है कि उन्होने इटालियनो से जो शिक्षा ग्रहण की उसके प्रयोग के लिए उनके सामने परिस्थिति उपयुक्त थी। इटालियनो के सामने ऐसी परिस्थिति नही थी। इटालियनो की राजनीतिज्ञता को बाधाओ का सामना करना पड़ा। बर्बरो के लिए यह सरल हो गया क्योकि 'शक्ति' सन्तुलन (बैलेन्स आव पावर) के एक सुव्यवस्थित नियम की सहायता उन्हे मिल गयी।

शक्ति-सन्तुलन राजनीतिक गत्यात्मक शक्ति की एक प्रणाली है जो उस समय कार्यान्वित होती है तब समाज मे उन विभिन्न राज्यो का सगठन बन जाता है, जो एक दूसरे पर निर्भर रहते है। जब इटालियन समाज पश्चिमी ईसाई जगत् से अलग हुआ तब इसी प्रकार के राज्यो मे परिवर्तित हुआ। इटली को पवित्र रोमन साम्राज्य (होली रोमन एम्पायर) से अलग करने का जो आन्दोलन चला तो अनेक नगर-राज्यो का सगठन बन गया और प्रत्येक राज्य आत्मनिर्णय (सेल्फ डिटरमिनेशन) की चेष्टा करने लगा। इस प्रकार एक अलग इटालियन ससार का निर्माण हुआ और इस इटालियन ससार मे अनेक राज्यो का सगठन साथ-साथ हुआ। ऐसे ससार मे शक्ति-सन्तुलन का कार्य इस प्रकार होता है कि राज्यो की औसत क्षमता को राजनीति के प्रत्येक मापदण्ड से जैसे क्षेत्रफल, जनसख्या सम्पत्ति निम्न स्तर पर रखा जाता है। क्योकि कोई राज्य यदि साधारण औसत से किसी बात मे बढ जाने का साहस करता है तो निकट के सभी राज्य प्राय अपने-आप उसपर दबाव डालने लगते है और शक्ति सन्तुलन का यह नियम है कि यह दबाव राज्यो के समूह के केन्द्र मे सबसे अधिक होता है और परिधि पर सबसे कम।

केन्द्र का कोई राज्य यदि अपने अभ्युदय की चेष्टा करता है तो उसके पडोसी उसे देखते रहते है और चतुराई से उसकी चेष्टा को निष्फल करते है। कुछ वर्गमीलो का राज कठिन सघर्ष का विषय हो जाता है। इसके विपरीत परिधि वाले राज्यो मे चढा-ऊपरी कम होती है और थोड़े प्रयत्न से भी परिणाम श्रेष्ठ होता है। सयुक्त राज्य (यूनाइटेड स्टेट्स) अतलान्तक से प्रशान्त सागर तक बिना रुकावट के बढ़ सकता है, रूस बालटिक से प्रशान्त सागर तक विस्तार कर सकता है किन्तु फ्रास या जरमनी की सारी शक्ति ऐलसेस या पोसेन को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त न होगी।

पश्चिमी यूरोप के पुराने और सिकुडे राष्ट्र-राज्यो के लिए आज जिस रूप में रूस और सयुक्त-राज्य है, वैसे ही चार सौ साल पहले इटालियन नगर-राज्यो, फ्लारेस, वेनिस तथा मिलन के लिए उस समय का फ्रांस जिसे ग्यारहवें लूई ने, स्पेन को आरागोन के फरडिनैड ने, और इंग्लैंड को आरम्भिक ट्यूडरो ने, राजनीतिक दृष्टि से इटालियन बना दिया था, उसी रूप में थे।

तुलनात्मक दृष्टि से हम देख सकते हैं कि ईसा के पूर्व आठवीं, सातवीं तथा छठीं शती में एथेन्स के अलग हो जाने में और ईसा की तेरहवीं, चौदहवीं तथा पन्द्रहवी शती में इटालियनों के अलग हो जाने में बहुत कुछ समता है। दोनों स्थितियों में राजनीतिक दृष्टि से यह अलग हो जाना पूर्ण और दृढ़ था। दोनों स्थितियों में जो अल्पसंख्यक दल अलग हो गया, वह इस चेष्टा मे लगा रहा कि सारे समाज के सम्मुख जो समस्याएँ है उनके निराकरण के उपाय ढूँढ़ निकाले जायँ। और दोनों अल्पसंख्यक दल जब उसका सर्जनात्मक कार्य समाप्त हो चुका, अपना पूरा समय बिताकर उसी समाज में लौटा जिसे कुछ समय के लिए उसने छोड़ दिया था और सारे समाज पर अपना छाप अंकित किया। यह भी है कि एथेन्स और इटली ने अलग होकर जिन समस्याओ का समाधान खोजा वे दोनों समान थे। जिस प्रकार यूनान में एटिका ने अलग से एक सामाजिक प्रयोगशाला मे स्थानीय स्वावलम्बी, अपने में पूर्ण कृषि समाज को परस्परावलम्बी राष्ट्रीय औद्योगिक तथा व्यावसायिक समाज में परिवर्तन करने का सफल प्रयोग किया था उसी प्रकार पश्चिमी ईसाई जगत् में लोम्बार्डी और टसकनी ने किया। और जिस प्रकार एथेन्स मे, उसी प्रकार इटली में परम्परागत संस्थाओं मे नये जीवन के अनुसार आमूल परिवर्तन हुआ था। एथेन्स जब व्यापारिक तथा औद्योगिक राज्य बन गया तब राजनीतिक स्तर पर जहाँ जन्म के आधार पर अभिजात तंत्रीय (एरिस्टोक्रेसी) संविधान था उसके स्थान पर सम्पत्ति के आधार पर बुर्जुआ सविधान बना। औद्योगिक तथा व्यावसायिक मिलन या बोलोना या फ्लारेंस या सिएना पश्चिमी ईसाई जगत् के प्रचलित सामन्तवादी शासन-प्रणाली से नयी शासन-प्रणाली मे परिवर्तित हो गया जिसमे प्रत्येक नागरिक और स्थानीय प्रभुत्व सत्ता वाली सरकार से सीधा सम्बन्ध हो गया, जिसमे प्रत्येक नागरिक में प्रभुत्व सत्ता निहित थी, इन मूर्त आर्थिक तथा राजनीतिक आविष्कारो तथा इटालियन प्रतिभाओ को और सूक्ष्म तथा अलौकिक कृतियों को इटली ने पन्द्रहवी शती तथा उसके बाद आल्पस के पार के यूरोप में प्रसारित किया।

किन्तु इस समय से पश्चिमी ईसाई जगत् तथा हेलेनी इतिहास अलग-अलग चलते है। उसका कारण पश्चिमी ईसाई जगत् के इटालियन नगर-राज्यो तथा यूनान के एथेन्स की स्थिति में अन्तर था। एथेन्स नगर-राज्य था और नगर-राज्यों का संसार बन रहा था, किन्तु इटालियन नगर-राज्य जिस ढाँचे पर बना था वह संसार के भीतर एक संसार था और पश्चिमी ईसाई जगत् में मूलत. इस प्रकार का सामाजिक सयोजन नही हुआ था। इसका मूल आधार सामन्तवाद था। और पन्द्रहवीं शती के अन्त में पश्चिमी ईसाई समाज का अधिकांश सामन्तवादी आधार पर संगठित था, उस समय जब इटली के नगर-राज्य पश्चिमी समाज में फिर से मिल गये थे।

इस स्थिति में जो समस्या उत्पन्न हुई उसका समाधान दो प्रकारों से हो सकता था। इटली ने जो नयी सामाजिक परिस्थिति सामने उपस्थित की उसके अनुरूप बनने के लिए आल्पस पार यूरोप या तो अपनी प्राचीन सामन्तवादी पद्धति को त्याग देता और नगर-राज्य के आधार पर नये ढंग से संगठन करता, या इटालियन नये आविष्कारो को इस ढंग से परिवर्तित करता कि उनसे सामन्तवादी आधार पर काम लिया जा सकता और राष्ट्र-राज्य (किंगडम-स्टेट) का रूप ग्रहण करता। इस बात के होते हुए कि स्विटजरलैंड, स्वाबिया, फ्रेंकोनिया और नेदरलैंड्स में नगर-राज्यों को पर्याप्त सफलता मिली थी, जहाँ आन्तरिक तथा सामुद्रिक मार्ग के मूल स्थानों का नियन्त्रण हैसियाटिक लीग के नगरों के हाथ में था, आल्पस के पार के लोगों ने नगर-राज्य वाला

समाधान नहीं स्वीकार किया। इसके परिणामस्वरूप पश्चिम के इतिहास का नया अध्याय आरम्भ होता है। यह भी अलग होने और लौट आने के महत्त्व का और उदाहरण है जिसका परिणाम समझने योग्य है।

पश्चिमी समाज के विकास के तीसरे अध्याय मे इंग्लैंड

पश्चिमी समाज के सामने यह समस्या थी कि खेतिहर अभिजाततंत्रीय जीवन से बदलकर औद्योगिक लोकतंत्रात्मक जीवन में कैसे परिवर्तन हो और नगर-राज्य प्रणाली न अपनायी जाय। इस परिस्थिति का सामना किया स्विटजरलैंड, हालैंड और इंग्लैंड ने और अंग्रेजो ने इसका समाधान निकाला। इन तीनो देशो को यूरोप के साधारण जीवन से अलग होने मे यूरोप की भौगोलिक स्थिति से बहुत सहायता मिली। स्विटजरलैंड को पर्वतो से, हालैंड को अपने बाँधों से और इग्लैंड को इंगलिश चैनल से। उत्तर माध्यमिक काल मे जो नगर-राज्य बन रहे थे उस संकट से स्विटजरलैंड ने संघ का निर्माण करके अपने को बचाया। पहले हैप्सबर्ग से फिर बरगडी की शक्ति से। डचों ने स्पेन से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की और सात सयुक्त प्रदेश बनाये। महाद्वीप के देशो पर विजय प्राप्त की महत्त्वाकांक्षा को इंग्लैंड को त्याग देना पड़ा क्योकि शत वर्षीय युद्ध में वह पराजित हो गया और कैथोलिक स्पेन के आक्रमण को उसने एलिजाबेथ के काल में डचों की भाँति विफल किया। और उस समय से लेकर १९१४–१९१८ के युद्ध तक अंग्रेजो की विदेशी प्रमुख नीति सदा यह रही कि महाद्वीप के मामलो मे हस्तक्षेप न किया जाय।

किन्तु ये तीन स्थानीय अल्पसख्यक अपने अलग होने की नीति मे समान स्थिति मे नही थे। स्विटजरलैंड के पहाड और हालैंड के बाँध का प्रभाव रुकावट मे उतना नही था जितना इगलिश चैनल का। डचो ने चौदहवें लूई से जो युद्ध किये उनसे वे पूर्ण रूप से अपनी पूर्वावस्था को नही पहुँचे थे और कुछ दिनो के लिए हालैंड तथा स्विटजरलैंड दोनो को नैपोलियन निगल गया था। साथ ही डच तथा स्विस दोनो को यह असुविधा थी कि वे उस समस्या के समाधान मे लगे थे जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, दो मे से कोई भी केन्द्रीभूत राष्ट्र-राज्य नही था। केवल कैंटनो (प्रदेशो) अथवा नगरो के अदृढ सघ थे। परिणामत इग्लैंड के, और सन् १७०७ के मिलन के बाद ग्रेट ब्रिटेन के ऐंग्लो-स्काटिश संयुक्त राज्य को पश्चिमी ईसाई ससार के इतिहास मे तीसरे अध्याय का कार्य करना पड़ा जैसा इटली ने दूसरे अध्याय मे किया था।

यह ध्यान देने की बात है कि इटली स्वय नगर-राज्य की ईकाई की सीमा के बाहर जा रहा था क्योकि उसके अलग होने के समय के अन्त तक सत्तर या अस्सी नगर-राज्य विजय द्वारा आठ या दस बडे-बडे समूह बन गये थे। किन्तु दो बातो मे परिणाम समुचित नही हुआ। पहली बात तो यह कि ये नयी राजनीतिक इकाइयाँ यद्यपि पहले से बडी थी फिर भी वे बर्बरो के आक्रमणो को जिस काल में वे आरम्भ हुए, रोकने मे असमर्थ थी। दूसरी बात यह कि इन बड़ी इकाइयो मे जो शासन-व्यवस्था बनी वह सदा नृशंस थी और नगर-राज्य के जो राजनीतिक गुण थे वे इस प्रणाली की प्रक्रिया मे समाप्त हो गये। यह उत्तरकालीन इटली का निरंकुश शासन आल्पस पार पहुँचा और उसे स्पेन में हैप्सबर्गों ने, वेलायों और बूरबनो ने फ्रांस मे, आस्ट्रिया में भी हैप्सबर्गों ने और प्रशा मे होहेनजालनों ने अपनाया। किन्तु यह अपनाना अन्धी गली में जाने के समान था। क्योकि किसी प्रकार के एक राजनीतिक लोकतत्रीय शासन के बिना आल्पस के देश इटली की पहले की वे आर्थिक उपलब्धियाँ नहीं प्राप्त कर सकते थे जिन्हें इटली ने नगर-राज्य की शासन

व्यवस्था में प्राप्त की थी, जब वह खेतिहर परिस्थिति से व्यापारिक और औद्योगिक रूप में परिवर्तित हुआ।

फ्रांस और इंग्लैंड के विपरीत निरंकुश राजतन्त्र चुनौती थी जिसका सामना सफल ढंग से हुआ। आल्पस पार की राजनीतिक व्यवस्था प्राचीन पश्चिमी ईसाई संसार के समान उत्तराधिकार में मिली थी जो अंग्रेजी भी थी, फ्रेंच भी और स्पेनी भी। अंग्रेजो ने इस प्राचीन परम्परागत विधान मे नयी जान फूँकी और नया कार्य उसे सौंपा। आल्पस पार की संस्थाओं की एक परम्परागत विशेषता यह थी कि राजा तथा राज्य के जनवर्ग के बीच समय-समय पर संसद अथवा कानफरेन्स हुआ करती थी। इसके दो कार्य थे। एक तो जनवर्ग अपने कष्टों के निराकरण के लिए कहता था और दूसरे राजा को धन देना स्वीकार करता था इसके बदले में कि हमारी उचित शिकायते दूर की जायेंगी। आल्पस पार के इन राज्यों ने इस संस्था के क्रमशः विकास द्वारा अत्यधिक सख्या तथा अव्यावहारिक दूरी की, भौतिक--राजनीतिक समस्या का समाधान प्रतिनिधित्व रूपी वैध-फूट का आविष्कार करके किया अथवा फिर से ढूंढ निकाला। नगर-राज्य में संसद के कार्यों मे स्वयं योगदान करने का प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार या कर्तव्य था। बड़े-बड़े दुःसाध्य सामन्ती राज्यों को इस व्यवस्था को प्रतिनिधि के रूप में परिवर्तित किया गया कि ये प्रतिनिधि वहाँ जायें जहाँ संसद का अधिवेशन हो।

समय-समय पर प्रतिनिधियों के सम्मेलन का यह सामन्ती रूप राजा तथा प्रजा के सम्पर्क के लिए बहुत उपयुक्त व्यवस्था थी। किन्तु वह मौलिक रूप में उस कार्य के लिए बिलकुल अनुपयुक्त थी जो सत्रहवी शती मे इग्लैंड ने सफलतापूर्वक अपने अनुकूल बनाया। अर्थात् धीरे-धीरे राजा से वह शक्ति जो राजनीतिक सत्ता की कुंजी थी, अपने हाथ मे कर ली।

क्या कारण था कि इग्लैंड ने उस चुनौती का सफलतापूर्वक सामना किया जिस प्रकार की चुनौती में कोई आल्पस के पार का राज्य सफल नही हो सका। इसका उत्तर यही है कि महाद्वीप के सामन्ती राज्यों की अपेक्षा इंग्लैंड छोटा था और उसकी सीमाएँ स्पष्ट ढंग से निर्धारित थी। इसी कारण वहाँ पड़ोसी राज्यों की अपेक्षा बहुत पहले सामन्ती राज के विपरीत राष्ट्रीय जीवन का विकास हो गया। यदि यह कहा जाय कि पश्चिमी ईसाई समाज के इतिहास के मध्य अर्थात् दूसरे अध्याय में अंग्रेजी राजतन्त्र का जो बल था उसी के परिणामस्वरूप तीसरे अध्याय मे संसदीय शासन ने सफलता पायी तो विरोधाभास न समझना चाहिए। दूसरे अध्याय मे किसी शासन का इतना शक्तिशाली अधिकार और कठोर अनुशासन नही था जितना विलियम द कांकार का, प्रथम और दूसरे हेनरियो का और पहले और तीसरे एडवर्डों का। इन प्रबल शासको के शासन में इंग्लैंड राष्ट्रीय एकता मे संयोजित हुआ जैसा फ्रांस, या स्पेन या जरमनी नही हुआ था। इस परिणाम का एक कारण और था, वह था लन्दन का प्रभुत्व। आल्पस पार के पश्चिमी राज्यों मे कोई एक नगर ऐसा नहीं था जो दूसरो से श्रेष्ठ रहा हो। सत्रहवी शती के अन्त मे जब फ्रांस अथवा जरमनी की जनसंख्या की तुलना में इंग्लैंड की जनसंख्या नगण्य थी और स्पेन या इटली की जनसंख्या से कम थी, लन्दन यूरोप का सबसे बड़ा नगर था। यह कहा जा सकता है कि इग्लैंड ने इटालियन नगर-राज्य को राष्ट्रीय पैमाने पर अपने अनुकूल बनाने की समस्या का समाधान दूसरे आल्पस पार राज्यों की अपेक्षा पहले कर लिया था। इसके कारण थे उसका छोटा आकार, उसकी निश्चित सीमाएँ, उसके बलशाली राजे और एक बहुत बड़ा नगर। वास्तव मे यह एक नगर-राज्य की सघनता तथा आत्मजागरण का विस्तृत रूप था।

इन तमाम अनुकूल परिस्थितियों के होने पर भी अंग्रेज जाति ने इटालियन शासन की दक्षता के पुनर्जागरण की नयी शराब मध्ययुगीन आल्प्स पार के संसदीय शासन की नयी बोतल में भरा और बोतल टूटा नहीं। यह वैधानिक विजय है जिसका कारण आश्चर्यजनक और असाधारण शक्ति ही कही जा सकती है। यह असाधारण शक्ति जिसने शासन के कार्य तथा उसकी आलोचना में पार्लमेन्ट की विजय पश्चिमी समाज के लिए प्राप्त की उन अंग्रेज सर्जनशील अल्पसंख्यकों की देन है जो आरम्भिक काल में महाद्वीप की उलझनो से अलग हो गये थे। एलिजाबेथी काल तथा सत्रहवीं शती के अधिकांश भाग का यह समय था। जिस समय चौदहवें लुई की चुनौती स्वीकार करके मार्लबरो के प्रतिभापूर्ण नेतृत्व मे अग्रेजो ने महाद्वीप के क्षेत्र मे अशत: पुन प्रवेश किया। तब यूरोपीय महाद्वीप के लोग देखने लगे कि अग्रेज क्या करते रहे है। फ्रेंच लोगो की भाषा मे 'एंग्लोमेनी'[१] का युग आरम्भ हो गया था। माटेसकू ने अग्रेजों की उपलब्धियो की प्रशसा की और इसे गलत समझा। वैधानिक राजतन्त्र के रूप मे 'एग्लोमेनी' उस बारूद की ढेरी में था जिसने फ्रांस की राज्यक्रान्ति की आग भडकाई और यह साधारण ज्ञान की बात है कि उन्नीसवी शती समाप्त होकर बीसवी शती जब आरम्भ हुई ससार के सभी लोगो की आकाक्षा हुई कि अपनी राजनीतिक नग्नता को सामारिक पत्तों के आवरण मे छिपाये। पश्चिमी इतिहास के तीसरे अध्याय के अन्तिम चरण मे अग्रेजी राजनीतिक सस्थाओ की पूजा स्पष्टत उसी प्रकार है जैसे दूसरे अध्याय के अन्तिम चरण मे इटालियन सस्थाओ की पूजा। अग्रेजो के यहाँ इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण यह है कि शेक्सपियर के कथा वाले नाटको के तीन चौथाई भाग इटालियन कहानियों पर आधारित हैं। 'रिचर्ड द्वितीय' मे शेक्सपियर इस इटली प्रेम की ओर सकेत करता है और मजाक उडाता है यद्यपि यह प्रेम स्वय उसकी रचनाओ मे दिखाई देता है। यार्क का सुयोग्य ड्यूक कहता है कि मूर्ख राजा निम्नलिखित बातो से बहक गया है—

> 'घमण्डी इटली के फैशनो के समाचार से,
> जिसके रग-ढग को हमारी आलसी मर्कट की सी जाति
> निम्न कोटि की नकल करने के लिए पीछे-पीछे चलती है।'

नाटककार अपने स्वाभाविक समय-दोषपूर्ण (एनाक्रानिस्टिक) ढग से चासर के युग के सम्बन्ध मे वह बात कह रहा है जो उसके युग की थी। यद्यपि चासर के युग मे इसका आरम्भ हो गया था।

अंग्रेजों के ससदीय शासन का राजनीतिक आविष्कार आगे के उद्योगवाद के अंग्रेजी आविष्कार के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण बना। वह लोकतत्रीय शासन जिसमे कार्यकारी (एक्जिक्यूटिव) उस ससद के प्रति उत्तरदायी है जिसे जनता ने चुना है तथा उद्योगवाद जिसमें कारखानों में मजदूर केन्द्रित होते हैं और मशीन द्वारा उत्पादन होता है, हमारे युग की दो महान् संस्थाएँ है। ये इसलिए चल सकी कि इन्ही के द्वारा पश्चिमी समाज उस समस्या का समाधान कर सका जिससे इटालियन नगर-राज्य की संस्कृति की राजनीतिक तथा औद्योगिक उपलब्धियों को राज-राज्य के स्तर पर ले जा सके। और ये दोनो समाधान उस समय हुए जब इंग्लैंड का वह युग था जिसे बाद के राजनीतिज्ञों ने 'महान्' कहा है।

१. अंग्रेजी बातों के प्रति प्रेम।—अनुवादक

पश्चिम के इतिहास में रूस की भूमिका क्या होगी ?

जिस महान् समाज के रूप में हमारे पश्चिमी ईसाई जगत् का विकास हुआ है उसके समसामयिक इतिहास में हमें ऐसा आभास मिलता है जहाँ एक युग की प्रवृत्ति दूसरे युग की प्रवृत्ति के ऊपर छा जाती है और जहाँ पूरे समाज का एक भाग भविष्य की समस्याओ के समाधान के लिए अलग हो जाता है और समाज का शेष भाग पुरानी समस्याओं को सुलझाने मे लगा रहता है। इससे पता चलता है कि विकास की प्रक्रिया चल रही है। पहले की इटालियन समस्याओं के समाधानों से जो नयी समस्याएँ उत्पन्न हुई उनका समाधान इंग्लैड में हुआ। देखना यह है इन अंग्रेजी समाधानों ने नयी समस्याएँ तो नही खड़ी कर दीं। हम यह बात जानते हैं कि हमारी ही पीढ़ी में लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की विजय को दो नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। विशेषत: उद्योगवाद की आर्थिक प्रणाली में इस प्रणाली का अर्थ यह है कि ससार के बाजार के लिए कुशल तथा मूल्यवान् स्थानीय उत्पादन हो। इसके लिए संसार को ध्यान में रखकर कोई ढाँचा बनाना पडता है। और लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद, दोनों में मानव-स्वभाव मे अधिक व्यक्तिगत आत्मनियन्त्रण, पारस्परिक सहिष्णुता तथा सार्वजनिक सहयोग की अपेक्षा होती है जिसका मानव प्राणी अभी तक अभ्यासी नही रहा है। क्योंकि इन नयी संस्थाओ ने मनुष्य के सारे सामाजिक कार्यों मे नयी सक्रियता उत्पन्न कर दी है। उदाहरण के लिए सब लोगों ने मान लिया है कि जिन सामाजिक तथा तकनीकी परिस्थितियों मे आज हम है उनमे हमारी सभ्यता का अस्तित्व इसी प्रकार बचा रह सकता है कि आपसी मतभेदो के निपटारे के लिए युद्ध न किया जाय। यहाँ हम केवल इसी पर विचार करेंगे कि इन नयी चुनौतियो के कारण ऐसे नये उदाहरण मिलते हैं कि नही जहाँ कोई अलग हुआ हो और फिर लौटा हो।

इतिहास के ऐसे अध्याय पर जिसका अभी आरम्भ हुआ हो, कुछ कहना असामयिक होगा। किन्तु यह कहने का साहस तो किया ही जा सकता है कि इस समय जो रूसी परम्परावादी ईसाई समाज है क्या इसी प्रकार का कुछ नहीं है। हमने पहले कहा है कि रूसी साम्यवाद, पश्चिमी परदे में उस पश्चिमीकरण से अलग होने का कट्टरतापूर्ण प्रयत्न है जो दो सौ साल पहले महान् पीटर द्वारा हुआ था। और हमने देखा कि यह परदा चाहे-अनचाहे हटता जा रहा है। हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जो रूस अनिच्छा से पश्चिमी बना और जहाँ पश्चिम के विरोध मे क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ उसने रूस को अधिक पश्चिमी बना दिया। किसी पश्चिमी सामाजिक सिद्धान्त का अनुगामी होने से ऐसा न हुआ होता। रूस तथा पश्चिम के इस संपर्क को हमने इस प्रकार व्यक्त किया है कि यह सम्बन्ध जो पहले दो विभिन्न समाजों का केवल ऊपरी सम्पर्क था वह उस बड़े समाज के आन्तरिक रूप में परिवर्तित हो गया जिस समाज का अब रूस अंग बन गया है। क्या हम इससे आगे बढ़कर यह कह सकते है कि रूस इस बड़े (यूरोपीय) समाज मे सम्मिलित होने के साथ-साथ अपने साधारण जीवन से अलग होने की चेष्टा कर रहा है कि वह सर्जनात्मक अल्पसंख्यक के रूप में इस बडे समाज की समस्याओं का समाधान खोजे ? यह सोचा जाता है और रूसी प्रयोग के प्रशंसकों का विश्वास है कि रूस पुन: इस बड़े समाज में सर्जनात्मक भूमिका अदा करने के लिए लौटेगा।

१२. विकास द्वारा विभिन्नता

हमने उस प्रक्रिया की छानबीन पूरी कर दी जिससे सभ्यताओ का विकास होता है और जिन उदाहरणो की परीक्षा की है उससे पता चलता है कि सबमे प्रक्रिया एक ही है। विकास तब होता है जब कोई व्यक्ति या अल्पसंख्यक दल या सारा समाज किसी चुनौती का सामना करता है और यह सामना केवल चुनौती पर विजय ही नही पाता, वल्कि विजय प्राप्त करने वाले के सामने नयी चुनौती उपस्थित कर देता है जिसका फिर उसे सामना करना पडा है। विकास की यह प्रक्रिया समान हो सकती है किन्तु चुनौती का सामना करने वाले वर्गों की अनुभूति एक सी नही होती। समान चुनौतियो का सामना करने मे विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। किसी एक समाज मे जो विभिन्न समुदाय सयुक्त होते है उनकी अनुभूतियो की हम तुलना करे तो यह स्पष्ट हो जाना है। कुछ परास्त हो जाते है, कुछ अलग होने और लौट आने की सर्जनात्मक क्रिया से विजय पा जाते है, कुछ ऐसे होते है जो न पराजित होते है न विजयी होते है। ये अपना अस्तित्व बनाये रखते है और जब विजयी समुदाय उनको नयी राह दिखाता है तब उसी के चरण-चिह्नों पर चलते है। इस प्रकार प्रत्येक चुनौती मे समाज मे विभिन्नता उत्पन्न होती रहती है। और जितनी ही लम्बी चुनौनी की शृखला होती है उतनी ही विभिन्नता अधिक होती है। यदि किसी एक विकास वाले समाज मे, जिसमे सभी के लिए चुनौती एक-सी है, विकास के कारण विभिन्नता उत्पन्न होती है, तो निर्णयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि जहाँ चुनौतियों मे भी भेद है वहाँ एक सी प्रक्रिया होने पर भी, एक विकासोन्मुख समाज दूसरे विकासोन्मुख समाज से विभिन्न होगा।

इसका स्पष्ट उदाहरण कला के क्षेत्र मे मिलता है। क्योकि यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक सभ्यता की अपनी कला की शैली होती है। और यदि हम किसी सभ्यता की देश और काल की सीमा निर्धारित करना चाहे तो सबसे निश्चित तथा सबसे सूक्ष्म कसौटी सौन्दर्यबोधात्मक है। उदाहरण के लिए मिस्र मे जो कलात्मक शैलियाँ पायी जाती है, यदि उनका सर्वेक्षण किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी 'प्रीडाइनास्टिक' युग की कला में। अभी मिस्री कला की विशेषता नही आयी है और कोप्टिक कला ने मिस्री कला की विशेषताओ को त्याग दिया है। इस आधार पर हमे मिस्री सभ्यता के काल का पता चल सकता है। इसी परीक्षण के आधार पर उस समय का पता लगा सकते है जब मिनोई समाज के आवरण से हेलेनी सभ्यता प्रकट हुई और कब परम्परावादी ईसाई समाज के विकास के लिए उसका विघटन हुआ। मिनोई कलाओं की शैली से हम यह जान सकते है कि मिनोई इतिहास की विभिन्न अवस्थाओ मे उसकी सभ्यता के क्षेत्र की सीमा कहाँ तक थी।

इसीलिए यदि हम स्वीकार कर ले कि कला के क्षेत्र में प्रत्येक सभ्यता की अपनी अलग शैली होती है तब हमें इसका पता लगाना होगा कि कला का जो विशेष गुण कला के क्षेत्र मे है क्या वह प्रत्येक सभ्यता के दूसरे क्षेत्रों, कार्यों तथा संस्थाओ में बिना प्रवेश किये रह सकता है। इस प्रकार की

खोज में बहुत गहरे न जाकर हम इतना कह सकते हैं कि यह सर्वमान्य तथ्य है कि विभिन्न सभ्यताओं ने विभिन्न कार्यकलाप को महत्त्व प्रदान किया है। उदाहरण के लिए हेलेनी सभ्यता में सम्पूर्ण जीवन पर सौन्दर्यबोधात्मक दृष्टि रही है। यही उसकी विशेषता है। यूनानी विशेषण 'केलोस', जिसका अर्थ है कलापूर्ण सुन्दरता, नैतिक सुन्दरता के लिए भी निस्सकोच प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत भारतीय सभ्यता में जिसमें हिन्दू सभ्यता भी सम्मिलित है जीवन के सभी क्षेत्रों में धार्मिक प्रवृत्ति व्यापक है।

जब हम अपनी पश्चिमी सभ्यता की ओर देखते है तब हमे अपनी प्रवृत्ति या रुझान पहचानने में कठिनाई होती है। यह तो स्पष्ट है कि इस सभ्यता का झुकाव यन्त्रो (मशीनरी) की ओर है। इसकी रुचि, चेष्टा तथा योग्यता इस ओर है कि विज्ञान के आविष्कारों का उपयोग भौतिक उद्देश्यो के लिए किया जाय और इसके लिए भौतिक तथा सामाजिक यन्त्र चतुराई से बनाये गये हैं। भौतिक यन्त्र जैसे मोटरकार, कलाई घड़ी, बम आदि और सामाजिक यन्त्र जैसे संसदीय सम्थाएँ, बीमा और सैनिक सज्जनन की प्रणालियाँ। यह हमारी प्रवृत्ति जितना हम समझते है उससे अधिक दिनों की है। दूसरी सभ्यताओ के श्रेष्ठ लोग इस 'यन्त्र युग' के बहुत पहले से पश्चिम वालो को भौतिकवादी कहकर घृणा करते रहे। बाइजांटी राजकुमारी एनाकोमिना ने जो इतिहामकार भी हो गयी है जब धर्म-युद्ध करने वालों को कलदार धनुष (क्रास-बो) का प्रयोग करते देखा, जिसमे यान्त्रिक चतुराई दिखाई देती थी, घृणा तथा भय से भर गयी। उसके युग मे नयी चीज थी और यांत्रिक सहारक हथियारो के आविष्कार के शतियो पहले यह बन गया था। माध्यमिक काल के पश्चिमी मानव ने अनाकर्षक शान्तिपूर्ण कलाओं की अपेक्षा इस ओर अपनी बुद्धि और कौशल की श्रेष्ठ कृति इसी को समझा।

आजकल के कुछ पश्चिमी लेखक, विशेषत: स्पेंगलर ने विभिन्न सभ्यताओ की इन विशेषताओ का इतनी दूर तक अध्ययन किया है कि गम्भीर निदान मनमानी कल्पना तक पहुँच गया है। हमने इतना बता दिया है जिससे यह बात निश्चित हो जाती है कि किसी-न-किसी प्रकार का भेद अवश्य उत्पन्न होता है। साथ ही हमे इस बात का भय है कि समुचित अनुपात की भावना भी जाती रहेगी यदि हम एक बात की ओर ध्यान न देंगे, जोकि उतनी ही सत्य है जितनी पहली। वह यह कि मानव-जीवन तथा सस्थाओं मे जो विभिन्नता दिखाई देती है वह केवल बाहरी है। इस विभिन्नता के आवरण मे एकता छिपी हुई है और बाहरी विभिन्नता उस एकता को नष्ट नहीं करती।

हमने अपनी सभ्यताओं की तुलना पहाड पर चढने वालों से की है। इसी उपमा के अनुसार चढने वाले अनेक है किन्तु उनका प्रयत्न एक ही है। उसी चट्टान की एक ही शिला फलक से एक ही स्थान पर चढने की सब चेष्टा कर रहे हैं। उनका ध्येय एक ही है। आन्तरिक एकता यहाँ स्पष्ट है। हम इस उपमा को बदलकर बीज बोने वाले की कहानी (द पैरेबल आव द सोवर) की उपमा देखें और सभ्यताओं से तुलना करें। जो बीज बोये गये वे अलग-अलग हैं, हर एक बीज का अपना अलग भविष्य है। बोने वाला एक है और एक ही प्रकार की फसल काटने की आशा भी उसे है।

४

सभ्यताओं का विनाश

१३. समस्या का रूप

सभ्यताओ के विकास की समस्या की अपेक्षा उनके विनाश की समस्या अधिक स्पष्ट है। वह उतनी ही स्पष्ट है जितनी उनकी उत्पत्ति की समस्या। सभ्यताओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहना आवश्यक है कि इतनी सभ्यताएँ उत्पन्न हो गयी और उनके अट्ठाईस प्रतिनिधियो के नाम हमने गिनाये हैं। इनमे पाँच अविकसित सभ्यताएँ भी सम्मिलित है। अकाल प्रसूत सभ्यताओं को छोड दिया गया है। अब हम कह सकते है कि इन अट्ठाईस मे से अठारह ऐसी हैं जो काल-कवलित हो गयी हैं। जो दस बची है वे है पश्चिमी समाज, निकट पूर्व का परम्परावादी ईसाई जगत्, उसकी शाखा रूप मे, इस्लामी समाज, हिन्दू समाज, सुदूर पूर्व समाज का मुख्य भाग, उसकी शाखा जापान मे, और पोलिनेशियनो, एक्सिमो तथा खानाबदोशो की तीन अविकसित सभ्यताएँ। यदि हम इन दस अवशिष्ट सभ्यताओ पर ध्यान दे तो हम देखेंगे कि पोलिनेशियाई और खानाबदोश अपनी अन्तिम साँस ले रहे है और शेष सात या तो विनाश की ओर उन्मुख है या आठवी अर्थात् पश्चिमी सभ्यता में विलीन हो जाने वाली है। इन सात मे से छ: का विघटन होने लगा है। एक अपवाद है एसकिमो का जिसका विकास आरम्भ काल मे ही रुक गया था।

विघटन का मुख्य लक्षण जैसा पहले बताया जा चुका है, यह है, जो अन्त मे दृष्टिगोचर होता है और वह पतन और विनाश का है वह यह है कि विघटन वाली सभ्यता सार्वभौम राज्य के साथ जबर्दस्ती राजनीतिक एकीकरण करके अपने अस्तित्व की रक्षा कुछ काल के लिए करती है। पश्चिम के विद्यार्थी के लिए इसका क्लासिक उदाहरण रोमन साम्राज्य है जिसमे हेलेनी समाज बलपूर्वक अपने इतिहास के अन्तिम अध्याय के पहले मिला लिया गया था। यदि हम अपनी सभ्यता के अतिरिक्त शेष छ: जीवित सभ्यताओ की ओर देखे तो हमे पता चलता है कि परम्परावादी ईसाई जगत् उसमानिया साम्राज्य के रूप मे सार्वभौम राज्य मे जा चुका था, रूस का परम्परावादी ईसाई ससार पन्द्रहवी शती के अन्त मे, जब मास्को और नोवगोरोड का एकीकरण हुआ था, सार्वभौम राज्य मे सम्मिलित हो चुका था, हिन्दू सभ्यता मुगल साम्राज्य मे और उसके बाद बृटिश राज के सार्वभौम राज्य में सम्मिलित हो गयी थी, सुदूर पूर्वी सभ्यता मगोल साम्राज्य मे सम्मिलित हो चुकी थी जिसका पुनरुद्धार मचुओ ने किया, सुदूर पूर्वी सभ्यता की जापानी शाखा तोकूगावा शोगून राज्य मे सम्मिलित हुई। इस्लामी समाज के विश्व-इस्लामी आन्दोलन के सार्वभौम राज्य मे विलीन हो जाने की सम्भावना है।

यदि हम इस सार्वभौम राज्य की घटना को विनाश का लक्षण स्वीकार करें तो सभी छ: अ-पश्चिमी सभ्यताएँ जो आज जीवित है वे पश्चिमी सभ्यता के सघात के पहले ही आन्तरिक रूप में विघटित हो चुकी थी। इस अध्ययन मे आगे हम इस मत पर विश्वास करेंगे कि जिन

सभ्यताओं पर विजयपूर्ण बाहरी आघात हुआ है वे आन्तरिक रूप मे मर चुकी थी और विकास के योग्य नहीं रह गयी थीं। यहाँ हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते है कि जीवित सभ्यताओ में हमारी सभ्यता के अतिरिक्त सब पतनोन्मुख हो चुकी है और विघटन के पथ पर है।

और हमारी पश्चिमी सभ्यता ? अभी वह सार्वभौम राज्य की स्थिति तक नही पहुँची है। हमने पहले बताया है कि सार्वभौम राज्य विघटन की पहली मंजिल नही है और न अन्तिम। सार्वभौम राज्य के बाद 'अन्तःकाल' होता है और उसके पहले 'संकट का काल' होता है जो कई शतियों चलता रहता है। और यदि हम अपने युग मे आत्मपरक भाव से इसी कसौटी पर विचार करे तो कह सकते है कि 'सकट का काल' निश्चित रूप से हमारी सभ्यता के लिए आरम्भ हो गया है। किन्तु सम्प्रति यह प्रश्न हम छोड़ देते हैं।

हमने सभ्यताओं के विनाश की प्रकृति की परिभाषा बना दी है। आदिम मानव अतिमानव के जीवन की ऊँचाई तक पहुँचने के अनेक साहसपूर्ण प्रयास करता है और असफल होता है। उस महाप्रयास की दुर्घटनाओ का अनेक उपमाओ द्वारा वर्णन हमने किया है। उदाहरण के लिए हमने उनकी उन पर्वतारोहियों से तुलना की है जो गिर पड़ते है और मर जाते है या उन लोगो के समान जो वहाँ रह गये। जिस चट्टान से उन्होने चढ़ना आरम्भ किया था और जीवित मृतक के समान वहाँ पडे हुए है और ऊपर एक और चट्टान पर पहुँच कर विश्राम नही ले सके। इन विनाशों को हमने अ-भौतिक (नान-मैटीरियल) भाषा मे इस प्रकार कहा—सर्जनात्मक व्यक्तियो अथवा अल्पसख्यकों की आत्मा मे सर्जनात्मक शक्तियों का अभाव। इस अभाव के कारण असर्जनात्मक जनसमूह को वे प्रभावित नही कर सकते। जहाँ रचना नही है वहाँ अनुकरण भी नही है। जो वशी वाला अपनी कला भूल गया वह अपने सामने की भीड़ के चरणो मे वैसी गति नही ला सकता कि वे नाच सकें। और यदि क्रोध मे वह ड्रिल सरजट या दासों का हाँकने वाला बन जाय और उन लोगो को, जिन्हे अपनी मोहनी शक्ति से वह नचा देता था न नचा सके और जबरदस्ती नाचने पर विवश करे, तो उसका अभिप्राय सफल नही हो सकता। जो लोग उसके साथ नही पाँव उठा सकते क्योंकि स्वर्गीय सगीत अब बन्द हो गया, वे चाबुक की चोट के कारण विद्रोह करेंगे।

हमने देखा है कि वास्तव मे, जब किसी समाज के इतिहास मे कोई सर्जनात्मक अल्पसंख्यक समुदाय शक्तिशाली अल्पसख्यक दल मे परिवर्तित हो जाता है और बलपूर्वक वह स्थान अपने लिए बनाये रहना चाहता है जिसके योग्य वह नही है तो इस शासक वर्ग की मनोवृत्ति के परिवर्तन के कारण दूसरी ओर सर्वहारा अलग हो जाता है क्योकि अपने शासको के प्रति उसकी आस्था नही रह जाती, न वह उनका अनुकरण करता है बल्कि विद्रोह करता है। हमने यह भी देखा है कि जब यह सर्वहारा दृढ़ हो जाता है तब आरम्भ से ही उसके दो भाग हो जाते है। एक तो अन्दर का सर्वहारा होता है जो अकर्मण्य और शिथिल होता है, दूसरा सीमा के बाहर सर्वहारा होता है जो सम्मिलन का घोर विरोध करता है।

इस प्रकार सभ्यताओं के विनाश के सम्बन्ध में तीन बातें है : अल्पसंख्यको में (शासक वर्ग) रचनात्मक शक्ति का अभाव, तदनुसार बहुसंख्यक वर्ग मे अनुकरण शक्ति का लोप और परिणाम-स्वरूप सारे समाज में एकता का अभाव। सभ्यताओं के विनाश की प्रवृत्ति का यह चित्र अपने सामने रखकर अब हम उनके कारणो का अध्ययन करें। इस अध्ययन के शेष अंश मे यही खोज की जायगी।

१४. नियतिवादी (डिटरमिनिस्टिक) समाधान

फिर सभ्यताओ का विनाश कैसे होता है, विवेचन करने के पहले हम अपनी प्रणाली के अनुसार जिसमे इतिहास के ठोस सगत तत्त्वो को क्रम से एकत्र किया जाता है, समस्या के उन समाधानो को फिर से देखे जो प्रमाण के लिए ऊँची उड़ान भरते है और ऐसे प्रमाणो के लिए या तो ऐसे सिद्धान्तो का आधार लेते है जिन्हे वे कभी साबित नही कर सकते या ऐसे तथ्य बताते है जो मानव इतिहास की परिधि के बाहर है ।

मनुष्य की शाश्वत दुर्बलता है कि अपनी असफलताओ के कारण वह उन बातो को बताता है जो उसके नियन्त्रण के बाहर है, यह मानसिक प्रवचना चतुर लोगो के मन में विशेषत· किसी सभ्यता के पतन और विनाश के समय होती है । हेलेनी सभ्यता के पतन और विनाश के समय सभी दार्शनिको का यह सामान्य कथन था कि सामाजिक पतन का उन्हे दुख था किन्तु उनका कहना था कि यह रोका नही जा सकता क्योकि यह विश्वव्यापी (कासमिक) जरा (सेनेसेन्स) का निश्चित और आवश्यक परिणाम है । ल्युक्रीशियस का दार्शनिक मत यही था (देखिए, डी रेरम नेच्युरा, दूसरा खण्ड, ११, ११४४-७४), जब हेलेनी सभ्यता मे सकट का काल आया । यही विषय पश्चिमी ईसाई जगत् के धार्मिक पक्ष सन्त साइप्रियन ने अपनी पुस्तक मे लिखा है । उसी के तीन सौ साल बाद हेलेनी सार्वभौम राज्य का पतन आरम्भ हुआ । वह लिखता है—'आपको जानना चाहिए कि युग का बुढापा आ गया है । इसमे वह बल नही है जिससे वह खड़ा रह सके, न वह सजीवता और दृढता है जिससे उसमे शक्ति आ सके । जाड़े की वर्षा जिससे पृथ्वी मे बीज को भोजन मिलता था कम हो गयी है, गर्मी की उष्णता भी जिससे फसल पकती है, कम हो गयी है· · संसार को यह दण्ड मिला है, यह ईश्वर का नियम है, जो जन्मा है वह मरेगा, जो बढ़ा है वह जरावस्था को पहुँचेगा ।'

आधुनिक भौतिक विज्ञान ने इस सिद्धान्त का खोखलापन साबित कर दिया, कम से कम जो सभ्यता इस युग मे है उसके सम्बन्ध मे यह ठीक है कि आज के भौतिक विज्ञान के पण्डित कहते है कि किसी सुदूर भविष्य मे, जिसकी कल्पना नही हो सकती, विश्व की रचना धीरे-धीरे क्षय हो जायगी क्योकि पदार्थों का विकिरण हो रहा है । किन्तु जैसा हमने कहा है, वह भविष्य कल्पना से परे है । सर जेम्स जीन्स लिखते है ·

'मानव जाति का भविष्य अधकारपूर्ण समझते हुए हम कल्पना करे कि केवल दो अरब वर्षों तक यह जाति और जीवित रह सकती है । इतने ही दिन पृथ्वी की आज तक आयु है । उस समय मानवता की उत्पत्ति के समय मनुष्य की आयु सत्तर साल की समझी जाती थी । मानवता ने यद्यपि ऐसे घर मे जन्म लिया था जो सत्तर साल पुराना था, मानवता स्वयं केवल तीन दिन पुरानी है । हम लोग नितान्त अनुभवहीन जीव है जो सभ्यता के प्रभात की प्रथम किरण के सामने खड़े है । समय पर प्रात काल की शोभा साधारण दिन मे बदल जायगी और कुछ सुदूर काल मे यह

प्रकाश संध्या के धुंधलके में परिवर्तित हो जयगा और फिर शाश्वत अंधकार। किन्तु इन बालकों को सुदूर भविष्य के सूर्यास्त पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है ।'[१]

इधर के वे पश्चिमी लोग जो सभ्यता के विनाश का भाग्यवादी या नियतिवादी समाधान बताते है वे भौतिक विश्व के भाग्य के साथ मानव सभ्यता का गठबन्धन नही करते। वे जरा और मृत्यु के नियम के अनुसार इसे बताते है जो इस ससार के सभी प्राणि-जगत् पर लागू होता है। स्पेंगलर का ढंग है कि वह पहले एक रूपक उपस्थित करता है और फिर वह उसके अनुसार तर्क करना आरम्भ करता है मानो वह कोई नियम किसी घटनाओ को देखकर उसके आधार पर बना हो और वह कहता है कि प्रत्येक सभ्यता उसी क्रम से चलती है जिससे मनुष्य। किन्तु उसके कथन का कोई प्रमाण नही है और हम देख चुके है कि समाज किसी दृष्टि से जीवित प्राणी के समान नही है। आत्मपरक (सबजेक्टिव) दृष्टि से समाज ऐसा क्षेत्र है जिसका ऐतिहासिक अध्ययन बुद्धिमानी से किया जा सकता है। वस्तुपरक (आब्जेक्टिव) दृष्टि से अनेक व्यक्तियो के कार्यक्षेत्र के वे सामान्य कार्यों के अध्ययन के क्षेत्र हैं। ये जो जीवित प्राणी है उनके लिए यह सम्भव नही है कि वे अपनी छायाओं को मिलाकर अपने ही रूप का महान् व्यक्ति खड़ा कर दें और निर्जीव छाया मे अपना प्राण फूंक दे। प्रत्येक व्यक्ति जो समाज का तथाकथित सदस्य होता है, वह शक्ति होता है जिससे उस समाज की आयु तथा इतिहास का निर्माण होता है। आग्रहपूर्वक कहना कि प्रत्येक समाज की आयु पहले से निर्धारित है उतना ही मूर्खतापूर्ण है जितना यह कहना कि प्रत्येक नाटक मे इतने अक होंगे ही।

इस सिद्धान्त को कि प्रत्येक सभ्यता का उस समय विनाश होता है जब जीवविज्ञान की दृष्टि से उसकी आयु समाप्त होती है, हम त्याग देते है क्योकि सभ्यताओ का अस्तित्व ऐसा होता है जो जीवविज्ञान के नियमो के अनुसार नही चलता, किन्तु एक दूसरा सिद्धान्त है जिसका अभिप्राय है कि कुछ ऐसे कारणो से जो समझ मे नही आते, व्यक्तियो के, जिनके पारस्परिक सम्बन्धो से सभ्यता बनती है, जीव-वैज्ञानिक गुण कुछ निश्चित या अनिश्चित पीढ़ियो के बाद समाप्त होने लगते है। सभ्यता वास्तव मे बढते-बढ़ते आवश्यक रूप से पितृत्व-नाशक होती है।

निकृष्ट पिताओ के निकृष्ट बीज से—
शीघ्र ही अयोग्य सन्तान उत्पन्न होगी।[२]

यह तो गाड़ी को घोड़े के सामने रखना हुआ, सामाजिक पतन के परिणाम को उसका कारण समझना हुआ। क्योकि सामाजिक पतन के समय पतनोन्मुख समाज के लोग या तो बौने के समान लघु हो जाते है या शरीर से अशक्य हो जाते है, जब कि उनकी तुलना में उनके पूर्वज विशाल काय थे और उनके कार्य महान् थे। इस रोग का कारण ह्रास बताना मिथ्या निदान है। जो वश बाद में हुआ उसकी जीव-वैज्ञानिक परम्परा वही है जो उसके पूर्वजो की ओर पूर्वजो की सब चेष्टाओ तथा उपलब्धियों की शक्ति उनके वशो मे विद्यमान है। जो रोग पतनकाल की सन्तान की उन्नति में बाधा डालता है वह उनकी शक्तियो का क्षय नही है बल्कि सामाजिक उत्तराधिकार का विघटन

१. सर जे० जीन्स—ईओस : अर्थात् सृष्टि के व्यापक रूप, पृ० १२–१३, ८३–८४।
२. होरेस : ओड, पुस्तक ३।—अनुवादक

है। जिसके कारण उनकी स्वस्थ शक्तियाँ भी सर्जनात्मक सामाजिक कार्य करने के लिए क्षेत्र बनाने में असमर्थ होती हैं।

इस अमान्य प्राक्कल्पना (हाईपोथेसिस) का कि प्रजातीय (रेशल) पतन के कारण सभ्यता का विनाश होता है, समर्थन कभी-कभी यह कह कर किया जाता है कि किसी समाज के पूर्ण विनाश तथा नये समाज के उद्भव के बीच जो अन्त:काल होता है उसमे एक जनरेला होता है जिसमे इन दोनों समाजो के बीच, जिनका निवास स्थान एक ही तरह का होता है, 'नये रक्त' का संचरण होता है। इस तर्क के अनुसार, कि बाद की घटना कारण है, यह मान लिया जाता है कि नयी सभ्यता मे जो सर्जनात्मक शक्ति दिखाई देती है वह उस 'नये रक्त' का परिणाम है जो 'आदिम बर्बर प्रजाति' के विशुद्ध स्रोत से आया है। और तब इसके विपरीत यह परिणाम निकाला जाता है कि पुरानी सभ्यता मे सर्जनात्मक शक्ति का ह्रास इस कारण हुआ होगा कि कोई प्रजातीय रक्तक्षीणता रही होगी जो नये तथा स्वस्थ रक्त के संचार बिना जीवित नही रह सकती।

इस विचार के समर्थन मे इटली के इतिहास से उदाहरण दिया जाता है। कहा जाता है कि इटली के निवासियो मे ईसा के पूर्व की अन्तिम चार शतियो में बहुत अधिक सर्जनात्मक शक्ति दिखाई देती है। और फिर इसी प्रकार की शक्ति ईसा की ग्यारहवी शती से सोलहवी शती के छ. सौ वर्षों मे दिखाई देती है। इन दोनो के बीच का एक हजार वर्ष, पतन, दुर्बलता और फिर स्वस्थ होने का है जिससे जान पड़ता है इटली गुणविहीन हो गया था। प्रजातिवादियो (रेशियलिस्ट) का कहना है कि इटली के इतिहास के इन अद्भुत परिवर्तनो का कारण इसके सिवाय और कुछ नही हो सकता कि गोथो और लम्बार्डों ने आक्रमण करके इस अन्त:काल मे इटली की नसो मे नये रक्त का सचार किया। इस सजीवनी द्वारा समय पाकर शतियो की सुश्रूषा के बाद इटली में नवजीवन अर्थात् पुनर्जागरण (रेनेसा) का जन्म हुआ। कहते है कि नये रक्त के अभाव के कारण रोमन जनतन्त्र के काल मे अपार शक्ति की उत्पत्ति के बाद, रोमन साम्राज्य का क्षय और विनाश हुआ। और रोमन जनतन्त्र के उद्भव के समय जिस क्रियात्मक शक्ति का आविर्भाव हुआ वह भी नये बर्बर रक्त के सचार के कारण हो सका जो हेलेनी सभ्यता के जन्म के पहले की जनरेला मे हुआ।

ईसाई सवत् की सोलहवी शती तक के इतिहास का प्रजातीय समाधान ऊपरी दृष्टि से युक्तिसंगत जान पड़ता है, यदि हम इसी काल तक रुक जायँ। किन्तु यदि हम सोलहवी शती से आज तक के इतिहास तक दृष्टि डाले तो हम देखेगे कि सत्रहवी तथा अठारहवीं शती पुनः पतन का काल थी और उसके बाद एकाएक उन्नीसवी शती मे जाग्रति हो गयी। यह जाग्रति ऐसे नाटकीय ढग से हुई कि इस आधुनिक काल मे जो मध्ययुगीन इटालियन अनुभव हुआ है उसका नाम ही 'रिसार-जिमेन्टो' (पुनर्जागरण) रख दिया गया। इस इटालियन शक्ति के प्रस्फुटन में किस बर्बर रक्त का सचार हुआ? उत्तर स्पष्ट है 'कोई नही'। इतिहासकार इसे स्वीकार करते हैं कि उन्नीसवी शती में जो 'रिसारजिमेन्टो' हुआ वह उस चुनौती तथा जाग्रति का परिणाम था जो फ्रांस की क्रान्ति तथा नेपोलियन की विजय तथा शासन के कारण उत्पन्न हुई।

ईसाई सन् के आरम्भ के दो हजार वर्ष पहले इटली मे जो जाग्रति हुई थी उसका अ-प्रजातीय कारण बताना कठिन नही है। और ईसा के पूर्व दो सौ साल में उसका जो पतन हुआ उसका भी।

यह पतन रोमन सैनिकवाद का परिणाम था जिसके कारण भयकर हैनिबली युद्ध हुआ था। उत्तर हेलेनी अन्त:काल मे इटली के सामाजिक जागरण का भी कारण यह था कि पुरानी इटालियन प्रजाति के अनेक सर्जनात्मक महान् व्यक्तियो ने योगदान किया। विशेषत: सन्त बेनिडिक्ट तथा पोप ग्रेगरी महान्, जिन्होंने केवल मध्ययुगीन इटली को ही प्राणदान नही दिया, बल्कि नयी पश्चिमी सभ्यता को जाग्रत किया जिसमे मध्ययुगीन इटली ने योगदान किया। इसके विपरीत जब हम इटली के उन क्षेत्रों को देखते है जिन्हे 'शुद्ध रक्त' वाले लोम्बार्डों ने आक्रान्त किया तब उनमें वेनिस और रोमाना तथा वे जनपद सम्मिलित नही है जिन्होने इटालियन पुनर्जागरण मे योगदान किया। और जिनका कार्य उन नगरो से अधिक श्रेष्ठ था जो लोम्बार्ड के शासन-क्षेत्र मे थे, जैसे पाविया, बेनवेल्टो, और स्पोलेटो। यदि हम इटालियन इतिहास के प्रजातीय समाधान को महत्त्व देना चाहते है तो जो साक्ष्य है उसके आधार पर कहना पड़ेगा कि लोम्बार्ड रक्त ने सुधा के बजाय विष का काम किया।

प्रजातीय समाधान वालो को एक और किले से हम खदेड़ देना चाहते है जो उन्होने इटालियन इतिहास मे बना रखा है। वह रोमन रिपब्लिक का उदय है जो अ-प्रजातीय समाधान है। इस उदय का कारण यूनानियो तथा एट्रस्कनो द्वारा उपनिवेश बनाने की चुनौती थी। इटालियन प्रायद्वीप के निवासियो के सामने तीन विकल्प थे। नष्ट हो जायँ, विजित हो जायँ या पच जायँ जैसे यूनानियो ने सिसिली वालो को और एट्रस्कनो ने अम्ब्रिया वालो को बलपूर्वक सम्मिलित कर लिया था। हेलेनी सभ्यता को अपनी इच्छा के अनुसार और अपनी मर्यादा के अनुकूल ढाल कर अपनी सत्ता को कायम रखे (जिस प्रकार जापान ने पश्चिमी यूरोप को ग्रहण करके किया) और इस प्रकार अपने को यूनानी तथा हेलेनी दक्षता तक ले जायँ। रोमनो ने अन्तिम ढग पर चलने का निश्चय किया और इस निश्चय के कारण अपनी महत्ता के विधायक बने।

सभ्यता के विनाश के तीन निर्यतिवादी समाधानो को हमने समाप्त कर दिया अर्थात् यह सिद्धान्त कि विनाश इसलिए होता है कि विश्व के यन्त्र का जीवन समाप्त हो गया था या पृथ्वी की जरावस्था आ गयी, या यह सिद्धान्त कि जीवों के नियमो के समान उसकी आयु की सीमा भी निर्धारित है और यह सिद्धान्त कि सभ्यता का विनाश इसलिए होता है कि जो व्यक्ति उस समाज के सदस्य होते है उनके गुणो का ह्रास हो जाता है क्योकि उनके पूर्वजो की सभ्यता की कहानी बहुत प्राचीन हो जाती है। एक प्राक्कल्पना पर और विचार करना है जिसे इतिहास का चक्रीय सिद्धान्त (साइक्लिकल थियरी) कहा जा सकता है।

मनुष्य के इतिहास का चक्रीय सिद्धान्त उन ज्योतिष के आविष्कारों का स्वाभाविक परिणाम था जो ईसा के पूर्व अरबी तथा छठी शती के बीच बेबिलोनी समाज ने खोज निकाले थे। तीन स्पष्ट चक्र थे—दिन और रात, चान्द्र मास और सौर वर्ष। ये आकाशीय पिण्डो के सामयिक प्रत्यावर्त्तन के उदाहरण है। यह भी कहा गया था कि पृथ्वी, चाँद, सूर्य तथा और ग्रहो की गतियो मे सामजस्य है। और आकाशीय संगीत जो नक्षत्रो की गतियो के मिलन से उत्पन्न होता है सूर्य का प्रतिवर्ष का चक्र का नियमित क्रम उसके सामने कुछ नही है। इसका परिणाम यह निकाला गया कि जिस प्रकार वनस्पति जगत् मे जीवन तथा विनाश का क्रम है, जो सूर्य के नियमित आवर्तन के कारण है उसी प्रकार विश्व के चक्र मे सभी का जीवन और मरण होता है।

मानव इतिहास की इस चक्रीय व्याख्या ने अफलातून को आकृष्ट किया (टीमियस २१ई–२२ सी तथा पोलिटियस १६९ सी–२१०३ ई०) और यही सिद्धान्त वर्जिल के चौथे संवाद (एकलोग) में दिखाई देता है ।[1]

हेलेनी ससार को आगस्टस ने जो शान्त किया था उससे प्रभावित होकर वर्जिल ने कविता लिखी थी उसमें इस चक्रीय सिद्धान्त की प्रशसा की गयी है । किन्तु क्या यह बधाई का विषय है कि 'पुराने युद्ध फिर होंगे ।' बहुत से लोगो ने, जिनका जीवन सफल और सुखी रहा है दृढ़ता से कहा है कि हम नही चाहते कि पुरानी लड़ाइयाँ फिर हो। तो जो बात व्यक्ति नही चाहता उसे क्या इतिहास दोहराना चाहेगा ? इस प्रश्न का उत्तर वर्जिल नही देता । किन्तु शेली ने अपने काव्य 'हेलास' के कोरस[2] के अन्तिम अश मे इसका उत्तर दिया है । जो आरम्भ तो होता है वर्जिल के सस्मरण की भाँति किन्तु अन्त के भाव शेली के अपने हैं :—

विश्व का महान् युग फिर से आता है
स्वर्णिम वर्ष लौटते है
पृथ्वी सर्प के समान—अपना केचुल बदलती है
शीत काल मे उगे पौधे मुरझा जाते हैं
आकाश मुस्कुराता है
भग्न स्वप्नो के समान
विश्वास और साम्राज्य धुँधले पड़ जाते है ।
एक और विशाल आरगो सागर को चीरता है
जिसमें नयी सम्पत्ति लदी हुई है
नया आरफ्यूज फिर गाता है
प्रेम करता है, रोता है और मर जाता है
नया यूलिसिस अपनी जन्मभूमि
के लिए कैलिप्सो से चलता है
किन्तु ट्राय की कहानी अब मत लिखो
पृथ्वी मे सहार होना ही है तो
स्वतन्त्रता से जो आनन्द—प्राप्त होता है
उसमे लेईमी आक्रोष मत सम्मिलित होने दो
चाहे और भी चतुर स्फिंक्स मृत्यु के

१. क्युमियनों की भविष्यवाणी के अनुसार अन्तिम-युग आ गया है । युगों का जन्म फिर से क्रमानुसार होता है । नया तथा स्वर्णयुग लौट रहा है । भगवान् के यहाँ से नयी जाति आ रही है । वीरों के विशिष्ट समूह का नेतृत्व करने के लिए टाइफिस और आरगो फिर से उत्पन्न होंगे । पुराने युद्ध फिर होंगे और फिर एकिलीज महान् ट्राय को भेजा जायगा ।

२. किसी नाटक अथवा बड़े काव्य के आरम्भ में समवेत गान जिसमें कविता अथवा उसमें आये पात्रों के सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है ।—अनुवादक

उन रहस्यों का उद्घाटन करे
जिन्हें थीबी भी नहीं जानता था····
बन्द करो—क्या घृणा और मृत्यु फिर लौटेगी
चुप हो—क्या मानव हत्या करेगा और मरेगा
शान्त हो भविष्यवाणी के पात्र के अन्तिम
बूंद तक मत पान करो
संसार भूतकाल के इतिहास से ऊब गया है
या तो इसका विनाश हो जाय या यह शान्त हो ।

यदि विश्व का नियम सचमुच ऐसा ही विषादपूर्ण है कि सर्जन और विनाश होता रहे तब हमें इस पर आश्चर्य न होना चाहिए कि कवि बौद्ध दर्शन के अनुसार कहता है कि जीवन के चक्र से मुक्त हो जाना चाहिए। जब तक यह चक्र नक्षत्रो के भ्रमण मे उनका पथ-प्रदर्शक है तब तक वह सुन्दर जान पड़ता है किन्तु जब वही मनुष्य के जीवन को प्रभावित करने लगता है असह्य हो जाता है ।

नक्षत्रों के प्रभाव को अलग रख दीजिए । क्या बुद्धि इस बात पर विश्वास कर सकती है कि मानव का इतिहास नक्षत्रों की गति से प्रभावित होता है ? हमने भी क्या इस अध्ययन के बीच ऐसे ही विचार को प्रोत्साहित नही किया है ? यिन और याग, चुनौती और उसका सामना, अलग होना और लौटना, उत्पत्ति और सम्बद्धता, सभी गतियाँ जिनका विवेचन हमने किया है, क्या इसी ओर लक्षित नही होती है ? क्या ये सब उसी पुरानी कहावत के विभिन्न रूप नहीं है कि 'इतिहास का पुनरावर्तन होता है ।' निस्सन्देह इन सब शक्तियो मे, जो मानव इतिहास का जाल बुनती है पुनरावर्तन का तत्त्व अवश्य है । किन्तु समय के करघे मे जो ढरकी बराबर इधर से उधर चलती है उससे ऐसे नकशे बनते है जिनमे नयापन होता है, उसी नकशे को बार-बार समय दोहराता नही । इसे भी हमने बार-बार देखा है । पहिये का जो रूपक दिया गया है उसमे भी आवर्तन के साथ प्रगति भी है । यह ठीक है कि पहिया अपनी धुरी पर बराबर एक समान घूमता है किन्तु गाड़ी मे पहिया इसलिए लगा है कि गाड़ी चले। पहिया गाड़ी का अग है । पहिया घूम-घूमकर गाड़ी को चलाता है किन्तु वह गाड़ी को विवश नही कर सकता कि चरखी के समान वह एक ही दिशा में चला करे ।

हमारा अभिप्राय लय से दो विभिन्न गतियों का सामंजस्य है । एक मुख्य गति है जो पीछे नहीं जाती । यह आवर्तन वाली गति से उत्पन्न होती है । इन गतियो को हम आधुनिक मशीनों में ही नहीं पाते, जीव जगत् में भी यही लय पाया जाता है । ऋतुओं का प्रत्यावर्तन, जिससे वनस्पतियों का जन्म और क्षय होता, वनस्पति जगत् के विकास का कारण है । जन्म, प्रजनन तथा मृत्यु का जो दुखद चक्र है उससे ही सारे मनुष्य तक, सारी सृष्टि का विकास हुआ है । एक के बाद दूसरा पाँव चलता है इससे हम पृथ्वी पर आगे बढ़ते है, फेफड़ों और हृदय से रक्त का सचालन होता है इसी से जीव अपना जीवन बिताता है । संगीत के स्वर और कविता की पंक्तियों द्वारा सगीतज्ञ तथा कवि अपने विषयो का प्रसार करते है । ग्रहों का चक्र जिससे हमारा वर्ष बनता है और जो भी सम्भवत: 'चक्र' के विचारों का स्रोत है, विशाल सृष्टि का मूल नही बन सकता । क्योंकि पश्चिम के ज्योतिष-शास्त्र ने महान् दूरबीनो की सहायता से हमारे सौर मण्डल को विश्व के बीच एक कण के समान प्रमाणित कर दिया है । पिण्डों को संगीत (म्युजिक आव स्फियर्स)

का अस्तित्व विश्व में नही रह जाता, आकाश मे लीन हो जाता है । क्योकि ब्रह्माण्ड अपने नक्षत्र-समूह के साथ बढ़ता चला जा रहा है और नक्षत्र-समूह अविश्वसनीय गति से एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं । और देशकाल के प्रभाव से संसार मे जो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उन नाटकीय परिस्थितियों मे सभी लोग अभिनय करते हैं ।

इस प्रकार चक्र के प्रत्यावर्तन की गति का हमने सभ्यता की प्रगति की दृष्टि से जो विश्लेषण किया है उसका अर्थ यह नही है कि प्रगति उसी चक्र के अनुसार नही होती जैसा एक बार चक्र आता है । इसके विपरीत यदि प्रत्यावर्तन का कोई अर्थ हो सकता है तो यही कि लघु गति चक्र की है और प्रधान गति चक्र की भाँति नही होती वह आगे की ओर ले जाती है । मानवता इक्सायन[1] नही है कि पहिये से बँधा रहे न सिसाइफस[2] जो पत्थर को एक ही पहाड़ की चोटी पर ले जाय और विवश होकर देखा करे कि पत्थर फिर नीचे लुढ़क जाता है ।

पश्चिमी सभ्यता की हम सन्तानो को यह उत्साहवर्धक सन्देश है जब हम अकेले इधर-उधर भटक रहे हैं और हमारे साथ घायल सभ्यता के अतिरिक्त और कोई नही है । सम्भव है हमारी सभ्यता पर भी मृत्यु का प्रकोप हो । सभ्यताएँ मृत्यु से नही मरती, या नियमानुसार उनका विनाश नही होता, इसलिए हम यह न समझें कि हमारी सभ्यता भूत सभ्यताओ की श्रेणी मे सम्मिलित होगी । जहाँ तक हमारा ज्ञान है सोलह सभ्यताएँ मर चुकी है और नौ मृतप्राय हैं । हमारा छब्बीसवाँ स्थान है और हम विवश होकर जन्म-मरण के नियमानुसार मरने को नहीं हैं । सर्जनात्मक शक्ति की ईश्वरीय चिनगारी हममें है । यदि हम उसे फूँककर प्रज्वलित कर सकें तो नक्षत्र हमारी चेष्टाओ को विफल नही कर सकते और हम अपनी मानवीय चेष्टा से अपने लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं ।

१. यूनानी पुराण में इक्सायन एक व्यक्ति था जिसे नरक में एक पहिये में बाँध दिया गया था । उसी में सदा वह घूमा करता है ।—अनुवादक

२. यूनानी पुराण मे एक व्यक्ति जिसका काम था पत्थर को पहाड़ पर ले जाना । पत्थर फिर नीचे लुढ़क जाता था और फिर वह ले जाता है । सदा उसे यही करना था, यही उसे दण्ड मिला था ।—अनुवादक

१५. वातावरण पर से नियंत्रण का लोप होना

(१) भौतिक परिस्थिति

यदि हमने प्रमाणित कर दिया है कि सभ्यताओं का विनाश मानव शक्ति के बाहर ब्रह्माण्ड (कासमिक) की शक्तियो के कारण नही होता तो विनाश का वास्तविक कारण हमे ढूंढ़ना चाहिए । पहले हम इस बात पर विचार करेंगे कि यह विनाश इस कारण तो नहीं है कि समाज के वातावरण पर से नियन्त्रण उठ गया है ? इस प्रश्न के समाधान के लिए दो वातावरणो के अन्तर पर ध्यान रखेगे । भौतिक वातावरण और मानवी वातावरण ।

क्या सभ्यताओ का विनाश इस कारण होता है कि भौतिक वातावरण पर से नियन्त्रण लोप हो जाता है ? किसी समाज का, उसके भौतिक वातावरण पर कितना नियन्त्रण होता है नापा जा सकता है । जैसा कहा गया है उसकी तकनीक होती है । 'विकास' की समस्या का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि यदि हम दो वक्र रेखा (कर्व) बनाये जिनमें एक सभ्यताओ के उत्थान-पतन के लिए हो और दूसरी तकनीक के अदल-बदल के लिए तो दोनो रेखाओ मे एक समता नही होती, बल्कि बहुत अधिक अन्तर होता है । हमने देखा है कि सभ्यता स्थैतिक रही है और तकनीक गतिशील अथवा तकनीक स्थैतिक रही है और सभ्यता आगे या पीछे प्रगतिशील रही है ।[१] हमने अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है कि भौतिक वातावरण पर नियन्त्रण का अभाव सभ्यता के विनाश की कसौटी नही है । अपने प्रमाण को और दृढ़ करने के लिए हम बतायेगे कि जहाँ सभ्यता का पतन हुआ है और साथ ही तकनीक की अवनति हुई है वहाँ तकनीकी अवनति सभ्यता के विनाश का कारण नही रही है । हम देखेंगे कि तकनीकी अवनति कारण नही है, बल्कि परिणाम या लक्षण है ।

जब कोई सभ्यता पतनोन्मुख होती है, कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई विशेष तकनीक, जो विकास की अवस्था मे उपयुक्त भी रही हो और लाभदायक भी, तो इस समय उसे सामाजिक बाधाओं का सामना करना पडता है और उसका आर्थिक प्रतिफल (रिटर्न) कम होने लगता है । वह बिलकुल लाभहीन हो जाती है और यह तकनीक छोड़ देनी पडती है । ऐसी अवस्था मे यदि हम यह माने कि तकनीक को इसलिए त्याग दिया गया कि उसे काम मे लाने की क्षमता नही रह गयी और तकनीकी अयोग्यता के कारण सभ्यता का ह्रास हुआ तो कारण-कार्य के क्रम को स्पष्टत: उलट देना होगा ।

इसका स्पष्ट उदाहरण पश्चिमी यूरोप मे रोमन सड़को का त्यागना है । यह रोमन साम्राज्य के पतन का कारण नही था, परिणाम था । ये सड़कें इसलिए नही त्याग दी गयी कि तकनीकी कौशल का अभाव था, बल्कि जिस समाज ने उसे सैनिक कारणों के लिए बनाया था और जिसे

१. देखिए, पृ० १५८–६६

उसकी आवश्यकता थी, वह समाज नष्ट हो गया। हेलेनी सभ्यता की विजय में भी हम नही कह सकते कि उनकी आर्थिक व्यवस्था की सारी तकनीक के नाश हो जाने से उनका विनाश हुआ।

"प्राचीन संसार के पतन का आर्थिक कारण हमे पूर्णत: त्याग देना पडेगा। पुराने जीवन की आर्थिक सरलता पुराने संसार के पतन का कारण नही था, बल्कि दूसरी साधारण घटना (फेना-मेनन) का एक अंश था।"[१]

यह साधारण घटना मध्यवर्ग का विनाश तथा शासन की असफलता थी।

जिस प्रकार रोमन सडकों को त्याग दिया गया था उसी के समान उससे पुरानी दजला-फरात के कछारी डेल्टा की सिंचाई की व्यवस्था को भी त्याग दिया गया था। ईसा की सातवी शती मे दक्षिण-पश्चिम इराक में इस जल की इजीनियरी व्यवस्था को इसलिए छोड दिया कि बाढ के कारण वे उपयोगी नही रह गयी। यद्यपि ऐसी बाढे अनेक बार आयी और उनसे जो हानि हुई उससे अधिक हानि इस बार नही हुई थी। और इसके बाद तेरहवी शती में इराक की सारी सिंचाई की व्यवस्था नष्ट हो गयी। ऐसा क्यो हुआ? इराक निवासियो ने उस प्रणाली की रक्षा क्यो नही की जिसे उनके पूर्वज हजारो वर्षों से सफलतापूर्वक काम मे लाते रहे और जिसके कारण धरती कृषि से सम्पन्न होती रही और उनकी बडी जनसंख्या का भरण-पोषण करती रही। तकनीक का यह विनाश कारण नही था। जनसंख्या के ह्रास और समाज की सम्पन्नता की समाप्ति का यह परिणाम था। ईसा की सातवी शती और फिर तेरहवीं शती मे इराक में सीरियाई सभ्यता इतनी नीचे आ गयी थी और अरक्षा इतनी अधिक थी कि किसी के पास इस व्यवस्था में पूँजी लगाने को न सम्पत्ति थी न सिचाई तथा नदी के पानी रोकने की व्यवस्था के लिए किसी में प्रेरणा थी। ठीक कारण ये थे कि सातवी शती मे रोमन-परशियन युद्ध (६०३–६२८ ई०) हुआ जिसमे मुसलिम अरबों ने इराक को तहस-नहस कर दिया, तेरहवी शती में, सन् १२५८ में, मंगोलों ने आक्रमण किया जिससे उसकी पूर्ण आहुति हो गयी।

इसी प्रकार के परिणाम पर हम उस समय पहुँचते है जब हम उसी प्रकार का निरीक्षण सीलोन मे करते है।[२] आज हम सीलोन के उस क्षेत्र का जब निरीक्षण करते है जो भारतीय (इडिक) सभ्यता का ध्वंसावशेष है, तब हम देखते है कि यही क्षेत्र सूखा हुआ ही नही है, यही क्षेत्र मलेरिया से पूर्ण है। आजकल जल कृषि कार्य के लिए सर्वथा अपूर्ण है किन्तु मलेरिया वाले मच्छरो के पनपने के लिए पर्याप्त है। पुरानी सभ्यता की यह विचित्र निशानी है। और यह तो सम्भव नहीं कि उस समय भी मलेरिया के मच्छर वहाँ रहे हो जब सीलोन में भारतीय समाज ने ऐसी सुन्दर जल की व्यवस्था की थी। वास्तव मे यह प्रमाणित किया जा सकता है कि नहरो की प्रणाली के विनाश के कारण ही वहाँ मलेरिया फैला हो अर्थात् इन नहरो के निर्माण के बाद। सीलोन के इस भाग मे मलेरिया इस कारण फैला कि सिंचाई की नहरो के नाश हो जाने के बाद

१. एम० रोस्टोफ्जेफ : द सोशल एण्ड एकनामिक हिस्ट्री आव द रोमन एम्पायर, पृ० ३०२–५ तथा ४८२–५।

२. इस विषय पर पहले भी विचार किया गया है। देखिए, पृ० ६८–६९।

नहरें छोटे-छोटे तालों में परिवर्तित हो गयीं, जहाँ का जल कम हो गया और वे मछलियाँ नष्ट हो गयीं जो मच्छरों के अण्डों को खा जाती थी।

किन्तु भारतीय सिंचाई प्रणाली नष्ट क्यों हुई ? लगातार तथा विनाशकारी युद्धों के कारण नहरें तोड़-फोड़ दी गयीं और नालियाँ भर गयी। जान-बूझकर सैनिक कारणों से आक्रमणों ने नहरों को नष्ट किया और युद्ध पीड़ित जनता को इनकी मरम्मत करने का उत्साह न रहा और यह भी उन्हें भय रहा कि बन जाने पर ये फिर तोड़ डाली जायेंगी। इस उदाहरण में भी तकनीकी ह्रास सभ्यता के ह्रास का कारण नही है। सामाजिक कारण-कार्य की शृंखला में तकनीकी ह्रास उत्पन्न होता है। उसके सामाजिक कारण का पता लगाया जा सकता है।

सीलोन मे भारतीय सभ्यता के इस अध्याय के समान ही हेलेनी सभ्यता मे भी उदाहरण मिलता है। यहाँ भी हमको ऐसे प्रदेश मिलते हैं जहाँ किसी बीते युग में वैभवशाली सभ्यता थी और जिसने इस क्षेत्र को सजीव बनाया था। बाद में वह क्षेत्र मलेरियापूर्ण दलदल हो गया जिसका उद्धार इस युग मे किया गया है। कोपेक के दलदल, जो दो हजार वर्षों तक घातक बने थे और जिसका उद्धार सन् १८८७ मे एक ब्रिटिश कम्पनी ने किया, किसी समय उपजाऊ प्रदेश थे, जो धनवान् आरकोमेनास के नागरिको का पोषण करते थे। पाम्पटाइन के दलदल जिसका बहुत काल तक उजाड रहने के पश्चात् मसोलिनी ने उद्धार किया, किसी समय लैटिन उपनिवेशों तथा वोलशियन नगरो का पोषण करते थे। ऐसा सकेत किया गया है कि 'नाड़ियो का विनाश' (लास आव नर्व—यह वाक्याश प्रोफेसर गिलबर्ट मरे का है) जिसके कारण हेलेनी सभ्यता की समाप्ति हो गयी इसलिए हुआ कि वहाँ मलेरिया का प्रकोप फैला। किन्तु यहाँ भी और सीलोन मे भी, उस समय मलेरिया का आरम्भ हुआ जब उस समय की सभ्यता का ह्रास होने लगा था। इस युग के एक विशेषज्ञ[1], जिसने इसे अपने अध्ययन का विषय बनाया है, कहते है कि मलेरिया पेलोपोनेशियाई युद्ध के पहले यूनान मे फैला नहीं था, और लैटियन में हैनिबली युद्ध के बाद ही फैला। ऐसा कहना मूर्खता होगी कि सिकन्दर के बाद के युग के यूनानी तथा सीपियो और सीजरो के युग के रोमन कोपेक और पाम्पटाइन के दलदलों के जल की कठिनाइयों को दूर करने में अयोग्य थे जब उस समस्या को उनसे कम योग्य पूर्वजो ने सुलझा लिया था। इसका समाधान तकनीकी बातों में नही है, सामाजिक स्तर पर ये मिलेंगे। हैनिबली युद्ध और उसके पश्चात् दो शतियो तक रोमन लूट-पाट और घरेलू युद्ध का इटली के सामाजिक जीवन पर विघटनात्मक प्रभाव पड़ा। पहले कृषि संस्कृति और अर्थ-व्यवस्था का विनाश हुआ उसके पश्चात् अनेक विनाशकारी शक्तियों का प्रभाव पड़ा। हैनिबल द्वारा सत्यानाश, कृषकों का सेना मे बराबर भर्ती होना, भूमि सम्बन्धी क्रान्ति जिसमें दासों द्वारा जोते जाने वाले बड़े-बड़े खेतों के स्थान पर किसानों द्वारा छोटे-छोटे खेत जोते जाने लगे जो अपने मे पूर्ण थे, और गाँवों से पराश्रित शहरो की ओर अधिक संख्या में लोग जाने लगे। इन अनेक सामाजिक बुराइयो के कारण मनुष्य का पतन हुआ। हैनिबल की पीढ़ी से लेकर इटली के सन्त बेनेडिक्ट की पीढ़ी तक सात शताब्दियो में मच्छरों का प्रकोप बढ़ा।

१. डब्ल्यू० एच० एस० जोन्स : मलेरिया एण्ड ग्रीक हिस्ट्री।

इसी प्रकार की बुराइयों का परिणाम यूनान मे भी हुआ। पेलोपोनेशियाई युद्ध में पोलीबियस के समय (२०६–१२८ ई० पू०) तक वहाँ आबादी बहुत घट गयी। इटली से भी अधिक यहाँ निर्जनता हो गयी। पोलीबियस ने एक विख्यात स्थल पर कहा है कि यूनान के सामाजिक तथा राजनीतिक पतन का कारण परिवार मे गर्भपात तथा शिशु हत्या की प्रथा है। यह स्पष्ट है कि तकनीकी ह्रास के कारण कोपेक अथवा पाम्पटाइन के मैदान उपजाऊ खेतो के स्थान पर मच्छरों के प्रजनन के घर नही बने।

यदि हम इजीनियरी की तकनीक की जगह वास्तुकला और मूर्तिकला की तकनीक पर, चित्रकला, लेखन-कला तथा साहित्य पर विचार करें तब भी इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। उदाहरण के लिए वास्तुकला की हेलेनी शैली ईसा की चौथी से सातवी शती तक में क्यों लोप हो गयी? उसमानी तुर्कों ने सन् १९२८ मे अरबी वर्णमाला को क्यों त्याग दिया? क्या कारण है कि आज प्राय: सभी अ-पश्चिमी देश अपने परम्परा गत वस्त्रों को तथा कलाओं को छोड रहे हैं? और हम इस प्रश्न की ओर भी लोगों का ध्यान दिलाना चाहेंगे कि क्यो हमारी नयी पीढी के अधिकांश लोग हमारे परम्परागत सगीत, नृत्य, चित्रकला और मूर्तिकला को छोड रहे है।

हमारी स्थिति में क्या कला की तकनीक का ह्रास है? क्या हम लोग लय के राग, दृश्य-विषय के (पर्सपेक्टिव) तथा अनुपात के नियमों को भूल गये जिनका हमारे इतिहास के दूसरे और तीसरे अध्यायों मे इटालियन तथा दूसरे सर्जनात्मक अल्पसंख्यको ने आविष्कार किया था। स्पष्ट है हम लोग भूले नही है। अपनी कलात्मक परम्पराओं को छोड देने की, जो वर्तमान प्रवृत्ति है उसका कारण तकनीकी अक्षमता नही है। जान-बूझकर इस शैली का त्याग किया जा रहा है क्योकि नयी पीढी को वह रुचती नही। यह पीढी पश्चिमी परम्परा की कलाओं के प्रति आकृष्ट नही हो रही है। हमारे पितामहों को जिन महान् आत्माओं की जानकारी थी, उन्हें जान-बूझकर इस पीढी ने त्याग दिया है। और जो आध्यात्मिक शून्यता हमने रची है उसी से सन्तुष्ट होकर हम पडे है और उष्ण देश अफ्रीका के सगीत, नृत्य तथा मूर्तिकला की आत्मा ने कृत्रिम बाइजेन्टाइन चित्रकला तथा नक्काशी से अपवित्र गठबन्धन करके उस घर मे डेरा जमा लिया है जिसे उसने खाली पाया। पतन तकनीकी नही है, आध्यात्मिक है। कला की अपनी पश्चिमी परम्परा को छोडकर हमने अपनी शक्तियो को निर्जीव कर दिया है और इस स्थिति मे डेहोमे और बेनिन की विदेशी आदिम कला को अपनाया है मानों हमारे लिए मरुभूमि मे मन्ना[1] सदृश है। ऐसा करके मानव मात्र के सम्मुख हमने स्वीकार किया है कि हमने अपने आध्यात्मिक जन्मसिद्ध अधिकार को खो दिया है। हमने अपनी परम्परागत कला के तकनीक को त्याग दिया है। वह स्पष्टत: पश्चिमी सभ्यता के एक प्रकार के आध्यात्मिक पतन का परिणाम है। इस पतन का कारण उस घटना में नही मिल सकता जो स्वयं परिणाम है।

इधर अरबी वर्णमाला छोड कर तुर्कों ने लैटिन वर्णमाला अपनायी है इसका कारण भी यही है। मुस्तफा कमाल अतातुर्क और उनके शिष्यो ने अपने इस्लामी संसार में रहते हुए पश्चिम का अनुकरण किया है। उन्हें अपनी सभ्यता की परम्परा में विश्वास नहीं रह गया और इसलिए

१. इसरायलियों को ईश्वर की ओर से जो भोजन दिया गया था।—अनुवादक

उस साहित्यिक माध्यम को उन्होंने त्याग दिया जिसके द्वारा वह परम्परा आयी है। यही कारण पहले की उन मृतप्राय सभ्यताओं की अपनी परम्परागत लिपियों को त्याग देने का है जैसे मिस्र की चित्रलिपि और बैबिलोनिया की कील वाली लिपि। चीन और जापान में आज एक आन्दोलन चल रहा है कि चीनी लिपि त्याग दी जाय।

एक तकनीक के स्थान पर दूसरे को स्थापित करने का एक अच्छा उदाहरण यह है जो वास्तु-कला की हेलेनी शैली को छोड़कर बाइजंटाइन शैली अपनायी गयी। इस स्थिति में खम्भों पर पत्थर रखने के (आरकिट्रेव) सरल ढंग को छोडकर क्रूसाकार भवन (क्रूसिफार्म) बनाकर उस पर वृत्ताकार गुम्बज बनाने की कठिन शैली को अपनाया है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि तकनीकी अक्षमता इसका कारण थी। क्या यह विश्वास नही किया जा सकता कि वास्तुशिल्पी जिन्होंने सम्राट् जस्टीनियन के लिए हेगिया सोफिया के गिरजाघर के निर्माण की समस्याओ को सफलतापूर्वक सुलझा लिया था तो वह यूनानी मन्दिर भी बना सकते थे यदि सम्राट् की या उनकी इच्छा होती ? जस्टीनियन तथा उसके वास्तुशिल्पियो ने नयी शैली का इसलिए प्रयोग किया कि पुरानी शैली उन्हे अरुचिकर हो गयी थी क्योंकि वह सडी हुई प्राचीनता से सम्बन्धित थी।

हमारी खोज का परिणाम यह निकला कि परम्परागत कला की शैलियों का त्याग यह सूचित करता है कि जो सभ्यता उस शैली से सम्बद्ध थी उस (सभ्यता) का पतन हो चुका था और वह विघटित हो रही थी। प्रनिष्ठित तकनीक का व्यवहार बन्द हो जाता है तो वह सभ्यता के पतन का परिणाम है, कारण नही।

(२) मानवी वातावरण

सभ्यताओं के विकास के सम्बन्ध में जब हमने इस विषय पर विचार किया था तब हमने देखा था कि किसी समाज के इतिहास में मानवी वातावरण पर नियन्त्रण होता है तो उसे इस प्रकार नाप सकते हैं कि उसका भौगोलिक विस्तार कितना है। जितना नियन्त्रण होगा उतना ही विस्तार होगा। उदाहरणों के अध्ययन से यह भी हमने देखा कि भौगोलिक विस्तार के साथ-साथ सामाजिक विघटन भी हुआ है। यदि ऐसा है तब यह सम्भव नही जान पडता कि सभ्यता का विघटन इस कारण होता है कि मानवी वातावरण पर समाज का नियन्त्रण कम हो जाता है। बल्कि यह सम्भव है कि विदेशी मानवी शक्तियों के सफल आक्रमण के कारण ऐसा होता है। फिर भी यह विचारधारा बहुत प्रचलित है कि आदिम समाजों की भाँति सभ्यताएँ भी विदेशी शक्तियों के प्रहार से समाप्त हो जाती हैं। इस विचार का प्रतिपादन गिबन ने अपने 'द हिस्ट्री आव द डिकलाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर' में शास्त्रीय ढंग से किया है। एक वाक्य में गिबन ने अपनी कथा के विषय को कह डाला है—'मैने बर्बरता तथा धर्म की विजय का वर्णन कर दिया है।' हेलेनी समाज रोमन साम्राज्य में उस समय मिल गया जब अंतोनाइनों के समय साम्राज्य अपने शिखर पर था। ऐसा बताया जाता है कि दो विदेशी बैरियों के दो विभिन्न दिशाओं में एक साथ आक्रमण होने के कारण हेलेनी समाज का विनाश हुआ। एक डैन्यूब तथा राइन के पार से अवान्तर भूमि के उत्तरयूरोपीय बर्बरों द्वारा और दूसरा ईसाइयों द्वारा जो उन पूर्व प्रदेशों से निकले थे जिन्हें पराजित तो कर लिया गया था, किन्तु आत्मसात् नहीं किया जा सका था।

गिबन को यह नहीं सूझा कि अन्तोनाइनो का युग ग्रीष्म ऋतु नही थी बल्कि 'भारतीय ग्रीष्म' था। उसकी पुस्तक के नाम से ही उसका भ्रम प्रकट होता है। रोमन साम्राज्य का क्षय और पतन। ऐसे इतिहास का लेखक, जिसका ऐसा नाम हो और जिसने ईसा की दूसरी शती से इतिहास आरम्भ किया हो, अपने इतिहास को उस समय से आरम्भ कर रहा है जब कथानक का प्रायः अन्त हो रहा है। जिस ऐतिहासिक अध्ययन के बौद्धिक क्षेत्र के सम्बन्ध में गिबन लिखना चाहता है वह रोमन साम्राज्य नही है, हेलेनी सभ्यता है और रोमन साम्राज्य का बढ़ा हुआ ह्रास स्वयं पतन का रोग-चिह्न है। पूरी कथा पर विचार करने से पता चलता है कि अन्तोनाइनो के युग के बाद रोमन साम्राज्य का पतन जिस द्रुत गति से हुआ उस पर आश्चर्य नही होता। इसके विपरीत यदि रोमन साम्राज्य बना रहता तो आश्चर्य होता। क्योंकि संस्थापन के पहले ही साम्राज्य का विनाश होना निश्चित था। विनाश इसलिए निश्चित था कि यह जो सार्वभौम राज्य बना वह केवल एक जुटाव था जो हेलेनी समाज के पतन में बिलम्ब कर सकता था, सदा के लिए रोक नही सकता था। क्योकि वह निश्चय रूप से पतनोन्मुख हो चुका था।

यदि गिबन बडी कथा, आरम्भ से कहता तो उसे पता लगता कि 'बर्बरता तथा धर्म की विजय' मुख्य कथानक नही था, कथा का केवल उपसंहार था। पतन का कारण नही बल्कि पतन का आवश्यक उपकरण था जो विघटन के साथ अवश्यम्भावी था। उसे यह भी पता चलता कि विजयी धर्म तथा विदेशी शक्तियाँ नही थी। ये हेलेनी परिवार की सन्तानें थी जो पेरिक्लियन पतन और आगस्टी समाहरण (रैली) के बीच के सकट काल में शक्तिशाली अल्पसख्यको से अलग हो गयी थी। सच बात यह है कि यदि गिबन ने इस दु:खमय गाथा के वास्तविक आरम्भ तक खोज की होती तो वह दूसरे परिणाम पर पहुँचता। वह इस परिणाम पर पहुँचता कि यह हेलेनी समाज की आत्महत्या थी। इसलिए कि जब उसके जीवन की कोई आशा नही रह गयी कि अपने ऊपर किये गये घातक प्रहार को वह टाल सके। और जिस पर बाद में उसी की धृष्ट और बिलगायी सन्तान ने अन्तिम प्रहार किया। ऐसा उस समय हुआ जब आगस्टी समाहरण के तीन शतियों के बाद पुन रोग ने दबाया और रोगी अपने ही प्रहार के घावों के प्रभाव से मर रहा था।

ऐसी अवस्था में खोज करने वाला इतिहासकार अपना ध्यान उपसहार पर न रखता बल्कि इस बात का पता लगाता कि कब और कैसे आत्महत्या के लिए हाथ उठा। इस समय का पता लगाने के लिए सम्भवत वह ४३१ ई० पू० पेलोपोनेशियाई युद्ध पर अपनी उँगली रखेगा। यह सामाजिक विनाश था जिसके बारे मे थ्यूसिडाइड्स ने अपने नाटक के एक पात्र से उस समय कहलाया है कि 'यह यूनान (हेलास) के लिए महान् विपत्ति का आरम्भ है।' इस बात का विवरण देते हुए कि किस प्रकार हेलेनी समाज ने अपने ही विनाश का अपराध किया है वह इस बात पर भी जोर देता कि दो और भी बुराइयाँ थी राज्यों के बीच युद्ध और वर्गों के बीच युद्ध। थ्यूसिडाइड्स के अनुसार इन दो बुराइयो के दो विशेष उदाहरण भी वह देता। अथीनियनों ने जो विजित मेलियनों को भयावह दण्ड दिया और कोरसाइरा के आपस के दलों का युद्ध। किसी भी अवस्था मे, वह बताता कि जैसा गिबन ने सोचा था उसके छ: सौ वर्ष पहले घातक प्रहार हो चुका था और घातक प्रहार उसके अपने हाथो हुआ था।

इस उदाहरण से हम और सभ्यताओं के सम्बन्ध में खोज करें, जो या तो समाप्त हो गयी है या मृत प्राय हैं तो यही बात मिलेगी ।

उदाहरण के लिए सुमेरी समाज का पतन और विनाश । इसमें हमूरबी का स्वर्णयुग (जैसा कि केंब्रिज एंशेंट हिस्ट्री में कहा गया है) 'भारतीय ग्रीष्म' का और उससे भी आगे का समय है जो अंतोनाइनों के युग का था । क्योंकि हमूरबी सुमेरी इतिहास का ट्राजन नहीं डायोक्लीशियन है । इसलिए सुमेरी सभ्यता को नष्ट करने वाले वे बर्बर नही थे जिन्होंने 'चारो दिशाओ के राज्य' पर ईसा के पूर्व अठारहवी शती में आक्रमण किया । हम देखेंगे कि घातक प्रहार नौ सौ वर्ष पहले हो चुका था । स्थानीय महन्तों तथा लगाश के उरुकाजिना के बीच का वर्गयुद्ध और उरुकाजिना के विध्वंसक लुगालज़ागिसी का सैनिकवाद । सुमेरी सकट का आरम्भ इन्ही दो कारणो से हुआ ।

चीनी समाज के पतन और विनाश 'धर्म और बर्बरता की विजय' उस समय हुई जब वे लगभग ३०० ई० मे चीनी सार्वभौम राज्य के स्थान पर यूरेशियाई खानाबदोश राज्यो की स्थापना हुई और साथ-ही-साथ चीनी ससार मे महायान बौद्धो का आक्रमण हुआ । चीन के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशो के सर्वहारा का यही धर्म था । किन्तु यह सब विजय रोमन साम्राज्य के 'बर्बरता और धर्म' की भाँति एक मृतप्राय समाज के बाहरी और आन्तरिक सर्वहारा की विजय मात्र थी । और ये कहानी के अन्तिम अध्याय के अतिरिक्त और कुछ नही है । चीनी सार्वभौम राज्य केवल उस समय एक सामाजिक जमाव था जब चीनी समाज के छोटे-छोटे प्रदेशीय राज्यो में आपसी युद्ध हो रहा था । कुछ पहले चीनी समाज में ही ये राज्य बन गये थे । चीनी इतिहास की यह घातक तिथि ४७९ ई० पू० है जो हेलेनी तिथि ४३१ ई० पू० के समान है । यही समय ऐतिहासिक 'युद्धरत राज्यों का काल है' जब से विघटन आरम्भ होता है । किन्तु यह तिथि वास्तविक घटना से ढाई सौ साल बाद की है । यह तिथि चीन के संकट की तिथि सम्भवत इसलिए मान ली गयी है कि उस समय कनफूशियस की मृत्यु हुई थी ।

जहाँ तक सीरियाई समाज का सम्बन्ध है, उसका 'भारतीय ग्रीष्म' बगदाद के अब्बासी खलीफो के समय था और उसने 'बर्बरता और धर्म की विजय' उस समय देखी जब खानाबदोश तुर्कों ने आक्रमण किया और उन्होने स्थानीय इस्लाम धर्म स्वीकार किया । इस सम्बन्ध मे हमें एक बात याद रखनी चाहिए जो हमने इस अध्ययन मे पहले ही स्थापित की थी कि सीरियाई पतन और विनाश हेलेनी प्रवेश के कारण एक हजार साल तक रुक गया था । और अब्बासी खलीफे सीरियाई इतिहास का सूत्र वही से पकड़ते है जहाँ ईसा के पूर्व चौथी शती मे एकेमीनियाई साम्राज्य ने छोड़ दिया था ।[1] इसलिए हमें सीरियाई संकट के लिए उस काल के पहले देखना पड़ेगा, जब खुसरू ने अकेमीनियाई शान्ति स्थापित की थी ।

उस सभ्यता के विनाश का क्या कारण हुआ जिसने अपने विकास के अल्पकाल मे अपनी प्रतिभा का प्रमाण दिया था और तीन महान् आविष्कारो में अपनी शक्ति दिखायी थी—एकेश्वरवाद, वर्णमाला और अतलान्तक । पहले-पहल शायद हम यहाँ ठिठकें कि हमे ऐसी सभ्यता का उदाहरण मिल गया जिसमे विदेशी मानवी शक्ति के प्रहार से सभ्यता का विनाश हुआ । क्या

१. देखिए, पृष्ठ १४–१६ ।

सीरियाई सभ्यता उन प्रहारों से नष्ट हो गयी जो नवी, आठवी, सातवी ई० पू० शती में असीरियनों द्वारा हुआ था ? देखने मे ऐसा जान पड़ता है । किन्तु ध्यान से देखा जाय तो जब 'असीरियन ने भेड़िये के समान बाड़े (फोल्ड) पर आक्रमण किया' उस समय एक बाड़ा और उसका रखवाला नही था । दसवी शती (ई० पू०) मे इसरायली नेतृत्व में हिब्रू, फोनीशियन, अरमेइयन, तथा हिलाइती प्रदेशो को जो बैबिलोनी तथा मिस्री ससार के बीच स्थित थे राजनीतिक सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न निष्फल हो गया । और सीरियाई भ्रातृघातक (फ्रेट्रिसाइडल) युद्ध के परिणामस्वरूप असीरियनो को अवसर मिला । सीरियाई सभ्यता के पतन की तिथि उस समय से नहीं माननी चाहिए जब ८७६ ई० पू० में पहले-पहल अशूर-नजीरपल ने फरात नदी को पार किया बल्कि ९३७ ई० पू० जब सुलेमान का साम्राज्य उसके सस्थापक की मृत्यु के बाद से विघटित होने लगा ।

बहुधा यह भी कहा जाता है कि परम्परावादी ईसाई सभ्यता, जिसका 'बाइज़ेन्टाइन' स्वरूप पूरवी रोमन साम्राज्य था और जिसका वर्णन उपसहार मे गिबन ने विस्तार से किया है, तुर्कों द्वारा नष्ट की गयी । इसके साथ यह कहा जा सकता है कि उस समाज को जिसे पश्चिमी ईसाई आक्रमण के घातक रूप ने क्षत-विक्षत कर दिया था उस पर मुसलिम तुर्कों ने अन्तिम प्रहार कर दिया । जिसे भ्रष्ट ढग से चौथा धार्मिक युद्ध कहा जाता है और जिसके कारण बाइज़ेन्टाइनी सम्राट् को आधी शती तक (१२०४–६१ ई०) अपने साम्राज्य से बाहर रहना पडा । किन्तु यह लैटिन आक्रमण, उसी प्रकार जैसे उसके बाद तुर्की आक्रमण हुआ, ऐसी जगह से हुआ जो विदेशी था । यदि हम अपना विश्लेषण यही समाप्त कर दे तो हमे कहना पड़ेगा कि इस सभ्यता की वास्तविक 'हत्या' की गयी जहाँ इसने इसी सूची मे बताया है कि और सभ्यताओ ने आत्महत्या की । किन्तु हम देखते है तो पता चलता है कि परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास मे जो परिवर्तनशील घटना हुई वह न तो चौदहवी-पन्द्रहवी शती का तुर्की आक्रमण था और न तेरहवी शती का लैटिन आक्रमण था और न ग्यारहवी शती का तुर्की आक्रमणकारियो (सलजुको) द्वारा अनातोलिया पर विजय थी । यह एक घरेलू घटना थी जो इन सबके पहले हुई थी । ९७७–१०१९ ई० की रोमानी-बुलगेरियन युद्ध हुआ था । परम्परावादी ईसाई जगत् की दो शक्तियों का आपसी घातक युद्ध तब तक नही समाप्त हुआ जब तक एक की राजनीतिक स्थिति नही समाप्त हो गयी और यह कहना ठीक होगा कि दूसरा इतना आहत हो गया कि उसके घाव अच्छे नहीं हुए ।

सन् १४५३ ई० मे जब उसमानिया बादशाह मुहम्मद द्वितीय ने कांस्टेनटिनोपल पर विजय प्राप्त की उस समय परम्परावादी ईसाई सभ्यता की समाप्ति नही हुई । विचित्र विरोधाभास है कि विदेशी विजेता ने जिस समाज पर विजय प्राप्त की उसे सार्वभौम राज्य बनाया । यद्यपि हागिया सोफिया का गिरजाघर मुसलमानी मसजिद बन गया, परम्परावादी ईसाई सभ्यता अपने पूरे जीवन भर रही, जिस प्रकार हिन्दू सभ्यता तुर्की वंश के मुगल सम्राट् अकबर के निर्मित सार्वभौम राज्य में जीवित रही, और विदेशी ब्रिटिश राज मे जीवित है । किन्तु कुछ समय में उस उसमानिया तुर्की साम्राज्य मे जो परम्परावादी ईसाई समाज का क्षेत्र था, विघटन तथा जनरेला होना आरम्भ हो गया । यूनानी, सर्ब, और अलबेनियन आठवी शती के समाप्त होने के पहले गतिमान् हो गये । क्या कारण था कि इस गति से 'बर्बरता और धर्म की विजय' नही हुई जैसा हेलेनी, चीनी तथा और समाजों की समाप्ति पर हमने देखा ।

इसका उत्तर यह है कि पश्चिमी सभ्यता का धावा परम्परावादी ईसाई समाज के बर्बर उत्तराधिकारियों के पीछे बहुत शक्तिशाली था । बर्बरता और धर्म नही बल्कि पश्चिमीकरण ही उसमानिया साम्राज्य के विघटन का मुख्य कारण था । 'वीरता के युग' के ढंग पर बर्बर राज्य न होकर उसमानिया साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्य पश्चिमी ढंग के बने । वे पश्चिमी राज्यो की भाँति राष्ट्रीय राज्य के समूह बन गये । कोई-कोई तो जैसे, सर्विया और यूनान, पश्चिमी ढग के नवीन राष्ट्रीय राज्य के समान बने । जो बर्बर राष्ट्र पश्चिमी प्रभाव से अलग रहे और पश्चिम की राष्ट्रीय भावना को नही ग्रहण कर सके, उन्होने अवसर खो दिया । अलबेनियनों ने, यूनानियो, सर्बो और बुलगरों को आत्मसमर्पण कर दिया यद्यपि अठारहवी शती मे उसका पुरातन वैभव इन लोगो से अधिक था । और बीसवी शती मे बहुत अल्प पैतृक सम्पत्ति को लेकर वह पश्चिमी राष्ट्रों के समूह मे सम्मिलित हुआ ।

इस प्रकार परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास का अन्तिम दृश्य 'बर्बरता और धर्म की विजय' नही थी बल्कि एक विदेशी सभ्यता की विजय थी जो इस मृतप्राय समाज को धीरे-धीरे हड़प किये जा रही थी और उसके ताने-बाने से अपने सामाजिक वस्त्र को बुन रही थी ।

हमको यहाँ एक और ढग दिखाई दिया जिसके द्वारा कोई समाज अपना अस्तित्व खो देता है । 'बर्बरता और धर्म की विजय' का यह अर्थ होता है कि मृतप्राय समाज प्राचीन मान्यताओ के विरुद्ध क्रान्ति के परिणामस्वरूप अपने ही बाहरी और भीतरी सर्वहारा द्वारा तिरस्कृत हो जाता है, इसलिए कि इनमे से कोई एक सर्वहारा नये समाज की स्थापना करने के लिए नया क्षेत्र बना दे । इस घटना मे पुराना समाज समाप्त हो जाता है । यद्यपि एक प्रकार प्रतिनिधि रूप मे वह नये समाज मे रहता है । और इस सम्बन्ध को हमने 'सम्बद्ध या प्रजनित' कहा है । जब पुरानी सभ्यता तिरस्कृत नही होती, बल्कि अपनी ही किसी समकालीन सभ्यता द्वारा विलीन कर ली जाती है तब उसका निजत्व पूर्ण रूप से खो जाता है । पहली परिस्थिति में ऐसा नही होता । इस मृतप्राय समाज के जो-जो रूप बनते है वे सब नष्ट नही हो जाते । पुराने सामाजिक स्वरूप से बिना ऐतिहासिक शृंखला को तोडे भी वे नये समाज मे परिवर्तित हो जाते है जैसे वर्तमान यूनानी लोग चार सौ साल तक उसमानिया के पिट्ठू रहने के बाद भी पश्चिमी जगत् के राष्ट्र हो गये । दूसरी दृष्टि से निजित्व और भी अधिक लोप हो जायगा क्योकि जो समाज दूसरे समाज में लोप हो जाता है तो एक नये समाज के न निर्माण करने का मूल्य इस रूप मे चुकाता है कि अपनी विशिष्टता को किसी सीमा तक अक्षुण्ण रखता है और वह नये समाज की नयी पीढ़ी मे उपस्थित होता है जैसे हमारा समाज हेलेनी समाज का प्रतिनिधि है, हिन्दू समाज भारतीय समाज का प्रतिनिधि है और सुदूर पूर्वी समाज चीनी का ।

सम्मिलित होने पर लोप हो जाने का जो उदाहरण हमारे सामने है वह है परम्परावादी ईसाई समाज का पश्चिमी सभ्यता में लोप हो जाना । किन्तु हम यह देख सकते है कि आज की सभी सभ्यताएँ उसी राह पर चल रही है । रूस में परम्परावादी ईसाई समाज का वर्तमान इतिहास यही है, इस्लामी और हिन्दू समाज और सुदूर पूर्वी समाज की दोनो शाखाओ का भी यही वर्तमान इतिहास है । तीन अविकसित समाज जो वर्तमान है अर्थात् एसकिमो, खानाबदोश तथा पोलिनेशियनों का भी यही इतिहास है । पश्चिमी सभ्यता इन्हें पूरा नष्ट नहीं कर रही है, उसमें ये सम्मिलित होते जा रहे है । सत्रहवीं शती के अन्त में परम्परावादी ईसाई संसार का पश्चिमीकरण

आरम्भ हुआ, उसका प्रभाव दो सौ साल पहले से अमरीका के मैक्सिको तथा एंडियन-समाज पर पड़ रहा था और अब यह प्रक्रिया प्रायः समाप्त हो गयी है। ईसा के पूर्व अन्तिम शती में बैबिलोनी समाज सीरियाई समाज मे लय हो गया और इसी सीरियाई समाज में कुछ शतियों के बाद मिस्री समाज भी लीन हो गया। मिस्री समाज सबसे दीर्घजीवी, ठोस और एकताबद्ध था। उसका सीरियाई समाज में लय हो जाना इस प्रकार के लीन हो जाने वाले उदाहरणों में सबसे विचित्र है।

यदि हम उन जीवित सभ्यताओ की ओर देखें जो हमारी पश्चिमी सभ्यता में लीन होने की प्रक्रिया में है तो हम देखेगे कि यह प्रक्रिया भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न गति से चल रही है।

आर्थिक स्तर पर ये सभी समाज आधुनिक पश्चिमी उद्योगवाद के जाल में, जो विश्व भर में फैला है, फँस गये है।

'उनके लाल बुझक्कड़ो ने
पश्चिम की बिजली की बत्ती देखी और उसे पूजने लगे '[१]

राजनीतिक स्तर पर भी इन मृतप्राय सभ्यताओ की सन्ताने विभिन्न दरवाजो से पश्चिमी राज्य-परिवार मे आने की चेष्टा कर रही है। सांस्कृतिक स्तर पर इस प्रकार का झुकाव नही है। परम्परावादी ईसाई समाज के मुख्य लोग, पुराने उसमानिया साम्राज्य की रिआया यूनानी, सर्ब, रूमानियन, बुलगारियन ने खुले दिल से पश्चिमी सास्कृतिक तथा राजनीतिक पश्चिमीकरण स्वीकार किया और उनके पुराने मालिक तुर्कों के नेताओं ने भी उनका अनुसरण किया है। किन्तु ये उदाहरण अपवाद जान पड़ते हैं। अरब, परशियन, हिन्दू, चीनी और जापानी भी समझ-बूझकर नैतिक तथा बौद्धिक प्रतिबन्धो के सहित पश्चिमी संस्कृति को स्वीकार कर रहे है। जहाँ तक रूसियो का सम्बन्ध है, पश्चिम की चुनौती के सम्बन्ध मे उनकी गोल-मटोल नीति के सम्बन्ध मे दूसरे संदर्भ में विचार किया जा चुका है।

इस प्रकार पश्चिमी राजनीतिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक स्तर पर ससार के एकीकरण की जो प्रवृत्ति है वह उतनी उन्नतिशील या अन्त में उतनी सफल सम्भवतः न हो जितनी पहले देखने मे वह जान पड़ती है। इसके विपरीत मैक्सिकी एडियन, बैबिलोनी, तथा मिस्री चार समाजों के उदाहरण से स्पष्ट है कि आत्मीकरण (असिमिलेशन) से भी अपना स्वरूप उसी प्रकार लोप हो जाता है जिस प्रकार विघटन से जैसे हेलेनी, भारतीय, चीनी, सुमेरी और मिनोई समाजो का हुआ। हम अब अपने उस बात की ओर ध्यान दें जो इस अध्याय का लक्ष्य था कि जो समाज पड़ोसी समाज द्वारा विलीन हो गये अथवा हो रहे है, वही उनके विनाश का कारण है कि जैसा कि दूसरे समूह के सम्बन्ध मे हमने देखा है विलीन होने या सम्मिलित होने के पहले ही विघटन आरम्भ हो गया था? यदि हम दूसरे निर्णय पर पहुँचते है तो हमारी खोज का काम पूरा हो जायेगा। और हम इस स्थिति मे होगे कि कह सके कि किसी समाज के भौतिक अथवा मानवी वातावरण पर नियन्त्रण न होना समाज के विनाश का मूल कारण नहीं है।

१. राबर्ट ब्रिजेज : द टेस्टामेंट आव ब्यूटी, भाग १, ५६४–५।

उदाहरण के लिए हमने देखा कि परम्परावादी ईसाई समाज के मुख्य भाग का अस्तित्व तब तक नहीं लोप हुआ जब तक उसका सार्वभौम राज्य क्षय होते-होते अन्त:काल की स्थिति को नहीं पहुँच गया और उसका वास्तविक विघटन आठ सौ साल पहले रोमन-बुलगानिन युद्ध के समय आरम्भ हुआ जब पश्चिमीकरण का कोई चिह्न भी न था। मिस्री समाज के विघटन और विलीनीकरण के बीच का समय अधिक था। विघटन उस समय आरम्भ हुआ जब लगभग २४२४ ई० पू० पाँचवीं से छठी पीढ़ी में परिवर्तन हो रहा था जब पिरामिड बनाने वालों के पाप का परिणाम उनके उत्तराधिकारियो ने भोगा और 'पुराने राज्य' का भारी भरकम राजनीतिक ढाँचा ढह गया। सुदूर पूर्वी समाज के विघटन और विलीनीकरण के आरम्भ की प्रक्रिया के बीच उतना समय नही लगा जितना मिस्री समाज के इतिहास में किन्तु उससे अधिक लगा जितना परम्परावादी ईसाई राज्य के इतिहास में। सुदूर पूर्वी समाज का विघटन ईसा की नवी शती के अन्तिम चतुर्थांश में ताग वंश के विनाश से आरम्भ होता है। उसके बाद सकट काल आया जिसमें बर्बरों ने कई सार्वभौम राज्य साम्राज्य के ढंग पर बनाया। इनमे पहला कुबलाई खाँ ने मंगोलिया द्वारा शान्ति स्थापित करने के लिए बनाया। किन्तु उसमे उतनी सफलता नही मिली जितनी अकबर ने हिन्दू समाज मे शान्ति स्थापित करके पायी और परम्परावादी ईसाई समाज मे विजयी मुहम्मद ने। चीनी इस सिद्धान्त पर कार्य करते रहे है कि 'मै यूनानियों से उस समय भी डरता हूँ जब वे लाभ का काम करते है ?' और इसके अनुसार उन्होने मंगोलो को निकाल बाहर किया जिस प्रकार मिस्रियो ने हाइकसो को। पश्चिमीकरण के पहले मचुओं को मच पर आना था।

रूस और जापान में, जो इस समय पश्चिम से प्रभावित महान् शक्तियाँ है, इनकी सभ्यता के विघटन के बहुत पहले पश्चिमी सभ्यता का आघात हो चुका था। किन्तु इन दोनों सभ्यताओं में विघटन हो रहा था क्योकि रोमानोफ़ ज़ारशाही जिसका आरम्भ पीटर महान् ने किया था। पश्चिमी राष्ट्रो के समूह में राष्ट्रीय राज्य बन रहा था और दो सौ साल तक सार्वभौम राज्य रहा, इसी प्रकार जापानी सार्वभौम राज्य भी तीन सौ साल तक रहा जिसके पश्चिमीकरण का आरम्भ ताकुगावाशोगुन वंश ने किया था। इन दोनों स्थितियों में यह कोई नही कहेगा कि पीटर महान् अथवा तोकुगावा के कार्यों से विघटन आरम्भ हुआ। इसके विपरीत देखने में ये उपलब्धियाँ इतनी सफल थी कि बहुत पर्यवेक्षक इन्हे इस बात का प्रमाण मान सकते है कि जिन समाजो ने जान-बूझकर ये परिवर्तन स्वीकार किये और जो कम से कम कुछ काल के लिए सफल रहे वे इस समय पूर्ण रूप से सजीव होगे। रूसी तथा जापानियो ने जिस चुनौती का सामना किया वह उसी प्रकार की उस चुनौती के विपरीत है जिसका सामना उसमानलियों, हिन्दुओं, चीनियो, एज़टेकों और इनका को करना पड़ा। इनपर कुछ प्रभाव न पड़ा। रूसियों और जापानियो ने अपने पश्चिमी पड़ोसियों—पोल, स्वीड, जरमन या अमरीकन-द्वारा जबरदस्ती पश्चिमीकरण स्वीकार नही किया। उन्होंने अपना सामाजिक परिवर्तन अपने हाथों किया और परिणाम यह हुआ कि पश्चिम की बराबरी के राष्ट्र में बन गये। औपनिवेशिक दासता या गरीब रिश्तेदार नही बने।

ध्यान देने की बात है कि सत्रहवी शती के आरम्भ में पीटर महान् के लगभग सौ साल पहले और 'मेइजी पुन:स्थापन' (मेइजी रेस्टोरेशन) के ढाई सौ साल पहले, रूस और जापान को अनुभव हुआ कि पश्चिम हमें विलीन करने की चेष्टा कर रहा है, उसी प्रकार जैसे और देशो को उसने

किया । रूस में तो पोलैंड तथा लिथुएनिया के संयुक्त राज ने मास्को पर सैनिक आक्रमण किया । रूसी गद्दी पर एक झूठे दावेदार की सहायता के लिए । जापान में यह आक्रमण दूसरे प्रकार हुआ । स्पेनी और पुर्तगाली मिशनरियो ने कई लाख जापानियो को कैथोलिक ईसाई बनाया । ऐसा हो सकता था कि ये ईसाई अल्पसख्यक स्पेनी जहाजो की सहायता से जापान पर अपना आधिकार जमा लेते । रूसियो ने तो पोलो को मार भगाया और जापानियो ने इस 'सफेद खतरे' को इस प्रकार दूर किया कि सभी पश्चिमी व्यापारियो को जापान से निकाल बाहर किया और आगे से जापानी धरती पर किसी पश्चिमी का आना बन्द कर दिया । केवल कुछ डच रह गये जिनके ऊपर बहुत अपमानजनक शर्तें लगा दी गयी थी । और जापानी ईसाइयो को निर्दयतापूर्वक समाप्त कर दिया । इस प्रकार पश्चिमी समस्या को हल करके रूसियो और जापानियों ने समझा कि अब हम अपने घोसले मे शान्ति से रहेगे । समय ने बताया कि ऐसा नही सम्भव था । इन्होने नये ढग से पश्चिम की चुनौती को स्वीकार किया जिसका वर्णन पहले हो चुका है ।

किन्तु ऐसे स्पष्ट चिह्न मौजूद हैं कि नागासाकी मे पहला पुर्तगाली जहाज पहुँचने के पहले और आरचेजेल मे प्रथम अग्रेजी जहाज के पहुँचने के पहले (मास्को मे पोलो के आक्रमण के पूर्व यह पश्चिम का अग्रदूत पहुँचा चुका था) जापान की सुदूर पूर्वी सभ्यता तथा रूस के परम्परा-वादी ईसाई समाज का विनाश आरम्भ हो गया था ।

रूसी इतिहास मे वास्तविक 'सकट का काल', जिस अर्थ मे ये शब्द इस अध्ययन मे प्रयोग किये गये है, सत्रहवी शती की वह अराजकता नही है जिसके लिए रूसियों ने ही ये शब्द गढे थे । वह पहले तथा दूसरे रूसी सार्वभौम राज्य के बीच केवल एक घटना थी जो हेलेनी ससार के अन्तो-नाइनो के काल तथा डायोक्लीशियन के पदारोहण के बीच की अराजकता का युग था । रूसी इतिहास का वह अध्याय तो हेलेनी इतिहास के उस अध्याय के समान है जो पेलोपोनेशियाई युद्ध और आगस्ट्स के शासन के बीच पडता है और इसलिए वह हमारे विचार के अनुसार रूसी सकट का काल है । यह वह समय है जब मास्को और नवगोरोड सन् १४७८ ई० मे एक साथ मिलाये गये और रूसी सार्वभौम राज्य की नीव पडी । उसी हिसाब से जापानी सकट का काल कामाकुरा और आशीकागा का काल है जब सामन्तवादी अराजकता थी । यह काल उसके पहले था जब नोबूनाग, हिदेयोशी और इयेयासू को मिलाकर शान्ति तथा मर्यादा स्थापित की गयी । यह दोनो मिलाकर सन् ११८४ ई० से सन् १५९७ ई० तक का काल होता है ।

यदि ये सचमुच रूसी और जापानी संकटकाल है तो इन दोनों हालतो में हमें यह देखना है कि ये सकट के काल किसी निजी घातक कारणों से उपस्थित हुए अथवा किसी विदेशी वैरी के कारण । रूसी उदाहरण में साधारणत. यह कारण बताया जाता है कि पश्चिमी मध्ययुग के अनुसार जो विघटन का काल है वह यूरोपीय स्टेप से मंगोल खानाबदोशो के कारण था । किन्तु दूसरे उदाहरणों मे हमने विचार करके अस्वीकार कर दिया है । जैसे परम्परावादी ईसाई समाज की पुरानी शाखा के सम्बन्ध में यह तर्क कि यूरेशियाई खानाबदोश अनेक प्रकार के दुष्ट थे । क्या यह सम्भव नही है कि रूस में परम्परावादी ईसाई समाज ने इसके पहले कि सन् १२३८ में मंगोलो ने बोल्गा को पार किया अपने ही कृत्यो से अपना विघटन किया हो । इसका पुष्टीकरण इससे होता है कि कीव का आदिम रूसी राज्य ईसा की बारहवी शती मे छिन्न-भिन्न होकर अनेक लड़ाकू राज्यों में बँट गया ।

जापान की स्थिति इससे अधिक स्पष्ट है। यहाँ विघटन मंगोलो के आक्रमण के कारण नही हुआ क्योंकि जापानियों ने सन् १२८१ में अपने तट से इन्हें मार भगाया। इस महान् विजय का कारण एक तो उनकी द्वीप की स्थिति थी, दूसरे आपस में सौ साल से लडते-लड़ते उनकी सैनिक दक्षता बहुत बढ़ गयी थी।

हिन्दू, बैबिलोनी तथा एंडियाई समाजो में विदेशी समाजो द्वारा विलीनीकरण की घटना अकस्मात् घटी जब ये पतनोन्मुख समाज सार्वभौम राज्य के रूप में थे, जैसे रूस और जापान के उदाहरणो में। किन्तु पहले तीन उदाहरणो में प्रक्रिया विपत्तिपूर्ण थी क्योकि विदेशियों ने सैनिक बल से इन पर विजय प्राप्त की थी। हिन्दू इतिहास मे ब्रिटिश विजय के पहले तथा मुगलो के काल से पहले, मुसलमानो ने विजय प्राप्त की थी जब उनके आक्रमण सन् ११९१ से १२०४ के बीच हुए। यह विजय और इसके बाद की ब्रिटिश तथा मुगल विजय इस कारण हुई कि उस समय हिन्दू समाज मे बेतरह अराजकता फैली हुई थी।

बैबिलोनी समाज को सीरियाई समाज ने अपने मे विलीन कर लिया जब नेबुकदनजार के साम्राज्य सार्वभौम राज्य को——फारस के खुसरू ने पराजित किया। इसके बाद से धीरे-धीरे बैबिलोनी सस्कृति सीरियाई सस्कृति मे लीन होती गयी और परिणामस्वरूप एकेमेनियाई सार्वभौम राज्य बना। किन्तु बैबिलोनी पतन का कारण असीरियाई सेना का अत्याचार था।

एडियाई समाज के सम्बन्ध मे यह जान पड़ता है कि 'इनका' साम्राज्य को स्पेनी विजेताओ ने तहस-नहस किया। और सम्भव है कि यदि पश्चिम के लोग वहाँ न पहुँचे होते तो 'इनका' साम्राज्य कुछ और शतियों तक चलता। किन्तु एडियाई सभ्यता का विनाश और 'इनका' साम्राज्य का 'विनाश' एक ही बात नही है। हमे एडियाई इतिहास के सम्बन्ध मे इतना ज्ञात है कि इसका पतन इनकाओ के सैनिक तथा राजनीतिक उत्थान के पहले हो गया था। स्पेनी विजय के एक शती पहले यह घटना हो चुकी थी। एडियाई सभ्यता के सास्कृतिक उद्भव के साथ ही यह घटना न थी। यह पतन बाद मे हुआ।

मेक्सिको की सभ्यता स्पेनी विजेताओं के आक्रमण से उस समय नष्ट हुई जब ऐज़टेक साम्राज्य, जो अपने समाज का सार्वभौम राज्य होने वाला था, अपनी विजय पूरी नहीं कर पाया था। दोनो का अन्तर हम इस प्रकार कह सकते है कि एडियाई समाज अपने एन्टोनाइनों के काल मे पराजित हुआ और मेक्सिकी समाज अपने सीपियों के काल मे समाप्त हुआ। किन्तु 'सीपियो का काल' सकट का काल है और इस कारण हमारी परिभाषा के अनुसार विनाश के पहले का स्वरूप है।

उसके विपरीत इस्लामी संसार में पश्चिमीकरण उस समय होने लगा जब किसी प्रकार का इस्लामी सार्वभौम राज्य दृष्टि में नही था। उसके कई राज्य जैसे फारस, इराक, सऊदी अरब, मिस्र, सीरिया, लेबनान पश्चिमी राष्ट्रो के 'गरीब रिश्तेदार' के रूप में, जो उन्नति सम्भव है कर रहे हैं। अखिल इस्लामी आन्दोलन अकाल प्रसूत जान पड़ता है।

दूसरी सभ्यताएँ जो प्रौढ़ हुई अथवा अविकसित तथा अकाल प्रसूत सभ्यताओ को हम छोड़ दे सकते है। किन्तु कुछ प्रौढ़ सभ्यताएँ जैसे मिनोई, हिताइटी और माया के इतिहास अभी पूर्ण रूप से जाने नही गये है और जो ज्ञान उपलब्ध है उसके आधार पर कोई परिणाम निकालाना ठीक न होगा। अविकसित सभ्यताओं के सम्बन्ध में इस खोज मे कुछ परिणाम निकालना ठीक

न होगा क्योंकि हमारी परिभाषा के अनुसार उनका जन्म तो हुआ किन्तु विकास न हो सका। और अकाल प्रसूत सभ्यता के सम्बन्ध में कुछ कहना निश्चय रूप से बेकार होगा।

(३) नकारात्मक अभिमत (वर्डिक्ट)

ऊपर के अनुसन्धान से हम सामान्यतः इस परिणाम पर पहुँचते है कि सभ्यताओ के पतन का कारण मानवी परिस्थितियो पर नियन्त्रण का अभाव नही है। यदि यह नियन्त्रण इस दृष्टि से नापा जाय कि जिस समाज के बारे में हम खोज कर रहे है उस पर विदेशियों का आक्रमण कब और कैसे हुआ तो जितने उदाहरण हमने देखे है उन सबके बारे में यही कहा जा सकता है कि अधिक-से-अधिक निजी घातक कारणों के अन्त में विदेशी कारण अन्तिम प्रहार रहा है। जहाँ सभ्यता के इतिहास के किसी काल में विदेशी सम्पर्क शक्तिशाली आक्रमण के रूप मे रहा है, सभ्यता का विनाश नही हुआ, उसे स्फूर्ति ही मिली। सिवाय उसके अन्तिम काल में जब सभ्यता का विनाश हो गया। ईसा के पूर्व पाँचवी शती के आरम्भ मे परशियनो के आक्रमण से हेलेनी समाज को सजीवता मिली और उसकी प्रतिभा का अभूतपूर्व विकास हुआ। ईसा की नवी शती में नार्स और मैगयरो के आक्रमण से पश्चिमी समाज को स्फूर्ति प्राप्त हुई और इन्होंने शक्ति तथा राजनीतिज्ञता के विशिष्ट कौशल दिखाये जिसका परिणाम था इंग्लैंड और फ्रास का राज्य और सेक्सनों द्वारा पवित्र रोमन साम्राज्य का पुन संगठन। मध्य युग मे इटली के उत्तरी राज्यों को होहेस्टाउफेन आक्रमणों से शक्ति प्राप्त हुई और स्पेन के आक्रमणो से आधुनिक इग्लैड और हालैड को। और आठवी शती में अरब मुसलमानो के आक्रमण से शिशु हिन्दू समाज को स्फूर्ति मिली।

ऊपर के सभी उदाहरण ऐसे हैं कि उन देशो पर ऐसे समय आक्रमण हुआ जब उनका विकास हो रहा था। हम ऐसे भी अनेक उदाहरण दे सकते हैं जो अपनी ही कुव्यवस्था से नष्ट हो चुके थे और विदेशी आक्रमण ने कुछ दिनो के लिए उन्हें स्फूर्ति प्रदान की। क्लासिक उदाहरण मिस्री समाज का है जिस पर इस प्रकार के आक्रमण की अनेक बार प्रतिक्रिया हुई। दो हजार वर्षों तक मिस्र मे प्रतिक्रियाएँ बार-बार होती रही। मिस्री इतिहास का यह उपसंहार उस समय हुआ जब उसके सार्वभौम राज्य का जीवन समाप्त हो चुका था। और ऐसा अन्त काल था जिसके बाद शीघ्र ही वह विनाश की अवस्था को पहुँचा। इस अन्तिम अवस्था मे मिस्री समाज ने इतनी शक्ति प्राप्त की कि हाइक्सो आक्रमणकारियों को निकाल बाहर किया और बीच-बीच मे ऐसी शक्ति उत्पन्न होती रही कि सागर के दस्युओं को, असीरियो को और अकेमेनिडियो को मार भगाया और टोलेमियों ने हेलेनीकरण की जो प्रक्रिया आरम्भ की थी उसका भी सफल सामना किया।

इसी प्रकार की प्रतिक्रिया चीन की सुदूर पूर्वी सभ्यता में भी हुई। मिग बंश ने मंगोलों को निकाला, यह उसी प्रकार है जैसे 'नये साम्राज्य' के थीबी संस्थापको ने हाइक्सो को निकाला। और सन् १९०० में पश्चिम विरोधी बाक्सर आन्दोलन तथा १९२५-२७ का रूसी साम्यवादी उपकरणों की नकल करते हुए पश्चिम से असफल युद्ध, उसी के समान है जैसे मिस्र ने हेलेनीकरण का विरोध किया था।

ये उदाहरण तथा दूसरे भी बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो हमारे इस पक्ष के समर्थन के लिए पर्याप्त है कि बाहरी दबाव तथा घात साधारणतः स्फूर्तिदायक होते हैं, विनाशकारी नहीं।

और यदि यह बात मान ली जाय तो हमारे परिणाम को प्रमाणित करता है कि मानवी वातावरण पर तियन्त्रण हट जाने से सभ्यताओं का विनाश नहीं होता ।

सम्पादक की टिप्पणी

कुछ पाठक सोच सकते हैं कि ऊपर के अध्यायों में लेखक तर्क के लिए कई बार अनेक सभ्यताओं के विघटन का काल बहुत पीछे ले गया है । यह भावना इसलिए हो सकती है कि 'ह्रास' के अनेक अर्थ हो गये हैं । जब हम किसी मनुष्य के स्वास्थ्य के ह्रास की बात करते है तब उसमें यह ध्वनि निहित रहती है कि यदि वह स्वस्थ न हुआ तो उसका सक्रिय जीवन समाप्त हो गया। हम लोग साधारणतः 'ह्रास' उसी अर्थ में प्रयोग करते हैं जिसमे ट्वायनबी 'विघटन' कहते हैं । किन्तु इस अध्ययन में 'विघटन' का वही अर्थ नही है, उसका अर्थ है विकास का युग समाप्त हो जाना । जीवधारियो के जीवन और समाजो के जीवन की तुलना अनुचित होती है, किन्तु पाठको को यह बता देना चाहता हूँ कि जीवधारियो में विकास जीवन मे बहुत पहले ही समाप्त हो जाता है । जीवधारियो और समाजो मे अन्तर है । इसे ऊपर के अध्याय के पहले अध्याय में लेखक ने बड़े परिश्रम से स्पष्ट करने की चेष्टा की है । जीवधारी जैसे मनुष्य की अवस्था 'सत्तर साल'[१] की बतायी गयी है । समाजों के लिए कोई ऐसी सीमा नहीं है। दूसरे शब्दों में समाजों की मृत्यु प्राकृतिक कारणो से नही हुआ करती । सदा आत्महत्या अथवा हत्या से उनका अन्त हुआ करता है । विशेषतः आत्महत्या से जैसा कि इस अध्याय में बताया गया है । इसी प्रकार विकास-काल की समाप्ति जीवधारियो के जीवन में स्वाभाविक क्रम है । समाज में यह 'भूल' या 'अपराध' के कारण अस्वाभाविक कारण है। इसी 'भूल' या 'अपराध' को ट्वायनबी समाज के लिए 'ह्रास' कहते है । इस अर्थ में जब इस शब्द का प्रयोग किया जाता है तब पता चलता है कि सभ्यता के इतिहास मे अनेक सफल, विख्यात और विशिष्ट घटनाएँ ह्रास के पश्चात घटी है या उनके कारण हुई हैं ।

१. बाइबिल के अनुसार —अनुवादक

१६. आत्मनिर्णय की असफलता

(१) अनुकरण की यांत्रिकता (द मेकानिकलनेस आव माइमेसिस)

सभ्यताओ के ह्रास के सम्बन्ध की खोज के आधार पर हम अनेक नकारात्मक परिणाम पर पहुँचे हैं। हमने देखा है कि ये ह्रास ईश्वर कृत्य नही हैं, कम-से-कम जैसा वकील लोग इन शब्दो का अर्थ कहते हैं। न तो वे प्रकृति के अन्धे नियमो के कारण होते रहते हैं। हमने यह भी देखा है कि वातावरण पर नियन्त्रण का अभाव भी उनका कारण नही है—चाहे वातावरण भौतिक हो या मानवी। ह्रास इस कारण भी नही होता कि औद्योगिक अथवा कलात्मक तकनीक की विफलता हो और न विदेशी आक्रमण द्वारा की गयी नर-हत्या ही कारण है। इन कारणो को अस्वीकार करते हुए हमको अपनी खोज का परिणाम नही मिला। किन्तु अन्तिम तर्काभास मे हमें एक सकेत मिल गया। हमने जहाँ यह बताया कि ह्रास विदेशो के द्वारा नर-हत्या के कारण नही हुआ वहाँ हम यह नही प्रमाणित कर सके कि ह्रास का कारण हिंसा नही है। प्रत्येक उदाहरण मे हम इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि ह्रास का कारण हिंसा है अपने ही द्वारा—आत्महत्या। इस परिणाम पर अच्छी तरह विचार करने के लिए सकेत का सहारा लेना चाहिए। और इस सम्बन्ध मे एक आशाजनक बात है जिसे हम तुरत देख सकते हैं। इसमे कोई मौलिक बात हम नही बता रहे हैं।

जिस परिणाम पर हम इतने परिश्रम से पहुँचे हैं उसे पहले ही एक आधुनिक पश्चिम के कवि ने कहा है :—

ईश्वर जानता है, इस दुखमय जीवन मे किसी दुरात्मा की
आवश्यकता नही है। हमारी ही कुवासनाएँ जाल बुनती है
हमारी अन्तरात्मा ही हमारे साथ घात करती है।

(मेरेडिथ का लव्जग्रेव) यह कोई नयी बात नही है। इससे पहले तथा और अधिकारी व्यक्तियो ने यह बात कही है। शेक्सपियर ने 'किंग जान' की अन्तिम पक्तियो मे कहा है :—

यह इंग्लैड घमडी विजेता के
चरणो पर कभी न पडा है, न पड़ेगा,
जब तक कि वह स्वयं अपने पर घात नही करेगा।
हमे कभी पछताना न पड़ेगा,
यदि इंग्लैड अपने प्रति सच्चा रहेगा।

इसी प्रकार ईसू के शब्द हैं (मैथ्यु १५, १८–२०) 'जो कुछ मुँह द्वारा प्रवेश करता है, पेट मे जाता है और फिर बाहर फेक दिया जाता है। किन्तु जो मुँह से निकलता है वह हृदय से आता है और वह मनुष्य को गन्दा करता है। क्योंकि हृदय से बुरे विचार, हत्या, परस्त्री-गमन, वेश्यागमन, चोरी, झूठी गवाही देना, ईश्वर निन्दा आदि हृदय से निकलते हैं। इनसे मनुष्य अपवित्र होता है।'

वह कौन दुर्बलता है जिसके कारण विकासोन्मुख सभ्यता अपने जीवन के मध्यकाल में पतनोन्मुख हो जाती है और अपनी महती शक्ति खो बैठती है। यह दुर्बलता महत्त्वपूर्ण होगी, क्योंकि पतन का संकट निश्चित नही है फिर भी संकट भयावह तो है ही। हमारे सामने यह तथ्य है कि इक्कीस सभ्यताओं में, जो सजीव जन्मी और विकसित हुई, तेरह तो मर गयीं और दफन हो गयी और जो आठ बची हैं उनमें सात स्पष्टतः पतनोन्मुख हैं। आठवीं जो हमारी है वह कौन जानता है अपने उत्कर्ष पर पहुँच चुकी हो। अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि विकासोन्मुख सभ्यता को अनेक संकटो का सामना करना पडता है। और जो विकास का विश्लेषण किया गया है उसका ध्यान हम रखेगे तो देखेगे कि विकास की ही राह में वह संकट रहता है।

विकास सर्जनात्मक व्यक्तियो और सर्जनात्मक अल्पसंख्यको का काम है। वह आगे बढ नही सकते यदि इस प्रगति मे अपने साथियो को अपने साथ न ले चले। समाज की बहुसख्यक जनता अ-सर्जनात्मक होती है। उन्हे निर्माण करने वाले नेता क्षण भर मे अपने समान नही बना सकते। यह असम्भव होगा। क्योंकि सन्तो के समागम से तपोमय आत्मा का प्रकाशमान होना उतना ही चमत्कारपूर्ण है जितना सन्त का ससार मे प्रकट होना। नेता का काम है कि अपने साथियो को अपना अनुगामी बनाये। अपने नेता के अनुसार उन्नति के लक्ष्य की ओर बढ़े, उसका एक ही ढग है वह नेता का अनुकरण करे। अनुकरण एक प्रकार का सामाजिक अभ्यास (ड्रिल) है। जो कानओरफ्यूज की मधुर वीणा के स्वरो से प्रभावित नही होते वे सार्जेंट की आज्ञा के शब्दो के वशीभूत हो जाते हैं। जब हेमलिन का वंशीवाला प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम के रूप मे गरजता है तब वे, जो अब तक निष्क्रिय थे, गतिशील हो जाते है और जिस विकास की ओर वह ले जाना चाहता है चलते है। किन्तु उसका साथ वे छोटे रास्ते से ही कर सकते है। लम्बी राह विपत्ति की ओर ले जाती है। जब विवश होकर लम्बा रास्ता ही पकड़ना पड़ता है तभी उन्हे विनाश का सामना करना पडता है।

एक बात और ध्यान देने की है। अनुकरण के अभ्यास मे एक दुर्बलता है। उस ढग के अतिरिक्त जिस ढग से जनता की शक्ति का उपयोग किया जाय। और अनुकरण चूँकि अभ्यास है इसलिए इससे मानव जीवन और गति यन्त्रवत् हो जाती है।

जब हम 'कौशलपूर्ण यन्त्र' अथवा 'चतुर मिस्त्री' की बात करते है तब इन शब्दों से यह बोध होता है कि जीव की पदार्थ (मैटर) पर विजय है, मानवी चतुराई की भौतिक बाधाओ पर विजय है। वास्तविक उदाहरणो से भी यही बात मालूम होती है जैसे ग्रामोफोन या हवाई जहाज से लेकर पहली बार जब पहिया बना होगा या पहली डोगी जो लकड़ी को खोदकर बनी होगी (कैनू) उन तक, क्योंकि इन आविष्कारो द्वारा मनुष्य की शक्ति अपने वातावरण पर इतनी अधिक हो जाती है कि निर्जीव पदार्थों को वे जिस प्रकार चाहे काम मे ला सकते हैं जैसे सारजेंट अपनी आज्ञा से यन्त्रवत् मनुष्य से जिस प्रकार चाहे ड्रिल करा सकता है। अपनी पलटन की ड्रिल कराते समय सारजेंट अपने को ब्राएरियस के समान बना लेता है जिसके सैकड़ो हाथ और पाँव इस प्रकार आज्ञा पालन करते हैं जैसे उसके दो ही हाथ-पाँव है। उसी प्रकार दूरबीन मनुष्य की आँख का विस्तार है, भेरी मनुष्य की आवाज का, स्टिल्ट पाँव का और तलवार मनुष्य के बाहु का।

मनुष्य कैसे-कैसे यन्त्र बनायेगा उसके पहले ही प्रकृति ने उसकी चतुराई की प्रशसा कर रखी

है। अपनी सर्वोत्तम कृति मनुष्य के शरीर में प्रकृति ने उसका खूब प्रयोग किया है। हृदय तथा फेफड़े बनाकर प्रकृति ने दो स्वचालित यन्त्र बनाये हैं जो आदर्श हैं। इन्हे तथा और अवयवों में प्रकृति ने ऐसा सामंजस्य स्थापित किया है कि वे अपने से सब काम करते हैं। लगातार एक ढंग से काम करते रहने से जो शक्ति उत्पन्न होती है उससे हम चलते हैं, बात-चीत करते हैं और उसने ही इक्कीस सभ्यताओं को जन्म दिया है। यों समझिए कि किसी अवयव का नब्बे प्रतिशत कार्य अपने से होता है और कम-से-कम शक्ति उसमें व्यय होती है। यह इसलिए कि अधिक-से-अधिक शक्ति शेष दस प्रतिशत व्यय में लगे। इस दस प्रतिशत शक्ति द्वारा प्रकृति आगे बढ़ती है। सच बात यह है कि प्राकृतिक जीवन भी मानव समाज की भाँति है जिसमें एक सर्जनात्मक अल्पसंख्यक सदस्य है और एक निष्क्रिय बहुसंख्यक। विकासोन्मुख जीव मे, विकासोन्मुख समाज की भाँति अल्पसख्यक बहुसंख्यको को यन्त्रवत् चालित करते रहते है।

मानव की इन यन्त्रवत् सफलताओं की सराहना में हम मगन हो जाते है किन्तु कुछ ऐसी शब्दावली है जिन्हें सुनकर हमे चिन्ता होती है—जैसे 'मशीन के बने सामान', 'यन्त्रवत् आचरण' जिनमे मशीन का अर्थ पदार्थ पर मानव की विजय नही, मानव पर पदार्थ की विजय का सकेत हम करते हैं। मशीन मनुष्य का दास बनने के लिए बनायी गयी है। किन्तु यह भी सम्भव है कि मनुष्य मशीन का दास बन जाय। उस सजीव प्राणी मे जिसमे प्रतिशत मशीन है अधिक सर्जन शक्ति है बजाय उस प्राणी मे जिसमे पचास प्रतिशत मशीन है। जैसे—यदि सुकरात को भोजन बनाने में समय न लगाना पडे तो वह विश्व के रहस्य के उद्घाटन में अधिक समय लगा सकता है। मगर जो जीव शत प्रतिशत यन्त्र है वह जीवन से ही रोबोट—यन्त्र रूपी मानव—है।

इसलिए अनुकरण के माध्यम से समाज मे जो यान्त्रिक कार्य होता है उसमे विपत्ति का भय रहता है। और यह स्पष्ट उस समाज में अधिक रहता है जो गत्यात्मक है बजाय उस समाज के जो सुषुप्त है। अनुकरण की प्रक्रिया का दोष यह है—इस यन्त्रवत् संचालन की प्रेरणा बाहर से होती है। यदि आज्ञापालन करने वाले पर छोड़ दिया जाय तो वह अपनी ओर से कभी यह कार्य न करेगा। अनुकरण की क्रिया अपने मन से नही होती और इस क्रिया को पूर्ण रूप से सफल करने के लिए आवश्यक है कि उसे रीति-रिवाज या आचार का रूप दे दिया जाय। जैसा कि वास्तव मे आदिम समाजों का 'यिन' अवस्थाओ मे होता है। किन्तु जब रीति की परम्परा टूट जाती है तब तो जो अनुकरण शक्ति पुरातन लोगो के या अपरिवर्तिनीय सामाजिक परम्परा के अवतारो की पूजा मे लगती थी, वह नेताओ की पूजा मे लगायी जाती है जो सुन्दर भविष्य की ओर ले जाने का सपना दिखाते है। इस दशा में समाज का रास्ता भयपूर्ण हो जाता है। और सकट का भय सिर पर सवार रहता है। क्योंकि विकास को सुरक्षित रखने के लिए सदैव स्वेच्छा और स्वाभाविक प्रवृत्ति चाहिए और समुचित अनुकरण के लिए मशीन के समान स्वचालित होना चाहिए जो विकास के लिए आवश्यक है। वाल्टर बेजहाट के मन मे यही दूसरी बात थी जब उसने अपने व्यंग्यपूर्ण ढंग से अंग्रेज पाठको से कहा था कि तुम्हारी सफलता बहुत कुछ तुम्हारी मूढ़ता के कारण है। अच्छे नेताओ को अच्छे अनुगामी कभी नही मिल सकते, यदि ये सब स्वय विचार करने लगें। फिर यदि सब मूढ़ है तो नेता कौन बनेगा ?

सच बात यह है सर्जनात्मक व्यक्ति सभ्यता के आगे-आगे है और जो अनुकरण के माध्यम का सहारा लेते है दो प्रकार की असफलताओं के सम्मुख रहते है। एक प्रतिकूल और एक अनुकूल।

प्रतिकूल असफलता इस प्रकार हो सकती है कि नेता स्वयं उस शक्ति के वशीभूत हो जायँ जिससे उन्होंने अपने अनुगामियों को प्रभावित किया है। ऐसी अवस्था मे जन-साधारण की शिक्षा उसके नेता अपनी स्व-प्रेरणा (इनिशियेटिव) को गवाँ कर देते हैं जो नाशकारी है। यही अविकसित सभ्यताओं के इतिहास में हुआ, और अन्य सभ्यताओं में भी, जो निष्क्रिय रूप में है। किन्तु यह प्रतिकूल असफलता ही कहानी का अन्त नही है। जब नेता का नेतृत्व समाप्त हो जाता है तब उनके कार्यकाल का दुरुपयोग होने लगता है। तब जनता विद्रोह कर देती है और अफसर दमन द्वारा शान्ति स्थापन करना चाहते हैं। ओरफ्यूज जिसकी वंशी खो गयी या जो वंशी बजाना भूल गया, अब जरक्सेज का कोड़ा हाथो मे लेता है। परिणाम यह होता है कि भयंकर अशान्ति छा जाती है और सुव्यवस्थित समाज में क्रान्ति हो जाती है। यह अनुकूल असफलता है और हमने बार-बार इसी के लिए दूसरे शब्द का प्रयोग किया है। वह है पतनोन्मुख सभ्यता का विघटन जिसमे नेता शक्तिशाली अल्पसंख्यको का रूप धारण करते है और जनता सर्वहारा होकर अलग हो जाती है।

सर्वहारा का इस प्रकार अपने नेताओं से अलग हो जाना समाज के उस सामंजस्य को खो देना है जो उसे एक बनाये रखती है। किसी पूर्ण समाज मे, जिसमें कई भाग हो, भागों की एकता मिट जाय तो सारे समाज को अपने आत्मनिर्णय की भावना को खो कर उसका मूल्य चुकाना पडता है। आत्मनिर्णय की शक्ति का अभाव ह्रास की अन्तिम कसौटी है। इस निष्कर्ष से हमें आश्चर्य न होना चाहिए कि यह उस निष्कर्ष के विपरीत है, जिस पर हम इस अध्ययन में पहले पहुँच चुके है कि आत्मनिर्णय की भावना की ओर जाना सभ्यता के विकास का चिह्न है। हम अब कुछ उन तत्त्वो की परीक्षा करेंगे जिनमें सामजस्य के अभाव के कारण आत्मनिर्णय की भावना लोप हो जाती है।

(२) पुरानी बोतल में नयी शराब

समायोजन, क्रान्ति और अनाचार[1]

समाज जिन सस्थाओं का बना हुआ है उनमें असगति का एक कारण नयी सामाजिक शक्तियाँ, जैसे नयी रुझान, नये आवेग, नये विचार—हैं जिन्हे संस्थाएँ वहन करने के लिए मल रूप से नही बनी थीं। इस प्रकार के दो विरोधी तत्त्वों का कितना अनिष्टकर परिणाम होता है उसका एक विख्यात वार्ता मे वर्णन है, जिसके बारे मे कहा जाता है ईसा ने कहा था :

'कोई मनुष्य नये कपड़े मे पुराने कपड़े का जोड़ नही लगाता। क्योंकि जो नया कपड़ा लगाया जाता है, पर पुराने कपडे में से कुछ हटा देता है और छेद और भी भद्दा हो जाता है। और लोग नयी शराब को भी पुरानी बोतल में नही रखते नही तो बोतल फूट जाती है और शराब बह जाती है। लोग नयी शराब को नयी बोतल में रखते है और दोनो की रक्षा होती है।'[2]

जिस घरेलू व्यवस्था की उपमा ऊपर दी गयी है उसका अक्षरशः पालन किया जा सकता है परन्तु सामाजिक जीवन मे मनुष्य को कार्य करने की शक्ति सीमित होती है। समाज कपड़े या

१. एडजस्टमेन्ट, रिवोल्यूशन एण्ड एनामिटीज।
२. मैथ्यु—९, १६–१७।

बोतल के समान एक आदमी की सम्पत्ति नही है । वह अनेक मनुष्यो का कार्यक्षेत्र है इसलिए जो शिक्षा घरेलू व्यवस्था मे साधारण और व्यावहारिक ज्ञान है वह समाज मे आदर्श है ।

आदर्श रूप में नयी गत्यात्मक शक्तियो को समाज की सारी संस्थाओ को नये सिरे से निर्मित करना चाहिए और वास्तविक विकासोन्मुख समाज मे विशेष काल-दोषों (एनाक्रोनिज्म) का समायोजन होता रहता है । किन्तु स्थिर शक्तियाँ सदा समाज के ढाँचे के बहुत-से हिस्से को ज्यों का त्यों बनाये रखती हैं यद्यपि नयी कार्यशील शक्तियों और पुरानी शक्तियो मे असंगति रहती है । ऐसी स्थिति मे नयी शक्तियाँ दो विरोधी दिशाओ मे साथ-साथ कार्य करती रहती हैं । एक ओर तो नयी सस्थाओ द्वारा, जिनका उन्होने निर्माण किया है या उन पुरानी सस्थाओ द्वारा जिन्हे उन्होने अपने अनुसार गढ लिया है, अपना सर्जनात्मक कार्य करती रहती है, कल्याण करती हैं । साथ-ही-साथ वे ऐसी सस्थाओं मे अव्यवस्थित ढंग से घुस पडती है, जो उनके सामने आ जाती है, जैसे शक्तिशाली भाप की शिखा इजन घर में चली जाय और किसी पुराने इजन मे घुस जाय । ऐसी अवस्था में दो मे एक दुर्घटना हो सकती है । या तो भाप के दबाव से पुराना इजन चूर-चूर हो जाय या किसी प्रकार वह बना रहे और इस प्रकार कार्य करने लगे जो भयानक विनाशकारी हो ।

इन रूपको को सामाजिक जीवन के अर्थ मे लें अर्थात् पुराने इंजनो का विस्फोट जो भाप के दबाव को सहन नही कर सकते, या पुरानी बोतलो का फूटना जिसमे नयी शराब रखी जाती है, तो इसका अभिप्राय होगा—वे क्रान्तियाँ जो कभी-कभी उन सस्थाओ मे होती हैं जो समय के साथ नही है । इसके विपरीत वे इजन जो दबाव को सहन कर लेते हैं और ऐसे विनाशकारी कार्य करने लगते है जिनके लिए वे बनाये नही गये थे । वे उन सामाजिक अपराध के प्रतीक है जो कभी-कभी समय के साथ न चलने वाली 'परम्परावादी' सस्थाओ मे उत्पन्न हो जाते हैं ।

क्रान्ति की परिभाषा यह हो सकती है कि वे ऐसे अनुकरण के कार्य है जिनका अवरोध हुआ है और जो थोडे बहुत हिंसात्मक है । उनका मूल तत्त्व अनुकरण है । क्योकि प्रत्येक क्रान्ति का सदर्भ ऐसी घटना से है जो पहले कभी कही हो चुकी है और यह स्पष्ट है कि किसी क्रान्ति का अध्ययन जब हम उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर करते है तब देखते है कि यह क्रान्ति कभी न होती यदि पहले की किसी बाहरी शक्ति ने उसे उद्‌बुद्ध न किया होता । प्रत्यक्ष उदाहरण सन् १७८९ की फ्रास की क्रान्ति है जिसकी प्रेरणा कुछ बाता मे उन घटनाओ से मिली थी जो ब्रिटिश अमरीका में घटी थी । इन घटनाओ मे फ्रांस की पुरानी सरकार भी सहायक थी जो उसके लिए घातक सिद्ध हुई । और कुछ प्रेरणा उन शतियो पुराने अंग्रेजी विचारो से मिली जिनका फ्रांस मे मांटेस्क्यू आदि ने प्रचार किया था और जिनका वहाँ प्रभाव पडा ।

अवरोध भी क्रान्ति का एक तत्त्व है और इसी के कारण हिसा को बल मिलता है, जो क्रान्ति का मुख्य अग है । क्रान्ति हिंसात्मक इसलिए होती है कि नयी पराक्रमी सामाजिक शक्तियो की उन पुरानी दृढ सस्थाओ पर देर में विजय होती है, जो जीवन की नयी अभिव्यक्तियो का विरोध करती हैं और उन्हे पराजित करने की चेष्टा करती है । जितना ही अधिक दिनों तक अवरोध होता है उतना उस शक्ति का दबाव बढ़ता है, जो बाहर निकलना चाहती है । और जितना ही अधिक दबाव होगा उतने ही जोर का विस्फोट होगा जिसके परिणामस्वरूप अवरुद्ध शक्तियाँ बाहर निकल पड़ती हैं ।

क्रान्ति का स्थान सामाजिक अपराध भी ले लेते है । उनकी यह परिभाषा की जा सकती है

कि वह दण्ड है जिसे समाज को भुगतना पड़ता है, जब अनुकरण जिसे पुरानी सस्थाओं को नयी सामाजिक शक्तियों के साथ चलना चाहिए था केवल रुकती ही नहीं, बिलकुल विफल हो जाती है।

इससे स्पष्ट है कि जब किसी समाज की सस्था पर नयी सामाजिक शक्ति का आघात होता है तीन विकल्पो में एक की सम्भावना है : या तो शक्ति के साथ सस्था का सामजस्य, या क्रान्ति (जो एक प्रकार का सामंजस्य है जो विलम्ब से होता है और विरोधी तत्त्वो का होता है), अथवा अपराध। यह भी स्पष्ट है कि इन विकल्पो में प्रत्येक उसी समाज के विभिन्न भागो में विभिन्न राष्ट्रीय राज्यो मे, विभिन्न ढग से परिपूर्ण हों, यदि कोई विशेष समाज विशेष ढंग से बन गया हो। यदि सन्तुलन के साथ सामंजस्य है तो समाज का विकास होगा। यदि क्रान्ति होगी तो विकास में खतरा रहेगा, यदि अनाचार होगा तो समाज का ह्रास होगा।

उद्योगवाद का दासप्रथा पर संघात

विगत दो शतियों मे दो बलशाली नयी सामाजिक शक्तियाँ गतिमान् हुई। उद्योगवाद और लोकतन्त्र। पुरानी सस्थाओं मे से एक पर, दासत्व प्रथा पर, इसका आघात हुआ। यह विनाशकारी संस्था हेलेनी सभ्यता के पतन और विनाश का एक कारण थी। पश्चिमी समाज के देशों में इसका पाँव नही जमा था, किन्तु जब पश्चिमी ईसाई ससार का सागर पार विस्तार हुआ, तब नये सागर पार के राज्यो मे यह स्थापित हो गयी। किन्तु खेत पर काम करने वाले दासों का यह संक्रामक रोग बहुत जोरदार नही था। अठारहवी शती के अन्त में जब उद्योगवाद और लोकतन्त्र की नयी शक्तियाँ ग्रेट ब्रिटेन से पश्चिमी दुनिया मे फैलने लगी, दासत्व उपनिवेशो मे ही थोडा-बहुत पाया जाता था और वहाँ भी इसका क्षेत्र कम होता जाता था। ऐसे राजमर्मज्ञ जैसे वाशिंगटन और जेफरसन जिनके पास स्वय दास थे, इस सस्था से दुखी थे और उन्हे आशा थी कि आगामी शती में शान्तिपूर्वक इस संस्था की समाप्ति हो जायगी।

किन्तु यह सम्भावना ग्रेट ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने पर समाप्त हो गयी। क्योंकि इसी के कारण उन कच्चे मालो की माँग बढ गयी जिन्हे खेतों मे दास पैदा करते थे। उद्योगवाद के संघात के कारण इस जीर्ण और समय के विपरीत संस्था को नया जीवन मिला। पश्चिमी समाज के सामने तो विकल्प थे। या तो वह दासत्व प्रथा का अन्त करने के लिए तुरत सक्रिय कार्य करे अथवा इस पुरानी सामाजिक बुराई को उद्योगवाद की नयी गतिशील शक्ति द्वारा ऐसे रूप में बदल दे जो समाज के जीवन के लिए विनाशकारी सिद्ध हो।

ऐसी स्थिति में पश्चिमी संसार के अनेक राष्ट्रीय राज्यो मे दास-प्रथा के विरुद्ध कार्य हुए और शान्तिपूर्ण सफलता भी मिली। एक महत्त्व का क्षेत्र रह गया जहाँ दास-प्रथा के विरुद्ध कुछ कार्य न हो सका। वह थे उत्तरी अमरीकी संघ के दक्षिणी राज्य जिन्हे 'रुई का क्षेत्र' कहते हैं। यहाँ दास-प्रथा के समर्थक एक पीढ़ी तक और शक्तिशाली रहे। इस तीस वर्ष की अल्प अवधि में अर्थात् सन् १८३३ से जब बृटिश साम्राज्य में दास-प्रथा अन्त कर दी गयी, सन् १८६२ तक जब संयुक्त राज में दास-प्रथा का अन्त हुआ, दक्षिण के राज्यों की यह 'विशिष्ट सस्था' उद्योगवाद की गतिशील शक्ति के कारण भीषण रूप से उन्नत हुई। इसके पश्चात् इस पिशाच को पराजित किया गया और नष्ट किया गया। किन्तु सयुक्त राज्य में दास-प्रथा के विनाश मे जो विलम्ब हुआ उसके परिणामस्वरूप विनष्टकारी क्रान्ति हुई जिसका भीषण परिणाम आज भी दिखाई देता है। इस अनुकरण के अवरोध का यह मूल्य चुकाना पडा।

फिर भी हमारे पश्चिमी समाज को अपने को साधुवाद करना चाहिए कि इस मूल्य पर भी अन्तिम पश्चिमी गढ़ से दास-प्रथा का सामाजिक दोष हटाया गया। इस दया के कार्य के लिए हमें लोकतन्त्र की शक्ति का धन्यवाद करना चाहिए। पश्चिमी जगत् मे यह शक्ति उद्योगवाद के कुछ पहले उत्पन्न हो गयी थी क्योकि यह केवल आकस्मिक सयोग नही था कि पश्चिमी गढ़ से दास की प्रथा को निर्मूल करने वाला लिंकन सबसे महान् लोकतान्त्रिक राजमर्मज्ञ (स्टेट्समैन) था। लोकतन्त्र मानवतावाद की राजनीतिक अभिव्यक्ति है और मानवतावाद तथा दासता एक दूसरे के विरोधी हैं, इसलिए नये लोकतन्त्रात्मक जागरण ने दासता के विरुद्ध आन्दोलन को उसी समय शक्तिशाली बना दिया जब नवीन उद्योगवाद दासता को उत्साहित कर रहा था। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उद्योगवाद जिस प्रकार दासता की प्रथा को कायम रखना चाहता था उसे यदि लोकतन्त्र की प्रगतिशील शक्तियो ने समाप्त न कर दिया होता तो पश्चिमी जगत् में इतनी सरलता से दासता समाप्त न होती।

युद्ध पर लोकतन्त्र और उद्योगवाद का संघात (इंपैक्ट)

साधारणतः कहा जाता है कि उद्योगवाद के कारण युद्ध की विभीषिका बढ गयी है जैसे उसके कारण दासता की विभीषिका बढ गयी थी। युद्ध प्राचीन तथा युग के विपरीत प्रथा है और उसी नैतिक सिद्धान्त पर उसकी भर्त्सना की जाती है जिसपर दासता की। बौद्धिक दृष्टि से बहुत-से लोगों का यह भी विचार है कि युद्ध से उन लोगों को भी कुछ लाभ नही होता जो समझते हैं कि इससे लाभ होता है। जिस प्रकार अमरीकी गृह-युद्ध के ठीक पहले एच० आर० हारपर ने 'दि इम्पेंडिंग क्राइसिस आव द साउथ' नाम की पुस्तक लिखी जिसमे बताया था कि दास के मालिकों को दास रखने से कोई लाभ नही होता। मन भ्रष्ट होने के कारण उन्ही लोगो ने उस पुस्तक की भर्त्सना की जिनके लाभ के लिए तथा ज्ञान के लिए वह पुस्तक लिखी गयी थी और उसमें बताया गया था कि वास्तविक लाभ उनका क्या होगा, उसी प्रकार १९१४–१८ के महायुद्ध के पहले नारमन एंजेल ने एक पुस्तक लिखी थी—'यूरोप्स आपटिकल इल्युजन' जिसमे प्रमाणित करने की चेष्टा की गयी थी कि युद्ध से विजयी तथा पराजित–दोनों की हानि होती है। बहुत लोगों ने लेखक की निन्दा की जो स्वयं उसी के समान शान्ति बनाये रखना चाहते थे। फिर क्यों हमारा समाज युद्ध बन्द करने में सफल नही हुआ और दासता के उन्मूलन मे सफल हुआ? उत्तर स्पष्ट है। दासता के उन्मूलन मे लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की शक्तियाँ एक ही ओर लगीं।

यदि हम लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद के आरम्भ के पहले के पश्चिमी संसार की परिस्थिति पर विचार करे तो हमें पता चलेगा कि उस समय अठारहवी शती के मध्य युद्ध तथा दासता की प्राय. समान स्थिति थी। युद्ध की प्रवृत्ति घट रही थी, इसलिए नही कि लड़ाइयाँ कम हो रही थी। यद्यपि अको द्वारा इसे भी प्रमाणित किया जा सकता है[1] बल्कि इसलिए कि उनका संचालन

१. यद्यपि पी० ए० सोरोकिन ने जो संख्याएं एकत्र की हैं उनसे पता चलता है कि उन्नीसवीं शती में अठारहवीं शती से कम युद्ध हुए हैं (सोशल एण्ड कलचरल डाइनेमिक्स)। खण्ड ३, न्यू यार्क, १९३७, अमेरिकन बुक कं०, पृ० ३४२ तथा ३४५–४६।

संयम से होता था। हमारे अठारहवीं शती के बुद्धिवादी इस बात को अनुचित समझते हैं कि कुछ ही पहले युद्धों में धार्मिक मदान्धता के कारण युद्ध में भीषणता अधिक थी। सत्रहवीं शती के अन्तिम भाग में यह विभीषिका हटा दी गयी और युद्ध की भीषणता यथासम्भव कम हो गयी। पश्चिम के इतिहास के किसी अध्याय में इसके पहले या उसके बाद फिर ऐसा कभी नही हुआ। इस 'सभ्यता के संग्राम' का युग उस समय अठारहवी शती के अन्त में समाप्त हो गया जब एक बार फिर लोकतन्त्र और उद्योगवाद के संघर्ष के कारण युद्ध की ओर लोग अग्रसर होने लगे। यदि हम पूछें कि विगत डेढ़ सौ वर्षों में इन दोनों में किस शक्ति ने युद्ध की ओर लोगों को उत्तेजित किया है, तो सम्भवतः पहली प्रक्रिया यही होगी कि उद्योगवाद ने इस दृष्टि से इस चक्र में पहला आधुनिक युद्ध फ्रांस की राज्यक्रान्ति के युद्धों से आरम्भ हुआ और इन पर उद्योगवाद का प्रभाव नगण्य था और फ्रांस की राज्यक्रान्ति वाले लोकतन्त्र का महत्त्वपूर्ण। नेपोलियन की सैनिक प्रतिभा का परिणाम उतना नही था जितना नयी क्रान्तिकारी फ्रांसीसी सेना का, जिसने पुराने ढंग के अठारहवी शती के अक्रान्तिकारी राज्यों के सैन्यबल को नष्ट कर दिया और वह सेना सारे यूरोप की सेना को इस प्रकार काटती चली गयी जैसे मक्खन को चाकू काटता है और यह सेना सारे यूरोप मे घुस गयी। यदि इसके प्रमाण की आवश्यकता हो तो देखिए कि इस बलपूर्वक एकत्र की हुई अर्ध-शिक्षित सेना ने जितना कमाल दिखाया वह नेपोलियन के आने के पहले चौदहवी लूई की सेना के लिए असम्भव था। और हमे यह भी स्मरण कर लेना चाहिए कि रोमन—और असीरियाई तथा दूसरी उग्र सैन्यवादी शक्तियो ने प्राचीन युगो मे बिना किसी यांत्रिक उपकरणों के बडी-बड़ी सभ्यताओ को नष्ट कर डाला और ऐसे हथियारों से जो सोलहवी शती के लोहारो के सामने खिलवाड़ के समान थे।

अठारहवी शती में, उसके बाद अथवा उसके पहले की लडाइयाँ क्यों कम भीषण थीं, उसका कारण यह था कि उन युद्धो मे धार्मिक उन्माद नही रह गया था और न राष्ट्रीय उन्माद की सफलता के वे साधन बने थे। इस बीच युद्ध 'राजाओ के मनोरजन' थे। नैतिक दृष्टि से इस प्रकार बे मतलब के युद्ध घृणास्पद हो सकते थे किन्तु उनसे भौतिक क्षति अधिक नहीं होती थी, इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। ऐसे युद्ध करने वाले राजा भलीभाँति समझते थे कि हमारी प्रजा कहाँ तक इस प्रकार के खिलवाड़ को सहन कर सकती है और अपने कार्यकलाप को वे इसी सीमा के अन्दर रखते थे। जबरदस्ती उनके सैनिक नही भर्ती किये जाते थे, धार्मिक युद्ध की सेनाओ की भाँति वे उन देशों के सहारे जीवन-यापन नही करते थे जिन्हें वे जीत लेते थे और न बीसवीं शती की सेना की भाँति उन वस्तुओ को नष्ट करते थे जिनका निर्माण शान्ति के समय होता है। युद्ध के नियमो का वे पालन करते थे, उनके ध्येय सन्तुलित होते थे और पराजित पक्ष के लिए वे कठोर शर्तें नहीं लगाते थे। जब कभी इन नियमों का उल्लंघन होता था जैसे उस समय जब चौदहवें लूई ने सन् १६७४ ई० और १६८९ ई० में पैलेटिनेट का ध्वंस किया तब पराजित पक्ष ने ही नही, तटस्थ जनमत ने भी ऐसे भीषण कार्यों की निन्दा की।

इसका क्लासिक उदाहरण एडवर्ड गिबन की लेखनी में मिलता है:

'युद्ध में यूरोपीय सेनाएँ संयत और अनिर्णीत युद्धों के अभ्यासी हैं। शक्ति-सन्तुलन में परिवर्तन होता रहता है और हमारे पड़ोसी राज्यों की समृद्धि बढ़ेगी, कभी घटेगी। किन्तु ये आकस्मिक घटनाएँ हमारे साधारण सुख-वैभव को नष्ट नहीं कर सकती, जो हमारे विधि-विधान, कला,

आचार-व्यवहार के कारण उत्पन्न हुए हैं और जिनके कारण यूरोपियन तथा औपनिवेशिक अन्य मानवों से भिन्न हैं ।"[1]

इस अतिशय आत्मतुष्टि का लेखक इतने दिनों तक जीवित रहा कि उसने ऐसे युद्धों को देखा कि उसका हृदय हिल गया और उसके ये विचार अति प्राचीन पड गये ।

जिस प्रकार उद्योगवाद के समय दासता की उग्रता के परिणामस्वरूप दासता के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हुआ उसी प्रकार लोकतन्त्र के परिणामस्वरूप और फिर उद्योगवाद संघात के कारण युद्ध-विरोधी आन्दोलन उत्पन्न हुआ । सन् १९१४–१८ ई० के महाभारत के परिणामस्वरूप लीग आव नेशन्स की स्थापना हुई किन्तु वह सन् १९२९–४५ ई० के युद्ध से संसार को न रोक सकी । इस विपत्ति के बाद युद्ध बन्द करने के लिए हम एक और नवीन तथा कठिन प्रयास, सहयोगी (कोआपरेटिव) विश्वशासन (वर्ल्ड गवर्नमेन्ट) की स्थापना करके, कर रहे है, बजाय इसके कि युद्ध का चक्र चले और अन्त मे कोई एक प्रबल शक्ति सबको हराकर एक विश्वराज्य स्थापित कर ले । हम लोग उस बात मे सफल होगे कि नही, जिये विश्व की कोई सभ्यता नही कर सकी, ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर भगवान् ही दे सकता है ।

लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद का सकुचित प्रभुसत्ता (पैरोकियल सावरेन्टी) पर सघात

क्या कारण है कि लोकतन्त्र ने, जिसे ईसाई धर्म का स्वाभाविक परिणाम लोग साधारणत बताते है, और दासता के प्रति उसका जो रुख था उससे यह धारणा अनुचित नही जान पडती थी, युद्ध की उग्रताओ मे वृद्धि की, जो वैसी ही बडी बुराई है जैसा युद्ध । इसका उत्तर यह है कि युद्ध की प्रथा से टक्कर लेने के पहले लोकतन्त्र को सकुचित (अथवा स्थानीय) प्रभु सत्ता से टक्कर लेनी पड़ी । और लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद की नयी सजीव शक्ति का सकुचित राज्य पर जो आघात हुआ उससे दो अभिशाप प्रकट हुए––राजनीतिक तथा आर्थिक राष्ट्रवाद । लोकतन्त्र विदेशी माध्यम के द्वारा इस रूप मे उत्पन्न हुआ कि उसकी पवित्र आत्मा युद्ध को समाप्त करने के बजाय उसे उत्तेजित करने लगी ।

इसमे भी हमारा पश्चिमी समाज अठारहवी शती के पूर्व-राष्ट्रीयतावाद के युग मे सुखी था । एक-दो विशिष्ट अपवादों को छोडकर, पश्चिमी जगत् के सकुचित राज्य, नागरिकों की साधारण इच्छा की बुनियाद पर नही बने थे, वे राजवशो की निजी सम्पदा थे । राजकीय युद्ध तथा राजकीय विवाह, दो प्रणालियाँ थी जिनके द्वारा ऐसे राज्य एक से दूसरे के हाथो मे जाते थे और इन दो प्रणालियो मे स्पष्टत विवाह को लोग अधिक पसन्द करते थे । इस कारण हैप्सबर्ग के घराने की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में प्रशसा की यह पक्ति कही जाती थी कि 'दूसरों को युद्ध करने दो, सुखमय आस्ट्रिया, तुम विवाह करो ।' अठारहवी शती के पहले पचीस सालो के तीन मुख्य युद्ध के नाम––स्पेनी, पोलिश और आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के युद्ध––यह बताते हैं कि युद्ध तभी हुआ जब वैवाहिक समस्याएँ नही सुलझ सकी ।

विवाह वाली राजनीति मे कुछ क्षुद्रता थी, इसमे सन्देह नही । आज के लोकतन्त्रात्मक

१. ई० गिबन : द हिस्ट्री आव द डिक्लाइन एण्ड फाल आव द रोमन एम्पायर, अध्याय २८ से अन्ततक ।

युग की भावना को यह बात घृणास्पद मालूम होती है कि राजवंशों के मेल-जोल से एक देश के निवासी एक स्वामी के अधिकार से दूसरे स्वामी के पास चले जायँ जैसे कोई गाँव अपने पशुधन के साथ एक स्वामी के पास से दूसरे के पास मोल लेने के बाद चला जाता है । किन्तु अठारहवी शती मे इसका कुछ प्रतिकार भी था । इससे देश-प्रेम की भावना कुछ कम अवश्य हो जाती थी, पर भावना के साथ ही तीव्रता भी कम हो जाती थी । स्टर्न के 'सेंटिमेंटल जर्नी' में विख्यात वर्णन है कि लेखक फ्रांस चला गया। उसे यह ध्यान नही रहा कि फ्रास और इग्लैड मे सप्तवर्षीय युद्ध हो रहा है । फ्रेंच पुलिस से कुछ झगड़े के बाद एक फासीसी रईस ने, जिससे उससे कभी का परिचय नही था, बिना किसी कठिनाई के, उसे यात्रा करने की सुविधा कर दी । चालीस साल के बाद अमीन्स की सन्धि जब टूट गयी, नैपोलियन ने यह आज्ञा दी कि उस समय फ्रांस मे जितने अग्रेज अठारह और साठ साल के बीच की अवस्था के थे, नजरबन्द कर लिये जायँ, तब यह कार्य नैपोलियन की पशुता का द्योतक समझा गया और जैसा बाद मे वेलिंग्टन ने कहा कि 'नैपोलियन भला आदमी नही है' उसका एक उदाहरण माना गया । नैपोलियन ने इस कार्य के लिए अनेक तर्क दिये । किन्तु यह वही कार्य था जिसे आज बहुत ही उदार तथा दयालु सरकार स्वाभाविक और साधारण समझ कर करती है । आजकल का युद्ध 'पूर्ण युद्ध' (टोटल वार) हो गया है । इसका कारण यह है कि सकुचित राज्य अब राष्ट्रीय लोकतन्त्र मे परिवर्तित हो गये है ।

पूर्ण युद्ध से यह अभिप्राय है कि लडने वाले केवल वे चुनी हुई गोटियाँ नही है जिन्हे हम सैनिक या नाविक कहते हैं बल्कि देश की सारी आबादी है । इस नयी दृष्टि का आरम्भ हमे कहाँ मिलता है ? सम्भवत. उस क्रान्तिकारी युद्ध के अन्त मे जो व्यवहार विजयी ब्रिटिश-अमरीकी उपनिवेशको ने उन अमरीकियो के साथ किया जिन्होने अपनी मातृभूमि (इग्लैंड) का पक्ष लिया था । ये इग्लैंड के भक्त–युद्ध के बाद पुरुष, स्त्री, बच्चे—बोरिया-बिस्तर के साथ अपने घरो से निकाल बाहर कर दिये गये । यह व्यवहार उससे कितना भिन्न था जो बीस साल पहले ग्रेटब्रिटेन ने पराजित कैनेडियनो के साथ किया । इतना नही कि वे अपने देश मे रहने दिये गये, इतना ही नही उनके विधान उनकी धार्मिक सस्थाएँ ज्यो की त्यो रहने दी गयी । 'एकदलवाद' (टोटालिटेरियनिज्म) का यह पहला उदाहरण महत्वपूर्ण है क्योंकि अमरीकी उपनिवेशक पश्चिमी समाज के पहले लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र है ।[१]

आर्थिक राष्ट्रीयतावाद भी उतनी ही बड़ी बुराई है जितना राजनीतिक राष्ट्रीयतावाद । और वह उद्योगवाद की विकृति से उत्पन्न हुआ है जो सकुचित राज की सकीर्ण सीमा मे पनपा है ।

पूर्व-औद्योगिक युग मे भी आर्थिक लिप्सा तथा प्रतिद्वन्द्विता थी । आर्थिक राष्ट्रीयतावाद का क्लासिक उदाहरण अठारहवी शती के 'वाणिज्यवाद' (मरकेंटिलिज्म) में व्यक्त होता है जिसका उदाहरण यूट्रेट की सन्धि की वह धारा है जिसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन को स्पेनी-अमरीकी

१. वास्तव में इसके पहले का एक उदाहरण है जब सप्तवर्षीय युद्ध के आरम्भ में ब्रिटिश अधिकारियों ने नोवास्कोशिया से फ्रेंच एकेडियनों को निकाल बाहर किया था। यद्यपि अठारहवीं शती की मान्यता से यह कार्य भीषण था, पर यह छोटी घटना थी और इसके लिए कुछ युद्धनीतिक कारण थे, या समझे गये थे ।

उपनिवेश में दास-व्यापार का एकाधिकार दिया गया था। परन्तु अठारहवीं शती के आर्थिक संघर्ष का प्रभाव थोड़े वर्गों और कम लोगों पर पड़ता था। उस युग में जब कृषि ही प्रधान उद्योग था, प्रत्येक देश ही नहीं, प्रत्येक गाँव जीवन की प्राय. सभी आवश्यकताओ को अपने में पूरी कर लेता था। उस समय अंग्रेजो का बाजारो का युद्ध 'व्यापारियों की क्रीडा' कही जा सकती है जिस प्रकार प्रदेशों के लिए यूरोप के युद्ध 'राजाओ की क्रीड़ा' कहे गये है।

आर्थिक सन्तुलन की साधारण परिस्थिति उद्योगवाद के कारण गड़बड़ा गयी, क्योंकि लोकतन्त्र के समाज उद्योगवाद के भी अपनी कार्यप्रणाली मे सर्वदेशीय (कास्मोपालिटन) है। यदि लोकतन्त्र का मूल तत्त्व भ्रातृ-भावना है, जैसा कि फ्रांस की क्रान्ति ने भ्रम में घोषणा की थी, उद्योगवाद की भी प्रमुख अपेक्षा विश्वव्यापक सहयोग है। उद्योगवाद की सामाजिक व्यवस्था को अठारहवी शती के इसके नेताओ ने अपनी नयी तकनीक के विख्यात सिद्धान्त को इन शब्दो मे उद्घोषित किया था 'निर्माण (मैनुफैक्चर) की स्वतन्त्रता, विनिमय की स्वतन्त्रा।' डेढ़ सौ साल हुए, जब विश्व छोटी-छोटी आर्थिक इकाइयों मे बँटा हुआ था, उद्योगवाद ने विश्व की आर्थिक सरचना (स्ट्रक्चर) को दो रूपो मे बदलना आरम्भ किया और दोनो विश्व की एकता लाने की ओर थे। इसका अभिप्राय था कि आर्थिक इकाइयाँ कम हो और बड़ी हो और इनके बीच की सीमाएँ भी कम हो जायँ।

इन प्रयत्नो के इतिहास पर यदि हम ध्यान दे तो हम देखेगे कि गत शती के साठवे और सत्तरवे दशक मे एक परावर्तन हुआ। उस समय तक लोकतन्त्र इस बात मे उद्योगवाद का सहायक था कि आर्थिक इकाइयाँ कम हों और उनके बीच की सीमाएँ घटें। इस समय के बाद लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद ने अपनी नीतियाँ उलट दी और विरोधी दिशाओ की ओर काम करने लगे।

यदि हम आर्थिक इकाइयो के आकार पर पहले विचार करें तो हमे ज्ञात होगा कि अठारहवी शती के अन्त मे पश्चिमी जगत् मे ग्रेट ब्रिटेन सबसे बड़ा मुक्त व्यापार (फ्री ट्रेड) क्षेत्र था। जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि क्यो ग्रेट ब्रिटेन मे ही औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हुई, और देशों मे नहीं। परन्तु सन् १७८८ ई० में ब्रिटेन के गत-उपनिवेश उत्तरी अमरीका ने फिलाडेलफ़िया वाला विधान स्वीकार किया और राज्यो के बीच की व्यापारिक सीमाएँ मिटा दी और स्वाभाविक विस्तार द्वारा सबसे बड़ा मुक्त व्यापार-क्षेत्र स्थापित किया। उसका सीधा परिणाम यह हुआ कि अमरीका इस समय ससार का सबसे शक्तिशाली औद्योगिक देश है। कुछ वर्षों के बाद फ्रास की क्रान्ति ने प्रान्तो के बीच की चुगी (टेरिफ) की वे सीमाएँ तोड़ दी जिनके कारण फ्रांस की आर्थिक एकता न बन पायी थी। उन्नीसवी शती के दूसरे चतुर्थांश मे जरमनी ने आर्थिक 'ज़ोल-वेराइन' की स्थापना की जो राजनीतिक ऐक्य का अग्रदूत था। तीसरे चतुर्थांश मे इटली में राजनीतिक एकता स्थापित होने के कारण साथ-ही-साथ आर्थिक एकता भी स्थापित हो गयी। यदि हम इस एकता के बचे-खुचे कार्यक्रम को देखे अर्थात् चुगी का कम करना, और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के निमित्त संकुचित स्थानीय सीमाओ को तोड़ना, तो हम देखेंगे कि पिट ने, जो अपने को आदम स्मिथ का शिष्य कहता था, मुक्त आयात का आन्दोलन आरम्भ किया और जिसे उन्नीसवी शती के अन्त में पील, काबडेन तथा ग्लेडस्टन ने पूरा किया। और संयुक्त राज्य (यूनाइटेड स्टेट्स) अधिक चगी लगाने का प्रयोग करने के पश्चात्, क्रमशः सन् १८३२ से १८६० ई० तक बराबर

मुक्त व्यापार की ओर चला । फ्रांस के लुई फिलिप तथा तीसरे नैपोलियन और बिसमार्क के पूर्व के जरमनी ने भी यही राह पकड़ी ।

फिर हवा का रुख बदला । लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रीयतावाद, जिसके फलस्वरूप जरमनी और इटली जिसने बहुत-से राज्यों का एकीकरण किया था वही अब अनेक-राष्ट्र (मल्टी-नेशनल) वाले राज्यों को हैप्सबुर्ग उसमानिया तथा रूसी साम्राज्य को बिलगाने का कार्य करने लगा । सन् १९१४–१८ ई० के महान् युद्ध के बाद डैन्यूबी राज्य मुक्त व्यापार की इकाई कई राज्यों मे विभाजित हो गयी और प्रत्येक अपनी आर्थिक स्वाधीनता के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करने लगा । कुछ और नये राज्य कटे-छटे जरमनी और कटे-छटे रूस के बीच बन गये जो नये आर्थिक कोष्ठ हो गये । इस बीच एक पीढ़ी पहले से एक के बाद दूसरे देशमुक्त व्यापार के विरुद्ध जाने लगे थे और अन्त मे धारा ऐसी पलटी कि सन् १९३१ ई० मे ग्रेट ब्रिटेन में ही 'वाणिज्यवाद' (मर कें टि लिज्म) लौट आया ।

मुक्त व्यापार के त्यागने के कारण आसानी से समझ मे आ जाते है । ग्रेट ब्रिटेन के लिए मुक्त व्यापार उस समय अनुकूल था जब वह 'विश्व का कारखाना' (वर्कशाप) था । यह प्रथा रुई के निर्यात करने वाले राज्यो के भी अनुकूल थी जो सयुक्त राज्य के शासन पर सन् १८३२–१८६० ई० तक नियन्त्रण रखते थे । अनेक कारणो से इसी काल मे यह फ्रास तथा जरमनी के अनुकूल भी था । किन्तु ज्यो-ज्यो एक के बाद दूसरे राष्ट्र का औद्योगीकरण हो गया, संकुचित हितो के कारण उन्होने अपने पड़ोसियो से प्राणघातक प्रतिद्वन्द्विता करनी आरम्भ की और संकुचित राज की प्रभुसत्ता को कौन मना कर सकता था ?

कावडेन तथा उसके साथियों ने गलत अनुमान किया था । उन्होंने ऐसी कल्पना की थी कि ससार के राज्य तथा राष्ट्र इस ससार भर के आर्थिक सम्बन्ध के इस नये घने बुने जाल मे आकर नयी सामाजिक एकता मे बँध जायँगे । यह जाल अन्धाधुन्ध उद्योगवादी नयी शक्तियाँ ब्रिटिश केन्द्र से बुन रही थी । यदि यह कहा जाय कि विक्टोरियन मुक्त व्यापार का आन्दोलन प्रबुद्ध स्वार्थ का श्रेष्ठ कृतित्व था तो कावडेनियों के प्रति अन्याय होगा । यह आन्दोलन सर्जनात्मक अन्तर्राष्ट्रीय नीति तथा नैतिक कल्पना की अभिव्यजना थी । उसके योग्यतम अभिव्यक्ति करने वालों का लक्ष्य इससे कुछ अधिक था कि ग्रेट ब्रिटेन संसार के बाजार का अधिपति बन जाय । उनका यह भी लक्ष्य था कि धीरे-धीरे एक ऐसी राजनीतिक विश्व-व्यवस्था का विकास हो जिसमें नये आर्थिक जगत् की व्यवस्था पनप सके । वे ऐसा राजनीतिक वातावरण उत्पन्न करना चाहते थे जिसमें वस्तुओ तथा सेवाओं का शान्ति और सुरक्षा के साथ विनिमय हो सके । और यह सुरक्षा बढ़ती चले और इसके साथ हर कदम पर विश्व भर के मानव के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाय ।

कावडेन का अनुमान इसलिए गलत निकला कि उसने यह भविष्य नही देखा कि संकुचित राज्यों की प्रतिद्वन्दिता पर लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद के संघात का क्या परिणाम होगा ? उसने मान लिया था कि ये महान् शक्तियाँ (लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद) उन्नीसवी शती मे भी वैसे ही सुषुप्त रहेंगी जैसे अठारहवीं मे थी । और सोचा था कि मनुष्यरूपी मकड़ियाँ जो विश्वव्यापी औद्योगिक जाल बुन रही है सारे संसार को अपनी बारीक तन्तु मे फँसा लेंगी । वह समझता था कि लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद में जो स्वाभाविक एकता लाने वाला तथा शान्तिदायक प्रभाव है उसकी अभिव्यक्ति अवश्य होगी और लोकतन्त्र से भ्रातृ-भावना फैलेगी और उद्योगवाद से सहयोग

का प्रसार होगा। उसने यह नही सोचा कि ये ही शक्तियाँ, संकुचित राज्य के पुराने इजनो मे अपने आप का ऐसा दबाव डालेगी जिससे विध्वस हो जायगा और अराजकता फैल जायगी। उसे यह नही स्मरण हुआ कि फ्रांस की क्रान्ति के नेताओ ने जो भ्रातृ-भावना की शिक्षा का प्रचार किया था उसका परिणाम इस युग का पहला राष्ट्रीयतावादी युद्ध था। उसने सोचा कि इससे प्रमाणित होगा कि अपने ढग का यह पहला ही नही अन्तिम युद्ध होगा। उसने यह नही सोचा कि अठारहवी शती के व्यापारिक अल्पतन्त्र (ओलिगारकी) जब अपेक्षाकृत महत्त्वहीन विलास की सामग्रियो के लिए युद्ध करते रहे, क्योकि उन दिनो इसी का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता रहा, तब प्रबल युक्ति द्वारा यह भी निश्चय था कि लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र आर्थिक कारणो से एक-दूसरे से अन्त तक लड़ेगे क्योकि औद्योगिक क्रान्ति ने विलासी सामग्री के स्थान पर आवश्यकता की सामग्री का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आरम्भ कर दिया था।

साराश यह है कि मैंचेस्टर वर्ग के अर्थ-शास्त्रियो ने मानवी प्रवृत्ति को नही समझा। उन्होने नही समझा कि विश्व की आर्थिक व्यवस्था भी केवल आर्थिक बुनियाद पर नही स्थापित की जा सकती। सच्चे आदर्शवादी होने पर भी उन्होने नही सोचा कि 'मनुष्य केवल रोटी पर नही जीवित रहेगा।' यह घातक भूल ग्रेगरी महान् तथा पश्चिमी ईसाई जगत् के अन्य प्रतिष्ठापको ने की जिनसे विक्टोरियाई इग्लैड ने आदर्श की प्रेरणा पायी थी। इन लोगो ने पारलौकिक विषयो के लिए अपने को समर्पित कर दिया किन्तु ससार की व्यवस्था की स्थापना के लिए चेष्टा नही की। ससार के लिए उनका सीधा-साधा ध्येय ध्वस्त समाज के बचे-खुचे लोगो को जीवित रखना ही था। ग्रेगरी ने जो बोझिल आर्थिक अट्टालिका उठायी वह आवश्यक तो थी किन्तु उसके लिए किसी ने साधुवाद तक नही किया और वह काम चलाऊ थी। किन्तु उसकी नीव उन्होने धार्मिक चट्टान पर रखी थी आर्थिक बालू पर नही। उनके परिश्रम का धन्यवाद करना चाहिए कि पश्चिमी समाज की नीव ठोस धार्मिक थी और चौदह शतियो से कम मे एक अज्ञात कोने मे आरम्भ होकर आज सर्वव्यापी महान् समाज बन गया। अगर ग्रेगरी के सीधे-सादे आर्थिक भवन के लिए धार्मिक नीव की आवश्यकता पड़ी, तो इसी तर्क से हम समझ सकते है कि आज के ससार की और अधिक विशाल इमारत, जिसे बनाना हमारा आज कर्त्तव्य है, आर्थिक हितो के मलबे पर नही बन सकती।

निजी सपत्ति पर उद्योगवाद का सघात

निजी सम्पत्ति वह सस्था है जो उन समाजो मे स्थापित है जहाँ आर्थिक कार्य-क्षेत्र की इकाई एक परिवार या घर साधारणत: होता है। और ऐसे समाज मे भौतिक सम्पत्ति के वितरण की यह बहुत सन्तोषप्रद प्रणाली है। किन्तु आज आर्थिक कार्य-कलाप की स्वाभाविक इकाई एक परिवार, एक गाँव या एक राष्ट्रीय राज्य नही है बल्कि मानव की सारी जीवित पीढ़ी है। हमारे आधुनिक पश्चिमी आर्थिक उद्योगवाद के कारण परिवार की इकाई वस्तुत: समाप्त हो गयी और परिणामस्वरूप परिवार की संस्था निजी सम्पत्ति भी समाप्त हो गयी। किन्तु व्यवहार मे पुरानी सस्था चल रही है, ऐसी परिस्थिति में उद्योगवाद ने निजी सम्पत्ति पर बलपूर्वक आक्रमण किया है। इसके कारण सम्पत्ति वाले व्यक्ति की सामाजिक शक्ति तो बढ गयी, किन्तु सामाजिक उत्तरदायित्व कम हो गया। परिणाम यह हुआ कि पूर्व-औद्योगिक काल में जो संस्था लाभकारी रही होगी उसमें बहुत-सी सामाजिक बुराइयाँ आ गयी है।

ऐसी परिस्थिति में आज हमारे समाज के सामने यह समस्या है कि निजी सम्पत्ति की पुरानी सस्था को उद्योगवाद की नयी शक्तियों से किस प्रकार सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जाय। यह शान्तिमय व्यवस्था इस प्रकार स्थापित की जाय कि उद्योगवाद के कारण निजी सम्पत्ति के विभाजन में जो अनिवार्य दोष आ गये हैं उन्हें दूर किया जाय और राज्य द्वारा निजी सम्पत्ति का समझ-बूझकर, बौद्धिक ढंग से और सुनीतिसंगत फिर से विभाजन किया जाय। मुख्य उद्योगों पर नियन्त्रण करके राज्य उस महान् शक्ति की रोक-थाम कर सकता है जो ऐसे उद्योगो के निजी स्वामित्व के कारण लोगों के जीवन को वश में किये हुए है और सम्पत्ति पर अधिक टैक्स लगा कर सामाजिक सेवाओं द्वारा निर्धनता जनित दोषों को दूर कर सकता है। इस प्रणाली से साथ-ही-साथ एक और सामाजिक लाभ होगा कि राज्य युद्ध-प्रेमी यन्त्र न रह जायगा, जो प्राचीन काल से उसका विशेष धर्म रहा है। वह सामाजिक कल्याण का साधन होगा।

यदि यह शान्तिमय नीति पर्याप्त न हुई तो निश्चय ही कोई-न-कोई क्रान्ति हो जायगी जिससे किसी-न-किसी ढंग का साम्यवाद उत्पन्न होगा और निजी सम्पत्ति प्रायः लोप हो जायगी। सामंजस्य के बदले यही व्यावहारिक विकल्प जान पड़ता है क्योंकि उद्योगवाद के संघात के कारण निजी सम्पत्ति के असमान वितरण की विभीषिका असह्य हो जायगी यदि सामाजिक सेवाओं द्वारा और अत्यधिक कर लगा कर इस कष्ट को कम न किया गया। परन्तु रूसी प्रयोग बताता है कि साम्यवादी क्रान्ति की औषधि रोग से कुछ ही कम घातक है। क्योंकि पूर्व-औद्योगिक काल से निजी सम्पत्ति की सस्था की ऐसी विरासत मिली है कि उसे नष्ट कर देने से हमारे पश्चिमी समाज की सामाजिक परम्परा पर भयावह प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

शिक्षा पर लोकतन्त्र का संघात

लोकतन्त्र के आगमन से बहुत बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि समाज मे शिक्षा का प्रसार बहुत हुआ। उन्नतिशील देशो मे सार्वभौम अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा के कारण शिक्षा प्रत्येक बालक का जन्मसिद्ध अधिकार हो गया है। इसके विपरीत लोकतन्त्र प्रणाली के पहले शिक्षा विशिष्ट अल्प-सख्यक लोगो का एकाधिकार थी। शिक्षा की यह नवीन व्यवस्था ही एक राज्य का जो विश्व के राष्ट्रो मे अपना स्थान चाहता है, प्रमुख आदर्श है।

जब सार्वभौम शिक्षा का पहले-पहल आविर्भाव हुआ उस युग के उदार विचारको ने उसका इसलिए स्वागत किया कि यह न्याय और प्रबुद्धता की विजय थी और आशा की गयी कि इसके द्वारा मानवता को सुख और कल्याण की प्राप्ति होगी। किन्तु आज यह देखा जाता है कि इन आशाओं ने उन रुकावटों का विचार नही किया जो इस सतयुग की राह मे मिले। और जैसा कि और बातों में देखा जाता है इसमें भी ऐसी अदृष्ट बातें आ गयी जो बहुत महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई।

एक अड़चन यह हुई कि जब शिक्षा 'जन-जन' के लिए हो गयी और अपनी परम्परागत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अलग हो गयी तब शिक्षा के परिणाम मे क्षीणता आ गयी, जो स्वाभाविक था। लोकतन्त्र की सदाशयता मे यह जादू नही है कि भोजन और भरण-पोषण की आवश्यकता पूरी करने का चमत्कार दिखला सके। जनगण द्वारा अर्जित बौद्धिक आहार में स्वाद और विटामिन नहीं होते। दूसरा रोड़ा यह था कि जब शिक्षा सबकी पहुँच तक हो जाती है तब शिक्षा के परिणाम

को उपयोगिता में परिवर्तित करने का प्रयत्न होता है। उस व्यवस्था मे जिसमें शिक्षा उन्ही लोगों तक सीमित रहती है जिन्हे उत्तराधिकार में सामाजिक सुविधा मिली होती है या जिन्हे परिश्रम और बुद्धि का विशेष वरदान मिला होता है या तो शिक्षा अनधिकारी के पास चली जाती है या शिक्षा ग्रहण करने वाले को अपना सब कुछ देकर प्राप्त करना होता है। दो मे से किसी परिस्थिति मे वह लक्ष्य का माध्यम रहती है; या तो सासारिक आकांक्षाओ के लिए साधन या ओछे मनोरंजन के लिए। शिक्षा को जनता के मनोरंजन के लिए प्रयोग करना और उन साहसी आदमियो का, जो ऐसे मनोरजन का प्रबन्ध करके लाभ उठाते हैं, आविर्भाव उसी समय से हुआ है जब से सार्वभौम प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ हुई। और इस नयी सम्भावना ने तीसरी रुकावट उत्पन्न कर दी है। सार्वभौम शिक्षा की रोटी ज्योही सबमें बाँटी जाती है इधर-उधर से बड़े-बड़े मगरमच्छ आ जाते हैं और बच्चो के लिए दिये गये भोजन को शिक्षको की आँखो के सामने ही साफ कर जाते है। इग्लैंड के शिक्षा के इतिहास की तारीखो से स्पष्ट हो जाता है। साधारण रूप से सन् १८७० ई० के फास्टर के अधिनियम के अनुसार सार्वभौम शिक्षा की व्यवस्था पूर्ण हुई। इसके बीस साल बाद उसी समय जब राष्ट्रीय स्कूलो से बच्चों की पहली पीढी ने कुछ क्रय-शक्ति प्राप्त कर ली, उत्तेजना फैलाने वाले पत्रों (येलो प्रेस) का जन्म अनुत्तरदायी प्रतिभा-शाली व्यक्तियो द्वारा हुआ जिन्होंने यह भाँप लिया था कि जिस उदारता और सामाजिक प्रेम के कारण यह प्रथा चली है उससे समाचार-पत्रों के श्रीपति अच्छा लाभ उठा सकते हैं।

आधुनिक भावी एकदलवादी राष्ट्रीय राज्यो का ध्यान शिक्षा पर लोकतन्त्र की इस अशान्त कर देने वाली प्रतिक्रिया पर गया है। यदि प्रेस के श्रीपति अर्ध शिक्षित लोगो को निठल्ला मनोरजन देकर करोडो रुपये पैदा कर सकते हैं तो गम्भीर राजनीतिक उसी साधन से धन नही तो शक्ति तो अर्जित कर ही सकते हैं। आधुनिक अधिनायको ने प्रेस के श्रीपतियो को हटा दिया है और निजी उद्यम के अपरिपक्व तथा भ्रष्ट मनोरजन के स्थान पर वैसे ही अपरिपक्व और भ्रष्ट प्रचार की स्थापना की है। ब्रिटिश और अमरीकी शासनो की जिस व्यापारी अबन्ध नीति ने निजी सम्पत्ति अर्जित करने के अभिप्राय से अर्ध शिक्षित जनता की मानसिक दासता के लिए विस्तृत और कुशल यन्त्र का आविष्कार किया था, उसे राज्य के शासको ने अपना लिया और सिनेमा और रेडियो की सहायता लेकर अपने कुटिल स्वार्थ के लिए इन मानसिक उपकरणो का प्रयोग कर रहे हैं। नार्थक्लिफ् के बाद हिटलर। यद्यपि हिटलर ही इस क्षेत्र मे पहला व्यक्ति नही था।

इस प्रकार उन देशो में जहाँ लोकतन्त्रात्मक शिक्षा का आरम्भ हुआ है, लोगो का दो बौद्धिक नृशसता के नीचे आ जाने का भय है या तो निजी शोषण के या सरकारी शासन के। यदि मानव की आत्मा की रक्षा करनी है तो एक ही ढग है। शिक्षा के मान-दण्ड को इस दर्जे तक उठाना चाहिए कि शिक्षार्थी शोषण तथा प्रचार के, कम-से-कम स्पष्ट रूपो से, अपने को सुरक्षित रख सकें। यह कहना अनुचित न होगा कि काम साधारण नही है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे पश्चिमी संसार में शिक्षण के ऐसे निःस्वार्थ तथा प्रभावकारी माध्यम हैं जो इस समस्या से जूझ रहे है, जैसे ब्रिटेन मे वर्कर्स एजुकेशनल असोसिएशन और ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन और अनेक देशों के विश्वविद्यालयो में विश्वविद्यालय की पढ़ाई के अतिरिक्त कार्य।

परा-आल्पाइन (ट्रांस-आल्पाइन) सरकारों पर इटालियाई दक्षता का संघात

हमने अब तक जितने उदाहरण दिये हैं वे पश्चिम के इतिहास के आधुनिकतम काल के हैं। हम पाठकों को केवल स्मरण कराना चाहते हैं कि इसी काल के इतिहास के एक पहले के अध्याय में एक पुरानी संस्था पर नयी शक्तियो के संघात से क्या समस्या उत्पन्न हुई। एक दूसरे सन्दर्भ में हमने इस पर विचार किया था। वह समस्या यह थी कि पुनर्जागरण काल में नगर-राज्यो की राजनीतिक दक्षता का संघात जब परा-आल्पाइन सामन्ती राजतन्त्र पर हुआ तब सामजस्यपूर्ण समझौता कैसे हो। सरल और निम्न कोटि के समझौते का ढग यह था कि राजतन्त्र नृशस शासक था निरकुश शासन मे बदल जाते जिस ढग पर इटली के अनेक राज्य पराभूत हो गये थे। कठिन और अच्छा ढग यह होता कि परा-आल्पाइन राज्यों के मध्ययुगीन विधान सभाओं। (असेम्बली) को प्रतिनिधिक शासन (रिप्रेजेटेटिव) मे परिवर्तित कर देते। ये उतने ही दक्ष होते जितने बाद का निरकुश शासन। और साथ-ही-साथ राष्ट्रीय पैमाने पर वैसे उदार ढग का स्वराज्य भी हो जाता जैसा कि इटालियाई नगर-राज्यो का अपने अच्छे दिनो मे था।

जैसा कि हमने पहले एक जगह बताया है इग्लैंड मे ऐसे सामंजस्यपूर्ण समझौते की उपलब्धि हुई। और इग्लैड पश्चिमी इतिहास के दूसरे अध्याय मे इस विषय का अग्रगामी हुआ जैसा कि इटली पहले अध्याय मे था। वह इस मौलिकता मे अल्पसख्यक था। राष्ट्रीय विचार के तथा चतुर ट्यूडरो के समय राज्यतन्त्र निरकुशता मे बदलने लगा किन्तु अभागे स्टुअर्टों के समय पार्लिमेट राजा की बराबरी करने लगी और अन्त मे उससे आगे बढ़ गयी। फिर भी दो क्रान्तियो के पहले सामजस्य नही स्थापित हो सका। किन्तु ये क्रान्तियाँ दूसरी क्रान्तियो की तुलना मे समय और मर्यादा के साथ हुई। फ्रांस मे निरकुशता अधिक दिनो तक और अधिक मात्रा में चली। उसका फल यह हुआ कि वहाँ क्रान्ति अधिक तीव्र हुई और उसका परिणाम था राजनीतिक अस्थिरता जिसका अन्त अभी नही दिखाई पड़ता। स्पेन और जरमनी मे निरकुशता हमारे सामने तक रही है। इसके विरोध मे लोकतन्त्रीय आन्दोलन बहुत दिनो तक रुके रहे। जिसके फलस्वरूप अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो गयो जिनका वर्णन इस अध्याय के पहले खण्ड में आ चुका है।

हेलेनी नगर-राज्यो पर सोलोनी (सोलोनियन) क्रान्ति का संघात

पश्चिमी इतिहास मे दूसरे से तीसरे अध्याय के सक्रमण मे इटालियाई राजनीतिक दक्षता का जो सघात पश्चिमी जगत् के परा-आल्पाइन देशों पर हुआ उसी प्रकार की घटना हेलेनी इतिहास मे हुई जब ईसा के पहले सातवी और छठी शती मे हेलेनी जगत् के कुछ राज्यो ने आर्थिक दक्षता प्राप्त की। यह उस समय, जब जनसख्या की समस्या उत्पन्न हुई। क्योकि यह आर्थिक दक्षता एथेन्स अथवा उन राज्यो तक ही नही रह गयी जिन्होने इसे आरम्भ किया था। आगे बढ़ती हुई सारे हेलेनी नगर-राज्यो के अन्तर्राष्ट्रीय तथा घरेलू राजनीति पर इसका संघात हुआ।

हम इस नयी आर्थिक नीति का वर्णन पहले कर चुके हैं और जिसे सोलोनी क्रान्ति कह सकते है। भोजन का अन्न उपजाने के बजाय नकदी फसल (कैश क्राप) उपजाने का यह आवश्यक परिवर्तन किया गया और इससे व्यापार तथा उद्योग का विकास हुआ। धरती पर आबादी के इस दबाव से जो आर्थिक समस्या उत्पन्न हुई इससे दो राजनीतिक समस्याएँ भी उपस्थित हुईं। एक ओर इस आर्थिक क्रान्ति से एक नया सामाजिक वर्ग उत्पन्न हो गया अर्थात् नागरिक व्यापारी

और औद्योगिक श्रमिक, कारीगर, नाविक जिनके लिए राजनीतिक ढाँचे में स्थान निकालना आवश्यक था । दूसरी ओर यह कि एक नगर-राज्य दूसरे से पहले से जो अलग थे, वे आर्थिक स्तर पर अन्योन्याश्रित हो गये । जब एक बार अनेक नगर-राज्य अन्योन्याश्रित हो गये तब यह असम्भव था कि राजनीतिक स्तर पर वे अपने प्राचीन ढग से बिना विपत्ति बुलाये अलग-अलग रहते । पहली समस्या इंगलैड के विक्टोरियाई काल के समान है जब पार्लिमेंट में अनेक सुधारक विधेयकों से सुलझाया गया और दूसरी समस्या को मुक्त व्यापार आन्दोलन द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया गया । इन समस्याओ पर अलग-अलग उसी क्रम से विचार किया जायगा जिस क्रम से पहले विचार किया गया था ।

हेलेनी नगर-राज्यो की निजी राजनीति में नये वर्गों के मताधिकार (एन फ्रेंचाइजमेंट) देने के लिए राजनीतिक सस्था की बुनियाद पर आमूल परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी । परम्परागत वंश आधार को छोड़कर नया मताधिकार सम्पत्ति के आधार पर दिया गया । एथेन्स से यह परिवर्तन सोलन के युग से पेरिक्लीज के युग के बीच अनेक वैधानिक विकासो द्वारा किया गया । यह परिवर्तन पूर्ण रूप से और सरलता से हुआ । इसका प्रमाण यही है कि एथेनी इतिहास मे निरकुशों का कार्यकलाप बहुत कम है । क्योकि नगर-राज्यो के राजनीतिक इतिहास में यह साधारण नियम रहा है कि जब कभी उन्नतिशील समुदायो के अनुकूल चलने की गति मे बाधा उपस्थित हुई, वर्गयुद्ध उपस्थित हो गया जिसकी समाप्ति तभी हुई जब कोई निरकुश शासक उत्पन्न हो गया, जिसे रोम से ली हुई भाषा मे हम 'अधिनायक' कहते है । दूसरी जगहो के समान एथेन्स मे भी सामजस्य स्थापित करने की क्रिया मे अधिनायकवाद आवश्यक मंजिल थी । किन्तु यहाँ पाइसिसट्राट्स और उसके लड़को की निरकुशता थोड़े काल के लिए थी अर्थात् सोलोनी और क्लाइस्थीनी सुधार के बीच का काल ।

दूसरे यूनानी नगर-राज्य इतनी सुगमता से समझौता नही कर पाये । कारिंथ मे बहुत दिनों तक अधिनायकवाद रहा और साइराक्यूज मे बार-बार अधिनायकवाद स्थापित हुआ। कोरसाइरा की निरंकुशता को थ्यूसिडाइड्स ने अपने वर्णन मे अमर कर दिया है ।

अन्त में हम रोम की स्थिति पर विचार करे । यह अ-यूनानी समुदाय था जो ई० पू० ७२५–५२५ के बीच हेलेनी सभ्यता की प्रसारवादी नीति के फलस्वरूप हेलेनी संसार मे सम्मिलित हुआ था । इस सांस्कृतिक परिवर्तन के बाद ही रोम मे वे आर्थिक तथा राजनीतिक विकास आरम्भ हुए जो हेलेनी और हेलेनीकृत नगर-राज्यो मे साधारणतः स्वाभाविक थे । परिणामस्वरूप रोम को, एथेन्स के इस विकास के बाद, उन सब अवस्थाओ का डेढ़ सौ वर्षों मे सामना करना पड़ा । समय मे इतना पिछड़ जाने के कारण रोम को कटु, कठोर क्रान्ति का दण्ड भोगना पड़ा जिसमे एक ओर तो जन्म के अधिकार से शक्ति पाये हुए अभिजात (पैट्रीशियन) एकाधिकारी (पोनोपोलिस्ट्स) थे और दूसरी ओर सामान्य वर्ग (प्लीबियन) जो संख्या और सम्पत्ति के बलपर अधिकार चाहते थे । यह रोमन क्रान्ति जो ईसा के पूर्व पाँचवी शती से तीसरी शती तक चलती रही, यहाँ तक पहुँची कि अनेक अवसरों पर सामान्य वर्ग आबादी की सीमा से बाहर चला गया जहाँ उसने सामान्य वर्ग का शासन राज्य के विरुद्ध स्थापित कर लिया । उसने राष्ट्र के अन्दर ही अपनी विधान सभा बनायी, अपने अफसर नियुक्त किये । बाहरी आक्रमण के कारण ही सन् २८७ ई० पू० में रोमन राजनीतिज्ञता सफल हो पायी जब राज्य तथा राज्य-विरोधी शासन का कार्य

संचालन के लिए राजनीतिक एकता स्थापित की गयी और इस वैधानिक भीषणता का सामना किया गया । डेढ़ सौ साल बाद जब साम्राज्य की विजय हुई सन् २८७ ई० पू० के काम चलाऊ स्थिति का पता चला । अभिजात वर्ग और सामान्य वर्ग को कच्चे ढंग से मिलाकर जो ढीला-ढाला विधान रोम ने स्वीकार किया था वह नये सामाजिक सामंजस्य की उपलब्धि के लिए राजनीतिक दृष्टि से अपर्याप्त था और ग्रेची के उग्र तथा विफल शासन से परिणामस्वरूप दूसरी क्रान्ति (१३१–३१ ई० पू०) हुई जो पहले से भी भीषण थी । इस बार एक शती तक अपने को क्षत-विक्षत करने के पश्चात् रोमन शासन में स्थायी अधिनायकत्व की स्थापना हुई । इस समय तक रोमन सेना ने हेलेनी संसार पर विजय प्राप्त कर ली थी और आगस्टस तथा उसके उत्तराधिकारी नृशंस शासकों के कारण हेलेनी समाज सार्वभौम राज्य बन गया ।

अपनी घरेलू समस्याओं का मूर्खता और अनाड़ीपन से बराबर सुलझाने का प्रयत्न उनकी उस योग्यता के विपरीत था जो उन्होंने अपने विदेशी पराजित अधिकृत देशों के संगठन, निर्माण और सुरक्षित रखने मे दिखायी । यह ध्यान मे रखने की बात है कि जिन अथेनियनो ने अपनी घरेलू राजनीति से सफलतापूर्वक क्रान्ति को समाप्त किया, वे ही पाँचवी शती ई० पू० मे अन्तर्राष्ट्रीय सुव्यवस्था को नहीं स्थापित कर सके जिसकी उस समय वहाँ बहुत आवश्यकता थी जिसे रोमनों ने चार सौ साल बाद उसी के अनुकरण में स्थापित करके सफलता प्राप्त की ।

जिस अन्तर्राष्ट्रीय कार्य मे एथेन्स असफल हुआ वह उन समझौतो की दो समस्याओ मे दूसरी थी जो सोलोनी क्रान्ति से उत्पन्न हुई थीं । जिस राजनीतिक सुरक्षा की आवश्यकता हेलेनी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए आवश्यक थी उसके लिए बाधा थी, पुराने नगर-राज्य की राजनीतिक प्रभुसत्ता । ईसा के पूर्व पाँचवी शती के आरम्भ से यूनान का सारा राजनीतिक इतिहास इसी संघर्ष में व्यक्त किया जा सकता है जो उसे नगर-राज्यों की प्रभुसत्ता को समाप्त करने और उस सत्ता को स्थिर रखने की चेष्टा मे चलता रहा । पाँचवी शती की समाप्ति के पहले ही इस सत्ता की समाप्ति के विरोध में जो प्रयत्न हुआ उससे हेलेनी सभ्यता नाश हो गयी और यद्यपि रोम ने एक ढंग से इस समस्या को सुलझाया, किन्तु वह ऐसे समय तक न हो पाया कि हेलेनी समाज को विनाश की राह से रोक सके । इस समस्या का आदर्श समाधान यह था कि नगर-राज्यों के बीच आपसी स्वीकृति से उनकी प्रभुसत्ता सीमित कर दी जाय । दुर्भाग्य से इस प्रकार की सबसे प्रसिद्ध चेष्टा डीलियन लीग थी जो फारस के विरुद्ध विजय के अवसर पर एथेन्स ने अपने एजियन मित्रो के साथ बनायी थी । यह प्रयत्न इस कारण विकृत हो गया कि हेलेनी प्रभुत्व (हेजिमनी) की पुरानी परम्परा उसमें प्रवेश कर गयी थी । यह प्रभुत्व ऐसा था कि उसके मुख्य सदस्य ने जबरदस्ती मित्रता की थी । डीलियन लीग एथेनी साम्राज्य हो गया और एथेनी साम्राज्य के कारण पेलोपोनेशियाई युद्ध हुआ । चार शती के बाद रोम सफल हुआ, जहाँ एथेन्स को विफलता हुई । जो दण्ड साधारण ढंग से अपनी छोटी दुनिया को एथेनी साम्राज्य ने दिया वह, उसकी तुलना में कुछ नहीं था, जो कठोर दण्ड रोमन साम्राज्य ने दो शतियों बाद हेलेनी तथा हेलेनी-कृत समाज को दिया । यह हेनीबली युद्ध के बाद और आगस्टनी शान्ति के पहले हुआ ।

पश्चिमी ईसाई समाज पर संकुचित नागरिक राजनीति का संघात

हेलेनी समाज का इसलिए विनाश हुआ कि समय से रहते हुए उसने अपनी परम्परागत राजनीति की संकीर्णता का परित्याग नहीं किया। हमारा पश्चिमी समाज इसलिए निष्फल हुआ कि

अपने सामाजिक संगठन की, जो उसकी मौलिक प्रतिभा की सबसे मूल्यवान् देन थी, रक्षा नही कर सका । हमारे पश्चिम के इतिहास में मध्यकाल और आधुनिक काल के संक्रमण के अध्याय मे सामाजिक परिवर्तन में सबसे महत्त्व की बात सकीर्ण राजनीतिक सगठन थी । अपनी पीढ़ी में इस परिवर्तन पर तटस्थ होकर विचार करना सरल नही है, क्योकि उसके कारण बडी बुराइयाँ हुई है । आज यह समय के विपरीत है और उसके कारण हमारी बहुत हानि हुई है, फिर भी हम देख सकते है कि पाँच सौ साल पुरानी (ईसाई जगत् की) मध्ययुगीन (ईसाई जगत् की) सार्वभौमिकता छोड देना अच्छा था । उसमे नैतिक महत्ता तो थी किन्तु वह प्राचीन काल का प्रेत था जो हेलेनी समाज से उत्तराधिकार मे मिला था । और इस सार्वभौमिकता के सैद्धान्तिक आधिपत्य और मध्ययुगीन व्यावहारिक वास्तविक अराजकता मे अशोभनीय अन्तर था । नयी सकीर्णता कम से कम इस बात में सफल हुई । छोटी आकाक्षाओ को वह सँभाल सकी । जो भी हो, नयी शक्ति की विजय हुई । राजनीति मे इसकी अभिव्यक्ति बहुत-से स्वतन्त्र राज्यो में हुई, साहित्य में अनेक जनपदीय भाषाओ (वर्नाक्युलर) मे हुई और धर्म मे माध्यमिक पश्चिमी-ईसाई धर्म से उसकी टक्कर हुई ।

यह अन्तिम सघर्ष इस कारण इतना प्रचण्ड था कि ईसाई धर्म पोप के धर्मतन्त्र (हायरोक्रेसी) के कारण सुसगठित था और वह मध्ययुगीन व्यवस्था का सबसे उच्च अधिकारी था । सम्भवत समस्या का सामजस्य उसी ढग पर हो सकता था जिसे पोपो ने, जब वे पूर्ण शक्तिशाली थे, खोजकर निकाला था । उदाहरण के लिए स्थानीय माँगों को पूरा करने के लिए सार्वजनिक पूजन विधि मे लैटिन के बजाय स्थानीय भाषाओ के प्रयोग की आज्ञा रोमन चर्च ने दे दी । क्रोटो को उनकी भाषा मे पूजन विधि के अनुवाद की आज्ञा इसलिए मिली क्योकि रोम जनपद की सीमा उसे परम्परावादी पूरबी प्रतिद्वद्वी का सामना करना पडा, जिसने अ-यूनानी लोगों को जो धर्म परिवर्तन करके आये थे यूनानी भाषा मे पूजा करने पर विवश नही किया किन्तु यह उदारता दिखायी कि पूजन विधि का अनेक भाषाओ मे अनुवाद हो गया । और भी । पोपगण, यद्यपि पवित्र रोमन सम्राटों से उनके सार्वभौम दावो का जी-तोड विरोध कर रहे थे, उन्होने आधुनिक प्रभुसत्ता वाली सरकारों के पूर्वजो से उनके सकुचित शासन के दावो के सम्बन्ध मे बहुत समझौते का व्यवहार किया । वे सरकारें इग्लैड, फ्रास और कास्टिल की थी । दूसरे स्थानीय राज्यों को भी यह आज्ञा दे दी गयी कि अपनी-अपनी सीमा मे धार्मिक संगठनों पर भी वे नियन्त्रण करें ।

ईसाई धर्ममण्डल (होली सी) उस समय तक, जिसको जितना मिलना चाहिए उसे उतना देने की बात समझ गया था, जब संकीर्ण नव-सीजरवाद (निओ-सीजरिज्म) पूर्ण रूप से अपने अधिकार को घोषित कर चुका था । और पोप तन्त्र अपने तथाकथित सुधार के एक सौ साल पहले लौकिक (सेकुलर) राजाओ से इस बात का समझौता करने मे बहुत लगा रहा कि रोम और संकीर्ण राजनीतिक शासको के बीच धार्मिक शासन पर किसका कितना नियन्त्रण रहे । यह समझौता उन विफल अखिल ईसाई धार्मिक सम्मेलनो का अनायोजित परिणाम था जो पन्द्रहवी शती के प्रथम पचास वर्षों में कान्स्टेन्स (१४१४–१८ ई०) तथा बेसेल में (१४३१–४९) मे हुए ।

सम्मेलन का यह आन्दोलन एक सर्जनात्मक चेष्टा थी कि सार्वभौम स्तर पर धार्मिक संसदीय प्रणाली स्थापित की जाय, और उन लोगों के अधिकारो को, प्रभावहीन कर दिया जाय जो

अनुत्तरदायी और कभी-कभी भद्दे ढंग से उनका दुरुपयोग करते थे और अपने को ईसा मसीह का प्रतिनिधि कहते थे। इस प्रकार की धार्मिक संसदीय प्रणाली सामन्ती युग मे मध्ययुगीन राजाओं के संकीर्ण शासन पर नियन्त्रण करने में सफल हुई थी। किन्तु इस सम्मेलन के आन्दोलन का जिन पोपो ने सामना किया उन्होंने अपना हृदय कठोर बना लिया और उनका दुराग्रह भयानक रूप से सफल हुआ। उसने सम्मेलन के आन्दोलन को विफल कर दिया और समझौते के इस अन्तिम अवसर को खो दिया। पश्चिमी ईसाई समाज इसके परिणामस्वरूप उस भीषण आन्तरिक फूट के कारण छिन्न-भिन्न हो गया जो प्राचीन सार्वभौम शासन की भावना और नये सकीर्ण शासन की ओर झुकाव के बीच उत्पन्न हो गयी।

इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक अशोभनीय क्रान्तियाँ और भीषणताएँ हुईं। पहले के सम्बन्ध में इतना बता देना पर्याप्त होगा कि धार्मिक संगठन (चर्च) टूट कर अनेक सगठनो मे परिवर्तित हो गया। प्रत्येक दूसरे पर यह दोषारोपण कर रहा था कि दूसरा ईसाई मत का नही है और अनेक युद्ध तथा एक दूसरे के प्रति अत्याचार करने लगे। दूसरे के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि लौकिक राजाओ ने 'दैवी अधिकार' (डिवाइन राइट) को अपना लिया जो पोपो का स्वत्व समझा जाता था जो पश्चिमी राज्यो में राष्ट्रीय राज्यो की प्रभुसत्ता के रूप मे आज भी पूजा जाता है। डाक्टर जानसन ने व्यग्यात्मक ढग से कहा था कि देश-भक्ति 'गडो की अन्तिम शरण' है और जिसे नर्स कैवेल ने अधिक विवेक से कहा, इतना ही पर्याप्त नही है। इस देशभक्ति ने पश्चिमी जगत् मे ईसाई धर्म का स्थान ले लिया है। जो भी हो, ईसाई धर्म की आवश्यक शिक्षा के विरुद्ध इससे अधिक क्या हो सकता था जैसा पश्चिमी ईसाई समाज पर इस सकीर्ण राजनीतिक भावना के संघात का पडा। दूसरे उच्च ऐतिहासिक धर्मों की भी यही भावना है जो ईसाई धर्म की सार्वभौमिकता की भावना रही है।

धर्म पर एकता की भावना का संघात

मानव के इतिहास के रगमंच पर 'ऊँचे धर्म' जिनका मिशन सारी मानवता के लिए है अपेक्षाकृत बाद मे आये हैं। आदिम समाजो को इसका ज्ञान नही था, ये भावनाएँ उन समाजो मे भी नही पायी जाती जो सभ्यता के विकास के पथ पर थे। ये उस समय के बाद आयी जब कितनी ही सभ्यताएँ नष्ट हो चुकी और कितनी विनाश के पथ पर आ गयी। जब कुछ सभ्यताएँ विघटित होने लगीं तब इस चुनौती का सामना करने के लिए इन ऊँचे धर्मों का जन्म हुआ। ऐसी सभ्यताओ में, जिनका उद्गम अनिश्चित है जैसे आदिम समाजों की सभ्यताएँ, ऐसी धार्मिक सथाएँ होती है जिनका सम्बन्ध उन समाजों की लौकिक संस्थाओं से ही होता है और उसके आगे उनकी दृष्टि नहीं जाती। ऊँची आध्यात्मिकता के अनुकूल ऐसे धर्म नही होते, किन्तु उनमे निषेधात्मक विशेषता होती है। वे विभिन्न धर्मों के बीच (जीओ और जीने दो) के भाव का पोषण करते है। ऐसी अवस्था में संसार में जब बहुत-से राज्य होते हैं, अनेक सभ्यताएँ होती हैं तब स्वाभाविक परिणाम होता है कि बहुत-से देवता हों और बहुत-से धर्म माने जाते हैं।

ऐसी सामाजिक परिस्थिति में आत्मा ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा सर्वशक्तिमत्ता का अनुभव नहीं कर सकती किन्तु उस पाप का लालच उन्हें नही होता कि उन धर्म वालो के प्रति वे अनुदार हों, जो ईश्वर को विभिन्न रूपों तथा नामों से पूजते हैं। मानवता के इतिहास की बहुत बड़ी विडम्बना है कि जिस प्रकाश ने यह भावना उत्पन्न की कि सब धर्मों का ईश्वर एक

है, और मनुष्य मात्र भाई है, उसने इसी के साथ अनुदारता और उत्पीड़न को भी जन्म दिया। इसका कारण यह है कि इस धार्मिक एकता की भावना के जो आध्यात्मिक नेता हैं वे इसे इतना उच्च समझते हैं कि वे चाहते कि ये विचार जितना जल्द हो सके वास्तविकता में परिणत हो जायें। जहाँ-जहाँ महान् धर्मों का प्रचार हुआ है अनुदारता तथा उत्पीड़न का भयानक रूप निश्चय दिखाई दिया है। यही धर्मान्धता ई० पू० चौदहवीं शती मे मिस्र में दिखाई दी जब सम्राट् इखनातोन ने अपने एकेश्वरवाद की कल्पना को सार्थक करने का असफल प्रयत्न किया। यहूदी धर्म के उदय और विकास में इसी धर्मान्धता का भयानक प्रकाश दिखाई पड़ा। यहूदी पैगम्बरों ने धर्म मे एकेश्वरवाद की जिस स्पष्ट और उदात्त आध्यात्मिक भावना की उपलब्धि की उसी के साथ उसका दूसरा रूप यह था कि अन्य सीरियाई समाज की पूजा की निन्दा की गयी। ईसाई धर्म के इतिहास में आन्तरिक मतभेद के साथ-साथ दूसरे धर्मों से भी बार-बार संघर्ष देखने में आता है।

इस प्रमाण से हम देखते है कि एकता की भावना का संघात जब धर्म पर होता है तब साथ-ही-साथ आध्यात्मिक भीषणता भी उत्पन्न होती है। इसका नैतिक सामंजस्य उदारता के आचार-व्यवहार से ही हो सकता है। उदारता के लिए उचित प्रेरणा यही है कि यह मान लिया जाय कि सभी धर्म एक आध्यात्मिक लक्ष्य की खोज मे जा रहे हैं। हो सकता है कि इसमे कोई आगे बढ गया हो और उचित राह पर हो, कोई ऐसा नही, किन्तु जो उचित राह पर हो वह अनुचित धर्म वाले को उत्पीड़ित करे, यह परस्पर विरोधी बातें हैं। 'उचित' धर्म वाला दूसरे को उत्पीड़ित करके अपने को अनुचित बना देता है और अपने ही गुणों पर आघात पहुँचाता है।

इस ऊँचे स्तर की उदारता कम-से-कम एक पैगम्बर ने अपने अनुयायियो के लिए निर्धारित की थी। मुहम्मद साहब ने आदेश दिया था कि उन यहूदियो तथा ईसाइयो के प्रति धार्मिक उदारता दिखायी जाय जिन्होंने ऐहलौकिक इस्लामी सत्ता के प्रति अपनी राजनीतिक अधीनता स्वीकार कर ली है। क्योंकि ये दो धार्मिक समाज मुसलमानो की ही भाँति 'कुरान-शरीफ' के लोग हैं। प्राचीन इस्लाम की उदार भावना की विशेषता है कि यद्यपि पैगम्बर ने कही इस बात का संकेत नही किया है, फिर भी जो पारसी धर्मावलम्बी मुसलमान शासन के अधीन आ गये उनके प्रति भी उदारता का व्यवहार उन्होंने किया।

सत्रहवीं शती की दूसरी अर्धाब्दी मे ईसाइयों ने जिस उदारता की भावना दिखायी उसका कारण नितान्त निन्दात्मक था। उसे 'धार्मिक उदारता' केवल इस अर्थ में कह सकते हैं कि धर्मों के प्रति उदारता थी। यदि हम उसके कारण की ओर देखे तो वह अधार्मिक उदारता थी। इस अर्ध शती में कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दलों ने एकाएक अपना संघर्ष समाप्त कर दिया इसलिए नहीं कि उनको विश्वास हो गया कि अनुदारता पाप है, बल्कि इसलिए कि दोनों समझ गये कि एक दूसरे को हम पराजित नही कर सकते। साथ-ही-साथ उन्हें इस बात का भी आभास हो गया कि हम जो बलिदान कर रहे हैं वह किसी धार्मिक सिद्धान्त के लिए नहीं। 'उत्साह' (एन्थूजियाज्म, व्युत्पत्ति से जिसका अर्थ होता है ईश्वरत्व से भरा हुआ) की परम्परागत भलाई को उन्होंने त्याग दिया था और अब उसे वह बुराई समझने लगे। इसी अर्थ में एक अठारहवी शती के विशप ने अठारहवी शती के एक अंग्रेज मिशनरी को 'दयनीय उत्साही' कहा था।

फिर भी चाहे जिस भावना से हो उदारता धर्मान्धता का उच्चतम प्रतिकार है। और जब एकता की भावना का सिद्धान्त धर्म पर होता है तब धर्मान्धता का जन्म हो ही जाता है। ऐसा नहीं होता तो उसके बदले में या तो अत्याचार की भीषणता हो अथवा धर्म की प्रतिक्रिया में क्रान्ति हो। ऐसी प्रतिक्रिया को ल्युक्रीशियस ने विख्यात पक्ति में कहा है—'धर्म की प्रतिक्रिया मे कैसी-कैसी भीषणता हुई है।' वाल्टेयर ने कहा है 'धर्म बुरी चीज है', ग्रेमबेरा ने कहा है 'धर्म सबका बैरी है।'

जाति पर धर्म का संघात

ल्युक्रीशियस तथा वाल्टेयर के इस कथन का कि धर्म स्वयं बुराई है—और सम्भवतः मानव जीवन की मूलभूत बुराई भारतीय तथा हिन्दू इतिहास से समर्थन किया जा सकता है। इन सभ्यताओं पर धर्म का जो विषाक्त प्रभाव पडा है उसका परिणाम जाति की संस्था है।

यह संस्था एक प्रकार का सामाजिक विलगाव है जहाँ भौगोलिक परिस्थितियोंवश दो अथवा दो से अधिक समुदायों मे एक समुदाय दूसरो पर अपना आधिपत्य जमा लेता है और पराजित समुदाय को न तो नष्ट कर पाता है, न अपने मे मिला पाता है। उदाहरण के लिए यूनाइटेड स्टेट्स में दो जातियाँ उत्पन्न हो गयी है। एक बहुसंख्यक गौर वर्ण की जाति और दूसरी अल्पसंख्यक श्याम वर्ण की जाति। इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका मे प्रभुता-सम्पन्न अल्पसख्यक गौर वर्ण समुदाय और बहुसख्यक नेग्रो समुदाय। उप-महाद्वीप भारत मे जान पड़ता है उस समय जातियों का निर्माण हुआ जब ईसा के दो हजार वर्ष पहले के लगभग तथा-कथित सिन्धु सभ्यता के क्षेत्र मे यूरेशियाई खानाबदोश आर्यों का अभियान आरम्भ हुआ।

इससे पता चलता है कि जाति की संस्था से धर्म का कोई सम्बन्ध नही है। संयुक्त राज्य और दक्षिण अफ्रीका मे जहाँ नेग्रो लोगो ने अपना प्राचीन धर्म छोड़ दिया है और शक्तिसम्पन्न यूरोपियनो का ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है। चर्चों का विभाजन जातियों की विभिन्नता के अनुसार नहीं हुआ, यद्यपि प्रत्येक धर्म के गोरे तथा काले सदस्य अपनी धार्मिक उपासना में एक दूसरे से अलग हैं, उसी प्रकार जैसे अपने और सामाजिक कृत्यों में। इसके विपरीत, भारतीय उदाहरण में, हम यह कल्पना कर सकते है कि पहले से ही विभिन्न जातियो के धार्मिक आचार-व्यवहार अलग-अलग थे। किन्तु यह स्पष्ट है कि यह धार्मिक भेद उस समय तीव्र हुआ होगा जब भारतीय सभ्यता की बहुत अधिक धार्मिक भावना बढ़ गयी और वही उसने अपने उत्तराधिकारियों को सौंपी। यह भी स्पष्ट है कि जाति पर धार्मिकता के संघात के कारण यह संस्था विनाश की गति को प्राप्त हुई है। जाति सामाजिक दोष है किन्तु जब धर्म द्वारा उसका समर्थन होने लगता है और उसकी व्याख्या धर्म द्वारा होने लगती है तब यह दोष बड़ा भीषण रूप धारण करने लगता है।

जाति पर धर्म का जो संघात भारत मे हुआ उसका ज्वलन्त प्रमाण अनुपम सामाजिक दोष 'अस्पृश्यता' है। और ब्राह्मणो ने, जो प्रत्येक धार्मिक कृत्यों में पुरोहित का कार्य करते हैं, कभी इसे मिटाने की चेष्टा नही की। यह दोष अभी तक वर्तमान है। हाँ, क्रान्ति द्वारा इस पर आक्रमण हुआ है।

जहाँ तक ज्ञात है, जाति पर पहला आक्रमण जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर ने तथा बुद्ध ने ईसा के जन्म से ५०० वर्ष पहले किया था। बौद्ध अथवा जैन धर्म ने यदि भारतीय जगत् पर अपना

प्रभाव जमा लिया होता तो सम्भवतः जाति की संस्था समाप्त हो गयी होती। किन्तु जैसी घटना घटी, भारतीय पतन तथा विनाश के अन्तिम अध्याय में सार्वभौम धर्म स्थापित करने का कार्य हिन्दू धर्म ने किया। यह हिन्दू धर्म नये तथा पुराने प्रयोगों का मिश्रित एक नया भव्य रूप था। इस हिन्दू धर्म में पुरानी जो बाते थी उनमें एक संस्था जाति की भी थी। इतना ही नहीं कि हिन्दू धर्म ने इस पुरानी सस्था को ग्रहण किया, उसने इसका विस्तार किया। और आरम्भ से ही हिन्दू सभ्यता इस बोझ को अपने ऊपर धारण किये हुए है और यह बोझ इतना भारी हो गया जितना इसके पूर्वजो पर कभी नही था।

हिन्दू सभ्यता के इतिहास में जाति के विरुद्ध समय-समय पर अनेक विद्रोह हुए और विद्रोही दूसरे धर्मों से आकृष्ट होकर हिन्दू धर्म से अलग हो गये। इस प्रकार का बिलगाव हिन्दू सुधारकों ने किया और उन्होंने नया संप्रदाय (चर्च) स्थापित किये जिसमे हिन्दू धर्म के दोषो को हटाया और विदेशी धर्मों की कुछ बातें ली। उदाहरण के लिए नानक, जिन्होने (१४६९–१५३८ ई०) सिख धर्म की स्थापना की, इस्लाम से कुछ बाते ली, और राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की जिसमे हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म की सम्मिलित बाते थी। इन दोनो धर्मों मे जाति नही मानी जाती। दूसरे विद्रोहियो ने हिन्दू धर्म को बिलकुल छोड दिया और या तो मुसलमान हो गये या ईसाई हो गये। ऐसा परिवर्तन उन्ही क्षेत्रो मे अधिक हुआ जहाँ नीच जातियो या अछूतो की सख्या अधिक थी।

'अस्पृश्यता' की भीषणता का यही क्रान्तिकारी उत्तर है जो जाति पर धर्म के आघात के कारण हुआ है। और ज्यो-ज्यो भारत की जनता पश्चिम के आर्थिक, बौद्धिक तथा नैतिक विक्षोभ से प्रभावित होती जाती है, अछूतो में परिवर्तन की जो क्षीण भावना है वह बढती जायगी जब तक, ब्राह्मणो के विरोध होने पर भी, हिन्दू समाज के कुछ ऐसे नेता धार्मिक तथा सामाजिक भावनाओ का सामंजस्य न स्थापित करे जो महात्मा गाधी की राजनीतिक तथा सामाजिक आदर्शों का समर्थन करते है।

श्रम-विभाजन पर सभ्यता का संघात

हमने पहले ही देख लिया है कि आदिम समाज श्रम-विभार्जन से अनभिज्ञ न था। उसके उदाहरण मे हमे धातु के काम करने वाले, चारण, पुरोहित, दवा देने वाले तथा इसी प्रकार के और वर्ग मिलते है। किन्तु सभ्यता का संघात श्रम-विभाजन पर ऐसा होता है कि साधारण विभाजन इतना अधिक होने लगता है कि क्रमागत सामाजिक ह्रास ही नही होने लगता, उसका कार्य असामाजिक होने लगता है। इसका प्रभाव सर्जनात्मक अल्पसंख्यको तथा असर्जनात्मक बहुसख्यको पर समान रूप से पड़ता है। सर्जनात्मक वर्ग रहस्यवादी होता जाता है और साधारण जनता का किसी एक ओर झुकाव (लापसाइडेडनेस) हो जाता है।

रहस्यवादिता उस असफलता का लक्षण है जो सर्जनात्मक व्यक्ति को अपने जीवन-कृत्यो में मिलती है। और उसे 'अलग हो जाने और लौटने' की लयमान आरम्भिक गति की तीव्रता कह सकते हैं, जो इस कार्य को पूरा करने में सफल न हो सकी। इस प्रकार जो लोग असफल हुए उन्हें यूनानी लोग 'इडियोट्स' कहते थे। पाँचवी शती में यूनानी भाषा में 'इडियोट्स' उस महान् व्यक्ति को कहते थे जो अपने को सबसे अलग तथा अपने में ही रहने का सामाजिक अपराध

करता था और अपने गुणों से सर्वसाधारण को लाभ नही पहुँचाता था। पेरिक्लीज के युग के एथेन्स में इस प्रकार का व्यवहार किस दृष्टि से देखा जाता था इसी से समझा जा सकता है कि आजकल की भाषा में इस शब्द से उत्पन्न शब्द 'इडियट' का अर्थ पागल होता है। किन्तु आधुनिक पश्चिमी समाज के 'इडियोटाइ' पागलखाने में नही मिलते। इनमें से एक वर्ग बुद्धिमान् मानवों का, पतित होकर अर्थलोलुप मानव हो गया जिसका व्यंग्य डिकेन्स ने 'ग्रेड ग्राइंड' तथा बौण्डरबी के रूप में किया है। दूसरा वर्ग दूसरे छोर पर है जो अपने को ज्ञान का ठेकेदार समझता है परन्तु वास्तव में वह तिरस्कार के योग्य है। ये बौद्धिक तथा कला-विशेषज्ञ दभी और घमण्डी व्यक्ति हैं जिनका विश्वास है कि कला कला के लिए है। जिसका व्यग्य गिलबर्ट ने बन्थार्न के रूप में किया है। डिकेन्स और गिलबर्ट के समय के अन्तर से यह प्रमाणित होता है कि ग्रैंड ग्राइंड और बौडरबी वर्ग के लोग पूर्व विक्टोरियाई इंग्लैण्ड में वर्तमान थे, बन्थार्न वर्ग उत्तर विक्टोरियाई काल मे। ये दोनो विरोधी सीमाओ पर है किन्तु हमारी धरती के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवो के सम्बन्ध मे बताया गया है कि दोनो सुदूर विपरीत दिशाओ मे है किन्तु दोनो के जलवायु की भीषणता समान है।

अब हमें उस पर विचार करना है जिसे हमने झुकाव कहा है। यह वह प्रभाव है जो श्रम-विभाजन पर सभ्यता के संघात के कारण असर्जनात्मक बहुसंख्यकों के जीवन पर पड़ता है।

जब सर्जनशील व्यक्ति अलग हो जाने के बाद फिर लौटता है और अपने साथियो से पुन सम्पर्क स्थापित करता है तब उसके सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि साधारण जन की आत्मा को उसी स्तर पर ऊँचा उठाये जिस स्तर पर उसकी आत्मा पहुँच चुकी है। और ज्यो ही इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा करता है, उसके सामने यह तथ्य उपस्थित होता है कि इच्छा, शक्ति, हृदय और उत्साह होते हुए साधारण जनता उस ऊँचे स्तर पर नही उठ सकती। ऐसी स्थिति में उसे कोई सरल उपाय ढूंढने का लालच हो सकता है। अर्थात् वह सारे व्यक्तित्व के विकास का प्रयत्न न करके मनुष्य के किसी एक गुण को ऊपर उठाने की चेष्टा करता है। इस कल्पना के अनुसार इसका अर्थ होता है कि मानव का विकास किसी एक झुकाव की ओर होता है। इस प्रकार का परिणाम यान्त्रिक तकनीक के धरातल पर हमें सरलता से मिलता है क्योकि किसी संस्कृति के सब तत्वो मे से उसकी यान्त्रिक रुझान को अलग करना तथा उससे सम्पर्क स्थापित करना सबसे सरल है। किसी ऐसे व्यक्ति को मिस्त्री बनाना सरल नही है जिसकी आत्मा और दिशाओं में बर्बर तथा आदिम हो। किन्तु और शक्तियो को इसी प्रकार विशेष बना सकते हैं और अतिविस्तृत कर सकते है। अपनी पुस्तक 'कलचर एण्ड अनार्की' (१८६९) में मैथ्यु आर्नल्ड ने, धर्मशील मध्यवर्गीय नान-कनफर्मिस्ट अंग्रेज फिलिस्तीनों की, जो हिब्रू काल के अवरुद्ध जाल मे रहते है, यह आलोचना की है कि इन लोगो ने ऐसे मिथ्या धार्मिक विचारो मे विशेषता अर्जित की है जिसे वे ईसाई धर्म समझते है। और दूसरे हेलेनी गुणों का तिरस्कार करते है जिनसे मनुष्य का सन्तुलित व्यक्तित्व निर्मित होता है।

इस प्रकार के झुकाव को हमने उस समय देख लिया था जब हमने इस पर विचार किया था कि अल्पसंख्यकों का जब दमन किया जाता है तब वे किस प्रकार इसका सामना करते है। हमने देखा कि जब नृशंसतावश इन अल्पसंख्यकों को पूरी नागरिकता के अधिकार नही दिये जाते तब जो कार्य उनके लिए बच रहते हैं उन्हीं में वे उन्नति करते हैं और विशिष्टता प्राप्त करते हैं।

और हमने उस असाधारण शक्ति को आश्चर्य से देखा और प्रशंसा की । इस शक्ति से जान पड़ता है कि अल्पसंख्यक मानव प्रकृति की अजेयता को प्रकट करते हैं । साथ ही साथ हम इसे भी नहीं भूल सकते कि इनमें से कुछ अल्पसंख्यक—लेवेनटीन, फैमेरियोट, आरमीनियन और यहूदी—और मनुष्यो से अच्छे नही है तो बुरे भी नही हैं । यहूदियो और अ-यहूदियों के बीच जो अशोभनीय सम्बन्ध रहा है वह महत्त्वपूर्ण उदाहरण है । अ-यहूदी अपने अ-सेमेटिक (एण्टी-सेमेटिक) साथी गोय्यिम् के व्यवहार पर जब लज्जित होता है और घृणा प्रकट करता है तब साथ ही यह स्वीकार करने पर उसे उलझन भी होती है कि उस व्यंग्य में भी कुछ तथ्य है जो यहूदी को बहकाने वाले ने अपने पशुत्व के सम्बन्ध में चित्रित किया है । दुख इस बात का है कि जो दमन की प्रतिक्रिया उत्पीडित अल्पसख्यको में दमन का सामना करने का साहस उत्पन्न करती है उसी दमन से उनकी मानव प्रकृति भी विकृत हो जाती है । जो बात उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में ठीक है वही उन बहुसंख्यको के सम्बन्ध में ठीक है जिन्होंने तकनीकी विशेषता प्राप्त की है । यह बात ध्यान में रखने की है क्योकि हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम में उदार (लिबरल) शिक्षा के स्थान पर, जो यद्यपि कुछ अव्यावहारिक थी, तकनीकी शिक्षा स्थान लेती चली जा रही है ।

पाँचवीं शती में यूनानी इस झुकाव के लिए एक शब्द 'बेवेन्डिया' का प्रयोग करते थे । 'बेवेन्डास' वह व्यक्ति था जिसने किसी विशेष तकनीक में विशेष योग्यता अर्जित की थी और सामाजिक प्राणी के लिए जो अन्य साधारण गुणो की आवश्यकता होती है उसे तिरस्कृत कर दिया था । इस तकनीक का जो लोगो के मन में तात्पर्य था वह यही कि यह कोई हस्त-कौशल अथवा यान्त्रिक व्यापार है जिसे निजी लाभ के लिए वह व्यक्ति प्रयोग कर रहा है । किन्तु हेलेनी लोगों को 'बेवेन्डिया' के प्रति जो घृणा थी वह इससे अधिक थी । और हेलेनियो के मन में सभी व्यवसायों (प्रोफेशन) के प्रति घृणा हो गयी थी । उदाहरण के लिए सैनिक तकनीक में स्पार्टनों ने जो विशेषता अर्जित की थी वह 'बेवेन्डिया' का साक्षात् स्वरूप था । बड़ा राजनीति-मर्मज्ञ अथवा देश का रक्षक भी इस आरोप से वचित नही हो सकता था यदि वह जीवन की कला तथा जीवन के और सर्वरूपी (आल राउण्ड) गुणो से वचित था ।

'परिष्कृत तथा सुसस्कृत समाज में उदार शिक्षा वाले थेमिस्टाक्लीज पर यह दोष लगाया जाता था (क्योकि उसमे सर्वरूपी योग्यताओं का अभाव था) कि वह किसी वाद्य यंत्र का भी प्रयोग नही जानता था किन्तु यदि उसके हाथो में कोई छोटा और अज्ञात देश दे दिया जाय तो वह उसे महान् और विख्यात देश बना देगा ।'[1] इसके विपरीत 'बेवेन्डिया' का हल्का उदाहरण दिया जा सकता है । कहा जाता है वियना में हेडन, मोजार्ट और बीथोवेन के स्वर्ण युग में, हैप्सबुर्ग का एक सम्राट् और उसके प्रधान मन्त्री अवकाश के समय उनके साथ संगीत में योगदान करते थे ।

'बेवेन्डिया' के भयावह परिणाम के प्रति हेलेनियों की इस असहिष्णुता और समाजों की सस्थाओ में भी पायी जाती है । उदाहरण के लिए यहूदियों का सबत और ईसाइयों का रविवार, सात दिनो में एक दिन इसलिए अलग कर दिया गया है कि छः दिनों तक वे अपने विशेष व्यवसाय में निरन्तर लगे रहते है तो एक दिन अपने कर्ता को स्मरण रखें और साधारण मानव का जीवन

१. प्लूटार्क : लाइफ आव थेमिस्टाक्लीज, अध्याय २ ।

बितायें। यह केवल संयोग की घटना नहीं है कि उद्योगवाद की प्रगति के साथ-साथ इंग्लैंड में आयोजित खेल-कूद और मनोरंजन की भी उन्नति हुई। इस प्रकार के मनोरंजन जान-बूझकर आत्महन्ता तकनीकी विशेषताओं के विरुद्ध सन्तुलित करने के लिए स्थापित किये गये हैं, जो उद्योगवाद के श्रम-विभाजन के कारण उत्पन्न हो गयी हैं।

दुर्भाग्यवश खेल-कूद द्वारा उद्योगवाद के जीवन को सन्तुलित करने की यह चेष्टा सफल न हो सकी क्योंकि खेल-कूद में भी उद्योगवाद की भावना प्रवेश कर गयी है। पश्चिमी संसार में आजकल व्यावसायिक खेलाड़ी (एथलीट) बन गये हैं जिन्होंने विशेषता प्राप्त की है और औद्योगिक विशेषज्ञों से अधिक कमा रहे हैं। 'बेवेन्डिया' के ये भीषण उदाहरण हैं। इस पुस्तक के लेखक ने संयुक्त राज्य के दो कालेजों के क्षेत्रों में दो फुटबाल के मैदानों को देखा। एक में विद्युत् के प्रकाशयन्त्र की व्यवस्था थी जिससे रात और दिन बारी-बारी से बराबर अभ्यास कराकर फुटबाल के खेलाड़ियों का निर्माण किया जाय (मैनुफैक्चर्ड)। दूसरे मैदान के ऊपर छत बनी हुई थी कि किसी भी ऋतु में खेल चलता रहे। कहा जाता है यह संसार की सबसे बड़ी छत है और इसके बनाने मे कल्पनातीत धन लगा है। मैदान के चारो ओर पलगों का प्रबन्ध किया गया है जिसमें थके अथवा घायल खेलाड़ी आराम कर सकें। इन दोनो क्षेत्रो मे मैने देखा कि इन खेलाड़ियो की सख्या सारे छात्रो की सख्या का अतिसूक्ष्म भाग था। मुझे यह भी बताया गया कि ये लड़के मैच खेलने की उसी आशका से प्रतीक्षा कर रहे हैं जिस भय से उनके बड़े भाई १९१८ के युद्ध में खाइयों में गये थे। सच पूछिए तो यह ऐंग्लो सैक्सन फुटबाल खेल-कूद में नहीं गिना जा सकता।

हेलेनी जगत् के इतिहास में भी इसी प्रकार के विकास का पता लगता है। जहाँ कुलीन शौकिया (अमेच्यूर) खेलाड़ियो के स्थान पर, जिनकी विजय की प्रशंसा पिंडार ने अपनी कविता में की है, व्यावसायिक खेलाड़ियो की टीम आ गयी। और सिकन्दर के पश्चात् युग में परशिया से स्पेन तक जो नाटक के खेल यूनाइटेड आरटिस्ट्स लिमिटेड द्वारा दिखाये जाते थे एथेन्स मे डायोनीसियस के अपने रगमच पर दिखाये जाने वाले नाटको से उतने ही भिन्न थे जितने आजकल के नवीन नाटक-गृहो के नाटक मध्ययुगीन रहस्य-नाटको (मिस्ट्री प्ले) से।

तब इसमे आश्चर्य नही है कि जब सामाजिक दोष इस निराशाजनक ढंग से सन्तुलन को असफल कर देते है तब दार्शनिक लोग ऐसी क्रान्तिकारी योजना की कल्पना करते है जिससे ये दोष लोप हो जायें। हेलेनी सभ्यता के पतन की पहली पीढ़ी के बाद, अफलातून ने 'बेवेन्डिया' को समाप्त करने के लिए यह योजना बनायी है कि अन्तर्देशीय यूटोपिया (एक आदर्श देश) का निर्माण किया जाय जहाँ सागर द्वारा दूसरे देशो से व्यापार न हो सकेगा और देश के अन्दर भी उतनी ही आर्थिक व्यवस्था रहेगी कि भोजन भर के लिए किसान धान्य उत्पन्न कर सके। अमरीकी आदर्शवाद के, जो दुख की बात है, अपनी राह से भटक गया है, मूल स्रोत टामस जेफरसन ने उन्नीसवीं शती के आरम्भ में ऐसा ही सपना देखा था। उसने लिखा है—'यदि मेरे सिद्धान्तों का प्रयोग हो तो मैं चाहूँगा कि लोग न तो व्यापार करें न समुद्र की यात्रा करें। बल्कि यूरोप से उनका सम्बन्ध वैसा ही होना चाहिए जैसा यूरोप से चीन का।'[१] (जिसके बन्दरगाह

१. डब्ल्यू० ई० उडवर्ड द्वारा उद्धरित : ए न्यू अमेरिकन हिस्ट्री, पृ० २६०।

१८४० तक यूरोपीय व्यापार के लिए बन्द थे) । उसी साल ब्रिटिश सेना ने बन्दरगाहों को खोलने के लिए विवश किया । इसी प्रकार सैमुअल बटलर ने कल्पना की है कि अरव्होनिया के रहने वाले (उसका काल्पनिक ससार) जान-बूझकर और योजनाबद्ध सारे यन्त्रो को नष्ट कर डाले जिससे वे उनके दास न बन जायँ ।

अनुकरण (माइमेसिस) पर सभ्यता का सघात

जब आदिम समाज सभ्यता की ओर विकसित होने लगता है तब अनुकरण की शक्ति प्राचीन लोगों से हटकर नये नेताओ की ओर उन्मुख होती है । इसका अभिप्राय यह होता है कि जो नया असर्जनात्मक समूह होता है उसे नये लोगो के स्तर पर ले जायँ । परन्तु अनुकरण की ओर जाने की यह प्रकृति वास्तविक बात की जगह काम चलाऊ 'सस्ती वस्तु' ही है । और लक्ष्य की प्राप्ति मृगतृष्णा ही है । जन-साधारण महात्माओ की पक्ति मे नही बैठ पाता । बहुधा आदिम मनुष्य 'राहचलतू' साधारण निकृष्ट प्राणी मे ही समान्तरित हो जाता है । अनुकरण पर सभ्यता के सघात के परिणामस्वरूप एक बनावटी, दिखौवा, कृत्रिम नागरिको का भीषण समूह बन जाता है जो अनेक गुणो मे अपने आदिम पूर्वजो से निम्न कोटि का होता है । ऐटिक रगशाला पर अरिस्टोफेनीज ने क्लिओन को व्यग्य बाणो से पछाडा किन्तु रगशाला के बाहर क्लिओन ही विजयी हुआ । क्लिओनी 'राहचलतू मानव' का पाँचवी शती ईसा के पूर्व हेलेनी इतिहास मे आना सामाजिक पतन का स्पष्ट लक्षण है । और इसने उस सस्कृति को पूर्ण रूप से तिरस्कृत करके अपनी आत्मा को विमुक्त किया जिस सस्कृति ने भूसे से उसका पेट भरा । विरोधी सर्वहारा का यह बालक था जिसकी आत्मा जाग्रत हुई और उसने एक ऊँचे धर्म का आविष्कार करके अपनी मुक्ति की राह बनायी ।

इन उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जायगा कि सभ्यताओ के पतन मे इन घटनाओ ने कहाँ तक योगदान किया जब नयी सामाजिक शक्तियो का पुरानी सस्थाओ से सम्पर्क हुआ । अथवा बाइबिल की भाषा मे नयी शराब रखने मे पुरानी बातलें असमर्थ रही ।

(३) सर्जन का प्रतिशोध : अस्थायी अपनत्व को आदर्श बनाना

भूमिका (रोल) का विपर्यय

हमने आत्मनिर्णय की असफलताओ के उन दो स्वरूपो के सम्बन्ध मे कुछ अध्ययन किया है जिनके कारण सभ्यताओ का विनाश होता है । हमने अनुकरण की, यात्रिकता (निर्जीवता) और सस्थाओ की असमर्थता पर विचार किया है । सर्जनात्मकता का जो बाहरी प्रतिशोध होता है उस पर विचार कर के यह अध्ययन हम समाप्त करेगे ।

ऐसा जान पडता है कि किसी अल्पसख्यक वर्ग को यदि सभ्यता के इतिहास मे लगातार दो या अधिक चुनौतियो का सामना करना पडा है तो उसी सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग को बराबर सफलता नही मिली है । इसके विपरीत यह देखा गया है कि जिस वर्ग को एक चुनौती का सामना करने मे सफलता मिली वही वर्ग दूसरी चुनौती का सामना करने में विफल रहा । यह विचलित करने वाली किन्तु देखने मे स्वाभाविक मानवी परिस्थिति एटिक (यूनानी) नाटकों का मुख्य अभिप्राय (मोटिफ) रहा है और अरस्तू ने इसे 'पोएटिक्स' में 'पैरिपैट्रीइया' के नाम से विवेचन किया है, जिसका अर्थ है भूमिका का विपर्यय ।

नये बाइबिल (टेस्टामेन्ट) की नाटकीय कथा में उसी ईसा को, जिसके सम्बन्ध मे यहूदियो को आशा थी कि पृथ्वी पर अवतरित होकर मसीहा होंगे, यहूदी धर्म के व्यासो (इस्क्राइब्स) और फ़रीसियो (फ़रीसीज़) ने तिरस्कृत कर दिया था उन्ही यहूदियों ने जिन्होने कुछ ही पीढ़ी पहले हेलेनीकरण की विजय के विरोध का नेतृत्व किया था। जिस सचाई और अन्तर्दृष्टि ने इन धर्म के व्यासों और फ़रीसियो को पहले के संकटकाल में नेता बना दिया था वह अब अधिक संकट के समय इन्हें छोड़ गये और यहूदी जिन्होने इसका सामना किया 'वे भटियारे और वेश्यावृत्ति वाले' समझे गये। मसीहा स्वय 'भटियारे और वेश्यावृत्ति वाले' वर्ग से आये थे और उनके बाद उनका सबसे बड़ा शिष्य टारसस का यहूदी था। टारसस बहुमूर्ति पूजक नगर था जिसका हेलेनी करण हो चुका था और वह परम्परागत स्वर्ग की कल्पना के बाहर था। यदि इस कथा को दूसरी दृष्टि से और विस्तृत मंच पर देखे, जैसा कि चौथे गोस्पेल मे लिखा है तो प्रायः सभी यहूदियो ने फरीसियों का कार्य किया और मूर्तिपूजको ने सन्त पाल की शिक्षा को, जिसे यहूदियों ने अमान्य कर दिया था, ग्रहण किया और इन्होंने 'भटियारे और वेश्यावृत्ति वालो' की भूमिका अदा की।

'भूमिका के विपर्यय' का यही विषय बाइबिल के अनेक दृष्टान्तो मे तथा घटनाओ मे अंकित है। डाइव्ज और लाजरस के, फ़रीसी और भटियारे के दृष्टान्तो मे यही बात दिखायी गयी है। यही बात भले समारिटन के दृष्टान्त मे पुरोहित और लेवाइट की कथा के विपरीत दिखायी गयी है, और यही बात अपव्ययी पुत्र और उसके विपरीत उसके सम्मानित भाई की कहानी मे है। यही विषय ईसा और रोमन-सेना नायक (सेन्चूरियन) और साइरोफोनेशियन स्त्री के सम्बन्ध मे है। यदि नये और पुराने बाइबिल को एक ही शृंखला मे देखे तो हम देखेगे कि पुरानी बाइबिल की कथा मे इसाऊ ने अपना जन्माधिकार याकूब (जेकब) को समर्पित कर दिया था और उसका उत्तर नयी बाइबिल में याकूब के उत्तराधिकारियो ने अपना उत्तराधिकार ईसा को तिरस्कृत करके छोड़ दिया और यह भूमिका का विपर्यय हुआ। यही अभिप्राय ईसा की उक्तियो मे बार-बार आता है। 'जो अपने को ऊँचा उठायेगा वह गिराया जायेगा', 'प्रथम अन्तिम होगा और अन्तिम प्रथम होगा', 'जब तक तुम छोटे बालक के समान अपने को न बना लो स्वर्ग के राज्य मे प्रवेश नही कर सकते।' और ईसा मसीह ने अपने मिशन का मूल तत्त्व गीत (साम) की ११८ वी रचना को उद्धृत करके स्पष्ट किया है—'जिस पत्थर को मकान बनाने वालों ने फेंक दिया वही कोने का शीर्ष बना।'

यही भाव सारे हेलेनी साहित्य की महान् रचनाओ मे मिलता है। और उनके इस सिद्धान्त मे निहित है 'घमंडी का सिर नीचा'। हेरोडोट्स यही शिक्षा जरक्सीज, क्रीसस और पोलिक्रिटीज की जीवनियों मे व्यक्त करता है। वास्तव मे उसके सारे इतिहास का विषय ही एकेमीनियाई साम्राज्य का गर्व और पतन है। एक पीढ़ी पीछे थुसिडाइडीज ने तटस्थ और 'वैज्ञानिक' भावना से लिखा है जो अधिक प्रभावकारी है क्योंकि 'इतिहास के पिता' ने एथेन्स के गर्व और पतन को उद्देश्य सहित लिखा था। यहाँ यूनानी (एटिक) ट्रेजेडी के विषयों को बताना अनावश्यक है जैसे एसकाइलस के अगामेम्नान मे, सोफोक्लीज़ के ओडिपस और एजेक्स में और युरिपिडीज के पैन्थ्यूज़ में। चीनी पतन और विनाश के एक कवि ने यही भाव व्यक्त किया है :—

'जो अँगूठे के बल पर खड़ा होता स्थिर नही खड़ा हो सकता,

जो लम्बे-लम्बे डग धरता है वह बहुत तेज नही चलता
जो घमंड करता है कि मैं यह कर डालूंगा, वह कुछ नही कर सकता
जिसे अपने कार्य का घमंड है वह कोई ऐसा कार्य नही कर सकता जो शाश्वत हो ।'[१]

सर्जनात्मकता का यह प्रतिशोध है । यदि इस ट्रेजेडी की इस प्रकार की कथा-वस्तु साधारणतः ऐसी होती है—यदि यह सत्य है कि एक अध्याय मे जो सर्जन कर्ता है उसकी वही सफलता दूसरे अध्याय में सर्जन के कार्य मे बाधक है, जो परिस्थिति विजयी घोड़े के पक्ष मे पहले थी, वही उसके विरोध मे होकर 'अस्पर्श घोड़े के पक्ष मे हो गयी—तब यह स्पष्ट है कि हमने सभ्यताओं के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण जान लिया है । हम देख सकते है कि यह प्रतिशोध दो ढंग से सामाजिक पतन लाता है । एक ओर तो इसके कारण उन लोगो की सख्या कम हो जाती है जो चुनौती का सामना करने के लिए सर्जनकर्ता की भूमिका अदा करने के लिए सम्मुख आते हैं, क्योंकि इनमें वे लोग नही रह जाते जो पहली चुनौती मे सफल हुए थे, दूसरी ओर ये ही सर्जनकर्ता जो पहली पीढ़ी मे सर्जनकर्ता की भूमिका अदा कर चुके थे अब नयी चुनौती का सामना करने वाले नेताओं के विरोधी हो जाते है । और ये भूतपूर्व सर्जनकर्ता अपने पहले सर्जन के महत्त्व के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेते है और उस समाज में प्रभावशाली हो जाते है जिसमें नये शक्तिशाली सर्जन-कर्ता उत्पन्न हो जाते हैं—इस परिस्थिति मे वे समाज की प्रगति में सहायक नही हो सकते । केवल दर्शक मात्र रह जाते है ।

इस प्रकार ये 'दर्शक' मात्र, सर्जनात्मकता के प्रतिशोध के कारण अकर्मण्य रहते हैं । यह मानसिक अकर्मण्यता उन्हे नैतिक अपराध से विमुक्त नही कर सकती । वर्तमान के प्रति इस प्रकार की बुद्धिहीन अकर्मण्यता का कारण होता है, प्राचीन के प्रति प्रेमान्धता और यही प्रेमान्धता मूर्तिपूजा का पाप है । मूर्तिपूजा की परिभाषा यह हो सकती है कि वह एक प्रकार का बौद्धिक और नैतिक अन्धापन है जिसमें स्रष्टा के स्थान पर सृष्ट वस्तु की पूजा की जाती है । इसका स्वरूप यह हो सकता है कि मूर्तिपूजक अपने व्यक्तित्व की पूजा करने लगे या समाज के किसी अस्थायी स्वरूप की, जो चुनौती और सामना और फिर चुनौती और सामना की शाश्वत गति से उत्पन्न हो जाती है, जो जीवन का चिह्न है । इसका दूसरा रूप यह हो सकता है कि सीमित रूप से वह किसी ऐसी सस्था अथवा तकनीक की पूजा करने लगे जिससे पहले कभी उसको लाभ हुआ हो । इन विभिन्न प्रकारो की पूजा की अलग-अलग परीक्षा करना सुविधाजनक होगा । पहले हम स्वय की पूजा की परीक्षा करेंगे क्योकि जिस पाप का अध्ययन करने हम जा रहे है उसका सबसे स्पष्ट उदाहरण यह होगा । यदि यह सत्य है कि—

'मानव अपनी मृत आत्मा
की सीढ़ी बनाकर उस पर चढ़ कर ऊपर उठता है ।'[२]

तो वह मूर्तिपूजक जो यह भूल करता है कि अपनी मृत आत्मा को सीढ़ी न बनाकर सिंहासन बनाता है वह अपने को जीवन से उसी प्रकार अलग कर देता है जैसे वह उपासक जो खंभे के ऊपर बैठकर उपासना करता है, जो अपने को अपने साथियो से अलग कर देता है ।

१. द टाओ-टे किंग, अध्याय २४ (द वे एण्ड इट्स पावर का ए० वेले द्वारा अनुवाद) ।
२. टेनिसन : इन मेमोरियम ।

अब हमने वर्तमान विषय के अध्ययन करने के लिए पूरी तैयारी कर ली है और कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करेंगे।

यहूदी

इस प्रकार की अस्थायी आत्मा की मूर्तिपूजा का सबसे कुख्यात ऐतिहासिक उदाहरण यहूदियों की वह भूल है जो नयी बाइबिल में है। उनके इतिहास के उस युग में जो सीरियाई सभ्यता के शैशव में आरम्भ हुआ और जो पैगम्बरो के युग में समाप्त हुआ, इसरायल और जूदा के लोगों ने धर्म की एकेश्वरवादी विचारधारा को स्थापित कर अपने को सीरियाई लोगों के बहुत ऊपर उठा दिया। अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति के ज्ञान और उचित ही गर्व के कारण उन्होंने अपने आध्यात्मिक विकास के इस अस्थायी परिस्थिति की पूजा आरम्भ करने की भूल की। वास्तव में उनकी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अद्वितीय थी। किन्तु इस शाश्वत और निरपेक्ष वास्तविकता की उपलब्धि के पश्चात् एक सापेक्ष तथा अस्थायी अर्द्धसत्य के मोह में वे फँस गये। उन्होने यह विश्वास कर लिया कि इसरायल के लोगो ने एक ईश्वर की खोज की है इसलिए इस खोज द्वारा ईश्वर ने अभिव्यक्त किया है कि इसरायल के लोग ईश्वर के विशिष्ट मनोनीत लोग हैं। इस अर्द्ध सत्य से वे इतने मुग्ध हुए कि ऐसी घातक भूल की कि कुछ काल तक अपने को आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत महान् समझने लगे। यह महत्ता उन्होंने परिश्रम और कष्ट से प्राप्त की थी, किन्तु उन्होंने समझा कि ईश्वर ने विशेषत. उन्हें यह अधिकार दिया है। उस प्रतिभा को उन्होने धरती में छिपाकर निर्जीव कर दिया और जो सम्पत्ति ईश्वर ने नजारथ के ईसा को भेजकर उन्हे दिया उसका उन्होंने तिरस्कार कर दिया।

एथेन्स

यदि इसरायल सर्जनात्मकता के प्रतिशोध का शिकार इसलिए हुआ कि उसने अपने को 'विशिष्ट जाति' समझा तो एथेन्स इसी प्रकार के प्रतिशोध का शिकार इसलिए हुआ कि उसने अपने को 'यूनान का शिक्षक' समझा। हम यह देख चुके है कि यह अस्थायी गौरव एथेन्स ने अपनी उपलब्धि के कारण सोलन के युग और पेरिक्लीज के युग के बीच प्राप्त कर लिया था। परन्तु एथेन्स की अपूर्णता यह थी, या होनी चाहिए थी, कि यह गौरव उसके अपने ही पुत्र ने प्रदान की थी। पेरिक्लीज ने इस वाक्य को अन्त्येष्टि भाषण में गढ़ा था। थ्यूसिडाइडीज के अनुसार यह उन एथेनी सिपाहियो की प्रशंसा में कहा गया था जो उस युद्ध के पहले वर्ष में मरे थे, जो हेलेनी समाज के साधारणतः और एथेन्स के विशेष, आध्यात्मिक जीवन के विनाश का बाहरी और प्रत्यक्ष चिह्न था। यह घातक युद्ध इसलिए हुआ कि सोलोनी आर्थिक क्रान्ति ने एक समस्या उपस्थित कर दी थी। समस्या यह थी कि ससार में हेलेनी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जाय। किन्तु यह समस्या पाँचवीं शती के एथेन्स की नैतिक सीमा के लिए असम्भव थी। ४०४ ई० पू० में एथेन्स की सैनिक पराजय हुई और उससे भी बड़ी नैतिक पराजय पुनः स्थापित ऐथेनी लोकतन्त्र ने स्वयं की जब पाँच साल बाद उसके सुकरात की वैधानिक हत्या की (जुडिशियल मर्डर)। इसके परिणामस्वरूप दूसरी पीढ़ी में अफलातून ने पेरिक्लीज के युग के एथेन्स तथा उसके सारे साहित्य का खण्डन कर दिया। किन्तु अफलातून के किंचित् दुर्विनीत और कुछ-कुछ कृत्रिम संकेत का प्रभाव नागरिकों पर नही पड़ा। एथेनी नेताओं के अनुगामियों ने,

जिन्होंने अपने नगर को 'यूनान का शिक्षक' बना लिया था, अपनी इस अपहृत उपाधि को उलटे ढंग से पुनः स्थापित करने की चेष्टा की । वह ढग यह था कि उन्होंने ऐसा रूप धारण किया कि उनकी शिक्षा ऐसी दुरूह हो गयी कि कोई ग्रहण न कर पाये । और वे अपनी असंगत और प्रभावहीन नीतियो को इसी रूप मे मेसेडोनियाई उत्कर्ष से लेकर एथेन्स के इतिहास के उस कटु युग तक व्यवहार करते रहे जब वह रोमन साम्राज्य का गतिहीन और निष्प्रभ केवल प्रादेशिक नगर रह गया ।

उसके पश्चात् जब एक नयी सस्कृति का उदय उन स्थानो में हुआ जो किसी काल में हेलेनी जगत् के स्वतन्त्र नगर थे, तब एथेन्स मे इसका बीजारोपण नही हुआ । अथीनियनों तथा सन्त-पाल के बीच जिस सघर्ष का वर्णन 'अपासल्स के एक्टो, (एक्ट्स आव अपासल्स) में किया गया है, उससे पता चलता है कि सन्त पाल गैर ईसाइयो से जब कुछ कहता था तो उस नगर के शैक्षणिक वातावरण के प्रति वह असवेदनशील नही था । क्योंकि वह नगर हेलेनी आक्सफोर्ड हो चुका था और जब उसने मार्स हिल पर 'शिक्षकों' (डोन) के सम्मुख भाषण किया तब अपने श्रोताओं के मनोनुकूल बोलने की भरपूर चेष्टा की । किन्तु वर्णन से स्पष्ट है कि उसका प्रचार एथेन्स मे असफल रहा और यद्यपि अन्त मे उसने जो चर्च यूनानी नगरो मे स्थापित किये थे उन्हें पत्र लिखने का अवसर निकाला तथापि हम जानते है कि वह अपनी लेखनी से भी उन अथेनियनो का धर्म-परिवर्तित न कर सका जिसे अपनी वाणी से बदलने मे असफल रहा ।

इटली

यदि पाँचवी शती ई० पू० का एथेन्स 'यूनान का शिक्षक' बनने का कुछ-न-कुछ समुचित दावा कर सकता था तो न्यायत वही उपाधि आधुनिक पश्चिमी जगत् के उत्तरी इटली के नगर-राज्यो को मिल सकती है, क्योकि पुनर्जागरण युग (रेनेसा) की यही उपलब्धि थी । यदि हम पन्द्रहवी शती के अन्तिम भाग से उन्नीसवी शती के अन्तिम भाग के चार सौ वर्षों के इतिहास का परीक्षण करे, तो हम देखेंगे कि उसकी वर्तमान आर्थिक तथा राजनीति दक्षता और उसकी आधुनिक कलात्मकता तथा बौद्धिक सस्कृति की उत्पत्ति स्पष्टतः इटालियाई है । पश्चिमी इतिहास के आधुनिक आन्दोलन में यह रचना इटालियाई सवेग का परिणाम थी और यह सवेग इसके पहले के युग की इटालियाई सस्कृति के प्रकाश का विकिरण था । वास्तव मे पश्चिमी इतिहास का यह अध्याय उसी प्रकार इटालियाई कहा जा सकता है जिस प्रकार हेलेनी इतिहास का तथाकथित हेलेनी युग का वह काल, जिसमे पाँचवी शती के एथेन्स की संस्कृति का प्रसार सिकन्दर की सेना के साथ-साथ भूमध्य सागर के तट से जलमग्न सुदूर आकेमीनियाई साम्राज्य की सीमान्त तक किया गया था ।[1]

१. जब सिकन्दर ने आकेमीनियाई साम्राज्य को पराजित किया और आगस्टस ने शान्तिमय रोमन साम्राज्य की स्थापना की इन तीन शतियों के युग को 'हेलेनी' के स्थान पर 'अटिसिस्टिक' कहना अधिक उपयुक्त होगा । एडविन बेवन के अनुसार 'हेलेनी' शब्द हेलेनी सभ्यता के इतिहास के किसी विशेष अध्याय के लिए प्रयोग करना उपयुक्त न होगा । बल्कि उन दोनों सभ्यताओं की सारी विशेषताओं के लिए ठीक होगा जिसे इस अध्ययन में पश्चिमी तथा परम्परावादी ईसाई सभ्यता कहा गया है ।

किन्तु हमें फिर उसी विरोधाभास का सामना करना पड़ता है, क्योंकि जिस प्रकार हेलेनी युग में एथेन्स का योगदान निरन्तर अलाभकारी होता रहा उसी प्रकार आधुनिक युग में पश्चिमी समाज के जीवन में इटली का योगदान उसके आल्पस पार के शिष्यों की अपेक्षा निम्नकोटि का था।

आधुनिक युग में इटली की अपेक्षाकृत निर्जीवता मध्ययुगीन इटली की संस्कृति में घर-घर दिखाई पड़ती है—फ्लारेन्स में, वेनिस में, मिलन में, साएना में, बोलोना में और पाडुआ में। और आधुनिक युग के अन्त में परिणाम और भी उल्लेखनीय है। इतिहास के इस अध्याय के अन्त में आल्पस-पार की जातियाँ इस योग्य हो गयी थी कि मध्ययुगीन इटली का जो ऋण उनके ऊपर था, उसे वे चुका दें। अठारहवी तथा उन्नीसवी शती में आल्पस के पार से एक नया सांस्कृतिक प्रकाश फैला। इस बार उल्टी दिशा में। इटली में आल्पस पार का यह प्रभाव इटली के पुनरु-त्थान का पहला कारण था।

आल्पस के उस पार से पहली राजनीतिक शक्ति जो प्राप्त हुई उसका नेपोलियन के साम्राज्य में अस्थायी समावेश था। पहली आर्थिक शक्ति उस समय मिली जब भूमध्य सागर से भारत को व्यापारिक रास्ता बना, जो स्वेज नहर के निर्माण के पहले की बात है और अप्रत्यक्ष रूप से मिस्र पर नैपोलियन के आक्रमण का परिणाम था। आल्पस पार की इन शक्तियों का पूरा प्रभाव तब तक नहीं फलीभूत हुआ जब तक कि वे इटालियाई कार्यकर्ताओ के हाथो में नही आयी। किन्तु जिन इटालियाई सर्जनात्मक शक्तियो से पुनरुत्थान का जन्म हुआ वह उस इटालियाई धरती पर नही हुआ जहाँ मध्ययुगीन इटालियाई सस्कृति पनपी थी।

उदाहरण के लिए आर्थिक क्षेत्र मे आधुनिक सामुद्रिक व्यापार मे पहला इटालियाई बन्दरगाह सफल होने वाला वेनिस, या जेनोआ या पीसा नही था, किन्तु लेगहार्न था। और लेगहार्न का निर्माण पुनर्जागरण के पश्चात् टसकनी के एक ग्रेंड ड्यूक ने किया था। उसने स्पेन और पुर्तगाल से प्रच्छन्न यहूदियो को लाकर बसाया था। यद्यपि लेगहार्न पीसा से कुछ ही मील दूर बसा था, उसकी समृद्धि इन परिश्रमी शरणार्थियों के कारण हुई थी जो पश्चिमी भूमध्य सागर के दूसरे तट से आये थे। उनके लिए नही जो मध्ययुगीन पीसा के नाविको के दुर्बल वंशज थे।

राजनीतिक क्षेत्र में इटली का एकीकरण मूलतः आल्पस पार एक छोटे राज्य द्वारा हुआ था जिसका अस्तित्व इटली की ओर के आल्पस क्षेत्र में नगण्य था सिवाय फ्रेंच बोलने वाले वाल ड आयोस्टा प्रदेश के। सेवाय के घराने की शक्ति इटली की और आल्प्स क्षेत्र मे तब तक शान्त नहीं हुई जब तक कि इटालियाई नगर-राज्यों की स्वाधीनता और इटालियाई पुनर्जागरण की प्रतिभा क्रमशः समाप्त नहीं हो गयी। और जब तक सारे प्रथम श्रेणी के नगर सारडिनिया के राजा के, जो अब सेवाय के घराने के शासक का नाम हो गया था, शासन में नही आ गये थे और जब तक नेपोलियनियाई युद्ध के पश्चात् जेनोआ भी नहीं ले लिया गया। सेवाय के घराने की विशिष्टता अब भी नगर-राज्य परम्परा से इतनी भिन्न थी कि सारडिनियाँ के राजा के शासन मे जेनोआ वाले बहुत क्षुब्ध थे। यह क्षोभ उस समय सन् १८४८ मे शान्त हुआ जब इस घराने ने इटालियाई राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया।

सन् १८४८ में लोम्बार्डी और वेनिशिया मे आस्ट्रियाई शासन को पीडमांट के आक्रमण की आशंका हुई और साथ ही आस्ट्रियाई राज्य के वेनिस, मिलन तथा इटली के और नगरो में विप्लव हुआ। इन दोनों आस्ट्रिया-विरोधी आन्दोलनों की भिन्नता के ऐतिहासिक महत्त्व पर

विचार करना मनोरंजक होगा । ये दोनो आन्दोलन एक साथ हुए और सरकारी रूप से दोनों ने इटालियाई स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समर्थन मे प्रहार किया । वेनिस और मिलन के विप्लव स्वतन्त्रता के पक्ष में अवश्य थे किन्तु जिस स्वतन्त्रता की भावना ने उन्हें उत्प्रेरित किया था वह मध्ययुगीन प्राचीनता की स्मृति का स्वप्न था । ये नगर हाहेनस्टाउफेन के विरुद्ध अपना मध्ययुगीन संघर्ष पुन. आरम्भ कर रहे थे । ये विफल हुए किन्तु इनका प्रयत्न वीरतापूर्ण था । तुलना मे सन् १८४८–४९ का पीडमांट का प्रयत्न अशोभनीय था । इन्होने (पीडमांट वालों ने) जो बुद्धिमत्तायुक्त विराम-सन्धि का उल्लघन किया उसका दण्ड उन्हे नोवारा की लज्जाजनक पराजय मे मिला । किन्तु पीडमांट का यह अपमान, वेनिस और मिलन की यशस्वी दशा से, इटली के लिए कही अधिक कल्याणकारी हुआ । क्योकि पीडमाट की सेना बची रही और (पर्याप्त फ्रासीसी सहायता से) दस साल बाद मैजेटा मे इसने बदला ले लिया । और राजा चार्ल्स आलबर्ट ने अग्रेजी ढग का, नये ढग का जो ससदीय विधान प्रदान किया वही १८६० में सयुक्त-इटली का विधान बना । इसके विपरीत १८४८ मे मिलन तथा वेनिस के नेताओ ने जो कीर्तिकर कारनामे दिखलाये वे फिर दोहराये न जा सके । उसके बाद ये पुराने नगर पुन.स्थापित आस्ट्रियाई शासन मे आये और उनकी मुक्ति पीडमाट की सेना तथा कूटनीति के कारण हो पायी ।

इस अन्तर का कारण यह जान पडेगा कि वेनिस तथा मिलन की १८४८ के ये कारनामे असफल होते ही, क्योकि इनके पीछे जो आध्यात्मिक शक्ति थी वह आधुनिक राष्ट्रीयता नही थी, पुराने मध्ययुगीन नगर-राज्यों के अपने मृत रूप की मूर्तिपूजा थी । उन्नीसवीं शती के वेनिस वाले, जिन्होंने मैनिन की पुकार सुनी, केवल वेनिस के लिए लड रहे थे । वे लुप्त वेनिसी लोकतन्त्र की पुन स्थापना करना चाहते थे । सयुक्त इटली के निर्माण मे योगदान नही करना चाहते थे । इसके विपरीत पीडमाट के लोग अपने प्राचीन लुप्त रूप को मूर्ति बनाकर पूजना नही चाहते थे, क्योकि उनकी प्राचीनता मे कोई बात ऐसी नही थी जिसकी पूजा के लिए मूर्ति स्थापित की जा सकती थी ।

दोनों का अन्तर मैनिन और काबूर के अन्तर मे स्पष्ट हो जाता है । मैनिन निश्चय रूप से वेनिसी था और चौदहवीं शती के लिए बिलकुल उपयुक्त था । काबूर जिसकी मातृभाषा फ्रासीसी थी और जिसकी दृष्टि विक्टोरियाई थी, चौदहवीं शती के इटालियाई नगर-राज्यो के वातावरण के नितान्त प्रतिकूल था, जिस प्रकार उसके आल्पस पार के समकालीन पील और थायर्स थे । वह अपने ससदीय राजनीतिक तथा कूटनीतिक गुणों को और वैज्ञानिक कृषि तथा रेलवे निर्माण की रुचि का अच्छे प्रकार उपयोग करता यदि भाग्यवश वह उन्नीसवी शती में इटली मे उत्पन्न होने के स्थान पर इंग्लैंड अथवा फ्रास मे जमीदार हुआ होता ।

इस प्रमाण से १८४८ का विप्लव इटली के पुनर्जागरण मे निरर्थक था । यह असफलता मूल्यवान् थी और १८५९–७० की क्रान्ति की सफलता के लिए आवश्यक थी । सन् १८४८ मे मिलन और वेनिस के मध्ययुगीन देवता इतने चकनाचूर तथा विकल हो गये थे कि उनके उपासकों पर से उनका प्रभाव जाता रहा । और प्राचीनता का यह विनाश यद्यपि देर में हुआ तथापि इसने सयुक्त इटालियाई राज्य की स्थापना के लिए स्थान बना दिया जिसमे किसी मध्ययुगीन स्मृति की छाप नहीं थी ।

दक्षिण कैरोलिना

यदि हम अपना सर्वेक्षण पुरानी दुनिया से नयी दुनिया की ओर करें तो संयुक्त राज्य के इतिहास में सर्जन के प्रतिबोध का इसी के समान उदाहरण पायेगे । यदि हम 'पुराने दक्षिण' के उन राज्यों के युद्धोत्तर काल के इतिहास का अध्ययन करें जो सन् १८६१–६५ के गृहयुद्ध के संघटन में सम्मिलित थे और संघटन की पराजय मे भी थे, तो इस विपत्ति से उबरने के बाद हम इन राज्यो के बीच बहुत अन्तर पायेगे । और जो अन्तर, गृहयुद्ध के पहले था ठीक उसके विपरीत उन्हीं राज्यों मे युद्ध के बाद अन्तर मिलता है ।

विदेशी दर्शक जिसने बीसवीं शती के पाँचवें दशक में दक्षिण को देखा होगा वह आसानी से वरजिनिया और दक्षिण कैरोलिना को अलग कर देगा कि इन राज्यों में पुनरुत्थान का चिह्न बहुत कम है, और उसे आश्चर्य होगा कि जो महान् सामाजिक विपत्ति उन पर पड़ी थी उसका प्रभाव इतने दिनों तक उन पर जमा हुआ है । इन राज्यों में इस विपत्ति की स्मृति आज हमारी पीढी में भी हरी है मानों यह विपत्ति अभी कल की बात है । वरजिनियनों तथा दक्षिण कैरोलि-नियनों के मुख पर 'युद्ध' का अर्थ अब भी गृहयुद्ध है यद्यपि तब से दो महायुद्ध हो चुके हैं । वास्तव में बीसवी शती में वरजिनिया तथा दक्षिण कैरोलिना का यह दुःखद प्रभाव होता है कि राज्यो पर कोई टोना चल गया है और समय यहाँ स्थिर हो गया है । यह धारणा और भी सजीव हो जाती है जब हम इन दोनो राज्यों के बीच के राज्य को देखते हैं । उत्तरी कैरोलिना मे दर्शक को अद्यतन उद्योग-धन्धे नये-नये विश्वविद्यालय, और चहल-पहल का जीवन मिलेगा और धूमधाम का जीवन मिलेगा जिसे उसने उत्तर के 'याकियों' से सीखा है । उसे यह भी पता चलेगा कि सक्रिय और सफल युद्ध के बाद उद्योगो के अतिरिक्त उत्तर कैरोलिना मे बीसवी शती में वाल्टर पेज की महत्ता का राजनीतिमर्मज्ञ भी पैदा हुआ है ।

क्या कारण है कि उत्तर कैरोलिना मे वसन्त ऋतु के समान जीवन के अंकुर फूट रहे हैं और उनके पड़ोसियों में अभी तक 'असन्तोष' का 'शिशिर' बना हुआ है । अपने ज्ञान के लिए यदि हम प्राचीन की ओर देखें तो हमारी उलझन क्षण भर के लिए और बढ़ जायगी क्योंकि गृहयुद्ध तक उत्तर कैरोलिना निर्जीव था जबकि वरजिनिया और दक्षिण कैरोलिना में अद्वितीय जीवन संचारित था । अमरीकी संघ बनने के पहले चालीस साल के इतिहास में वरजिनिया की प्रगति की दूसरे प्रमुख राज्यो से कोई तुलना नही थी । यही से पहले पाँच राष्ट्रपतियो मे से चार राष्ट्र-पति हुए । यहीं जान मारशल हुए जो प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होने फिलाडेलफिया कन्वेन्शन के निर्मित 'कागज की चिट' की अस्पष्टता को हटाकर उसे अमरीकी जीवन के उपयुक्त बनाया । और सन् १८२५ के बाद वरजिनिया पिछड़ गया, और कालहाउन के नेतृत्व मे दक्षिण कैरोलिना ऐसी राह पर चला कि गृहयुद्ध मे उसका विनाश हुआ । इस बीच उत्तर कैरोलिना के बारे में बहुत कम सुना जाता था । उसकी धरती उर्वर नहीं थी, उसके पास बन्दरगाह नही थे । यहाँ के गरीब थोड़ी भूमि वाले किसान उन प्रवासियो के वंशज थे जो वरजिनिया अथवा दक्षिण कैरोलिना में सफल नहीं हो पाये थे और उनकी तुलना वरजिनिया के जमींदारो अथवा दक्षिण कैरोलिना के रुई बोने वालों से नहीं की जा सकती थी ।

आरम्भ में उत्तर कैरोलिना अपने पड़ोसियों की तुलना में क्यों असफल रहा, इसका कारण

स्पष्ट है, किन्तु आगे चलकर ये राज्य क्यों असफल हो गये और उत्तर कैरोलिना सफल हो गया । इसका कारण यह है कि पीडमांट की भाँति उत्तर कैरोलिना के लिए कोई गौरवमय प्राचीन पूजा विघ्न डालने वाली न थी । गृहयुद्ध से उसकी प्रायः कुछ हानि नही हुई क्योंकि हानि के लिए उसके पास कुछ था नहीं । और किसी विशेष ऊँचाई से पतन नही हुआ इसलिए उठने मे कठिनाई नहीं हुई ।

पुरानी समस्याओं पर नया प्रकाश

सर्जनात्मकता के प्रतिशोध के इन उदाहरणों से उन परिस्थितियों पर नया प्रकाश पड़ता है, जिनपर इस अध्ययन में पहले हमारा ध्यान गया था और जिसे हमने 'नयी धरती की प्रेरणा' कहा था । यह परिस्थिति ऊपर के उदाहरणों मे हमने फिर पायी । यहूदियो की तुलना मे गैलीनियन और गैर-ईसाई, मिलन और वेनिस की तुलना मे पीडमांट और उसके पडोसियो की तुलना में उत्तर कैरोलिना । इसी प्रकार की खोज यदि एथेन्स के सम्बन्ध मे करते तो हमने प्रमाणित किया होता कि यूनान ने जो ई० पू० तीसरी तथा दूसरी शती मे अपने नगर-राज्यो के संघ बनाने का प्राय सफल किन्तु असाध्य प्रयत्न किया था वह अटिका मे नही अकेइयाँ मे हुआ । यह असफल प्रयत्न नगर-राज्यों की स्वतन्त्रता सुरक्षित करने के लिए उन महान् शक्तियो के विरुद्ध था जो हेलेनी जगत् की सीमा पर नये-नये राज्यो के रूप मे बन गये थे । हम इस प्रकार देखते हैं कि नयी धरती की उत्कृष्ट उर्वरता ही पूर्ण रूप से, अथवा निश्चित रूप से उस धरती को जोतने की प्रेरणा का कारण नहीं होती । नयी धरती में सफलता क्यो होती है इसके लिए निषेधात्मक कारण भी है और नियति भी । अर्थात् वहाँ अहितकर प्राचीन स्मृतियाँ और परम्पराएँ नही हैं जिन्हें हटाया नही जा सकता और जो विघ्नके रूप मे नही हैं ।

एक दूसरी सामाजिक परिस्थिति का कारण भी हम समझ सकते है । किस प्रकार सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग शक्तिशाली अल्पसंख्यक वर्ग में परिवर्तित हो जाता है । हमने इस अध्ययन में पहले इस प्रकार के अध्ययन को अलग कर दिया था कि वह सामाजिक पतन और विनाश का एक प्रमुख कारण है । सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग इस परिवर्तन से बहुत अवनत नही होता, सर्जन कर्ता निश्चय ही इस अवनति की ओर जाने लगता है । सर्जन की प्रतिभा जब पहले-पहल प्रस्फुटित होती है तब चुनौती का सफल सामना करती है और बाद मे स्वयं नयी और शक्तिशाली चुनौती उसी के लिए बन जाती है जिसने इस प्रतिभा का बहुत ही अच्छा उपयोग किया था ।

(४) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी संस्था की भक्ति

हेलेनी नगर-राज्य

हेलेनी समाज के पतन और विघटन में इस संस्था (नगर-राज्य) की भक्ति का बहुत योगदान रहा है । अपनी सीमा में ये अत्यन्त सफल रहे किन्तु सभी मानवी सृष्टियों के अनुसार अस्थायी । हमें दो विभिन्न परिस्थितियों का अन्तर समझना पडेगा जिनमे यह देवता सामाजिक समस्या के सुलझाने में बाधक रहा है ।

इन दो समस्याओं में पहली और जो अधिक गम्भीर थी उसे हमने दूसरे संदर्भ मे पहले अध्ययन कर लिया है इसलिए उसे हम छोड देंगे । जिसे हमने सोलोनी आर्थिक क्रान्ति बतायी है उसके

परिणामस्वरूप एक हेलेनी संसार का संघटन आवश्यक था। इसका प्रयत्न अथीनियनों ने किया किन्तु विफल रहे और परिणामस्वरूप हेलेनी संसार का विघटन हो गया। स्पष्ट है कि इसका कारण यह था कि नगर-राज्य की प्रभुता के रोड़े को हटाने मे सब सम्बन्धित लोग असफल रहे। एक ओर यह मुख्य और अनिवार्य समस्या बिना सुलझे रह गयी और एक दूसरी समस्या उत्पन्न हो गयी जो हेलेनी प्रमुख अल्पसंख्यको की स्वयं उत्पन्न की हुई थी। यह ठीक उसी समय उत्पन्न हुई जब हेलेनी इतिहास चौथी और तीसरी शती ई० पू० में दूसरे से तीसरे अध्याय में पहुँचा।

इस संक्रमण काल का बाहरी चिह्न यह था कि हेलेनी जीवन में भौतिकता बहुत बढ़ गयी। अभी तक उनका सामुद्रिक जीवन भू-मध्यसागर के बेसिन तक सीमित था। अब वह डाडर्नलीज से भारत तक और ओलिम्पस तथा अपेनाइन से डेन्यूब और राइन तक विस्तृत हो गये। जो समाज इतना विस्तृत हो गया हो और जिसने उन राज्यो के बीच, जो संगठित किये गये थे शान्ति और व्यवस्था की आध्यात्मिक समस्या का समाधान न किया हो, उसमे प्रभुसत्ता वाला राज्य इतना छोटा हो गया कि राजनीतिक जीवन मे व्यावहारिक इकाई के रूप मे वह नही रह सकता था। इतना बड़ा दुर्भाग्य कम नही था। हेलेनी समाज की यह परम्परागत सकुचित प्रभुसत्ता का नाश हो जाना एक दु:स्वप्न की समाप्ति की भाँति अच्छा ही होता। इस प्रकार इस परम्परागत सकुचित सत्ता का विनाश भगवान् की देन होती। यदि सिकन्दर, जीनो और एपीक्यूरस को मित्र बनाने के लिए जीवित रहता तब यह कल्पना की जा सकती है कि हेलेनी लोग नगर-राज्य की सकुचित सीमा से बाहर निकल कर सार्वभौमिक नगर का स्वरूप बनाते। और इस परिस्थिति मे हेलेनी समाज का जीवन-काल बढ़ जाता। किन्तु सिकन्दर की अकाल मृत्यु के कारण संसार उसके उत्तराधिकारियो की दया पर रह गया। और समशक्ति वाले मैसिडोनियाई युद्ध-नायको ने नगर-राज्य की संकुचित प्रभुसत्ता उस नये युग मे भी जीवित रखी, जिसका सिकन्दर ने प्रादुर्भाव किया था। किन्तु हेलेनी जीवन मे जो भौतिकता की उन्नति हो रही थी उसमे एक ही स्थिति में सकुचित प्रभुसत्ता की रक्षा हो सकती थी। प्रभुसत्ता नगर-राज्य के स्थान पर ऊँचे चरित्र बल के नये राज्य बने।

ये नये राज्य सफलतापूर्वक बने किन्तु २२० और १६८ ई० पू० के बीच रोम ने जो आक्रमण अपने प्रतिद्वन्द्वियों के ऊपर किये उसके फलस्वरूप ये सब राज्य नष्ट हो गये और केवल एक बच गया। जिस हेलेनी समाज ने स्वेच्छा से सघटित होने का अवसर खो दिया वह जबरदस्ती एक सार्वभौम राज्य के रूप मे बँध गया। किन्तु इस समय हमारी अभिरुचि की यह बात है कि जिस चुनौती ने पेरिक्लीज के एथेन्स को पराजित किया था और रोम ने जिसका सामना किया और वे सब वस्तुएँ जिनके कारण यह सार्वभौम राज्य बना, उन लोगों की सहायता के कारण है जिन्हें परम्परागत संकुचित प्रभुसत्ता से कोई मोह नही था।

हेलेनी संसार की संकीर्ण प्रभुसत्ता तथा उसी प्रकार की आज की हमारे संसार की समस्या की समानता पर यहाँ जोर देने की आवश्यकता नही है। किन्तु इतना कहा जा सकता है कि हेलेनी इतिहास के प्रमाण पर हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे पश्चिमी जगत् की समस्या, यदि सुलझ सकती है तो उसी दिशा या दिशाओं से जहाँ की राष्ट्रीय सत्ता को निम्न श्रेणी की भक्ति का रूप नही दिया गया है। हमारी मुक्ति पश्चिम यूरोप के राष्ट्रीय राज्यों द्वारा नहीं

मिल सकती क्योंकि वहाँ प्रत्येक राजनीतिक विचार तथा भावना संकुचित प्रभुसत्ता से बँधी हुई है और जिसे वे वैभवपूर्ण पुरातन का प्रतीक मानते हैं । इस एपिमेथियाई मनोवैज्ञानिक वातावरण में हमारा समाज ऐसे किसी नये अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को नहीं खोज सकता जो संकुचित प्रभुसत्ता को किसी ऊँचे विधान की मर्यादा के अन्तर्गत रख सके और अन्तिम प्रहार के विनाश से, जो अवश्यम्भावी है, सुरक्षित कर सके । यदि कभी यह खोज हो सके तो जिस राजनीतिक प्रयोगशाला में हमें यह संस्था प्राप्त होगी वह इस प्रकार की कोई संस्था होगी जैसे ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल, जिसने एक प्राचीन यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य के अनुभव को अनेक समुद्र पार विदेशी राज्यो का जो अभी निर्माण काल में है गठबन्धन किया है, या वह सोवियत यूनियन के समान कोई राजनी-तिक संघटन होगा जो अनेक अ-पश्चिमी जातियों को पश्चिमी क्रान्तिकारी विचारो द्वारा नये समाज में संघटित करने का प्रयत्न कर रहा है । सोवियत यूनियन की तुलना हम सेल्युकस के साम्राज्य से कर सकते हैं और ब्रिटिश साम्राज्य का रोमन राष्ट्रमण्डल से । क्या ये अथवा पश्चिमी शृंखला की सीमा पर का कोई राजनीतिक समाज अन्त मे किसी ऐसे राजनीतिक संघटन का निर्माण करेगा जिससे हमें उस अप्रौढ़ अन्तर्राष्ट्रीय संघटन के स्थान पर, जो हम युद्ध के पश्चात् के 'लीग आव नेशन्स' के बाद बनी है, वास्तविक स्थायित्व प्रदान कर सके । हम कह नही सकते, किन्तु हमें विश्वास है कि यदि ये नेता असफल रहे तो राष्ट्रीय प्रभुसत्ता वाले कट्टर भक्तो के द्वारा यह कभी नही हो सकेगा ।

पूर्वी रोमन साम्राज्य

ऐसी संस्था की अन्ध भक्ति का क्लासिक उदाहरण वह है जिसके कारण समाज को दुख भोगना पड़ा, परम्परावादी ईसाई जगत् का रोमन साम्राज्य के भूत के प्रति अत्यधिक मोह था । यह प्राचीन संस्था अपना ऐतिहासिक कार्य समाप्त कर चुकी थी और हेलेनी समाज से उत्पन्न सार्वभौम राज्य के रूप की अपने जीवन की अवधि पूर्ण कर चुकी थी ।

ऊपरी तौर पर ऐसा जान पडता है कि पूर्वी रोमन साम्राज्य एक ही सस्था के रूप में बराबर उस समय से जब कान्स्टैंटाइन ने कान्स्टैन्टिनोपल की स्थापना की थी और ग्यारह शती बाद तक जब उसमानिया तुर्कों ने १४५३ मे इस नगर पर विजय प्राप्त की, कायम रहा । अथवा कम से कम उस समय तक जब लैटिन धर्म-योद्धाओं ने १२०४ ई० मे कान्स्टैन्टिनोपल अपने अधिकार मे कर लिया था और अस्थायी रूप से पूर्वी रोमन साम्राज्य की सरकार को निकाल बाहर किया था । किन्तु वास्तविकता दूसरी जान पड़ती है । इन दोनों सस्थाओ को अलग-अलग समझना ठीक होगा । इन दोनों के बीच अन्तर था और समय के हिसाब से दोनों के बीच अन्तःकाल था । मूल रोमन साम्राज्य का जिसने हेलेनी सार्वभौम राज्य का रूप ग्रहण किया था, अन्धकार काल में पश्चिम में अन्त हो चुका था । यथार्थतः चौथी और पाँचवी शती में और आधिकारिक ढंग से सन् ४७६ ई० मे जब एक बर्बर योद्धा ने इटली के अन्तिम कठपुतली सम्राट् को गद्दी से उतार दिया और उसके नाम पर वह कान्स्टैन्टिनोपल पर शासन करता रहा । सम्भवतः इस बात को अच्छी तरह नही माना जाता कि वही परिणाम मौलिक रोमन साम्राज्य का पूरब में भी अन्धकार युग समाप्त होने के पहले हो चुका था । उसका विघटन उसी समय हुआ जब ५६५ ई० में जस्टीनियन का परिश्रमपूर्ण और संकटपूर्ण शासन समाप्त हुआ । इसके पश्चात् पूरब में डेढ़ सौ वर्षों का

अन्त:काल था। इससे हमारा यह अभिप्राय नही है कि ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो अपने को रोमन सम्राट् कहकर कान्स्टैन्टिनोपल से राज्य करते थे। किन्तु यह युग विघटन और जन्म का था, जिसमें मृत समाज के अवशेष को फेंका गया और उसके नये उत्तराधिकारी को जन्म दिया गया। उसके पश्चात् ईसा की आठवी शती के पहले पचासे में लिओसाइरस की प्रतिभा से मृत रोमन साम्राज्य का भूत जगाया गया। परम्परावादी ईसाई समाज के इतिहास के पहले अध्याय के पढ़ने से यह जान पड़ता है कि लिओसाइरस संकटपूर्ण किन्तु असफल शार्लिमान था। शार्लिमान की असफलता के कारण पश्चिमी ईसाई धर्मतन्त्र से मध्ययुग में अनेक सकुचित पश्चिमी राज्य उत्पन्न हुए जिनके सम्बन्ध मे हमें पर्याप्त जानकारी है। लिओ की सफलता ने पुनर्जीवित सार्वभौम राज्य के तंग वासकेट को परम्परावादी ईसाई समाज को कसकर पहना दिया, इसके पहले कि यह नवजात समाज अपने अंगों का संचालन भी कर सके। किन्तु इस अन्तर से लक्ष्य में कोई अन्तर न था। शार्लिमान और लिओ दोनो उसी अस्थायी और लुप्तप्राय संस्था के ऐपिमेथियाई उपासक थे।

परम्परावादी ईसाई जगत् की अपरिपक्वता तथा घातक महत्ता राजनीतिक सरचना मे पश्चिम के प्रति उत्कृष्ट होने का हम क्या कारण बता सकते हैं। एक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इन दोनों ईसाई समाजों के ऊपर एक साथ अरब के मुसलमानो का आक्रमण था। सुदूर पश्चिम मे अरबों ने सीरियाई समाज के लिए उत्तरी अफ्रीका और स्पेन मे उसके खोये औपनिवेशिक राज्य को फिर से लेने के लिए आक्रमण किया। उसी समय जब उन्होंने पिरेनीज को पार किया और जब वे शिशु पश्चिमी समाज के हृदय पर आघात कर रहे थे उनकी आक्रमणकारी शक्ति समाप्त प्राय हो चुकी थी और जब भूमध्यसागर के दक्षिणी और पश्चिमी किनारे पर आक्रमण करने चल रहे थे उन्हे टूर्स में आस्ट्रेशियाई ढाल के समान दीवार का सामना करना पड़ा जिस पर उनके भाले ठीक निशाने पर न बैठकर इधर-उधर छिटक गये। थके आक्रमणकारी पर यह निष्क्रिय विजय आस्ट्रेशियाई भाग्योदय के लिए पर्याप्त थी। सन् ७३२ में टूर्स की यह कीर्ति आस्ट्रेशिया के पश्चिमी ईसाई समाज की आरम्भिक शक्तियो का नेता बनाने के लिए पर्याप्त थी। यदि अरब अस्त्र का यह दुर्बल आक्रमण कैरोलिजियनों को भरपूर तैयार कर सकने के योग्य था, तो इसमें आश्चर्य नही था कि परम्परावादी समाज मे पूर्वी रोमन साम्राज्य का ठोस भवन बन जाय जो उस आक्रामक के जिसने परम्परावादी ईसाई समाज पर आक्रमण किया था, जोरदार और अधिक समय तक चलने वाले हमले का सामना कर सके।

इस तथा और कारणों से[1] लिओसाइरस तथा उसके उत्तराधिकारियो ने उस लक्ष्य को प्राप्त किया जहाँ तक पश्चिम में शार्लिमान नही पहुँच सका, या ओटो प्रथम, और तीसरा हेनरी पोप की सहमति से भी नही पहुँचा। और निश्चय ही बाद के सम्राट् जिन्हे पोप के विरोध का सामना करना पड़ा नही पहुँच सके। पूरब (ईसाई जगत्) के सम्राटों ने अपने राज्यों में धर्म को

१. श्री ट्वायनबी की बड़ी पुस्तक में पूर्वी रोमन साम्राज्य के प्रति अधिक विस्तार से लिखा गया है। उतना और किसी ऐतिहासिक उदाहरण के सम्बन्ध में नहीं। देखिए, भाग ४, पृ० ३२०–४०८।—सम्पादक

राज्य का एक विभाग बना दिया और सब ईसाइयों के मुखिया (पेट्रियार्क) को एक प्रकार का धर्म का उपसचिव नियुक्त किया। इस प्रकार राज्य में और धर्म में सम्बन्ध पुनःस्थापित किय जिसे कान्स्टैन्टाइन ने आरम्भ किया था और उसके उत्तराधिकारियों ने, जस्टीनियन तक, बनाये रखा। इस कार्य के दो प्रभाव हुए। एक साधारण और दूसरा विशेष।

साधारण प्रभाव तो यह हुआ कि परम्परावादी ईसाई समाज के जीवन से विविधता तथा परिवर्तनशीलता (एलास्टिसिटी), प्रयोगशीलता तथा सर्जनात्मकता की भावनाएँ रुक गयीं और वे निर्जीव हो गयी। इसका दुष्परिणाम जो हुआ उसे हम पश्चिम की सहोदरा सभ्यता से जिसकी विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं तुलना करके देख सकते है, जहाँ परम्परावादी ईसाइयों का प्रतिरूप नहीं है। परम्परावादी ईसाई समाज में हिलडब्रैंड के पोप तन्त्र सी कोई वस्तु नही है और न स्व-शासित विश्वविद्यालय है, न स्व-शासित नगर-राज्य।

इसका विशेष प्रभाव यह हुआ कि पुनर्जीवित साम्राज्य शासन ने स्वतन्त्र बर्बर राज्यों की उपस्थिति सहन नही की जो उस क्षेत्र में फैले हुए थे जहाँ की सभ्यता का प्रतिनिधित्व यह साम्राज्य करता था। इस असहिष्णुता का परिणाम ईसा की दसवी शती के रोमन-बुलगारियन युद्ध थे, जिसमें पूर्वी रोमन साम्राज्य को अपूरणीय क्षति पहुँची यद्यपि ऊपरी ढग से यह विजयी था और जैसा कि दूसरे स्थान पर हम बता चुके हैं इन युद्धो से परम्परावादी ईसाई समाज का विनाश हुआ।

राजा, संसद और नौकरशाही

नगर-राज्य अथवा साम्राज्य ही ऐसी राजनीतिक सस्थाएँ नही है जिन्हे लोगो ने भक्ति और पूजा की दृष्टि से देखा है। ऐसी ही प्रतिष्ठा, राज्यो की और सत्ताओ को भी मिली है—चाहे वह 'ईश्वरीय' राजा हो अथवा 'सर्वशक्तिमान्' संसद हो। और परिणाम भी वैसा ही हुआ है। किसी जाति, वर्ग अथवा व्यवसाय के प्रति भी, जिसके कौशल अथवा शक्ति के ऊपर किसी राज्य को निर्भर रहना पडा हो, वैसी निष्ठा रही है और परिणाम वैसा ही हानिकारक हुआ है।

ऐसी भक्ति का महत्त्वपूर्ण उदाहरण जिसमे कि एक मानव की पूजा की गयी है मिस्री समाज के पुराने राज्य-तन्त्र मे मिलता है। एक दूसरे सम्बन्ध में हम पहले देख चुके है कि मिस्री संयुक्त राज्य के राजाओ ने ईश्वरीय प्रतिष्ठा को स्वीकार किया अथवा उसकी माँग की, और उसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे ऊँचे उद्देश्य का 'महान् तिरस्कार' किया। मिस्री इतिहास की इस दूसरी चुनौती को स्वीकार न करने के कारण घातक असफलता इस समाज को मिली जिसके कारण मिस्री समाज का अकाल प्रौढ़ यौवन जल्दी ही समाप्त हो गया और मिस्री सभ्यता का पतन हो गया। मिस्री जीवन पर इन मानवी देवताओं ने भय देने वाले दुःस्वप्न की भाँति जो कुप्रभाव डाला उसके प्रतीक पिरामिड है जो प्रजा से जबरदस्ती श्रम कराकर बनवाये गये और इसलिए कि ये पिरामिड अमर हों। जो कौशल, धन और परिश्रम भौतिक परिस्थितियो पर नियन्त्रण करने के लिए लगाना चाहिए था, जिससे सारे समाज का हित होता, राज-पूजा की ओर गलत रास्ते पर लगाये गये।

मनुष्य में राजनीतिक सत्ता की इस प्रकार पूजा करना कैसी पथ-भ्रष्टता है, इसका उदाहरण और भी दिया जा सकता है। यदि हम इसी प्रकार का उदाहरण आधुनिक पश्चिमी संसार में खोजें तो उसका भ्रष्ट स्वरूप फ्रांस के 'सूर्यवंशी' राजा 'रे' के राजकुमार चौदहवें लुई में पा सकते

हैं । इस पश्चिमी सूर्य का बरसाई का महल फ्रांस की धरती पर उतना ही भारी बोझ था जितना गाजा के पिरामिड मिस्र पर । 'चिओप' भी ठीक इसी तरह कह सकता था कि 'मैं ही राज्य हूँ' और द्वितीय पेपी कह सकता था 'मेरे बाद प्रलय' । किन्तु आधुनिक पश्चिमी संसार में जो सबसे मनोरंजन उदाहरण राजसत्ता की पूजा का है उस पर ऐतिहासिक फैसला अभी नही सुनाया जा सकता ।

वेस्टमिनिस्टर की 'संसदों की जननी' को जो देव-तुल्य माना जाता है उसमें पूजा का पात्र व्यक्ति नही, एक समिति है । समितियों की इस असाध्य नीरसता ने, जिद्दी तथ्यात्मक आधुनिक अंग्रेजी सामाजिक परम्परा से सहयोग कर लिया है, इस कारण वहाँ के ससद की भक्ति उचित सीमा मे है और कोई अंग्रेज जो सन् १९३८ मे ससार की ओर देखे तो कह सकता है कि मेरी समुचित भक्ति का जो अपने राजनीतिक देवता के प्रति है, समुचित पुरस्कार मिल रहा है । वह कहेगा कि मेरे देश की भक्ति जो 'संसदो की जननी' के प्रति है, क्या उन पडोसियो से अच्छी नही है जो दूसरे देवताओ के पीछे दौडे है ? क्या महाद्वीप की उन पथभ्रष्ट दस जातियो को शान्ति अथवा सुख मिला जो विदेशी ड्यूचे, फ्यूरार अथवा कमिसरो की विह्वल चाटुकारिता मे दौड रहे थे ? किन्तु साथ ही उसे यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि इधर हाल मे संसदीय शासन की प्राचीन सकीर्ण (इनसुलर) सस्था से महाद्वीप पर जो सस्थाएँ उत्पन्न हुई है वे अस्वस्थ बच्चे की भाँति हैं और मानव की जीवित पीढ़ी के अ-ब्रिटिश बहुसंख्यक जनता को उनसे त्राण नही मिला है और युद्ध-जनित तानाशाही से वे रक्षा नही कर सकी हैं ।

शायद सत्य यह है कि वेस्टमिनिस्टर की संसद की वही विशेषताएँ जिनके कारण अंग्रेज उसे प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं, रुकावटे भी है जिनके कारण यह प्राचीन संस्था ससार के राजनीतिक रोगो की औषधि नही बन सकी । सम्भवत उस नियम के अनुसार जिसके सम्बन्ध मे हम पहले कह चुके है कि जो एक चुनौती का सफलतापूर्वक सामना कर लेते है दूसरी चुनौती का सामना करने मे सफल नही होते—वेस्टमिनिस्टर की संसद मध्ययुग मे पूर्ण सफल हुई क्योकि उसने आधुनिक (अथवा इसके पहले के आधुनिक) युग की जो अभी समाप्त हुआ है, कठिनाइयो पर विजय प्राप्त की । परन्तु उत्तर-आधुनिक युग की चुनौती का जो इस समय हमारे सामने है, नवीन मौलिक परिवर्तन करके, सामना करने मे असमर्थ है ।

यदि हम ससद (ब्रिटिश) की रचना की ओर ध्यान दें तो मालूम होगा कि वह मुख्यत स्थानीय निर्वाचन क्षेत्रो के प्रतिनिधियों की सभा है । जिस काल और जिस स्थान पर वह बनी उससे यही आशा की जाती है । क्योंकि मध्ययुगीन पश्चिमी संसार के राज्य ग्राम-समुदायो के समूह थे जिनके बीच-बीच छोटे-छोटे नगर थे । ऐसे तन्त्र मे सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यों के लिए पड़ोसियों का संगठन ही होता था, और इस प्रकार के बने समाज मे भौगोलिक समूह ही राजनीतिक संगठन की स्वाभाविक इकाई बन सकता था । किन्तु ये ससदीय प्रतिनिधित्व की मध्ययुगीन भित्तियाँ उद्योगवाद के आक्रमण से ढह गयी । आज स्थानीय शृंखलाएँ राजनीतिक तथा और कार्यों के लिए महत्वहीन हो गयी हैं । आज यदि हम अंग्रेजी मतदाताओ से पूछें कि तुम्हारा पड़ोसी कौन है तो सम्भवतः उसका उत्तर होगा, 'मेरा साथी रेलवे-कर्मचारी या मेरा साथी खनिक चाहे वह लैंड्स एण्ड सैं बान आव ग्रोट्स के बीच कही रहता हो । आज वास्तविक निर्वाचन क्षेत्र स्थानीय न होकर व्यावसायिक हो गया है । किन्तु प्रतिनिधित्व का यह आधार

वैधानिक 'अज्ञात देश' है और 'संसदों की जननी' अपने सुखी जरा जीवन में उसका पता लगाने की आवश्यकता नही समझती ।

बीसवीं शती की संसद का प्रशंसक इसका चलता जवाब दे सकता है । अमूर्त रूप से वह कह सकता है कि बीसवीं शती के समाज के लिए तेरहवीं शती की निर्वाचन प्रणाली अनुपयुक्त है । किन्तु साथ ही यह भी कहेगा कि सिद्धान्त रूप से जो अनुपयुक्त है वह व्यवहार मे ठीक चल रही है । वह कहेगा, 'हम अंग्रेजो ने जिन संस्थाओ का निर्माण किया है उनमे हम किसी भी अवस्था मे काम कर सकते हैं ।' रह गया विदेशियों के लिए फिर तो—और वह उदासीनता प्रकट करेगा ।

हो सकता है कि अपने राजनीतिक उत्तराधिकार के विश्वास का वह सदा समर्थन करता रहे कि 'वे छोटे लोग जिनके पास विधान नही था' आश्चर्य करेगे क्योंकि उन्होने जिस गोली को सर्वोत्तम औषधि समझकर निगल लिया था, घोर अपच होने के कारण उसका तिरस्कार कर दिया । इसी उदाहरण के अनुसार यह इंग्लैंड के लिए सम्भव नही होगा कि जिस सत्रहवी शती के कौशल से उसे सफलता मिली उसके अनुसार फिर वह कोई नयी राजनीतिक संस्था नही बना सकता जिसकी इस नये युग में आवश्यकता है । जब कोई नयी चीज बनानी होती है तो उसके दो ही ढंग है—सर्जन अथवा अनुकरण । अनुकरण तब तक नही हो सकता जब तक किसी ने सर्जन न किया हो जिसका अनुकरण किया जा सके । पश्चिम के इतिहास के चौथे अध्याय मे, जो हमारे युग का अध्याय है—कौन नया राजनीतिक सर्जनकर्ता होगा ? आज हमे इसका कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है कि कोई इस पद के योग्य है, किन्तु हम विश्वास के साथ कह सकते है कि वह नवीन राजनीतिक सर्जक 'संसद की जननी' का कोई उपासक नही होगा ।

संस्था के देवता के सर्वेक्षण को, हम जातियों, वर्गों और व्यवसायो की मूर्तिपूजा पर विचार करके, समाप्त करेंगे । हमारे पास इसके लिए सामग्री है । अविकसित सभ्यताओ का अध्ययन करते समय हमे दो ऐसे समाज मिले—स्पार्टन और उस्मानली वर्ग—जिसके भवन का मूल जाति था जो वास्तव मे सामूहिक देवता और देवता रूप में लेविआथन[1] था । यदि किसी जाति की भक्ति से सभ्यता का विकास रुक सकता है तो उससे उसका विनाश भी हो सकता है । इस बात को ध्यान मे रखते हुए यदि हम मिस्री समाज का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि दैवी राज्य ही भक्ति का भयावह स्वप्न नही था, जिसका बोझ 'पुराने राज्य' के मिस्री किसानो की पीठ पर पड़ा था, शिक्षित वर्ग की नौकरशाही का भी बोझ उन्हे वहन करना पड़ता था ।

सच्ची बात यह है कि दैवी राज्य के लिए शिक्षित सचिवालय आवश्यक है । इसकी सहायता के बिना राज्य का दैवी रूप सिंहासन पर सुरक्षित नही रह सकता । मिस्री शिक्षित वर्ग ही गद्दी के पीछे की शक्ति था और समय के हिसाब से समय से पहले था । वे जानते थे कि हम अनिवार्य हैं । इस ज्ञान का उन्होने फायदा उठाया और प्रजा के कन्धों पर ढोने के लिए यह बोझ रखा । मिस्री व्यास इन बोझों को उठाने के लिए 'एक उँगली भी नही लगाते थे ।' मिस्री इतिहास के प्रत्येक युग का यही विषय है कि शिक्षित वर्ग को साधारण किसानो के ऊपर विशेषाधिकार प्राप्त है और मिस्री नौकरशाही का यशगान है । 'दि इन्स्ट्रक्शन आव दुआफ' पुस्तक मे यह बात

१. एक विशालकाय जीव ।

जोरों से लिखी गयी है, यह रचना मिस्री संकट के काल की है। हजार साल बाद की उसकी प्रतियाँ प्राप्त हैं जब 'नये साम्राज्य' में स्कूल के विद्यार्थी उसकी लिपि उतारने का अभ्यास किया करते थे। यह 'शिक्षा दुआफ ने अपने पुत्र पेपी के लिए उस समय लिखी थी जब वह जहाज से 'रेजिडेन्स' की ओर जा रहा था जहाँ वह अपने पुत्र को मजिस्ट्रेटो के लड़को के साथ पढ़ने के लिए ले जा रहा था' विदाई के समय अपने पुत्र को महत्त्वाकांक्षी पिता की यह शिक्षा है :

'मैंने उसे देखा है जो पीटा गया है, जो पीटा गया है, तुम अपना मन पुस्तकों में लगाना। मैंने बेगार से मुक्त होने वालो को देखा है, किन्तु याद रखो पुस्तको से बढ़कर कुछ नहीं है। जो शिल्पी छेनी से काम करता है वह उससे अधिक तक जीता है जो धरती खोदता है। सगतराश को हर प्रकार के कठोर पत्थर से काम करना पड़ता है। जब उसका कार्य समाप्त हो जाता है उसकी बाहे शिथिल पड़ जाती हैं और वह थक जाता है। खेत मे काम करने वाले का हिसाब सदा बना रहता है.. , वह जितना थक जाता है उसका वर्णन नही हो सकता। अपने करघे पर जुलाहे को किसी स्त्री से भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है। उसकी जाँघें कमर से सटी रहती हैं और वह साँस नही ले सकता। हम यह भी बतला दे कि मछुए को क्या करना पड़ता है। क्या उसे नदियो मे नही काम करना पड़ता जिसमे घड़ियाल भरे रहते है। देखो कोई व्यवसाय ऐसा नही है जिसमे कोई निर्देशक न हो। केवल लिपिक का कोई निर्देशक नही है। वह स्वय अपना निर्देशक है....'

सुदूर पूर्व ससार मे मिस्री 'लिपिक शाही' के ही समान मदारिन की भयावह सस्था थी जिसे सुदूर पूर्वी समाज ने अपने पूर्वजो के अन्तिम युग मे उत्तराधिकार मे पाया था। कनफ्यूशियस वाले इस शिक्षित वर्ग ने लाखो श्रमिको के परिश्रम के बोझ को हल्का करने के लिए उँगली न उठाने के लिए अपने नखो को इतना बढ़ा लिया था कि लिखने के ब्रुश के प्रयोग करने के अतिरिक्त उनका हाथ और कोई कार्य नही कर सकता था। और उत्तर-पूर्वी इतिहास मे इतना परिवर्तन होने पर तथा इतने अवसर आने पर भी उन्होने अपने मिस्री सहकर्मियो के समान अपनी दुखदायी स्थिति को स्थिर रखा। पश्चिमी सस्कृति के सघात से भी वह अपने स्थान से हटा नही। अब कनफ्यूशियाई क्लासिक्स की परीक्षाएँ नही होती किन्तु शिक्षित वर्ग किसानो पर शिकागो विश्व-विद्यालय अथवा 'लन्दन-स्कूल आव एकनामिक्स एण्ड पालिटिक्स' की डिगरी दिखाकर अपना रोब जमाता है।

मिस्री इतिहास मे राजसत्ता के मानवीकरण से—यद्यपि बहुत विलम्ब से—दीर्घकाल पीड़ित जनता के दु.खों में जो कमी हुई उसका सन्तुलन अनेक वर्गजनित पीडाओ से हुआ। नौकरशाही का बोझ वहन करना मानो पर्याप्त नही समझा गया, नये साम्राज्य मे शक्तिशाली सर्व-मिस्री संघ के रूप मे पुरोहितवाद का सगठन किया गया और सम्राट् तोतमिज तृतीय (१४९०-१४३६ ई० पू०) ने थीबिस मे अमोन-रे को उसका अध्यक्ष बनाया। इसके बाद से मिस्री मंदारिन के साथ मिस्री ब्राह्मण भी जनता (रूपी घोड़े) की गर्दन पर सवार हो गया। उसके बाद यह मिस्री सरकस का घोड़ा जिसकी रीढ़ टूट चुकी थी अपने चिरन्तन चक्र मे ठोकरे खाता रहा और फिर लिपिक तथा पुरोहित के पीछे एक शानदार सैनिक भी तीसरा सवार हो गया।

जिस प्रकार पूर्वी रोमन साम्राज्य अपने विकास काल में सैन्यवादी नही था उसी प्रकार मिस्री समाज अपने स्वाभाविक जीवन काल में सैन्यवाद से अलग था। और जब हाइक्सो

राजाओं से मुठभेड़ होने लगी तब झखमार कर सैन्यवाद की ओर मुड़ना पड़ा जिस प्रकार पूर्वी रोमन साम्राज्य को बुलगारिया से लड़ाई करने पर विवश होने पर सैन्यवादी होना पड़ा। अठारहवीं पीढ़ी के सम्राट् हाइक्सो लोगों को मिस्री संसार की सीमा से बाहर निकाल कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। आत्मरक्षा से आगे बढ़कर वे आक्रमणकारी हो गये और एशिया में मिस्री साम्राज्य बनाया। इस गैर जिम्मेदार कार्य में बढ़ जाना तो सरल था, लौटना कठिन था। और जब धारा पलटी तब उन्नीसवी पीढ़ी के सम्राटो ने देखा कि हमारे विरुद्ध धारा प्रवाहित होने लगी तो मिस्र की ही एकता स्थिर रखने के लिए उन्हे मिस्री समाज की शीघ्र क्षीण होती हुई शक्ति को दृढ़ करने के लिए विवश होना पड़ा। बीसवी पीढ़ी के राज्य में पुरानी और जर्जर ठठरी पर फालिज गिर पड़ा। उत्तर-मिनोई जनरेला के आवेग से यूरोपीय, अफ्रीकी तथा एशियाई बर्बरो ने मिलकर जो आक्रमण किया उसे विफल करने में इस अन्तिम असाधारण शौर्य के रूप मे मिस्र ने उसका मूल्य चुकाया। जब (मिस्री घोड़े का) शरीर धराशायी हो गया, वहाँ का शिक्षित वर्ग और पुरोहित अभी तक जीन पर बैठे हुए थे और गिरने से उनकी हड्डियाँ नही टूटी थी। इनके साथ वही लिबियाई आक्रामक का पौत्र आ मिला, और मिस्री संसार में उसने भाग्य की परीक्षा करने वाले सैनिक की भाँति पुनः प्रवेश किया। उसके दादा को इसी मिस्र की सीमा से उसी देश की सेना ने अपने अपूर्व बल से निकाल बाहर किया था। ग्यारहवी शती की धन लोभी सेनाओ से जिस सैनिक वर्ग का जन्म हुआ था वह हजार वर्षों बाद तक मिस्री समाज पर सवारी करता रहा। यह वर्ग रणक्षेत्र में भले ही जैनिसारियो और स्पाटिमेंटो की अपेक्षा अपने वैरियो से कम शक्तिशाली रहा हो, किन्तु अपने देश मे किसानो को अपने पाँव तले निश्चित रूप से दाबे रही।

(५) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी तकनीक पर अंधविश्वास

मछली, सरीसृप और स्तनधारी जीव

अब हम यदि तकनीको पर अधविश्वास के सम्बन्ध में विचार करे, तो हमे उन उदाहरणों को स्मरण करना पड़ेगा जिन्हे हम देख चुके है और जिन्होंने कठोरतम दण्ड भोगा है। उसमानिया तथा स्पार्टन सामाजिक प्रणाली में मूल तकनीक मानव रूपी पशुओ का गड़ेरिया बनना अथवा मानव रूपी पशुओं का शिकार खेलना था, जिन पर वहाँ के शासको का अन्धविश्वास था और साथ ही साथ जिन संस्थाओं के द्वारा ये क्रियाएँ होती थी, उन पर भी उनकी भक्ति थी। और जब हम उन सभ्यताओं से जो मानवी चुनौती के कारण अविकसित रह गयी, उन सभ्यताओ की ओर देखते हैं जो भौतिक परिस्थितियो की चुनौती के कारण विकसित रही तो हम देखते है कि उनकी विपत्ति का कारण तकनीक पर अन्धविश्वसनीय भक्ति ही है। खानाबदोश और एसकिमो की सभ्यता इस कारण विकसित न हो सकी कि उन्होने शिकार तथा पशुपालन के तकनीक पर अपनी सब शक्तियों को केन्द्रीभूत कर दिया। उनके एकागी जीवन ने पशु की भाँति जीवन-निर्वाह करने को बाध्य किया, जिसके कारण मानवी बहुमुखी प्रतिभा का लोप हो गया। और यदि हम इस धरती के मनुष्य के जन्म के पहले के इतिहास को देखे तो इस नियम के अनेक उदाहरण मिलेगे।

इस नियम को एक आधुनिक पश्चिमी विद्वान् ने, जिसने अमानवी तथा मानवी जगत् का इस विषय का तुलनात्मक अध्ययन किया है, इन शब्दो मे वर्णन किया है :

"जीवन सागर से आरम्भ होता है। वहाँ वह असाधारण दक्षता प्राप्त करता है। मछलियाँ ऐसे रूपों में विकसित हो जाती है जो बहुत सफल होती हैं (उदाहरण के लिए जैसे शाक) कि आज तक बिना परिवर्तन के उनका अस्तित्व है। किन्तु आरोही (एसेंडिंग) विकास इस दिशा मे नहीं है। विकास मे डाक्टर हेंग का सूत्र सम्भवतः ठीक है : 'सफलता के समान कोई विफलता नही है।' जो जीवन अपने वातावरण के नितान्त अनुकूल बन गया है, जिस जन्तु ने अपनी सारी क्षमता तथा जीवनी शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित करके समाप्त कर दी है उसके पास मूल (रेडिकल) परिवर्तन के लिए कुछ शेष नही रह जाता। वह युग-युगों तक अपने प्रचलित तथा अभ्यासानुरूप जीवन का सामना करने मे अपनी शक्ति को कम-से-कम व्यय करने लगता है। अन्त में यह होता है कि बिना चेष्टा किये स्वाभाविक ढंग से वह सब कुछ कर लेता है जो उसे जीवित रहने के लिए आवश्यक होता है। उस विशेष क्षेत्र मे सभी प्रतिद्वंद्वियो को वह पराजित कर सकता है। किन्तु इसी के साथ यदि क्षेत्र मे परिवर्तन हो जाय तो वह विलुप्त हो जाता है। दक्षता की यही सफलता है जिसके कारण जातियों की विशाल संख्या लोप हो गयी। जल-वायु में परिवर्तन हो गया। उन जीवों में अपनी सारी जीवन शक्तियाँ, जहाँ वे थे उसके अनुकूल जीवित रहने मे व्यय कर डाली। मूर्ख कुमारियो के समान उनके पास साधन शेष नही रह सका कि वातावरण के अनुकूल अपने को बना सके। वे सामजस्य स्थापित नही कर सके और लुप्त हो गये।"[१]

मछलियो की यह पूर्ण घातक सफलता जिसे उन्होंने सागरी जीवन मे प्राप्त की और धरती पर के जीवन में नही, उसका विवरण इसी लेखक ने इसी सन्दर्भ मे बताया है : 'जिस समय जीवन समुद्रों तक ही सीमित था, मछलियो का विकास हो रहा था। उनके शरीर इस प्रकार बनने लगे कि एक रीढ़ बना और इस प्रकार उस समय के सबसे विकसित कशेरुको (वर्टिब्रेट) मे उनका स्थान था। फिर सिर की सहायता के लिए रीढ़ से दोनो ओर टोह लेने वाले पंखे उगे, जो समय पाकर अग्र-पख (फोर-फिन) हुए। शार्क मे और प्राय सभी मछलियो मे इसी टोह लेने वालो ने विशेशता प्राप्त की और वे टटोलने वाले न रहकर खेने वाले चप्पे (पैड्ल) हो गये। और ये शिकारों के सामने पहुँचने के लिए अद्भुत तथा दक्ष पजे बन गये। शीघ्र प्रतिक्रिया ही इसका कार्य हो गया, इसका कार्य अब धीरे-धीरे का नही रह गया। अब यह चप्पे टटोलने वाले, परीक्षा करने वाले, खोज करने वाले नही रह गये, केवल पानी मे गतिमान् होने की दक्षता ही पा सके और किसी काम के नहीं रह गये। ऐसा जान पड़ता है कि मत्स्य-जीवन के और रीढ वाले जीवन के पहले जीव छिछले गर्म तालो मे रहते होगे और तल से इनका सम्पर्क रहा होगा जिस प्रकार आज गरनेट (एक प्रकार की मछली) अपने टटोलने वाले अवयव की सहायता से तल से सम्पर्क रखती है। परन्तु बिना पूर्व-विचार किये गति ही सब कुछ हो गयी, विशेषता के कारण मछलियो को तल छोड़ कर जल मे ही आना पड़ा और तल से तथा ठोस धरती से सब प्रकार का सम्पर्क जाता रहा। जल ही उनके लिए आधार रह गया। इसका अर्थ यह हुआ कि नयी परिस्थितियो से किसी प्रकार की प्रतिक्रिया बहुत सीमित हो गयी·····'इसलिए वे ऊँची जाति की मछलियाँ, जिनसे और उच्च प्राणियो का विकास हुआ होगा, ऐसे जीव रहे होंगे जिन्होने इस प्रकार के पखो

१. जैराल्ड हर्ड : द सोर्स आव सिविलिजेशन, पृ० ६६-७।

(फिन) को विशेष रूप से विकसित नही किया होगा । पहली बात यह है कि वह ऐसा प्राणी रहा होगा जिसने तल से अपना सम्पर्क रखा होगा और उन मछलियो की अपेक्षा उद्दीपन (स्टिमुलेशन) का अनेक ढग से प्रभाव पडा होगा, जिनका ठोस पृथ्वी से सम्पर्क छूट गया । दूसरी बात यह है कि इसी कारण वह ऐसा प्राणी रहा होगा जो छिछले-जल में रहता होगा और जिसने अपने अग्र अवयव से यह सम्पर्क बनाये रखा होगा । क्योकि उनके चप्पे पानी हटाने वाले अवयवो की पूर्ण विशेषता नही प्राप्त कर सके इसलिए ये अंग साधारणत: 'अक्षम' टोह लेने वाले ढग के रह गये । ऐसे प्राणी की ठठरी मिली है जिनके अग्र-अवयव भद्दे हाथों की भाँति हैं और पखे के रूप में नही है । ऐसा जान पड़ता है कि इन्ही अवयवो के सहारे छिछले तालो से वे जलमय तटों तक पहुँचे । गहरा सागर छूट गया । धरती पर इनकी पहुँच हुई और जल-स्थलीय एम्फीबियन प्राणी का आविर्भाव हुआ ।'[१] चतुर तथा निश्चित मछलियो से प्रतिद्वन्द्विता मे इन टटोलने वाले जल-स्थलीयो की जो विजय हुई उसमे हम ऐसे प्राचीन नाटक का खेल देख रहे है जो अनेक बार विभिन्न अभिनेताओ द्वारा खेला गया है । दूसरे अभिनय मे, जो हमारा ध्यान आकृष्ट करता है, हम देखेगे कि मछली का अभिनय जल-स्थलीयों की भीषण सन्तान सरीसृप (रेपटाइल) के उपकुल ने किया । और जल-स्थलीयों का निजी अभिनय उन लोगो के सिर पडा जो उन स्तनपायी प्राणियो के पूर्वज है, जिनमें मनुष्य की आत्मा अवतरित हुई । प्रारम्भिक स्तनपायी दुर्बल और छोटे प्राणी थे जो अप्रत्याशित रूप मे धरती पर आये । क्योंकि महान् सरीसृपो ने जो पहले सृष्टि के अधिकारी थे इसे त्याग किया था । एसकिमो और खानाबदोशो की भाँति मेसोजोइक कल्प[२] के सरीसृप ऐसे विजेता थे जिनकी विजय अति-विशेषता की अन्धी गली मे खो गयी ।

'सरीसृप का एकाएक अन्त हो जाने का जो आभास मिलता है वह धरती के सारे इतिहास मे मनुष्य के आगमन से पहले सबसे विचित्र क्रान्ति है । सम्भवत. इसका सम्बन्ध उस काल से है जब हल्के गर्म वातावरण का बहुत बड़ा युग समाप्त हो गया और कठोर शीतकाल का युग आया । इस युग मे ग्रीष्म-ऋतु थोड़े समय की होती थी किन्तु ताप अधिक था । मेसोजोइक काल[३] के पशु तथा वनस्पति हल्की गर्म परिस्थितियो के अनुकूल बने थे और ठडक का सामना नही कर सकते थे । इसके विपरीत नये प्राणी ताप और शीत के अधिक अन्तर को सहन कर सकते थे... 'ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नही है...कि स्तनपायियो मे और कम योग्य सरीसृपो मे सीधे प्रतिद्वन्द्विता हुई हो...परामेसोजोइक काल की बहुत-सी जबडे की हड्डियाँ मिली है जो स्तनपायियो की हैं । किन्तु कोई टुकड़ा, कोई ऐसी हड्डी नही मिली है जिससे यह सकेत मिले कि ऐसा मेसोजोइक स्तनपायी रहा हो जिसने डाइनासोर का सामना किया हो... (वे) छोटे-छोटे प्रभावहीन चूहो के आकार के जीव रहे होगे ।'[४]

श्री वेल्स ने जो तर्क उपस्थित किया है वह यहाँ तक साधारणत: स्वीकार किया जाता है ।

१. जेराल्ड हर्ड : द सोर्स आव सिविलिजेशन, पृ० ६७–९ ।
२. एच० जी० वेल्स : द आउट लाइन आव हिस्ट्री, पृ० २२–४ ।
३. विकास के इतिहास में मध्यकाल, अनु०
४. एच० जी० वेल्स : दि आउट लाइन आव हिस्ट्री, पृ० २२–४ ।

सरीसृपों के स्थान को स्तनपायियो ने ग्रहण कर लिया क्योकि उन भारी विकटाकार जीवों में यह क्षमता नही रह गयी कि नये वातावरण के अनुकूल अपने को बना सकें। परन्तु जिस भीषण परिस्थिति में इन सरीसृपो का विनाश हुआ उसमें स्तनपायी किस प्रकार बच गये। इस विशेष मनोरंजक प्रश्न पर इन दो लेखको का, जिनका विवरण हमने दिया है, मतभेद है। श्री वेल्स के अनुसार आरम्भिक स्तनपायी इसलिए जीवित रह गये कि उनके शरीर पर बाल थे जिससे आने वाली शीत से उनकी रक्षा हुई। यदि इतना ही तर्क है तो हम इससे अधिक कुछ नही जान सकते कि विशेष परिस्थितियों मे लोम (फर) शल्क (स्केल) से अधिक रक्षा करने वाला कवच है। किन्तु श्री हर्ड का कहना है कि जिस कवच ने स्तनपायियो की रक्षा की वह शारीरिक नही था, मानसिक था। इस मानसिक रक्षा मे शक्ति इसलिए थी कि उधर मानसिक अशक्ति थी। वास्तव मे यह मानव पूर्व युग का उदाहरण है जिसमे विकास का वह सिद्धान्त है जिसे हमने अलौकिकीकरण कहा है।

मानवो के आने के पहले विशाल सरीसृपो का आशातीत रूप से ह्रास हो चुका था.... उनका जीवन छोटे चलते-फिरते प्राणियो से आरम्भ हुआ था। वह इतने भीमकाय हो गये कि ये धरती के लौह-पोत कठिनाई से चल सकते थे....मस्तिष्क का प्राय. उनमे अभाव हो गया। उनके सिर केवल परिदर्शक (पेरिस्कोप) साँस लेने की नली, और चिमटे रह गये। 'इसी बीच जैसे वे मोटे और कठोर शरीर के हो रहे थे, जिसके कारण उनका विनाश होने वाला था, एक ऐसे प्राणी का निर्माण हो रहा था जो उस समय जीवन की सीमा निर्धारित थी उसे फाँद जाने वाला था और नयी शक्ति और नयी चेतना का जीवन आरम्भ करने वाला था। इससे अधिक उदाहरण की आवश्यकता नही है। जीव का विकास सवेदनशीलता और चेतना से होता है; रक्षा नही अरक्षा से; नगे रहने से, शक्ति से नही, आकार से नही, छोटे होने से। स्तनपायियो के पूर्वज चूहो के समान छोटे जीव थे। जिस ससार मे भीषणकाय जन्तु का साम्राज्य रहा हो उसका भविष्य ऐसे प्राणियो के हाथ मे आया जिन्होने अपना समय दूसरो की गति-विधि देखने मे बिताया और दूसरो को राह दे दी। वह अरक्षित था, उसके शरीर पर शल्क नही, लोम थे। वह विशेषित (स्पेशलाइज्ड) नही था, उसके अग्र-अवयव मे चेतना थी और निश्चय ही चेहरे और मुँह पर शृग के समान जो लम्बे बाल थे उनसे सदा उद्दीपन प्राप्त होता था। कानो और आँखो का विशेष रूप से विकास हुआ था। वह समतापी (वार्म-ब्लडेड) हो गया, इसलिए कि ठंड मे बराबर उसमे चेतनता रहे जबकि सरीसृप बेहोश हो जाते है। इस प्रकार उसकी चेतना को उत्तेजना मिली और इसका विकास हुआ। उसके सामने अनेक प्रकार के उद्दीपन आये और उसने अनेक ढंग से सामना किया क्योकि यह प्राणी नया था और इसलिए सामना करने का एक ढंग नही, कई थे और कोई भी निश्चित ढग से स्थायी न थे।'[1]

यदि यह हमारे पूर्वज का चित्र है तो हमे इससे सहमत होना चाहिए कि हमे उसका गर्व है और यह कि हम उसके योग्य नहीं है।

उद्योग में प्रतिशोध

सौ बरस पहले ब्रिटेन का यह दावा ही नही था, वह सचमुच 'संसार की कर्मशाला' (वर्क-

१. जेरल्ड हर्ड : द सोर्स आव सिविलिजेशन, पृ० ७१-२।

शाप) था। आज वह संसार की अनेक कर्मशालाओं का प्रतिद्वन्द्वी है और उसका अपना हिस्सा बहुत दिनों से छोटा, अपेक्षाकृत छोटा होता जा रहा है। इस विषय पर कि 'क्या ब्रिटेन समाप्त हो गया' बहुत लोगों ने लिखा है और अनेक उत्तर मिले हैं। सम्भवतः सब बातों को ध्यान मे रखकर यह कहा जा सकता है कि विगत सत्तर वर्षों में हमने उससे अधिक किया जितनी आशा की जाती थी। यद्यपि निराशावादियों के और भर्त्सना करने वाले भविष्य वक्ताओं के लिए, जिसका वर्णन सेमुएल बटलर ने एक उलटे वाक्य से किया है काफी गुजाइश है।[1] किन्तु कोई एक बात हम ले ले जिसमे हमारा बहुत दोष है, तो हम अपने उद्योग के नेताओ को बतायेगे जो उन्ही दकियानूसी तकनीको की पूजा अभी तक करते है जिनसे उनके पूर्वजो ने सम्पत्ति अर्जित की।

इससे अधिक शिक्षाप्रद उदाहरण क्योंकि वह व्यापक नही है, संयुक्त राज्य का है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि उन्नीसवी शती के मध्य मे अमरीकियो ने अपने औद्योगिक आविष्कारो की विभिन्नता और कौशल मे सबको पीछे कर दिया था और इन आविष्कारो का उपयोग व्यावहारिक रूप से किया था। सीने की मशीन, टाइप रायटर, जूता सीने की मशीन, मैककारनिक की खेत काटने की मशीन, कुछ यन्त्र है जो 'यांकी कल्पना' के फल है और हमे पहले ध्यान मे आते है। किन्तु आविष्कार ऐसा है जिसके प्रयोग में ब्रिटिशो की अपेक्षा अमरीकी पीछे रह गये। यह पिछड़ापन और भी विचित्र जान पड़ता है, क्योकि जिसकी अमरीकियो ने उपेक्षा की वह इन्ही के आविष्कार का सुधार था अर्थात् भाप का जहाज। अमरीका के चप्पू-स्टीमर यातायात के लिए बहुत लाभदायक थे क्योंकि राज्य की सीमा बहुत बढ़ रही थी और देश के अन्दर की नदियो मे, जिनकी अमरीका में बहुतायत है, वे हितकर सिद्ध हुए। इस सफलता का सीधा परिणाम यह हुआ कि स्क्रू से चलने वाले (स्क्रू प्रोपेलर) धूमपोतो के सचालन मे जो सामुद्रिक नौ चालन के लिए अधिक उत्तम था, अमरीकी ब्रिटिशो की अपेक्षा देर मे आये। क्योंकि वे पुराने अस्थायी तकनीक के प्रति अधिक भक्त थे।

युद्ध का प्रतिशोध

सैनिक इतिहास मे और प्राणि-इतिहास में जो साम्य है अर्थात् छोटे कोमल लोम वाले जन्तु और भारी कवच वाले सरीसृप मे जो प्रतिद्वन्द्विता है वह डेविड और गोलियथ के द्वन्द्व-युद्ध की कथा में अंकित है।

इस घातक दिन के पहले जिस दिन गोलियथ ने इसरायल की सेना को ललकारा था, उसने अपने भाले से अनेक विजय प्राप्त की थी। उसके भाले का डडा जुलाहे के तीर (बीम) के समान था और उसका सिरा लोहे का छ सौ शैकेल[2] का था बैरी के अस्त्रो से वह अपने को पूर्ण रूप से सुरक्षित समझता था क्योंकि उसका कवच, शिरस्त्राण, वक्षत्राण, ढाल तथा पिंडलियो के रक्षक से बना था। दूसरे किसी शस्त्र-सज्जा की वह कल्पना भी नही कर सकता था। और वह समझता था कि इस प्रकार की शस्त्र-सज्जा से मैं अजेय हूँ। उसे विश्वास था कि कोई इसरायली जो मुझसे लड़ने का दुस्साहस करेगा वह भी इसी प्रकार सिर से पाँव तक कवच से ढका रहेगा।

१. अपने भविष्य वक्ताओं को छोड़कर और सब प्रकार से किसी देश का सम्मान होता है।
२. यहूदियों की प्राचीन तौल। एक शैकेल आध सेर के लगभग होता था।—अनु०

और किसी भी प्रतिद्वन्द्वी का कवच मेरे कवच से हीन होगा । ये दोनों विचार गोलियथ के मन में इतने जम गये थे कि जब डेविड उसके सामने दौड़ा आया और उसके शरीर पर कोई कवच नहीं था और हाथ में केवल एक डंडा था तो गोलियथ डरा नही, उसे अपमानजनित क्रोध हुआ और वह कहता है—'क्या मैं कुत्ता हूँ—जो तू डंडा लिये आ रहा है ?' गोलियथ को यह सन्देह नहीं हुआ कि इस युवक की अशिष्टता केवल सोची-समझी सैनिक चाल है । वह यह नही जानता था कि उसके ही समान डेविड ने सोच लिया था कि गोलियथ की सैन्य-सज्जा के सम्मुख मैं कभी जीत नही सकता और इसलिए जिस कवच को पहनने के लिए साल ने उससे जिद्द किया था, उसने उसे नहीं पहना । गोलियथ ने उस झोले (स्लिंग) की ओर ध्यान नहीं दिया जो डेविड लटकाये था। न जाने क्या दुष्टता उस गड़ेरिये के झोले मे छिपी हो । इस प्रकार यह अभागा फिलिस्तीन शान से अपने विनाश की ओर चला गया—किन्तु ऐतिहासिक तथ्य यह है कि उत्तर-मिनोई जनरेला का प्रत्येक हापलाइट[1]—गोथ का गोलियथ या ट्राय का हेक्टर—डेविड के झोले से या फिलाक्लेटीज के धनुष से नही हारा बल्कि मरमाइडनों[2] के ब्यूह से । इनका विशाल समूह था जिसमे सैनिक कन्धे से कन्धा और ढाल से ढाल मिलाकर खड़े थे ।[3] व्यूह का प्रत्येक सैनिक अपनी सैन्य-सज्जा मे गोलियथ या हेक्टर के समान था । वह भावना मे होमरी सैनिक के विपरीत था क्योंकि व्यूह का मूल सैनिक मर्यादायुक्त था जिसके कारण व्यक्तिगत लड़ने वाले मर्यादायुक्त सेना मे परिवर्तित हो गये थे । इसके नियमबद्ध विकास से उसका दस गुना कार्य हो सकता था जितना उतने ही उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्र सज्जित वह सेना कर सकती थी जिनमे आपसमे समन्वय नही था ।

इस सैनिक तकनीक का कुछ पूर्वाभास हमे ईलियड मे मिलता है । इसी तकनीक का वर्णन इतिहास मे टाइरटिमस की कविता द्वारा मिलता है । इसी तकनीक के कारण दूसरे स्पार्टा-मेसिनियाई युद्ध मे स्पार्टा की सामाजिक सर्वनाशी विजय हुई । किन्तु इस विजय से कहानी समाप्त नही होती है । अपने सब विरोधियों को रणक्षेत्र से हटाकर स्पार्टा का ब्यूह कुछ दिनो के लिए आराम करने लगा और चौथी शती ई० पू० मे अपमान के साथ उसका विनाश हुआ । पहले एथेनी पेल्टास्टों[4] द्वारा जो एक प्रकार डेविडो के समूह थे, जिसका सामना स्पार्टा के गोलियथ रूपी सैनिक नहीं कर सकते थे—और फिर थीबी सेना के समरतन्त्र के नये तकनीक से । किन्तु एथेनी और थीबी तकनीक को एक क्षण मे ३३८ ई० पू० मे मैसिडोनी सेना ने परास्त और समय के प्रतिकूल कर दिया । मैसिडोनी तकनीक यह थी कि व्यूह के प्रत्येक उच्च श्रेणी के प्रशिक्षित पैदल सैनिक को घुड़सवार के साथ लगा दिया गया था और इनकी एक सेना बना दी गयी थी ।

१. प्राचीन यूनान का भारी अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित सैनिक । —अनु०

२. प्राचीन यूनान की एक जाति जो ट्राय के युद्ध में लड़ी थी । इसकी मर्यादा बहुत प्रशंसनीय थी ।—अनु०

३. ईलियड—१६–२, २११–१७ ।

४. यूनानी पैदल सैनिक जिनके हाथों में भाला रहता था और वैरी पर फेकनें के लिए पत्थर के टुकड़े ।—अनु०

मैसिडोनी युद्ध के संगठन की मूल दक्षता सिकन्दर की उस विजय से प्रमाणित होती है जो उसने एकेमीनियाई साम्राज्य पर की । और मैसिडोनी सैनिक व्यूह रचना एक सौ सत्तर साल तक सैनिक तकनीक का अन्तिम शब्द था । किरोनिया के युद्ध से, जिसमे यूनान के नगर-राज्यो की नागरिक सेना समाप्त हो गयी, पाइडना की लड़ाई तक, जिसमे मैसिडोनी व्यूह रोमन अक्षौहिणी (लीजियन) से पराजित हो गयी, मैसिडोनी सैनिक तकनीक का महत्त्व था । मैसिडोनी सेना के इस एकाएक भाग्य परिवर्तन का कारण प्राचीन अस्थायी तकनीक के प्रति भक्ति थी । जब मैसिडोनी लोग अपने को हेलेनी संसार की पश्चिमी सीमा को छोड़कर संसार का एकमात्र स्वामी समझते थे, और चुपचाप बैठे थे, रोमन महान् हेनीबली युद्ध के दुखपूर्ण अनुभव को दृष्टि मे रखकर अपनी युद्ध कला मे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रहे थे ।

रोमन अक्षौहिणी मैसिडोनी व्यूह पर इस कारण विजयी हुई कि उसने हल्की पैदल सेना के व्यूह के समन्वय के साथ और आगे उन्नति की । रोमनो ने वास्तव मे नये क्रम (फारमेशन) और नये ढग के सैन्य-सज्जा का आविष्कार किया जिसके परिणामस्वरूप कोई सैनिक और कोई टुकड़ी इच्छानुसार चाहे हलके पैदल सैनिक की भाँति लड़े, या हापलाइट की भाँति, और बैरी के सम्मुख एक क्षण की सूचना पर एक से दूसरे रण कौशल मे अपने को बदल दे ।

पाइडना के युद्ध में यह रोमन दक्षता एक पीढी से अधिक पुरानी नही थी । हेलेनी जगत् की इस इटालियाई उपच्छाया मे पूर्व मैसिडोनी ढग का व्यूह कैन्नी के रण मे (२१४ ई० पू०) दिखाई पड़ा था । इसमें भारी रोमन पैदल सेना जो प्राचीन स्पार्टन व्यूह के ढग पर रची गयी थी हैनीबल के स्पेनी और गैलिक भारी घुड़सवारो से घिर गयी और भारी अफ्रीकी पैदल सेना द्वारा दोनो पार्श्वों मे पशुओ की भाँति बँध गयी । इसके पहले भी लेक ट्रेसिमीन मे भी एक बार विपत्ति आयी थी जिसकी चोट से एक रोमन नेता ने प्रयोग करने का विचार किया और सोचा (भ्रमपूर्ण धारणा के कारण) कि इससे रक्षा होगी । कैन्नी की घोर पराजय की कठोर पाठशाला में रोमनो ने अपनी पैदल सेना की तकनीक मे सुधार किया और एक क्षण मे रोमन सेना हेलेनी संसार मे सबसे दक्ष सेना हो गयी । फिर जामा, साइनोसिफाली, और पाइडना की विजय हुई । इसके बाद बर्बरो से, रोमनों से, और रोमनो तथा रोमनो से कितने ही युद्ध हुए जिनका सचालन मैरियस से सीजर तक बड़े-बड़े कप्तानो ने किया । और रोमन अक्षौहिणी आग्नेयास्त्र के पहले जितना सम्भव हो सकता था उतनी दक्ष सेना हो गयी । इसी समय जब अक्षौहिणी अपने ढग की पूर्ण सेना बन गयी थी, घुडसवार सेना ने रोमन सेना को कई बार पराजित किया । इनकी तकनीक भिन्न थी । और उन्होने अक्षौहिणी को सेना-क्षेत्र से निकाल बाहर किया । सन् ५३ ई० पू० में कर्री मे घुड़सवारों ने अक्षौहिणी पर जो विजय पायी वह युद्ध फारसेलस के क्लासिक युद्ध से पाँच साल पहले हुआ जिसमे अक्षौहिणी से अक्षौहिणी लड़ी थी । इस युद्ध में रोमन पैदल सेना की तकनीक सर्वोच्च थी । कर्री के युद्ध का अपशकुन चार सौ साल बाद सन् ३७८ ई० में एड्रियानोप्ल में ठीक उतरा जब भाले बरदार घुड़सवारों ने अक्षौहिणी पर अन्तिम प्रहार किया । इस युद्ध मे समकालीन इतिहासकार अमियानस मारसेलिनस, जो सैनिक अफसर भी था, इस बात की साक्षी देता है कि रोमनो की सेना के तीन चौथाई लोग मारे गये और मत प्रकट करता है कि कैन्नी के युद्ध के पश्चात् रोमन सेना पर ऐसी महान् विपत्ति कभी नही आयी थी ।

इन दोनो युद्धों के बीच की ६ शतियों में से अन्तिम चार शतियों में रोमन लोग आराम ही

करते रहे । कर्री की चेतावनी के पश्चात्, और गोथिक भाला बरदार घुड़सवारों के फारसी प्रतिरूप के द्वारा जिन्होंने ३७८ ई० में वेलेन्स और उसकी अक्षौहिणी को नष्ट किया । सन् २६० ई० में बेलेरियन में और ३६३ ई० में जूलियन की बार-बार पराजय की चेतावनी के बाद भी ध्यान नहीं दिया ।

एड्रियानोप्ल की दुर्घटना के बाद सम्राट् थियोडोसियस ने उन बर्बर घुडसवारो को जिन्होंने रोमन पैदल सेना में बड़ी भारी दरार पैदा कर उसे भ्रष्ट कर दिया था, उन्ही को उस स्थान को भरने के लिए नियुक्त करके, पुरस्कार दिया । और साम्राज्य की सरकार ने इस अदूरदर्शी नीति का मूल्य इस प्रकार चुकाया कि इन बर्बर भाड़े के टट्टुओ ने पश्चिमी प्रदेशों को विभाजित करके 'उत्तराधिकारी राज्य' बना लिया, अन्तिम समय जिस स्थानीय सेना ने, पूर्वी प्रान्तो को अलग हो जाने से बचाया, वह इसी बर्बर ढंग के भाले बरदार घुडसवारो की थी । भारी अस्त्रो से सज्जित इन घुडसवारो की सेना एक हजार साल तक सर्वोपरि थी । यह और भी आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की सेना विभिन्न देशो मे बनी । उसे हम हर जगह पहचान सकते हैं, चाहे वह ईसा की पहली शती मे क्रीमिया के कब्रो मे भित्ति चित्र के रूप मे हो या तीसरी, चौथी, पाँचवी या छठी शती में फार्स के चट्टानो मे समानियाई राजा द्वारा तराशी हो या तांग पीढ़ी (६१८–९०७) के पूरब के योद्धाओ की मिट्टी की मूर्ति हो, या ग्यारहवी शती का बेयो (नगर का नाम) का परदा हो, जिसमें विलियम द काकरर के नारमन वीरो (नाइट) द्वारा पुराने अंग्रेजी पैंदलो की पराजय कटी हुई है ।

यदि भाला बरदार घुडसवार का यह दीर्घ जीवन आश्चर्यपूर्ण है तो यह भी ध्यान देने की बात है कि यह सर्वव्यापक सैनिक पतनोन्मुख अवस्था मे है । एक प्रत्यक्षदर्शी ने उसके पराजय का इस प्रकार वर्णन किया है । 'जब वह टारटरों से लडने शान्ति नगर (बगदाद) के पश्चिम की ओर गया तब मैं उपमन्त्री की सेना मे था । जब सन् १२५८ ई० (६५६ हिजरी) मे उस नगर पर महान् विपत्ति आयी । हम लोगो का सामना नहर बशीर पर हुआ जो दुजेल के अधीन राज्य था । वहाँ हम लोगो मे से एक सैनिक पूर्ण रूप से अस्त्रो से सज्जित अरबी घोड़े पर सवार द्वन्द्व-युद्ध के लिए आगे बढता था । यह सवार और उसका घोड़ा ठोस पहाड़ के समान था । और हमारा सामना करने के लिए एक मंगोल सवार आता था जो ऐसे घोडे पर सवार रहता था जो गदहे के समान था । उसके हाथ का भाला तकुए (स्पिड्ल) सा दिखाई देता था । न उसके पास लबादा था, न कवच । जो लोग उसे देखते थे उन्हे हँसी छूटती थी । किन्तु दिन ढलते-ढलते विजय उनकी थी और हमारी करारी हार हुई जो अनिष्ट की कुजी थी और इसके बाद तो विपत्ति आयी सो आयी[1] ।'

इस प्रकार गोलियथ और डेविड की पौराणिक कथा का युद्ध जो सीग्यिाई इतिहास के प्रभात मे हुआ था तेईस शतियों के बाद सान्ध्य काल मे दोहराया गया । और यद्यपि इस बार दैत्य और बौना घोड़ो पर है, परिणाम वही है ।

१. ई० जी० ब्राउन : ए लिटरेरी हिस्ट्री आव परशिया । भाग २, पृ० ४६२, फलकुद्दीन मुहम्मद बिन ऐदेमीर से उद्धृत जिसके इब्न तिकतका के किताबुल फ़ाख़री से उद्धृत किया ।

अजय तातार कज्जाक जिसने इराकी भारी भरकम सिपाहियों पर विजय प्राप्त की और बगदाद पर घेरा डाला और अब्बासी खलीफा को भूखो मार डाला हल्का सवार था, उसका भाला भी हल्का था। वह खानाबदोश ढग का था जिसने आठवी तथा सातवी शती ई० पू० में सिमेरियाई और साइथ के आक्रमण द्वारा दक्षिण-पश्चिम एशिया मे अपना परिचय दिया था और आतंक फैलाया था। किन्तु यदि घुडसवार डेविड ने घुड़सवार गोलियथ को यूरेशियाई स्टेप से आकर तातारी आक्रमण के आरम्भ मे पराजित किया तो इस कथा की पुनरावृत्ति मे युद्ध का परिणाम पहले की भाँति ठीक-ठीक था। हमने देखा कि पैदल कवचयुक्त सैनिक डेविड के झोले द्वारा परास्त हुआ। उसके पश्चात् विजयी डेविड नही हुआ, बल्कि गोलियथों का मर्यादा-युक्त ब्यूह विजयी हुआ। हलाकू खाँ के मगोल हल्के घुड़सवार जिन्होने बगदाद मे अब्बासी खलीफा के वीरो को पराजित किया था, मिस्र के ममलूक स्वामियो से बार-बार हारे। अपनी साज-सज्जा मे ममलूक वीर जो बगदाद के बाहर पराजित हुए थे मुसलिम वीरो की अपेक्षा न तो अच्छी तरह सज्जित थे, न बुरी तरह; किन्तु अपने समरतन्त्र मे वे मर्यादित थे जिसके कारण मंगोल तीव्र तीर-अन्दाजो तथा फ्राक धर्मयुद्धकर्ताओ से वे बीस पड़ते थे। मगोलो ने जिस गुरु से पहली शिक्षा पायी उसके दस साल पहले सन्त लूई के वीर मंसूरा मे हारे थे।

तेरहवी शती के अन्त तक ममलूक फ्रांसीसी और मगोलों के ऊपर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर चुके थे और अपनी सीमा मे सैनिक श्रेष्ठता मे वैसे ही बेजोड़ थे जैसे पाइडना के बाद रोमन अक्षौहिणी। इस उच्च किन्तु दुर्बल करने वाली स्थिति मे ममलूक भी अक्षौहिणी के समान निष्काम बैठ गये। और यह विचित्र संयोग है कि ये लोग भी उतने ही दिनो तक निष्काम रहे और पुराने बैरी ने नयी तकनीक के सहारे एकाएक उन पर आक्रमण किया। पाइडना और एड्रियानोप्ल के युद्ध में ५४६ वर्षों का अन्तर है, सन्त लूई पर ममलूको ने जो विजय पायी और अपने उत्तराधिकारी नैपोलियन से ममलूक जब पराजित हुए उसके बीच ५४५ वर्षों का अन्तर है। इन साढ़े पाँच सौ वर्षों मे पैदल सेना का प्रभाव बढ़ गया। इस अवधि की पहली शती समाप्त होते-होते डेविड रूपी पैदल सेना ने 'लांग बो'[1] द्वारा घुडसवार गोलियथो को क्रेसी मे हराया था। इस परिणाम को लोगो ने अच्छी तरह समझा और आग्नेयास्त्र के आविष्कार से और जानिसारियो (एक सेना) की मर्यादा से इसका समर्थन हुआ।

नैपोलियन से हारे जाने के बाद और तेरह साल के बाद जब मुहम्मद अली ने अन्तिम रूप से इसे नष्ट कर डाला तब जो बचे-खुचे थे वे ऊपरी नील के पास चले गये और अपने अस्त्र तथा तकनीक सुडान के महदी के खलीफा के कवचधारी घुड़सवारो को दान कर दिया, जो सन् १८९८ में ओमदुरमान मे ब्रिटिश पैदल सेना से ध्वस्त हुए।

जिस फ्रांसीसी सेना ने ममलूकों पर विजय पायी वह जानिसरियो के पश्चिमी प्रतिरूप की पहली सेना से भिन्न थी। वह फ्रांसीसियो की सामूहिक रूप से भर्ती की हुई सेना का नवीन फल थी। वह उस पश्चिमी सेना के नये पूर्ण अभ्यासयुक्त नमूने के स्थान पर उसे सुधार कर बनी थी, जिसे फ्रेडरिक महान् ने पूर्णता प्रदान की। किन्तु जब जेना मे नैपोलियन की नयी सेना ने पुरानी

१. वह तीर-धनुष जिसमें तीर हाथ से छोड़ा जाता है। तीर के पीछे पर लगे रहते हैं।—अनु०

प्रशियन सेना को पराजित किया तब प्रशिया के राजनीतिक तथा सैनिक सप्तरत्नों को प्रेरणा मिली कि फ्रांसीसियों से बढ़कर असाधारण शक्ति प्राप्त की जाय । इसके लिए नये सैनिको को पुरानी मर्यादा की शिक्षा दी गयी । सन् १८१३ में इसके परिणाम का आभास मिला और सन् १८७० में वह स्पष्ट हुआ । किन्तु दूसरे चक्र मे प्रशियन सैनिक मशीन मे जरमनी और उसके साथी फँस गये और अप्रत्याशित रूप से घिरकर पराजित हुए । १९१८ मे १८७० की प्रणाली बेकार हो गयी । क्योंकि खाइयों तथा आर्थिक नाकेबन्दी की नयी तकनीक प्रयोग में लायी गयी । १९४५ तक यह ज्ञात हो गया कि जिस तकनीक से १९१४–१८ का युद्ध जीता गया वह युद्ध की लम्बी शृंखला में अन्तिम कड़ी नहीं थी । प्रत्येक कडी, आविष्कार, विजय, निष्क्रियता और विनाश के चक्र के रूप में आती रहती है । सैनिक इतिहास के तीन हजार वर्षों मे डेविड और गोलियथ के युद्ध से लेकर और मेजिनो पंक्ति और पश्चिमी दीवार के भेदन तक, जिसमे यान्त्रिक घुड़सवारों और बन्दूक के चालकों ने और डैने वाले घोडो ने (हवाई जहाजो ने) योगदान किया, हम आशा कर सकते हैं कि इस विषय के नये-नये उदाहरण मिलेगे । और जब तक मनुष्य की युद्ध की कला के अभ्यास की दुष्प्रवृत्ति रहेगी इस प्रकार के मन को थका देने वाला इस प्रकार का चक्र आता रहेगा ।

(६) सैनिकवाद की आत्मघाती प्रवृत्ति

'कोरोस', 'यूबरीस', 'एथ'

'निष्क्रियता का हमने सर्वेक्षण कर लिया । सर्जन के प्रतिशोध का यह अकर्मण्य ढंग है । अब हम जरा क्रियाशील विपथन की ओर ध्यान दें जो तीन यूनानी शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है । 'कोरोस', 'यूबरीस', 'एथ' । इन शब्दो का आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनो अभिप्रार्थ है । वस्तुनिष्ठ दृष्टि से कोरोस का अर्थ है 'अति-तृप्ति', 'युबरीस' का 'अत्याचार', और 'एथ' का 'विनाश' । आत्मनिष्ठ दृष्टि से कोरोस का अर्थ सफलता से बिगडी हुई मानसिक परिस्थिति, यूबरीस का अर्थ है सफलता के कारण मानसिक तथा नैतिक सन्तुलन का अभाव, एथ का अर्थ है हठी अनियन्त्रित आवेग जिसके कारण असन्तुलित आत्मा असम्भव कार्य करने की चेष्टा करती है । 'पाँचवी शती के एथेनी ट्रेजेडियों मे जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण आज प्राप्य है तीन अकों मे यह मनोवैज्ञानिक विनाश दिखाना साधारण विषय था । एसकाइलस के अगामेमनान नाम के नाटक में यही विषय है, जरकसीज के परसी मे यही विषय है, सोफोक्लीस के नाटक एजेक्स मे यही विषय है, ओडिपस के ओडिपस टिरानस, क्रिओन के एन्टीगोनी और युरिपीडीज के बैके मे पेन्थ्यूज की कहानी का यही विषय है । अफलातून की भाषा मे :

'यदि अनुपात के नियमों के विरुद्ध कार्य करने का कोई पाप करता है और बहुत छोटी वस्तु को बहुत बड़ी वस्तु ले जाने के लिए देता है—बहुत छोटी जहाज को बहुत बड़ा पाल, बहुत छोटे शरीर को बहुत अधिक भोजन, तो परिणाम यह होगा कि सब उलट-पलट जायगा। यूबरीस के विस्फोट के कारण बहुत अधिक खाने वाला शरीर तुरत बीमार पड़ जायगा, और घमण्डी व्यक्ति असत्य की ओर चलेगा क्योंकि यूबरीस से यह उत्पन्न होता है ।'[१]

१. अफलातून : विधान, ६९१ ।

विनाश की ओर जाने के सक्रिय और निष्क्रिय ढंगों का अन्तर स्पष्ट करने के लिए हम सैनिक क्षेत्र में कोरोस, यूबरीस और एथ का सर्वेक्षण करेंगे । जिस प्रकार निष्क्रियता का सर्वेक्षण अभी हमने समाप्त किया है ।

गोलियथ के व्यवहार मे दोनों का उदाहरण मिलता है । एक ओर तो हम देखते है कि किस प्रकार अपने व्यक्तिगत भारी अस्त्रों से सज्जित सैनिक की अपराजेय शक्ति की निष्क्रियता के कारण वह विनाश को प्राप्त होता है क्योंकि वह उस नयी उच्च तकनीक को पहले से न अपनाता है न देखता है जिसका प्रयोग डेविड करता है । साथ-ही-साथ हम यह भी देखेगे कि डेविड के हाथों गोलियथ अपना विनाश रोक सकता था यदि तकनीक की उन्नति की ओर न ध्यान देने के साथ-साथ स्वभाव में भी निष्क्रियता होती । दुर्भाग्य से गोलियथ ने सैनिक महत्ता के प्रति पुरातनपन की रक्षा करते हुए स्वभाव मे संयम नही रखा । इसके विपरीत बेकार ललकार दिया । वह आक्रामक और अपर्याप्त सैनिक तैयारी का प्रतीक है । ऐसा सैन्यवादी अपनी योग्यता पर विश्वास रखता है कि मै ऐसे सामाजिक या असामाजिक तन्त्र के कार्य-संचालन के योग्य हूँ जिसमें सब झगडे तलवार के बल पर तय किये जाते है और वह लड़ाई मे भिड जाता है । उसके बोझ का बल उसके अनुकूल होता है और अपनी विजय को प्रमाण मे प्रस्तुत करता है कि तलवार ही सर्व शक्तिमान् है । किन्तु कहानी के दूसरे अध्याय मे परिणाम यह निकलता है कि उस विशेष परिस्थिति मे जिसमे उसकी अभिरुचि है वह अपने सिद्धान्त को व्यक्तिगत रूप से प्रमाणित नही कर पाता । क्योंकि दूसरी घटना यह होती है कि उससे अधिक बली सैन्यवादी उसे पराजित कर देता है । उसने इस सिद्धान्त को प्रमाणित कर दिया जिसका उसे आभास नही था—कि 'जो लोग तलवार उठाते है, तलवार से नष्ट होते है ।'

इस भूमिका को पढकर हम सीरियाई कथा को छोड़कर ऐतिहासिक उदाहरणों पर ध्यान दे ।

असीरिया

६१४–६१० ई० पू० असीरियाई सैनिक शक्ति की जो पराजय हुई वह इतिहास मे सबसे पूर्ण थी । उससे केवल असीरियाई सैनिक तन्त्र का ही विनाश नही हुआ असीरियाई राज्य और असीरियाई जाति का भी विनाश हो गया । वह समुदाय जो दो हजार साल तक जीवित रहा, और लगभग ढाई सौ साल तक दक्षिण-पश्चिम एशिया में प्रमुख रूप से क्रियाशील रहा पूरी तरह मिट गया । दो सौ दस वर्षों के बाद युवक साइरस की दस हजार यूनानी सेना कुनाक्सा के रणक्षेत्र से टाइग्रिस की घाटी के ऊपर ब्लैक सी के तट की ओर लौट रही थी, तब उन्होने काला और नेनिवा का स्थान देखा और उन्हे महान् आश्चर्य हुआ, इस कारण नही कि वहाँ बड़े-बड़े किले थे और नगरों का बड़ा विस्तार था बल्कि इसलिए कि मनुष्य द्वारा निर्मित इतने विशाल नगर निर्जन हो । इन निर्जन घरो की विलक्षणता ऐसी थी कि किसी का निवास न होने पर भी वे दृढ़ थे । इससे प्रमाणित होता था कि उनमें रहने वाले कितने शक्तिशाली थे । इसका सजीव चित्रण यूनानी अभियान सेना के एक सैनिक ने, जिसे वहाँ की अनुभूति हुई थी, किया है । किन्तु जेनोफेन की कहानी जब आधुनिक पाठक पढ़ता है तब उसे आश्चर्य होता है—क्योंकि पुरातत्त्वविदो ने वहाँ खुदाई करके जो खोज की है उससे उसने असीरिया के भाग्य का ज्ञान प्राप्त किया है—कि जेनोफेन इन दुर्ग समान नगरों के खण्डहरो के वास्तविक इतिहास का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं प्राप्त कर सका । यद्यपि जेनोफेन जब उधर से गया उसके केवल दो साल पहले

सारा दक्षिण-पश्चिम एशिया जरुसलेम से अरारात तक और एलम से लीडिया तक इन नगरों के स्वामियों के अधिकार मे था और संत्रस्त रहा, उसके अच्छे-अच्छे वर्णन में वहाँ के इतिहास से कोई सम्बन्ध नही है। असीरिया का नाम भी उसे नही मालूम था।

आरम्भ में असीरिया के दुर्भाग्य का कारण ठीक समझ मे नहीं आता। क्योकि मैसिडोनियनों, रोमनों और ममलूकों की भाँति उन पर 'निष्क्रियता' का दोष नही लगाया जा सकता। जब इनके सैन्य-तन्त्र का विनाश हुआ तब इनका तन्त्र अप्रचलित हो गया था और उनका सुधार नही हो सकता था। असीरियाई सैन्य-तन्त्र मे बराबर सुधार होता रहा, उनका नवीनीकरण होता रहा और वे विनाश के समय तक प्रबलित (री-इनफोर्स) होते रहे। ईसा की चौदहवी शती के आरम्भ में असीरिया की सैनिक प्रतिभा ने दक्षिण-पश्चिम एशिया के स्वामित्व ग्रहण करने के समय भारी कवचधारी पैदल सैनिक का शिशु उत्पन्न किया था, और ईसा के पूर्व सातवी शती मे अपने विनाश के पहले उसी ने भाला बरदार घुड़सवार का शिशु उत्पन्न किया था। वह शिशु बीच की सात शतियो तक विकसित होता रहा। उत्तरकालिक असीरियो के चरित्र की विशेषता थी कि अपनी युद्धकला मे वे बराबर सुधार करते रहे और नयापन लाते रहे। इसका निश्चित प्रमाण अपने मूल स्थान में अनेक नक्काशी रूप मे राजमहलो मे अंकित है। इनमें असीरी इतिहास के अन्तिम तीन सौ वर्षों की सैनिक साज-सज्जा तथा तकनीक का क्रमागत विकास बड़े ब्योरे, सावधानी और यथार्थता से दिखाया गया है। इनमें हम देखते है कि शरीर के कवच में, रथों में, आक्रमण के यन्त्रो मे, विशेष कार्य की विशेष सेना मे बराबर प्रयोग और सुधार होता रहा। तब असीरिया के विनाश का क्या कारण था?

पहले तो लगातार आक्रमणात्मक नीति थी और इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए शक्तिशाली साधन। इसके कारण असीरिया के युद्ध के सरदारो ने अपने चौथे तथा अन्तिम उपक्रम को उस सीमा के आगे बढाया जहाँ तक उनके पूर्वज जा चुके थे। असीरिया निरन्तर अपने सैनिक साधनो का आह्वान इसलिए करता रहा कि वह बैबिलोनी संसार की सीमा तक के क्षेत्र का रक्षक बना रहे, जिससे एक ओर जागरोस तथा टारस के बर्बर पहाडी निवासियो से और दूसरी ओर सीरियाई सभ्यता के आरमीयन सैनिक अग्रगामियो से उन्हे सुरक्षित रख सके। इसके पहले के तीन सैनिक संघर्षों मे असीरिया ने इन दोनो सीमाओं पर रक्षात्मक से आक्रमणात्मक नीति ग्रहण की थी। किन्तु इस आक्रमण मे सीमा के आगे नही बढ़े और दूसरी दिशाओ मे जाकर अपनी सेना की शक्ति नही क्षीण की। फिर भी तीसरे संघर्ष मे जिसमे नवी शती ई० पू० के मध्य के पचास साल लगे, सीरिया मे सीरियाई राज्यों का अस्थायी सम्मिलन (कोअलिशन) बना जिसने ८५३ ई० पू० में करकार के पास असीरिया का आगे बढ़ना रोक दिया और उरार्तू का राज्य स्थापित न होने के कारण आरमीनिया में बडा विरोध हुआ। इन चेतावनियो के बावजूद टिगलथ पाइलेसर (७४६–७२७ ई० पू०) ने जब अन्तिम और सबसे बड़ा आक्रमण आरम्भ किया उसकी राजनीतिक आकाक्षा बढ़ गयी थी और उसका सैनिक लक्ष्य ऐसा था जिसके कारण उसे तीन नये बैरियों—बैबिलन, एलम और मिस्र का सामना करना पडा। इनमे प्रत्येक के पास उतनी ही सनिक शक्ति थी जितनी असीरिया के पास।

टिगलथ पाइलेसर ने जब सीरिया के छोटे राज्य को पूर्ण रूप से जीत लिया तब उसने मिस्र से लड़ाई ठानी। उसके उत्तराधिकारियों को यह लड़ाई लड़नी पड़ी क्योंकि मिस्र इस बात पर

तटस्थ नहीं रह सकता था कि उसकी सीमा तक असीरियाई साम्राज्य फैल जाय । और उसने असीरियाई साम्राज्य निर्माता की इस चेष्टा को निष्फल कर दिया । इसे तब तक के लिए असम्भव कर दिया जब तक असीरिया मिस्र को घेर कर पूरा राज्य न ले ले । सन् ७३४ ई० पू० में टिगलथ पाइलेसर ने फिलिस्टिया पर अधिकार कर लिया । यह बड़ी कुशल रणनीति थी जिसके परिणाम-स्वरूप अस्थायी रूप से समरिया ने ७३३ मे पराजय स्वीकार कर ली और ७३२ मे डैमसकस का पतन हो गया । किन्तु इसका परिणाम यह भी हुआ कि ७२० ई० पू० मे सारगन को मिस्रियों से लड़ना पड़ा और ७०० में सेनाशरीब से । इन अनिश्चित संघर्षों के बाद एसारहैडन ने तीन युद्धों ६७५, ६७४ तथा ६७१ में मिस्र पर विजय पायी और उस पर अधिकार कर लिया । इसके बाद यह स्पष्ट हो गया कि यद्यपि असीरियाई सेना के पास मिस्र पर विजय पाने की शक्ति है, वह इतना शक्तिशाली नही है कि मिस्र को कब्जे मे रख सके । एक बार और एसारहैडन मिस्र की ओर चला किन्तु ६६९ मे इसकी मृत्यु हो गयी । यद्यपि अशूरबनिपाल ने ६६७ में मिस्री विद्रोह को शान्त किया, उसे ६६३ मे फिर से मिस्र को विजय करना पडा । इस समय तक असीरियाई सरकार ने समझ लिया होगा कि मिस्र में वह असम्भव कार्य करने मे लगी है । और जब सामेटिकस ने चुपचाप असीरियाई सेना को ६५८–६५१ मे निकाल बाहर किया तब अशूरब-निपाल कुछ न बोला । इस प्रकार अपनी मिस्री हानि को छोड़ देने मे असीरिया ने बुद्धिमानी की किन्तु यह बुद्धि तब आयी जब यह ज्ञात हो गया कि मिस्र के पाँच युद्धो मे लगायी शक्ति बेकार हो गयी । साथ ही मिस्र को छोड देना असीरिया के पतन की भूमिका थी जो दूसरी पीढ़ी मे हुई ।

टिगलथ पाइलेसर का बैबिलोनिया मे हस्तक्षेप का अन्तिम परिणाम सीरिया मे हस्तक्षेप के परिणाम से कही अधिक गम्भीर था । क्योंकि इसके कारण और कार्य की शृखला के सीधे परिणामस्वरूप ६१४–६१० की विपत्ति थी ।

बैबिलोनिया में पहले आक्रमणों में असीरिया की राजनीतिक नीति नरमी की थी । विजेता ने विजित देश पर अधिकार नही किया, वही के राजाओ को अपनी छत्र-छाया मे कठपुतली शासक बना दिया । ६९४–६८९ के विप्लव के बाद ही वहाँ की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गयी, सेनाशरीब ने अपने पुत्र एसारहैडन को अपना उत्तराधिकारी घोषित करके वहाँ प्रतिनिधि बना दिया । किन्तु इस नरमी की नीति से कालडियन संतुष्ट नही हुए और असीरियाई सेना का सामना अधिक शक्ति से करने लगे । असीरियाई सैनिक प्रहार का परिणाम यह हुआ कि कालडियनो ने अपना घर ठीक कर लिया और अपने पड़ोसी एलम से समझौता कर लिया । दूसरी बार जब राजनीतिक संयम की नीति छोड़कर ६८९ मे बैबिलोन पर घेरा डाल दिया गया तब असीरिया को ऐसी शिक्षा मिली जैसी आशा नही थी । इस भीषण कार्य से वहाँ की पुरानी नागरिक जनता मे और कालडिया के खानाबदोशों में जो घृणा की अग्नि प्रज्वलित हुई उससे नागरिक और कबीले वाले अपना आपसी भेद-भाव भूल गये और नये बैबिलोनियाई कृत्य को न भूल सके, न उन्हें क्षमा कर सके और जब तक आक्रामक को चित्त नहीं कर दिया, शान्त होकर नही बैठे ।

फिर भी लगभग सौ वर्षों तक अवश्यम्भावी 'एथ' टलता रहा क्योंकि असीरियाई सैन्य तन्त्र की दक्षता बराबर बढ़ती रही । उदाहरण के लिए ६३९ में एलम पर ऐसा घातक प्रहार हुआ कि उसका विच्छृंखल राज्य पूरबी सीमा से लेकर फारस के पहाड़ी निवासियों के राज्य में चला गया और छलांग मारने वाला स्थान बन गया, जहाँ से अकामेनिडी लोग एक शती के बाद सारे

उत्तर-पश्चिम एशिया के स्वामी बन गये। जब ६२६ में अशूरबनिपाल की मृत्यु हो गयी बैबिलोन में नबोपोलास्सार के नेतृत्व में फिर एक बार विप्लव हुआ और उसने मीडिया से मित्रता की, जो एलम से अधिक शक्तिशाली था और सोलह साल बाद असीरिया संसार के नकशे से गायब हो गया।

जब हम डेढ़ सौ साल पुराने इतिहास की ओर देखते है जिसमे लगातार भीषण युद्ध होते रहे। जो ७४५ ई० पू० से आरम्भ हुआ, जब टिगलथ पाइलेसर गद्दी पर बैठा और ६०५ मे समाप्त हुआ, जब बैबिलोन के नबुदकदनज़ार ने कारचेमिश मे फेरो नेको को पराजित किया। इनमें इतिहास विख्यात घटनाओं से पहली दृष्टि में पता लगता है कि बार-बार के आक्रमण से असीरियो ने समुदाय के समुदाय नष्ट कर डाले, नगरों को मिट्टी मे मिला दिया और सारी जनता को बन्दी बना कर ले गये। डैमसकस को ७३२ मे, समारिया को ७२२ मे, मुसासिर को ७१४ में, बैबिलोन को ६८९ में, सिडोन को ६७७ में, मेंविफ्सको ६७१ में, थीबीस को ६६३ मे और सूसा को सम्भवत· ६३९ मे। जहाँ तक असीरिया की बाहे पहुँच सकी उन सब देशो की राजधानियो मे केवल टायर जेरुसलेम उस समय तक अछूता रह गया जब ६१३ में निनेवाँ पर घेरा पड़ा। असीरिया ने अपने पड़ोसियों की जो हानि की और उन पर विपत्ति ढायी उसकी कोई गणना नही हो सकती। फिर भी असीरियाई सैनिक कृत्यो की उचित आलोचना उस अध्यापक के कथन के अनुसार होगी जिसने बालक को बेंत मारते समय कहा था—'तुम्हे कम पीड़ा होती है, मुझे अधिक पीड़ा होती है।' असीरियाई योद्धाओ ने जिस निर्लज्जता और आत्मतुष्टि के साथ अपने निष्ठुर कृत्यो का बखान किया है उसका वही परिणाम हुआ। उन्ही को अधिक पीड़ा हुई। जिन विजितो का नाम ऊपर दिया गया है वे पुनः जीवित हो गये और उनमे कुछ का भविष्य तो उज्ज्वल हुआ। केवल निनेवा जो मरा सो मरा।

इन जातियों के भाग्यो मे जो अन्तर हुआ उसका कारण खोजने के लिए दूर नहीं जाना पडेगा। अपनी सैनिक विजयों के पीछे असीरिया धीरे-धीरे अपनी आत्महत्या कर रहा था। जिस समय का हम वर्णन कर रहे है उस समय के असीरिया के आन्तरिक इतिहास से निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि वहाँ राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक विनाश, संस्कृति का पतन और जनसंख्या का ह्रास हो रहा था। असीरिया के डेढ़ सौ साल के जीवन मे वहाँ की भाषा अक्कादी के स्थान पर अरमाई भाषा की प्रगति इस बात का प्रमाण है कि जिन्हे असीरियाई सेना पूर्ण हमलो के बाद अपनी शक्ति द्वारा बन्दी करके लायी थी, वे धीरे-धीरे अपना सस्कार फैला रहे थे। जो सैनिकशक्ति अपनी वीरता के बल पर ६१२ मे निनेवा मे खड़ी थी वह वास्तव मे मुर्दा थी। वह आत्महत्या कर चुकी थी। उसका सैनिक ढाँचा खड़ा था। जब मीडिया और बैबिलोनिया की सेना ने इसे अपने सैनिक बल से पछाड़ कर गिरा दिया तब वे यह नही समझते थे कि हमारा कठोर बैरी मुर्दा हो चुका है।

असीरिया का विनाश अपने ढंग का एक ही है। उसकी समता उससे की जा सकती है जो ३७१ ई० पू० में ल्यूकट्रा के रणक्षेत्र में स्पार्टा के जत्थे की ओर जो सन् १६८३ मे वियना के युद्ध के पूर्व आनिसारियों की खाई मे थी। वे सैन्यवादी जो अपने पड़ोसियों को नष्ट करने के लिए उनसे उग्र युद्ध किया करते है अपना ही विनाश करते हैं। यह हमें कैरोलिंजियनो और तैमूरों का स्मरण दिलाता है जिन्होंने सैक्सनों और फारसियोंको तबाह करके बड़े-बड़े साम्राज्य बनाये,

जिनको स्कैंडिनेवियाई और उजबकों ने फिर लूटा । उस समय ये साम्राज्य-निर्माता एक ही जीवन-काल में शक्तिहीन हो गये और इस प्रकार अपने साम्राज्यवाद का मूल्य चुकाया । इस प्रकार साम्राज्यवादियों के भाग्य का निबटारा होता है । असीरियाई उदाहरण से एक और प्रकार की आत्महत्या उन सैन्यवादियों की याद आती है जो बर्बर अथवा उच्च सभ्यता के हों, जो सदा सार्वभौम राज्यों अथवा बड़े साम्राज्यों पर आक्रमण करते हों और उन्हें नष्ट करते हों और ऐसे राज्यों को जिनके द्वारा अपने देश को अथवा जिन देशों पर उनका शासन है, शान्ति और व्यवस्था प्राप्त हुई है । ऐसे विजेता साम्राज्य को निर्दयतापूर्वक नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं और वहाँ के लोगों के लिए जो शान्ति के वातावरण में रहते आये हैं मृत्यु और विनाश उपस्थित करते हैं परन्तु इन पर विनाश लाने वालों के ऊपर भी मृत्यु की छाया आ जाती है । विजय की महत्ता से उनका पतन हो जाता है और बलात्कृत देश के इन स्वामियों का भी हाल किलकेनी बिल्लियों के समान हो जाता है जो एक-दूसरे के लिए मित्रता का कार्य करती हैं । और इन लुटेरों में से एक भी लूट का माल भोगने के लिए नहीं रह जाता ।

हम यह भी देख सकते हैं कि जब मैसिडोनिया वालों ने अकेमीनियाई साम्राज्य को नष्ट कर डाला और उसकी सीमा के और आगे भारतवर्ष पर आये तब उसका परिणाम यह हुआ कि उन बयालीस वर्षों के बीच जो सिकन्दर की ३२३ ई० पू० में मृत्यु और २८१ में जब कोरुपीडियन में लाइसिमेकस की हार हुई तब तक एक-दूसरे से ये लड़ते ही रहे । यह विभीषका एक हजार साल बाद दोहरायी गयी जब आदिम मुसलमान अरबों ने बारह वर्षों में दक्षिण-पश्चिम एशिया के रोमन तथा सुसानियन राज्यों को तहस-नहस किया । यह लगभग उतना ही विस्तृत प्रदेश था जिसे सिकन्दर ने ग्यारह सालों में जीता था । और इस प्रकार सिकन्दर के कार्य को मिटा दिया । इस अरबों के बारह वर्षों की लूटपाट के पश्चात् चौबीस वर्षों तक वे एक-दूसरे की हत्या करते रहे । एक बार फिर देखिए कि विजयी एक-दूसरे पर तलवार चलाते रहे और सीरियाई सार्वभौम राज्य बनाने का श्रेय और लाभ अनधिकारी उम्मेयदों और अब्बासियों को मिला । पैगम्बर ने जो बिजली की गति के समान विजय प्राप्त करके राह बनायी उनके उत्तराधिकारियों को नहीं मिली । असीरियाई सैन्यवाद का आत्महत्या का ढंग उन बर्बरों में भी मिलता है जिन्होंने पतनोन्मुख रोमन साम्राज्य के त्यक्त प्रदेशों पर आक्रमण किया जैसा कि इस पुस्तक के आरम्भ में कहा जा चुका है ।

असीरियाई सैन्यवाद के अनुरूप एक दूसरा सैनिक विपथन हम उस समय भी पाते हैं जब असीरिया बड़ी सामाजिक व्यवस्था का अंग था जिसे हम बैबिलोनी समाज कहते हैं । इसमें असीरिया वह सीमा थी जिसका कार्य केवल अपनी ही सुरक्षा करना नहीं था, बल्कि उस संसार का भी जिसका वह अंग था । अर्थात् उत्तर और पूरब के उपद्रवी पर्वतियों से और दक्षिण तथा पश्चिम के सीरियाई समाज के आक्रामक पुरोगामियों से । पहले की बिना भेद वाली सामाजिक अवस्था वाले किसी देश की सीमा से इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने से सारे समाज का लाभ होता है । क्योंकि इस सीमा के कारण बाहरी दबाव रोका जाता है और अन्दर का भाग अपनी आन्तरिक परिस्थिति दूसरी चुनौतियों का सामना करने के लिए सुरक्षित रहता है । यह श्रम-विभाजन बेकार हो जाता है, यदि सीमा वाले, जिन्होंने बाहर वालों का सामना करने के लिए सैनिक शिक्षा पायी है, अन्दर वालों पर आक्रमण करके अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करने

लगें। परिणाम होता है गृह-युद्ध। इसी से इस भयावह परिणाम का कारण मालूम होता है जो उस समय हुआ जब टिगलथ पाइलेसर तृतीय ने ७४५ ई० पू० में असीरियाई सेना द्वारा बैबिलोनिया पर आक्रमण किया। इस प्रकार सीमावालों का अन्दर की ओर आक्रमण करना सारे समाज के लिए विपत्ति कारक है मगर सीमा वालो की तो इसमें आत्महत्या ही है। इनका कृत्य उस हाथ के समान है जो तलवार लिए हो और उसी शरीर मे भोंक दे जिस शरीर का वह हाथ है या उस लकड़हारे के समान है जो उसी डाल को चीर रहा है जिस पर वह बैठा है। वह तो डाल के साथ धम से नीचे गिर पड़ता है, पेड़ का तना खड़ा रहता है।

शार्लमान

जिस अनुचित दिशा में शक्तियों के प्रयोग के परिणाम का ऊपर वर्णन किया गया है सम्भवतः वही अन्तर्ज्ञान था जिसने आस्ट्रेशियाई फ्रैंको को ७५४ ई० में अपने योद्धा पेपिन को पोप स्टेफेन के निर्णय का बलपूर्वक विरोध करने को विवश किया था जब उसने उनके लम्बार्डी भाइयो से लड़ने के लिए कहा था। पोप की दृष्टि इस परा-आल्पस वाली शक्ति की ओर थी और उसने पेपिन को ७४९ मे इसीलिए राजा बना दिया जिससे उसकी अभिलाषाएँ तीव्र हो गयी और उसे वास्तविक अधिकार प्राप्त हो गया क्योंकि पेपिन के समय आस्ट्रेशिया अपनी दोनो सीमाओ की रक्षा करके प्रसिद्ध हो चुका था। अर्थात् राइन के पार सैकसन व्रात्यो से और आइबीरियन प्रायद्वीप के विजेताओ, अरब मुसलमानो से, जो पिरेनीज़ की ओर बढ़ रहे थे। सन् ७५४ में आस्ट्रेशियाइयो से अपनी शक्ति इस क्षेत्र से दूसरी ओर लगाने के लिए कहा गया कि वे लम्बार्डों को नष्ट करे जो पोप की राजनीतिक अभिलाषाओं के मार्ग के रोड़े थे। आस्ट्रेशियाइयो की सेना मे इस आक्रमण के सम्बन्ध मे बहुत सन्देह था और उनके नेता की अभिलाषाओ के प्रतिकूल उनका सन्देह अधिक ठीक निकला। अपनी सेना के विरोधो को ठुकराकर पेपिन ने राजनीतिक तथा सैनिक वचन-बद्धता की शृखला की पहली कड़ी बनायी। जिसके कारण आस्ट्रेशिया इटली के साथ और भी जकड़ गया। सन् ७५५-६ के उसके इटालियाई अभियान के कारण शार्लमान का ७७३-४ का अभियान हुआ। इस अभियान के कारण सैक्सनी की विजय मे भयानक बाधा उपस्थित हुई। जिसके लिए वह चला था। इसके बाद उसके सैक्सनी के कठिन आक्रमण मे आगे तीस साल मे चार बार बाधाएँ उपस्थित हुईं क्योंकि इटली मे समय-समय पर संकट उपस्थित होता रहा और इन अवसरो पर उस समय उसका रहना आवश्यक हो गया। उसके परस्पर विरोधी आकाक्षाओं के कारण शार्लमान की प्रजा पर जो बोझ पड़ा उसके कारण आस्ट्रेशिया की पीठ पर जो बोझ पड़ा वह इतना बढ़ा कि वह उठ न सका।

तैमूर लंग

इसी प्रकार तैमूर ने अपने ट्रांस-आक्सोनिया की रीढ तोड़ दी। उसने ईरान, इराक और भारत, अनातोलिया और सीरिया पर बेमतलब आक्रमण करके अपनी शक्ति क्षीण की। जो थोड़ी ट्रांस-आक्सेनिया की शक्ति उसे यूरेशिया खानाबदोशो मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने मे व्यय करनी चाहिए थी। ट्रांस-आक्सोनिया निश्चल ईरानी समाज के और यूरेशियाई खानाबदोश संसार के बीच सीमा थी। अपने शासन के प्रथम उन्तीस वर्ष (सन् १३६२-८० ई०) उसने सीमा की सुरक्षा मे बिताये। पहले उसने चगताई खानाबदोशों को पीछे हटाया, फिर उन

पर आक्रमण किया और निचली आक्सस ख्वारिज़्म मरुद्यान (ओएसिस) को जूजियों के खाना-बदोशों से मुक्त करके अपने राज्य की सीमा ठीक की। १३८० मे जब यह काम वह पूरा कर चुका तैमूर को और बड़ा राज्य मिला। उसे चगेज खाँ का पूरा साम्राज्य मिल गया। क्योकि तैमूर के समय खानाबदोश लोग मरुभूमि और उपजाऊ भूमि के बीच की सीमा के सब स्थानों से पीछे हट गये। यूरेशिया के इतिहास का दूसरा अध्याय चगेज खाँ के उत्तराधिकार को प्राप्त करने के लिए आस-पास के नव-जाग्रत निष्क्रिय जातियो की दौड़ का इतिहास है। इस होड़ में मोलडेवियन और लिथुएनियन इतनी दूर थे कि दौड़ मे सम्मिलित नही हो सकते थे। मसकोवाइट[1] अपने जगलो मे और चीनी अपने खेतो से बँधे हुए थे। कज्जाक तथा ट्रांस-आवसोनियन मात्र प्रतिद्वन्द्वी रह गये थे जो अपने निश्चल जीवन के गुणो को त्यागे बिना स्टेप मे रहने के अभ्यस्त हो गये थे। इन दोनो मे ट्रांस-आवसेनियनो की सफलता का अच्छा अवसर था। वह अधिक शक्तिशाली भी थे, स्टेप के केन्द्र के निकट थे और क्षेत्र मे पहले उतरे भी। सुन्नी धर्म का रक्षक होने के कारण निश्चल मुसलिम समुदायो मे उसके शक्तिशाली सहायक भी थे, जो स्टेप के सामने की सीमा पर इस्लाम के चौकीदार थे।

कुछ क्षण के लिए तैमूर ने इस अवसर को उपयुक्त समझा और दृढता से इससे लाभ उठाना चाहा। किन्तु थोड़े-से वीरतापूर्ण हमलो के बाद वह दक्षिण की ओर घूम गया और ईरानी ससार के अन्दर अपनी सेना को ले गया और अपने जीवन के अन्तिम चौबीस वर्ष उसने इस क्षेत्र मे असफल तथा विनाशात्मक आक्रमण करने मे लगाये।

तैमूर का यह मूर्खतापूर्ण आचरण सैन्यवाद की आत्महत्या का सुन्दर उदाहरण है। यही नही कि उसका साम्राज्य उसके बाद रहा नही, बल्कि साम्राज्य के बाद का कोई स्पष्ट चिह्न भी नही रहा। उसका बाद का प्रभाव निषेधात्मक ही रहा। जो कुछ राह मे आया उसको नष्ट करते हुए वह अपने विनाश की ओर तेजी से बढ़ रहा था। तैमूर के इस साम्राज्यवाद ने दक्षिण-पश्चिम एशिया मे राजनीतिक और सामाजिक शून्यक (वैकुअम) बना दिया। इस शून्यक के कारण उसमानली समुदाय और सफ़ाबी लड़ गये जिसने ईरानी समाज को धराशायी कर दिया।

खानाबदोशी ससार की विरासत ईरानी समाज को नही प्राप्त हुई। इसका प्रभाव पहले धर्म पर पड़ा। तैमूर के समय से चार सौ साल पहले से इस्लाम पूर्वी स्टेप की सीमा पर रहने वाले निश्चल लोगो पर अपना प्रभाव क्रमश. जमाता चला आ रहा था। और जब भी खाना-बदोश लोग मरुभूमि छोड़कर उर्वर भूमि मे आते थे उनके द्वारा पकड लिये जाते थे। चौदहवी शती तक ऐसा मालूम होने लगा कि सारे यूरेशिया मे इस्लाम धर्म फैलने से कोई रोक नही सकता। किन्तु तैमूर की जीवन-यात्रा की समाप्ति पर यूरेशिया मे इस्लाम की प्रगति एकदम बन्द हो गयी। और दो सौ साल बाद मंगोल और कालमुक महायान बुद्ध धर्म के लामाई रूप मे परिवर्तित हो गये। प्राचीन विलुप्त भारतीय (इडिक) सभ्यता की, जो जीवाश्म (फ़ासिब) हो चुकी थी, विजय के फलस्वरूप यूरेशियाई खानाबदोशो के कारण तैमूर की मृत्यु के दो सौ वर्षों मे इस्लाम की प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी।

१. मासको के आसपास बाले।

राजनीतिक धरातल पर, जिस ईरानी संस्कृति का तैमूर ने पहले समर्थन किया था और फिर उसके प्रति विश्वासघात किया उसका भी यही हाल हुआ। जिन निश्चल समाजों ने यूरेशियाई खानाबदोशों को राजनीतिक दृष्टि से पराजित करने का कमाल दिखाया वे रूसी और चीनी थे। खानाबदोशो के इतिहास के बार-बार दोहराये जाने वाले नाटक के अन्तिम दृश्य का भविष्य उस समय जान लिया गया जब ईसा की सत्रहवी शती के बीच मसकोवी के कज्जाक चाकर और चीन के मंचू मालिक एक-दूसरे से भिड़ गये। ये लोग उत्तरी स्टेप की सीमा पर एक-दूसरे के आमने-सामने जा रहे थे और टकरा गये और यूरेशिया पर अधिकार करने के लिए उनकी पहली लड़ाई आमूर के ऊपरी बेसिन में चंगेज खाँ के पुराने चरागाह के पास हुई। सौ साल के बाद इन प्रतिद्वन्द्वियों के बीच यूरेशिया का विभाजन हो गया।

ऐसा विचार व्यक्त करना विचित्र जान पड़ता है कि यदि वह यूरेशिया की ओर से मुँह न मोड़ता और ईरान पर सन् १३८१ में आक्रमण न करता तो आज ट्रांस-आक्सेनिया और रूस में जो सम्बन्ध है, उसका उलटा होता। इन काल्पनिक परिस्थितियों में रूस उस साम्राज्य में होता जिसका क्षेत्र उतना ही बड़ा होता जितना आज सोवियत रूस का है, किन्तु उसका गुरुत्व केन्द्र (सेंटर आव ग्रेविटी) दूसरा होता। वह ईरानी साम्राज्य होता जिसमें समरकन्द मास्को पर शायद शासन करता, न कि मास्को समरकन्द पर। यह काल्पनिक चित्र विचित्र जान पड़ेगा क्योंकि साढ़े पाँच सौ साल की वास्तविक घटनाएँ भिन्न हैं। पश्चिमी इतिहास के वैकल्पिक रास्ते का इस धारणा पर यदि हम नकशा खींचे कि शार्लमान का आक्रमण जो तैमूर के आक्रमण से कम तीव्र और कम घातक था, पश्चिमी सभ्यता के लिए उतना ही विनाशकारी होता जितना तैमूर का ईरान के लिए, तो कम-से-कम आश्चर्यजनक चित्र सामने आता। इस तुलना के आधार पर हम देखते हैं कि दसवी शती के अन्धकार में आस्ट्रेशिया मागचरो द्वारा निमग्न कर लिया गया होता, न्यूस्ट्रिया वाइकिंगो द्वारा और कैरोलिंजियन साम्राज्य का केन्द्र इसी बर्बर स्वामियो के हाथ में होता। उस समय तक जब चौदहवी शती मे उसमानलियो का आगमन हुआ और उन्होने बर्बरों से कम बुरा विदेशी शासन इन पश्चिमी ईसाई जगत् की त्यक्त सीमाओ पर स्थापित किया।

किन्तु तैमूर का सबसे विनाशकारी कार्य उसके अपने ही विरुद्ध हुआ। उसने अपने नाम को इस प्रकार अमर किया कि भावी पीढ़ियो ने उसके सब कार्यों को भुला दिया जिससे वह सदा के लिए याद किया जाता। कितने आदमी ईसाई जगत् मे या दारुस्सलाम में जानते है कि वह बर्बरो के विरुद्ध सभ्यता के लिए लड़ने वाला था, जिसने उन्नीस वर्षों तक लड़ कर अपने देश के पुरोहितों और निवासियो के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त की। अधिकाश लोगो के लिए तैमूर लग के नाम का कोई अर्थ है तो यही कि वह सैनिक था जिसने विनाशकारी आक्रमण किये और चौबीस वर्षों तक उसी भीषणता का कार्य किया जो पाँच असीरियाई राजाओ ने एक सौ बीस वर्षों में। हम उसे उस पिशाच के रूप में स्मरण करते है जिसने सन् १३८१ ई० मे इसफ़राइन को भूमिसात् किया, जिसने सब्जावार में १३८३ मे दो हजार जीवित बन्दियो का टीला बनवाया और उसे ईंटो से चुनवा दिया, जिसने उसी साल जीरों में पाँच हजार मनुष्यों के सिरों की मीनार खड़ी की, जिसने लूरी के जीवित बन्दियों को १३८६ में चट्टानों के ऊपर से नीचे फेंकवा दिया, जिसने १३८७ ई० में सत्तर हजार आदमियों को कत्ल करके इसफहान में उनके सिरों की मीनारें बनवायी, जिसने सन् १३९८ में दिल्ली में एक लाख आदमियों को कत्ल किया, जब सन् १४०० में सीवास के

गैरिजन ने समर्पण कर दिया तब जिसने चार हजार ईसाइयों को जीवित गड़वा दिया । और सीरिया मे जिसने सन् १४०० और १४०१ में मनुष्य के सिरो की बीस मीनारें बनवायी । हमें तैमूर इन्ही कारनामो से याद आते है । और हम स्टेप का उसे दानव समझते है जैसे चंगेज खाँ और अटिला या इसी प्रकार के और विनाशकारी दैत्य जिनके विरुद्ध उसने अपने जीवन का अधिक भाग धार्मिक युद्ध लड़ने मे बिताया । यह पागल व्यक्ति था जिसकी एक सनक थी कि संसार यह समझे कि मेरे समान सैनिक शक्ति वाला कोई व्यक्ति नही है और जिसने इस शक्ति का कुप्रयोग इसीलिए किया । इसी को अंग्रेज कवि मारलोने अत्युक्ति के साथ बड़े सुन्दर ढंग से लिखा है और उसे तैमूर के मुख से कहलाया है :—

युद्ध के देवता ने अपना स्थान मुझे दे दिया है,
कि मै ससार का जेनरल बनूं,
ईश्वर मुझे हथियार लिए देखकर पीला पड़ गया,
उसे भय हो गया कि मै उसे गद्दी से उतार न दूं ।
जहाँ कही भी मै जाता हूँ घातक बहनों[1] को पसीना छूटने लगता है,
और मृत्यु भय खाकर इधर-उधर दौड़ने लगती है,
कि वे सदा मेरी तलवार को श्रद्धा अर्पित करती रहे ।
करोडो आत्माएँ स्टाइक्स[2] के किनारे बैठी रहती है
कि कब कैरन[3] आकर हमें उस पार नरक में ले जाता है ?
स्वर्ग और नरक उन मनुष्यो की प्रेतात्माओ से भरा है
जिन्हे मैंने रणक्षेत्र से भेजा है
वे मेरी ख्याति स्वर्ग और नरक मे फैलाये[4]

गवर्नर डाकू बन गया

तैमूर और शार्लमान तथा पिछले असीरियाई राजाओं के जीवन-वृत्त के विश्लेषण मे हमने देखा कि तीनो उदाहरणो का एक-सा हाल है । समाज जिस सैनिक शक्ति को अपनी सीमा के निवासियों मे इसलिए पुष्ट करता है कि वह बाहरी बैरियो से रक्षा करे, वह यदि अवान्तर भूमि मे अपने उचित क्षेत्र को छोड़कर अन्दर की ओर सीमा के निवासियों के भाइयो पर आक्रमण करने लगे तो वह अमगलकारी और नैतिक दोष हो जाता है । इस सामाजिक बुराई के और भी उदाहरण हमे याद आते है ।

हम मरशिया के बारे मे विचार करेगे जिसने ब्रिटेन में रोम के दूसरे उत्तराधिकारी राज्यों पर आक्रमण किया । उसने अपनी सेना इसलिए तैयार कर रखी थी कि वेल्स के विरुद्ध अंग्रेजी

१. प्राचीन यूरोपीय साहित्य में भाग्य की तीन बहनें मानी गयी है ।
२. यूनानी पुराण की वैतरणी ।
३. वह नाविक जो वैतरणी में नाँव खेकर आत्माओं को पार ले जाता है ।
४. क्रिस्टोफर मारलो : तैमूर महान्, २, २२३२–८, २२४५–६ ।

सीमा की रक्षा करें, अंग्रेज़ी प्लैंटेजेनेट राज्य का उदाहरण भी है जिसने इसके बजाय कि केल्टिक सीमा को पार करके लैटिन ईसाई ससार क्षेत्र को बढाये, फ्रांस को विजय करने के लिए सौ साल तक लड़ाई की, और सिसली के नारमन राजा रोजर का उदाहरण है जिसने अपनी सैनिक शक्ति इटली के राज्यों को जीतने में लगायी और अपने पुरखो के उस कार्य को नही किया कि परम्परावादी ईसाई जगत् और दारुस्सलाम पर विजय प्राप्त करके भूमध्यसागर में पश्चिमी ईसाई ससार के क्षेत्र को बढ़ाये । इसी प्रकार यूरोपीय धरती पर मिनोई सभ्यता के माइसीनियन चौकीदारो ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया अपनी जन्मभूमि क्रीट को तहस-नहस करने मे । यह शक्ति उन्होंने महाद्वीप के बर्बरो से रक्षा करने के लिए अर्जित की थी ।

मिस्री ससार मे नील नदी के पहले प्रपात के दक्षिण, दक्षिणी सीमा के लोगो ने इसलिए सैनिक शक्ति अर्जित की कि उत्तर के न्यूबियन बर्बरो के आगमन को रोक सके किन्तु उन्होने पीछे मुड़कर अन्दर के लोगो पर आक्रमण किया और पशुबल से दो राजाओ को मिलाकर सयुक्त राज्य बनाया । सैन्यवाद की इस घटना को इसके अपराधी ने बड़ी आत्मतुष्टि के साथ मिस्री सभ्यता के सबसे प्राचीन अनुलेखो मे अकित कराया है । नारमर के चित्र में अकित है कि ऊपर का मिस्री योधा विजयोल्लास के साथ निचले मिस्र को पराजित करके आ रहा है । उसका अकन इस प्रकार है—विजयी राजा अति-मानव की भाति फूल गया है और वह अकड़े हुए झण्डा बरदारो के पीछे-पीछे चल रहा है । और उसके सामने बैरी की सिर कटी हुई लाशो की दोहरी पक्तियाँ है । इसके नीचे एक बैल के रूप मे वह गिरे हुए बैरी को कुचलता है और एक नगर के किले के दरवाजे को छोड रहा है । इसके साथ अनुलेख है जिसमे लिखा है उसने १२०,००० मनुष्यो को ४००,००० बैलो को और १,४२२,००० भेड़ और बकरियो को बन्दी बनाया ।

इस पुरातन मिस्री भीषण चित्रण मे सैन्यवाद की पूरी ट्रेजेडी दिखायी गयी है जिसका अभिनय नारमन के समय से बार-बार हुआ है । इन सब अभिनयो मे सबसे भयकर वह है जिसका अपराधी एथेन्स था, जब उसने 'यूनान के मुक्तिदाता' की भूमिका छोड़कर 'अत्याचारी नगर' का रूप धारण किया । एथेन्स के इस विपथन के कारण सारे यूनान तथा एथेन्स को उस विनाश का सामना करना पडा जो एथेनो-पेलोपोनीशियाई युद्ध का कारण हुआ और जिससे वह कभी सँभल न सका । जिन सैनिक क्षेत्रो का सर्वेक्षण इस अध्याय मे हमने किया है वे 'कोरोस-युबरीस-एथ' की घातक शृखला के ज्वलन्त उदाहरण हैं । क्योकि सैनिक कौशल और शक्ति दोधारी तलवार है । यदि उचित रूप से उसका प्रयोग न किया गया तो चलाने वाले को घातक हानि पहुँचा सकता है । साथ ही जो सैनिक कृत्यो के लिए सत्य है वही मानव के और क्षेत्रों के लिए भी सत्य है जो कम संकटमय है, जहाँ वह बारूद तो 'कोरोस' से 'युबरीस' होते हुए 'एथ' तक पहुँचती है उतनी तीव्र नही होती । जो भी मानवी शक्ति हो और जो भी उसका कार्यक्षेत्र हो यह प्रकल्पना कि एक उचित क्षेत्र में उसने सीमित कार्य में सफलता प्राप्त कर ली है तो दूसरी परिस्थिति में भी उसे अपरिमित सफलता प्राप्त होगी बौद्धिक और नैतिक विपथन के सिवाय और कुछ नही है और इसका परिणाम विनाश ही होता है । इस कार्य-कारण के परिणाम का अब हम असैनिक क्षेत्र से उदाहरण देंगे ।

(७) विजय का मद

पावन धर्ममण्डल (द होली सी)

एक और साधारण रूप जो हमे 'कोरोस, युबरीस और एथ' की दुखमय शृंखला में मिलता है, वह है विजय का मद। चाहे वह सैनिक विजय के पुरस्कार के कारण हो या आध्यात्मिक संघर्ष में विजय का परिणाम हो। रोम के इतिहास से इन दोनों प्रकारों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। दूसरी शती ई० पू० में रिपब्लिक के नष्ट हो जाने पर सैनिक विजय का नशा और आध्यात्मिक विजय का नशा जो ईसा की तेरहवी शती में पोपतन्त्र की समाप्ति पर हुआ। रोमन रिपब्लिक के विनाश के सम्बन्ध में हम कह चुके है। अब हम दूसरे विषय पर कहेंगे। पश्चिमी संस्थाओं में सबसे बड़ा रोमन धर्ममण्डल था। इसके इतिहास के जिस अध्याय से हमारा अभिप्राय है वह २० दिसम्बर, सन् १०४६ से आरम्भ होता है जब सम्राट् हेनरी तृतीय ने सूतारी के धर्म-परिषद् (साइनाड आव सूतारी) का उद्घाटन किया और बीस सितम्बर को सन् १८७० मे राजा विक्टर एमानुएल की सेना ने रोम पर अधिकार कर लिया, समाप्त होता है।

मानवी संस्थाओ में पोप का यह 'ईसाइयों का जनतन्त्र' अद्वितीय है। दूसरे समाजों में जिन संस्थाओ का विकास हुआ है उनसे इनकी तुलना करना बेकार है क्योकि उनमें और इसमें मौलिक अन्तर है। नकारात्मक रूप में ही इसका ठीक वर्णन हो सकता है। यह जनतन्त्र सीज़र-पोप शासन का ठीक उलटा था, जिस शासन की यह सामाजिक प्रतिक्रिया आध्यात्मिक प्रतिवाद थी। यह वर्णन और किसी वर्णन से अधिक ठीक हिल्डब्रैंड की सफलताओं को बताता है।

जब ग्यारहवी शती के दूसरे चतुर्थांश में टसकनी का हिल्डब्रैंड-रोम में आ बसा, उसने अपने को पूर्वी रोमन साम्राज्य की परित्यक्त सीमा मे पाया जिस पर बाइजेन्टाइन समाज की एक निकृष्ट शाखा ने अधिकार कर रखा था। इस युग के रोमन सैनिक दृष्टि से उपेक्षणीय, सामाजिक दृष्टि से उपद्रवी और आध्यात्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से दिवालिये थे। वे अपने लोम्बार्ड पड़ोसियो का सामना नही कर सकते और वे अपने देश के तथा सागर पार की पोप की सारी जागीरो को खो चुके थे और जब मठ के जीवन (मोनास्टिक लाइफ) के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रश्न आया तब उन्होने आल्प्स के पार क्लूनी से निर्देश माँगा। पोपतन्त्र की आध्यात्मिक स्थिति सुधारने का पहला प्रयत्न इस प्रकार हुआ कि उसने रोमनों को त्याग दिया और आल्पस के पार से नियुक्ति हुई। ऐसे विदेशी और तिरस्कृत रोम में हिल्डब्रैंड तथा उसके उत्तराधिकारियो ने पश्चिमी ईसाई समाज की श्रेष्ठ सस्था की स्थापना की। उन्होंने पोप के रोम के लिए ऐसे साम्राज्य की विजय प्राप्त की जिसका प्रभाव रोम के सम्राटों से अधिक मनुष्य के हृदय पर था। और जिसका क्षेत्र पश्चिमी यूरोप मे राइन से डैन्यूब तक विस्तृत था जहाँ आगस्टस और मारकस आरीलियस की अक्षौहिणी ने पाँव भी नही रखा था।

पोप की यह सब विजय ईसाई जनतन्त्र के विधान के कारण थी, जिसकी सीमा का विस्तार पोप लोग कर रहे थे। यह ऐसा विधान था जिससे लोगों में विरोध के बजाय विश्वास होता था। इस विधान में दो नीतियों का सयोग था। चर्च सम्बन्धी केन्द्रीय शासनवादी नीति और

साम्य की राजनीतिक विभिन्नता और अधिकार के हस्तान्तरण की नीति का यह मिलाप था और वैधानिक सिद्धान्त मे लौकिक शक्ति पर आध्यात्मिक शक्ति का प्रभुत्व मुख्य बात थी, इस संयोग मे एकता प्रमुख थी। इसके कारण पश्चिमी समाज की स्वतन्त्रता और लचीलापन अक्षुण्ण बना रहा, जो विकास के लिए आवश्यक है। उन मध्य के राज्यो मे भी जहाँ पोप धार्मिक तथा लौकिक दोनो प्रकार के अधिकारों का दावा करता था, बारहवी शती के पोपों ने नगर-राज्यों को स्वतन्त्रता के विकास की ओर प्रोत्साहित किया। बारहवी और तेरहवी शती मे जब इटली मे नागरिक आन्दोलन पूरी शक्ति पर था, और जब पश्चिमी ईसाई जगत् में पोप का अधिकार शिखर पर था, वेल्स के एक कवि ने कहा कि कैसी विचित्रता है, जहाँ रोम मे पोप की ताड़ना, एक तिनके को भी नहीं हटा सकती वह दूसरी जगह राजाओ की सन्तानों को कँपा रही है।[१] गिराल्डस कैम्ब्रेनसिस ने अनुभव किया कि मै एक विरोधाभास उपस्थित कर रहा हूँ जो व्यग्य के लिए सुन्दर विषय है। इस युग मे पश्चिमी ईसाई जगत् के अधिकांश राजाओ तथा नगर-राज्यों ने पोप का आधिपत्य बिना आनाकानी के स्वीकार किया। उसका कारण यह था कि यह सन्देह नही था कि पोप लौकिक शक्ति का अपहरण करेगा।

उस समय जब पोपों की महन्तशाही (हायरार्की) लौकिक तथा क्षेत्रिक (टेरिटोरियल) आकाक्षाओ से तटस्थ रहने की इस राजमर्मज्ञता की नीति के साथ शासन की शक्तिशाली तथा साहसिक क्षमता मिली हुई थी। यह क्षमता रोम के पोपों को बाइज़ैन्टाइन से उत्तराधिकार मे मिली थी। परम्परावादी ईसाई समाज में इस क्षमता का इस बात के लिए प्रयोग किया गया कि रोमन साम्राज्य के पुनर्जीवित प्रेत को यथार्थ बनाया जाय, जो प्रयत्न घातक था। इससे परम्परावादी ईसाई समाज एक भयावह सस्था के बोझ से दब गया, क्योकि यह बोझ वह नही सँभाल सकता था। जब कि ईसाई जनतन्त्र के रोमन सर्जनकर्ताओ ने अपनी शासन-क्षमता, नयी योजना द्वारा और विस्तृत आधार पर, हल्की रचना मे लगायी। पोप के मकड़ी के जाले के महीन धागो में, जो पहले बुना गया था मध्ययुगीन पश्चिमी ईसाई समाज स्वतन्त्रता से फँस गया जिससे प्रत्येक भाग को और सम्पूर्ण समाज को लाभ हुआ। बाद मे जब सघर्ष के आघात से धागे मोटे और कठोर हो गये, ये रेशमी धागे लोहे के पट्टे बन गये। इनका स्थानीय राजाओ और जनता पर इतना अधिक दबाव पड़ा कि उन्होने ऐसी मनस्थिति मे उन्हे तोड़ा कि इस बात की परवाह नही की कि हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने मे उस सम्पूर्ण ईसाई जगत् की एकता को छिन्न-भिन्न कर रहे है जिसे पोपतन्त्र ने स्थापित किया था और सुरक्षित रखा था।

शासन की क्षमता भी भूमि प्राप्त करने की आकांक्षा का अभाव पोप के निर्मित कार्य में, मूल प्रेरक शक्ति नही था। पोप तन्त्र इसलिए सर्जनात्मक हो सका कि उसने एक प्रौढ समाज की जाग्रत इच्छा को, जो विकास और उच्च जीवन चाहती थी, बिना संकोच और प्रतिबन्ध के अपना नेतृत्व प्रदान किया उसकी अभिव्यक्ति की और उसका संगठन किया।

१. दी राइट रेवरेंड एच० के० मानसिगनर मैन : दि लाइव्ज आव दि पोप्स इन दि मिडिल-एजेज़, खण्ड ६, पृ० ७२।

पोपतन्त्र ने उसका आकार स्थिर किया और कीर्तिवान् बनाया और बिखरे अल्पसंख्यकों तथा अलग-अलग व्यक्तियो के दिवास्वप्न को साकार किया। और एक मत से उन लोगो को विश्वास हो गया कि इस उद्देश्य के लिए चेष्टा करना श्रेयस्कर है। उन्हे यह जानकर और भी आनन्द हुआ जब उन्होने देखा कि पवित्र धर्ममण्डल की बाजी लगाकर भी पोप लोग इसके लिए प्रचार कर रहे है। ईसाई लोकतन्त्र की विजय के लिए पोप का यह अभियान था कि पादरी वर्ग दो नैतिक प्लेग से मुक्त हो—कामुकता के व्यभिचार और आर्थिक भ्रष्टाचार से, वे यह भी चाहते थे कि लौकिक शक्तियाँ धर्म के विषयो मे हस्तक्षेप न करे और पूर्वी ईसाई तथा पवित्र स्थलो को इस्लाम के तुर्की हिमायतियो से मुक्त किया जाय। किन्तु हिल्डब्रैड के पोप तन्त्र का कुल यही काम नही था, क्योकि कठिन-से-कठिन समय मे जब पोपो के नेतृत्व मे ये 'पवित्र युद्ध' होते रहे, उन्हे शान्ति के समय के कार्यों के लिए विचार और इच्छा थी जिसके कारण चर्च की सुन्दरतम आत्माभिव्यक्ति होती रही और उसके द्वारा सर्जनात्मक कार्य होता रहा, नवजात विश्व विद्यालय, नये ढग का मठ का जीवन और भिक्षुओ का नया सगठन।

हिल्डब्रैडी चर्च का पतन उतना ही विचित्र है जितना उसका उत्कर्ष था। क्योकि जो भी गुण उसमे उस समय थे जब वह शिखर पर था वे सब उसके ठीक उलटे हो गये जब वह अधोबिन्दु पर पहुँचा। वह ईश्वरीय सस्था भौतिक शक्तियो के विरुद्ध आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के लिए लड़ रही थी और जीत रही थी। वह उन्ही दोषो मे भर गयी जिनका वह विरोध कर रही थी। जिस पवित्र धर्ममण्डल ने धार्मिक पदो के विक्रय के विरुद्ध सघर्ष किया था उसी ने अब पादरियो को विवश किया कि धार्मिक पदोन्नति के लिए रुपये देकर रोम से रसीद प्राप्त कर ले। यद्यपि रोम ने स्वय मना कर दिया था कि किसी लौकिक अधिकारी से पदोन्नति न खरीदे। जो रोम के पोप की सरकार (क्यूरिया) नैतिक तथा बौद्धिक उन्नति का शीर्षक थी और सबके आगे थी, वही आध्यात्मिक सकीर्णता का दुर्ग बन गयी। धर्म की प्रभुसत्ता ने स्वय अपने लौकिक अधीनस्थ लोगो अर्थात् स्थानीय राजाओ और उभरते हुए स्थानीय राज्यों के हाथो मे आर्थिक और शासकीय साधन दे डाले। इन साधनो को पोप ने ही निर्मित किया था जिससे उसके अधिकार का प्रभाव रहे। अन्त मे पोपतन्त्र की एक जागीर का वह स्थानीय राजा रह गया। जिस पोप के पास कभी महान् प्रभुसत्ता थी उसी को अब पोपतन्त्र के विनष्ट साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यो का सबसे छोटा भाग पुरस्कार मे मिला। उसे इसी थोड़े-से राज्य पर सन्तोष करना पड़ा। क्या कभी कोई सस्था इतनी पतित हुई कि ईश्वर के विरोधियो को उसकी निन्दा करने का अवसर मिले। यह कैसे हुआ और क्यो?

किस प्रकार ऐसा हुआ। यह हिल्डब्रैड के सार्वजनिक जीवन के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम लिखित विवरण से पता चलता है।

रोमन चर्च की सर्जनात्मक आत्मा जिसने ग्यारहवी शती मे ईसाई जनतन्त्र स्थापित करके सामन्ती अराजकता से पश्चिमी समाज को मुक्त करने का जैसे प्रयत्न किया उसी प्रकार द्विविधा मे पड गये जिस प्रकार हमारे समय मे उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को दूर करने के लिए विश्व-व्यवस्था स्थापित करने मे लगे है। उनके अभिप्राय का मूल था शारीरिक बल के स्थान पर आत्मिक अधिकार स्थापित करना। और उनकी बड़ी-बडी विजय आध्यात्मिक तलवार से हुई। किन्तु ऐसे अवसर भी आये जब ऐसा जान पड़ा

कि शारीरिक बल आध्यात्मिक शक्ति की मलिनता के साथ अवहेलना कर सकता है और ऐसी ही अवस्था मे रोमन चर्च की सैनिक तन्त्र को चुनौती मिली कि स्फिक्स की पहेली का उत्तर दे। अर्थात् क्या ईश्वर के सैनिक को अपने आध्यात्मिक शस्त्र को छोड़कर किसी दूसरे अस्त्र का प्रयोग नही करना चाहिए, चाहे उसकी गति स्थिर हो जाय? या उसे अधिकार है कि जब शैतान ईश्वर से युद्ध करे तब बैरी के विरुद्ध उसी के अस्त्र का प्रयोग करे? हिल्डब्रैंड ने अन्तिम विकल्प को चुना। जब ग्रेगरी षष्ठ ने उसे पोप के खजाने का सरक्षक मनोनीत किया और उसने देखा कि बराबर उसे लुटेरे लूट रहे है उसने सेना तैयार की और लुटेरे को सेना द्वारा पराजित किया।

जिस समय हिल्डब्रैंड ने यह कार्य किया उसके आन्तरिक नैतिक चरित्र का पता लगाना कठिन था। चालीस साल के बाद उसके अन्तिम समय भी इस पहेली का उत्तर थोडा-थोडा ही स्पष्ट होने लगा। क्योकि जब वह सन् १०८५ मे सैलेरिनों मे निर्वासित होकर पोप के रूप मे मर रहा था, रोम दूसरी विपत्ति के बोझ से धराशायी हो गया था और यह उस नीति के कारण जो उसके बिशप द्वारा व्यवहृत की गयी थी। सन् १०८५ मे नारमनो ने रोम को लूटा और उसे जला दिया। पोप ने इन्हे इसलिए बुलाया था कि सन्त पीटर की वेदी से, जो पोप का खजाना था, उस पर जो सैनिक सघर्ष हो रहा था, उसे सहायता दें। यह सघर्ष सारे पश्चिमी ईसाई ससार मे फैल गया। हिल्डब्रैंड और सम्राट् हेनरी चतुर्थ के बीच के युद्ध की चरम सीमा से कुछ उस युद्ध की बानगी मिलती है जो डेढ सौ साल बाद इनोसेंट चतुर्थ और फेडरिक द्वितीय मे हुआ और जो अधिक भीषण और विनाश करने वाला था। जब हम इनोसेंट चतुर्थ तक पहुँचते है, जो वकील से सैनिक बन गया था, हमारे सन्देह दूर हो जाते हैं। हिल्डब्रैंड स्वयं हिल्डब्रैंडी चर्च को ऐसी राह पर लाया जिससे उसके बैरियो की विजय हो—उसके बैरी थे संसार, शरीर और शैतान जो ईश्वर के नगर को ध्वस्त करना चाहते थे जिसे वह धरती पर लाना चाहता था—

> उसने किसी बुद्धिमान् को स्वीकार नही किया
> न किसी शिक्षक को; चर्च भी अपने
> पुरोहितो की सभा में इसलिए बैठा था
> कि सोज़र की गद्दी पर सन्त पीटर को बैठाये
> और इस प्रकार मानव के लिए उन वचनो को पूरा करे
> जिनके लिए ईसा को उन्होंने पूजा और उससे प्रेम किया।
> इस किसी बात ने उसके धार्मिक नियमों को
> शिथिल नही किया कि वह लौकिक शासन का विस्तार करे।[1]

यदि हम इस बात को समझा सके हैं कि किस प्रकार पोपतन्त्र को शारीरिक शक्ति के दैत्य ने ग्रस लिया, जिसका वह शमन करना चाहता था, तब हम उस तथ्य को भी पा गये कि किस प्रकार पोप के गुण दोषो में परिवर्तित हो गये। आध्यात्मिक तलवार की जगह भौतिक

१. राबर्ट ब्रिजेज : वि टेस्टामेन्ट आव ब्यूटी, ४,२, २५६–६४।

तलवार का आना ही मुख्य परिवर्तन है, शेष सब तो स्वाभाविक परिणाम हैं। उदाहरण के लिए यह कैसे हुआ कि पवित्र धर्ममण्डल जिसका ग्यारहवीं शती में मुख्य सम्बन्ध पुरोहितों की अर्थ-व्यवस्था से केवल इतना था कि पदोन्नति के लिए धन न लिया जाय, वही तेरहवीं शती में अपने नियुक्त व्यक्तियों के लाभ के लिए धन की व्यवस्था करें ? और चौदहवी शती मे अपने लाभ के लिए उसी धार्मिक आय पर कर लगाये जिसे उसने लौकिक अधिकारियो को धार्मिक पदोन्नति के लिए घृणित कहकर वर्जित कर दिया था। इसका उत्तर है कि पोपतन्त्र सैनिक-वादी हो गया और युद्ध मे धन की आवश्यकता पड़ती है।

तेरहवीं शती के पोपो और हाहेनस्टाउफ़ेन के बीच जो महान् युद्ध हुआ उसका वही परिणाम हुआ जो उन युद्धो का हुआ करता है जो कटुपूर्ण अन्त तक होते हैं। नाम मात्र के विजयी ने अपने पराजित पर घातक प्रहार किया और उसी में अपने ऊपर भी घातक प्रहार कर डाला। इन दोनों योद्धाओं मे वास्तविक विजयी तीसरा था। पचास साल बाद फ्रेडरिक द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् पोप बोनिफेस अष्टम ने फ्रांस पर उसी वज्र से प्रहार किया जिससे उसने (पवित्र रोमन) सम्राट् को ध्वस्त किया था। परिणाम में सन् १२२७–६८ के बीच के युद्ध के कारण पोप-तन्त्र भी उतना ही नष्ट हो गया जितना उसने (पवित्र रोमन) साम्राज्य को नष्ट किया था। फ्रांस उतना बलशाली हो गया जितना पोप या साम्राज्य उस युद्ध के पहले था, जिसमें दोनों ने एक-दूसरे को नष्ट कर दिया। राजा फिलिप ला बेल ने नोत्रदाम के गिरजाघर के सामने पोप के आदेश (बुल) को जला दिया जिसमे पादरियो और जनता की सहमति थी। फिर पोप का अपहरण कर दिया और उसकी मृत्यु के बाद पोप की राजधानी रोम से एविगनान को बदलवा दी। इसके बाद (१३०५–७८) तक वह बन्दी रहा और (१३७९–१४१५) तक रोम तथा फ्रांस में विच्छेद रहा।

यह अब निश्चित हो गया कि स्थानीय लौकिक राजा, शीघ्र या विलम्ब से अपने-अपने राज्यो में उन सब शासकीय और आर्थिक संगठनो को पा जायेंगे जिन्हें पोप अपने लिए निर्मित कर रहे थे। यह स्थानान्तरण केवल समय की बात थी। सड़क के सीमा-चिह्न के रूप मे देखें—इंग्लैंड की प्रोवाइज़रों की सविधि[1], (सन् १३५१) और प्रिमुनायर[2] (१३५३), वे सुविधाएँ, जो सौ साल बाद क्युरिया को विवश होकर फ्रांस और जरमनी को इसलिए देनी पडी कि बैसेल की परिषद् में वह समर्थन न करें, सन् १५१६ की फ्रास तथा पोप की सन्धि और १५३४ का इंगलिश एक्ट आव सुप्रिमेसी।[3] पोप की सत्ता का लौकिक शासक के हाथो में स्थानान्तरण 'रिफार्मेशन' (धार्मिक सुधार का आन्दोलन) के दो सौ साल पहले से आरम्भ

१. स्टेट्यूट आव प्रोवाइजर्स—इस कानून के अनुसार पोप किसी को किसी ऐसे स्थान पर नियुक्त नहीं कर सकता था जो रिक्त न हो।—अनु०

२. वह कानून जिससे मजिस्ट्रेट को अधिकार होता था कि उन लोगों को तलब कर सके जो पोप की व्यवस्था इंग्लैंड में रखने का प्रयास करते थे।—अनु०

३. वह विधि जिससे पोप का अधिकार हटाकर राजा का अधिकार स्थापित किया गया।—अनुवादक

हो गया था और वह उन सभी राज्यों में हुआ जो कैथोलिक बने रहे और जो प्रोटेस्टेंट हो गये। सोलहवीं शती में प्रक्रिया पूरी हो गयी। और यह संयोग की बात नहीं है कि उसी शती में वह नींव पड़ी जिस पर आधुनिक पश्चिमी समाज के अधिकेन्द्रित (टोटालिटेरियन) राज्य खड़े हैं। जो कुछ सीमा-चिह्न हमने बताये हैं उस प्रक्रिया में प्रमुख बात थी सार्वभौम धर्मतन्त्र (चर्च) से हटकर स्थानीय लौकिक राज्यों की ओर भक्ति का चला जाना।

उन लूट के मालों में सबसे मूल्यवान् निधि मानव-हृदय पर अधिकार था जो इस महान् तथा उच्च संस्था से इन्हें मिली थी। क्योंकि आय के लिए धन उगाहने और सेना सज्जित करने की अपेक्षा भक्ति प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर है और इसी से ये नये बने राज्य अपने को जीवित रख सके। इसी लक्षण के अनुसार, हिल्डब्रैंड का जो आध्यात्मिक उत्तराधिकार हमें मिला है, उससे जो स्थानीय राज्य एक समय निर्दोष थे वे आज सभ्यता के लिए अभिशाप बन गये हैं। क्योंकि भक्ति की भावना जो भगवान् की सेवा के कारण परोपकारी सर्जनात्मक शक्ति थी, वही जब मनुष्य के गढ़े देवताओ की ओर लगी तब विनाशात्मक शक्ति हो गयी। जैसा हमारे मध्ययुगीन पुरखे जानते थे, स्थानीय राज्य मनुष्य की बनायी संस्थाएँ हैं वे आवश्यक और लाभकारी थीं और जागरूकता किन्तु बिना जोश के, उनसे साधारण सामाजिक कर्तव्य-पालन की अपेक्षा करती थी। जिस प्रकार आज हम नगरपालिकाओं और जिला परिषदों के प्रति कर्तव्यपालन करते हैं। इन सामाजिक तन्त्रों के प्रति देवता के समान भक्ति दिखाना विनाश को बुलाना है।

हमें सम्भवतः उस प्रश्न का कुछ उत्तर मिल गया कि किस प्रकार पोपतन्त्र को ऐसे विचित्र भाग्य परिवर्तन का सामना करना पड़ा। किन्तु प्रक्रिया के वर्णन करने में हमने कारण नहीं बताया। क्या कारण था कि मध्ययुगीन पोपतन्त्र अपने ही यन्त्रों का दास बन गया और उसने अपने ही भौतिक साधनों से अपने को ही धोखा दिया। क्यों वह आध्यात्मिक पक्ष से रह गया जिसके लिए उसका निर्माण हुआ था। इसका उत्तर इसमें जान पड़ता है कि आरम्भ की सफलता का दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव था। शक्ति और शक्ति का संघर्ष भयंकर है। किसी सीमा तक तो यह उचित है, जो अन्तरात्मा से जाना जा सकता है—कैसे यह नहीं कहा जा सकता परन्तु इसका परिणाम भयावह होता है क्योंकि आरम्भ में बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हो जाती है। पवित्र रोमन साम्राज्य से संकटमय संघर्ष में आरम्भ में विजय के मद में आकर ग्रेगरी सप्तम (हिल्डब्रैंड) ने शक्ति का प्रयोग जारी रखा और आध्यात्मिक धरातल पर की विजय अपना ही अन्त हो गयी। इस प्रकार पोप ग्रेगरी सप्तम साम्राज्य से इसलिए लड़ रहा था कि धर्मतन्त्र के सुधार में जो अड़चन है उसको हटाये, पोप इनोसेंट षष्ठ साम्राज्य से इसलिए लड़ा कि उसकी लौकिक सत्ता को नष्ट कर दे।

क्या हम उस विशेष प्रकरण का पता लगा सकते हैं जब हिल्डब्रैंड की नीति पथ से विचलित हो गयी, या पुरानी परम्परा की भाषा में संकीर्ण राह से वह हट गयी। हमें उस प्रकरण के पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए जब वह गलत रास्ते की ओर मुड़ी।

सन् १७०५ ई० तक पादरियों की काम-वासना तथा आर्थिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध दोहरी लड़ाई सारे पश्चिमी संसार में सफलता के साथ आरम्भ हुई। यह विजय रोमन धर्ममण्डल की शक्ति से हुई। यही रोमन धर्ममण्डल पचास साल पहले अपने व्यभिचार के लिए कुख्यात था।

यह विजय हिल्डब्रैंड का व्यक्तिगत कार्य था। यह लड़ाई वह आल्पस के पार लड़ा और पोप की गद्दी के पास। और अन्त मे वह उस पद पर पहुँचा जिसे उसने धूल में से ऊपर उठाया। वह यह युद्ध भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी शस्त्रो से लडा, जिनका भी वह प्रयोग कर सका। जब वह पोप ग्रेगरी सप्तम के रूप मे शासन कर रहा था, उस समय विजय की घड़ी में उसने ऐसा कदम उठाया जिसे उसके समर्थक समझते है कि बहुत आवश्यक था और उसके लिए तर्क उपस्थित करते है और उसके आलोचक भी तर्क उपस्थित करते है कि वह विनाशकारी था। उसी साल हिल्डब्रैंड ने अपने युद्ध-क्षेत्र को बढाया। पहले तो यह युद्ध रखेलियो के रखने और धर्म-पद विक्रम के विरुद्ध था जो उचित जान पड़ता था, अब वह धार्मिक अभिषेक के विरुद्ध भी बढा, जो सघर्ष विवादास्पद है।

तर्क की दृष्टि से धार्मिक अभिषेक के विरुद्ध का सघर्ष कदाचित् उचित जान पड़े क्योकि रखेलियो के रखने और धर्म-पद-विक्रम के विरुद्ध के सघर्ष का यह अन्तिम रूप जान पड़ता है और यदि ये तीनो सघर्ष धर्मतन्त्र की स्वतन्त्रता का सघर्ष माना जाय। हिल्डब्रैंड की दृष्टि में सारा परिश्रम व्यर्थ जान पडा यदि वह काम और लक्ष्मी के विरुद्ध लडकर धर्मतन्त्र को लौकिक शक्ति के बन्धन मे छोड देता। किन्तु इस तर्क से एक प्रश्न उठता है जिसे हिल्डब्रैंड के आलोचक पूछने के अधिकारी है यद्यपि वे स्वय इसका उत्तर इसके समर्थन या विरोध मे नही दे सकते। सन् १०७५ मे क्या ऐसी परिस्थिति थी जिसमे कोई तीव्र बुद्धि और दृढ़ मन वाला व्यक्ति, जो पोप की गद्दी पर बैठा हो, यह सोच सकता था कि धर्म-तन्त्र के सुधारवादी दल मे जिसका प्रतिनिधि रोमन क्यूरिया था और ईसाई राष्ट्रमण्डल की लौकिक शक्ति में, जिसका प्रतिनिधि पवित्र रोमन साम्राज्य था, किसी सच्चे और फलदायक सहयोग की सम्भावना नही थी ? इस प्रश्न पर प्रमाण का बोझ कम-से-कम दो कारणों से हिल्डब्रैंड के समर्थको पर है।

पहली बात यह है कि न तो हिल्डब्रैंड, न उसके समर्थक—सन् १०७५ के उस आज्ञप्ति (डिकरी) के पहले या बाद जिसमें जो पादरी नही थे उनकी पदोन्नति का निषेध किया गया था—इस बात से इनकार कर सकते कि धर्मतन्त्र के, पोप से लेकर नीचे तक के, पादरी अधिकारियो के चुनाव मे लौकिक अधिकारियो का भी योगदान था। दूसरी ओर १०७५ से पहले तीस वर्षों में रोमन धर्ममण्डल और पवित्र रोमन साम्राज्य रखेलियो और धर्म-व्यवस्था मे पदोन्नति वाले सघर्ष मे कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम कर रहे थे। यह भी स्वीकार करना होगा कि हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद और उसके पुत्र की अवयस्कता (माइनारिटी) मे साम्राज्य का यह सहयोग कम हो गया और जब हेनरी चतुर्थ वयस्क हो गया उसका आचार असन्तोषजनक था। इन परिस्थितियो मे पोपतन्त्र ने वह नीति अपनायी कि जो पादरी नही थे (ले) उनका धार्मिक नियुक्तियो मे हाथ न रहे। यह उचित भले ही रहा हो, बडा क्रान्तिकारी कदम था और सब उत्तेजनाओ के होते हुए हिल्डब्रैंड १०७५ मे युद्ध के लिए न ललकारता तो ऐसा समझा जाता है कि अच्छा सम्बन्ध फिर स्थापित हो जाता। यह धारणा बनाये बिना नहीं रहा जा सकता कि हिल्डब्रैंड असहिष्णुता के धोखे में आ गया जो 'यूब्रीस' का प्रमुख चिह्न है। साथ ही यह धारणा भी होती है कि उसके श्रेष्ठ उद्देश्य में साम्राज्य की शक्ति से बदला लेने की भावना भी मिली हुई थी, उस अपमान का बदला, जो १०४६ मे सुतारी की धर्मसभा में, पतित पोपतन्त्र का

किया गया था । यह अन्तिम धारणा इस बात से और दृढ हो जाती है कि पोप का ताज पहनते समय हिल्डब्रैंड ने ग्रेगरी का नाम रखा जो उस पोप का था जिसे उसने गद्दी से उतारा ।

पदोन्नति के इस नये प्रश्न को सैनिक बल के सहारे उठाने के कारण साम्राज्य और पोपतन्त्र के बीच संघर्ष संकटपूर्ण था क्योकि यह तीसरा विषय पहले दोनों विषयों की अपेक्षा कम स्पष्ट था । पहले दोनों विषयो पर कुछ ही पहले साम्राज्य और पोपतन्त्र सहमत थे ।

सन्दिग्धता का एक कारण इसलिए यह था कि हिल्डब्रैंड के समय तक यह निश्चित हो चुका था कि बिशप की श्रेणी के पादरी अधिकारी की नियुक्ति में अनेक दलो की सहमति आवश्यक थी । धार्मिक तन्त्र की मर्यादा का प्रारम्भिक एक नियम था कि बिशप का चुनाव पादरियो तथा उसके धर्ममण्डल के लोगो द्वारा होना चाहिए और उसका पवित्रीकरण सस्कार उसके प्रदेश के बिशपो के निश्चित कोरम द्वारा होना चाहिए । और जब से कान्स्टेटाइन के धर्म-परिवर्तन के समय यह प्रश्न उठा, किसी लौकिक शक्ति ने बिशपो के धार्मिक विशेषाधिकार को हडपने की चेष्टा नही की, न चुनौती दी । कम-से-कम सिद्धान्तत. यह अधिकार पादरियो और जनता का था । विधानत. क्या उचित है इसका विचार स्थगित करके लौकिक अधिकारियो द्वारा यथार्थत: यही होता रहा कि प्रत्याशियो को वे नामाकित करते थे और चुनाव में उन्हे प्रतिषेध (विटो) का अधिकार था । हिल्डब्रैड ने स्वय अनेक अवसरो पर इसे स्वीकार किया था ।

इसके अतिरिक्त ग्यारहवी शती तक व्यावहारिक दृष्टि से पादरियो की नियुक्ति पर परम्परागत लौकिक नियन्त्रण और दृढ हो गया था । क्योकि पादरी बहुत दिनो से दूसरे अधिकाधिक धार्मिक कृत्यो के साथ-साथ लौकिक कार्य भी करते आये थे । सन् १०७५ तक पश्चिमी ईसाई जगत् का बहुत कुछ सिविल शासन पादरियो के हाथ मे था । जो सामन्ती काल से करते आये थे । जो पादरी नही है उनके धर्म-सस्कार मे पादरियों का हाथ न होने से लौकिक शक्ति के अधिकार क्षेत्र से उसके कार्यक्षेत्र का बहुत-सा भाग निकल जाता और धर्मतन्त्र सिविल और धार्मिक दोनो प्रकार का एक मे ही शासक बन जाता । यह धारणा कि लौकिक शासको के हाथो मे सिविल कार्य भी सौप दिये जाते, बेकार है । सघर्ष के दोनो दल जानते थे कि ऐसे कार्य करने वाले लौकिक कर्मचारी नही है ।

१०७५ मे हिल्डब्रैड ने जो कार्य किया उसकी गम्भीरता उसके भयकर परिणाम के आयाम (डाइमेशन) से प्रकट होती है । इस धार्मिक पदोन्नति के विषय पर हिल्डब्रैड ने अपनी सारी प्रतिष्ठा की बाजी लगा दी जो उसने पोपतन्त्र के लिए पिछले तीस वर्षो मे प्राप्त की थी । हेनरी चतुर्थ के आल्पस पार के राज्य की ईसाई जगत् के हृदय पर बहुत प्रभाव था और उसके साथ-ही-साथ सैक्सन सेना की सहायता थी जिसके बल पर वह सम्राट् को कैनोसा[1] लाया । यद्यपि कैनोसा में सम्राट् का ऐसा अपमान हुआ जिसका फिर प्रतिकार नही हो सका किन्तु यह युद्ध का अन्त नहीं था, पुनरारम्भ था । पचास वर्षों के युद्ध ने पोपतन्त्र और साम्राज्य के बीच बहुत चौड़ी और गहरी खाई उस विशेष बात पर बना दी थी जिसके कारण संघर्ष आरम्भ हुआ ।

१. यह इटली का एक गाँव था जहाँ १०७७ में हेनरी चतुर्थ हिल्डब्रैंड (पोप ग्रेगरी सप्तम) के पास आया और उसने क्षमा माँगी ।—अनु०

यह खाई किसी कुशल समझौते से पट नही सकती थी । पदोन्नति का विवाद ११२२ की धार्मिक सन्धि के बाद भले ही मृत हो गया हो किन्तु इसके कारण जो बैर उत्पन्न हो गया था वह बढ़ता ही गया और मनुष्य के हृदय की कठोरता के कारण और उनकी आकाक्षाओ को विकृति के कारण नये-नये रूप लेता गया ।

हमने १०७५ के हिल्डब्रैड के निश्चय पर विस्तार से विचार किया क्योंकि हमें विश्वास है जो कुछ बाद में हुआ इसी महत्त्वपूर्ण निश्चय का परिणाम है । हिल्डब्रैड ने अपनी विजय के मद मे जिस संस्था को कलक के पक से उठाकर वैभव की ऊँचाई पर प्रतिष्ठित किया था उसी को गलत रास्ते पर वह ले गया और उसका कोई उत्तराधिकारी उसे ठीक राह पर न ला सका । हम इस कथा के और ब्योरे मे न जायेंगे । इनोसेट तृतीय पोप का कार्य काल (११९८–१२१६) एन्टोनाइन युग[1] है, हिल्डब्रैड के पोपतन्त्र का भारतीय ग्रीष्म । किन्तु इस पोप की महत्ता परिस्थिति विशेष के कारण है । जैसे होहेनस्टाउफेन वश की बहुत दिनो की अवयस्कता और उसका जीवन चरित इस बात का उदाहरण है कि एक उत्कृष्ट शासक अदूरदर्शी राजमर्मज्ञ (स्टेट्समैन) हो सकता है । इसके बाद पोप का युद्ध फ्रेडरिक द्वितीय और उसके पुत्र से विनाश होने तक चला, फिर अनेग्नी का *दुखपूर्ण अन्त जो कैनोसा का लौकिक हाथों द्वारा घृणित बदला* था, कैद और विच्छेद, धार्मिक परिषद् के आन्दोलन की अकाल प्रसूत संसदीय व्यवस्था, इटालियाई पुनर्जागरण के काल में पोपतन्त्र का अन-ईसाईपन (पेगेनाइजेशन), सुधार आन्दोलन से (रिफार्मेशन) से कैथोलिक धर्मतन्त्र का विघटन, प्रति-सुधार (काउन्टर रिफार्मेशन) जनित अनिर्णीत किन्तु भयानक सघर्ष अठारहवी शती में पोप की नगण्यता और उन्नीसवी में उसकी सक्रिय अनुदारता ।

किन्तु यह अपूर्व संस्था जीवित[2] है । आज जिस समय हम इस निर्णय पर पहुँचे है, यह उचित है कि पश्चिमी संसार में जितने पुरुष और स्त्री जीवित हैं और जिन्होने ईसाई धर्म स्वीकार किया है वे 'वचन के अनुसार' उत्तराधिकारी हैं । और हमारे साथ जितने गैर-ईसाई हैं, जिन्होने पश्चिमी जगत् के जीवन का अनुकरण कर लिया है, वे भी उसी 'वचन' के 'उत्तराधिकारी' हैं । उन्हें चाहिए ईसा के पुरोहित (पोप) से विनती करें कि अपनी महान् पदवी की प्रतिष्ठा स्थापित करें । क्या पीटर के स्वामी (ईसा मसीह) ने पीटर से नहीं कहा था कि जिसे अधिक दिया गया है, उससे अधिक लिया जयगा, जिसे मनुष्य ने बहुत सौंपा है उससे उतना ही अधिक वे माँगेंगे ? रोम के देवदूत (पोप) को हमारे पूर्वजों ने पश्चिमी ईसाई जगत् का भाग्य सौंप दिया था, जो उनकी सारी सपत्ति थी । जब ईश्वर के सेवक ने 'जो उसकी इच्छा जानता था, 'अपने को उसकी इच्छा के अनुसार सन्नद्ध नही किया' तब उसे 'अनेक कोड़ों का दण्ड' मिला । इसका आघात,

१. यह काल रोम साम्राज्य का स्वर्ण काल माना जाता है । इसमें टाइटस एन्टोनीनस तथा उसके पुत्र ने राज्य किया (सन् १३८ से १८० तक) ।—अनु०

२. एक विख्यात रोमन कैथोलिक विद्वान् ने एक बार निजी बात-चीत में कहा (इसके लिए उसका नाम नहीं बताया जा सकता)—'मेरा विचार है कि कैथोलिक धर्मतन्त्र ईश्वरीय है । उसके ईश्वरीय होने का प्रमाण मैं यह समझता हूँ कि कोई मानवी संस्था जिसका संचालन इस प्रवंचनापूर्ण पागलपन से किया जाता, पन्द्रह दिन भी नहीं टिक सकती थी ।—सम्पादक

'उन पुरुषों और स्त्रियों' पर भी पड़ा जिन्होंने अपनी आत्मा ईश्वर के दासानुदास को सौंप दी। दास के 'यूबरीस' का दण्ड हमें मिला। अब जिसके कारण दण्ड मिला उसका कर्तव्य है कि, चाहे कैथोलिक हो या प्रोटेस्टेंट, ईसाई या गैर-ईसाई, सबका उद्धार करे। यदि इस संकटकाल में दूसरा हिल्डब्रैंड जन्म ले तो क्या वह उस पीड़ा से शिक्षा लेगा जो शिक्षा पोप ग्रेगरी सप्तम के विजय के मद के विनाश के कारण उत्पन्न होनी चाहिए। और उससे सचेत होकर हमारा रक्षक हमारी रक्षा करेगा।

५

सभ्यताओं का विघटन

१७. विघटन का रूप

(१) साधारण सर्वेक्षण

सभ्यताओ के पतन के पश्चात् उनके विघटन पर विचार करते समय हमे वैसे ही प्रश्न का सामना करना पडेगा जैसा सभ्यताओ के जन्म तथा उनके विकास पर विचार करते समम करना पडा था। विघटन नयी समस्या है अथवा पतन का स्वाभाविक और अवश्यम्भावी परिणाम है ? हमने जब पहले की समस्या पर विचार किया था कि क्या सभ्यताओं के विकास की समस्या उसकी उत्पत्ति से भिन्न है तब हमें स्वीकारात्मक उत्तर मिला था। इसका कारण यह था कि हमें इस बात की जानकारी हो गयी कि अनेक अविकसित सभ्यताएँ हैं जिन्होने उत्पत्ति की समस्या तो सुलझा ली, किन्तु विकास की समस्या न सुलझा सके। अब हम ऊपर के उसी प्रकार के प्रश्न का उत्तर भी स्वीकारात्मक देगे। हम दिखायेगे कि कुछ सभ्यताओ का विकास पतन के बाद रुक गया और बहुत काल तक वे अश्मीकरण (पेट्रिफिकेशन) की अवस्था मे रही।

अश्मीकृत सभ्यता का क्लासिकी उदाहरण मिस्री सभ्यता के इतिहास के एक समय से मिलता है, जिस पर हम विचार कर चुके है। जब पिरामिड निर्माताओ के बोझ से मिस्री समाज का पतन हो गया और जब विघटन की पहली से दूसरी और दूसरी से तीसरी अवस्था मे वह पहुँच गया, जो इस प्रकार थी। सकट की स्थिति, सार्वभौम राज्य और अन्त.काल। और तब यह समाज जो मृतप्राय दिखाई देता था, अप्रत्याशित रूप से एकाएक दूसरी ओर मुड गया। उस समय ऐसा जान पडता था कि वह अपना जीवन पूरा कर रहा है। यदि हम अस्थायी रूप में हेलेनी उदाहरण को मानक माने, पहले-पहल यह प्रक्रिया हमे दिखाई दी थी तो हम देखेगे कि मिस्री समाज अन्त काल के बाद दूसरी राह पर चला गया। उसका विघटन नही हुआ और उसका जीवन दुगना हो गया। यदि हम मिस्री समाज के समय-विस्तार को उस समय ले ले जब उस पर ईसा के पहले सोलहवी शती के प्रथम चतुर्थांश मे हाइक्सो के आक्रमण से गैलवीनी (गैलवेनिक) प्रतिक्रिया हुई थी और उस समय तक जब ईसवी सवत् की पाँचवी शती आयी और मिस्री संस्कृति का अन्तिम चिह्न मिट गया तो हम देखते है कि यह दो हजार साल उतना ही लम्बा है जितना मिस्री समाज की उत्पत्ति, विकास, पतन और पूर्ण विघटन का काल। यदि हम विपरीत ढग से इसकी गणना करे तो ईसा के पूर्व सोलहवी शती से भिन्न पुन सगठन से लेकर ई० पू० चार हजार वर्ष पहले, किसी अज्ञात तिथि तक जब आदिम स्तर से वह पहले-पहले उठा, इतना ही समय होता है। परन्तु दूसरे युग मे मिस्री समाज का जीवन-काल मृत्यु के समान ही था। इन दो हजार

वर्षों में जो फालतू थे, वह सभ्यता जो पहले सजीव और सार्थक थी, बिना विकास और शक्ति के जैसे-तैसे जीवन-यापन कर रही थी।

केवल यही उदाहरण नहीं है। यदि हम सुदूर पूर्व समाज के मुख्य देश चीन के इतिहास को देखें और उसके पतन-काल को देखें तो उसकी समता ईसा की नवीं शती के अन्तिम चतुर्थांश मे ताग साम्राज्य के पतन काल से कर सकते हैं। फिर 'सकटकाल' से होते हुए सार्वभौम राज्य बनते हुए विघटन की प्रक्रिया हम देख सकते है और फिर एकाएक प्रतिक्रिया होती है जो उसी प्रकार की है जो हाइक्सो के आक्रमण के बाद मिस्रियो की हुई। मिका वंश के स्थापक हुंग बू के नेतृत्व में दक्षिण चीन का विप्लव सुदूर पूर्वी सार्वभौम राज्य के विरुद्ध था जिसे बर्बर मगोलो ने स्थापित किया था। यह बन-विप्लव की याद दिलाता है जो आठवे वंश के प्रतिष्ठापक अमोसिस के नेतृत्व मे हुआ था। यह उस 'उत्तराधिकारी राज्य' के विरुद्ध था जो बर्बर हाइक्सो ने त्यक्त और निर्जीव मिस्री सार्वभौम राज्य (तथाकथित मध्य साम्राज्य) के एक भाग पर स्थापित किया था। परिणाम में भी समानता है। क्योंकि सुदूर पूर्व समाज जल्दी से सार्वभौम राज्य बनकर अन्त.काल व्यतीत कर विघटित होकर विनष्ट नही हुआ। इसके विपरीत अश्मीभूत रूप मे बहुत दिनो तक रहा।

इन दो उदाहरणो के साथ हम और विलुप्त अश्मीभूत सभ्यताओ का नाम जोड़ दे, जो हमारी दृष्टिमे आये है, भारत मे जैन, लका, बर्मा, श्याम और कबोडिया में हीनयानी बौद्ध, तिब्बत और मगोलिया के लामा ढग के महायानी बौद्ध। ये सब भारतीय सभ्यता के अश्मीभूत टुकडे है, इसी प्रकार यहूदी, पारसी, नेस्टोरी और मोनोफाइसाइट सीरियाई सभ्यता के अश्मीभूत टुकड़े हैं।

हम अपनी सूची और नही बढा सकते, मगर इतना कह सकते है कि मेकाले के विचार से इस प्रकार का अनुभव ईसा की तीसरी और चौथी शती मे हेलेनी सभ्यता को होते-होते रह गया। 'दो प्राचीन विख्यात राष्ट्रो की भावना विशेष ढग से बहिष्कारवादी थी। ऐसा तथ्य जान पड़ता है कि यूनानी केवल अपने ऊपर मुग्ध थे और रोमन अपने ऊपर तथा यूनानियो पर मुग्ध थे।... इसका परिणाम विचारो की सकीर्णता और तद्रूपता थी। यदि हम इस प्रकार कहे तो कह सकते हैं कि उनकी बुद्धि अन्दर की ओर ही प्रकाशित रही और इसलिए वह वध्या हो गयी, उसका अध पतन हो गया। सीज़रो की निरकुशता, उनका धीरे-धीरे सब राष्ट्रीय विशेषताओं का मिटाना और दूर-से-दूर प्रदेशो को एक-दूसरे में आत्मसात् करना—इनके कारण अनिष्ट और बढ़ गया। ईसा की तीसरी शती की समाप्ति के बाद मानवता का भविष्य भयानक रूप से विषादमय हो गया था। यह महान् समाज उससे भी भयावह विपत्ति मे पड़ने वाला था, जो राष्ट्रो पर एकाएक भस्म कर देने वाली विनाशकारी व्याधि के रूप में आया करती है। वह व्याधि स्ट्रूलडब्रुगो[1] के समान चीनी सभ्यता पर आने वाली थी। यह व्याधि लड़खड़ाता, राल टपकाता पक्षाघात से पीड़ित दीर्घजीवन था। डायोक्लीशियन[2] की प्रजा और चीनी साम्राज्य

१. स्ट्रूलडब्रुग—'गुलिवर की यात्रा' में वह जाति जिसे अमरता का अभिशाप मिला था। —अनुवादक

२. रोम का सम्राट् जो नितान्त निरंकुश शासक था।—अनुवादक

के लोगों में अनेक समानताएँ दिखायी जा सकती हैं जहाँ शतियों तक लोगों ने न कुछ सीखा है, न कुछ अनसीखा है। जहाँ शासन, शिक्षा और जीवन की सारी व्यवस्था केवल रस्म रह गयी। जीवन की वहाँ न वृद्धि है, न विकास और जिस प्रकार कोई सिक्का धरती में गाड़ दिया जाय या रूमाल में लपेट कर रख दिया जाय, उसी प्रकार उनके अनुभव न घटते है, न बढ़ते है। इस जड़ता को दो क्रान्तियो ने दूर किया—एक नैतिक और दूसरी राजनीतिक, एक अन्दर से हुई और एक बाहर से।[1]

इस प्रकार का दयापूर्ण छुटकारा, जिसके लिए मेकाले के अनुसार साम्राज्यवादी युग का हेलेनी समाज धर्मतन्त्र और बर्बरों का ऋणी था, सुखमय ही था, निश्चय रूप से कहा नहीं जा सकता था। जब तक प्राण रहता है सदा यह सम्भव है कि मृत्यु की कैंची से निर्दयता से कतरे जाने के बजाय वह पक्षाघात के आक्रमण से शिथिल होकर जीवन में ही मुरदा हो जाय। और हमारे पश्चिमी समाज की यही दशा न हो यह विचार कम-से-कम वर्तमान पीढ़ी से एक इतिहासकार के मस्तिष्क मे मँडराता रहा है।

'मै नही समझता कि हमारे सामने अराजकता का भय है। भय है निरंकुशता का, आत्मिक स्वतन्त्रता के ह्रास का, एकदलीय शासन का, और कदाचित् ससार भर के सार्वभौम एक दलीय शासन का। राष्ट्रो और वर्गों के सघर्ष के कारण स्थानीय अथवा अस्थायी अराजकता हो सकती है, किन्तु वह कुछ काल तक के लिए होगी। अराजकता अनिवार्य रूप से दुर्बल होती है और अराजक ससार में कोई भी शक्तिशाली दल जिसका सगठन बौद्धिक और वैज्ञानिक ढग से हुआ है पूरा प्रभुत्व जमा सकता है। और अराजकता की जगह निरकुश शासन का स्वागत करेगा। तब संसार आत्मिक 'अश्मीकरण' के युग मे पहुँच जायगा। यह ऐसी अवस्था होगी जब मानव की सभी उच्च आध्यात्मिक क्रियाओ की मृत्यु हो जायगी। रोमन साम्राज्य और चीन के सामने यह अश्मीकरण कम कठोर रहा होगा क्योकि हमारे युग मे हमारे शासको के पास शक्ति के अनेक वैज्ञानिक साधन है। क्या आपने मेकाले के इतिहास पर निबन्ध पढ़ा है? उसका तर्क है बर्बरों का आक्रमण। अन्त में वरदान निकला क्योंकि उसने अश्मीकरण को नष्ट किया। 'यूरोप को चीन की दुखावस्था से बचने में एक सहस्र वर्षों तक बर्बरता का सामना करना पड़ा।' भविष्य के एक दलीय राज्य को नष्ट करने के लिए कोई बर्बर प्रजाति नही है।

'मुझे ऐसा जान पड़ता है कि ऐसे एक दलीय राज्य मे दर्शन और काव्य का ह्रास होगा और वैज्ञानिक खोज की वृद्धि नये-नये आविष्कारों से होगी। यूनानी विज्ञान के पनपने के लिए टोलेमी[2] के राज्य का वातावरण अनुपयुक्त नही था और साधारणतः मै कह सकता हूँ कि प्राकृतिक विज्ञान निरकुश शासन में विकसित होता है। शासक दल के लाभ की यह बात है कि ऐसी शक्ति की वृद्धि को प्रोत्साहन दे जिससे उनकी शक्ति बढ़े। क्रान्ति नहीं, यही मेरे लिए भविष्य का दु:स्वप्न है, यदि हम आज के भाई-भाई के सघर्ष को समाप्त नही करते। किन्तु ईसाई धर्मतन्त्र है,

१. लार्ड मेकाले: एसे आन हिस्ट्री।

२. मिस्र का ज्योतिषी और भूगोल वेत्ता। १२७—५१ उसने बताया था कि पृथ्वी अचल है और उसकी चारो ओर सूर्य, चाँद आदि घूमते है।—अनु०

जिस पर भरोसा किया जा सकता है। भविष्य के विश्व-राज्य (वर्ल्ड स्टेट) में उसे अपनी आहुति भले ही देनी पड़े परन्तु जिस प्रकार उसने रोमन-विश्व राज्य को, कम-से-कम औपचारिक रूप से, अपने को ईसा के सुपुर्द कर देने को विवश किया, उसी प्रकार अपना बलिदान करके वह भविष्य के बौद्धिक और वैज्ञानिक विश्वराज्य पर विजय कर सकता है।'[1]

ये विचार बताते हैं कि सभ्यताओं के विघटन से जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उन पर हमें ध्यान देना चाहिए। सभ्यताओं के विकास के अध्ययन के समय हमने देखा कि उन्हे हम चुनौती और सामना करने के नाटक के क्रम का विश्लेषण कर सकते हैं। एक के बाद दूसरा इसलिए आया कि प्रत्येक सामना चुनौती का उत्तर ही नही था, बल्कि वह नयी चुनौती भी उपस्थित कर देता था। क्योंकि चुनौती पर विजय प्राप्त करने के बाद नये सामना के आगे नयी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इस प्रकार सभ्यताओ के विकास की प्रकृति के मूल में एक सजीवता है जो चुनौती दिये गये समाज को सामना करने की प्रक्रिया में सन्तुलन से कुछ अधिक शक्ति प्रदान कर देती है और यह बढ़ी शक्ति नयी चुनौती के रूप में उपस्थित होती है। चुनौती का बारम्बार दोहराना विघटन की सकल्पना में भी है, किन्तु इस परिस्थिति में दोहराना विफल हो जाता है। परिणामस्वरूप इसके विपरीत कि एक चुनौती पराजित हो जाय, और वह इतिहास की वस्तु हो जाय, और उसके स्थान पर दूसरे प्रकार की चुनौती आये, हमारे सामने वही-वही चुनौती फिर-फिर आती है। उदाहरण के लिए हेलेनी ससार के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के इतिहास मे, उस समय से जब सोलोनी आर्थिक क्रान्ति का हेलेनी समाज को सामना करना पड़ा कि ससार में एक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जाय। तब डेलियन लीगन द्वारा यह समस्या सुलझाने में एथीनियन असफल रहे, मेसेडन के फिलिप की चेष्टा कारिथियन लीग द्वारा समस्या सुलझाने का भी प्रयत्न असफल रहा और रोमन साम्राज्य का रोम द्वारा शान्ति-स्थापन का प्रयत्न भी विफल रहा। इस प्रकार उसी चुनौती का बार-बार उपस्थित होना इस परिस्थिति की प्रकृति है। जब प्रत्येक सामना का परिणाम विजय न होकर पराजय होता है तब वह चुनौती, जिसका उत्तर हम नही दे सके, टाली नही जा सकती। वह बार-बार उपस्थित होती है। तब तक जब उसे या तो उसका विलम्ब से और दोषपूर्ण ढग से सामना किया जाता है, या चुनौती द्वारा उस समाज का नाश हो जाता है जो उचित ढग से उसका सामना करने मे असमर्थ रहा।

तब क्या हम कह सकते हैं कि अश्मीकरण का एक ही विकल्प है—पूर्णरूप से विनाश। इसका स्वीकारात्मक उत्तर देने के पहले हम प्रजनित तथा संबद्धित प्रक्रिया को स्मरण करें जिसके सम्बन्ध में इस अध्ययन के आरम्भ में हमने विचार किया है। इसलिए संप्रति बुद्धिमानी की बात यह होगी कि हम सोलन के अन्तिम उपाय को और अपने निर्णय को स्थगित रखें।

जब हम सभ्यताओं के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन कर रहे थे, हम प्रक्रिया के विश्लेषण के पहले विकास की कसौटी खोज रहे थे, यही ढंग हम विघटन के अध्ययन मे रखेंगे। इस तर्क में सीढ़ी का एक डंडा हम छोड़ देंगे। हमने यह निश्चय किया था कि मानवी अथवा भौतिक परिस्थितियों पर अनुशासन की क्रमशः वृद्धि में सभ्यताओं के विकास की कसौटी नही मिलती,

१. डा० एडविन बिवन, लेखक को एक पत्र में।

हम पूरी तरह यह भी कल्पना कर सकते है कि ऐसे अनुशासन का अभाव विघटन का कारण नहीं है । परन्तु जहाँ तक प्रमाण मिलते है कि परिस्थितियो पर जितना ही अधिक अनुशासन होगा उतना ही विकास नही, विघटन होगा । सैनिकवाद पतन तथा विघटन दोनो का समान गुण है । और इसके द्वारा जाग्रत समाज तथा प्रकृति की निर्जीव शक्तियो पर समाज का अनुशासन बढ़ता है । किसी सभ्यता के जीवन की पतनोन्मुख अवस्था मे आयोनियन दार्शनिक हिराक्ला-इटस के कथन मे सत्य हो सकता है कि 'युद्ध सब चीजो का पिता है' । चूँकि मानव की सम्पन्नता का अनुमान साधारण लोग शक्ति और सम्पत्ति से लगाते हैं, ऐसा बहुधा होता है कि किसी समाज के पतन की प्रारम्भिक अवस्था महान् विकास की पराकाष्ठा समझी जाती है । कभी-न-कभी इस भ्रम का निवारण हो जाता है, क्योकि जिस समाज में ऐसा भेद हो गया है जो मिट नही सकता, वह अपने सारे मानवी और भौतिक अतिरिक्त साधनो को युद्ध मे लगायेगा । क्योंकि इसी युद्ध से वे साधन प्राप्त हुए है । उदाहरण के लिए जो धन और मानव-शक्ति सिकन्दर को विजय द्वारा प्राप्त हुए उन्हे उसके उत्तराधिकारियो ने गृहयुद्ध मे लगाया, और जो मानव तथा धन की शक्ति रोमनों ने दूसरी शती ई० पू० मे अर्जित की थी उन्हे उन्होंने ई० पू० की अन्तिम शती के गृहयुद्ध मे व्यय किया ।

विघटन की प्रक्रिया की कसौटी हमे कही और ढूंढनी पडेगी । इसका रहस्य हमे समाज के उस विभाजन और फूट मे मिलता है जो वातावरण पर अनुशासन की वृद्धि के साथ-साथ बढते जाते है । इसी की हम आशा भी करते है, क्योकि हमने देखा है कि विघटन के पूर्व, पतन के जो मुख्य कारण होते है वे आन्तरिक फूट के परिणाम हैं । इनके कारण समाज के आत्मनिर्णय की क्षमता जाती रहती है ।

इस फूट की अभिव्यक्ति अशत. सामाजिक भेदो मे होती है जिसके कारण पतित समाज दो आयामो मे विभाजित हो जाता है । भौगोलिक कारणो से विच्छिन्न समुदायो मे शिरोवृत्त (वर्टिकल) भेद होता है और भौगोलिक कारणो से मिश्रित समुदायो मे क्षैतिज (हारिजेंटल) भेद होता है ।

जहाँ तक शिरोवृत्त भेद का प्रश्न है, हमने देखा है कि ऐसे समाज के लोग नासमझी से अन्तर-राज्यो की लडाई मे रत रहते है और इस प्रकार अपनी आत्महत्या के मार्ग पर अग्रसर होते है । किन्तु शिरोवृत्त भेद ही झगडे की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति नही है, जिससे सभ्यताओ का पतन होता है । समाज का स्थानीय समुदायो मे विभाजन मानव-समाज के सभी वंशो (जीनस) का गुण है, चाहे वे सभ्य हो या असभ्य । और अन्तर-राज्य युद्ध उस शक्तिशाली आत्म-विनाशी यन्त्र का दुरुपयोग है जो कोई समाज किसी समय कर सकता है । इसके विपरीत किसी समाज का क्षैतिज भेद, समाज के ही वर्गो के बीच, केवल सभ्यता की विशेषता ही नही है, बल्कि सभ्य-ताओ के पतन के समय उसका आविर्भाव होता है । पतन और विघटन का यह विशेष चिह्न है और सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास के समय ये नही पाये जाते ।

इस प्रकार के क्षैतिज भेद को हमने देखा है । जब हम अपने पश्चिमी समाज को समय-आयाम के विचार से विलोम दिशा मे विस्तृत कर रहे थे, हमे इस प्रकार का भेद मिला । हम ईसाई धर्मतन्त्र तक पहुँचे और हमने अनेक बर्बर युद्ध के जत्थो को देखा जो रोमन साम्राज्य की उत्तरी सीमा में पश्चिमी यूरोप से ईसाई तन्त्र से भिडे । और हमने युद्ध के जत्थो और धर्मतन्त्र,

दोनों संस्थाओं में देखा कि जिस समाज के दल ने इनका निर्माण किया था वह हमारा पश्चिमी समाज नहीं था। यह निर्माण हमारे पहले के समाज–हेलेनी सभ्यता का निर्माण था। हमने ईसाई धर्मतन्त्र के निर्माताओ को आन्तरिक सर्वहारा बताया था, और बर्बर युद्ध के दल को हेलेनी समाज का बाहरी सर्वहारा कहा था।

जब हमने अपने अन्वेषण को और आगे बढ़ाया, तब हमने देखा कि ये दोनों सर्वहारा हेलेनी समाज से 'संकटकाल' मे अलग हो गये थे। इस समय हेलेनी समाज सर्जनात्मक नही था, ह्रासोन्मुख था। थोड़ा और पीछे चलकर हमने देखा था कि यह अलगाव इस कारण हुआ था क्योकि हेलेनी समाज के शासक वर्ग मे परिवर्तन हो गया था। जिस सर्जनात्मक अल्पसंख्या की असर्जनात्मक जनता स्वेच्छा से भक्त थी, क्योकि सर्जनशीलता में भक्त बना लेने का गुण होता है, वही अब शक्तिशाली अल्पसख्या बन गयी क्योकि वह सर्जनात्मक नहीं रह गयी। यह शक्तिशाली अल्पसंख्या बल से अपने स्थान को सुरक्षित रखने में समर्थ रही। ईसाई समाज तथा युद्ध का गिरोह इसकी निरकुशता के कारण अलग हुआ। अनुचित ढंग से यह शक्तिशाली अल्पसख्या सबको एकता के सूत्र में बाँधे रखने का प्रयत्न करती रही, किन्तु असफल रही। शक्तिशाली अल्पसंख्या की केवल यही उपलब्धि हमारे सामने नही है। उसने रोमन साम्राज्य के रूप में अपनी यादगार छोड़ दी है। रोमन साम्राज्य धर्मतन्त्र और युद्ध के गिरोह से पहले जन्मा। जिस वातावरण मे इन दोनो ने जन्म लिया उसी में रोमन साम्राज्य भी था और इन संस्थाओ के विकास मे इसका भी हाथ था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जिस सार्वभौम राज्य ने हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्या को अपने मे परिवेष्टित कर लिया था वह उसी प्रकार था जैसे विशाल कछुए का ऊपरी खोल। बर्बरों ने अपने युद्ध करने वाले गिरोह को उसी कछुए की पीठ पर अपना पजा तीव्र करने की शिक्षा दी।

अन्त मे अपने अध्ययन के बाद एक स्थान पर हमने स्पष्ट रूप से यह समझना चाहा कि अल्पसख्या की सर्जनात्मक शक्ति लोप हुई और यह बहुसंख्यकों को गुणों से आकृष्ट कर शक्ति द्वारा जीतने लगी, इसमे क्या कारण–कार्य सम्बन्ध है? और यहाँ हमे सर्जनात्मक अल्पसंख्या के सामाजिक अभ्यास की ओर संकेत करना पड़ता है क्योकि असर्जनात्मक जनता को अपने साथ ले चलने का यही सरल उपाय है। विकास की परिस्थिति में यही सामाजिक अभ्यास अल्पसंख्या और बहुसख्या के सम्बन्ध का दुर्बल स्थल है। इस दृष्टि से अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच उस समय भेद बहुत बढ़ जाता है जब सर्वहारा अलग हो जाता है। यह सम्बन्ध-विच्छेद उस कड़ी के टूटने का परिणाम है, जो विकास-काल मे भी अनुकरण की शक्ति का अभ्यास कराके सुरक्षित रखी जाती है। इसमे आश्चर्य नही कि जब नेताओं की सर्जन-शक्ति समाप्त हो जाती है तब अनुकरण-शक्ति भी समाप्त हो जाती है। क्योकि विकास-काल मे भी अनुकरण की कड़ी पराश्रित रहती है। इस समय अविश्वसनीय द्वैत भावना होती है अर्थात् अतीच्छुक दास की भावना होती है जो किसी भी यांत्रिक कौशल के साथ पायी जाती है।

क्षैतिज भेद की खोज से हमें ये सूत्र मिले जो हमारे हाथ में हैं। आगे की खोज के लिए सबसे आशापूर्ण ढंग यह होगा कि इन सूत्रों को एकत्र करके हम रस्सी बटें।

हमारा पहला कदम यह होगा कि हम तीन भागों का अर्थात् शक्तिशाली अल्पसंख्या और

आन्तरिक तथा बाहरी सर्वहारा का निकट से और विस्तृत सर्वेक्षण करें। हेलेनी उदाहरण तथा और दूसरे उदाहरणो से जिनका हमने इस अध्ययन मे विचार किया है, हमे प्रतीत हुआ है कि पतनोन्मुख समाज मे, जब क्षैतिज फूट पड़ जाती है तब वह समाज छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसके बाद हम पूर्ण (मैक्रोकाज्म) से सूक्ष्म (माइक्रोकाज्म) की ओर विचार करेगे जैसा हमने विकास के समय किया था। और उसमे हम देखेगे कि विघटन के साथ-साथ आत्मा के विकास मे भी अवरोध हो जाता है। इस खोज मे, पहली दृष्टि मे हमे ऐसी बात मिलेगी जो विरोधाभास है। अर्थात् विघटन की प्रक्रिया मे हमे पुनर्जीवन का आभास मिलता है जिसमे अपने पूर्वजो के गुण दिखाई देते है। तर्कत यह क्रिया विघटन से प्रतिकूल है।

अपने विश्लेषण की समाप्ति के बाद हम देखेगे कि विघटन के साथ गुणों का जो परिवर्तन होता है, यह विकास के परिवर्तन मे जो गुण उत्पन्न होते है, उसके विपरीत है। विकास की प्रक्रिया मे हमने देखा है कि अनेक विकासोन्मुख सभ्यताएँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती है। इसके विपरीत विघटन मे एक-समानता आ जाती है।

एक-समानता की ओर की प्रवृत्ति और भी स्पष्ट हो जाती है, जब हम देखते है कि उसे कितनी विभिन्नताओ पर विजय प्राप्त करना होता है। पतन वाली सभ्यताओ का जब विघटन होने लगता है तब उनके साथ विभिन्न प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है जैसे कला की ओर, यन्त्रो (मशीनो) की ओर या इसी प्रकार की और बातो की ओर जो उन्होने विकास के समय अर्जित की थी। वे एक-दूसरे से और भी अधिक भिन्न हो जाती है क्योकि पतन उनके जीवन के विभिन्न कालो मे होता है। उदाहरण के लिए सीरियाई सभ्यता का पतन सोलोमन की मृत्यु के बाद हुआ, जो सम्भवत. ९३७ ई० मे हुई। यह समय कदाचित् उस समय से दो सौ साल से कम है जब मिनोई सभ्यता के बाद के अन्तःकाल मे पहले-पहल इस (सीरियाई) सभ्यता का जन्म हुआ। इसके विपरीत उसी अन्तःकाल मे एक ही समय हेलेनी सभ्यता का भी जन्म हुआ था। इस सभ्यता का पतन पाँच सौ साल बाद नही हुआ। एथेनी-पेलोपोनीशियन युद्ध के बाद हुआ। परम्परा-वादी ईसाई सभ्यता का पतन महान् रोमानो-बुलगारियन युद्ध के समय ९७७ ई० मे हुआ और उसी के साथ हमारी सभ्यता अनेक शतियों तक विकसित होती रही और जहाँ तक हम समझते है अभी उसका पतन नही हुआ है। यदि समकालीन सभ्यताओं का जीवनकाल भिन्न-भिन्न होता है तो स्पष्ट है कि सभ्यताओ के विकास का जीवन समान अवधि का नही होता। इन बातो से स्पष्ट हो जाता है कि विकासोन्मुख सभ्यताओं का अन्तर गम्भीर और विस्तृत होता है। किन्तु हम यह देखेगे कि सभ्यताओं के विघटन की प्रक्रिया समान ढग की होती है। अर्थात् क्षैतिज भेद जिससे समाज तीन भागो मे, जिनका विवरण बताया गया है, टूट जाता है। और इन तीन मे से प्रत्येक भाग द्वारा अलग-अलग विशेष सस्थाओ का निर्माण होता है—सार्वभौम राज्य, सार्वभौम धर्मतन्त्र और बर्बर योद्धा-दल।

यदि हम सभ्यताओ के विघटन का पूर्ण अध्ययन करना चाहते है तो इन सस्थाओं का और इनके रचयिताओ के सम्बन्ध मे समझना होगा। किन्तु सरल यह होगा कि प्रत्येक सस्था का अध्ययन अलग-अलग पुस्तको मे करे।[1] क्योकि ये सस्थाएँ विघटन की प्रक्रिया से कुछ और अधिक

१. ट्वायनबी की उन पुस्तकों में जो अभी छपी नहीं हैं। —सम्पादक

हैं। यह भी सम्भव है कि एक सभ्यता के दूसरी सभ्यता से सम्बन्ध स्थापित करने में भी इनका योगदान रहा हो। जब हम सार्वभौम धर्मतन्त्रों का अध्ययन करेंगे तब हम यह प्रश्न उठाने को विवश होंगे कि इन तन्त्रों को हम पूर्ण रूप से उन सभ्यताओं के इतिहास के ढाँचे मे समझ सकते हैं, जिनमें उनका उदय हुआ या हम उन्हें किसी दूसरी जाति (स्पीसीज) के समाज का प्रतिनिधि समझें जो उन जाति वाली सभ्यता से उसी प्रकार भिन्न हैं जिस प्रकार ये सभ्यताएँ आदिम समाजों से।

इतिहास के अध्ययन मे यह महत्त्व का प्रश्न है किन्तु हमने जिस प्रकार की खोज का वर्णन किया है, उसकी दूसरी छोर पर यह है।

(२) भेद और पुनर्जीवन

जर्मन यहूदी कार्ल मार्क्स (१८१८–८३) ने एक अगृहीत धार्मिक परम्परा के इलहामी स्वप्न से रंग उधार लेकर विशाल चित्र खीचा है जिसमे उन्होंने सर्वहारा के अलग होने और परिणामस्वरूप वर्ग-सघर्ष का चित्रण किया है। मार्क्स के भौतिकवादी इलहामी ने करोड़ो लोगों पर प्रभाव डाला है। इसका कारण कुछ तो मार्क्सवादी चित्र में राजनीतिक युद्धप्रियता है। इस चित्र का मूल तो साधारणतः इतिहास का दर्शन है, साथ ही वह क्रान्तिकारी युद्ध के लिए ललकार भी है। इस वर्ग-सघर्ष के मार्क्सवादी सूत्र के आविष्कार और चलन को हम इस बात का सकेत समझे कि हमारी पश्चिमी सभ्यता विघटन के पथ पर है, हम इस अध्ययन के अन्त में देखेंगे जब हम अपनी पश्चिमी सभ्यता के भविष्य पर विचार करेंगे। यहाँ पर हमने मार्क्स को और कारणो से उद्धृत किया है। पहला कारण यह है कि हमारे युग मे वर्ग-सघर्ष का वह क्लासिक व्याख्याकार है और दूसरा यह कि उसका सूत्र परम्परावादी जरथुष्ट्री, यहूदी और ईसाई इलहामी आदर्शों से मिलता है जो हिंसात्मक पराकाष्ठा के बाद कोमल अन्त का चित्र दिखलाता है।

इस साम्यवादी पैगम्बर की अन्त.प्रज्ञा की सक्रिया का परिणाम ऐतिहासिक भौतिकवाद या नियतत्ववाद है। उसके अनुसार सर्वहारा की क्रान्ति द्वारा वर्ग-सघर्ष निश्चित है जिसमें सर्वहारा विजयी होगा। परन्तु सघर्ष का यह रक्तमय परिणाम उसका अन्त भी, क्योंकि सर्वहारा की विजय निश्चित और पूर्ण होगी। और सर्वहारा का अधिनायकवाद जो क्रान्ति के बाद स्थापित होगा स्थायी संस्था नही होगा। एक समय आयेगा जब एक नया समाज प्रकट होगा जो जन्म से ही वर्गविहीन होगा और इतना प्रौढ़ और शक्तिशाली होगा कि अधिनायकवाद को हटा दे। अन्तिम और स्थायी आनन्द इस नये मार्कसी स्वर्णयुग का यो होगा कि सर्वहारा का अधिनायक-वाद ही नही हट जायगा, किसी भी सस्था का आधार न होगा और राज्य भी नही रह जायगा।

इस अध्ययन के सन्दर्भ मे मार्कसी प्रलय विज्ञान का इतना ही सम्बन्ध है कि आश्चर्य की बात है कि एक लुप्त धार्मिक विश्वास की छाया वर्ग-संघर्ष के ठीक राह का चित्र बनाती है या पतित समाज मे क्षैतिज भेद की राह का ठीक-ठीक चित्र खीचती है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पतित समाज यही राह अपनायेगा। इतिहास हमे बताता है कि विघटन की प्रक्रिया युद्ध से शान्ति की ओर है, यांग से यिन की ओर। स्पष्टत. मूल्यवान् वस्तुओ का बर्बरतापूर्ण विनाश होता है और उसी विनाश की ज्वाला मे से नया सर्जन होता है जिसकी विशेषता उसी अज्ञान के कारण होती है जिसमें वे बने हैं।

भेद स्वयं दो नकारात्मक आन्दोलनों का परिणाम है। दोनों अशिव आवेगों से प्रेरित होते हैं। पहले, शक्तिशाली अल्पसंख्या उस अधिकार के स्थान को बल से ग्रहण किये रहती, जिसकी उसमें क्षमता नही रह गयी है। तब सर्वहारा अन्याय का उत्तर क्रोध से देता है, भय का घृणा से और हिंसा का हिंसा से। परन्तु सारे आन्दोलन का परिणाम सर्जनात्मक होता है, सार्वभौम राज्य सार्वभौम धर्मतन्त्र और बर्बर योद्धा-दल।

इस प्रकार सामाजिक भेद केवल भेद नही है। सारे आन्दोलन को हम भेद—और पुनर्जीवन कह सकते है। और यह समझकर कि समाज-त्याग एक विशेष ढंग से अलग होना है हम भेद और पुनर्जीवन की दोहरी गति को उसी परिस्थिति का एक उदाहरण माने जिसे हमने 'अलग होने और लौटने' के शीर्षक मे साधारण ढंग से पहले अध्ययन किया है।

एक बात है जिसमे अलग होने और लौटने का यह नवीन रूप उन उदाहरणों से भिन्न है जिनका हमने पहले अध्ययन किया है। क्या वे सर्जनात्मक संख्या अथवा व्यक्तियो की उपलब्धियाँ नही थी और समाज त्यागने वाले सर्वहारा बहुसख्यक हैं जो शक्तिशाली अल्पसख्या के विरोधी है? एक क्षण विचार करने के पश्चात् यह जान पड़ता है, और जो वास्तव मे सच्चा चित्र है कि यद्यपि समाज-त्याग बहुसंख्या द्वारा होता है, सार्वभौम धर्मतन्त्र की स्थापना उन अल्पसख्यक सर्जनशील दलो या व्यक्तियो की है जो इस बहुसख्या मे रहते है। ऐसी अवस्था मे असर्जनशील बहुसंख्या, शक्तिशाली अल्पसंख्या और सर्वहारा से मिलकर बनी होती है। यह भी स्मरण होगा कि हमने बताया था कि विकासोन्मुख अवस्था मे सर्जनात्मक अल्पसंख्या का सर्जनशील तत्त्व सारी-की-सारी अल्पसख्या नही थी, बल्कि उसमे का कोई दल था। दोनो में अन्तर यह है : विकासकाल मे असर्जनशील बहुसख्या मे ऐसी जनता रहती है जिस पर सरलता से प्रभाव पड़ सकता है और वह नेताओ की राह का अनुकरण करती है, विघटन काल मे असर्जनशील बहुसख्या मे प्रभाव्य जनता रहती है (सर्वहारा के शेष) और कुछ भाग शक्तिशाली अल्पसंख्या का जो विपथित व्यक्तियो को छोड़कर सगर्व हठपूर्वक अलग रहती है।

१८ सामाजिक जीवन में भेद

(१) शक्तिशाली अल्पसंख्यक

शक्तिशाली अल्पसंख्यक में भी भिन्नता के तत्त्व हो सकते हैं। इस तथ्य के होते हुए भी लोकाचार की एक निश्चित स्थिरता एवं एकरूपता ही इसका विशेष लक्षण है। शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने रंगरूटों के अनुर्वर संघभाव को अनुर्वरीकरण के आश्चर्यजनक नमूनों के रूप में परिवर्तित करने का कार्य सम्पादन कर सकता है। लगातार इन रंगरूटों को शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने ह्रासोन्मुख दल में जबरदस्ती भरती करता है। शक्तिशाली अल्पसख्यक इस दल की उस रचनात्मक शक्ति को क्रियान्वित करने में स्वत: बाधक नही हो सकता, जो केवल सार्वभौम राज्य मे ही नही, वरन् दार्शनिक सम्प्रदायों में भी दिखाई देती है। तदनुसार हम देखते हैं कि यह शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने में उन अनेक सदस्यों को मिलाने के लिए बाध्य है, जो अद्भुत रीति से उस समुदाय के विशिष्ट गुणों से अलग हो जाते हैं, जिसके वे सदस्य रहे है।

ये विशिष्ट गुण उन सैन्यवादी एवं निकृष्ट शोषको के है जो उनके दल का अनुसरण करते है। हेलेनी इतिहास से इसका उदाहरण देना अनावश्यक है। हम सिकन्दर में इन सैन्य-वादियो का उत्तम रूप तथा 'वेरेस' में शोषकों का निकृष्ट रूप देखते हैं। इनके सिसिली के अन्यायी शासन के सम्बन्ध में वास्तविकता का उद्घाटन सिसरो की पुस्तिकाओ एवं भाषणों के संग्रहों में है। किन्तु, रोमन सार्वभौम राज्य के अधिक दिनो तक टिके रहने का कारण यह था कि उसके सैन्यवादियों तथा शोषको ने, आगस्टी व्यवस्था के पश्चात् असख्य गुमनाम सैनिको तथा उन असैनिक अधिकारियो ने, जिन्होने अपने पूर्वजों के कुकृत्यों का प्रायश्चित्त अपने गतिहीन समाज को अनेक पीढ़ियों तक भारतीय ग्रीष्म की तीव्र धूप में तपाकर किया।

इसके अतिरिक्त रोमन कर्मचारी परार्थवादी रूप में हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के न तो एक मात्र ही और न आरम्भिक अवतारणा हैं। 'सेवेरी' युग में स्टोइक सम्राट् मारकस आरीलियस रोमन इतिहास के सर्वविदित तथ्य है। जब 'स्टोइक' जूरी लोग 'स्टोइक' आचार का रूपान्तर रोमन विधान में कर रहे थे, रोमन भेड़िये को अफलातूनी पहरेदार कुत्ते में रूपान्तरित करना यूनानी दर्शन का अद्भुत कार्य प्रकट हुआ। यदि रोमन प्रशासक हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक की व्यावहारिक कुशलता के परार्थी प्रतिनिधि थे तो यूनानी दार्शनिक यूनान के बौद्धिक नेता। यूनानी रचनात्मक दार्शनिकों की उस स्वर्णिम शृंखला ने, जो अफलातून (२०३ ई०-६२ ई०) की पीढ़ी मे समाप्त होती है, रोमन सार्वजनिक सेवा को ध्वस्त होते हुए देखा। यह शृंखला सुकरात (४७० ई० पू०–३९९ ई० पू०) से आरम्भ होती है। जब रोमन सभ्यता का पतन हुआ था, तब इसका विकास हुआ। यूनानी दार्शनिक और रोमन प्रशासक के सम्पूर्ण जीवन का प्रयत्न इस पतन के दुखद परिणाम की क्षतिपूर्ति करना या किसी हद तक उसे कम करना था। दार्शनिकों के श्रम से प्रशासकों के प्रयत्नों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और टिकाऊ

परिणाम उत्पन्न हुआ । ऐसा इसलिए था कि वे विघटित सामाजिक जीवन के भौतिक ताने-बाने के सम्पर्क में नही थे । जब रोमन प्रशासकों ने हेलेनी सार्वभौम राज्य का निर्माण किया, तब दार्शनिकों ने अपनी सन्तति को एकेडेमी में शिक्षा प्रदान की और उन्हे अरस्तू ने स्टोआ तथा गार्डेन ऐसी प्रतिभाएँ दी । अपनी भावी पीढ़ी को दार्शनिको ने 'सैनिको' की स्वतन्त्रता के प्रशस्त मार्ग और अफलातून के नये अनुयायियो को 'हार्दिक इच्छाओ की अलौकिक धरती' प्रदान की ।

यदि हम अन्य पतनोन्मुखी सभ्यताओ के इतिहासो का सर्वेक्षण करें, तो हम परमार्थवाद की उच्च भावना को शोषको एवं सैन्यवादियो की निकृष्ट तथा भयानक भावना के समानान्तर पायेंगे । उदाहरणार्थ, जिन्होने हैन राज्यवश के अन्तर्गत चीनी सार्वभौम राज्य में शासन (२०२ ई० पू०–२२१ ई०) किया था, उन कन्फूशियस के अनुयायियो मे वह सेवा का भाव एवं सघभाव था, जिसे उन्हे रोमन असैनिक अधिकारियो के साथ एक ही नैतिक स्तर पर ला दिया था । ये रोमन असैनिक अधिकारी कन्फूशियस के अनुयायियो के समकालीन तथा उनकी क्रियाशीलता के पूर्वार्ध मे ससार की दूसरी ओर थे । पीटर महान् के शासन से लेकर दो शतियो तक चिनोवनिको (रूस में नौकरशाही के प्रतीक उच्च अधिकारियों) ने परम्परावादी ईसाई सार्वभौम राज्य का प्रशासन किया और अपनी अयोग्यता तथा भ्रष्टाचार के कारण अपने घर के साथ-ही-साथ पश्चिम के देशो मे कुख्यात हुए । वे स्वय इस बदनामी से इतने निन्द्य रूप से मुक्त न हो सके जितनी बदनामी की कल्पना बहुधा इस महान् दोहरे कार्य के करने मे की जाती थी । यह दोहरा कार्य गतिशील रूसी साम्राज्य का पोषण करना तथा उसी समय पश्चिमी नमूने की नयी नीति मे उसे रूपान्तरित करना था । परम्परावादी ईसाई साम्राज्य के मुख्य भाग मे उसमानिया बादशाह के गुलाम परिवार को एक ऐसी सस्था के रूप मे कदाचित् याद किया जायगा जिसने कम-से-कम एक प्रमुख सेवा रूढ़िवादी समाज के लिए की है । यह परम्परावादी ईसाई साम्राज्य इसी तरह अपनी रियाया का शोषण करने के लिए बदनाम हुआ था । दो युगो की अराजकता के बीच स्वतः पीडित संसार मे उसमानिया शान्ति लाकर इन दासो ने समाज की सेवा की । जापान के सुदूर पूर्वी समाज मे सामन्तो और उनके 'सैमुराई' दासो ने समाज को शिकार बनाया । टोकुगावा शोगुनेट साम्राज्य की स्थापना के आरम्भ से चार शतियो तक एक-दूसरे का शिकार करने मे बिताया । सामन्तवादी निरकुशता को सामन्तवादी व्यवस्था मे परिणत करने के आइयासु के सर्जनात्मक कार्य में हाथ बटाकर उन्होने अपना अतीत पुनर्जीवित किया । जापानी इतिहास के नये अध्याय के आरम्भ मे वे आत्मसयम की दिव्य पराकाष्ठा पर पहुँचे । उन्होने स्वतः अपनी सुविधाओ को तिलाजलि दे दी, क्योकि उन्हें विश्वास हो गया था कि उनसे इस त्याग की कामना की जाती है । वह जापान को उस पश्चिमी ससार मे अपनी धाक जमाने के योग्य बनाने मे समर्थ कर रहे थे जिससे वह स्वय को अलग नहीं रख सकता था ।

स्वभाव की सज्जनता एक गुण है जो जापानी समुराई मे दिखाई देता है । यह गुण शत्रुओं द्वारा भी दो अन्य शासक अल्पसंख्यक पर आरोपित किया जाता है । ये दो शासक अल्पसंख्यक हैं,—एडियन सार्वभौम राज्य के 'इनका' तथा वे फारसी अभिजात लोग, जिन्होंने सीरिया के सार्वभौम राज्य पर शासन एकेमेनिआ के राजाओ के राजा के उपशासको के रूप मे किया था ।

स्पेनी मैक्सीको विजेताओं ने भी इनका के इन गुणों का अनुमोदन किया। यूनानियों द्वारा चित्रित फारसियों के इस चित्र में हिरोडोट्स ने फारसी बाल-शिक्षा का सार दिया है—'वे ५ वर्ष की अवस्था से २० वर्ष की अवस्था तक के लोगो को तीन कार्य करने का—केवल तीन कार्य करने का प्रशिक्षण करते है। ये तीन कार्य थे—घुड़सवारी, चाँदमारी तथा सत्य बोलना। इस फारसी बालशिक्षा का रूप वैसा ही है जैसा हिरोडोट्स ने फारसी बालको का उनकी युवावस्था का बताया है। फारस के राजा जरक्सीज़ के अनुयायियों के सम्बन्ध में हिरोडोट्स की एक कहानी है। इसमें समुद्र में तूफान आने पर सृष्टि के स्वामी की प्रार्थना करना तथा जहाज को हल्का करने के लिए सागर में कूद पड़ना, दिया है। किन्तु सिकन्दर फारसी गुणो का सबसे प्रभावशाली प्रमाण है। परिचित हो जाने के बाद वह फारसी लोगो के सम्बन्ध में कितने उच्च विचार रखता था, इसका प्रदर्शन उसने अपनी गम्भीर करनी से किया न, कि हल्की कथनी से। फारसियो की घोर विनाशकारी प्रतिक्रिया की परीक्षा को ज्यो ही उसने जान लिया, त्यो ही उसने निर्णय किया, जिस निर्णय ने मकदूनिया के लोगो को ही असन्तुष्ट नही किया, वरन् उनकी भावना को भी उत्तेजित किया। यद्यपि जान-बूझकर उसने ऐसा नही किया। अपने उस साम्राज्य की सरकार में फारसियों को साझीदार बनाने का निश्चय कर चुका था, जिसे मकदूनियावासियो के शौर्य ने फारसियो से छीना था। उसने अपनी इस नीति को पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया। उसके एक फारसी दरबारी की लडकी से शादी की। वह मकदूनी अधिकारियो को अपना अनुयायी बनाने के लिए या तो घूस देता था या धमकाता था। वह अपने मकदूनी रेजिमेन्ट में फारसियो को जबरदस्ती भरती करता था। ऐसे लोगों में, जो अपने पैतृक शत्रुओ के नेता से सम्मानित होते हैं, अपनी पूर्ण पराजय के समय भी 'शासक जाति' के प्रतिष्ठित गुण अवश्य स्पष्ट रूप से रहते है।

शक्तिशाली अल्पसंख्यक के प्रशंसनीय शासक वर्ग को उत्पन्न करने की क्षमता के सम्बन्ध में हमने अधिक-से-अधिक प्रमाण देने की व्यवस्था की है। ये प्रमाण उन अनेक सार्वभौम राज्यो से लिये गये हैं, जिनका निर्माण उन्होने किया है। बीस पतित सभ्यताओ में से कम-से-कम पन्द्रह इस अवस्था से होकर विनाश की ओर जाने वाले मार्ग पर गयी है। निम्नलिखित राज्यो में हम इस सत्य का मिलान कर सकते हैं। रोमन राज्य मे हेलेनी सार्वभौम राज्य, इनका साम्राज्य में एडियन, चीनी राज्य में हैन तथा त्सिन वश, 'मिनोस के सागर राज्य' मे मिनोई, सुमेर तथा अक्काद साम्राज्य मे सुमेरी, नेबूकाडनजार के नवीन बैबिलोनी साम्राज्य में बैबिलोनिया, माया के प्राचीन साम्राज्य में माया, ११ वें तथा १२ वें राजवंश के 'मध्य साम्राज्य' में मिस्री राज्य, एकेमेनियाई साम्राज्य में सीरियाई राज्य, मौर्य साम्राज्य मे भारतीय, मुगल महान् के साम्राज्य में हिन्दू, मस्कोवी साम्राज्य में परम्परावादी रूसी राज्य, उसमानिया साम्राज्य में परम्परावादी ईसाई का सार्वभौम राज्य और सुदूर पूर्वी संसार में चीन मे मगोल साम्राज्य और जापान में टोकुगावा शोगुनेट।

राजनीतिक क्षमता केवल एक सर्जनात्मक शक्ति ही नहीं है जो शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का सामान्य गुण है। हम पहले ही देख चुके हैं कि हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यको ने केवल रोमन प्रशासन की ही उत्पत्ति नहीं की, वरन् यूनानी दर्शन की भी सृष्टि की। हम तीन और ऐसे उदाहरण पा सकते हैं जिनमें शक्तिशाली अल्पसंख्यक ने ही दर्शन की उत्पत्ति की।

उदाहरणार्थ, बैबिलोनिया के इतिहास में ई० पू० आठवीं शती के संकट-काल ने ज्योतिष-शास्त्र का अचानक विकास तथा बैबिलोनिया और असीरिया के शतवर्षीय युद्ध का आरम्भ देखा। इस युग में बैबिलोनिया के वैज्ञानिको ने अनादि काल से होते रहने वाले दिन और रात की क्रमबद्धता तथा चाँद के घटने और बढ़ने का अन्वेषण किया तथा ग्रहो की गतियों का बड़े पैमाने पर दिग्दर्शन कराया। ये तारे अनुशासन में वैसे ही बँधे है जैसे सूर्य, चाँद और आकाश का 'ध्रुव'। इन तारो का परम्परित नाम अपनी कक्षा में अस्थिर दिखाई पड़ने के कारण 'ग्रह' पड़ा है।

अविघटित तथा अपरिवर्तित प्रणाली जो नक्षत्रीय सृष्टि को नियन्त्रित करती हुई पायी गयी थी, वही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भौतिक एव आध्यात्मिक और निर्जीव एव सजीव दृष्टि से नियन्त्रित करती हुई मान ली गयी। सूर्यग्रहण या शुक्र का सक्रमण अतीत में सैकड़ों वर्ष पहले एक निश्चित समय मे कैसे हुआ था, इसकी गणना की जा सकी तथा सुदूर भविष्य मे ठीक समय पर कब होना निश्चित है, इसकी भी भविष्यवाणी वैसी ही दृढ़ता के साथ की गयी। इसी प्रकार क्या मानवीय क्रिया-कलाप को मानना उचित नही है? क्या ये भी वैसे ही दृढ़ एव गणनीय नही हैं?

ब्रह्माण्ड का अनुशासन इगित करता है कि विश्व के सभी ग्रह आपस की दृढ एकरूपता के साथ गतिशील हैं। तो क्या यह मान लेना अनुचित होगा कि सितारो की नवीन उद्घाटित गति मानवीय भाग्य की पहेली की कुजी नही है? जिसके हाथो मे ज्योतिष का यह सूत्र है, वह निरीक्षक अपने पडोसी की जन्म तिथि तथा जन्म समय जानकर उसके भाग्य के सम्बन्ध मे क्या भविष्य-वाणी करने में समर्थ होगा? यह युक्तिपूर्ण हो या न हो, किन्तु ये धारणाएँ बड़ी सूक्ष्मता के साथ बनायी गयी। इस प्रकार एक सनसनीपूर्ण वैज्ञानिक खोज ने नियतिवादी हेत्वाभास मूलक दर्शन को जन्म दिया, जिसने एक सामाजिक जीवन के बाद दूसरे सामाजिक जीवन को आकृष्ट किया। प्रायः २७०० वर्षों के बाद भी इस आस्था को बिलकुल अस्वीकार नही किया जाता।

ज्योतिष-शास्त्र की संमोहन शक्ति उसके उस मिथ्या प्रचार मे है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्पष्ट करने वाले सिद्धान्त को उस आभास के साथ मिलाती है जिसमे लल्लू-बुद्धू सभी को बताया जा सकता है कि डर्बी मे कौन जीतेगा। इस दोहरे आकर्षण के कारण बैबिलोनी समाज के विनाश होने पर भी बैबिलोनी दर्शन ईसा के पूर्व की अन्तिम शती मे जीवित रहने में समर्थ हुआ। कालडिया के गणितज्ञो ने धराशायी हेलेनी समाज को वह दर्शन दिया जिसे कल तक पीकिंग के दरबारी ज्योतिषियो तथा इस्तम्बोल के मुनज्जिम बाशी प्रदर्शित करते रहे।

हम लोगो ने बैबिलोनी नियतिवादी दर्शन पर विचार किया है, क्योकि इसमें हेलेनी दर्शन की अपेक्षा वर्तमान कार्टेसी (कार्टेसियन) युग के पश्चिमी संसार के अपरिपक्व दर्शन में सादृश्य अधिक है। दूसरी ओर करीब-करीब सभी हेलेनी विचारों के सम्प्रदायों का प्रतिरूप भारतीय एवं चीनी दर्शनों में पाया जाता है। विघटित भारतीय सभ्यता के शक्तिशाली अल्पसंख्यकों ने महावीर के अनुयायियों का जैन धर्म, सिद्धार्थ गौतम के आरम्भिक अनुयायियों का आदि बौद्ध धर्म तथा महायान का रूपान्तरित बौद्ध धर्म उत्पन्न किया। (यह बौद्ध धर्म प्राचीन बौद्ध धर्म से वैसे ही भिन्न था, जैसे ४०० शती पूर्व का सुकरात का दर्शन नये अफलातूनी दर्शन से) इस बौद्ध दर्शन

में जो विभिन्न शाखाएँ आयीं, वे बुद्ध से प्रभावित होने के बाद के हिन्दू धर्म के विचारों का अंग थीं। चीनी सभ्यता के प्रभावशाली अल्पसंख्यकों-ने कन्फूशियस के नीतिसंगत कर्मकाण्ड-वाद तथा कर्मकाण्डी नैतिकता और टाओ के विरोधाभासी उस ज्ञान को जन्म दिया जो लाओत्से की पौराणिक प्रतिभा द्वारा आरोपित किया गया था।

(२) आन्तरिक सर्वहारा

हेलेनी आदिरूप

जब हम प्रभावशाली अल्पसंख्यक से सर्वहारा की ओर अग्रसर होते हैं, तब तथ्यों के सूक्ष्म परीक्षण से हमारी धारणा दृढ होती है कि विघटित समाज के उन खण्डो में से प्रत्येक में रूप की विभिन्नता है। इस आध्यात्मिकता के क्षेत्र में बाहरी सर्वहारा एवं आन्तरिक सर्वहारा को हम दो विरोधी छोरों पर पाते हैं। आन्तरिक सर्वहारा की व्याप्ति बहुत अधिक विस्तृत है, जब कि बाहरी सर्वहारा की व्याप्ति उस प्रभावशाली अल्पसख्यक वर्ग से संकीर्ण है। विस्तृत क्षेत्र का हमें पहले सर्वेक्षण करना चाहिए।

यदि हम यूनानी आन्तरिक सर्वहारा की उत्पत्ति आरम्भिक भ्रूण अवस्था से जानने की इच्छा करें तो हमारे लिए थुसीडाइड्स के एक अवतरण को उद्धृत करने से उत्तम और कुछ नही हो सकता। इस अवतारणा मे हेलेनी समाज के पतन का दिग्दर्शन कराने वाले इतिहासकार ने अनुवर्ती सामाजिक भेद का वर्णन उसके आरम्भिक रूप मे किया है, जैसा कि कोरसाइरा में यह सर्वप्रथम दिखाई दिया।

'कोरसाइरा के वर्ग-युद्ध' (स्यैतिकता) की बर्बरता ऐसी थी कि जब वह विकसित हुई तब उसने अपने ढंग का गहरा प्रभाव उत्पन्न किया। अन्त मे यह उथल-पुथल सम्पूर्ण यूनानी संसार में करीब-करीब फैल गयी। प्रत्येक देश मे सर्वहारा के उन नेताओ और उनके उन प्रतिक्रियावादियो में संघर्ष था जिन्होंने एथेन्स तथा लेसीडेमोनिया के लोगों मे हस्तक्षेप के लिए प्रयत्न किया था। शान्ति के समय उनके पास विदेशियो को बुलाने का न तो अवसर था और न उनकी इच्छा थी। किन्तु जब युद्ध हुआ, तब दोनों दलो के किसी भी क्रान्तिकारी आत्मबल वाले को किसी भी विदेशी से अपने दल के बलवर्धन तथा अपने विरोधियों को पराजित करने के लिए सहायता प्राप्त करना आसान हो गया। वर्ग-युद्ध की अभिवृद्धि एक के बाद दूसरी विपत्ति यूनानी देशों में लाती रही। ये विपत्तियाँ तब तक आती रहीं, जब तक मानव स्वभाव मे परिवर्तन नही हुआ, यद्यपि ये विपत्तियाँ बढ़ायी या घटायी जा सकती हैं या लगातार परिवर्तित परिस्थितियों से इन्हें सुधारा जा सकता है। शान्ति के समय की अनुकूल दशा में देश तथा व्यक्ति दोनों मधुर औचित्य प्रदर्शित करते है, क्योकि ये घटनाओं से उत्पन्न तर्कों से प्रभावित नहीं होते। किन्तु, युद्ध सम्पूर्ण जीवन का धीरे-धीरे क्षय कर देता है तथा अधिकांश लोग अपने स्वभाव को युद्ध के क्रूर प्रशिक्षण के नये पर्यावरण से नियन्त्रित करते हैं। अतएव यूनान के देश वर्ग-युद्ध की छूत से ग्रसित हुए। एक के बाद एक वर्ग-युद्ध से उत्पन्न संवेदना अपना पूंजीभूत प्रभाव दूसरे पर छोड़ती गयी।[१]

१. थुसीडाइड्स की पुस्तक, तृतीय परिच्छेद ८२।

इन क्रियाकलापों की दशा का पहला सामाजिक प्रभाव 'राज्य-विहीन' निर्वासित बलमान जनसंख्या को अधिक-से-अधिक उत्पन्न करना था। हेलेनी इतिहास के विकास काल में ऐसी दुर्दशा असाधारण थी और भयानक रूप से असामान्य समझी जाती थी। निकाले हुए विरोधियो को शान्ति के समय घर लौटा लाने के लिए उस समय के नगर-राज्यो के शासक वर्गों को राजी कराने के सिकन्दर के उदार प्रयत्नो के द्वारा भी यह बुराई समाप्त न हुई। यह अग्नि स्वयं अपना ईंधन बनाती रही। एक बात यह थी कि निर्वासित लोगों को भाडे के सैनिको के रूप में ही भरती होने का मौका मिलता था। सैनिक जनशक्ति की इस बाढ ने युद्ध में नयी उत्तेजना जाग्रत की, जिससे नये निर्वासित पैदा हुए, जो अधिक भाडे के सैनिक होते थे।

युद्ध ने विनाशकारी आर्थिक शक्ति की क्रिया-प्रणाली उत्पन्न की जिसके द्वारा यूनान के लोगों में से युद्ध की भावना के नैतिक पतन के प्रभाव का प्रत्यक्ष उन्मूलन करके शक्तिशाली ढग से उनका बलवर्धन किया गया। उदाहरणार्थ, दक्षिण-पश्चिमी एशिया मे सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियो के युद्धो ने यूनान के गृहविहीनो के एक दल को सेना मे दल के नैतिक पतन के प्रभाव का उन्मूलन करने के लिए नौकरी दी। दो शताब्दियो से सग्रहीत अकेमेनियाई खजानो के धनसे इन भाडे के सैनिकों को वेतन देकर एकत्र धन संचरण में लाया गया। मुद्रा की इस अचानक वृद्धि ने कृषको और कारीगरो मे तबाही मचा दी। दाम बढे। इस वित्तीय क्रान्ति ने समाज मे एक अश को भिखारी बना दिया जो अब तक सापेक्ष सुरक्षा मे था। सौ साल बाद पुन हैनिबली युद्ध के आर्थिक परिणामों के फलस्वरूप वही पैसे-पैसे की मुहताजी का प्रभाव उत्पन्न हुआ। उस समय इटली की धरती से कृषकों को उखाड दिया गया, पहले हैनिबल के सैनिको द्वारा बरबादी और फिर बहुत दिनों तक रोम की सैनिक सेवा के कारण। इस घोर दुर्दशा मे इटालियाई कृषक वर्ग के मुहताज उत्तराधिकारियो के लिए, जिन्हे अपनी इच्छा के विरुद्ध उखाड़ डाला गया था सैनिक व्यवसाय के अतिरिक्त और कोई चारा नही था। यह व्यवसाय उनके पूर्वजो पर बेगारी के रूप मे लादा गया था।'

'अ-प्रजातिकरण' (डीरेसिनेशन) के इस कठोर तरीके मे हम नि.सन्देह यूनानी आन्तरिक सर्वहारा की उत्पत्ति का अवलोकन कर रहे हैं। इस तथ्य के होते हुए भी आरम्भिक पीढ़ियों मे, किसी भी मात्रा मे, इस तरीके के शिकार आरम्भिक अभिजात लोग थे। क्योंकि सर्वहारावाद भावना है, न कि वाह्य परिस्थितिजन्य स्थिति। प्रथम जब हमने 'सर्वहारा' शब्द का प्रयोग किया, तब हमने अपने उद्देश्य के लिए सामाजिक तत्त्व या समूह के रूप मे इसकी परिभाषा दी। ये सामाजिक तत्त्व या समूह किसी भी तरह समाज मे या समाज के इतिहास में समाज 'मे' थे 'के' नहीं। यह परिभाषा स्पार्टा के निर्वासित जनरल क्लीमरकस, साइरस दि यंगर के दूसरे कुलीनवर्गीय कप्तानों के यूनान के भाड़े की सेना पर लागू होती है। इन सभी पूर्ववर्तियो का तथा निकृष्ट बेकार मजदूरो का चित्रण ज़ेनोफन ने किया है। ये मजदूर मिस्र के मैसोडोनियन राजाओ तथा रोम के जनरलो के नेतृत्व में भाडे के सैनिको के रूप मे भरती हुए। इस सर्वहारा का वास्तविक प्रमाण-चिह्न न तो गरीबी है और न नीच जाति में जन्म लेना है, वरन् यह एक चेतना है जो समाज में अपने पूर्वजों से प्राप्त की जाती है और यह चेतना क्षोभ को उत्तेजित करती है।

इस प्रकार हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा मे सर्वप्रथम विघटित यूनानी राज्य निकायों के स्वतन्त्र

नागरिकों में से यहाँ तक कि कुलीनवर्गीय लोगो में से भी भरती किये गये । इन पहले रंगरूटों से सर्वप्रथम आध्यात्मिक जन्मसिद्ध अधिकार छीनकर इन्हे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया । किन्तु, निश्चित रूप से इनकी आध्यात्मिक विपन्नता ने भौतिक धरातल पर आर्थिक मुहताजी का बहुधा साथ दिया । यह आर्थिक मुहताजी करीब-करीब सदैव आध्यात्मिक विपन्नता के बाद आयी । दूसरे वर्गों से रंगरूटो को भरती करके शीघ्र ही सर्वहारा का बल-वर्धन किया गया । ये दूसरे वर्ग के रंगरूट आरम्भ से ही जैसे आध्यात्मिक थे वैसे ही भौतिक सर्वहारा के थे ।

मकदूनिया के विजय-प्रयाणों ने हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा की संख्या बहुत अधिक बढ़ा दी। इन युद्धो ने सम्पूर्ण सीरिया, मिस्र तथा बैबीलोनिया के जन-समूहो को यूनानी शक्तिशाली अल्प-संख्यको के जाल मे फँसा दिया जब कि रोम की बाद की विजयो ने यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका के आधे जंगली लोगों को समाप्त कर दिया ।

हेलेनी सर्वहारा की बलवृद्धि में अपनी इच्छा के विरुद्ध आये । विदेशी आरम्भ मे कदाचित् यूनान के वास्तविक निवासी सर्वहारा से एक दृष्टि मे अधिक भाग्यशाली थे । यद्यपि वे नैतिक दृष्टि से उत्तराधिकार से वचित किये गये और भौतिक दृष्टि से लूट लिये गये, फिर भी शारीरिक दृष्टि से निर्मूल नही किये गये । किन्तु विजेताओ के बाद दासो का व्यापार आरम्भ हुआ और ईसा पूर्व की दो शताब्दियो तक भूमध्यसागरी तटो के क्षेत्र की जनसख्या इटली के दासो के बाजार की अतृप्त माँगो की पूर्ति के लिए थी । इस जनसख्या मे पश्चिमी असभ्य तथा पूर्वी सभ्य दोनो प्रकार के लोग थे ।

अब हम देखते है कि यूनानी विघटित समाज का आन्तरिक सर्वहारा तीन विभिन्न तत्त्वो से बना है । ये तत्त्व है —(१) समाज के सदस्य जो उत्तराधिकार से वचित तथा सामाजिक जीवन से उन्मूलित हैं, (२) विदेशी सभ्यताओ के उत्तराधिकार से आशिक रूप मे वचित तथा उस आदिम समाज के सदस्य जो बिना निर्मूल किये पराजित और शोषित किये गये थे, (३) दोहरे उत्तराधिकार से वंचित तथा बाध्य होकर उस प्रजावर्ग से बने सैनिक जिनको केवल उन्मूलन ही नही किया, वरन् जिन्हे दास बनाया गया और मृत्यु तक कार्य करने के लिए सुदूर उपनिवेशो को निर्वासित किया गया । इन तीनो प्रकारो के विपद्ग्रस्त दलो की यातना वैसी ही भिन्न-भिन्न थी, जैसी उनकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न थी, किन्तु सामाजिक उत्तराधिकार से वचित होने के अत्यन्त साधारण अनुभव एव शोषण से समाज बहिष्करण द्वारा ये भिन्नताएँ सीमा से अधिक हो गयी थी ।

जब हम परीक्षण करते हैं कि इन अन्याय के शिकार हुए लोगो की प्रतिक्रिया अपने भाग्य के साथ कैसी होती है, तब हमे आश्चर्य नही होता कि उनकी प्रतिक्रियाओ मे से एक अपनी बर्बरता का उद्घाटन है । यह बर्बरता हिंसा मे अपने शोषक एवं अत्याचारियो की निर्मम निष्ठुरता को भी मात दे देती है । निराश सर्वहारा के उपद्रव के कोलाहल मे आक्रोष के स्वर की एकरूपता गूँजती है । हम इस गूँज को निरन्तर क्रम में मिस्र के मैसीडोनी राजाओ के शोषण के विरुद्ध की जनता के विद्रोह में तथा जूडास मैकाबियस १६६ ई० पू० के उत्थान से लेकर बार कोकाबा (१३२ ई० पू०-३५ ई०) के नेतृत्व की परित्यक्त आशा तक मे सुनते हैं । यही आक्रोष का स्वर पश्चिमी एशिया माइनर के अर्द्ध यूनानी तथा अत्यन्त सभ्य लोगो मे दो बार,

अटालिड अरिस्टोनिक्स (१३२ ई० पू०) तथा पोन्टस के राजा मिथ्राडेटिस (८८ ई० पू०) के नेतृत्व में रोम के बदला लेने वालों पर प्रचण्ड क्रोध प्रदर्शित करने की प्रेरणा मे था। सिसिली और दक्षिणी इटली में भी दास विद्रोह की एक शृंखला है। यह विद्रोह थ्रेस (यूनान का प्राचीन नगर) के पेशेवर फरार सैनिक एवं दासों के विद्रोही नेता स्पार्टक्स् के उग्र कार्यों में चरम सीमा पर था। स्पार्टक्स ने सम्पूर्ण इटली प्रायद्वीप मे सर्वत्र इस विद्रोह का संगठन किया और रोम के भेड़िये को उसके माँद में ही ललकारा (७३ ई० पू० से ७१ ई० पू० तक)।

इन विद्रोहों की उग्रता सर्वहारा के केवल विद्रोही तत्त्वो में ही नही थी। गृह-युद्ध में रोम के नागरिक सर्वहारा ने बर्बरता द्वारा रोम के धनिकतन्त्र को बदल दिया और उस पर अधिकार कर लिया। विशेष रूप से यह बर्बरता ९१ ई० पू०—८२ ई० पू० के आवेग में थी। यह बर्बरता जुडास मैकेबियस या स्पार्टक्स की बर्बरता के समान ही थी। रोम के क्रान्तिकारी नेता—सारटोरियस्, सेक्सटस्, पाम्पियस् मैरियस् और कैटेलाइन—जो अपने भाग्य-चक्र के कुछ असाधारण परिवर्तनो के द्वारा स्वतः मुँह के बल सिनेट के बाहर गिरे, सबसे अधिक शैतान थे। इन शैतानों की काली आकृति की अशुभ प्रतिच्छाया ससार को आक्रान्त करने वाली विद्रोह की ज्वाला से निर्मित हुई थी।

हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा की प्रतिक्रिया केवल आत्महत्यात्मक हिंसा ही नही थी। प्रतिक्रिया की एक दूसरी प्रणाली पूर्ण रूप से थी, जिसकी उच्च अभिव्यक्ति ईसाई धर्म मे पायी गयी। दल से अलग होने की इच्छा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति वैसी ही उदार एवं अहिंसक प्रतिक्रिया है, जैसी हिंसात्मक प्रतिक्रियाएँ।

उच्च कुलोत्पन्न शहीद यहूदियों के फरीसी सम्प्रदाय के आदि गुरु थे, और फरीसी[1] वे है, जो स्वयं को अलग रखते हैं। इसी से ये 'विच्छेदवादी' कहलाते हैं। यह उपाधि उन्होने स्वयं धारण कर ली है। फरीसी रोमी भाषा की व्युत्पत्ति के अनुसार 'सेसेशनिस्ट' (विच्छेदवादी) का रूपान्तर है। इन उच्च कुलोत्पन्न शहीदो को मकाबियो की द्वितीय पुस्तक में वृद्ध धर्मलिपिक एलीजर और सात भाई तथा उनकी माँ के रूप मे स्मरण किया गया है। ईसा पूर्व द्वितीय शती के बाद से हेलेनी संसार के पूर्वी आन्तरिक सर्वहारा के इतिहास मे हम हिंसा तथा सौम्यता को आत्मा के उत्कर्ष के लिए भगीरथ प्रयत्न करते हुए तब तक देखते हैं जब तक हिंसा स्वय अपना नाश नही कर लेती और सौम्यता को क्षेत्र मे अकेला ही नहीं छोड़ देती।

आरम्भ मे यह बात उठी। सभ्यता का वह मार्ग जो आदि शहीदों के द्वारा १६७ ई० पू० मे अपनाया गया था, हिंसक जुडास (ईसा के १२ शिष्यो मे से एक जिसे हिंसक होने के कारण नरक मिला।) द्वारा शीघ्र छोड़ दिया गया। इस सर्वहारा की 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली भौतिक सफलता ने भावी पीढी को इतना चकाचौंध कर दिया, यद्यपि यह भौतिक सफलता चाकचिक्यपूर्ण होते हुए भी क्षणभगुर थी कि ईसा के सर्वप्रिय साथी भी अपने गुरु की नियति सम्बन्धी भविष्यवाणियो पर बदनाम किये गये। जब ये भविष्यवाणियाँ सत्य होती थीं, तब वे प्रणम्य होते थे। तिस पर भी ईसा के बलिदान के कुछ ही महीने बाद गैमेलिएल (सन्तपाल का

१. कट्टर यहूदी।—अनु०

यहूदी उपदेशक) ने ईसा के चमत्कारिक रूप से एकत्र शिष्यों को ऐसे मनुष्यों की भाँति देखा जो सिद्ध कर सकते थे कि ईश्वर उनकी ओर है । कुछ साल बाद गैमेलिएल के शिष्य पाल ईसा की भाँति उपदेश दे रहे थे ।

ईसा की प्रथम पीढ़ी में हिंसा के मार्ग से शान्ति के मार्ग को परिवर्तन हुआ । यह परिवर्तन भौतिक आशाओं को आघात से छिन्न-भिन्न करने के मूल्य पर खरीदा गया । ईसा को सूली पर लटका कर ईसा के अनुयायियों के साथ वैसा ही किया गया जैसा ७० ई० में जेरूसलम को नष्ट कर परम्परावादी यहूदियों के साथ हुआ । 'जुडाइजम' (यहूदियत) के नये सम्प्रदाय का उदय हुआ । इस सम्प्रदाय ने यह धारणा त्याग दी कि वस्तुओ की बाह्य अवस्था ही ईश्वर का राज्य है जो शीघ्र ही प्रकट किया जाने वाला है ।[१]

वे ईश्वर-ज्ञान सम्बन्धी लेख पैगम्बरों तथा धार्मिक कानून के सामान्य नियमों से अलग कर दिये गये, जिनमे यहूदियो के हिंसात्मक तरीके की साहित्यिक अभिव्यक्ति पायी जाती थी । डैनियल की विशिष्ट पुस्तक ही केवल इसका अपवाद है । इसके विपरीत मानवीय हाथो से इस ससार मे ईश्वरीय इच्छा के पूर्ण करने की धारणा के विकास के सभी प्रयत्नो से स्वय को अलग रखने का सिद्धान्त यहूदियो की परम्परा मे इतने शीघ्र घुल-मिल गये कि कट्टर अधविश्वासी अगुडाथ इसरायल ने यहूदीवादी आन्दोलन को सन्देहास्पद दृष्टि से देखा और बीसवी शती के फिलस्तीन के यहूदियो ने राष्ट्रभूमि के निर्माण-कार्य से स्वयं को एकदम अलग रखा ।

यदि अन्धविश्वासी यहूदियो का हृदय-परिवर्तन परम्परावाद के रूप में उन्हे जीवित रखने मे समर्थ हुआ तो इसी के साथ ही ईसा के साथियो के हृदय-परिवर्तन ने ईसाई धर्मतन्त्र की विजय के लिए मार्ग प्रशस्त किया । ईसा को सूली पर चढ़ाना ईसाई धर्मतन्त्र को चुनौती की प्रतिक्रिया इलीजर तथा सात भाइयों की सौम्य पद्धति मे व्यक्त हुई । इसका पुरस्कार हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के परिवर्तन तथा इसके बाद बाह्य सर्वहारा के जंगली तथा लड़ाकू दलो के परिवर्तन के रूप मे मिला ।

प्रथम शती के अपने विकास में ईसाइयत का प्रत्यक्ष विरोधी हेलेनी समाज का आदिम धर्म अपने नवीनतम छद्मवेष मे था । धर्म का यह छद्मवेष डाइक्स सीजर के व्यक्तित्व मे हेलेनी सार्वभौम राज्य की मूर्तिपूजा में था । अपने सदस्यों को मूर्तिपूजा की अनुमति देने से धर्मतन्त्र का इनकार करना भद्र होते हुए भी दुराग्रही था । यद्यपि यह केवल दिखावटी और रिवाजी तरीका था जिससे राजकीय दण्ड की शृंखला आरम्भ हुई । अन्त में रोम की साम्राज्य-सरकार को उस आध्यात्मिक शक्ति के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया गया जो सरकार को बाध्य करने में स्वय समर्थ नही थी । किन्तु, यद्यपि साम्राज्य का आदि राजधर्म सरकार के सभी अधिकारियों की सम्पूर्ण शक्ति से बनाये रखा गया, फिर भी मानव हृदय पर उसका प्रभाव नहीं के बराबर था । राजधर्म के प्रति पारम्परिक सम्मान प्रारम्भ और अन्त मे था । इस सम्मान को रोम के मजिस्ट्रेट ईसाइयों को धार्मिक पूजा के कृत्यो को प्रदर्शित कर दिखाने की आज्ञा देते थे । इसमें उन गैर-ईसाइयो के लिए इससे कुछ और अधिक नहीं था कि उनसे जो

१. बर्कीट, एफ० सी० : जेविस एण्ड क्रिसियन एपोकालिप्सेस्, पृष्ठ १२ ।

कुछ कहा जाय वे वही करें। ये नहीं समझते थे कि ईसाई मामूली रीति-रिवाज के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा आत्मबलिदान पर क्यो जोर देते है। ईसाई धर्म के प्रतिद्वन्द्वी जो स्वयं शक्तिशाली थे, न तो राज-पूजा थे और न तो धर्म का कोई आदि रूप ही थे। एक प्रकार का—'उच्चतर धर्म' था जिसका उदय हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा से ईसाई मत की भाँति हुआ था। ईसाई धर्म का यह प्रतिद्वन्द्वी स्वय स्थानीय आकर्षण के कारण शक्तिशाली था तथा उसे राजनीतिक बाध्यता के समर्थन की आवश्यकता न थी।

विभिन्न सूत्रों को स्वय स्मरण कर हम इन प्रतिद्वन्द्वी 'उच्चतर धर्मों' की कल्पना कर सकते है जिनसे हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के पूर्वी सैन्यदल की उत्पत्ति हुई। ईसाई धर्म सीरियाई जनता के पूर्वजो से आया। सीरियाई ससार के आधे ईरानियो ने मिथ्यावाद को योगदान किया। आधे उत्तरो मिस्र की दरिद्रता मे डूबने से 'आइसिस' की पूजा का प्रादुर्भाव हुआ। इनातोल के 'ग्रेट मदर साईबिली' की पूजा सम्भवतः उस हिताइती समाज के योगदान से आयी हुई समझी जा सकती है, जो धर्म को छोड़कर समाज के प्रत्येक धरातल से बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी थी।

यदि हम स्वय 'ग्रेट मदर' की मूल उत्पत्ति का पता लगाना आरम्भ करे, तब इसे अपने मूल रूप में इशतार नाम से सुमेरी संसार मे सुपरिचित पायेगे।—एमार्तालिया मे पेसिनस मे 'साइबिली' के रूप मे स्थापित करने के पहले या हिरापोलिस मे 'डी साइरा' की भाँति अथवा उत्तरी सागर या बाल्टिक सागर के 'पवित्र द्वीप' के कुजो मे टयूटोनी भाषी पुजारियो की 'धरती माता' की भाँति—यह ग्रेट मदर—पायी जाती है।

मिनोई काल की रिक्तता तथा कुछ हिताइत अवशेष

जब हम अन्य विघटित समाजो मे आन्तरिक सर्वहारा के इतिहासों को खोजते है तब हमको स्वीकार करना पड़ता है कि कुछ स्थितियो मे अल्प प्रमाण मिलते हैं या एकदम नही मिलते। उदाहरणार्थ, हम 'माया' समाज के सर्वहारा के सम्बन्ध मे कुछ भी नही जानते। मिनोई समाज के मामले में कुछ वस्तुओ के अवशेष की, जो ऐतिहासिक 'ओरफिक धर्मतन्त्र' के विजातीय तत्वो मे सुरक्षित रखे जा सकते है, तृष्णा उत्तेजित करने वाली आशा की टिमटिमाहट की सम्भावना मे हमारा ध्यान खिंच जाता है। इन कुछ अवशेषो को मिनोई सार्वभौम धर्मतन्त्र कहा जा सकता है। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के बाद हेलेनी इतिहास में 'ओंफिक' धर्मतन्त्र का अस्तित्व आरम्भ होता है। हम किसी प्रकार निश्चित नही कर सकते कि ओरफीवाद के धार्मिक विश्वास तथा अभ्यास मिनोई धर्म से निकले है। पुन. इसके बाद हम हिताइती सभ्यता के आन्तरिक सर्वहारा के बारे मे कुछ भी नही जानते, जो असामान्य रूप से अपनी आरम्भिक अवस्था मे ही नष्ट हो चुका है। हम इतना ही कह सकते है कि हिताइती समाज के अवशेष आंशिक रूप से सीरियाई समाज मे तथा आशिक रूप से हेलेनी समाज मे आत्मसात् कर लिये गये हैं। अतएव हिताइती समाज के किसी भी अवशेष के लिए हमे इन दो विदेशी समाजों के इतिहासों की खोज करनी चाहिए।

बहुत-से विघटित समाजो मे से एक हिताइती समाज है, जिसे विघटन की प्रणाली से पूर्ण होने से पहले ही उसके एक पड़ोसी ने निगल लिया। ऐसे मामलों में यह स्वाभाविक है कि एक आन्तरिक सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसख्या के भविष्य के भाग्य का सम्मान उपेक्षा की दृष्टि से

या सन्तोष के साथ करें। जब स्पेनी विजेताओं ने अचानक आक्रमण किया, तब इन्डियन सर्वव्यापी राज्य के आन्तरिक सर्वहारा का व्यवहार परीक्षा की बात (टेस्ट-केस) है। अब तक जितने विघटित समाज पैदा हुए थे, उनमे 'ओरेजोन्स' ही कदाचित् सबसे अधिक उदार शक्तिशाली अल्पसंख्यक था, किन्तु इसकी उदारता परीक्षा के समय कुछ भी काम न आयी। इसी प्रकार उनके (ओरेजेन्स के) सावधानी से पालित मनुष्यो के झुंडों ने बिना किसी हिचकिचाहट के स्पेनी विजय को स्वीकार किया जिस प्रकार उन्होने 'इनका'[१] की सार्वभौम शान्ति को स्वीकार किया था।

हम उन स्थितियों की ओर भी सकेत कर सकते हैं जिनमें आन्तरिक सर्वहारा वर्ग ने अपने प्रभावी अल्पसंख्यक वर्ग के विजेताओ का अदम्य उत्साह के साथ स्वागत किया है। उन नये बैबिलोनी साम्राज्य के फारसी विजेता का स्वागत 'ड्यूटरो इसैहा' के भाषणो के सग्रहो मे मुखरित है। इस विजेता ने यहूदियों को बन्दी बनाया था। दो सौ वर्षों बाद बैबिलोनी लोगो ने हेलेनी सिकन्दर का स्वागत एकेमेनियाई प्रभुत्व से मुक्ति दिलाने वाले के रूप मे स्वतः किया।

जापानी आन्तरिक सर्वहारा

सुदूर पूर्वी समाज के जापान के इतिहास मे जापानी आन्तरिक सर्वहारा के पार्थक्य के कुछ स्पष्ट चिह्न पाये जा सकते है। पश्चिमी समाज के द्वारा इस सर्वहारा के समाप्त होने से पहले भी ये विपत्तियों के समय दिखाई देते है और अपने सार्वभौम राज्य में प्रविष्ट हो जाते है। यदि हम उदाहरण के लिए हेलेनी नगर-राज्य के उन नागरिकों के प्रतिरूपों को देखे, जिनका उन्मूलन निरन्तर युद्ध एवं क्रान्तियो ने किया—ये युद्ध तथा क्रान्तियाँ ४३१ ई० पू० से आरम्भ हुई थी—इस समय नगर-राज्य के नागरिको ने भाड़े के सैनिक होकर एक राह पायी—तो हम इसके एकदम समानान्तर उदाहरण 'रोनिन' या स्वामी विहीन बेकार सैनिको मे पायेंगे। ये सैनिक सामन्ती अराजकता के द्वारा जापानी सकटकाल मे नष्ट किये गये थे। पुनः विचारार्थ 'एटा' या 'नीच जाति' को ले सकते हैं, जो आज भी बहिष्कृत जाति के रूप मे जापानी समाज में बचे है, तथा जो मुख्य द्वीप के 'एनू' बर्बर जाति मे आत्मसात् होने से आज भी बच गये है। ये अवशिष्ट अश वैसे ही जापानी आन्तरिक सर्वहारा मे मिला लिये गये जैसे यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के जगली हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा में रोम के सैनिको द्वारा मिला लिये गये थे। तीसरा उदाहरण हम उन 'उच्चतर धर्मों' के जापानी पर्यायो मे पा सकते हैं जिनमे हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा ने अपनी उन यातनाओं की शक्तिशाली प्रतिक्रिया खोजी और पायी जो उन्हे सहनी पड़ी थी।

ये धर्म जोडो, जोडो शिशु, होक्को और ज़ेन थे। ये सभी ११७५ ई० के पश्चात् उसी शती में स्थापित किये गये थे। ये सभी धर्म उन हेलेनी पर्यायो के सदृश हैं जो विदेशी प्रेरणा से उत्पन्न हुए थे। ये चारों महायान के विभिन्न रूप थे। यौन विषय की आध्यात्मिकता की समानता की शिक्षा देने के क्षेत्र में इन चारों धर्मों में से तीन ईसाई धर्म से मिलते थे। सरल

१. एक पुरानी सभ्यता की जाति।—अनुवादक

जनता को अपना धार्मिक उपदेश करते हुए इन धर्मों के प्रचारकों ने चिर क्लासिकी चीनी लिपि का बहिष्कार किया। जब लिखना पड़ा, सरल जापानी लिपि में लिखा। धर्म संस्थापकों के रूप में उनकी मुख्य दुर्बलता यह थी कि अधिक-से-अधिक जनता के परित्राण की इच्छा में उन्होंने अपनी माँगों को अत्यन्त कम कर लिया था। कुछ ने कर्मकाण्ड करने की पद्धति का केवल सूत्र निश्चित किया और दूसरों ने अपने शिष्यों पर नैतिक बोझ कुछ भी नही डाला। किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि 'पापों को क्षमा करने' के ईसाइयत के मुख्य सिद्धान्त का विभिन्न कालों और स्थानों में अपने आप बने ईसाई नेताओं द्वारा दुरुपयोग किया गया या गलत ढंग से समझा गया। इन ईसाई नेताओं ने उपर्युक्त एक या दोनो आरोपों का उद्घाटन किया। उदाहरणार्थ 'लूथर' ने रोमन धर्मतंत्र द्वारा किये जाने वाले पाप से मुक्ति की बिक्री पर आक्रमण किया। लूथर ने अपने युग की रोमन धर्म की 'पाप से मुक्ति' की बिक्री की प्रथा का विरोध किया और कहा कि यह कर्मकाण्ड के परदे में व्यापारिक लेन-देन ही है। किन्तु साथ-ही-साथ उसने पाल के विश्वास वाले सिद्धान्त का और उसके पाप से निवृत्ति के ढंग का समर्थन किया। और इस प्रकार नैतिकता के प्रति उदासीनता का अपराधी बना।

विदेशी सार्वभौम राज्य के अन्तर्गत आन्तरिक सर्वहारा

विघटित सभ्यताओ के एकदल द्वारा एक विचित्र दृश्य उपस्थित होता है। स्थानीय शक्तिशाली अल्पसंख्यक के नष्ट या पराजित कर दिये जाने के बाद बाह्य घटनाओ का क्रम सामान्य अवस्था में होता चलता है। तीन समाजो के—हिन्दू, सुदूर पूर्वी चीनी तथा निकटवर्ती पूर्वी परम्परावादी ईसाई—लोग पतन के मार्ग से विघटन की ओर बढ़े। यह सार्वभौम राज्य उन तीनो समाजो ने स्वय नही बनाया था, वरन् उन्हे विदेशी लोगो से वरदान के रूप में मिला था या विदेशियो द्वारा उन पर लादा गया था। एक 'सार्वभौम राज्य' ईरानी लोगो से परम्परावादी ईसाई राज्य के मुख्य अंश को उसमानिया साम्राज्य के रूप मे तथा दूसरा हिन्दू ससार में तैमूरी साम्राज्य के रूप मे मिला था। अंग्रेजो ने शीघ्र निर्मित मुगल राज्य का पुनर्निर्माण नीव से किया। चीन में वे मगोल थे जिन्होने मुगलो या उसमानिया लोगो की भूमिका अदा की। भारत में पुनर्निर्माण का कार्य जिस दृढ़ आधार पर अंग्रेजो ने किया वैसे ही चीन मे मंचुओ ने किया।

जब विघटनोन्मुख समाज में कुछ विदेशी राज्यनिर्माता सार्वभौम राज्य के निर्माण के लिए प्रवेश कर लेते हैं, तब विघटनोन्मुख समाज का शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने को पूर्ण अयोग्य एवं निर्जीव स्वीकार कर लेते है। अपमानजनक मनवचन (डिसफ्रेंचाइज़मेंट) इस अकालिक वृद्धता का अपरिहार्य दण्ड है। जो विदेशी शक्तिशाली अल्पसख्यक का कार्य करने आते हैं, वे स्वभावतः प्रभावशाली अल्पसख्यक के अधिकारी होने का कार्य अपने ऊपर ले लेते हैं। विदेशियों द्वारा निर्मित सार्वभौम राज्य में सम्पूर्ण स्थानीय अल्पसंख्यक आन्तरिक सर्वहारा के रूप में अवनत कर दिये जाते हैं। मगोल या मचू खाकान और उसमानिया बादशाह, मुगल तथा ब्रिटिश कैसरे हिन्द को चीनी विद्वानों या हिन्दू ब्राह्मणों या ग्रीक के 'फैनारियोट' को सेवा के लिए नियुक्त करने में सुविधा होती थी। किन्तु, इन एजेन्टों से यह सत्य छिपाया नहीं जा सकता था कि उन्होंने अपनी आत्मा तथा अपनी प्रतिष्ठा को खो दिया है। ऐसी स्थिति में जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक आन्तरिक सर्वहारा के समान गिर चुका है, जिसे वह पहले घृणा की दृष्टि से देखता था, तब विघटन की यह कार्यप्रणाली स्वाभाविक ढंग से नहीं हो सकती।

अपनी पीढ़ी में हिन्दू समाज के आन्तरिक सर्वहारा में हम सर्वहारा की दो प्रकार की हिंसक तथा अहिंसक प्रतिक्रियाओं का भेद कर सकते है। हिंसावादी बंगाली क्रान्तिकारियो द्वारा की गयी हत्याएँ तथा गुजराती महात्मा गांधी के अहिंसात्मक उपदेश, ये दोनों प्रतिक्रियाएँ एक दूसरे की विरोधी हैं। अनेक धार्मिक आन्दोलनों से सर्वहारा की उत्तेजना के लम्बे बीते उस इतिहास से हम निष्कर्ष निकाल सकते है जिसमें ये दो विरोधी प्रवृत्तियाँ समान रूप से दिखायी गयी हैं। सिख धर्म मे हम हिन्दू तथा इस्लाम के युद्धात्मक सर्वहारा का तथा ब्रह्म-समाज में हिन्दू धर्म तथा उदार प्रोटेस्टैन्ट ईसाई धर्म की अहिंसा की संहति देखते है।

चीन के सुदूर पूर्वी समाज में, मचू शासन के अन्तर्गत आन्तरिक सर्वहारा मे वह कार्य टैंपिग आन्दोलन में देखते है जो प्रोटेस्टेन्ट ईसाई धर्म की उदार भावना के लिए ब्रह्म-समाज का ऋणी है, किन्तु वह सिख धर्म का भी युद्धात्मक प्रवृत्ति के लिए आभारी है। इसी उपर्युक्त सर्वहारा ने ईसाई युग की १९ वी शती के मध्य सामाजिक रगमच को प्रभावित किया था।

ईसाई युग के १४ वी शती के पाँचवे दशक मे परम्परावादी ईसाई साम्राज्य के मुख्य अश के सर्वहारा मे हुई सैलेनिका की 'जीलट'[1] क्रान्ति मे हमे सर्वहारा की हिंसात्मक प्रतिक्रिया की झाँकी परम्परावादी ईसाई धर्म के घोर संकटकाल मे मिलती है। यह संकटकाल उसमानिया विजेता के कठोर अनुशासन द्वारा परम्परावादी ईसाई समाज के सार्वभौम राज्य मे मिलाये जाने के पहले की अन्तिम पीढी मे आया था। तात्कालिक सभ्य प्रतिक्रियाएँ आगे बहुत दूर तक नही बढी। १८ वी तथा १९ वी शती की मोड़ पर यदि पश्चिमीकरण की प्रणाली का अनुसरण उसमानिया साम्राज्य के साथ-ही-साथ नही किया गया होता तो हम अनुमान कर सकते है कि 'बेकटासी' आन्दोलन पूरे निकट पूर्व में स्वतः वह स्थिति प्राप्त कर लेता जिसे अल्बेनिया मे उसे प्राप्त करने मे वास्तविक सफलता मिली।

बैबिलोनी तथा सीरियाई आन्तरिक सर्वहारा

यदि अब हम बैबिलोनी ससार को देखे तो हम पायेगे कि आन्तरिक सर्वहारा की दुखमय आत्मा में धार्मिक अनुभव तथा खोज की उत्तेजना वैसी ही सक्रिय थी, जैसी ईसा से सातवी तथा आठवी शतियो पूर्व असीरियाई आतंक के अन्तर्गत दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में तथा जैसी उपर्युक्त घटना के लगभग छः शतियो बाद रोमनी आतंक के अन्तर्गत भूमध्य सागर के हेलेनी समुद्रतटों पर थी। असीरियाई सैनिको द्वारा विघटित बैबिलोनी समाज का विस्तार भौगोलिक दृष्टि से वैसे ही दो ओर हुआ जैसे मैसिडोनी तथा रोमन विजयों द्वारा विघटित हेलेनी समाज का हुआ था।

ईरान में पूरब की ओर जैग्रोस के आगे असीरियाई लोगो ने एपेनाइन के परे यूरोप में रोम द्वारा अनेक आदिम समाजों को जीत कर शोषण की आशा कर ली थी। पश्चिम की ओर दजला नदी के आगे डार्डेनल्स के एशिया की ओर दो विदेशी सभ्यताओं को पराजित कर मैसिडोनी शोषण की असीरियाई लोगों ने आशा कर रखी थी। ये सीरियाई तथा मिस्री लोग वास्तव

१. यहूदियों का वह कट्टर वर्ग जिसने रोमनों का विरोध किया था।—अनुवादक

में समान थे । उपर्युक्त चार में से दो समाज सिकन्दर के सामरिक अभियान के बाद हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा में मिला लिये गये । बैबिलोनी सैन्यवाद के विदेशी शिकार बिना निर्मूल किये जीत लिये गये थे । पराजित जनसंख्या को निर्वासित करके इसरायली लोग असीरिया के युद्ध के सरदार 'सारगन' द्वारा पुन:स्थापित किये गये । नये बैबिलोनी युद्ध सरदार नेबुकदनजार के द्वारा यहूदियो का बैबिलोनी ससार के मध्य बैबिलोनिया में पुन:स्थापन किया गया ।

पराजित लोगो का उत्साह भंग करने के लिए बैबिलोनी साम्राज्यवाद की मुख्य युक्ति जनसंख्या का अनिवार्य परिवर्तन थी और निष्ठुरता विदेशी तथा बर्बरो पर ही आरोपित नही की गयी । बैबिलोनी ससार में भ्रातृहन्ता युद्ध की प्रभावशाली शक्तियाँ आपस में वैसा ही व्यवहार करने में जरा भी नही हिचकिचायीं । सैमैरिटन समुदाय जिसके कुछ प्रतिनिधि अभी गॅरिजिम पर्वत की छाया में पाये जा सकते है, जनसंख्या के पुन:स्थापन के स्मारक है । ये पुन स्थापित लोग असीरियनो द्वारा बैबिलोनिया सहित अनेक बैबिलोनी नगरो से निर्वासित किये गये थे ।

यह देखा जायगा कि उत्साही असीरियाई तब तक समाप्त नहीं हुए, जब तक उन्होने उस बैबिलोनी सर्वहारा का अस्तित्व स्थापित नही किया जो अपनी उत्पत्ति, बनावट एव अनुभव मे हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के समान था । इन दोनों वृक्षो में समान ही फल लगे, जब सीरियाई समाज का हेलेनी सर्वहारा में बाद के समावेशन ने यहूदी धर्म से ईसाइयत का फल पैदा किया, उसी सीरियाई समाज के बैबिलोनी आन्तरिक सर्वहारा के आरम्भिक समावेशन ने स्थानीय समुदाय के आदि धर्म से यहूदी धर्म के फल की उत्पत्ति तब की थी, जब सीरियाई समाज ने उसे स्वीकार किया ।

यह देखा जा सकता है कि तब तक यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म दार्शनिक दृष्टि से समकालीन तथा बराबर है जहाँ तक वे दो विदेशी समाजो के इतिहासो के समान अवस्था की उत्पत्ति समझे जाते है । एक दूसरो दृष्टि और भी है, जिसमे ये एक-दूसरे के बाद की अवस्था को आध्यात्मिक प्रबोधन की एक ही प्रणाली मे उपस्थित है । इस बाद के चित्र मे ईसाई धर्म यहूदी धर्म के साथ-ही-साथ नही खड़ा है, वरन् उसके कन्धे पर है, जब कि ये दोनो आदिम इसराइल धर्म से ऊँचे हैं । ईसा के पूर्व आठवी शती मे अथवा उसके बाद जिसका ऐतिहासिक उल्लेख हमारे पास है आदिम का ईसाई धर्म अथवा ओहोवा की पूजा का सकेत या उल्लेख है । पैगम्बरो के समक्ष तथा उनके बाद बाइबिल की परम्परा मे मूसा उपस्थित होते हैं । और मूसा के समक्ष अबराहम की आकृति उपस्थित होती है । इन धुंधली आकृतियो को हम जिस भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से देखे, यह स्पष्ट है कि परम्परा उसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे अबराहम तथा मूसा को रखती है जिसमें पैगम्बरों और ईसा को रखा था । मिस्र मे मूसा की प्रतीति तथा 'नये साम्राज्य' का ह्रास साथ-ही-साथ हुआ । उस सुमेरी सार्वभौम राज्य के अन्तिम दिनों के साथ अबराहम की प्रतीति हुई जिसकी क्षणिक पुनर्रचना 'हेमु रब्बी' द्वारा हुई थी । इस प्रकार ये सभी चार अवस्थाएँ, जो अबराहम, मूसा, पैगम्बरों तथा ईसा के द्वारा उपस्थित की गयी है, विघटित सभ्यताओं और धर्म की नवीन प्रेरणाओं से सम्बन्धित है ।

उच्च यहूदी धर्म की उत्पत्ति ने स्वयं अपने सम्बन्ध में इसरायल तथा जूडा के पूर्व निर्वासित पैगम्बरों की पुस्तकों में अद्वितीय ढग से पूर्ण तथा स्पष्ट उल्लेख किया है । अत्यन्त आध्यात्मिक

भगीरथ प्रयत्न के इन जीवित अभिलेखों में हम एक ज्वलन्त प्रश्न देखते है जो हमें अन्य स्थानों पर मिला है। यह प्रश्न है हिंसा और अहिंसा मे से एक के चुनाव की कठोर परीक्षा का। इस मामले में अहिंसा ने धीरे-धीरे हिंसा के ऊपर और भी विजय पायी। संकटकाल जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा और उसे पार कर गया, तब उसी सकटकाल ने लगातार प्रखर आघात किया। इस आघात ने 'हिंसा के उत्तर मे हिंसा' की निस्सारता जूडा के घोर संघर्षशील हिंसावादियों को सिखायी। नवीन उच्चतर धर्म जो सीरिया मे आठवी शती मे आरम्भ हुआ था, बैबिलोनिया के निर्मूलित, निर्वासित तथा आक्रान्त लोगो मे छठी तथा पाँचवीं शती ई० पू० मे ही प्रौढ़ हो चुका था। सीरिया के धर्म के बीजो को असीरिया के मूसल से कूट-कूटकर यह 'उच्चतर धर्म' के रूप मे शुद्ध किया गया।

रोमन इटली मे पूर्वी निर्वासित दासो की भाँति नेबुकदनजार के बैबिलोनिया मे निर्वासित यहूदी अपने विजेताओ के लोकाचार के अनुसार स्वय को सरलता से ढालने में असमर्थ सिद्ध हुए।

'हे जेरुसलम्, यदि मैं तुम्हे भूल जाऊँ तो मेरे दाहिने हाथ का कौशल काम न आये।'

'यदि मै तुम्हे स्मरण न कर सकूँ तो मेरी जिह्वा मेरे तालू से सट जाय।'[१]

अपने घर की वह स्मृति, जिसे ये निर्वासित नवीन भूमि पर भी अपने मस्तिष्क मे सँजोये रहते थे, केवल नकारात्मक छाप नही थी। यह निश्चित रूप से सकारात्मक क्रिया द्वारा प्रेरित काल्पनिक सृष्टि थी। अलौकिक प्रकाश की इस दृष्टि मे आँसुओ के बीच ध्वस्त दुर्ग दिखाई पड़ा जो चट्टान पर बसे उस 'पवित्र नगर' मे रूपान्तरित हो गया था, जिसके सम्मुख नरक का द्वार बन्द था। पराजित लोगो ने विजेताओं के सायन के गीत को गाकर सुनाने की सनक अस्वीकार कर दी और अपनी वीणा फरात की धारा के किनारे के वृक्ष पर दृढतापूर्वक लटका दी। ये पराजित लोग उसी समय नवीन न सुनाई देने वाले गीत अदृश्य हृदतन्त्री पर गा रहे थे।

'हे सायन, जब हमने तुम्हे स्मरण किया तब हम बैबिलोनी धारा के किनारे बैठे और रोये।'[२]

और उस रुदन मे यहूदियो की भूमि ने प्रकाश पाया।

यह स्पष्ट है कि सीरियाई अनिवार्य फौजी भरती की लगातार धार्मिक प्रतिक्रियाओ मे तथा बैबिलोनी और हेलेनी इतिहास मे समानता बहुत निकट है। किन्तु, बैबिलोनी चुनौती से उत्तेजित प्रतिक्रिया उन विपद्ग्रस्त लोगो मे नही पायी गयी जो विदेशी सभ्यताओ के सदस्य थे, वरन् जो बर्बर भी थे। यूरोपी तथा उत्तरी अफीका के बर्बरो ने, जिन्हे रोमनो ने जीता था किसी भी अपने निजी धर्म का अन्वेषण नही किया। उन्होने अपने साथी पूर्वी सर्वहारा द्वारा बोये धर्म के बीजों को केवल स्वीकार किया। जो असीरयाई राजा के आधिपत्य में बर्बर ईरानी लोग थे, जिनमें एक जरथुष्ट्र नाम के स्थानीय पैगम्बर पैदा हुए। ये पारसी धर्म के सस्थापक थे। जरथुष्ट्र की तिथि विवादास्पद है। हम निश्चित रूप से नही कह सकते कि उनका पारसी धर्म असीरियाई चुनौती की स्वतन्त्र प्रतिक्रिया थी या इनकी ध्वनि इसरायल के विस्मृत उन

१. साम १३७, ५-६।
२. वही, १३७-१।

पैगम्बरों के पुकारों की केवल प्रतिध्वनि मात्र थी जो 'मीडीस'[१] के नगरो मे वीरान छोड गये थे। यह कुछ हद तक स्पष्ट है कि इन दोनो 'उच्चतर धर्मों' मे जो भी मौलिक सम्बन्ध हो सकते थे, उनके अनुसार पारसी धर्म तथा यहूदी धर्म अपनी प्रौढ़ता मे समान दिखाई पडे।

किसी प्रकार जब बैबिलोनिया का संकटकाल असीरिया के पतन से समाप्त हुआ और बैबिलोनी संसार नवीन बैबिलोनी साम्राज्य के रूप मे सार्वभौम राज्य से गुजरा, तब ऐसा ज्ञात हुआ मानों यहूदी धर्म और पारसी धर्म इस राजनीतिक ढाँचे मे सार्वभौम धर्मतन्त्र की स्थापना की सुअवसर प्राप्ति के लिए होड लगा रहे हो। ऐसी ही होड ईसाई धर्म तथा मिथ्रवाद ने रोमन साम्राज्य के ढाँचे मे सुअवसर प्राप्ति के लिए लगायी थी।

यह पर्याप्त कारण नही था कि नवीन बैबिलोनी सार्वभौम राज्य रोमन सार्वभौम राज्य की तुलना मे अस्थायी सिद्ध हुआ। ट्राजन, सेवेरस और कान्स्टैन्टाइन ने शतियों तक बैबिलोनिया के अगस्टस, नेबुकदनजार का अनुसरण नही किया। इसके तत्कालीन उत्तराधिकारी नेबोनिडस तथा बेलशाजार थे, जिनकी तुलना जुलियन तथा वैलेन्स से की जा सकती थी। एक शती के भीतर ही नवीन बैबिलोनी राज्य 'मीडीस' तथा फारस के लोगो को दे दिया गया। यह अकेमेनियन माम्राज्य राजनीतिक दृष्टि से ईरानी तथा सास्कृतिक दृष्टि से सीरियाई ढग का था। इस प्रकार शक्तिशाली अल्पसख्यक तथा आन्तरिक सर्वहारा के क्रियाकलाप एक-दूसरे के विरोधी थे।

इन परिस्थितियो मे यहूदी धर्म तथा पारसी धर्म की विजय अत्यन्त शीघ्र तथा निश्चित समझी जाती थी, किन्तु दो सौ वर्षों बाद भाग्य बीच मे आया और घटनाओ की शृखला को दूसरा अप्रत्याशित मोड दिया। अब भाग्य ने मेडोनी विजेताओ के हाथो मे 'मीडीस' तथा फारस के लोगो का राज्य दिया। सीरियाई सार्वभौम राज्य के जीवन समाप्त होने के पहले ही सीरियाई ससार मे हेलेनी समाज के हिंसात्मक प्रवेश ने सीरियाई सार्वभौम राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके कारण दो ऊँचे धर्म (जैसा कुछ प्रमाणो से इगित है) अकेमीनियाई अभेद्य सुरक्षा के भीतर शान्तिपूर्वक फैलते रहे और अपने उचित धार्मिक कृत्यो को राजनीतिक भूमिका मे बदलकर विनाशकारी रूप से पथभ्रष्ट हो गये। वे ऊँचे धर्म अपने-अपने धरातल पर हेलेनीवाद के प्रवेश के विरुद्ध सीरियाई सभ्यता के सघर्ष के समर्थक बने। भूमध्य सागरी क्षेत्र में, अपनी बढ़ी हुई पश्चिमी स्थिति मे यहूदी धर्म अनिवार्य रूप से निराशा मे बदल गया और रोमवासियो तथा यहूदियो के ई० ६६–७०, ई० ११५–१७, और ई० १३२–३५ मे हुए युद्धो मे यह यहूदी धर्म रोम की भौतिक शक्तियों के विरुद्ध पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न हो गया। जैगरोस के पूरब अपने किले मे पारसी धर्म ने ईसा की तीसरी शती की विषम परिस्थितियों मे संघर्ष आरम्भ किया। जितना यहूदी धर्म मकाबीयो के छोटे-छोटे राज्यो मे हेलेनी विरोधी संघर्ष करने मे समर्थ हुआ उसकी अपेक्षा ससानियाई राजतन्त्र मे हेलेनीवाद के विरुद्ध पारसी धर्म अधिक शक्तिशाली रूप में पाया गया। ससानियाइयों ने धीरे-धीरे चार सौ वर्षों के संघर्ष मे रोमन साम्राज्य की शक्ति नष्ट कर दी। यह संघर्ष ई० ५७२–९१ तथा ई० ६०३–२८ के रोम और फारस के

१. मीडीस—फारस की जनता के निकट सम्बन्धी वे लोग जो पहले एशिया माइनर में रहते थे। जिनके जिला मीडिया के नाम पर ही उनका यह नाम पड़ा।—अनुवादक

परस्पर ध्वंसकारी युद्ध में चरम सीमा पर था। यहाँ तक कि ससानिया की शक्ति अफ्रीका और एशिया से हेलेनीवाद को उखाड़ने के कार्य को पूरा करने मे अद्वितीय सिद्ध हुई। यहूदियो को राजनीति की जोखिम के लिए जितना अधिक उधार लेना पड़ा, पारसी धर्म को उसी मात्रा मे अन्त में चुकाना भी पड़ा। संप्रति पारसी भी विश्रृंखलित यहूदियो की भाँति जीवित रहे। ये जीवाश्मित हुए धर्म जिन्होने अब तक दो समुदायो के बिखरे हुए सदस्यों को बड़े शक्तिशाली ढग से बाँधकर रखा था मृतक सीरियाई समाज के अवशेष के रूप मे शेष रह गये।

विदेशी सास्कृतिक शक्तियों के घात-प्रतिघात ने इन उच्च धर्मो को केवल राजनीतिक मार्ग पर परिवर्तित ही नही किया, वरन् उन्हे टुकड़ो मे बिखेर दिया। राजनीतिक विरोध के साधनों द्वारा यहूदी धर्म तथा पारसी धर्म के परिवर्तन के बाद सीरिया की धार्मिक प्रतिभाओ ने सीरियाई जनसख्या के उस अंक में शरण ली जो हेलेनी चुनौती का हिंसात्मक तरीके द्वारा नही, वरन् शान्तिपूर्वक विरोध कर रहे थे। सीरियाई धर्म ने अपनी आत्मा और धारणा के लिए वह नयी अभिव्यक्ति पायी जिसे यहूदी धर्म और पारसी धर्म ने छोड़ दिया था। सीरियाई ससार के हेलेनी विजेताओ को अपनी सद्भावना की शक्ति से पराजित करने के बाद ईसाई धर्म अपने नये रूप मे तीन शाखाओ मे विभाजित हो गया। इन शाखाओ में से एक था कैथोलिक तन्त्र जिसने हेलेनीवाद से सन्धि का करार किया था और दो थे नेस्टोरियनवाद (बुद्धिमानीवाद) तथा मोनो फाइसिटवाद (ईसा की केवल एक प्रकृति को मानने वालो का सम्प्रदाय) के प्रतिपक्षी अपधर्म जिन्होने हेलेनीवाद को सीरियाई क्षेत्र से निकाल बाहर करने में अधिक पूर्ण सफलता प्राप्त किये बिना ही पारसी धर्म तथा यहूदी धर्म के सैन्यवादी राजनीतिक क्रिया-कलापो को ग्रहण किया।

इन दो लगातार असफलताओ ने हेलेनीवाद के सीरियाई सैन्यवादी विरोधियो मे किसी भी प्रकार मानसिक जड़ता एव निराशा कम नही थी। एक तीसरा प्रयत्न किया गया। इसे सफलता मिली। एक दूसरे सीरियाई समाज को हेलेनीवाद पर यह अन्तिम राजनीतिक विजय मिली। अन्त मे इस्लाम ने दक्षिण-पश्चिम एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका से रोमन साम्राज्य को उखाड़ दिया और सीरियाई सार्वभौम राज्य के पुनर्निर्माण के लिए अब्बासी खलीफो के रूप में सार्वभौम धर्मतन्त्र बना।

भारतीय तथा चीनी आन्तरिक सर्वहारा

भारतीय समाज सीरियाई समाज की भाँति अपने विघटन के बीच हेलेनी प्रदेश से प्रचण्ड रूप से विताड़ित हुआ। इस सम्बन्ध मे यह देखना मनोरजक है कि किस सीमा तक एक समान चुनौती द्वारा समान प्रतिक्रिया उत्तेजित हो सकती है।

उस समय जब सिन्धु घाटी पर सिकन्दर के आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय तथा हेलेनी समाज का प्रथम सम्पर्क हुआ तब भारतीय समाज सार्वभौम राज्य मे प्रवेश करने ही वाला था और भारतीय शक्तिशाली अल्पसंख्यक बहुत दिनों से जैन-धर्म तथा बुद्ध-धर्म के रूप मे दो दार्शनिक सम्प्रदायो का निर्माण करके विघटन रोकने का घोर प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु इसका कोई प्रमाण नही है कि उसके आन्तरिक सर्वहारा ने कोई उच्च धर्म उत्पन्न किया। बौद्ध धर्म के दार्शनिक राजा अशोक ने, जिसने २७३ ई० पू० से २३२ ई० पू० तक सार्वभौम राज्य की गद्दी पर अधिकार रखा, अपने हेलेनी पड़ोसी को अपने दर्शन के अनुसार परिवर्तित करने की असफल चेष्टा की।

यह केवल पिछले दिनों में था कि बौद्ध धर्म ने सिकन्दर के बाद हेलेनी संसार के महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत प्रान्तों पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। ये प्रान्त बैक्ट्रिया के यूनानी राज्यों द्वारा शासित थे।

किन्तु जब तक बौद्ध धर्म में आमूल परिवर्तन नहीं हो गया तब तक उसने पुनः आध्यात्मिक विजय नही प्राप्त की। यह बौद्ध धर्म सिद्धार्थ गौतम[1] के आरम्भिक अनुयायियो के प्राचीन दर्शन द्वारा नये 'महायान' धर्म में परिवर्तित किया गया था।

'महायान सत्यत. नया धर्म है। आरम्भिक बौद्ध धर्म से इसका इतना मौलिक भेद है कि इसने बाद के ब्राह्मण धर्म के सम्पर्क सम्बन्धी समानता में अनेक सकेत वैसे दिखाये थे जैसे महायान के अपने पूर्ववर्ती धर्मों के साथ दिखाये थे। यह पूर्ण रूप से कभी अनुभव नही किया गया कि उग्र सुधारवादी क्रान्ति ने बौद्ध धर्म के रूप का उस समय कितना परिवर्तन किया, जब ईसा की प्रथम शती में उसकी नयी आत्मा पूर्ण विकसित हुई। यह नयी आत्मा किसी प्रकार बहुत समय तक छिपी थी। व्यक्तिगत निर्वाण सम्बन्धी नास्तिक तथा आत्मा को अस्वीकार करने वाले पूर्ण निर्वाण तथा मानव निर्माता की स्मृति की साधारण पूजा की भावना-सम्बन्धी दार्शनिक उपदेश को जब हम देखते हैं तथा जब हम अगणित देवताओ तथा ऋषियो से घिरे हुए महान् ईश्वर के साथ विशाल उच्च धर्म द्वारा इसे अतिक्रमित होते देखते है, तब भक्ति से, धार्मिक कृत्यो से तथा कर्मकाण्ड से परिपूर्ण एक धर्म सभी जीवो की सर्वव्यापी मूर्ति के आदर्श के साथ पाते हैं, बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की दैवी कृपा से मुक्ति। यह मुक्ति जीवन के विनाश मे नही, वरन् चिरन्तन जीवन से मुक्ति है। यह कहना न्यायोचित होगा कि धर्मों के इतिहासो ने नये और पुराने के बीच अपनी सीमाओं में ऐसा व्यतिक्रमण नही देखा है। ये नवीन तथा प्राचीन धर्म उसी धर्म सस्थापक द्वारा स्थापित हुए हैं।'[2]

यह परिवर्तित बुद्ध-धर्म जो विस्तृत हेलेनी संसार के उत्तर-पूर्व में पुष्पित तथा पल्लवित हुआ, वास्तव में भारतीय 'उच्चतर धर्म' था जिसकी तुलना अन्य उन धर्मों के साथ है जो उसी युग के हेलेनी समाज में प्रवृष्ट हो रहे थे। उस व्यक्तिगत धर्म का मूल क्या था जो महायान

१. यह विवादग्रस्त प्रश्न है जिसका उत्तर कदाचित् निश्चयपूर्वक कभी नहीं दिया जा सकता है कि बौद्ध दर्शन (जिसका वर्णन रूसी विद्वान् की कृति से लिये हुए निम्नलिखित गद्यांश में है) जिसके विरुद्ध महायान ने क्रान्ति की, सिद्धार्थ गौतम की व्यक्तिगत शिक्षा की प्रतिकृति था या भ्रामक अभिव्यक्ति। कुछ विद्वानों का मत है, जहाँ तक हम बुद्ध के उस व्यवस्थित दर्शन की सतह से नीचे उनकी व्यक्तिगत शिक्षा की कुछ झलक पाते है, जो हमारे लिए हीनयान के धर्म-ग्रन्थों में हैं, तब हम अनुभव करते हैं कि बुद्ध ने स्वयं आत्मा की नित्यता तथा यथार्थता में अविश्वास नहीं किया था। हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनके आध्यात्मिक अभ्यास का उद्देश्य निर्वाण जीवन से चिपकी हुई वासना की पूर्ण परिसमाप्ति की एक अवस्था केवल थी, जीवन की हो परिसमाप्ति की अवस्था नहीं थी। यह वासना ही जीवन को समग्र रूप से जीवित रहने से रोकती है। —ए० जे० टी०।

२. थ० शरबाट्स्की: द कन्सेप्शन आव बुद्धिस्ट निर्वाण, पृष्ठ ३६।

का विशेष लक्षण तथा उसकी सफलता का रहस्य, दोनों था। इस नये धार्मिक प्रभाव ने बौद्ध धर्म की आत्मा को ही गम्भीर रूप से परिवर्तित कर दिया। यह नया धार्मिक प्रभाव भारतीयता से दूर वैसा ही विदेशी था जैसा यह हेलेनी दर्शन से दूर था। क्या यह भारतीय आन्तरिक सर्वहारा के अनुभव का फल था या यह सीरियाई अग्नि से निकली एक चिनगारी थी जिसने पारसी धर्म और यहूदी धर्म को प्रज्ज्वलित किया। दोनों दृष्टियों के पक्ष में प्रमाण दिये जा सकते है, किन्तु वास्तव में हम दोनों में से एक को भी चुनने की स्थिति में नहीं है। इतना कहना पर्याप्त है कि बौद्ध उच्चतर धर्म के सामने भारतीय समाज का धार्मिक इतिहास उसी प्रणाली से आरम्भ होता है जैसा सीरियाई समाज में हुआ था, जिसे हम देख चुके है।

उच्चतर धर्म उस समाज के मध्य से आगे बढ़ा जिसमें यह धर्म ईसू के सुसमाचार के प्रचार के लिए हेलेनी कृत संसार में विकसित हुआ। यह उच्चतर धर्म प्रत्यक्ष रूप से भारतीय था और ईसाई धर्म तथा मिथ्रवाद की प्रतिमूर्ति था। अपने हाथ की इसी कुंजी से हम हेलेनी प्रिज़्म पर पडे हुए सीरियाई धर्म की उन किरणो को सरलतापूर्वक पहचान सकते है जो भारतीय 'उच्चतर धर्म' की प्रतिमूर्ति थी। यदि हम सीरियाई समाज के पूर्व हेलेनी राज्य के उन जीवाश्मो के भारतीय धर्मों पर दृष्टि डाले, जो यहूदियो एवं पारसियो में बच गये थे तो हम वह पायेंगे जिन्हें लंका, बर्मा, श्याम और कम्बोडिया के बाद के हीनयानी बौद्ध धर्म में हम खोजते है। ये पूर्व-महायानी बौद्ध धर्म के अवशेष है। सीरियाई समाज को इस्लाम के उत्थान की प्रतीक्षा उस धर्म पर अधिकार जमाने के लिए करनी पड़ी जो हेलेनीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए प्रभावशाली साधन के रूप में समर्थ था। ठीक उसी प्रकार हम देखते है कि भारतीय समाज से हेलेनी भावना के प्रवेश के पूर्ण तथा अन्तिम निष्कासन का कार्य बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के बाद हिन्दुत्व के विशुद्ध भारतीय धार्मिक तथा अ-हेलेनी आन्दोलन के द्वारा बौद्धवादी हिन्दू धर्म के बाद सम्पन्न हुआ, न कि महायान के द्वारा।

जहाँ तक हमने उसे वर्तमान स्थिति मे देखा है महायान का इतिहास उस कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय के इतिहास के इस बात में समान है कि जिस अ-हेलेनी समाज मे वे पैदा हुए थे उसे परिवर्तित करने के बजाय दोनों ने अपने कार्य-क्षेत्र हेलेनी ससार में बनाये। किन्तु, महायान के इतिहास का एक दूसरा अध्याय वह है, जिसमें ईसाई धर्मतन्त्र का इतिहास अप्रतिम दिखाई देता है। ईसाई धर्म ने ध्वंसोन्मुख हेलेनी समाज के क्षेत्र मे शरण ली और अन्ततोगत्वा वह दो सभ्यताओं को ईसाई सम्प्रदाय प्रदान करने के लिए जीवित रहा। इन ईसाई सम्प्रदायो में एक हमारा सम्प्रदाय और दूसरा परम्परावादी ईसाई सम्प्रदाय था। ये दोनो हेलेनी से सम्बन्धित थे। दूसरी ओर महायान मध्य एशिया के उच्च प्रदेशो को पार कर नश्वर हेलेनी बैक्टरियाई राज्य में होता हुआ ध्वंसोन्मुख चीनी संसार में पहुँचा और अपनी जन्मभूमि से दो ओर बढ़कर चीनी आन्तरिक सर्वहारा का सार्वभौम धर्म बन गया।

सुमेरी आन्तरिक सर्वहारा वर्ग की विरासत

बैबिलोनी तथा हित्ताइती, दोनों समाज 'सुमेरी समाज से सम्बन्धित हैं', किन्तु इस विषय में हम 'सुमेरी आन्तरिक सर्वहारा' के मध्य किसी उस सर्वव्यापी धर्मतन्त्र का अन्वेषण नहीं कर सकते हैं जिसका निर्माण किया गया हो तथा जिसने अपनी सम्बन्धित सभ्यताओं को विरासत

में कुछ दिया हो । बैबिलोनी समाज सुमेरी शक्तिशाली अल्पसंख्यक का धर्म ग्रहण करते हुए ज्ञात होता है और हिताइती धर्म का कुछ अंश इसी उद्गम से निकला हुआ मालूम पडता है । किन्तु हम सुमेरी संसार के धार्मिक इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कम जानते है । यदि तम्मूज़[1] तथा इश्तार की पूजा सुमेरी आन्तरिक सर्वहारा के अनुभव का स्मारक है तो हम कह सकते है कि इस पूजा के सर्जन की चेष्टा सुमेरी समाज मे अकाल प्रसूत थी और इसका फल कही और मिला ।

इन सुमेरी देवी-देवताओ के लम्बे जीवन थे तथा यात्रा के लिए विस्तृत क्षेत्र था । उनके परवर्ती इतिहास का एक मनोरजक लक्षण उनके सापेक्षित महत्त्व की भिन्नता है । इन दोहरे देवताओं की पूजा के हिताइती संस्करण मे देवी की प्रतिमा ने उस देवता को महत्त्वहीन तथा निष्प्रभ कर दिया, जिसने एक साथ ही पुत्र तथा प्रेमी एवं संरक्षक और विपद्ग्रस्त की विरोधात्मक भूमिका देवी के समक्ष अदा की थी । सीबेलेइश्तर के समक्ष एटिस-तम्मूज तुच्छ मालूम पड़ता है और सुदूर उत्तर-पश्चिम सागर से घिरे अपने द्वीप में नेर्थस इश्तर बिना किसी पुरुष (देवता) के अकेली वैभवसम्पन्न मालूम पड़ती है । किन्तु, सीरिया और मिस्र के दक्षिण-पश्चिम यात्रा के बीच तम्मूज का महत्त्व बढता है तथा इश्तर का कम होता है । जिस एटारगेटिस की पूजा बैंबाइस से एसकैलोन तक प्रचलित है, नाम से ही उसका इश्तर होना ज्ञात होता है । इसका सम्मान ऐटी की सगिनि के कार्यों पर आधृत था । फोनिसिया मे एडोनिस 'तम्मूज' देवता था । जिसका निधन दिवस एस्टारटे इश्तर दुख के साथ मनाता था । मिस्री ससार मे ओसाइरिस ने अपनी स्त्री और बहिन को निश्चित रूप से वैसे ही निष्प्रभ किया जैसे आइसिस ने बाद मे ओसाइरिस को निष्प्रभ किया जबकि इसके बाद उसने हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के हृदय में अपने लिए एक साम्राज्य बना लिया । सुमेरी धार्मिक विश्वास के इस सस्करण मे विलाप करने वाली देवी की नही, वरन् नश्वर देवता था जिसकी उपासक पूजा करते थे । यह सुमेरी धार्मिक विश्वास सुदूर उस स्कैन्डेनेवियाई बर्बरो मे फैला हुआ ज्ञात होता है, जहाँ वाल्डर तम्मूज की देवता कहा जाता था, जबकि उसकी प्रभावहीन पत्नी नाना का नाम सुमेरी 'मातदेवी' के रूप में अब तक प्रचलित था ।

(३) पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा

आन्तरिक सर्वहारा के सर्वेक्षण की समाप्ति करते हुए हम उस क्षेत्र का परीक्षण कर रहे है जो हमारे घर के निकट है । क्या पश्चिम के इतिहास मे वे ही लक्षण पुनः दिखाई देते है । जब हम पश्चिम के आन्तरिक सर्वहारा के अस्तित्व का प्रमाण खोजते हैं, तब हम प्रचुर प्रमाणों के सवेग से आविर्भूत हो जाते है ।

हम पहले देख चुके है कि आन्तरिक सर्वहारा का एक सामान्य उद्गम प्रचुर परिणाम में हमारे पश्चिमी समाज से नये रगरूटो की भरती है । पिछले चार सौ वर्षों में, कम-से-कम दस विघटोन्मुख सभ्यताओ की मानवीय शक्तियो का पश्चिमी समाज में बलात् विलयन किया गया है । हमारे पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा को मिलाने मे उनका इतना मानवीकरण हो गया है

१. तम्मूज़—बैबिलोनिया का सूर्य देवता जो यूनानियों में एडोनिस के नाम से विख्यात है । —अनुवादक

कि उनकी विशिष्टताएँ धूमिल हो गयी हैं, कुछ तो नष्ट हो गयी हैं जिनके द्वारा यह अनमिल समुदाय एक-दूसरे से भिन्न था। हमारा समाज अपने ही समान सभ्य समाज को लूटने में सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसने करीब-करीब सभी आदिम जीवित समाजो को पराजित किया जैसे टास-मेनियन तथा उत्तरी अमेरिका के अधिकांश इंडियन कबीले। उनमें से कुछ इस आघात से नष्ट हो गये। दूसरी जातियों ने, जैसे उष्णकटिबन्धीय अफ्रीका के नेग्रो, जीवित रहने की व्यवस्था की और नाइजर को हडसन की ओर तथा कांगो को मिसीसीपी की ओर वैसे ही बहने दिया जैसे उन्ही पश्चिमी दानवो ने यांगटसी को मलक्का[1] जलडमरूमध्य की ओर बहने दिया। नेग्रो दासों को जहाजों में बैठाकर अमरीका में तथा तमिल या चीनी कुलियो को भूमध्यरेखीय क्षेत्र या हिन्द महासागर की दूसरी ओर लाया गया। ये तमिल तथा चीनी कुली उन दासो के प्रतिमूर्ति थे जिन्हे ईसा के पूर्व की दो शतियों में भूमध्य सागर के सभी तटो से लेकर रोमन इटली के क्षेत्रो में भेज दिया गया था।

हमारे पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा मे अनिवार्य भरती किये जाने वाले विदेशियो का एक और अंश है। जिनका निर्मूलन तथा आमूल रूप से परिवर्तन भौतिक रूप से उनके अन्य स्थानो से हटाये बिना आध्यात्मिक रूप से किया गया। किसी भी समुदाय को जो अपने जीवन को विदेशी सभ्यता के अनुरूप बनाने का प्रयत्न कर रहा हो, एक विशेष सामाजिक वर्ग की आवश्यकता होती है जो ट्रान्सफार्मर की भाँति विद्युत् के एक वोल्टेज से दूसरे वोल्टेज मे परिवर्तित हो सके। यह वर्ग जो अचानक तथा कृत्रिम रूप से इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए आता है रूसी नाम 'बुद्धिजीवी' वर्ग के नाम से कहा जाता है। यह बुद्धिजीवी वर्ग एक प्रकार का सम्पर्क अधिकारियो का वर्ग है जिसने सभ्यताओं के प्रवेश करने की युक्ति वहाँ तक सीखी है कि जिस सभ्यता मे प्रवेश किया जाय वे अपने सामाजिक जीवन को छोडकर प्रवेश करने वाली सभ्यता के जीवन के अनुरूप उसे बना दें। इस प्रकार उन विदेशियो पर जो विजयी सभ्यता अधिक-से-अधिक अपनी सभ्यता लाद देता है।

इस बुद्धिजीवी वर्ग मे पहले प्रवेश करने वाले सैनिक तथा नाविक अधिकारी थे। ये प्रभावशाली समाज के युद्ध-कौशल को उतना जानते थे, जितना रूस के पीटर महान् को पश्चिमी स्वीडन द्वारा पराजित होने से रोकने तथा बाद के युगों मे तुर्की और जापान को रूस द्वारा पराजित होने से रोकने के लिए आवश्यक था। इस समय तक आक्रामक का जीवन-यापन आरम्भ करने में स्वत: समर्थ होने के लिए रूस का सन्तोषप्रद रूप से पश्चिमीकरण हो गया था। अब हम कूटनीतिक लोगों पर आते हैं जो पश्चिमी सरकारो के समझौतो के अनुसार व्यवहार करना जानते हैं, जो युद्ध मे असफल होने के बाद उनके समुदाय पर लादा जाता है। हम देख चुके है कि उसमानली राजवंश के लोगो ने अपनी रियाया को राजनीतिक कार्य के लिए तब तक भरती किया, जब तक उसमानली वश स्वयं इस अरुचिपूर्ण कार्य मे प्रवीण न हुए। इसके बाद व्यापारी आते है, हांग सौदागरों को कैण्टन मे और भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे के तथा ग्रीक और अमरीकी

१. रोमन लेखक जुवेनल ने अपने समय में (ईसा के बाद की दूसरी शती का आरम्भ) अर्द्ध हेलेनी कुल सीरियाई पूर्वी लोगों के रोम में अन्तःप्रवेश को लिखा है कि 'ओरोन्टस् टाइबर में मिल चुकी है।'

सौदागरों को उसमानिया बादशाह के साम्राज्य में देखिए। अन्ततो गत्वा बुद्धिजीवी वर्ग अपने चरित्रगत विशेषताओं को उस समाज में विकसित करता है जिसके सामाजिक जीवन में पश्चिमी-करणवाद का 'खमीर' और विषाणु गम्भीर रूप से प्रभाव करता रहता है। वह समाज आत्मसात् तथा लिप्त हो जाने की प्रणाली में रहता है। ये बुद्धिजीवी वर्ग के लोग है, अध्यापक जो पश्चिमी विषयों के पढ़ाने की कला जानते हैं, नागरिक अधिकारी जो पश्चिम के अनुसार नागरिक प्रशासन की कला का अभ्यास करते है तथा वकील जिन्हे फ्रांस की न्याय-कार्य-प्रणाली के अनुसार 'नेपोलियन कोड' के संस्करण लागू करने की दक्षता प्राप्त है।

जहाँ कहीं हम बुद्धिजीवी वर्ग को पाते है, हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि केवल दो सभ्यताएँ ही सम्पर्क मे नही आती, किन्तु दो मे से एक अपने विरोधी आन्तरिक सर्वहारा मे आत्मसात् होने की प्रणाली में हैं। हम बुद्धिजीवी वर्ग के जीवन में एक दूसरे तथ्य का और निरीक्षण कर सकते हैं जो प्रत्येक बुद्धिजीवी के मुखमण्डल पर सबके पढ़ने के लिए अंकित रहता है कि बुद्धिजीवी दुखी रहने के लिए ही पैदा हुआ है।

यह सम्पर्क वर्ग ऐसा वर्णसंकर है, जन्मजात दुःख के रोग से पीड़ित है, जो उन दोनो परिवारों से बहिष्कृत रहता है, जिनसे उनका जन्म हुआ है। बुद्धिजीवी वर्ग अपनी ही जनता द्वारा घृणित एवं तिरस्कृत किया जाता है, क्योंकि बुद्धिजीवी वर्ग का अस्तित्व ही उनके लिए भर्त्सनापूर्ण होता है। उनके बीच ये बुद्धिजीवी वर्ग घृणाभरी विदेशी सभ्यता के अटल एवं जीवित स्मारक हैं। इस विदेशी सभ्यता को हटा नहीं सकते, इसलिए उसे प्रसन्न किया जाता है। जब फरीसी पबलिकन से मिलता है तो प्रत्येक बार उसे यह स्मरण दिलाया जाता है, जीलाट प्रत्येक बार हिरोडियन से मिलता है तो उसे स्मरण दिलाया जाता है। इस प्रकार बुद्धिजीवी अपने घर मे ही लोगों को प्रसन्न नही करते। उसे उस देश में भी सम्मान नहीं दिया जाता जिसके रीति-रिवाज तथा कौशल को परिश्रम और बुद्धिमत्ता से उसने नकल की है।[1] भारत और इंग्लैण्ड के ऐतिहासिक सम्पर्क के आरम्भिक दिनों में वे हिन्दू बुद्धिजीवी अंग्रेजों के उपहास के पात्र थे, जिनको ब्रिटिश राज्य ने अपनी प्रशासनिक सहूलियत के लिए पाला था। भारतीय बाबुओं का जितना अधिक अधिकार अंग्रेजी भाषा पर होता था उतना ही अधिक अग्रेज साहब बाबुओ की भाषा मे अनिवार्य रूप से आयी बेमेल गलतियों पर व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसते थे। ये व्यंग्य मधुर होते हुए भी चोट पहुँचाते थे। इस प्रकार बुद्धिजीवी दोहरे रूप मे हमारे सर्वहारा की परिभाषा के अनुकूल होता है। यह सर्वहारा केवल एक समाज में नहीं, दोनों समाजो 'में' होते हैं उन समाजों 'के' नहीं होते। बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास के प्रथम अध्याय में यह अनुभव करते हुए स्वयं सान्त्वना दे सकता है कि हम दोनों समाजों के अनिवार्य अंग है, जबकि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उसे सान्त्वना भी नहीं मिलती। जहाँ मानव स्वयं व्यापारिक वस्तु है और समय पाकर बुद्धिजीवी मानव अधिक उत्पादन तथा बेकारी से पीड़ित होते हैं, वहाँ माँग और पूर्ति की व्यवस्था मनुष्य की बुद्धि से परे है।

१. कदाचित् पाठकों को याद होगा कि १९३९–४० ई० के विश्वयुद्ध के समय राजनीतिक जीव को 'देश-द्रोही' शब्द से श्री ट्वायनबी ने वर्णन किया था, उसी के सामाजिक रूप से समानान्तर 'बुद्धिजीवी' शब्द का प्रयोग किया गया है।

पीटर महान् को अनेक रूसी उच्च पदाधिकारियों की या ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अनेक क्लर्कों की या मुहम्मद अली को अनेक मिस्री मिल मजदूरों और जहाज बनाने वाले कारीगरो की आवश्यकता थी। इन कुम्हारों (पीटर महान्, मुहम्मद अली, तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी) ने मानवी मिट्टी से ही तुरन्त उनके (उच्च पदाधिकारी, क्लर्क और मजदूर आदि) निर्माता का कार्य आरम्भ किया, किन्तु बुद्धिजीवी के निर्माण की प्रणाली का अन्त होना उसके आरम्भ होने से अधिक कठिन है, क्योंकि घृणा से वे उस सम्पर्क वाले वर्ग को देखते है जो उनकी सेवाओ से लाभान्वित होता है। उनकी दृष्टि में इस घृणा की क्षतिपूर्ति उनकी उस प्रतिष्ठा द्वारा होती थी जो उन्हे सम्पर्क वर्ग मे भरती होने के अधिकारी होने मे प्राप्त होती थी। इन प्रार्थियो की संख्या अवसर के अनुसार बढती जाती है। नियुक्त हुए बुद्धिजीवी से उस बौद्धिक सर्वहारा की सख्या अधिक होती है जो बेकार अनाथ तथा बहिष्कृत है। ये थोड़े-से रूसी उच्च पदाधिकारी क्रान्तिकारियों (निहिलिस्टो) की अपार सख्या द्वारा पुन. शक्तिशाली बनाये जाते है और काम चलाने वाले बाबुओं की सख्या बी० ए० फेल लोगों से बढ़ायी जाती है। बुद्धिजीवी वर्ग मे आपस की कटुता आरम्भिक अवस्थाओ की अपेक्षा बाद की अवस्थाओ मे अधिक होती है। वास्तव में हम इस प्रकार का एक सामाजिक कानून बना सकते है कि अंकगणितीय अनुपात मे बढ़ते हुए समय के साथ बुद्धिजीवी वर्ग मे जन्मजात अप्रसन्नता ज्यामितीय अनुपात मे बढती जाती है। १९१७ की विध्वसात्मक रूसी क्रान्ति मे बुद्धिजीवी वर्ग ने बहुत दिनो से एकत्र हुई उस घृणा को प्रकट किया, जिसका आरम्भ ईसा की १७ वी शती मे हुआ था। जिसका आरम्भ १८ वी शती के अन्तिम भाग मे हुआ था वह बगाली बुद्धिजीवी वर्ग आज भी उस हिंसात्मक क्रान्ति की मनोवृत्ति का प्रदर्शन करता है, जिसे ब्रिटिश भारत के दूसरे भागो मे नही देखा जा सकता। इन भागो मे ५० या १०० वर्षों बाद भी स्थानीय बुद्धिजीवी अस्तित्व मे नही आये।

यह सामाजिक सिवार वहीं तक सीमित नही थी जिसमें यह उगी थी, यह बाद मे पश्चिमी संसार के हृदय मे अर्द्धपश्चिमी रूप मे दिखाई दी। इस निम्न मध्यम वर्ग ने माध्यमिक शिक्षा ही नहीं, उच्च शिक्षा भी ग्रहण की थी। यह वर्ग बिना अपनी प्रशिक्षित योग्यता प्रदर्शित किये इटली में फासिस्टी दल और जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवादी दल का मेरुदण्ड था। वे दैवी संचालक शक्तियाँ जिन्होने मुसोलिनी और हिटलर को शक्ति के लिए उत्तेजित किया था, बुद्धिजीवी सर्वहारा के आक्रोष से यह जानकर पैदा हुई थी कि आत्मसुधार के कष्टपूर्ण प्रयत्न स्वत: उन्हें सगठित पूँजी तथा सगठित श्रम की चक्की के ऊपर तथा नीचे के पाटो के बीच से बचाने मे पर्याप्त नहीं थे।

वास्तव में पश्चिमी समाज के स्थानीय गठनों से पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा का संवर्द्धन देखने के लिए वर्तमान शती तक हमें राह नहीं देखना होगा क्योंकि पश्चिमी तथा हेलेनी ससार मे ये सर्वहारा लोग केवल पराभूत विदेशी लोग नही थे जिनका जड़ से उन्मूलन कर दिया गया था। १६ वीं तथा १७ वीं शती के धर्मयुद्धो ने उन प्रत्येक देश से कैथोलिकों को निकाल दिया या उन्हें कष्ट दिया, जहाँ शक्ति प्रोटेस्टैन्टों के हाथ मे थी तथा जहाँ शक्ति कैथोलिको के हाथ में थी वहाँ से प्रोटैस्टैन्ट निकाले गये या दण्डित हुए। इसीलिए फ्रांस के प्रोटेस्टैन्ट (हिगुनोट) उत्तराधिकारी प्रशा से लेकर दक्षिण अफ्रीका तक फैले हुए हैं और आयरलैण्ड के कैथोलिको के उत्तराधिकारी आस्ट्रिया से चीली तक फैले है। यह रोग थकान की शान्ति और उस मानव

द्वैधवाद के द्वारा नही समाप्त हुआ जिसका अन्त धार्मिक युद्धों में हुआ था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति से और उसके बाद धार्मिक विद्वेष ने राजनीतिक गत्यावरोध के आरम्भ के लिए प्रेरणा दी और नये निर्वासित लोग निर्मूल हुए। ये निर्वासित १७८९ मे फ्रास के कुलीन, १८४८ के यूरोपीय उदारवादी, १९१७ के श्वेत रूसी, १९२२ तथा १९२३ के जर्मन तथा इटालियाई प्रजातान्त्रिक, १९३२ के आस्ट्रिया के कैथोलिक और यहूदी तथा १९३९ से ४५ तक के युद्ध मे शिकार हुए लाखों लोग हैं।

पुन: हम हेलेनी संकटकाल मे देखते है कि इटली तथा सिसिली में किस प्रकार स्वतन्त्र जनता को कृषि की व्यवस्था में आर्थिक क्रान्ति द्वारा ग्रामो से निर्मूल कराके नगरो की ओर भगाया गया। दासों के उपनिवेशो के द्वारा जीविका के लिए छोटे पैमाने पर मिश्रित खेती की पुन:स्थापना की गयी। यह पुन स्थापना विशिष्ट खेती की वस्तुओं के सामूहिक उत्पादन के स्थान पर हुई। अपने आधुनिक पाश्चात्य इतिहास के प्राय: हम ठीक ऐसा ही सामाजिक संकट उस ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति मे पाते हैं, जिसमे नेग्रो दास स्वतन्त्र श्वेत अमरीकी सघ मे कपास के क्षेत्र मे लाये गये थे। ये श्वेत 'कतवार' जिनका पतन इस प्रकार सर्वहारा की श्रेणी तक हो गया, रोमन इटली के अधिकार भ्रष्ट एवं दरिद्र 'स्वतन्त्र कतवारो' के समान थे। उत्तरी अमरीका मे इस ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति का कैंसर की भाँति दोहरा विकास, नाइजीरिया के दासो एव श्वेत भिखारियो के रूप मे हुआ। वैसी ही ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति शीघ्र और क्रूर ढग से उत्तरी अमरीका मे ग्रामीण आर्थिक क्रान्ति के रूप मे हुई। इस क्रान्ति का विस्तार तीन शतियो तक अंग्रेजी इतिहास में था। अंग्रेजो ने दासों का प्रयोग नही किया, किन्तु उन्होने रोमवालो का अनुकरण किया और अमरीकी किसानों तथा ढोर पालने वालो की पहले से ही कल्पना की और स्वतन्त्र किसानो को निर्मूल करके उनके खेतों तथा चरागाहो के स्थान पर कुछ धनवानो के लिए बाडे बनवाये। पश्चिमी ससार में गाँवो से नगरो की ओर जनसंख्या के जाने का मुख्य कारण कोई आर्थिक क्रान्ति नहीं थी। इसके पीछे मुख्य प्रेरणा किसानो के छोटे खेतो को बड़े कृषि क्षेत्रो मे बदलने की नही थी, बल्कि भाप से चलने वाली मशीनो के द्वारा हस्त-कौशल को हटा करके नागरिक औद्योगिक क्रान्ति को आगे बढ़ाने मे थी।

करीब १५० वर्ष पहले जब पश्चिमी औद्योगिक क्रान्ति पहली बार इंग्लैण्ड में फैली, तब इसकी उपयोगिता इतनी विस्तृत दिखाई दी कि इस परिवर्तन का प्रगतिशील लोगो ने उत्साह के द्वारा स्वागत किया तथा इसे आशीर्वाद दिया। यद्यपि बच्चो और औरतो का कारखानों में मजदूरो की प्रथम पीढ़ी का लम्बे घण्टों से पीडित होने का विरोध किया गया, औद्योगिक क्रान्ति के प्रशसको ने इन मजदूरो के घर तथा कारखानों की हीन दशा को वह क्षणिक बुराई कहा जो दूर की जा सकती है और दूर की जायेगी। यह भाग्य की विडम्बना का प्रतिफल है कि यह सुन्दर भविष्यवाणी विस्तृत रूप से सत्य निकली, किन्तु उतने ही विश्वास के साथ धरती को स्वर्ग बनाने का आशीर्वाद उस अभिशाप द्वारा निष्फल हो गया जो एक शती पहले आशावादियो तथा निराशावादियो की आँखो में समान रूप से छिपा था।[1] एक ओर बाल-श्रम समाप्त किया

१. मैकाले के निबन्ध 'सदेज कालोक्विज' (१८३०) में आशावाद और निराशावाद की सम-रूप से प्रतिष्ठित व्याख्या मिलती है।—संपादक

गया । स्त्रियों का श्रम उनकी शक्ति के अनुसार निर्धारित हुआ । श्रमिको के घण्टे कम किये गये । सभी मान्यताओं के अनुसार भी घरो में तथा कारखानों में जीवन की दशाएँ सुधारी गयी जिन्हें हम पहचान भी नही सकते । औद्योगिक मशीनो के जादू के द्वारा सम्पत्ति आयी । इसी समय यह संसार बेकारी के भूतों से निष्प्रभ भी हुआ । प्रत्येक बार नागरिक सर्वहारा अपना 'बेकारी का अनुदान' पाता है और उसे याद दिलाया जाता है कि वह समाज 'मे' है, समाज 'का' नही है ।

अनेक स्रोतो में से यह दिखाया गया है कि किस प्रकार हमारे आधुनिक पश्चिमी संसार में आन्तरिक सर्वहारा की भरती की गयी । अब हमें विचार करना है कि यहाँ भी, जिस प्रकार और देशो मे, हिंसा और अहिंसा के दो विशिष्ट गुण अपने पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा की कठिन परीक्षा की प्रतिक्रिया मे दिखाई देते है और यदि दोनो विशेषताएँ देखी जायँ तो इन दोनो में कौन प्रबल होगी ?

अपने पश्चिमी ससार के निम्नस्तरीय लोगो मे सैन्यवादी प्रवृत्ति तुरन्त दिखाई देती है । अन्तिम १५० वर्षों की रक्तरंजित क्रान्ति की गणना करना आवश्यक है । जब हम उसके विपरीत अहिंसात्मक भावनाओं का प्रमाण खोजते हैं तब दुख के साथ कहना पड़ता है कि इसके सम्बन्ध मे कोई भी संकेत नही मिलता । यह सत्य है कि इस अध्याय के आरम्भिक अनुच्छेद मे लिखित अन्याय से पीड़ित धार्मिक या राजनीतिक उत्पीड़ित या निष्कासित अफ्रीकी दासों, उजडे किसानो ने पहली पीढ़ी मे नही तो दूसरी पीढी मे अनुकूल परिस्थिति में अपनी अवस्था को सुधार लिया था । यह हमारी सभ्यता की यौवनशील प्रवृत्ति का उदाहरण हो सकता है, किन्तु हमारी खोजों पर इसका प्रभाव नही है । यह सर्वहारा वर्ग की समस्या का समाधान है कि हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक प्रवृत्तियो को न चुनकर, सर्वहारा वर्ग से ही निकल भागे । आधुनिक पश्चिम मे अहिंसात्मक सामना करने वालो में अपनी खोज में हम अंग्रेजी क्वैकर[1] और डच मेननाइट[2] में और मोराविया में जर्मनी के ऐनाबाप्टिस्ट[3] शरणार्थी पाते है । ये दुर्लभ नमूने हमसे छूट गये थे । क्योकि हम देखेंगे कि ये सर्वहारा न हो सके ।

इगलिश सोसायटी आव फ्रेण्ड्स के जीवन की प्रथम पीढ़ी में हिंसात्मक प्रवृत्ति का कुछ प्रभाव इंग्लैंड तथा मसाचुसेट्स मे दिखाई पड़ा । यह हिंसात्मक प्रवृत्ति भविष्यवाणियो मे तथा चर्च में पूजा के समय मर्यादाविहीन शोरगुल मे अभिव्यक्त हुआ । किसी प्रकार यह हिंसा शीघ्र ही और स्थायी रूप से उस शिष्टता द्वारा हटा दी गयी जो क्वैकर के जीवन का खास अंग बन गयी । ऐसा जान पडा कुछ समय के लिए सोसायटी आव फ्रेण्ड्स पश्चिमी संसार मे आरम्भिक ईसाई धर्मतन्त्र की भूमिका अदा कर सकता है, जिसकी भावना तथा व्यवहार ईसा के शिष्यो के धार्मिक कानून के रूप मे दिया गया है, उसी के अनुसार उन्होंने (क्वैकर, एनाबाप्टिस्ट आदि) ईसाई धर्म की आध्यात्मिकता तथा धार्मिक कृत्यों पर अपने जीवन का निर्माण किया ।

१. सोसायटी आव फ्रेंड्स के सदस्य जो शान्ति और सरलता के उपासक थे ।—अनुवादक ।
२. एक प्रकार के प्रोटेस्टेंट, जो क्वैकरों के समान थे ।—अनुवादक
३. जिसका दो बार बपतिस्मा हो ।—अनुवादक

किन्तु ये मित्र अहिंसा के नियमों से कभी नहीं हटे और सर्वहारा के प्रतिकूल रास्ते पर दृढ़ होकर चलते रहे। एक प्रकार अपने गुणों के ही शिकार हुए। यह कहा जा सकता है कि विद्वेष में उन्होंने भौतिक उन्नति प्राप्त की क्योंकि व्यापार में उनकी सफलता उनके उन महान् निश्चयों में देखी जाती है जिसे वे लाभ के लिए नहीं, वरन् आन्तरिक प्रेरणा से करते हैं। भौतिक उन्नति के मन्दिर की अनिच्छित तीर्थयात्रा का प्रथम चरण बिना सोचे-समझे तब उठा, जब ये ग्रामों से नगरों की ओर आये। नागरिक लाभों के प्रलोभनो से नहीं, वरन् यही एक सत्य राह एपिसकोपेलियन[1] चर्च को अपनी आय का दसवाँ भाग कर देने से बच सकें और इस टैक्स के वसूल करने वालों का शक्तिपूर्वक विरोध कर सके। उसके बाद जब क्वैकर कोको बनाने लगे, क्योकि वे नशे का विरोध करते थे, उन्होंने फुटकर दुकानदारों के सामानों पर उनके निश्चित दामों का उल्लेख कराया क्योकि वे बाजार के उतार-चढ़ाव में मूल्यो की अस्थिरता नही चाहते थे। वे जान-बूझकर अपने धार्मिक विश्वास के लिए सम्पत्ति को जोखिम में डाल रहे थे। इसके फलस्वरूप उन्होने इस कथन की सत्यता प्रमाणित की 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है' और इस स्वर्गिक आनन्द का उद्घाटन किया कि विनम्र धरती का शासन करेंगे। इन्ही सकेतो के द्वारा उन्होने अपने विश्वासो को सर्वहारा के धर्मों की सूची से हटाया। ये ईसा के अनुकरणीय शिष्यों के समान नहीं थे। ये अब भी उत्साही धर्मावलम्बी नही थे। ये चुने लोग बने रहे, यदि क्वैकर अपनी श्रेणी से अलग विवाह करते तो नियमानुसार उन्हे समाज का सदस्य नही होने दिया जाता था।

एनाबाप्टिस्ट के दोनो दलो का इतिहास यद्यपि अनेक दृष्टियो से क्वैकरों से भिन्न है, एक दृष्टि से उनमें समानता है। इसी से यहाँ मेरा सम्बन्ध है। हिंसा के आरम्भ होने के बाद जब उन्होने अहिंसा के नियमों का पालन किया, तब वे शीघ्र ही सर्वहारा नही रह गये।

पश्चिमी सर्वहारा के अनुभव पर प्रकाश डालने वाले नये धर्म के सम्बन्ध में हमारा अन्वेषण अभी कोरा है। हमे स्मरण रहे कि चीनी आन्तरिक सर्वहारा ने महायान के रूप मे नया धर्म पाया था। अनजान में ही यह महायान पिछले बौद्ध दर्शन का परिवर्तित रूप था। मार्क्सवादी साम्यवाद में हम अपने आधुनिक पश्चिमी दर्शन के बीच एक कुख्यात प्रमाण पाते है। यह आधुनिक पश्चिमी दर्शन अपने जीवनकाल मे एकदम प्रच्छन्न रूप से सर्वहारा के धर्म में बदल लिया गया। ऐसा करने में हिंसा का मार्ग ग्रहण किया गया और नये जेरुसलेम की रचना रूस के धरातल पर बलपूर्वक तलवार के जोर से हुई।

यदि कार्ल मार्क्स से अपने आध्यात्मिक नामकरण तथा पता देने के लिए कुछ विक्टोरियन सेन्सर अधिकारियो द्वारा माँग की गयी होती तो उसने अपने को आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रो में हिगेल के द्वन्द्ववाद का प्रयोग करने वाला हिगेल का शिष्य बताया होता, किन्तु जिन तत्त्वों ने साम्यवाद का निर्माण विस्फोटक शक्ति के रूप मे किया वे हिगेल की सृष्टि नही थे। इन तत्त्वों पर स्पष्ट रूप से पश्चिम के पूर्वजों के धार्मिक विश्वास का प्रमाण अंकित है। यह धार्मिक विश्वास उस ईसाई धर्म का है, जिसे डेकार्टे[2] की धार्मिक चुनौती के तीन सौ वर्षों बाद भी पश्चिम

१. वह ईसाइयों का धर्मतन्त्र जिसमें बिशप द्वारा शासन हो।—अनुवादक
२. १५९६–१६५० फ्रांस का दार्शनिक।—अनुवादक

का प्रत्येक बालक अपनी माता के दूध के साथ ही ग्रहण करता है और पश्चिम के प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष में स्वांस के रूप में प्रवाहित है। इन तत्वो का पता यदि ईसाई धर्म में कही लग सकता तो यहूदी धर्म में लगाया जा सकता है। ये तत्त्व ईसाई धर्म के अवशिष्ट रूप हैं जो यहूदी डैस्पोरा द्वारा सुरक्षित रखे गये थे। ये अवशिष्ट यहूदियों के गेटो[1] के स्थापन तथा मार्क्स के पूर्वजों की पीढ़ी में पश्चिमी यहूदियों की मुक्ति की भावना द्वारा भाप की भाँति उड़ा दिये गये। मार्क्स ने अपने देवी-देवताओं के लिए जेहोवा के स्थान पर 'ऐतिहासिक आवश्यकता' नामक देवी को ग्रहण किया। अपनी चुनी हुई जनता के लिए यहूदियो के स्थान पर पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा को स्वीकार किया था। अपने 'मसीहाई राज्य' को सर्वहारा की तानाशाही के रूप में सोचा। यहूदियों के ईश्वर-ज्ञान का प्रमुख लक्षण इसके पीछे स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।

ऐसा मालूम होता है कि यह धार्मिक रूप साम्यवाद के विकास में अस्थायी होगा। ऐसा जान पड़ता है कि स्टालिन के अनुदार राष्ट्रीय साम्यवाद ने पूर्णरूप से ट्राट्स्की के सार्वभौम क्रान्तिकारी साम्यवाद को पराजित कर दिया। सोवियत संघ अब बहिष्कृत संसार नही है। निकोलस या पीटर के समय जैसा रूसी साम्राज्य था, वैसा ही रूस पुनः हो गया। आदर्शों की अपेक्षा किये बिना रूस ने महान् शक्ति के रूप में अपने मित्र और शत्रु का चुनाव राष्ट्रीयता के आधार पर किया। यदि रूस 'दाहिने' मुड़ चुका है तो उसके पड़ोसी 'बाये'। जर्मनी का राष्ट्रीय समाजवाद और इटली का फासिस्ट आरम्भ मे तड़क-भड़क दिखाकर केवल समाप्त ही नहीं हुआ, वरन् उसके प्रत्यक्ष रूप से प्रजातान्त्रिक देशो की असंगठित अर्थव्यवस्था की योजना पर अबाधित अतिक्रमण किया। इन प्रजातान्त्रिक देशों ने सुझाव दिया कि निकट भविष्य में सभी देशो की सामाजिक बनावट सम्भवतः राष्ट्रीय और समाजवादी दोनों होगी। पूँजीवादी तथा साम्यवादी शासन एक साथ जारी रहते सम्भवतः नही दिखाई देते। यह हो सकता है कि पूँजीवाद तथा साम्यवाद एक वस्तु के ही दो भिन्न नाम हों, जैसा टैलेरैण्ड के व्यंग्यात्मक कथन के अनुसार हस्तक्षेप और अहस्तक्षेप एक ही बात थी। यदि ऐसा है तो हमारा निश्चय है कि साम्यवाद की जो उन्नति क्रान्तिकारी सर्वहारा के धार्मिक रूप में हुई थी, उससे साम्यवाद वंचित हो गया। इसमें पहली बात यह है कि मानव मात्र के कल्याण के बजाय यह स्थानीय राष्ट्रीयता रह गयी। दूसरी बात यह कि उसने अपने समकालीन विश्व के दूसरे राज्यों को लगभग मानक बनकर आत्मसात् कर लिया है।

मेरी इस खोज का निष्कर्ष यह मालूम होता है कि आन्तरिक सर्वहारा में नये रंगरूटों की भरती के प्रमाण कम-से-कम उतने ही प्रचुर है जितने हमारे पश्चिमी संसार के आधुनिक इतिहास में हैं या जितने किसी भी सभ्यता के इतिहास में हैं। जहाँ तक सर्वहारा के सार्वभौम धर्मतन्त्र की स्थापना का प्रश्न है, हमारे पश्चिम में, पश्चिमी इतिहास में एक भी प्रमाण नहीं है। यहाँ तक कि किसी प्रभावशाली सर्वहारा का उत्थान भी नहीं दिखाई देता, जिसने उन्नतर धर्म की नीव रखी हो। इस तथ्य का निरूपण कैसे किया जाय।

१. नगर में यहूदियों के रहने का महल्ला।—अनुवादक

हमने अपने तथा हेलेनी समाज के बीच बहुत-सी तुलनाएँ की हैं, किन्तु इनमें एक मौलिक भेद है। हेलेनी समाज ने अपने मिनोई पूर्वजों से कोई भी सार्वभौम धर्म नही पाया। व्रात्य-वाद (पेगानिज्म) की दशा में ई० पू० पाँचवी शती मे हेलेनी समाज पैदा हुआ था उसीमें वह समाप्त हो गया, किन्तु वास्तव मे स्थानीय व्रात्यवाद प्रथम अवस्था नही थी, चाहे हमारी अपनी सभ्यता की वर्तमान स्थिति के निकट यह हो। जो अपने को पश्चिमी सभ्यता कहने का अधिकारी था। तिस पर भी यदि हम ईसाइयत के उत्तराधिकार को फेंक देने मे सफल हुए, धर्मच्युत होने की यह प्रणाली मन्द तथा श्रमसाध्य हो चुकी है। दृढ़ सकल्प होने पर भी हम इस प्रणाली को पूरा करने में जैसा चाहते है, सफल नही हो सकते। इतना होने पर भी उस परम्परा से मुक्त होना इतना सरल नही है जिसमें हमारे पूर्वज पैदा हुए थे तथा १२ सौ वर्षों से हम पाले गये है। उस समय पश्चिमी ईसाई साम्राज्य कमजोर शिशु के रूप मे 'चर्च'[१] के गर्भ से पैदा हुआ था। जब डेकार्टे, वाल्टेयर, मार्क्स, मैकियाबेली, हाब्स, मुसोलिनी तथा हिटलर ने हमारे पश्चिमी जीवन को गैर-ईसाई बनाने का भरसक प्रयत्न किया, तब भी हम इतना कह सकते है कि उनका मार्जन तथा शुद्धिकरण आशिक रूप से प्रभावशाली हुआ। ईसाइयत का विषाण या अमृत हमारे पश्चिमी रक्त मे है (इस अनिवार्य द्रव के लिए दूसरा नाम उपयुक्त नही है।) यह कल्पना करना कठिन है कि पश्चिमी समाज की आध्यात्मिक रचना कभी विशुद्ध हेलेनी व्रात्यवाद के रूप मे हो सकती है।

इसके अतिरिक्त हमारी व्यवस्था मे ईसाइयत के तत्त्व केवल सर्वव्यापी ही नही है, वरन् बहुमुखी भी है। ईसाइयत ने अपने जीवन-रस के तीव्र टिचर को उन नि.सक्रामक विरोधी तत्त्वो मे धीरे-धीरे प्रविष्ट कराया जो बड़े शक्तिशाली ढग से ईसाई धर्म को बाँझ बना रहे थे। निर्मूल होने से अपने को बचाने के लिए ईसाइयत के प्रिय उपायों मे से यह एक था। हमने साम्य-वाद में ईसाइयत के तत्त्वो को पहले ही देख लिया है। साम्यवाद आधुनिक पश्चिमी दर्शन का ईसाइयत विरोधी प्रयोग का रूप मालूम होता है। टालस्टाय और गाधी पाश्चात्य विरोधी आधुनिक नम्रता के देवदूतो मे है। उन्होने ईसाई धर्म से प्राप्त प्रेरणा को छिपाने का बहाना नही किया।

पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा की सूची मे आने के लिए कठोर प्रयत्न करने वाले पैतृक सम्पत्ति से वचित स्त्रियो और पुरुषो के अनेक विभिन्न सैन्यदलों में सबसे अधिक पीडित अफ्रीका के आदिम नेग्रो लोग थे। इन नेग्रो लोगों को दास बनाकर अमरीका लाया गया था। उनमे हम पश्चिम के समान ही प्रवासी दासो को पाते है। ये प्रवासी दास भूमध्यसागर के सभी दूसरे किनारों से रोमन इटली में ईसा के पूर्व की दो शतियो मे लाये गये थे। हम देखते हैं कि इटैलो-ओरियेन्टल की भाँति अमेरिको-अफ्रीकन पुनःस्थापित दासो ने महान् सामाजिक चुनौती धार्मिक प्रतिक्रिया के साथ स्वीकार की। इस अध्ययन के आरम्भ मे हमने दोनो की तुलना करते हुए अनेक सादृश्य दिखाये है, किन्तु उनमे ठीक वैसा ही एक विशेष अन्तर भी है। मिस्री, सीरियाई और एशिया माइनर के प्रवासी दास उस धर्म से सन्तुष्ट थे जिसे वे अपने साथ लाये थे, किन्तु अफ्रिकी दास अपने स्वामियो के पैतृक धर्म को स्वीकार करने में ही सन्तुष्ट हुए।

१. धर्मतन्त्र।—अनुवादक

इसका समाधान कैसे दिया जाय ? निःसन्देह दासो के दोनों दलो के सामाजिक इतिहासों में अन्तर है । रोमन इटली के पुनःस्थापित दास प्राचीन और संस्कृत पूर्वी जन-वर्ग से लिये गये थे। इन पूर्वी लोगों के बच्चे अपनी पूर्वजों की संस्कृति के अनुयायी हो सकते थे, किन्तु अफ्रीका के नेग्रो दासों का पैतृक धर्म अपने गोरे स्वामियों की अधिक अच्छी सभ्यता का सामना नही कर सकती थी । इस सम्बन्ध मे दोनों स्वामियों की सांस्कृतिक विभिन्नता की पूर्ण व्याख्या का ध्यान रखना होगा ।

रोमन इटली में ये पूर्वी दास वास्तव मे अपने पैतृक धार्मिक उत्तराधिकार के बाहर कहीं भी धार्मिक सान्त्वना नही खोजते थे, क्योंकि इनके रोमन स्वामी की आध्यात्मिकता शून्यता थी । इन दासों के मामले मे धार्मिकता का यह अमूल्य मोती उन्हे अपने उत्तराधिकार के रूप में मिला था न कि उनके स्वामियो के उत्तराधिकार मे । पश्चिमी अवस्था मे सम्पूर्ण सासारिक शक्ति तथा सम्पत्ति के साथ आध्यात्मिक खजाना दासों को सचालित करने वाले प्रभावशाली अल्पसख्यक के हाथो मे था ।

आध्यात्मिक कोश का रखना एक बात है और उसका दूसरे को देना दूसरी बात है । जब हम इस पर और अधिक विचार करते है, तब आश्चर्यचकित होकर देखते हैं कि इन दासो के ईसाई स्वामियो को अपने द्वारा विधर्मी किये गये प्रताड़ित लोगो को आध्यात्मिक भोजन देने मे समर्थ होना चाहिए था । यह आध्यात्मिक भोजन अपने साथियो को दास बनाने के अपवित्र कार्य द्वारा धर्म-भ्रष्ट करने का भरसक प्रयत्न है । जिन दासो को उन्होने घोर सन्तप्तकारी गलती करके नैतिक रूप से परिवर्तित किया है, ईसाई धर्म प्रचारक स्वामी अपने उन दासो का हृदय-स्पर्श कैसे कर सके ।[१] ईसाई धर्म मे अजेय आध्यात्मिक शक्ति होनी चाहिए यदि वह विजय प्राप्त करना चाहता है । वस्तुतः धर्म का स्थान धरती पर नही वरन् मनुष्य की आत्मा मे होता है इसलिए हमारे नये नव-व्रात्यवादी धर्मावलम्बी ससार मे अनेक स्त्री-पुरुष ईसाई जीवित होंगे । संभवतः नगर मे पचास सचरित्र होंगे । अमेरिका के दास मिशन पर दृष्टि डालने पर हम अपने कार्य मे सलग्न अचल रूप से कुछ ईसाई दिखाई पड़ेगे । वस्तुतः अमरीका के धर्म परिवर्तित नेग्रो अपने धर्म-परिवर्तन के लिए अपने धर्म-पुरोहितो के ऋणी हैं । उनके नही जो समुद्र पार पुन.स्थापित दासो के दलो के लिए एक हाथ मे बाइबिल तथा दूसरे हाथ मे चाबुक लिये हुए थे । ये दल जान, जी० फीस तथा मीटर क्लैवर के ऋणी हैं ।

अपने स्वामियो के धर्म द्वारा दासो के इस धर्म-परिवर्तन के चमत्कार में हम आन्तरिक सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसख्यक के बीच स्पष्ट भेद देखते है । पश्चिमी समाज मे यह भेद उस ईसाइयत द्वारा समाप्त किया गया, जिसका खण्डन करने की चेष्टा हमारे शक्तिशाली अल्पसंख्यक ने की थी । ईसाई मिशनरी के अन्तिम दिनो के क्रिया-कलापो में से एक अमरीकी नेग्रो का धर्म परिवर्तन है । हमारी युद्ध से सत्रस्त पीढ़ी मे जहाँ नव-व्रात्यवादी अल्पसख्यक का उज्ज्वल भविष्य धुँधला हो गया, एक बार फिर जीवन का रस पश्चिमी ईसाई साम्राज्य की सभी

१. फिलिस्तीन के प्राचीन नगर सोडम की रक्षा के लिए अब्राहम ने जेहोवा से प्रार्थना की थी : जेनीसिस १८, २४ ।

शाखाओं में व्यक्त रूप से प्रवाहित हुआ। इस दृश्य से ऐसा ज्ञात होता है कि इन सबके बाद पश्चिमी इतिहास का अगला अध्याय कदाचित् हेलेनी इतिहास के अन्तिम अध्याय का अनुसरण नहीं कर सकता। नष्ट हुई तथा विघटित सभ्यता के अवशिष्ट विरासत पाये लोगों की भाँति हम आन्तरिक सर्वहारा की जोती गयी धरती से उत्पन्न नये ईसाई धर्म का सिंहावलोकन करने के स्थान पर उस सभ्यता का अध्ययन करेंगे जिसने अपने पैतृक धर्मतन्त्र के उन्हीं हाथों सुरक्षित होने की संभावना समझी। जिसे उसने दूर रखने की असफल चेष्टा की। इस क्रिया में भौतिकता पर दिखावटी विजय के नशे में लड़खड़ाती हुई सभ्यता ने आध्यात्मिक उन्नति के लिए दूसरे की सम्पत्ति (धर्म) ईश्वर की ओर ध्यान किये बिना अपने ही लिए रख ली। उसे उस अपराध से मुक्त किया जा सकता है, जो उसने अपने ऊपर आरोपित किया—अर्थात् कोरोस-यूबरीस-ऐथ का मार्ग। हेलेनी भाषा में, त्यागा पश्चिमी ईसाई समाज सार्वभौम ईसाई समाज के रूप में फिर से जन्म ले जो उसका पहले का तथा उत्तम आदर्श था।

क्या ऐसा आध्यात्मिक पुनर्जन्म सम्भव है? यदि मैं निकोडेमस का प्रश्न प्रस्तुत करूँ कि क्या एक मनुष्य दूसरी बार पुन. माता के गर्भ में जा सकता है और पैदा हो सकता है, तो उसके प्रशिक्षक का ही उत्तर दिया जा सकता है कि "मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि वह मनुष्य जो आध्यात्मिक जल से नहीं पैदा होता, वह ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता।"[१]

(४) बाहरी सर्वहारा

आन्तरिक सर्वहारा के समान बाहरी सर्वहारा भी शक्तिशाली पतित सभ्यता के अलग होने से उत्पन्न होता है। जिससे अलगाव होता है वह भेद स्पष्ट है। आन्तरिक सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्यक के साथ भौगोलिक दृष्टि से आपस में मिलते रहते हैं, जिनसे नैतिक खाईं द्वारा यह विभाजित हो जाते हैं। बाहरी सर्वहारा न केवल नैतिक दृष्टि से परिवर्तित किया जाता है, वरन् शक्तिशाली अल्पसंख्यक द्वारा भौतिक रूप से सीमाओं में विभाजित किया जाता है। यह सीमा मानचित्र पर देखी जा सकती है।

यह सीमा ही वास्तव में वह स्पष्ट चिह्न है, जिससे यह विभाजन होता है। जब तक सभ्यता विकासोन्मुख रहती है, उसके अग्रभाग के अतिरिक्त उसकी कोई निश्चित सीमा नहीं रहती। जहाँ वह दूसरी सभ्यता और उसकी जातियों से टकराती है। दो या अधिक सभ्यताओं की ऐसी टक्करें ऐसा आभास उत्पन्न करती हैं जिसके परीक्षण का अवसर हमें इस अध्ययन के अन्तिम भाग में मिलेगा।[२] किन्तु, इस समय हम इस पर विचार करना छोड़ देंगे और अपना ध्यान उस स्थिति पर ही केन्द्रित करेंगे जिसमें सभ्यता का पड़ोसी दूसरी सभ्यता नहीं है, बल्कि आदिम जातियों का समाज है। इस परिस्थिति में हम देखेंगे कि जब तक सभ्यता विकासोन्मुख रहती है, उसकी सीमाएँ अस्पष्ट रहती हैं। हम विकासोन्मुख सभ्यता के विकास तथा उसकी विकास-यात्रा की प्रणाली पर अपने को केन्द्रित करें और बाहर की ओर चलें तो कभी-न-कभी हम ऐसे

१. जान ३, ४–५

२. उस खण्ड में जो अबतक अप्रकाशित है।

वातावरण में पहुँच जायेंगे जो निश्चित रूप से आदिम हैं। ऐसी यात्रा मे कही भी हम एक रेखा खीच कर नही कह सकते कि "यहाँ सभ्यता समाप्त होती है और हम आदिम समाज में प्रविष्ट होते हैं।"

वस्तुतः जब एक क्रियाशील अल्पसख्यक सभ्यता के विकास के जीवन मे अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है और एक ऐसी चिनगारी प्रज्ज्वलित करता है जो घर की सभी वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए दीपक जलाती है, तब इस ज्योति की किरणें बाहर भी जाती हैं। ये घर की दीवारो से बड़ी नही बनायी जा सकती। क्योकि वास्तव मे कोई दीवार है नही और बाहरी पड़ोसियो से प्रकाश छिप नही सकता। स्वभावत प्रकाश तब तक चमकता रहता है, जब तक वह लोप बिन्दु (वैनिशिंग पाइंट) पर नही पहुँच जाता। इसका क्रम सूक्ष्म है। गोधूली की धुँधली कहाँ समाप्त होती है और अन्धकार कहाँ से आरम्भ होता है, इसकी विभाजन-रेखा खीचना असम्भव है। वस्तुतः विकासोन्मुख सभ्यताओ के विकिरण की संचालक शक्ति इतनी महान् है कि बहुत पहले ही, कम-से-कम कुछ अशो मे, वह शक्ति जीवित आदिम समाजो की सम्पूर्ण व्यवस्था मे व्याप्त होने मे सफल हो चुकी है। यद्यपि सभ्यताएँ सापेक्ष रूप से मानव की अत्यन्त आधुनिक उपलब्धि हैं। कही भी ऐसे आरम्भिक समाज की खोज करना असम्भव होगा जो किसी एक या दूसरी सभ्यता के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो। उदाहरणार्थ १९३५ मे पापुआ[1] (ब्रिटिश न्यूगियाना द्वीप का दक्षिणी-पूर्वी भाग) के आन्तरिक भाग मे एक ऐसे समाज की खोज हुई जो पहले पूर्ण रूप से अज्ञात था। यह समाज सघन खेती की वह तकनीक जानता था जो किसी अज्ञात काल मे किसी अज्ञात सभ्यता से अवश्य सीखी गयी होगी।

आदिम समाजो का जो कुछ शेष है उससे हम जब इस विशेष स्थिति का निरीक्षण करते हैं तब हमे आदिम समाज के प्रभाव की व्यापकता सभी सभ्यताओ मे दिखाई पड़ती है। दूसरी ओर यदि हम एक सभ्यता की दृष्टि से इसका निरीक्षण करे तो हम इस तथ्य द्वारा शक्तिशाली ढंग से प्रभावित हुए बिना नही रहते कि जैसे ही क्षेत्र बढ़ता जाता है वैसे ही प्रभाव की शक्ति का विकिरण कम होता जाता है। जब हम उस सिक्के पर हेलेनी कला के प्रभाव को देखकर अपने आश्चर्य को समाप्त करते हैं जो ईसा के पूर्व की अन्तिम शती मे ब्रिटेन मे ढाला गया था अथवा युग की प्रथम शती मे अफगानिस्तान के कब्र की तराशी शव पेटी को देखते हैं तब पता चलता है कि ब्रिटिश सिक्का मैसेडोनिया का व्यंग्य चित्र है और अफगानिस्तान की वह शव-पेटी व्यापारी कला का नकली उत्पादन है। उच्च कोटि की अनुकृति भी उपहास की वस्तु हो जाती है। अनुकृति का आह्वान आकर्षण से होता है। इसे क्रम से अनेक सर्जनात्मक अल्पसख्यक काम मे लाते हैं। उससे केवल यही नही कि घर मे विभाजन से रक्षा होती है, अपने पड़ोसियो द्वारा आक्रमण से रक्षा होती है, जहाँ तक यह आदिम समाज पड़ोसी है। सर्जनशील अल्पसंख्यक के क्रमिक अनुगमन द्वारा ही यह आकर्षण सभ्यता के विकास मे दिखाई देता है। जब कभी विकासोन्मुख सभ्यता आदिम समाजो के सम्पर्क मे आती है, तब उसका सर्जनशील अल्पसख्यक उनकी अनुकृति को आकृष्ट करता है, साथ ही असर्जनशील बहुसख्यक वर्ग को

१. दि टाइम्स, १४ अगस्त १९३६, और पापुअन वन्डर लैण्ड : जे० जी० हाइडस्।

अनुकृति को भी आकृष्ट करता है। किन्तु, यदि चारों ओर के आदिम समाजों और सभ्यता के बीच यह सामान्य सम्बन्ध तब तक है, जब तक सभ्यता विकासोन्मुख रहती है। तब उस समय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है, जब सभ्यता का पतन होता है, तब वह विघटित हो जाती है। सर्जनशील अल्पसंख्यक ने आकर्षण द्वारा स्वेच्छा से राजभक्ति पायी है। सर्जनशील अल्पसंख्यक ने अपने से भक्ति प्राप्त की है, क्योंकि उनमे सर्जनात्मकता है, शक्तिशाली बहुसंख्यक में सर्जनशीलता नही है इसलिए उसे शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। इनके चारो ओर के आदिम समाज के लोगों पर आकर्षण नही होता, वे अलग कर दिये जाते हैं। विकासोन्मुख सभ्यता के ये सरल अनुयायियो ने शिष्यता का परित्याग कर दिया और ये वे बन गये जिन्हें बाहरी सर्वहारा कहा जाता है। ये विघटित सभ्यता 'में' होते है, कभी उस 'के' नही होते।[1]

किसी सभ्यता के विकिरण का विश्लेषण तीन तत्त्वों में हो सकता है, आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक। जब तक समाज विकास की अवस्था में होता है ये तीनों तत्त्व समान शक्ति से विकीर्ण होते हुए समान आकर्षक मालूम होते है। मै यह बात भौतिक दृष्टि से नही, वरन् मानवी दृष्टि से कर रहा हूँ। किन्तु, सभ्यता का विकास ज्यो ही बन्द हो जाता है, उसकी संस्कृति का आकर्षण भाप की भाँति उड़ जाता है। उसकी आर्थिक और राजनीतिक विकिरण की शक्तियाँ वास्तव मे पहले की अपेक्षा अधिक तेजी से विकसित होती हैं। यह विकास अर्थ, युद्ध और राक्षस के बनावटी धर्मों के सफलतापूर्वक सवर्धन के लिए होता है जो पतनोन्मुख सभ्यताओं के विशिष्ट लक्षण हैं। किन्तु सास्कृतिक तत्त्व सभ्यता का सार है और आर्थिक तथा राजनीतिक तत्त्व अपेक्षित रूप से उस जीवन की नगण्य अभिव्यक्ति है, जो उनमें है। ऐसा मालूम होता है कि आर्थिक और राजनीतिक विकिरण की अत्यधिक प्रदर्शनीय विजय अपूर्ण तथा खतरनाक है।

यदि हम आदिम जनता की दृष्टि से इस परिवर्तन पर ध्यान दें तो हम पूर्वोक्त सत्य की ही अभिव्यक्ति करेंगे कि पतित सभ्यता की शक्ति की कला की उनकी अनुकृति समाप्त हो जाती है, किन्तु वे उसके सुधारों तथा उनकी प्राविधिक युक्तियों की नकल करना जारी रखते है। ये उद्योग-धन्धे युद्ध और राजनीति में उनकी नकल करते है इसलिए नही कि वे उनके साथ एक हो सकें, वरन् इसलिए कि उनकी हिंसा के विरुद्ध वे अपनी रक्षा प्रभावशाली ढग से कर सकें क्योंकि यही अब उनका विशिष्ट गुण हो जाता है।

आन्तरिक सर्वहारा की प्रतिक्रियाओ और अनुभवों के पहले सर्वेक्षण में हमने देखा है कि किस प्रकार हिंसा के मार्ग ने उन्हे आकृष्ट किया तथा किस प्रकार इस आकर्षण के कारण अपने विनाश को पहुँचे। थियूडास और जूडास ऐसे लोग अवश्य ही तलवार से नष्ट हुए। जब वे नम्रता के पैगम्बर का अनुसरण करते है तभी आन्तरिक सर्वहारा अपने विजेताओ को वही बना पाते है। यदि बाहरी सर्वहारा हिंसा की प्रतिक्रिया करना चाहता है तो वह ऐसा नहीं

१. जब हम इस 'में' कहते है, तब हमारा तात्पर्य भौगोलिक दृष्टि से नहीं होता। बाहरी कहे जाने पर भी स्पष्ट रूप से वे बाहर नहीं होते, वरन् 'उनमें' ही तब तक रहते हैं, जब तक वे स्वेच्छा से सक्रिय सम्बन्ध की स्थिति में रहना जारी रखते है।

कर सकता। सम्पूर्ण आन्तरिक सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्यक के निकट ही रहता है। किसी सीमा तक बाहरी सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्यक की सैनिक क्रिया के प्रभाव क्षेत्र से बाहर रहता है। अब जो संघर्ष होता है उसका परिणाम यह है कि पतित सभ्यता अनुकृतियों को नहीं आकृष्ट करती, शक्ति का विकिरण करती है। इस परिस्थिति में बाहरी सर्वहारा के निकटतम सदस्य सम्भवतः जीत लिये जाते हैं और आन्तरिक सर्वहारा में उन्हें शामिल किया जाता है। किन्तु एक समय ऐसा आता है, जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक की सैनिक शक्ति उनके सम्पर्कों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हो जाती है।

जब यह अवस्था आती है तब सभ्यता और उसके बर्बर पडोसियो के बीच परिवर्तन क्रिया पूरी होकर सम्पर्क स्थापित हो जाता है। जब तक एक सभ्यता विकासोन्मुख अवस्था में ही रहती है, तब तक वह अपनी पूरी शक्ति से व्याप्त रहती है और उसका घर छिपा रहता है, । और उस पर असभ्यो का आक्रमण नही होता क्योकि दोनों के बीच एक दीवार होती है जहाँ-जहाँ सभ्यता क्रमशः क्षीण होते-होते असभ्यता में बदल जाती है। दूसरी ओर जब सभ्यता पतित हो जाती है और उसमे भेद पैदा हो जाता है, और जब शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा बाहरी सर्वहारा के बीच का लगातार सघर्ष समाप्त हो जाता है और ये युद्ध की खाई में सुव्यवस्थित हो जाती है, तब हमें अन्तस्थ क्षेत्र अदृश्य हो जाता है। सभ्यता से बर्बरता की ओर भौगोलिक परिवर्तन कभी धीरे-धीरे नही होता, वरन् अचानक होता है। इन दोनो प्रकारों के सम्पर्कों के विरोध तथा सम्बन्ध को पूर्ण रूप से व्यक्त करने वाला लैटिन शब्द 'लिमेन' (अवसीमा) या अंग्रेजी शब्द थ्रेशहोल्ड (देहली) है। यह पहले एक क्षेत्र था जो अब सैनिक सीमा द्वारा बन गया है। जिसमे लम्बाई है, पर चौडाई नही। इस रेखा के पार पराजित शक्तिशाली अल्प-सख्यक और अपराजित बाहरी सर्वहारा शस्त्रो द्वारा एक-दूसरे का सामना करते हैं। यह सैनिक मोरचा सैनिक तकनीक को छोडकर सभी सामाजिक विकिरण को रोकता है। इस सैनिक तकनीक का तात्पर्य सामाजिक आदान-प्रदान की उन वस्तुओ से है जो शान्ति के लिए नही, वरन् उनके युद्ध के लिए बनायी जाती है, जिनके बीच इन वस्तुओ का आदान-प्रदान होता है।

यह सामाजिक आभास तब होता है, जब युद्ध सैनिक मोरचे की 'अवसीमा' पर रुक जाता है। इस आभास पर हमारा ध्यान बाद मे जायगा।[1] यहाँ इस मुख्य तथ्य का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा कि समयानुसार यह अस्थायी खतरनाक शक्ति का सन्तुलन अनिवार्य रूप से असभ्यो के पक्ष की ओर झुकता है।

एक हेलेनी दृष्टान्त

हेलेनी इतिहास के विकास की दशा अन्तस्थ क्षेत्र तथा अवसीमा के अनेक दृष्टान्तो से सम्पन्न है, जो विकासोन्मुख सभ्यता के घर मे बहुत मिलते हैं। यूरोप महाद्वीप मे यूनान का सार थरमोपिली के उत्तर अर्ध-हेलेनी थेसली मे, डेसफी के पश्चिम अर्ध-हेलेनी एतोलिया में मिल गया है। अर्द्ध हेलेनीवाद, थ्रेस तथा इलीरिया की पूर्ण बर्बरता से पूर्ण रूप से ढँक लिया

१. उस खण्ड में, जो अब तक प्रकाशित नहीं है।

गया। पुनः एशिया माइनर की ओर, एशिया के तट के ग्रीक नगरों के निकट प्रदेशों में हेलेनी-वाद का ह्रास हो गया है। ये नगर कैरिया, लीडिया और फ्राइजिया है। एशिया की इस सीमा पर हेलेनीवाद को अपने बर्बर विजेताओ को बन्दी बनाते हुए हम देख सकते हैं। यह इतना शक्तिशाली था कि ईसा से पूर्व छठी शती के द्वितीय चतुर्थांश में लीडिया की राजनीति में यूनान प्रेमियों तथा यूनान से डरने वालों का पहली बार युद्ध सामने आया। जब लीडिया के राज्य का यूनान-प्रेमी महत्त्वाकाक्षी पैन्टालिओन अपने सौतेले भाई क्रीसस द्वारा पराजित किया गया, तब हेलेनी विरोधी दल का नेता हेलेनी पक्ष के ज्वार के विरुद्ध तैरने में ऐसा नपुंसक सिद्ध हुआ कि वह हेलेनी तीर्थों का उदार संरक्षक बन गया, जिस प्रकार वह हेलेनी भविष्यवक्ताओं की सलाह में विश्वास करता था।

समुद्रपार की पृष्ठभूमि मे शान्तिपूर्ण सम्बन्धो तथा धीरे-धीरे परिवर्तन के नियम जान पड़ते हैं। हेलेनीवाद शीघ्रता से इटली के महान् ग्रीस-मैगना ग्राइसिया की पृष्ठभूमि में फैला। रोम के प्रारम्भिक विस्तृत साहित्य में अफलातून के शिष्य हेराक्लीडीस पान्टिकस के हाथो की कृति का अवशेष है, जिसमे यह 'लैटिन' राष्ट्रमण्डल हेलेनी नगर के नाम से वर्णित है।

इस प्रकार हेलेनी ससार की सभी सीमाओ पर अपने विकास की अवस्था मे ओरफियूज की सुन्दर आकृति हमे दिखाई देती है। यह ओरफियूज चारो ओर के बर्बर लोगो पर प्रभाव डालता हुआ और उन्हे अपने जादू भरे संगीत को पुन. सुनने के लिए अनुप्राणित करता हुआ दिखाई देता है। अपने अनगढ़ बाजे के जादूभरे संगीत से वह अपनी पितृभूमि की पृष्ठभूमि के आदिम मानव को अनुप्राणित करता मालूम पड़ता है। किन्तु हेलेनी सभ्यता के पतन पर उसी क्षण इस प्रबन्ध गीत का स्वर-चित्र नष्ट हो जाता है। जिस क्षण सगीत की लय कर्कश ध्वनि में बदलती है, मोहित श्रोता (असभ्य लोग) एकाएक तन्द्रा से जागते दिखाई देते हैं और अपने निर्दय रूप में पुनः लौट आते है। वे दुष्ट असैनिकों के विरुद्ध प्रबल वेग से कूद पडते हैं जो सदल ईशदूतो के परदे के बाहर आते हैं।

हेलेनी सभ्यता के पतन के लिए बाहरी सर्वहारा की सैनिक प्रतिक्रिया महान् ग्रीस में अत्यन्त हिंसात्मक और प्रभावशाली थी। वहाँ ब्रूटिया और लुकानिया के लोगो ने ग्रीक नगरों पर आक्रमण किया और एक के बाद दूसरे पर कब्जा किया। ईसा पूर्व ४३१ से सौ वर्षों तक के युद्ध का आरम्भ हेलेनी लोगों के लिए महान् दोषो का आरम्भ था। महान् ग्रीस के सम्पन्न प्रारम्भिक समुदायो मे से कुछ जीवित रह गये। इन्हें समुद्र की ओर भगाये जाने से सुरक्षा करने के लिए कुछ भाडे के सैनिको को अपनी मातृभूमि से बुलाया गया। यह सैनिको का अव्यवस्थित प्रबलन (रि-इनफोर्समेंट) इटली के आदिम निवासियों के वेग को रोकने में पूरा असमर्थ हुआ, क्योकि बर्बरो ने मेसिना का जलडमरूमध्य पार कर लिया था, इसके पहले ही हेलेनी कृत रोमन सगोत्री इटालियाई आदिमवासियों के बीच-बचाव से सम्पूर्ण आन्दोलन अचानक समाप्त कर दिया गया। रोमन राजमर्मज्ञता तथा उसकी सेना ने 'महान् ग्रीस' को ही नहीं, हेलेनीवाद के लिए सारे इटली प्रायद्वीप को, ओसकनों पर पीछे से हमला करके बचा लिया और इटालियाई बर्बरों तथा इटालियाई यूनानियों, दोनों में शान्ति स्थापित की।

इस प्रकार हेलेनीवाद और बर्बरता के बीच का दक्षिणी इटालियाई मोरचा नष्ट हो गया। इसके बाद रोमन सैनिकों के चरणों ने हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक के साम्राज्य का विस्तार यूरोप महाद्वीप तथा उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में किया। ऐसा ही विस्तार एशिया में मेसेडोनिया के सिकन्दर के द्वारा हो चुका था। इन सैनिक विस्तारों का प्रभाव बर्बरों के विरोधियों के मोरचों को हटाना नहीं था, किन्तु उनका विस्तार करना तथा शक्ति के केन्द्र से दूर-दूर तक फैलाना था। कई शतियों तक उन्हें स्थिर किया गया, किन्तु नियमानुसार समाज के विघटन की क्रिया चलती रही, जब तक कि अन्तिम रूप से बर्बरो ने आक्रमण कर दिया।

अब हम यह देखना चाहते है कि हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक पर बाहरी सर्वहारा के दबाव की प्रतिक्रिया क्या रही? अहिंसक तथा हिंसक कोई भी प्रतिक्रिया का चिह्न दिखाई देता है? और क्या बाहरी सर्वहारा में किसी प्रकार की रचनात्मक क्रियाशीलता थी?

पहली ही दृष्टि में यह देखा जा सकता है कि हेलेनी स्थिति में इन दोनो प्रश्नो का उत्तर नकारात्मक होगा। हम हेलेनी विरोधी बर्बरों का अनेक अवस्थाओ और परिस्थितियो में निरीक्षण कर सकते हैं। एरिओविसटस के रूप मे सीजर द्वारा वह रणक्षेत्र से भगा दिया जाता है, आरमिनिअस के रूप में अगस्टस का सामना करता है, आडोवेसर के रूप में वह रोमुलस अगस्टस से बदला लेता है। सभी युद्धों में जय, पराजय और बराबरी के तीन ही विकल्प हैं। सभी विकल्पो मे हिंसा का ही शासन होता है और सर्जनात्मक शक्ति मन्द पड़ जाती है। हमें यह देखकर और स्मरण करके उत्साह प्राप्त होता है कि आन्तरिक सर्वहारा भी अपनी आरम्भिक प्रतिक्रियाओ में ऐसी ही हिंसा और अनुर्वरता दिखाते हैं। अन्त में 'उच्चतर धर्म' ऐसे शक्तिशाली निर्माण में जो अहिंसा द्वारा अभिव्यक्त होता है, और सार्वभौम धर्म को सामान्य रूप मे प्रमुखता प्राप्त करने के लिए, समय तथा कठोर श्रम दोनों की आवश्यकता होती है।

उदाहरणार्थ, विभिन्न बर्बर-गिरोहों के युद्धो में अहिंसा को भिन्न-भिन्न मात्राओं में हम अनुभव करते है। अर्ध-अर्ध हेलेनी विसिगाथ ऐलेरिक द्वारा रोम की ४१० ई० की बरबादी, उसी नगर की वाडलों और बर्बरों द्वारा की गयी जो ४५५ ई० की बरबादी से कम क्रूर थी। यह वह बरबादी थी जो रेडागाइसम (४०६ ई०) द्वारा हुई थी। अलारिक की सापेक्षित अहिंसा का सन्त आगस्टाइन ने वर्णन किया है :

"क्रूर नृशंसता इतनी हल्की दिखाई देती है कि विजेताओ ने चर्चों में विश्राम के लिए पर्याप्त अवसर दिया था। आज्ञा दी गयी थी कि इस पुण्यस्थली में किसी पर भी तलवार से प्रहार न हो और कोई भी बन्दी न बनाया जाय। वास्तव में कोमल-हृदय शत्रुओं द्वारा अनेक ऐसे बन्दी इन चर्चों में लाये गये थे। किसी पर भी दास बनाने की गरज से क्रूर शत्रुओ ने अस्त्र से प्रहार नही किया।"[१]

अलारिक के साले और उत्तराधिकारी अतावुल्फ से सम्बन्धित एक विचित्र प्रमाण और है

१. संत अगस्टाइन : दि सिवाइटेट डेइ, पुस्तक १, अध्याय ७।

जिसका उल्लेख आगस्टाइन के शिष्य ओरोसियस ने नरबोन के एक सज्जन के कथन के आधार पर किया था जो थियोडोसियस सम्राट् की सेना में काम करता था ।

"इस सज्जन ने हमसे कहा कि नारबोन में अतावुल्फ का मैं घनिष्ठ मित्र हो गया हूँ । और उसने अनेक बार मुझसे कहा है—और इस गम्भीरता से मानो साक्षी दे रहे हों—अपने सम्बन्ध की कहानी, जो इस बर्बर की, जो उत्साह, शक्ति और सजीवता का उदाहरण है, जिह्वा पर सदा रहती है । अतावुल्फ की अपनी जीवन की कहानी के अनुसार रोम के नाम की सम्पूर्ण स्मृति को मिटा देने की प्रबल इच्छा के साथ उसने अपना जीवन आरम्भ किया था । उसकी इच्छा सम्पूर्ण रोमन राज्य को ऐसे साम्राज्य में बदलने की थी जो गोथो साम्राज्य मे लीन हो जाय ।"

"समय पाकर अनुभव से उसे विश्वास हो गया कि एक ओर तो अपनी बर्बरता के कारण नियन्त्रित जीवन के लिए गोथ अनुपयुक्त है, दूसरी ओर राज्य से कानून का शासन नष्ट करना अपराध होगा । जब कानून का शासन समाप्त हो जाता है, राज्य समाप्त हो जाता है । जब अतावुल्फ को सत्य का ज्ञान हो गया, तब उसने वैभव की प्राप्ति का प्रयत्न किया । यह ऐश्वर्य उसकी पहुँच में था । उसने सबके लिए रोमन नाम के पुन: स्थापनार्थ गोथो की शक्ति का प्रयोग किया। रोम के नाम की पुन· स्थापना उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी ।"[१]

यह उद्धरण हेलेनी वाहरी सर्वहारा के लोकाचार में हिंसा से अहिंसा के परिवर्तन का प्रामाणिक दृष्टान्त है और उसके प्रकाश में हम आध्यात्मिक रचनात्मक शक्ति के तात्कालिक निश्चित लक्षण देख सकते हैं, जिसने किसी प्रकार बर्बर आत्माओ की मौलिकता का आशिक रूप से उद्धार किया था ।

उदाहरणार्थ, स्वय अतावुल्फ अपने साले एलारिक के समान ईसाई थे, किन्तु उनकी ईसाइयत सन्त आगस्टाइन और कैथोलिक धर्मतन्त्र की ईसाइयत नही थी । यूरोप के मोरचे पर उस पीढ़ी के बर्बर आक्रामक 'एरियन' लोग थे । सम्भवत: वे बिलकुल विधर्मी (पैगन) नही थे । यद्यपि उनका कैथोलिक धर्म मे न होकर एरियन धर्म में परिवर्तन सयोग मात्र था । इस विधर्मी भावना की समाप्ति जान-बूझकर हुई थी । इसके पश्चात् एरियन धर्म विशिष्ट चिह्न था जिसे जान-बूझकर धारण किया गया था । कभी-कभी अहंकार के साथ इसका प्रदर्शन विजेता और विजित जनता में सामाजिक अन्तर दिखाने के लिए होता था । रोमन साम्राज्य के बहुसख्यक ट्यूटोनी उत्तराधिकारी राज्यो में से अधिकांश के एरियन धर्म दो शासनों के अन्त:काल के अधिक बड़े भाग मे जीवित रहा । यह समय ३७५ ई० – ६७५ ई० का था । पोप ग्रेगरी ने, (५९० ई०–६०४ ई०) जो किसी एक आदमी की अपेक्षा पश्चिमी ईसाई साम्राज्य की नयी सभ्यता जो शून्य से निकली, के सस्थापक के माने जा सकते है, लोमबार्डी रानी थियोडेलिन्डा के कैथोलिक धर्म का परिवर्तन करके बर्बरों के इतिहास का एरियन अध्याय समाप्त किया । फ्रांक कभी एरियन नही थे, किन्तु विधर्मियो से सीधे कैथोलिक बनाये गये थे । ऐसा क्लोविस के रीमस (४९६ ई०) में ईसाई धर्म की दीक्षा के बाद हुआ था । विधर्मियों से कैथोलिक बनाया जाना दो शासनों के अन्त:काल में उन्हें जीवित रहने में सहायक हुआ और ऐसे राज्य-निर्माण में सहायता दी जो नयी सभ्यता की राजनीतिक नींव बना ।

१. पी० ओरोसियस : एडवरसम् पैगानोस, पुस्तक ७, अध्याय ४३ ।

एरियन धर्म में जो बर्बर परिवर्तित हो गये, उन्हें उसी रूप में स्वीकार कर लिया। किन्तु साम्राज्य की दूसरी सीमाओं पर दूसरे बर्बर लोग थे, जो अपने-अपने धार्मिक जीवन के प्रति विशिष्ट गौरव का अनुभव करते थे जो जाति की भावना से कही अधिक था। ब्रिटिश द्वीपों की सीमाओं पर 'केल्टिक किनारे' के असभ्य लोग एरियन ईसाई धर्म मे नही, वरन् कैथोलिक धर्म में परिवर्तित किये गये थे। उन्होने अपने बर्बर विरासत के अनुरूप इसे ढाला और सीमा पर अरब वर्ग के अफ्रेशियाई स्टेप सीमा के बर्बरों के सामने अपनी मौलिकता बहुत अधिक मात्रा में दिखायी। मुहम्मद साहब की रचनात्मक आत्मा में यहूदी धर्म तथा ईसाई धर्म का विकिरण आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित हो गया था जो स्वयं इस्लाम के 'उच्च धर्म'.के रूप में प्रकट हुआ।

यदि हम अपनी खोज थोडी दूर तक ले जायँ तो हम देखेंगे कि अभी-अभी उल्लिखित ये धार्मिक प्रतिक्रियाएँ पहली नही थी, जो हेलेनी सभ्यता के विकिरण से आदिम जातियो मे हुई थी। अपने असली तथा पूर्ण रूप में सभी आदिम धर्म भिन्न-भिन्न रूपो मे 'उर्वर' धर्म थे। आदिम समाज मुख्य रूप से रचनात्मक शक्ति का पूजक था। यह शक्ति प्रजनन मे, तथा अनाज के उत्पादन मे दिखाई देती थी। विनाशक शक्ति की पूजा या तो नहीं थी या न्यून थी। चूँकि आदिम समाज के मानव का धर्म सदा उसकी सामाजिक दशाओ की छाया है, जब उसका सामाजिक जीवन विरोधी तथा विदेशी समाजो के सम्मुख आता है और जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, तब उसके धर्म मे क्रान्ति होती है। जब एक आदिम समाज धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक विकासोन्मुख सभ्यता के लाभप्रद प्रभावो को ग्रहण करता है, तब इस आदिम समाज को मोहक वीणा के साथ ओरफियुस की प्रभावशाली आकृति दिखायी नही देती और उसके स्थान पर नष्ट होती शक्तिशाली अल्पसख्यक की भयप्रद भद्दी आकृति अशिष्ट प्रतिकूलता के साथ सामने आती है।

इस घटना में आदिम समाज बाहरी सर्वहारा के एक अश मे परिवर्तित हो जाता है और इस अवस्था में बर्बर समुदाय के जीवन में सर्जनात्मक और विनाशक क्रियाओ का सापेक्ष रूप में एक क्रान्तिकारी विपर्यय होता है। अब युद्ध पूर्ण रूप से समुदायों का कार्य हो जाता है। जब युद्ध दैनिक कार्य और भोजन प्राप्त करने के सामान्य कार्य की अपेक्षा अधिक सरलता से बहुत अधिक उत्तेजक होने के साथ-साथ लाभप्रद हो जाता है, तब डेमीटर या एफ्रोडाइट अपने को एरेस के विरुद्ध ईश्वर की महत्तम अभिव्यक्ति के रूप में रखने की कैसे आशा कर सकता है? ईश्वर को दैवी युद्ध के नेता के रूप में पुन· गढा जाता है। हम ओलिम्पियन बहु-देवता पूजा में इस बर्बर जाति के देवी-देवताओ को पाते हैं। इनकी पूजा मिनोई सागर राज्य के एकियन बाहरी सर्वहारा में हम देख चुके हैं; हमने यह भी देखा कि ओलिम्पस के डाकू देवता के रूप में असगर्ड के निवासियो की प्रतिमूर्ति थे, जिनकी पूजा स्कैन्डेनेविया के कैथोलिक साम्राज्य के बाहरी सर्वहारा करते थे। इस प्रकार के दूसरे देवालयों की पूजा एरियन या कैथोलिक धर्म में परिवर्तित होने के पहले रोमन साम्राज्य की सुदूर यूरोपीय सीमाओ के टयुटोनी बर्बरो द्वारा होती थी। ये लुटेरे देवी-देवता अपने सैनिक बने पुजारियो के ही प्रतिबिम्ब थे। इन देवी-देवताओं की गणना रचनात्मक कार्यों में की जानी चाहिए। ये हेलेनी संसार के टयुटोनी बाहरी सर्वहारा की यशस्वी कृति समझे जाने चाहिए।

धर्म के क्षेत्र से रचनात्मक कार्यों को एकत्र करते हुए क्या हम एक बार फिर इसी दृष्टान्त से कुछ और जोड़ सकते हैं? 'उच्चधर्म' जो आन्तरिक सर्वहारा की शक्तिशाली खोज थी,

वह कला के क्षेत्र में कुख्यात ढंग से कुछ सम्बन्धित है । क्या बाहरी सर्वहारा के निम्न धर्म में तत्सम्बन्धी कलाकृतियाँ देखने के लिए मिलती हैं ?

इसका उत्तर निश्चित रूप से सकारात्मक होगा, क्योंकि हम ज्यों ही ओलिम्पियाई देवताओं का निरीक्षण करते है त्यों ही हम उन्हें होमर के महाकाव्यों में चित्रित देखते है । यह काव्य उस धर्म से उतना ही निश्चित रूप से सम्बद्ध है, जितना ग्रेगोरी का मरसिया या गोथिक वास्तु-कला मध्ययुगीन पश्चिमी कैथोलिक ईसाइयत से सम्बद्ध है । आपोनिया के ग्रीक महाकाव्य की प्रतिमूर्ति इंग्लैंड के टघुटोनी महाकाव्य मे तथा स्कैन्डेनेविया के आइसलैंड के गद्य साहित्य में दिखाई देती है । स्कैन्डेनेविया की गद्य-कथा असगार्ड के साथ संलग्न है; अंग्रेजी महाकाव्यों में जिनमे बेडवुल्फ मुख्य जीवित श्रेष्ठ रचना है वोडेन तथा उसके दैवी सामन्त उसी प्रकार संलग्न हैं, जैसा होमर का महाकाव्य ओलिम्पस के साथ । वास्तव में महाकाव्य बाहरी सर्वहारा की प्रतिक्रियाओ के अत्यन्त लाक्षणिक तथा विशिष्ट फल है जो मानवता को वसीयत के रूप में दी गयी हैं । कोई काव्य जो सभ्यता से उत्पन्न हुआ है "होमर की तीव्रता और भव्यता को न कभी पा सकता है न पायेगा ।"[१]

हमने महाकाव्य के तीन उदाहरणों का उल्लेख किया है । इस सूची को बढ़ाना तथा इसके प्रत्येक उदाहरण को उस सभ्यता के लिए बाहरी सर्वहारा की प्रतिक्रिया बताना आसान है, जिसके साथ बाह्य सर्वहारा का संघर्ष होता है । उदाहरणार्थ, चैन्सन डि रोलैण्ड सीरी सार्व-भौम राज्य के यूरोपी बाहरी सर्वहारा की कृति है, जो अर्द्ध असभ्य फ्रान्सीसी धर्म-युद्ध करने वाले अंडालूशियाई उम्मेयद खलीफो के पाइरेनियन मोरचे को तोड़कर ईसाई युग की ११वी शती में आगे बढ़े, उन्होंने एक कलाकृति को प्रोत्साहन दिया जो उस समय तक पश्चिमी संसार की सभी जन-भाषाओं में रचित काव्यों की जननी थीं । 'चैन्सन डि रोलैण्ड' ऐतिहासिक महत्ता में 'बेडवुल्फ' से उतना ही आगे था, जितना साहित्यिक महत्ता मे वह इससे पीछे है ।[२]

(५) पश्चिमी संसार के बाहरी सर्वहारा

जब हम अपने पश्चिमी संसार के और उसका सामना करने वाले आदिम समाजों के सम्पर्क के इतिहास पर आते हैं, तब हम आरम्भिक अवस्था में हेलेनीवाद के विकास की दशा के समान उस पश्चिमी ईसाई समाज को पहचान सकते हैं, जिसने स्वधर्मत्यागियों को अपने

१. सी० एस० लेविस : ए प्रिफेस टु पैराडाइज लास्ट, पृ० २२ ।

२. जहाँ तक प्रमाण उपलब्ध होते हैं श्री ट्वायनबी ने सभी सभ्यताओं के बाहरी सर्वहारा का विवेचन किया है । मैं अन्यों को छोड़ कर सीधे पश्चिमी समाज के बाहरी सर्वहारा पर उपसंहार करने की ओर बढ़ा हूँ । इस तथ्य के लिए न तो कुछ कहने की आवश्यकता है और न क्षमायाचना की । मैंने अन्य स्थलों पर भी कुछ कम तीव्रता के साथ ऐसी ही योजना का अनुसरण किया है । उदाहरणार्थ, आन्तरिक सर्वहारा के अध्याय में श्री ट्वायनबी सभी की परीक्षा करते हैं । मैंने उनमें से वर्तमान रुचि के स्वरूपों पर विचार करते हुए आधे को छोड़ दिया है ।—संपादक

जादू से आकृष्ट किया था । इनमें अत्यन्त विशिष्ट वे आरम्भिक धर्मत्यागी लोग थे जो स्कैन्डेनेविया की अकालप्रसूत सभ्यता के सदस्य थे । अन्ततः ये आरम्भिक धर्मत्यागी लोग उस सभ्यता के आध्यात्मिक शौर्य से झुकने के लिए विवश हुए, जिस सभ्यता पर सैनिक शक्ति से वे आक्रमण कर रहे थे । यह पराजय सुदूर उत्तर में उनके स्थानीय निवासस्थानो में, इनके पड़ाव से दूर आइसलैण्ड में तथा डेनला और नारमण्डी की ईसाई धरती पर इनके शिविर में हुई । समकालीन खानाबदोश मागयरों और जंगलनिवासी पोलों का धर्म-परिवर्तन वैसा ही स्वतः प्रेरित था, किन्तु आरम्भिक अवस्था में पश्चिमी विस्तार दमनकारी हिंसात्मक आक्रमणो से भी पूर्ण था, जो उत्पीड़न उससे कही अधिक था, जितना यूनानियों ने अपने पड़ोसियों के प्रति किया था । हम सैक्सनों के विरुद्ध 'शार्लेमान' का धर्मयुद्ध देखते है, और दो शतियो बाद एल्ब और ओडर के बीच स्लावो के विरुद्ध सैक्सनों का युद्ध है, और इससे भी अधिक भयंकर तेरहवी तथा चौदहवी शती का युद्ध है, जिसमे टयुटोनी सरदारों ने प्रशियनों को विसचूला के पार निकाल दिया ।

ईसाई साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर यही कहानी दुहराई जाती है । प्रथम अध्याय में रोमन मिशनरी द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से अंग्रेजों के धर्म-परिवर्तन का है, किन्तु इसका अनुसरण सुदूर पश्चिमी ईसाइयों में बलपूर्वक हुआ । जो निश्चय ६६४ ई० मे ह्विटबी की सभा (साइनोड) मे आरम्भ हुआ तथा आयरलैण्ड पर पोप की स्वीकृति के साथ इंग्लैंड के हेनरी द्वितीय के ई० ११७१ के सशस्त्र आक्रमण मे पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुँचा । यही कहानी समाप्त नही होती । बीभत्सता की ये आदतें अटलान्टिक के पार गयी और उत्तरी अमरीका के इण्डियनो में विस्तार करने मे इसका अभ्यास किया गया । बीभत्सता के ये ढग स्काटलैंड के पहाड़ो के केल्टिक किनारो तथा आयरलैण्ड के दलदलो में ग्रेट ब्रिटेन ने सीखे थे ।

आधुनिक शतियो में सम्पूर्ण धरती पर पश्चिमी सभ्यता का विस्तार-वेग इतना तीव्र था तथा इसके आदि प्रतिद्वन्द्वियो में असमानता के स्रोत इतने अधिक थे कि यह आन्दोलन अबाधित रूप मे तबतक चलता रहा जबतक यह न केवल अस्थिर अवसीमा तक ही नही पहुँचा, प्राकृतिक सीमा की अन्तिम छोर तक पहुँच गया । आदिम समाजो के पार्श्व मे पश्चिमी लोगों का संसारव्यापी मूलोच्छेदन या बलपूर्वक शासन या शोषण नियम-सा हो गया है और धर्म-परिवर्तन केवल अपवाद । वास्तव में ऐसे आदिम समाजों की गणना हम एक हाथ की उँगलियो पर कर सकते है । जिसे आधुनिक पश्चिमी समाज ने अपने साथ लिया हो । स्काटी पहाड़ी लोग हैं जो प्राचीन बर्बरों के अवशेष आधुनिक पश्चिमी समाज और मध्ययुगीन ईसाई संसार के बीच पड़े हुए हैं, न्यूजीलैंड के माओरी हैं, एन्डियन सार्वभौम राज्य के चीली के आन्तरिक बर्बर प्रान्त के 'अराओकैनियन' हैं, जिनसे स्पेन वालों ने कुव्यवहार किया क्योंकि इनकी पराजय के बाद से इन लोगो का सम्बन्ध था ।

इतिहास में सबसे बड़ा प्रमाण वह है जब जैकोबाइट (जेम्स द्वितीय तथा उसके पुत्र 'दि प्रिटेण्डर' के अनुयायी) विप्लव (१७४५) के बाद स्काटी पहाड़ी लोग इंग्लैंड में मिला लिये गये, जब इन उजले बर्बरों का अन्तिम लात चलाना निष्फल हो गया । डॉ० जान्सन या हौरेस बालपोल और उन लड़ाकू गिरोहों के बीच, जो राजकुमार चार्ली को डरबी ले गये, की सामाजिक खाई पाटना उतना कठिन नहीं था, जितना न्यूजीलैंड के यूरोपीय विस्थापितों या चीली और माओरी

या आराओकैनियो के बीच । आज राजकुमार चार्ली के पौत्र और विग पहने, पाउडर लगाये लोलैंडों[1] तथा अंग्रेजों के जिन्होंने अन्त में विजय पायी, वंशज निश्चय रूप से समान सामाजिक स्तर के हैं और यह लड़ाई अभी दो सौ साल ही पहले हुई थी । यह संघर्ष ऐसा हुआ कि ऐसी कथाएँ बन गयीं कि पहचानी नही जातीं । स्काटलैण्ड के निवासियो ने अपने को नही तो अंग्रेजों को प्रेरित किया कि स्काटलैण्ड का ऊनी चारखाना स्काटलैण्ड की राष्ट्रीय पोशाक है । उसी प्रकार जैसे इंडियन के सिर की पर लगी उनकी टोपी । और आज लोलैंड के मिठाई बनाने वाले 'एडिनबरा राक' को चारखाने से ढके डब्बे में बेचते हैं ।

ऐसी बर्बर परिसीमाएँ जो हमारे आज के पश्चिमीकृत संसार मे पायी जाती हैं, अब तक पूर्ण रूप से पश्चिमी समाज में आत्मसात् न हुए अपश्चिमी सभ्यताओं की देन है । इनमें भारत के उत्तर पश्चिम की सीमा विशेष महत्त्व की है, कमसे कम पश्चिम के स्थानीय राज्यो के नागरिको के लिए जिन्होंने विघटोन्मुख हिन्दू सभ्यता को सार्वभौम राज्य बनाने का काम अपने ऊपर ले रखा है ।

हिन्दुओ के संकटकाल में (सम्भवतः ११७५–१५७५) यह सीमा तुर्की और ईरानी लुटेरो द्वारा बार-बार तोडी गयी । एक समय इसकी सुरक्षा हिन्दू संसार के सार्वभौम राज्य को मुगल राज्य के रूप में स्थापित करके की गयी । जब मुगल राज्य समय के पूर्व ही १८ वी शती के आरम्भ में समाप्त हुआ, तब पूर्वी ईरानी रुहेला और अफगानी बर्बर भीतर घुसे । ये विदेशी सार्वभौम राज्य के विरुद्ध मराठा नेताओं की सैन्यवादी हिन्दू प्रतिक्रिया के एकमात्र शव को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे थे । जब अकबर का कार्य विदेशियो ने पुनः किया और हिन्दू सार्वभौम राज्य ब्रिटिश राज्य के रूप में पुनः स्थापित किया गया, तब उत्तर पश्चिम की सीमा की सुरक्षा सम्बन्धी वचनबद्धता सबसे अधिक महत्त्व की सिद्ध हुई । सीमा-सुरक्षा सम्बन्धी जिम्मेदारी ब्रिटिश राज्य के निर्माताओ को लेनी पड़ी थी । अनेक सीमा-नीतियाँ निर्धारित हुईं, पर उनमें से कोई भी पूर्ण रूप से सन्तोषजनक सिद्ध न हुई ।

पहला विकल्प जिसके द्वारा ब्रिटिश राज्य के निर्माताओं ने प्रयत्न किया, सम्पूर्ण पूर्वी ईरानी सीमा को जीतना तथा उसे हिन्दू संसार में मिलाना था । यह कार्य ठीक उसी तरह था जैसे मुगल राज्य अपने पूर्ण विकास पर अपने राज्य में उज़बक उत्तराधिकारी राज्यों के ओक्सस-जैक्सार्टस् के दोआबे तथा सफावी साम्राज्य के साथ पश्चिमी ईरान को मिलाने की चेष्टा की थी । यह साहसिक कार्य अलेक्जेन्डर बरनेस द्वारा १८३१ से लेकर और आगे तक चलाया गया था । इसके बाद सन् १८३८ में ब्रिटिश इडियन सेना को अफगानिस्तान मे भेजकर खतरनाक कदम उठाकर सघर्ष किया गया । किन्तु, उत्तर पश्चिमी सीमा समस्या का 'एकदलीय' शासन के रूप में समाधान इस महत्त्वाकाक्षी प्रयास का विनाशकारी अन्त हुआ । १७९९ और १८१८ के बीच सिन्ध के बेसिन के दक्षिण-पूर्व में सम्पूर्ण भारत की सफलतापूर्ण विजय के प्रथम आनन्द में ब्रिटिश राज के निर्माताओं ने अपनी शक्ति को अधिक आँका और अपने विरोधियों की शक्ति और प्रभाव को कम । इन विरोधियों की आक्रामकता ने उन उच्छृंखल बर्बर लोगो को उत्तेजित किया जिन्हें

१. लोलैंड—हालैंड, बेलजियम ।

के अधीन बनाना चाहते थे । वास्तव में ई० १८४१–२ में आक्रमण उससे भी अधिक विनाश पर समाप्त हुआ, जितना १८९६ में अबीसिनिया के पहाड़ी प्रदेश में इटालियाई विनाश में हुआ था ।

इस पहाड़ी प्रदेश पर स्थायी विजय प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा को इस प्रसिद्ध पराजय के बाद ब्रिटिश शासकों ने कभी प्रयोगात्मक रूप से जीवित नहीं किया । १८४९ ई० में पंजाब की विजय के बाद सीमा नीति की भिन्नताएँ युद्धनीतिक होने की अपेक्षा सामरिक कौशल की अधिक थीं । वस्तुतः यहाँ वैसी ही राजनीतिक विन्यास सम्बन्धी 'अवसीमा' हम देखते हैं, जैसी ईसाई युग की आरम्भिक शती में राइन और डैन्यूब से निश्चित रोमन साम्राज्य की अवसीमा थी । जब ब्रिटिश-इण्डियन अल्पसंख्यक हिन्दू आन्तरिक सर्वहारा के अनुशासन की ओर झुके और अपने बढ़ते हुए व्यर्थ के श्रम को उन्होंने समाप्त कर दिया, तब यह देखना मनोरंजक है कि इस मुक्ति में आन्तरिक सर्वहारा को उत्तर-पश्चिम की सीमा-समस्या सुलझाने में कहाँ तक समर्थ हो सकता है, जब अपने घर में वे अपने मालिक हो जायेंगे ।

यदि अब हम यह पूछे कि इतिहास की भिन्न अवस्थाओ में पश्चिमी संसार ने जो दुनिया के विभिन्न भागो में बाहरी सर्वहारा को जन्म दिया है उन्हें कविता तथा धर्म के क्षेत्र मे रचनात्मक कार्यों के लिए भी प्रेरित किया है ? तो हमे शीघ्र ही केल्टिक सीमा मे तथा स्कैण्डेनेविया में किये गये बर्बर पृष्ठ भाग के दलो के सुन्दर रचनात्मक कार्यों का स्मरण हो जाता है । ये बर्बर सभ्यताओ को जन्म देने के लिए भरसक प्रयत्न करते थे, किन्तु पश्चिम के ईसाई साम्राज्य की नवजात सभ्यता के साथ इनके संघर्ष मे ये असफल हो गये । इस अध्ययन के दूसरे सन्दर्भों मे इन सघर्षों पर पहले ही विचार किया जा चुका है । आधुनिक युग के विस्तृत पश्चिमी संसार से पैदा हुए बाहरी सर्वहारा पर हम अब विचार कर सकते है । इस विशाल क्षेत्र के सर्वेक्षण में हमे दोनो भू-खण्डों मे बर्बरो की रचनात्मक शक्ति का एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा । इन दोनों भू-खण्डो की हमें परीक्षा करनी पड़ेगी ।

काव्य के क्षेत्र में हमें 'वीर' काव्य पर ध्यान देना होगा । ये काव्य ईसाई युग की १६ वी तथा १७वी शती मे डैन्यूबी हैप्सबुर्ग राजतन्त्र की दक्षिण-पूर्वी सीमा से दूर बोसनिया के बर्बरों द्वारा रचे गये थे । यह उदाहरण मनोरजक है क्योंकि पहली दृष्टि में यह उस नियम का अपवाद दिखाई देगा कि विघटोन्मुख सभ्यता का बाहरी सर्वहारा तब तक वीर काव्य के निर्माण की प्रेरणा देने योग्य नही होता, जब तक विचाराधीन सभ्यता सार्वभौम राज्य की स्थिति से नहीं गुजरता और अन्तःकाल नही आता जिसमें बर्बर जनरेला के लिए अवसर मिलता है । लन्दन और पेरिस की दृष्टि में डैन्यूबी हैप्सबुर्ग का राजतन्त्र पश्चिमी संसार की राजनीतिक विभक्त परिस्थिति अनेक स्थानीय राज्यों में से एक के अतिरिक्त और कुछ भले ही न रहा हो, न ही इनकी प्रजा तथा अपश्चिमी पड़ोसियों और विरोधियों की दृष्टि में इस राजतन्त्र में पश्चिमी सर्वव्यापी राज्य की सभी योग्यताएँ एवं विशेषताएँ जान पड़ती थी जिनके विरोध में उन्होंने सम्पूर्ण पश्चिमी ईसाई समाज के लिए ढाल बनायी थी । पश्चिमी ईसाई समाज के सदस्यों को इसने शरण दी और उन्हें अपने विश्वव्यापी मिशन से सहायता भी की ।

बोसनियाई यूरोप महाद्वीप के बर्बरों के पीछे के दस्ते थे, जिन्हें पश्चिमी ईसाई समाज तथा

परम्परावादी ईसाई समाज की दो आक्रामक सभ्यताओं की ज्वालाओं के बीच उत्पन्न हुए असामान्य दुखद अनुभव को असाधारण रूप से पहले सहना पड़ा था। परम्परावादी ईसाई सभ्यता का विकिरण बोसनियाई लोगों तक पहले पहुँचा। इन लोगों ने उसके परम्परावादी स्वरूप को अस्वीकार किया और उन्होंने इसकी स्थापना बोगोमिलवाद के सम्प्रदायवादी रूप में स्वतः की। इस अधार्मिकता ने दोनों ईसाई सभ्यताओं का ध्यान आकृष्ट किया। इन परिस्थितियों में, जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है, मुसलिम उसमानलियो के आगमन का स्वागत किया और बोगोमिल धर्म को त्याग कर ये तुर्क हो गये। इसके बाद उसमानिया सुरक्षा में युगोस्लाविया के परिवर्तित मुसलमान निवासियो ने उसमानिया-हैप्सबुर्ग सीमा पर वही कार्य किया जो हैप्सबुर्ग की ओर युगोस्लाविया के ईसाई शरणार्थियो द्वारा उस क्षेत्र मे किया गया जो उसमानिया शासन मे चला गया था। युगोस्लाविया के दो विरोधी वर्गों का आक्रमण मे एक-सा ही कार्य था। एक ओर उसमानिया साम्राज्य था और दूसरी ओर हैप्सबुर्ग राज्यतन्त्र। उसी सीमा-युद्ध की उर्वर मिट्टी में वीर काव्य के दो स्वतन्त्र सम्प्रदाय पैदा हुए और स्पष्ट रूप में बिना एक-दूसरे पर प्रभाव डाले साथ ही पनपे। दोनो प्रकार के वीर काव्यो मे 'सर्वो-क्रोट' भाषा का प्रयोग किया गया।

धर्म के क्षेत्र में बाहरी सर्वहारा की सर्जनात्मकता के दृष्टान्त अनेक स्थानो से मिलते है, १९ वी शती मे रेड इण्डियनो के विरुद्ध यूनाइटेड स्टेट की सीमा पर के अनेक दृष्टान्त दिये जायेगे।

यह ध्यान देने की बात है कि उत्तरी अमरीका के इण्डियनो के यूरोपियन आक्रमण पर भी सर्जनात्मक धार्मिक प्रतिक्रिया रेड इण्डियनो मे होती। यह देखते हुए कि अंग्रेज अधिवासियों के प्रथम आगमन से लेकर सीयो के युद्ध (१८९०) में जब इण्डियनो ने अन्तिम सैनिक विरोध किया और जब वह कुचल दिये गये अर्थात् दो सौ अस्सी साल तक वे लड़ते ही रहे। यह भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि इण्डियनो की प्रतिक्रिया अहिंसात्मक ढग की थी। हम इण्डियनो के युद्धक दलो से ऐसी आशा करते थे कि ये या तो अपने इच्छानुसार बहुदेवतावादी धर्म इरोक्वाय ओलिम्पस या असमार्ड के रूप में निर्माण करेंगे या अपने आक्रामकों के काल्विनिस्टिक प्रोटेस्टैन्ट धर्म के विशिष्ट सैनिक तत्त्वों को स्वीकार करेंगे। परन्तु १७६२ ई० के डेलाबार के अज्ञात पैगम्बर से लेकर १८८५ ई० के करीब नेवाडा में आविर्भूत वोवोका तक ने एक-दूसरे ही प्रकार का धार्मिक उपदेश दिया। उन्होंने शान्ति का उपदेश दिया तथा अपने शिष्यो से उन तकनीकी भौतिक विकासो को त्याग देने के लिए कहा जिन्हे उन्होंने अपने श्वेत शत्रुओं[1] से बन्दूको के युद्ध में आरम्भ में पाया था। उन्होने घोषणा की कि यदि उनकी शिक्षाओं का अनुसरण किया जाता है, तो धरती के स्वर्ग में ही उन इण्डियनो को आनन्द का जीवन बिताने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इस धरती के स्वर्ग में उनका जीवन अपने पूर्वजों की आत्माओं से सम्बन्धित होगा और यह रेड इण्डियन मसीहाई राज्य टोमहाको (उत्तरी अमेरिका के रेड इण्डियनों का एक अस्त्र) से, गोली से नही, जीता जा सकता। इस प्रकार की शिक्षाओं के ग्रहण करने का क्या परिणाम हुआ हम कह नहीं

१. यह स्पष्ट रूप से भारत के स्वदेशी आन्दोलन के समान है।—सम्पादक

सकते । जिन्हें इस प्रकार की शिक्षाएँ दी गयी थीं, उन बर्बर वीरों के लिए ये शिक्षाएँ अधिक कठिन तथा ऊँची सिद्ध हुईं । किन्तु, अन्धकार से पूर्ण तथा भयानक क्षितिज पर अहिंसा के प्रकाश की झिलमिलाहट में हम आदिम मानव के हृदय में ईसाई धर्म के सामाजिक जीवन का आकर्षक दृश्य देखते हैं ।

वर्तमान समय में ऐसा जान पड़ता है कि कुछ बर्बर समाज नकशे पर शेष रह गये हैं । उनके जीवित रहने की एक मात्र सम्भावना उन अबोट्राइटो और लिथुआनियनों की नीतियों को अपनाने में है, जिन्होंने हमारे पश्चिमी विस्तार के इतिहास के मध्य अध्याय में, पहले से ही आक्रामक सभ्यता की संस्कृति को स्वेच्छा से स्वीकार कर लेने की शक्तिशाली दूरदर्शिता दिखलायी । यह आक्रामक सभ्यता उनके विरोध को रोकने में बड़ी शक्तिशाली थी । आज जो हमारे प्राचीन बर्बरों के संसार के अवशेष हैं उनमें बर्बरता के दो गढ़ घिरे हुए मौजूद हैं । उनमें से प्रत्येक में जोखिम सहने वाले बर्बरों के सैनिक सरदार शक्तिशाली प्रयत्न कर रहे है कि उस स्थिति को जो अभी बिलकुल बेकाबू नही हो गयी है, सांस्कृतिक आक्रमण से, जो सुरक्षा भी होगी बचा लें ।

पूर्वी ईरान मे यह सम्भव प्रतीत होता है कि भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा की समस्या का समाधान हो जाय । भारत अफगानिस्तान सीमा पर असभ्य बर्बरो के विरुद्ध किसी उग्र कार्य द्वारा नही, वरन् स्वेच्छा से अफगानिस्तान के पश्चिमीकरण द्वारा । क्योंकि यदि अफगानों का प्रयास सफल हो जाय तो इसका एक परिणाम यह होगा कि भारत की ओर के सैनिक दो आक्रमणो के बीच पड़ जायेंगे और इस प्रकार इनकी स्थिति अरक्षणीय हो जायेगी । अफगानिस्तान मे पश्चिमीकरण का आन्दोलन सम्राट् अमानुल्लाह (१९१९–२९) द्वारा अधिक बौद्धिक उत्साह से आरम्भ हुआ । इसके परिणामस्वरूप बादशाह ने गद्दी से हाथ धोया । किन्तु अमानुल्लाह की व्यक्तिगत असफलता से अधिक महत्त्व इसका है कि इस अवरोध के कारण आन्दोलन नही रुका । १९१९ तक पश्चिमीकरण की प्रणाली इतनी दूर तक चली गयी कि बच्चा सक्का ऐसे लुटेरो के कार्य को वे सहन नही कर सकते थे । राजा नादिर तथा उसके उत्तराधिकारियो के शासन मे पश्चिमीकरण की यह प्रणाली बराबर जारी रही ।

किन्तु अवरुद्ध बर्बरता के किले को अधिक पश्चिमीकरण करने वाले नज्द और हजाज के राजा अब्दुल अज़ीज अल साउद हैं जो राजमर्मज्ञ और सैनिक हैं । इनका जन्म देश के बाहर हुआ था । सन् १९०१ से जब ये राजनीतिक वनवास में थे इन्होने अपने को रब्बलखाली के पश्चिम से लेकर यमन के उत्तर के सेना के राज्य तक अरब का स्वामी बना लिया । बर्बरो के युद्ध के सरदार के रूप में इब्न साउद की तुलना बौद्धिक दृष्टि से विसिगोथ अतावुल्फ से हो सकती है । उन्होने आधुनिक पश्चिमी वैज्ञानिक तकनीक की शक्ति का अनुभव किया और उसके उपयोगों के प्रति अपनी निर्णायक दृष्टि दिखायी । यह दृष्टि पाताल तोड़ कुआँ, मोटर-गाड़ियाँ और वायुयानो के प्रयोग मे दिखाई दी । ये सभी मध्य अरब के स्टेप में प्रभावशाली हुए । किन्तु, इन सबसे ऊपर उन्होने दिखाया कि पश्चिमी जीवन का अनिवार्य आधार शान्ति और व्यवस्था है ।

किसी प्रकार जब अन्तिम विरोधी पश्चिमीकृत संसार के नकशे से अलग हो जायगा, तब क्या हम अपने को बधाई देंगे कि बर्बरता अन्तिम रूप से समाप्त हो गयी । बाहरी सर्वहारा की

असभ्यता का पूर्ण विनाश केवल साधारण आनन्द दे सकता है, क्योंकि इस अध्ययन में हमें विश्वास हो गया है, (यदि इस अध्ययन से कुछ लाभ है) कि अनेक सभ्यताओ के विनाश का कारण कोई बाहरी शक्ति नहीं थी, बल्कि आत्महत्या की ही प्रक्रिया थी ।

"जो हममें आन्तरिक त्रुटियाँ है हम उन्ही से धोखा खाते है ।"[१] पुराने ढंग के बर्बर उस अवान्तरभूमि से नष्ट हो गये हो जो बर्बर विरोधी सीमाओं के आगे पड़ती है और जहाँ तक भौतिक विजय हमने कर ली है । किन्तु यह विजय किसी काम की नहीं है यदि विनाश के समय ये हमारे बीच घुस आये है । क्या ऐसा नही है कि हम बर्बरो को इस प्रकार मोरचेबन्दी करते हुए पाते है ? प्राचीन सभ्यताएँ बाहरी असभ्यों द्वारा नष्ट कर दी गयी थी । 'हम स्वयं अपने बर्बर पैदा करते हैं ।'[२] क्या हम अपनी ही पीढ़ी में नही देखते कि अनेक नये बर्बरो के सैनिक दल एक देश के बाद दूसरे देश मे हमारे सामने आये और वे भी सीमाओं पर नही, हमारे ईसाई जगत् के बीच । ये फासिस्टी तथा नाजी लड़ाकू लोग बर्बरो के अतिरिक्त और क्या थे ? क्या उन्हें मह सिखाया नहीं गया कि वे उस समाज के सौतेले पुत्र हैं, जिसके हृदय से वे पैदा हुए है ? क्या उन्हें यह नही सिखाया गया कि वे पीड़ित दल के है, जिन्हे बदला लेना है तथा वे नैतिक रूप से संसार मे शक्ति के प्रयोग द्वारा अपने लिए सौर मण्डल मे स्थान पाने के अधिकारी है ? क्या यही शिक्षा बाहरी सर्वहारा के सैनिक सरदार 'जेन्सेरिक तथा अटिला' अपने बहादुरो को नही देते रहे जिन्हे संसार की लूट-पाट मे वे ले जाते थे । जो ससार अपनी ही गलती से अपनी रक्षा की शक्ति खो बैठा था । काली चमड़ी नही वरन् काली कमीज (फासिस्टी दल के लोगो की पोशाक) इटली-अबिसीनिया युद्ध मे (१९३५-६) निश्चित रूप से बर्बरता का चिह्न था, और काली कमीज वाले अधिक भयानक और अनिष्टकारक थे । ये काली कमीज वाले क्रूर थे, क्योंकि जानबूझकर उत्तराधिकार मे मिले सास्कृतिक प्रकाश के विरुद्ध पाप कर रहे थे । अपने पापो के कारण वे भयावह हो गये थे । उनके पास उत्तराधिकार मे मिली वह तकनीक थी जिसे वे परमात्मा की सेवा से हटाकर शैतान की सेवा मे लगाने के लिए स्वतन्त्र थे । किन्तु, उपसहार के लिए हम विषय को जड़ तक नही ले गये हैं, क्योंकि हमने अपने से अभी यह नही पूछा है कि किस उद्‌गम से इटली की नव-बर्बरता पैदा हुई थी ।

एक बार मुसोलिनी ने यह घोषित किया था कि मै इटली के सम्बन्ध मे वैसा ही सोचता हूँ जैसा ब्रिटिश राज्य के महान् निर्माताओ ने इग्लैंड के लिए सोचा था या जैसा महान् फ्रासीसी उपनिवेशवादियों ने फ्रास के लिए सोचा था ।[३] इसके पहले कि हम इटली के पूर्वजो के इस व्यंग्य चित्र को संक्षेप में तिरस्कृत कर दे हमे विचारना चाहिए कि यह व्यग्य चित्र उज्ज्वल चित्र हो जाये । सभ्यता के मार्ग से विचलित इटली के नये बर्बरो की घृणास्पद आकृति मे इन कुछ अधिक सम्मानित अग्रेजो की आकृति पहचानने और स्वीकार करने के लिए हम बाध्य होते हैं । ये सम्मानित अंग्रेज है, क्लाइव, ड्रेक तथा हाकिन्स ।

१. जी० मेरेडिथ : लव्ज ग्रेव ।

२. डब्ल्यू० आर० इंगे : दि आइडिया आव प्रोग्रेस, पृ० १३ ।

३. मुसोलिनी से हुए फ्रांसीसी पत्रकार ए० डि० करलिस के साक्षात्कार से १ अगस्त १९३५ के 'द टाइम्स' में उद्‌धृत ।

इस अत्यावश्यक प्रश्न पर क्या और अधिक विचार नहीं करना चाहिए ? क्या हम अपने को स्मरण नहीं दिलाते कि इस अध्याय में प्रस्तुत प्रमाणो के आधार पर शक्तिशाली अल्पसख्यक तथा बाहरी सर्वहारा के बीच के युद्धो में मूल रूप से आक्रामक शक्तिशाली अल्पसंख्यक ही पाया जाता है । हमें स्मरण रखना पड़ेगा कि सभ्यता तथा बर्बरता के संघर्ष का इतिहास करीब-करीब एकमात्र सभ्य लोगो द्वारा ही लिखा गया है । बाहरी सर्वहारा द्वारा वर्ग का यह क्लासिकी चित्र जो अपनी बर्बरतापूर्ण मारकाट को निर्दोष सभ्यता के प्रदेश में ले जाने का बना है, वह सत्य की वस्तुपरक अभिव्यक्ति नहीं है । किन्तु 'सभ्य' दल के उस आक्रोश की अभिव्यक्ति है कि उसे आक्रमण का निशाना बनाया जाता है, जिस आक्रमण का कारण वह स्वयं है ।

(६) विदेशी तथा देशी प्रेरणाएँ

क्षितिज का विस्तार

विवेचन करने के बाद, इस अध्ययन के आरम्भ में ही अंग्रेजी इतिहास से उदाहरण दिया गया था कि राष्ट्रीय राज्य का इतिहास केवल अपने मे बोधगम्य नही है । हमारी ऐसी धारणा है कि सम्बद्ध समुदायो के अध्ययन के लिए जिन्हे हम समाज कहते हैं, इन समाजो का अध्ययन आवश्यक है । दूसरे शब्दो मे, हमारी धारणा थी कि सभ्यता की जीवन-प्रणाली स्वत: निश्चित होती है किसी विदेशी सामाजिक शक्ति की प्रक्रिया के बिना ही स्वतः इसका अध्ययन किया जा सकता है तथा इसे समझा जा सकता है । सभ्यताओ के विकास और उनकी उत्पत्ति के अध्ययन से ही हमारी यह धारणा पुष्ट हुई है । सभ्यताओ के पतन और विघटन के हमारे अध्ययन का खण्डन नही होता । यद्यपि पतनोन्मुख समाज टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाता है । प्रत्येक टुकड़ पुरानी लकड़ी के ही टुकड़े होते है । बाहरी सर्वहारा भी पतनोन्मुख समाज के क्षेत्र के ही तत्त्वो से निकलते है । साथ ही साथ समाजो के विघटित टुकड़ो के सर्वेक्षण मे—और यह विदेशी सर्वहारा की ही बात नही है, आन्तरिक सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसख्या की भी बात है—हमे देशी तथा विदेशी शक्तियो पर भी विचार करना पड़ा है ।

वस्तुतः यह स्पष्ट हो चुका है कि अध्ययन की सरलता के लिए समाज की यह परिभाषा, कि वह अध्ययन का क्षेत्र है, बिना किसी प्रतिबन्ध के तभी तक स्वीकार की जा सकती है जब तक समाज विकासोन्मुख रहता है । इस परिभाषा को हम प्रतिबन्ध के साथ तब स्वीकार कर सकते हैं, जब हम विघटन की अवस्था में आते हैं । यह सत्य है कि सभ्यताओ का पतन आन्तरिक आत्मविश्वास के नष्ट होने से होता है, बाहरी आघातों से नही । यह सत्य नही है कि पतित समाज के विघटित होकर विनाश की अवस्था का बिना बाहरी शक्तियो तथा क्रियाओ के जाने हम अध्ययन कर सकते हैं । सभ्यता के विघटन के समय के इतिहास के अध्ययन के लिए 'बोधगम्य क्षेत्र' अधिक विस्तृत है । केवल एक समाज का विस्तार अध्ययन के लिए उतना नही है । इसका तात्पर्य यह है कि विघटन की प्रणाली में सामाजिक जीवन का झुकाव केवल उन तीन अंगो को अलग करने मात्र से नही होता जिनका अध्ययन हम कर चुके हैं, किन्तु विघटन की प्रणाली में सामाजिक जीवन को विदेशी तत्त्वों के योग से नवीन संगठनो के निर्माण की स्वतन्त्रता होती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि वह धरती ही हमारे पैर के नीचे से खिसक गयी है, जिस पर हम अध्ययन के आरम्भ में दृढ़ होकर खड़े थे । आरम्भ में हमने

सभ्यताओं को अपने अध्ययन के लिए चुना, क्योंकि वे अध्ययन के लिए बोधगम्य क्षेत्र जान पड़ीं जिनका अध्ययन अलग-अलग हम कर सकते थे। अब हम अपने को इस दृष्टि से दूसरी दृष्टि की ओर जाते हुए पाते हैं जिस पर हम उस समय विचार करेंगे जब हम सभ्यताओं के एक-दूसरे के सम्पर्क की परीक्षा करेंगे।

इस बीच विदेशी और देशी प्रेरणाओं के प्रभावों की तुलना करने और उनके भेद दिखाने में सुविधा होगी। ये प्रेरणाएँ उन अनेक इकाइयों के कार्यों मे दिखाई देती हैं, जिनमें सामाजिक जीवन का विघटन होता है। हम देखेंगे कि शक्तिशाली अल्पसंख्या एवं बाहरी सर्वहारा के कार्यों में विदेशी प्रेरणा मतभेद और विनाश उत्पन्न करने में समर्थ होती है जब कि आन्तरिक सर्वहारा के कार्यों मे समन्वय और सर्जन का प्रभाव डालती है।

शक्तिशाली अल्पसंख्या और बाहरी सर्वहारा

हम देख चुके है कि सार्वभौम राज्य में शक्तिशाली अल्पसंख्या होती है जो देश के समाज के लिए मूल्यवान् सेवा करती है। वे देशी साम्राज्य निर्माता बाहरी सीमा के मनुष्य हो सकते है जहाँ राजनीतिक एकता स्थापित कर वे उन्हें शान्ति स्थापित करते है। किन्तु, इससे यह नही मालूम होता कि उनकी संस्कृति विदेशी रंग है। हमारे पास ऐसे उदाहरण है जिनमें शक्तिशाली अल्पसंख्या की नैतिक पराजय इतनी तीव्र है कि इसके पहले विघटनोन्मुख समाज सार्वभौम राज्य के लिए परिपक्व हो, शक्तिशाली अल्पसंख्या का कुछ भी शेष नहीं रह जाता जिसमें साम्राज्य निर्माता के गुण हो। ऐसी स्थिति में सार्वभौम राज्य प्रदान करने का कार्य साधारणतः अपूर्ण नही रहने दिया जाता, कुछ विदेशी साम्राज्य निर्माता आ जाते है और वे आक्रान्त समाज के लिए वह कार्य करते रहे जिसे वहाँ के लोगो के हाथों होना चाहिए था।

विदेशी तथा देशी सभी सार्वभौम राज्य समान रूप से धन्यवाद और उदासीनता से स्वीकार किये जाते है यद्यपि उत्साह के साथ नही। भौतिक दृष्टि से इससे एक प्रकार सकट-काल की अवस्था से सुधार ही होता है। किन्तु ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता है, 'नया राजा' सामने आता है। 'जो जोसेफ को नही जानता' सीधी भाषा में संकट-काल और उसके आतक की स्मृति लोग भूल जाते है। वर्तमान में जब सारी सामाजिक धरती पर सार्वभौम राज्य हो जाता है, लोग ऐतिहासिक सन्दर्भ भूल जाते हैं। इस अवस्था पर देशी तथा विदेशी सार्वभौम राज्यो के भाग्य अलग-अलग हो जाते है। देशी सार्वभौम राज्य, चाहे जो भी उसके गुण हो अपनी पूजा द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य बनने लगता है और सामाजिक जीवन के ढाँचे में अधिक-से-अधिक उपयुक्त समझा जाता है। दूसरी ओर विदेशी सार्वभौम राज्य बहुत अधिक अप्रिय हो जाता है। उसकी प्रजा उसके विदेशी लक्षणों पर बहुत अधिक नाराज हो जाती है और अपनी आँखें दृढ़तापूर्वक उसकी उस लाभदायक सेवा की ओर से मूँद लेती है जिसे वे राज्यों के लिए कर चुके होते है या करते रहते है।

इस विरोधी उदाहरण में एक रोमन साम्राज्य है जिसने हेलेनी संसार को सार्वभौम राज्य दिया तथा ब्रिटिश राज्य जिसने हिन्दू सभ्यता को विदेशी सार्वभौम राज्य दिया। अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं जिनसे मालूम होता है रोमन साम्राज्य की बाद की प्रजा की साम्राज्य के प्रति कितनी भक्ति तथा प्रेम था। उस समय के बाद भी जब यह अपना कार्य समुचित दक्षता से

समाप्त कर देती है जब यह प्रत्यक्षतः नष्ट हो जाती है । ४०० ई० में सिकन्दरिया के क्लाडियन द्वारा लैटिन की षट्पदी में रचित 'डि कोन्सुलेट स्टी स्टीलिकोनिस' नामक कविता के इस अंश में कदाचित् रोमन साम्राज्य के लिए अत्यन्त प्रभावोत्पादक सम्मान दिखाया गया है—

> वह-दूसरे विजेताओ से अधिक गर्वीली थी
> अपने बन्दियो को आलिंगन करती थी
> माँ की भाँति, प्रियतमा की भाँति नही, मित्रो को दास बनाती
> अपने बाहुपाश में उसने सारे राष्ट्रो को भर लिया
> कौन आज विश्व भर के राज्यों पर शासन करता है
> और उसका (रोम का) ऋणी नही है ।[1]

यह सिद्ध करना सरल होगा कि ब्रिटिश राज अनेक दृष्टियो से बहुत ही उदार तथा रोमन साम्राज्य की अपेक्षा अधिक लाभप्रद था, किन्तु हिन्दुस्तान के किसी क्लाडियन रूपी कवि ने उसकी प्रशसा मे रचना नहीं की ।

यदि हम दूसरे विदेशी सार्वभौम राज्यो के इतिहास पर ध्यान दें तो हम उनकी प्रजा में विपरीत भावनाओ को वैसा ही उठता हुआ ज्वार देखेंगे जैसा हमने ब्रिटिश भारत में देखा है । बैबिलोनी समाज पर साइरस द्वारा आरोपित विदेशी सीरियाई सार्वभौम राज्य घृणा का ऐसा पात्र हुआ कि अस्तित्व में आने के बाद वह दो ही शती पूरी कर सका कि ई० पू० ३३१ में बैबिलोनी पुरोहित वैसे ही विदेशी विजेता मकदुनिया के सिकन्दर के हार्दिक स्वागत के लिए तैयार हो गये जैसा कि इस युग में भारत के कुछ उग्र राष्ट्रवादी किसी जापानी क्लाइव के स्वागत की योजना बनाते । ईसा की १४वी शती के प्रथम चतुर्थांश मे परम्परावादी ईसाई ससार में जिस विदेशी उसमानिया राज्य का मारमोरा सागर के एशियाई किनारे के उसमानिया राष्ट्रमण्डल के यूनानी समर्थकों ने स्वागत किया वही १८२१ ई० में राष्ट्रवादी यूनानियों की घृणा का पात्र बन गया । पाँच शतियो ने यूनानियो मे भावना का परिवर्तन कर दिया । इसके ठीक विपरीत भावना का परिवर्तन गआल मे वरसिनगेटोरिक्स के रोमन-आतक और सिडोनिअस अपोलिनेरिस के रोमन प्रेम में हुआ ।

विदेशी सस्कृति के साम्राज्य निर्माताओं द्वारा उत्पन्न घृणा का दूसरा प्रसिद्ध उदाहरण उन मंगोल विजेताओं के प्रति चीनियो की घोर घृणा का है, जिन्होंने सुदूर पूर्वी ससार में बहुत आवश्यक सार्वभौम राज्य बनाया । यह घृणा उस सहनशीलता का विचित्र विरोध जान पड़ती है जो ढाई शतियो के मांचू शासन के बाद उसी समाज ने स्वीकार किया था । इसका कारण यह है कि मांचू लोग सुदूरपूर्वी संसार के जगली थे । इनमें किसी विदेशी संस्कृति का स्पर्श नही था । जब कि मंगोलो की बर्बरता सीरियाई संस्कृति के मिलने से, जो नेस्टोरी ईसाई अग्रगामियों के लाने से कम हो गयी थी और कुछ उस उदारता के कारण, जिससे उन्होने योग्य तथा अनुभवी लोगों की सेवाओं को ग्रहण करके प्राप्त किया था । चीन ने मंगोली शासन की अप्रियता का

१. आर० ए० नाक्स का अनुवाद—सी० आर० एल फ्लेचर द्वारा—द मेकिंग आफ वेस्टर्न यूरोप, पृ० ३ । हिन्दी अनुवाद ।—अनुवादक

वास्तविक विवेचन चीनी प्रजा और परम्परावादी ईसाई सैनिकों तथा मंगोल खाकान के मुसलमान शासकों के बीच विस्फोटक सम्पर्क सम्बन्धी मार्कोपोलो के विवरण से स्पष्ट है।

यह कदाचित् सुमेरी संस्कृति का ही मिश्रण है जिसने मिस्री प्रजा के लिए हाइक्सो को असह्य बनाया जब कि लिबिया के बर्बरो का मिस्र में बाद के अनधिकारी प्रवेश बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया गया। वास्तव में हम सामान्य सामाजिक नियम बनाने का साहस इसलिए कर सकते हैं कि वे बर्बर आक्रामक जो बिना किसी विदेशी प्रभाव के आते हैं अपना भाग्य निर्माण करने में समर्थ होते है और जो जनरेला के पहले विदेशी या अधर्मी प्रभाव लिये होते हैं, उन्हें अपने को किसी-न-किसी प्रकार शुद्ध रखना पड़ता है नहीं तो या तो वे निष्कासित कर दिये जाते है या निर्मूल कर दिये जाते हैं।

अमिश्रित बर्बरो को पहले ले। आर्य, हिताइत और अरकियन में से प्रत्येक ने सभ्यता के द्वार पर रुकते हुए अपने लिए बर्बर देवस्थान का निजी रूप से आविष्कार किया और आक्रमण के बाद भी इस बर्बर उपासना पर डटे रहे। उनमें से प्रत्येक सफल हुए अज्ञान पर भी और नयी सभ्यता सस्थापित की जैसे भारतीय, हिताइत और हेलेनी और फ्रैंम, अंग्रेज, स्कैंडिनेवियाई, पोलैण्डवासी और मगयार लोग जो स्थानीय बहुदेवतावाद से पश्चिमी कैथोलिक धर्म में परिवर्तित हुए तथा पश्चिमी ईसाई साम्राज्य के निर्माण के सम्पूर्ण और पश्चिमी ईसाई समाज के मुख्य निर्माता हुए। इसके विपरीत हाइकसा जो 'सेट' के उपासक थे वे मिस्री संसार से तथा मंगोल लोग चीन से उखाड़ फेके गये।

अरब के आदिम मुसलमान हमारे नियम का अपवाद है। यहाँ हेलेनी समाज के बाहरी सर्वहारा का एक बर्बर दल था जिसे उस जनरेला मे अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई जिसके साथ ही उस समाज का विघटन हो गया यद्यपि वे सीरियाई धर्म के विद्रूप को ग्रहण किये हुए थे और उस प्रजा के मोनोफाइसाइट ईसाई धर्म को स्वीकार नही किया, जिनका देश उन्होने रोमन साम्राज्य से छीना था। जब रोमन साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशो के आक्रमण के साथ सारा ससानियाई साम्राज्य पराजित हो गया, रोमन साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यो ने, जिन्हे अरबो ने सीरियाई धरती पर स्थापित किया था, अपने को सीरियाई सार्वभौम राज्य में परिवर्तित कर दिया, जो असमय ही एक हजार साल पहले उस समय नष्ट हो गया था, जब सिकन्दर ने अकेमिनीडी को पराजित किया था। और अरबी मुसलिमो के सामने इस्लाम के लिए नया क्षितिज सामने आया।

ऐसा जान पड़ता है कि इस्लाम का इतिहास असाधारण उदाहरण है जिससे हमारी खोज का सामान्य परिणाम अमान्य नही ठहरता। सामान्य रूप मे यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि बाहरी सर्वहारा तथा शक्तिशाली अल्पसख्यक के लिए विदेशी प्रेरणा बाधक है, क्योकि उन दोनों टुकड़ों के व्यवहार में यह कुंठा तथा संघर्ष उत्पन्न करता है, जिनमें विघटनोन्मुख समाज बँट जाता है।

आन्तरिक सर्वहारा

शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा बाहरी सर्वहारा के सम्बन्ध में निकाले गये निष्कर्षों के विपरीत हम देखते हैं कि आन्तरिक सर्वहारा के लिए विदेशी प्रेरणा अभिशाप नही है, बरन् वरदान है। जिन लोगो को यह प्राप्त होती है वे अपने विजेताओ को महान् शक्ति द्वारा वश

में कर लेते हैं तथा और उस उद्देश्य को प्राप्त करते हैं, जिसके लिए वे पैदा हुए हैं। इस वक्तव्य की जाँच उन उच्चतर धर्मों तथा सार्वभौम धर्मतन्त्रों की परीक्षा से की जा सकती है जो आन्तरिक सर्वहारा के विशेष कार्य रहे हैं। इस सर्वेक्षण से हम जानते हैं कि यह शक्ति उनकी आत्मा में उपस्थित विदेशी शक्ति और उसके अनुपात की चिनगारी पर निर्भर है।

उदाहरणार्थ, ओसाइरिस की पूजा मिस्री सर्वहारा का 'उच्चतर धर्म' रहा है। इसके पहले का पता लगाया जा सकता है कि यह तम्मूज की सुमेरी पूजा की विदेशी उत्पत्ति है। हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के उच्चतर धर्मों के विभिन्न रूपो का पता हम पिछले अनेक विदेशी मूलो में निश्चित रूप से पा सकते हैं। आइसिस की पूजा मे मिस्री, सिबेले की पूजा में हिताइत, ईसाइयत तथा मिस्रवाद में सीरियाई और महायान में भारतीय प्रभाव है। इन 'उच्चतर धर्मों' में से प्रथम चार मिस्री, हिताइत तथा सीरियाई लोगों द्वारा संस्थापित किये गये थे। जो सिकन्दर की विजयों से हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा मे बलात् सम्मिलित किये गये थे। पाँचवाँ 'उच्चतर धर्म' भारतीय जनता की उत्पत्ति थी। इसे भी ईसा पूर्व दूसरी शती में उपर्युक्त पद्धति से इयुथि डेमिक बैक्ट्रिया के यूनानी राजकुमारो की भारतीय ससार में विजय द्वारा बलात् सम्मिलित किया गया था। यद्यपि गम्भीरतापूर्वक ये आन्तरिक आध्यात्मिक तत्त्व की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न है तो भी उनमे से पाँचो कम-से-कम ऊपरी दृष्टि मे मूलरूप से विदेशी हैं।

कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें समाज पर विजय प्राप्त करने का 'उच्चतर धर्म' का प्रयत्न असफल रहा है। इन दृष्टान्तो से हमारे निष्कर्ष विफल नही हो सकते। उदाहरणार्थ उसमानिया शासन मे इस्लाम के शिया सम्प्रदाय को परम्परावादी ईसाई ससार में सार्वभौम धर्म के रूप में निर्मित करने का निष्फल प्रयत्न किया गया। चीन में ऐसा ही निष्फल प्रयत्न किंग राज्यवश के अन्तिम और माचू राज्यवंश की प्रथम शती में कैथोलिक ईसाई धर्म को सार्वभौम धर्म बनाने में तथा जापान मे संकट-काल से टोकुगावा शोजुनेट के सक्रमण के समय तक किया गया। उसमानिया साम्राज्य के शिया तथा जापान के कैथोलिक धर्मावलम्बी अपनी सम्भावी आध्यात्मिक विजयो से धोखा खा गये और अपने नकली राजनीतिक उद्देश्य के लिए शोषित किये गये। सुदूर पूर्वी दर्शन और संस्कृति की परम्परागत भाषा मे विदेशी कैथोलिक धर्म के व्यवहारों के रूपान्तर के कार्य को चलाते रहने के लिए जेजुइट मिशनरी को पोपतन्त्र की अनुमति न देना ही चीन में कैथोलिकवाद की असफलता का कारण था।

हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि धर्म परिवर्तित लोगो को जीतने में विदेशी 'झलक' उच्चतर धर्म के लिए सहायक है बाधक नही। कारण खोजने के लिए दूर नही जाना होगा। उस पतनोन्मुख समाज से जिससे वह अलग हो रहा है, आन्तरिक सर्वहारा अपनी नयी अभिव्यक्ति खोजता है। और इसी तरह विदेशी चिनगारी प्राप्त होती है। उसकी नवीनता ही आकृष्ट करती है। किन्तु इसके आकर्षक हो सकने के पहले ही नये सत्य को समझना पड़ता है और जब तक अभिव्यक्ति का यह आवश्यक कार्य नही हो जाता, तब तक नवीन सत्य लोगों को आकृष्ट नही कर सकता। यदि सन्त पाल से लेकर बाद के धर्मतन्त्र पादरी स्वयं पहली चार या पाँच शतियों तक दृढ़ न होते तो रोमन साम्राज्य मे ईसाई धर्म की विजय नही हो सकती थी। ईसाई सिद्धान्त को हेलेनी दर्शन में रूपान्तरित करने, रोमन असैनिक सेवाओं के नमूने पर ईसाई धार्मिक शासन का निर्माण करने, ईसाई संस्कार-पद्धति को यूनानियों एवं रोमवासियों के गुप्त धार्मिक कृत्यों

के अनुसार ढालने तथा बहुदेवतावादी धर्म को ईसाई त्योहारों में परिवर्तित और ईसाई सन्तों के सम्प्रदायो द्वारा बहुदेवतावादी नायकों के सम्प्रदायों में स्थानान्तरित करने मे उन ईसाई पादरियों ने दृढ़ता दिखायी। यह ऐसा कार्य था जो चीन के जेजुइट मिशनरी के पोप शासन के निर्देश द्वारा जड़ से नष्ट कर दिया गया। यदि सन्त पाल के विरोधी यहूदी ईसाई सम्मेलनों और संघर्षों में विजयी होते—जैसा ईसा के शिष्यो के सिद्धान्तो तथा सन्त पाल के आरम्भिक धर्मपत्रों में वर्णित है—तो अहिंसा के धरातल पर ईसाई मिशनरियों की प्रथम चढ़ाई के बाद हेलेनी संसार का धार्मिक परिवर्तन विनाशात्मक ढंग से रोका जा सकता था।

हमारे 'उच्चतर धर्मों' में यहूदीवाद, पारसी धर्म तथा इस्लाम स्थानीय प्रेरणा है। इन तीनों धर्मों का कार्यक्षेत्र सीरियाई संसार में था और इन्होंने प्रेरणाएँ भी उसी क्षेत्र से ग्रहण की। हिन्दू धर्म भी स्पष्ट रूप से प्रेरणा तथा कार्यक्षेत्र से भारतीय था। हिन्दू धर्म तथा इस्लाम दोनो हमारे नियम के अपवाद रूप में अवश्य समझ जाने चाहिए, किन्तु यहूदी तथा पारसी धर्म अन्ततः हमारे नियम के उदाहरण है। ई० पू० आठवी से लेकर छठी शती के बीच यहूदी एव पारसी धर्म से उत्पन्न हुई सीरियाई जनता के रूप में वे विच्छृंखल लोग थे जिनकी बैबिलोनी समाज के आन्तरिक सर्वहारा में बैबिलोनी प्रभावशाली अल्पसख्यको की असीरी सेना द्वारा बलात् भरती की गयी। यह वह बैबिलोनी आक्रमण था जिसने यहूदी तथा पारसी धार्मिक प्रतिक्रियाओ का आह्वान उस सीरियाई आत्मा से किया था जिसकी कठोर परीक्षा अपेक्षित थी। इतना देखने पर हमें यहूदीवाद तथा पारसी धर्म का उन धर्मों के रूप में स्पष्ट वर्गीकरण करना पड़ता है, जिनका आरम्भ बैबिलोनी समाज के आन्तरिक सर्वहारा में सीरियाई रंगरूटों की अनिवार्य भरती द्वारा किया गया था। यहूदीवाद 'बैबिलोनिया के जल से' उत्पन्न हुआ जैसे ईसाई धर्म ने हेलेनी संसार की पाल की सभाओ में अपना रूप ग्रहण किया था।

यदि बैबिलोनी सभ्यता का विघटन वैसा ही हुआ जैसा हेलेनी सभ्यता का हुआ था और यदि ये सभ्यताएँ उन्ही अवस्थाओ से गुजरी हैं तो यहूदी तथा पारसी धर्म का जन्म तथा विकास ऐतिहासिक दृष्टि से वैसा ही है जैसी बैबिलोनिया की घटनाओं की कहानी है तथ्यतः वैसी ही हेलेनी इतिहास की घटनाएँ हैं। ऐसा ही ईसाई धर्म तथा मिथ्रवाद के जन्म तथा विकास में हुआ। बैबिलोनी इतिहास की समाप्ति समय से पूर्व हो गयी। इस तथ्य से हमारी दृष्टि बिलकुल बदल जाती है। बैबिलोनी सार्वभौम राज्य को नष्ट करने का काल्डियन प्रयास विफल हो गया और अपने आन्तरिक सर्वहारा में भरती सीरियाई रंगरूट केवल परम्परा तोड़ देने में ही समर्थ नही हुए, वरन् उन्होने बैबिलोनी विजेताओं को शारीरिक के साथ-ही-साथ आत्मिक रूप से भी बन्दी बनाकर नकशा ही बदल दिया। ईरानी लोग सीरियाई धर्म में परिवर्तित हुए, बैबिलोनी संस्कृति में नही। साइरस द्वारा निर्मित अकैमेनी साम्राज्य ने सीरियाई सार्वभौम राज्य की भूमिका अदा करने लगा। यह इस दृष्टि से हुआ कि यहूदी तथा पारसी धर्मों ने अपना वर्तमान आविर्भाव देशी प्रेरणाओं के साथ सीरियाई धर्मों के रूप में किया। अब हम देख सकते हैं कि ये धर्म अपने मूल रूप में बैबिलोनी आन्तरिक सर्वहारा के धर्म थे जिनमें सीरियाई प्रेरणा विदेशी थी।

यदि 'उच्चतर धर्म' में विदेशी प्रभाव हो तो स्पष्ट रूप से उस धर्म की प्रकृति को दो सभ्यताओं के सम्पर्कों पर ध्यान दिये बिना कभी भी नही समझा जा सकता। हम देखते हैं कि इस नियम के दो मुख्य अपवाद हैं। इन दो सभ्यताओं में से एक वह है जिसमें आन्तरिक सर्वहारा द्वारा नया

धर्म पैदा होता है तथा दूसरा वह है जिससे विदेशी प्रेरणा या प्रेरणाएँ ली जाती हैं। इस तथ्य के विचार के लिए नयी बौद्धिक प्रवृत्ति की आवश्यकता है क्योंकि हमें वह आधार ही त्याग देने की आवश्यकता है जिस पर अब तक हमारा अध्ययन स्थापित था। जहाँ तक हमने सभ्यता शब्द की व्याख्या की है हम स्वीकार कर चुके हैं कि कोई अकेली सभ्यतापूर्ण सामाजिक इकाई के रूप में अध्ययन का व्यावहारिक क्षेत्र प्रस्तुत करने में सक्षम होगी। ऐसी कोई भी सभ्यता विदेश की सीमाओ से बाहर किसी भी सामाजिक तत्त्व के रूप मे किसी विशेष समाज से पृथक् होने पर भी अध्ययन की जा सकती है। किन्तु हम स्वयं वैसे ही जाल में उलझे हुए पाते हैं जैसा इस पुस्तक के आरम्भिक पृष्ठो में उलझे थे कि पृथक् राष्ट्रीय इतिहास बोधगम्य होता है। इसके पश्चात् हमें उन सीमाओं को पार करना पड़ेगा जिनमें हम अब तक कार्य करने में समर्थ थे।

१९. सामाजिक जीवन में आत्मा का भेद

(१) आचरण, भावना और जीवन का विकल्प

जिस सामाजिक निकायों में भेद की अब तक हम परीक्षा कर रहे थे वह सामूहिक अनुभूति है, इसीलिए वह ऊपरी है । इसका महत्त्व इसलिए है कि यह आन्तरिक तथा आध्यात्मिक भेद का बाहरी चिह्न है । मानव की आत्माओ मे भेद की वृत्ति अपने अन्दर किसी उस भेद को छिपाये हुए पायी जाती है जो समाज के धरातल पर स्वतः स्पष्ट होता रहता है । समाज ही मानव का तत्सम्बन्धी क्रिया-क्षेत्र का सामान्य स्थल है और उसके उन विविध रूपो पर हम अब ध्यान देगे, जिनमें आन्तरिक भेदवृत्ति पैदा होती है ।

विघटनोन्मुख समाज के सदस्यो की आत्माओ मे भेद स्वतः अनेक रूपो मे दिखाई देता है, क्योकि प्रत्येक मे यह जीवन, भावना और आचरण की भिन्नताओ के साथ उत्पन्न होता है, जिसे हम मानव की क्रियाशीलता के लक्षण के रूप में पा चुके है, जो अपनी भूमिका सभ्यताओ की उत्पत्ति एवं विकास में अदा करता है । विघटन की अवस्था मे इनमे से प्रत्येक की क्रिया पारस्परिक विरोधात्मक तथा विभिन्नतापूर्ण रूपो मे अलग हो जाती है । इसमे चुनौती की प्रतिक्रिया दो विकल्पो का रूप धारण करती है । उनमे एक सक्रिय है और दूसरी निष्क्रिय, किन्तु इनमे से कोई भी सर्जनात्मक नही है । उस आत्मा के लिए इतनी ही स्वतन्त्रता है कि निष्क्रिय एव सक्रिय विकल्पो के बीच केवल एक को चुन ले । जो सामाजिक विघटन के दुखान्त नाटक मे अपनी सर्जनात्मक क्रिया के लिए अवसर (यद्यपि क्षमता को नही) खो चुकी है । विघटन की प्रणाली जैसे-जैसे कार्य करती रहती है यह विकल्प अपनी सीमा मे अधिक दृढ़, अपने रास्ते से विचलित होने में अधिक तीव्र और उसके परिणामो मे महत्त्वपूर्ण हो जाता है । यह कहना पड़ता है कि आत्मा मे भेद का आध्यात्मिक अनुभव गत्यात्मक आन्दोलन है, स्थैतिक नही ।

व्यक्तिगत आचरण के दो मार्ग है जो सर्जनात्मक शक्ति के अभ्यास के लिए विकल्प है । ये दोनो आत्माभिव्यक्ति का प्रयत्न करते है । निष्क्रिय प्रयत्न समर्पण मे होता है, जिसमे आत्मा अपने को छोड देती है, इस विश्वास पर कि वह अपनी इच्छाओं और अनिच्छाओ पर बन्धन न लगाकर प्रकृति के अनुसार रहेगी तथा वह रहस्यपूर्ण देवी से सर्जनात्मकता का मूल्यवान् उपहार फिर पा जायेगी जिसे वह जानती है कि खो जायेगा । सक्रियता का विकल्प आत्म-निग्रह का प्रयास है, जिसमें आत्मा नियन्त्रित होती है, और अपने स्वाभाविक आवेगों को मर्यादित रखती है । ऐसा करने मे उसे दूसरा विश्वास है कि प्रकृति क्रियाशीलता में बाधक है, वह क्रियाशीलता का उद्गम नहीं है । और प्रकृति पर अधिकार करना ही खोई हुई मन:शक्ति की सर्जनात्मकता को पुनः प्राप्त करना है ।

इस प्रकार सामाजिक आचरण के दो मार्ग है, जो उन सर्जनात्मक व्यक्तियों के अनुकरणों के विकल्प है जिन्हें हमने खतरनाक होने पर भी सामाजिक विकास के लिए सरल मार्ग समझा

है। अनुकरणों के ये दोनों विकल्प उस व्यूह से अलग करने का प्रयत्न है जो 'सामाजिक अभ्यास' में असफल हो चुका है। सामाजिक गतिरोध को तोड़ने का यह निष्क्रिय प्रयत्न भगदड का रूप ले लेता है। सैनिक व्याकुलता के साथ अनुभव करता है कि टुकड़ी अपनी मर्यादा खो चुकी है जो अब तक अपने मनोबल दृढ़ किये थी। इस अवस्था मे उसका ऐसा विश्वास हो जाता है कि वह अपने सैनिक कर्तव्यों से मुक्त कर दिया गया है। इस निम्न मनोवृत्ति मे वह अपने साथियो को मँझधार में छोड़कर अपनी सुरक्षा की व्यर्थ की आशा में श्रेणी से पीछे की ओर भागता है। इसी कठिन परीक्षा का सामना करने का एक दूसरा विकल्प है जिसे बलिदान कहते है। वास्तव में शहीद वह सैनिक है जो कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी पंक्ति से आगे बढ़ जाता है। जब कि सामान्य परिस्थिति मे कर्तव्य की माँग है कि सैनिक को अपनी जान की जोखिम वही तक उठानी चाहिए जहाँ तक बड़े अफसरो के आदेशो के पालन के लिए आवश्यक हो। शहीद अपने आदर्श के पालन का प्रसाद प्राप्त करने के लिए मृत्यु का आलिंगन करता है।

जब हम आचरण के धरातल से भावना की ओर बढते हैं, तब हमें व्यक्तिगत भावना के दो मार्गों पर ध्यान देना चाहिए, जो जीवन-शक्ति के उस आन्दोलन के विपरीत विकल्प है जिसमे विकास की प्रवृत्ति प्रकट होती है। ये दोनों अनुभूतियाँ वे वेदनापूर्ण चेतनाएँ हैं जो उन पाशव शक्तियों से भाग जाने में प्रकट होती हैं जो आक्रामक हो गयी हैं और जिन्होने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। इस क्रमबद्ध और निरन्तर नैतिक पराजय की चेतना की निष्क्रिय अभिव्यक्ति टाल-मटोल में है। अपने वातावरण को नियंत्रित करने की असफलता के ज्ञान से पराजित आत्मा दुर्बल हो जाती है। यह विश्वास करने लगती है कि सारा विश्व और आत्मा भी उस शक्ति की कृपा पर है, जो उतनी ही अविवेकी है जितनी अजेय जो देवत्वहीन देवी है दोहरे मुख वाली जिसका नाम है, या जिसे 'आवश्यकता' के नाम से पुकारा जाता है। थामस हार्डी के 'डाइनास्ट्स' के कोरसों में देवियो के इस जोडे का साहित्यिक रूप दिया गया है। वैकल्पिक रूप से जो नैतिक पतन पराजित आत्मा को त्याग देता है, आत्मा को नियंत्रित नही कर सकता। इस दृष्टि से टालमटोल की जगह पाप की भावना है।

हमे सामाजिक भावना के दो मार्गों को भी देखना है जो उस ज्ञान के विकल्प हैं जो सभ्यताओ के विकास के अन्तर की वस्तुपरक प्रक्रिया के आत्मपरक रूप हैं। ये दोनो भावनाएँ रूप (फार्म) का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकी। यद्यपि चुनौती का सामना करने में वे एक-दूसरे के नितान्त विपरीत हैं। निष्क्रिय प्रतिक्रिया संकीर्णता की वह भावना है जिसमे आत्मा स्वयं रूपान्तरित होने के लिए आगे बढती है। भाषा, साहित्य और कला के माध्यम में यह संकीर्णता की भावना देश भाषा (लिंगुआ फ्रांका) के रूप में प्रकट होती है और उसी प्रकार साहित्य, चित्रकला, मूर्ति-कला और वास्तुकला को मानक रूप देने में प्रकट होती है। यही संकीर्णता दर्शन और धर्म के क्षेत्र में संहतिवाद को पैदा करती है। सक्रिय प्रतिक्रिया जीवन के उस रूप को नष्ट करती है जो स्थानीय और नश्वर होती है। सक्रिय प्रतिक्रिया का आह्वान जीवन की दूसरी शैली का अनुसरण करती है जो विश्वव्यापी और शाश्वत है। जो सर्वव्यापी है, जो सब जगह है, जो पूर्ण है। यह सक्रिय प्रतिक्रिया एकता की भावना को जाग्रत करती है, जो ज्यों-ज्यो मानवता को एकता का विस्तार होता है, मानव की एकता से सृष्टि के द्वारा ईश्वर की एकता को पहुँचती है।

यदि हम तीसरी बात में जीवन के धरातल पर आयें तो हमें पुन. वैकल्पिक प्रतिक्रियाओं के दो जोड़े दिखेंगे । किन्तु, इस धरातल पर चित्र पिछले नमूने से तीन दृष्टियो से भिन्न है । पहली बात यह है कि विकास का मुख्य लक्षण एक ओर की गति है, उसके स्थान पर जो विकल्प होता है, वह गति का स्थान नहीं लेता, गति में परिवर्तन करता है । दूसरी बात यह है कि विकल्पों के जोड़े उसी एक गति के भिन्न रूप होते हैं । इस एक मात्र गति को हम ब्रह्माण्ड से सूक्ष्म जगत् की ओर की गति का क्षेत्र कह सकते हैं । तीसरी बात यह है कि दोनो जोड़ो मे इतना अन्तर है कि उनके दोहरे होने का कारण स्पष्ट हो जाता है । एक जोड़े मे प्रतिक्रिया हिंसात्मक है और दूसरे में अहिंसात्मक । हिंसात्मक जोड़े मे निष्क्रिय प्रतिक्रिया को पुरातनवाद कहा जा सकता है, और सक्रिय प्रतिक्रिया को भविष्यद्वाद । अहिंसात्मक जोडे में निष्क्रियता को अलग होने तथा सक्रियता को रूपान्तरण कहा जा सकता है ।

पुरातनवाद और भविष्यद्वाद समय के आयाम मे विकल्प मात्र प्रयत्न हैं । यह उस कार्य-क्षेत्र की एक आध्यात्मिक धरातल से दूसरे धरातल की ओर ले जाने के परिवर्तन का विकल्प है, जो गतिशीलता की विशेषता है । दोनो मे, ब्रह्माण्ड के स्थान पर सूक्ष्म जगत् में रहने का प्रयत्न छोड़ दिया जाता है और यूटोपिया की खोज की जाती है—मान लीजिए, वास्तविक जीवन मे वह मिल भी जाय—और आध्यात्मिकता के देश मे जाने की कठोरता का सामना नही किया जाता । यह यूटोपिया—आदर्शलोक—'परलोक' के स्थान पर बनाया गया । किन्तु यह परलोक छिछला और असन्तोषदायक है क्योंकि वह वर्तमान अवस्था मे ब्रह्माण्ड के नकारात्मक होने की भावना है । आत्मा वह कार्य करना चाहती है, जिसकी उसे विघटित समाज की वर्तमान अवस्था से ऐसे लक्ष्य की ओर गतिशील होने के लिए आवश्यकता होती है, जो साधारण तौर पर वही समाज है जो कभी अतीत में रहा है या किसी समय भविष्य मे बन सकता है ।

पुरातनवाद की परिभाषा समकालीन सर्जनात्मक व्यक्तियो के अनुकरणो को छोड़कर कबीलों के पूर्वजो का अनुकरण करना कहा जा सकता है । अर्थात् इसे सभ्यता की गत्यात्मक क्रिया से हटकर स्थैतिक दशा मे आना कहा जा सकता है जिसमे आदिम मानव-समाज आज दिखाई पडता है । इसकी परिभाषा यह भी की जा सकती है कि यह बलपूर्वक परिवर्तन को रोकने का प्रयत्न है जो यदि सफल हुआ तो सामाजिक पापो की उत्पत्ति है । तीसरे उस पतित और विघटित समाज को स्थिर करने की चेष्टा है, जिसे हमने दूसरे सन्दर्भ में यूटोपिया ऐसी पुस्तकों के लेखको का सामान्य लक्ष्य पाया है । इसी भाषा मे भविष्यद्वाद की परिभाषा, यह कर सकते है कि किसी के अनुकरण को न स्वीकार किया जाय तथा परिवर्तन को शक्तिशाली ढंग से पूरा किया जाय और ये प्रयत्न यदि सफल हो तो ऐसी सामाजिक क्रान्तियाँ हो जिनसे ऐसी प्रतिक्रिया हो कि अपना ही उद्देश्य सफल न हो ।

जिनका विश्वास इनमे से किसी विकल्प पर होता है, जो कार्य-क्षेत्र ब्रह्माण्ड से सूक्ष्म जगत् की ओर ले जाता है, उनके लिए सामान्य दुर्भाग्य बैठा रहता है । अपने विकल्प मे सरल मार्ग चुनने के कारण ये पराजित लोग अपने को उस हिंसात्मक उपसंहार से दण्डित करते है जो उनके लिए निश्चित है, क्योंकि वे ऐसा करना चाहते है, जो प्रकृति के विरुद्ध है । आन्तरिक जीवन की खोज कठिन हो सकती है, परन्तु असम्भव नही है । किन्तु जो आत्मा बाहरी जीवन बिता रही है, उसके लिए यह कठिन है कि वर्तमान की सदा प्रवाहित धारा मे से निकल कर अतीत की ओर

छलाँग मार सके या भविष्य की ओर जा सके । पुरातनवादी तथा भविष्यद्‌वादी दोनों आदर्श हैं और आदर्श होने के कारण कही नही है । इन दो मोहित करने वालों को जो वर्तमान में नही हैं, पहले ही समझा जा सकता है कि उनमे से किसी ओर जाना संकट उपस्थित करना है, जिसके साथ हिंसा अनिवार्य है और जो ओषधि नही है ।

अपने दुखद उत्कर्ष में भविष्यद्‌वाद पैशाचिकता के रूप में प्रकट होता है ।

"इस विश्वास का सार यह है कि संसार की व्यवस्था पाप और झूठ है । अच्छाई और सच्चाई उत्पीड़ित विद्रोही है । यह विश्वास अनेक ईसाई सन्तो, शहीदो, विशेषतः एपोकेलिप्स[1] के लेखक का है । किन्तु हमे ध्यान देना चाहिए कि करीब-करीब सभी महान् नैतिक दार्शनिको के उपदेश इसके घोर विरोधी है । अफलातून, अरस्तू और स्टोइक, सन्त आगस्टाइन, सन्त थामस एक्वीनास, कान्ट और जे० एस० मिल, काम्टे तथा टी० एच० ग्रीन, सभी तर्क देते है कि विश्व मे कोई दैवी व्यवस्था और क्रमबद्धता है : अच्छाई एक स्वरता मे है और बुराई उसके विरुद्ध असंगति में है । मै देखता हूँ कि ज्ञानवादी सम्प्रदायो मे एक हिपोलाइट्स चर्च के पादरी ने शैतान की परिभाषा यह बतायी है कि वह "संसार की व्यवस्था के विरुद्ध कार्य करने वाली शक्ति है" जो विद्रोही या विरोधी है जो सम्पूर्ण की इच्छा के विरुद्ध कार्य करता है तथा वह उसी समुदाय की अवहेलना करने की चेष्टा करता है जिसका वह सदस्य है ।"[2]

क्रान्ति की भावना का परिणाम उन सभी स्त्रियो और पुरुषों को मालूम है जो स्वयं क्रान्तिकारी नही है, इस आध्यात्मिक नियम की क्रिया के ऐतिहासिक दृष्टान्तों को खोजना कठिन नही है ।

उदाहरणार्थ, सीरियाई समाज मे भविष्यद्‌वाद का मसीहाई रूप प्रथम बार अहिंसात्मक मार्ग पर चलता हुआ दिखाई दिया । असीरियाई सैनिक आक्रमण के विरुद्ध, अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने के लिए भीषण प्रयत्न करने के बजाय इसरायल निवासियो ने उस समय राजनीतिक दासता मे अपनी गर्दन झुका दी और अपनी सारी राजनीतिक सम्पत्ति दुखी होकर समर्पित कर दी, इस आशा से कि भविष्य में कोई त्राता-राजा आयेगा जो गिरे राष्ट्र को फिर ऊँचा उठायेगा । जब हम मसीहाई आशा के इतिहास का पता यहूदी समुदाय में लगाते हैं तब हम देखते है कि ५८६ ई० पू० से लेकर चार सौ वर्षों से भी अधिक तक यह अहिसात्मक ढंग से कार्य करता रहा । उस समय से जब यहूदियों को नबुकद्नजार बैबिलोनिया में बन्दी बनाकर ले गया था और १८६ ई० पू० तक जब एटिओकस एपिफेनीज द्वारा हेलेनी उत्पीड़न के वे शिकार हुए विश्वासपूर्ण और सुखद सांसारिक भविष्य और अतीव दुखपूर्ण सांसारिक वर्तमान के बीच असंगति के कारण वे अन्त में हिंसात्मक हो गये । 'एलीजर' तथा 'सेवेन' भाइयो के आत्मोत्सर्ग का अनुसरण जूडास मैकावियस के सशस्त्र विद्रोह द्वारा दो वर्षों में हुआ । अधिक धर्मोन्मत्त सैन्य-वादी यहूदियों की पद्धति का मैकाबीस ने आरम्भ किया । गैलिली के असंख्य यहूदी तथा थिपुडेस भी इसी प्रकार के थे जिनकी हिंसा ई० ६६–७० और ई० ११५–१७ तथा ई० १३२–५ की पाशव यहूदी क्रान्ति में भयानक पराकाष्ठा पर पहुँची ।

१. संत जान को जो इलहाम हुआ था ।
२. गिलबर्ट मरे : 'सेटानिजम् एण्ड दि वर्ल्ड आर्डर, एसे और एड्रेस, पृ० २०३

भविष्यवाद का प्रतिशोध जिसका यह क्लासिकी उदाहरण है अज्ञात नहीं है। किन्तु यह और भी आश्चर्य की बात है कि पुरातनवाद, जो विरोधी प्रतिक्रिया है उसके अन्त मे भी इसी प्रकार का प्रतिशोध देखने में आता है। यह विरोधाभास-सा लगता है कि इस पुरोगामी प्रक्रिया का परिणाम भी हिंसात्मक ढंग का होता है। किन्तु ऐतिहासिक तथ्य यही बताते हैं।

हेलेनी समाज के राजनीतिक विघटन के इतिहास में पुरातनवादी प्रथम राजमर्मज्ञ स्पार्टा में राजा एजीस चतुर्थ और रोम मे जनरक्षक टाइबीरियस ग्रेकस थे। दोनो असामान्य चेतना और सज्जनता के व्यक्ति थे। दोनो ने सामाजिक भूलो को सुधारने का कार्य किया। इस विश्वास से कि पतन के पहले के स्वर्णयुग का कोई विधान था उसी को वे पुनःस्थापित करना चाहते थे। उनका उद्देश्य था एकरसता की पुन.स्थापना। फिर भी अनिवार्य रूप से वे हिंसा की ओर गये क्योकि उनकी पुरातनवादी नीति सामाजिक जीवन की धारा के विपरीत प्रयत्न थी। उनकी निजी नम्रता उस हिंसा के हिमानी वेग को नही रोक सकी, जिसे उन्होने अनजान मे गति प्रदान कर दी थी। वे उस प्रतिहिंसा के सघर्ष में चरम सीमा पर जाने की अपेक्षा आत्म-बलिदान के लिए तत्पर हो गये जो हिंसा के विरुद्ध विवश होकर उभाड़ दी गयी थी। उनके आत्मबलिदान से केवल एक उत्तराधिकारी को उनका कार्य आगे बढाने की प्रेरणा मिली और क्रूर हिंसा द्वारा उसे सफलता मिली। इस हिंसा मे शहीद स्वय हतोत्साहित दिखायी दिये। अहिंसक राजा एजीस चतुर्थ के बाद हिंसात्मक राजा क्लिपोमिनीस तृतीय आया और अहिंसात्मक प्रजा-रक्षक टाइबीरियस ग्रैकस के बाद हिंसात्मक भाई गैअस आया। दोनो की कहानी का अन्त यही नही था। इन दोनो अहिंसक पुरातनवादियो के कारण हिंसा की बाढ़ उभड़ आयी। यह बाढ तब तक शान्त नही हुई जब तक इसने उन मण्डलो के सम्पूर्ण ढाँचे को बहा नही दिया जिनमें उन्होने अपनी सुरक्षा करने की कोशिश की थी।

यदि हम अब अपने हेलेनी और सीरियाई उदाहरणो के, उनके इतिहासो के दूसरे अध्यायो पर, ध्यान दे तो हम देखेगे कि एक ओर पुरातनवादियो ने, दूसरी ओर भविष्यवादियो ने हिंसा की जो उच्छृखलता उत्पन्न कर दी थी, वह आश्चर्यजनक ढंग से उसी अहिंसा के पुनरागमनद्वारा कम हुई जिसे हिंसा की बाढ़ ने डुबो दिया था और समाप्त कर दिया था। जैसा हम देख चुके हैं, हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यक के इतिहास मे ई० पू० की अन्तिम दो शतियो में क्रूरो के गिरोह के बाद सजग तथा योग्य सार्वजनिक कार्यकर्ता उत्पन्न हुए, जिन्होने सार्वभौम राज्य का संगठन किया और उसकी रक्षा की। इसी समय हिंसात्मक पुरातनवादी सुधारकों के उत्तराधिकारी अभिजात दार्शनिको के रूप मे बदल गये। ये अभिजात दार्शनिक एरिया, कैसिनापीटस, थ्रेसिया पीटस, सेनेका, हेलवीडिअस प्रिसकस थे, जिन्होने जनता की भलाई के लिए भी अपनी वंशपरम्परा के प्रभाव का प्रयोग नही किया और यहाँतक आत्मत्याग किया कि निरकुश सम्राटों की आज्ञा से अपनी आत्महत्या तक कर दी। हेलेनी ससार के आन्तरिक सर्वहारा के सीरियाई भाग में ठीक इसी प्रकार इसी संसार में 'मकीबियाई सेना की मसीहाई राज्य' की स्थापना की चेष्टा नितान्त असफल हो गयी और उसके बाद यहूदियो के उस राजा की विजय हुई जिसका राज्य अलौकिक था। दूसरी पीढ़ी में यहूदी सैन्यवादी उत्साहियों की बर्बरतापूर्ण वीरता जब विनाश पर थी, उस समय उसकी संरक्षा ऊँचे वीरतापूर्ण अहिंसापूर्ण ढग से रब्बी जोहानन बिन जक्काई ने की और यहूदी जेलटो से इसलिए अलग हुआ था कि युद्ध के बाहर अपनी शिक्षा को जारी रख

सके । जब अनिवार्य विनाश का समाचार उनके पास लाया गया और समाचार लाने वाला शिष्य दारुण दुख से चिल्लाया,—'हम लोगो पर वज्र गिरा है, क्योंकि वह स्थान नष्ट हो गया, जहाँ हम इसरायल के पापों के लिए आराधना करते थे ।' स्वामी ने उत्तर दिया—'मेरे बेटे, इसके लिए दुखी मत हो । हमारे पास आराधना का एक और ढग है, वह है दया का दान । यह लिखा भी गया है, "मैं दया की इच्छा करता हूँ । बलिदान की नही ।"

इन दोनों विषयों में हिंसा का आवेग जो जान पड़ता था कि राह की सभी वस्तुओ को बहा ले जायगा, कैसे रुका और शान्त हुआ । दोनो अवस्थाओ मे इस आश्चर्यजनक परिवर्तन का कारण जीवन के ढंग का परिवर्तन है । हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यक के रोमन भाग की आत्माओं मे पुरातनवाद के आदर्श के स्थान पर अनासक्ति की भावना थी । हेलेनी आन्तरिक सर्वहारा के यहूदी भाग की आत्माओ मे भविष्यवाद के आदर्श को हटाकर ईसा का आदर्श स्थापित किया गया ।

हम कदाचित् इन दो अहिंसात्मक व्यक्तियों के जीवन के गुणो को उसी दृष्टि से समझ सकते हैं जैसे उनकी उत्पत्ति हुई थी, यदि हम एक विख्यात धर्म-परिवर्तित व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा जीवन को देखें। उदाहरणार्थ रोमन पुरातनवादी केटोमाइनर जो स्टोइक दार्शनिक हो गया था तथा यहूदी भविष्यवादी साइमन बार जोनास हैं जो ईसा के शिष्य पीटर हुए । इन दोनो महापुरुषो मे एक धार्मिक अन्धविश्वास था, जिसने उनकी शक्तियो को गलत रास्ता दिखाकर उनके बड़प्पन को धुंधला कर दिया था । जब तक वे अपनी शक्तियो को गलत राह पर यूटोपिया—(काल्पनिक आदर्श) के फेर मे पड़े हुए थे, जिसे उन्होने उचित समझा था । और प्रत्येक का जब धर्म-परिवर्तन हुआ उनको इतने दिनो की चकित और भ्रमित आत्माओ को पता चला कि उसमे कितनी शक्ति है ।

ऐसे काल्पनिक रोमन राजतन्त्र की कल्पना का समर्थन करने के कारण केटो हास्यास्पद-सा हो गया था । ऐसी पीढ़ी की राजनीति मे वह बराबर छाया का पीछा करता रहा और वास्तविकता से अलग रहा । जिस रूप मे उसे राजनीति मिली उसने स्वीकार नही किया । अन्त मे जब उसे घरेलू युद्ध मे सम्मिलित होना पड़ा, जिसके लिए वह उत्तरदायी था, यद्यपि उसने इसे स्वीकार नही किया, उसकी राजनीतिक कल्पना चूर हो गयी क्योंकि जो शासन उनके उन सहयोगियो के विजय के बाद होता, वह कम-से-कम केटो के पुरातनवादी आदर्शों के उतना ही प्रतिकूल होता जितना, अन्त मे, विजयी सीजर का अधिनायकवाद । इस द्विविधा मे सनकी राजनीतिक को स्टोइक दार्शनिको ने मूर्खता के दोष से बचा लिया । जो व्यक्ति पुरातनवाद मे अपना जीवन बिता रहा था उसे स्टोइक के रूप में इतनी अच्छी मृत्यु मिली कि अन्त मे उसने सीजर तथा सीजर के बाद एक शती से भी अधिक तक उसके उत्तराधिकारियों को इतना कष्ट दिया कि कोई भी रिपब्लिकन दल इतना कष्ट नही दे सकता था । केटो के अन्तिम दिनों की कहानी ने अपने समकालीनो पर इतना प्रभाव डाला जो आज भी प्लूटार्क का कोई भी पाठक पढ़ सकता है । अपनी प्रतिभा से सीजर ने उस आघात की गम्भीरता का अनुभव कर लिया था जो उसके विरोधी स्टोइक की मृत्यु के कारण राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के रूप मे हुई थी और जिस पर उसने कभी गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया था और जब वह गृहयुद्ध की आग बुझा कर नये सिरे से एक संसार बना रहा था इस विजयी अधिनायक ने केटो की तलवार का उत्तर अपनी कलम से

दिया । यह अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अच्छी तरह जानता था कि जो आक्रमण सेना से हटाकर दार्शनिक स्तर पर लाया गया था, और जिसके फलस्वरूप केटो ने स्वयं अपने हृदय में तलवार भोंकी, उसका उत्तर कलम से ही दिया जा सकता है । फिर भी सीजर अपने बैरी को नष्ट करने में असफल रहा, जिसने चलते-चलाते यह आघात किया था । केटो की मृत्यु ने सीजरवाद के विरुद्ध नये दार्शनिक सम्प्रदाय को जन्म दिया । सीजरवाद के विरोधी अपने संस्थापक के उदाहरण के अनुसार अपने को नष्ट करके नये अत्याचार से मुक्त हुए । क्योंकि इस स्थिति को न वे स्वीकार कर सकते थे और न इसको सुधार सकते थे ।

पुरातनवाद से अनासक्ति का परिवर्तन विस्तृत रूप से मार्क्स ब्रूटस की कहानी में वर्णित है । यह कहानी प्लूटार्क द्वारा कही गयी थी तथा शेक्सपीयर द्वारा दुहरायी गयी । ब्रूटस का विवाह केटो की पुत्री से हुआ था । वह जुलियस सीजर की मृत्यु का भी साझीदार था जो हिंसात्मक पुरातनवाद का ही कार्य था । तिस पर भी हम ऐसा सोचते हैं कि हत्या के पहले उसे सन्देह था कि मैं ठीक रास्ते पर हूँ या नही । हत्या का परिणाम देख लेने पर उसे और भी सन्देह हो गया । फिलिप के युद्ध के बाद उन अन्तिम शब्दो में, जिसे शेक्सपीयर ने उसके मुख से कहलाया है, उसने केटो वाले समाधान को स्वीकार किया जिसकी वह पहले निन्दा कर चुका था । आत्महत्या करते समय वह कहता है--

सीजर ! अब तुम शान्त हो जाओ,

मैंने बहुत प्रसन्नता से तुम्हे नही मारा है ।

पीटर का भविष्यवाद वैसा ही अनुपयुक्त मालूम पड़ा जैसा केटो का पुरातनवाद । वह ईसा का पहला शिष्य था जिसने उसे मसीहा के रूप में माना । उसने अपने स्वामी के इस इलहाम का भी विरोध किया कि मसीहाई राज्य साइरस के ईरानी विश्व-साम्राज्य का यहूदी सस्करण नही है । और अपने निश्चित विश्वास के पुरस्कार के रूप में विशेष आशीर्वाद भी प्राप्त किया और इस कारण अपने इस विश्वास के लिए कि उसके स्वामी की राज्य की कल्पना शिष्य की ही कल्पना के अनुसार होनी चाहिए, तीव्र भर्त्सना भी सहन करनी पड़ी । अर्थात्-- "शैतान, मेरे पीछे जाओ । तुम मेरे लिए अभिशाप हो । ईश्वर की वस्तुओ की तुम प्रशसा नही करते, बल्कि मानवी वस्तुओ की प्रशसा करते हो ।"

यहाँ तक कि जब पीटर की भूले उसके स्वामी के भयानक धिक्कार के कारण उसकी आँखो के सामने आयी शिक्षा का इतना कम प्रभाव हुआ कि वह दूसरी परीक्षा मे पुनः असफल हो गया । जब वह रूपान्तरण का तीन मे से एक साक्षी हुआ, तब उसने देखा कि मूसा तथा इलियास उसके स्वामी की बगल मे खड़े हैं । और यह एक सकेत था । इस दृश्य का अर्थ गलत समझकर उसने शिविर का केन्द्र स्थापित किया (तीन खेमे बनाकर) जैसा बन मे गैलिली के यहूदियो और थियुडासों ने उसके बहुत पहले ही स्थापित किया था जब रोमन अधिकारियो को यह सूचना मिल गयी और उन्हे तितर-बितर करने के लिए अपनी सेना भेज दी । इस असगत ध्वनि को सुनकर दृश्य लोप हो गया, यह चेतावनी देते हुए कि मसीहा ने जो स्वयं राह दिखायी है, उसे स्वीकार करना चाहिए। इस दूसरी शिक्षा ने भी पीटर की आँखे नही खोलीं यहाँ तक कि प्रभु के जीवन के चरम उत्कर्ष पर जब जो कुछ प्रभु ने कहा था सत्य उतरता जा रहा था--यह कट्टर

भविष्यवादी गेथ्समैन के बाग में लड़ने के लिए तैयार हो गया और हो सकता है कि बाद में उसी संध्या को अपने प्रभु के प्रति विश्वासघात उसके मस्तिष्क की उलझन का परिणाम रहा हो जो भविष्यवाद पर विश्वास हट जाने के कारण और उसके बदले किसी बात पर विश्वास न होने के कारण उत्पन्न हुई हो।

अपने जीवन के इस सर्वोच्च अनुभव के बाद भी जब ईसा को शूली पर चढ़ाया जाना, उनका पुनरुज्जीवन और आरोहण ने अन्ततः उसे बता दिया था कि ईसा का राज्य इस संसार का राज्य नही है, पीटर का फिर भी विश्वास था कि इस रूपान्तरित राज्य में यहूदियो के लिए ही मताधिकार होना चाहिए, जैसा भविष्यवादी मसीहाई आदर्शलोक मे होगा। अर्थात् एक ऐसा समाज जिसने स्वर्ग में ईश्वर के राज्य को मान लिया था पृथ्वी पर इस प्रकार सीमित कर दिया जाता जिसमे एक के अतिरिक्त और सभी ईश्वर की सन्तान बहिष्कृत होती। 'अपासिल्स के एक्टो' के एक अन्तिम दृश्य में जिसमें पीटर आता है वह विरोध करता है जो स्वर्ग से उतरा है। फिर भी पीटर कहानी मे पाल को समर्थको मे तब तक स्थान नही देता, जब तक कथा के अनुसार वह बात समझ नही लेता जो फरीसी (यहूदियो की एक शाखा) पाल ने क्षण भर मे आध्यात्मिक अनुमति द्वारा लिया था। पीटर की प्रबुद्धता का कार्य तब पूरा हुआ जब ऊपरी झाँकी के बाद कारनीलियस के सन्देशवाहक द्वार पर आ गये। कारनीलियस के घर पर धर्म की स्वीकृति और जेरूसलम मे लौटने के पहले यहूदी-ईसाइयो के समुदाय के सामने अपने कार्य के समर्थन के रूप में पीटर ने ईश्वर के राज्य का उपदेश जिन शब्दो मे किया, उसका तिरस्कार ईसा नही कर सकता था।

जीवन के वे दो मार्ग क्या है, जिन्होंने ऐसे आध्यात्मिक प्रभाव उत्पन्न किये ? जो पुरातनवाद के स्थान पर केटो ने और भविष्यवाद के स्थान पर पीटर द्वारा स्वीकार किये गये। एक और सामान्य अन्तर की ओर हम ध्यान दे जो एक ओर अनासक्ति और रूपान्तरण के बीच है और दूसरी ओर पुरातनवाद और भविष्यवाद के बीच है।

रूपान्तरण और अनासक्ति समान रूप से भविष्यवाद तथा पुरातनवाद दोनो से इस रूप मे भिन्न है कि वे आध्यात्मिक क्षेत्र में परिवर्तन करते हैं। रूपान्तरण और अनासक्ति का भविष्यवाद और पुरातनवाद मे समय के विस्तार का केवल अन्तर नही है, इनका विशेष कार्यक्षेत्र ब्रह्माण्ड से सूक्ष्म जगत् में परिवर्तन के रूप में रहा है। इसी को हम सभ्यता के विकास की कसौटी मानते हैं। वे दोनो राज्य जिनकी प्राप्ति उनका उद्देश्य है पारलौकिक हैं, इस दृष्टि से कि उनमें किसी का भी काल्पनिक अतीत मे एवं भविष्य मे लौकिक अस्तित्व नहीं है। सामान्य अलौकिकता उनकी एक मात्र समानता है और दूसरी दृष्टियो से वे एक-दूसरे के भिन्न हैं।

जिसे हम 'पृथक्करण' या अनासक्ति कहते हैं भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो द्वारा हुआ है। विघटनोन्मुख हेलेनी संसार से स्टोइक 'अभेद्यता' में जाते थे तथा एपिकुरीअन (इन्द्रिय-सुखानुरागी) 'शान्तचित्तता' मे अलग होते थे। जैसा कवि होरेस के आत्मचेतनायुक्त भोगवादी घोषणा द्वारा ऐल्सा प्रदर्शित किया गया है। वह कहता है 'विनष्ट हुए संसार के टुकड़े से हमें शान्ति मिलती है।' विघटनोन्मुख भारतीय संसार से बौद्धो का अलगाव 'निर्वाण' के रूप में हुआ। निर्वाण एक मार्ग है जो हमें संसार के बाहर ले जाता है। उसका उद्देश्य एक शरण-स्थल है। वह शरण-स्थल इस संसार का बहिष्कार करता है। यही तथ्य इसे आकर्षक बनाता है।

यह आवेग दार्शनिक यात्री को विरक्ति की ओर आगे बढाता है, न कि आसक्ति की ओर खींचता है। वह 'विनाश के नगर' की पाँव में लगी धूल को झाडता है, किन्तु 'सामने चमकीले प्रकाश' पर उसकी दृष्टि नही रहती। सांसारिक मनुष्य कहता है, 'ओ सीक्राप्स के मेरे प्रिय नगर' क्या तुम नही कहोगे—'ओ जीयूस के प्रिय नगर'[1] किन्तु मारकस का 'जीयूस का नगर' वैसा नही है जैसा अगस्टाइन का 'ईश्वर का नगर' जो जीवित देवता का नगर है। और यात्रा योजनानुसार धार्मिक विश्वास से अनासक्ति है न कि विश्वास से प्रेरित तीर्थयात्रा। दार्शनिक के लिए इस संसार से सफलतापूर्वक अलग हो जाना अपने आप मे पूर्ति है। और इससे कोई मतलब नही। दार्शनिक शरण वाले नगर के पार जाकर क्या करता है। हेलेनी दार्शनिकों ने अनासक्त विद्वानो की स्थिति आनन्दपूर्ण चिन्तन की बतायी है। बुद्ध (यदि इनके सिद्धान्त हीनयान की पुस्तको मे ईमानदारी के साथ दिखाये गये है) स्पष्टतः कहते हैं कि जब तक लौटने की सभी सम्भावनाएँ सदा के लिए समाप्त नही हो जाती, तब तक इसका कोई अर्थ नही है कि तथागत जिस शान्ति की अवस्था मे आये हैं वह किस प्रकार की है।

यह अज्ञेय तथा उदासीन निर्वाण था 'जीयूस का नगर' जो पृथक्करण का उद्देश्य है कि यह स्वर्ग के राज्य का विरोधी है। यह स्वर्ग का राज्य रूपान्तरण के धार्मिक अनुभवो के मार्ग द्वारा प्राप्त होता है। दार्शनिक दूसरे ससार का तात्पर्य, एव ससार है जो नितान्त हमारी धरती पर ही है। दैवी 'दूसरा ससार' मनुष्य के सासारिक जीवन के पार है, किन्तु मानव-जीवन उसमें सम्मिलित है।

"और जब फैरीसिया ने पूछा कि ईश्वर का राज्य कब आयेगा, तब उसने उन्हे उत्तर दिया और कहा—'ईश्वर का राज्य' देखते हुए नही आता है और न तो वे कहेंगे—यहाँ देखो, वहाँ देखो। क्योकि ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर ही है।"[2]

यह स्पष्ट है कि ईश्वर का राज्य अपनी प्रकृति मे उतना ही सकारात्मक है जितना जीयूस का नगर नकारात्मक। पृथक्करण का मार्ग जब केवल अलग होता है वही रूपान्तरण का मार्ग वह क्रिया जिसे 'अलग होना और लौटना' हम पहले कह चुके है।

अब तक हम जीवन, आचरण तथा भावना के वैकल्पिक मार्गों के छः जोड़े संक्षेप में बता चुके हैं जो मनुष्यों की आत्माओ के सम्मुख प्रकट होते है, जो विघटनोन्मुख समाजो मे रहते हैं। इसके पहले कि उनमे से प्रत्येक जोडे की हम ब्योरेवार परीक्षा करे, हम कुछ समय के लिए आत्मा के इतिहास और समाज के इतिहास के बीच की शृखला का निरीक्षण करे।

यह स्वीकार करते हुए कि प्रत्येक आत्मीय अनुभव अवश्य किसी-न-किसी मनुष्य का निजी होता है, क्या हम देखेंगे कि उन मनुष्यो मे से कुछ के अनुभव, जिनका हम निरीक्षण कर चुके है, ऐसे हैं जो विघटनोन्मुख समाज के कुछ भागो के सदस्यो में ही हम पाते है? हम देखेंगे कि आचरण और भावना के वे चारो वैयक्तिक मार्ग अर्थात् निष्क्रिय त्याग और सक्रिय आत्मनिग्रह निष्क्रिय संचरण तथा पाप की सक्रिय भावना शक्तिशाली अल्पसख्यक तथा सर्वहारा दोनो में समान रूप से पायी जा सकती है। दूसरी ओर जब हम आचरण और भावना के सामाजिक ढंगों को

१. मार्कस आरीलियस आन्टोनियस : मेडिटेशन्स, पुस्तक ४, अध्याय २३।
२. ल्यूक—१७, २०–१।

देखें तब, हमें अपने वर्तमान उद्देश्य के लिए, निष्क्रिय तथा सक्रिय जोड़े में अन्तर करना पड़ेगा। दो निष्क्रिय सामाजिक परिस्थितियाँ—पलायनवाद और असामजस्य को समर्पण—पहले सर्वहारा की श्रेणियों मे दिखाई पड़ती है और फिर शक्तिशाली अल्पसख्यकों की श्रेणियों मे फैलती हैं। यह शक्तिशाली अल्पसख्यक अन्त मे सर्वहारा बन जाता है। इसके विपरीत दो सक्रिय सामाजिक परिस्थितियाँ—प्राणोत्सर्ग की खोज तथा एकता की भावना की प्रेरणा—पहले शक्तिशाली अल्पसंख्यक मे दिखाई देती हैं और यहाँ से सर्वहारा मे फैलती हैं। अन्त में जब हम जीवन के अपने चार विकल्पों पर विचार करेंगे, तब हम इसके विपरीत पायेंगे कि सक्रिय जोडा पुरातनवाद और अनासक्ति पहले उदाहरण मे शक्तिशाली अल्पसख्यक से तथा सक्रिय जोड़ा—भविष्यवाद और रूपान्तरण—सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित है।

(२) 'त्याग' और आत्मनिग्रह

त्याग और आत्मनिग्रह का, जो विघटनोन्मुख समाजों के मुख्य गुण है, प्रकाश मे आना कठिन है, क्योकि ये वैयक्तिक आचरण के दो ढंग प्रत्येक सामाजिक परिस्थिति मे दिखाई पडते है। आदिम समाजो के जीवन मे भी हम आनन्दोत्सव तथा तपस्वी जीवन का अन्तर देख सकते है। तथा मौसम के अनुसार वार्षिक चक्र मे इन भावों मे कबीलों के सदस्यो की सामूहिक अभिव्यक्ति हमे देखने को मिलती है, किन्तु विघटनोन्मुख सम्यताओ के जीवन मे सर्जनात्मकता के स्थान पर त्याग को हम इस आदिम भावना से कुछ अधिक समझते है। हमारा तात्पर्य मस्तिष्क की वह अवस्था है जिसमे स्वेच्छाचार सर्जन का विकल्प मान लिया जाता है—चाहे जान में या अनजान मे, सिद्धान्त मे या व्यवहार में—त्याग के उदाहरण का आत्मनिग्रह के साथ साम्य निश्चय रूप से दिखाया जा सकता है यदि हम संक्षेप मे देखे क्योकि आत्मनिग्रह सर्जन का विकल्प है।

उदाहरणार्थ, हेलेनी सकटकाल मे पतन के बाद पहली पीढी मे त्याग तथा आत्मनिग्रह की मूर्तियों का जोड़ा अफलातून ने सुकरात तथा अल्प सिबियाडीस के चित्र 'द सिम्पोजियम' मे और थ्रैसिमेकस और सुकरात के चित्र रिपब्लिक मे उपस्थित किये हैं। वासना का दास अल-सिबियाडीस व्यवहार मे त्यागी है और थ्रेसिमेकस सिद्धान्त रूप मे 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का समर्थक है।

हेलेनी कहानी के दूसरे अध्याय मे हम देखते हैं कि इन आत्माभिव्यक्तियो के भाष्यकार सर्जन के स्थान पर अपने-अपने आचार का समर्थन इस प्रकार करते है कि हमारा जीवन प्रकृति के अनुसार है। त्याग के लिए इस विशेषता का दावा साधारण आनन्दवादियो ने किया। और उन्होने व्यर्थ में एपिक्यूरस को बदनाम किया। आनन्दवादियो के इस अपराध के लिए तपस्वी ऐपिक्यूरी कवि ल्युक्रीशियस ने भर्त्सना की। दूसरी ओर हम देखते है कि सिनिको ने तपस्वी जीवन के लिए 'प्राकृतिक होने का' दावा किया, जिसका उदाहरण नाँद मे बैठा डायोजिनीज़ है और जिसे कम भद्दे ढंग से दूसरे स्टोइक मानते थे।

यदि हम हेलेनी से सीरियाई संसार की ओर उनके संकटकाल मे चलें तो हमे त्याग और आत्मनिग्रह के बीच वैसा ही विरोध मिलेगा। यह विरोध एकलेजिआस्टीज की पुस्तक के अनुसार शान्तिमय सवेदना का सिद्धान्त और एसेनियों के मठ वाले संप्रदाय के तपोमय आचार के जीवन मे दिखाई देता है।

सभ्यताओं का एक और वर्ग है । यह वर्ग भारतीय, बैबिलोनी, हिताइत और माया का है । ये सभ्यताएँ विघटित होते समय आदिम मानव की प्रकृति की ओर लौटती दिखाई देती हैं, क्योंकि उनके धर्म के काम भावना के त्याग और उनके दर्शन की अतिशय तप-भावना मे बहुत अन्तर था, जिसे वह समझ न सके । भारतीय सभ्यता में एक विरोधाभास मालूम पड़ता है जिसका पहले समाधान नही जान पड़ता । वह है योग तथा लिंग-पूजा का सामंजस्य । उसी प्रकार विघटनोन्मुख बैबिलोनी समाज के नक्षत्रीय दर्शन और मन्दिरों में व्यभिचार, माया सभ्यता के मनुष्य के बलिदान के बीच और तप.पूर्ण आत्म-दमन के बीच तथा हिताइत के आनन्दोत्सव और साधनामय उपासना, जो सिबिले और अनीस की पूजा मे वे करते थे, सम्भवतः यह अतिशय पर-पीड़न की सामान्य प्रवृत्ति थी जो उनके त्याग के अभ्यास तथा आत्मविग्रह मे समान रूप से प्रविष्ट हुई । जिसने इन चारों विघटित सभ्यताओं के सदस्यों की आत्माओं में अभ्यासों के बीच भावात्मक समरसता बनाये रखा । किन्तु जब विदेशी दर्शक की उदासीन विश्लेषणात्मक दृष्टि उनकी परीक्षा करती है, तब वे उनमे सामजस्य नही देख पाते ।

हमारे पश्चिमी समाज के इतिहास के आधुनिक अध्याय मे क्या आचरण के ये दो विपरीत ढंग, विस्तृत रगमंच पर वही कार्य पुन. कर रहे है ? त्याग के प्रमाणो की कमी नही है । सिद्धान्त के क्षेत्र मे त्याग के पैगम्बर रूसो ने प्रकृति की ओर लौटने का मोहक निमन्त्रण दिया है । और व्यवहार मे चारो ओर उदाहरण मिलते है । दूसरी ओर हम तपस्या के पुनरुज्जीवन की खोज मे असफल होगे और इस कारण हम इस मानवता विमुख परिणाम पर पहुँच सकते है कि यदि हमारी पश्चिमी सभ्यता सचमुच पतित हो चुकी है तो अभी उसका विघटन बहुत दूर तक नही पहुँचा है ।

(३) पलायन तथा प्राणोत्सर्ग

पलायन तथा प्राणोत्सर्ग, दोनो सामान्य अर्थ मे, क्रमशः कायरता के कलंक तथा साहस के गुणो के परिणाम है । और इसलिए सभी समाजो और सभी युगो मे मानव आचरण के समान गुण है । पलायन एव प्राणोत्सर्ग, जिन पर हम विचार कर रहे है जीवन के प्रति विशिष्ट भावना द्वारा प्रेरित होते है । केवल कायरता के पलायन अथवा विशुद्ध साहस के प्राणोत्सर्ग से हमारा अभिप्राय नही है । पलायित आत्मा जिसकी हम खोज कर रहे है, वह आत्मा है जो इसलिए पलायन करती है कि वह सचमुच यह समझती है कि जिस उद्देश्य के लिए वह कार्य कर रहा है वह इस योग्य नही है कि उसके लिए कार्य किया जाय । उसी प्रकार शहीद आत्मा जिसकी हम खोज कर रहे है वह आत्मा है जो मुख्यतः या केवल उद्देश्य की पूर्ति के लिए आत्मोत्सर्ग नही करती, बल्कि उसकी इच्छा होनी है कि वह

"इस अबोधगम्य संसार को
गम्भीर और क्लांत भार[1] से"

मुक्ति प्राप्त करे । ऐसा शहीद सज्जन हो सकता है, किन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से वह अर्द्ध आत्म-

१. वर्ड्स्वर्थ : टिंटर्न ऐबे ।

हन्ता है । वह आधुनिक गवारूँ भाषा में पलायनवादी है, जिस प्रकार हमारा पलायनवादी भी निम्न कोटि का पलायनवादी है । इस दृष्टि से रोमन पुरातनवादी जो अनासक्तिवाद के दर्शन को ग्रहण कर चुके थे, शहीद थे । अपने इस महान् कार्य से वे अनुभव करते थे कि हम जीवन से हाथ नही धो रहे हैं, उससे स्वतन्त्र हो रहे है । और यदि उसी वर्ग और इतिहास के उसी युग से पलायन का कोई उदाहरण खोजें तो हम रोम के पलायनवादी मार्क एन्टानी का उदाहरण दे सकते है । जो रोम तथा रोमनो के गम्भीर आदर्शों को छोड़कर अर्धपूर्वी क्लिओपेट्रा की गोद में चला गया ।

दो शतियों बाद, ईसाई युग के द्वितीय शती के बीतने वाले अन्धकारपूर्ण दर्शकों में हम साक्षात् मार्क्स आरीलियस राजकुमार को देखते हैं जिसको शहीदों के सिरमौर की पदवी देना अनुचित न होगा क्योकि मृत्यु की किसी अन्तिम प्रहार का इस पर वश नही चला । मार्क्स के पुत्र और उत्तराधिकारी कोमोडस मे हम साम्राज्य के पलायनवादी को पाते हैं जो अपने कन्धे पर उत्तराधिकार का भार वहन करने का प्रयत्न नही करता और सीधे नैतिकता से पलायन कर जाता है और सर्वहारा की अधम राह पर चल देता है । सम्राट् के रूप मे पैदा होकर शौकिया अखाड़िया होना उसे अधिक पसन्द आया ।

हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक का अन्तिम समय ईसाई धर्मतन्त्र पर आघात था, जो मृत्यु की पीड़ा के समय सभ्यता से परे हो गया, क्योकि यह मरणासन्न अन-ईसाई शासक वर्ग इस हृदय विदारक सत्य को स्वीकार न कर सका कि अपने पतन और विनाश का वह स्वयं उत्तरदायी है । मरते समय भी उसने यही कहकर अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का प्रयत्न किया कि सर्वहारा के कायरतापूर्ण आक्रमण के कारण ही मेरा विनाश हो रहा है । और जब बाहरी सर्वहारा भीषण युद्ध गिरोहो मे परिवर्तित हो गये, जो साम्राज्य के शासन के उन आक्रमणो से बचकर निकल जाते थे, जो शासन उनके हमलो के जवाब मे करता था, तो सारी चोट ईसाई चर्च को सहनी पड़ी जो भीतरी सर्वहारा की प्रमुख सस्था थी । इस कठोर परीक्षा मे ईसाई गोठ की भेड़े स्पष्ट रूप से उन बकरो से अलग की गयी और उन्हे यह चुनौती दी गयी कि अपना धर्म छोड़ो या अपनी जान से हाथ धोओ । धर्म छोड़ने वालो की संख्या बहुत थी । वास्तव में इनकी संख्या इतनी अधिक थी कि जब अत्याचार समाप्त हुआ तब धार्मिक राजनीति की बड़ी समस्या हो गयी कि इनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय । किन्तु प्राणोत्सर्ग करने वालो का यह छोटा-सा दल अपनी संख्या के अनुपात से कही अधिक शक्तिशाली था । इन वीरो के शौर्य को धन्यवाद है कि ठीक संकट के समय ईसाई दलो से आगे आये और जान देकर उनके लिए साक्षी दी और धर्मतन्त्र विजयी हुआ । यह छोटी किन्तु महान् स्त्री-पुरुषो की सेना इतिहास मे विश्वासघातियो के विरुद्ध उच्चकोटि के शहीदो के नाम से अमर है । इनका उचित से अधिक सम्मान नही हुआ । इतिहास में इन्हे बहुत बड़ा शहीद कहा गया है, इसके विरोध मे दूसरो को विश्वासघाती कहा गया है जिन्होने अन-ईसाई साम्राज्य के अधिकारियो की माँग पर पवित्र धर्मग्रन्थ तथा चर्च का पुनीत पात्र अर्पित कर दिया ।

यह आपत्ति की जा सकती है कि एक ओर केवल कायरता है और दूसरी ओर विशुद्ध उत्साह इसीलिए यह दृष्टान्त वर्तमान उद्देश्य के लिए व्यर्थ है । जहाँ तक भगोड़ो का सम्बन्ध है हमारे पास इस आपत्ति का उत्तर देने के लिए साधन नही है । उन्होने ऐसा क्यों किया जो कलंक-

पूर्ण विस्मृति में दबा है । किन्तु, प्राणोत्सर्गियों की प्रेरणा को सिद्ध करने के लिए प्रचुर प्रमाण हैं कि कम या बेश जैसा पाठक समझे, निःस्वार्थ उत्साह ही उनकी प्रेरणा का मुख्य स्रोत है । पुरुष और स्त्रियो ने उत्साहपूर्वक शहीद होना स्वीकार किया और इसे द्वितीय बार बपतिस्मा समझा जिससे उनके पापो को क्षमा मिलेगी और स्वर्ग के लिए राह निश्चित हो जायगी । एन्टिओक का इगनेशियस, द्वितीय शती का एक प्रसिद्ध शहीद अपने को 'ईश्वर का गेहूँ' कहता है और उस दिन की आकाक्षा करता है, जब वह 'जगली जानवरो के दाँतो द्वारा पीसा जायगा और ईसा के लिए शुद्ध रोटी बनेगी ।'

अपने आधुनिक पश्चिमी संसार मे क्या हम सामाजिक आचरण के ऐसे दो विरोधी ढग पा सकते है ? निश्चित रूप से हम पश्चिम के पलायन के अनिष्टसूचक परिणाम के लिए 'पादरियों के विश्वासघात' (ला ट्राहिजन डि क्लर्क) मे देख सकते है । इस विश्वासघात की जड़े इस गहराई से निकली है जिस गहराई का पता इन शब्दो का निर्माता प्रतिभासम्पन्न फ्रासीसी लेखक कदाचित् न लगा सके[1] । यद्यपि वह स्वीकार करता है कि दोष कितनी गहराई तक पहुँच चुका है क्योंकि उसने आधुनिक बुद्धिजीवियों को दोषी ठहराने के लिए मध्ययुगीन धार्मिक नाम चुना है । विश्वास-घाती कार्यों के उस जोडे के साथ उनका विश्वासघात आरम्भ नही हुआ था, जिन्हे उन्होने उसी काल मे किया है जो भूला नही गया है । यह आधुनिक स्थापित सिद्धान्तो का अविश्वास तथा उदारतावाद के नये प्राप्त लाभो का कायरतापूर्ण समर्पण है । यह पलायन, जिसका नवीनतम प्रदर्शन हुआ है, शतियो पहले आरम्भ हो चुका था, जब पादरियों ने पश्चिमी ईसाई सभ्यता के विकासोन्मुख भवन को धर्म के स्थान पर धर्म-निरपेक्षता के आधार पर लाने की चेष्टा की । यह 'युबरीस' का पहला कार्य था, जो आज के 'ऐथ' के रूप मे बदल रहा है, जो शतियो से चक्रवृद्धि ब्याज के समान बढ़ रहा है ।

यदि हम चार सौ वर्षों पीछे देखे और पश्चिमी ईसाई ससार के उस खण्ड पर ध्यान दे जो इंग्लैंड के नाम से विख्यात है तो हम वहाँ टामस, उल्जे को पायेगे । इस विलक्षण बुद्धि के आधुनिक विचारो वाले पादरी ने, राजनीतिक अपमान के समय अपना अपराध स्वीकार किया कि हमने ईश्वर की सेवा राजा की सेवा से बहुत कम की । टामस उल्जे पलायनवादी था । जिसका पलायन पूरे कलक के साथ पाँच वर्षों के भीतर ही, उनके समकालीन शहीदो सन्त जान फिशर और सन्त टामसमूर के आत्मोत्सर्ग से प्रकट हो गया ।

(४) विचलन का भाव तथा पाप का भाव

विचलन का भाव उस समय होता है, जब विकास की शक्ति समाप्त हो जाती है । यह ऐसी भारी विपत्ति है जो उन स्त्रियों और पुरुषो पर आ पड़ती है, जो सामाजिक विघटन के युग में रहते हैं । यह पीड़ा सम्भवतः उस भक्ति के पाप का दण्ड है, जिसमे सर्जक के स्थान पर सर्जित वस्तु की पूजा की जाती है । क्योंकि यह उन कारणो मे से एक है जिसे हम देख चुके है, जिसके कारण सभ्यताओ का विघटन पतन के बाद होता है ।

१. इसी नाम की पुस्तक जूलियन बेंडा लिखित देखिए ।

संयोग और आवश्यकता उस शक्ति के वैकल्पिक रूप हैं जो विचलन के भाव वालों की आँखों के सामने संसार पर शासन करते दिखाई देते है । यद्यपि पहली दृष्टि में दोनो एक-दूसरे के विपरीत दिखाई देते है, किन्तु सूक्ष्म परीक्षा के बाद दोनो एक ही भ्रम के दो विभिन्न पहलू मिलेंगे ।

मिस्री संकटकाल के साहित्य में संयोग की उपमा घूमते हुए कुम्हार के चक्र से दी गयी है । और हेलेनी सकटकाल के साहित्य मे उसकी उपमा लहरो और हवा के झोकों की कृपा पर छोड़े गये चालक विहीन जहान से दी गयी है ।[1] यूनान के नर देवत्व ने 'संयोग' को देवी का रूप दिया—'हमारी स्वय चालित देवी' साइराक्यूज के मुक्तिदाता टिमोलियन ने उसके लिए उपासना-गृह बनाया, जिसमें उसने बलि की और होरेस ने उसके लिए कविता लिखी ।[2]

जब हम अपने दिलो मे देखते है हम इस हेलेनी देवी को ठीक उसी प्रकार सिंहासनारूढ पाते हैं, जैसा एच० ए० एल० फिशर ने अपनी पुस्तक 'यूरोप के इतिहास' की भूमिका मे अपना विश्वास प्रकट किया है :—

"एक बौद्धिक उद्दीपन मुझे नही मिला । मुझसे चतुर तथा बुद्धिमान् लोग इतिहास मे एक कथानस्तु, एकलय तथा एक पूर्व निश्चित नमूना देख चुके हैं । यह समरसता मुझे नही प्राप्त हुई । मै केवल यह देखता हूँ कि एक सकटकाल दूसरे के बाद वैसे ही आता है जैसे एक लहर दूसरे के बाद आती है । यही तथ्य है जिसका समान्यीकरण नही हो सकता, क्योकि वह बेजोड़ है : इतिहासकार के यही निरापद नियम है कि मानव के भाग्यो के विकास को अदृश्य और सयोग का खेल मानना चाहिए ।"

सर्वशक्तिशाली 'संयोग' मे आधुनिक पश्चिमी विश्वास का जन्म उन्नीसवी शती मे हुआ । जब पश्चिम के साथ अहस्तक्षेप की नीति के कारण सब ठीक से चलता जान पड़ता था । यह जीवन दर्शन का व्यावहारिक रूप था जो स्वार्थ की अद्भुत प्रबुद्धता पर अवलंबित था । अस्थायी संतोषप्रद अनुभव के कारण हमारे उन्नीसवी शती के पितामहों ने इस ज्ञान का दावा किया कि सभी वस्तुएँ उन लोगो की भलाई करती है, जो 'संयोग' की देवी को प्यार करते है । और बीसवी शती मे भी जब इस देवी ने अपना विकराल रूप दिखाना आरम्भ किया, तब वह इग्लैंड की वैदेशिक नीति की देवी रही । १९३१ के शरद से आरम्भ होने वाले इग्लैंड के महत्त्व-पूर्ण साल में जो बात इग्लैंड की जनता के साथ ही साथ वहाँ की कैबिनेट मे भी प्रमुख थी, वह बात एक बड़े अंग्रेजी उदारवादी समाचार-पत्र से लिये गये एक अग्रलेख की निम्नलिखित पंक्तियो मे ठीक-ठीक से अभिव्यक्त है ।

"कुछ वर्षों की शान्ति का अर्थ है कुछ वर्ष प्राप्त हो गये और जिस युद्ध के बारे मे सोचा जाता है कि कुछ दिनो मे होगा, वह शायद कभी न हो ।"[3]

मानव के ज्ञान-भाण्डार में अहस्तक्षेप के सिद्धान्त को पश्चिम की मौलिक देन स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि दो हजार वर्ष पहले यह चीनी दुनिया मे प्रचलित था । मगर 'संयोग'

१. अफलातून की पालिटिक्स, २७२, डी० ६–२७३ ई० ।
२. होरेस : ओड्स, पुस्तक १, ओड ३५ ।
३. द मैनचेस्टर गार्जियन, १३ जुलाई १९३६ ।

की चीनी पूजा हमारी अधम प्रकार से उत्पन्न पूजा से भिन्न थी । १८ वीं शती के फ्रांसीसी बूर्जुआ अहस्तक्षेप एवं अबाध्य प्रवेश में विश्वास करने लगे, क्योंकि उन्होंने अपने विरोधी अंग्रेजों की सम्पन्नता देखी, उसकी स्पर्द्धा की और उसका विश्लेषण किया तथा इस परिणाम पर पहुँचे कि बूर्जुआ फ्रांस भी उसी प्रकार उन्नति कर सकता है यदि सम्राट् लुई भी सम्राट् जार्ज का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय कि बूर्जुआ जो चाहे उसका उत्पादन बिना बाधा के करे, और बिना चुंगी के जिस बाजार में चाहे माल भेज सके । दूसरी ओर ईसा के जन्म से पहले दूसरी शती के आरम्भिक दशको में थका हुआ चीनी संसार विचलन के मार्ग पर चल रहा था । यह सरल मार्ग यह नहीं कि मिल से तैयार माल व्यस्त बाजार में चलतू रास्ते से टट्टुओं द्वारा पहुँचाया जाय, किन्तु वह राह जो जीवन को शाश्वत मार्ग और सत्य है । यह शाश्वत मार्ग है 'ताओ' । जिसका अर्थ है—वह प्रणाली जिसमे विश्व का कार्य होता है और अन्त में कुछ-कुछ ईश्वर के समान, जिसे हम अमूर्त और दार्शनिक रूप मे समझते हैं ।[१]

महान् ताओ एक नौका है, जो विचलन के पथ पर चलती है
यह इधर भी जा सकती है, उधर भी जा सकती है ।[२]

किन्तु अहस्तक्षेप की देवी का एक दूसरा रूप भी है, जहाँ वह 'संयोग' के रूप मे नही, वरन् 'आवश्यकता' के रूप मे पूजी जाती है । आवश्यकता और संयोग के सम्बन्ध मे दो विचार एक ही बात को दो ढंगो से देखना है । उदाहरणार्थ, अफलातून की दृष्टि में पतवारहीन नौका की गति उस विश्व की अव्यवस्था के समान है, जिसे ईश्वर ने त्याग दिया है, किन्तु ऐसे व्यक्ति की दृष्टि में, जिसे गति-विज्ञान (डाइनेमिक्स) और भौतिक-विज्ञान (फिजिक्स) का ज्ञान है, पर इसे हवा तथा जल के माध्यम मे लहरो तथा धाराओं का बहुत ही व्यवस्थित उदाहरण समझेगा । जब विचलन के पथ पर मनुष्य की आत्मा यह अनुभव करती है कि धोखा देने वाली शक्ति आत्मा की केवल नकारात्मक इच्छा नही है, बल्कि स्वयं एक वस्तु है, तब इस अपूर्व देवी का चेहरा आत्मपरक अर्थात् नकारात्मक स्वरूप से वस्तुपरक और सकारात्मक रूप मे बदल जाता है । इसके आत्मपरक और नकारात्मक रूप को संयोग और इसके वस्तुपरक तथा सकारात्मक रूप को 'आवश्यकता' के नाम से पुकारते हैं । किन्तु इससे देवी की मुख्य प्रवृत्ति मे कोई परिवर्तन नहीं होता, न देवी से जो विपद्ग्रस्त लोग हैं उनकी दशा मे परिवर्तन होता है ।

जीवन के भौतिक धरातल पर आवश्यकता के सर्वशक्तिशाली मन को दार्शनिक डीमोक्रिटस ने हेलेनी विचारों में प्रवेश किया । इस दार्शनिक की लम्बी जिन्दगी (सम्भवत: ई० पू० ४६०–३६०) तक थी । इसे अपनी यौवनावस्था मे हेलेनी सभ्यता का पतन देखने का अवसर मिला और इसके बाद ७० वर्षों तक वह उसके विघटन की प्रणाली देखता रहा, किन्तु भौतिक क्षेत्र से नैतिक क्षेत्र पर नियतिवाद के साम्राज्य के विस्तार की सभी समस्याओ की उसने अवहेलना की । भौतिक नियतिवाद बैबिलोनी संसार के शक्तिशाली अल्पसख्यक के ज्योतिष दर्शन का आधार था और कालडियनो ने उसी सिद्धान्त का मानव जीवन और भाग्यों में विस्तार करने में सकोच नही किया । सम्भव है कि स्टोइक दर्शन के प्रतिष्ठापक ज़ीनो ने, अपने भाग्यवाद को,

१. ए० वैली : द वे एण्ड इट्स पावर, पृ० ३० ।
२. टाओ टे किंग, अध्याय ३४ (वैली के अनुवाद से)

जिसे उसने अपने सारे सम्प्रदाय को प्रभावित कर दिया था, डिमोक्रिटस से नहीं बैबिलोनी स्रोतों से पाया हो। यह ज़ीनो के सबसे विख्यात शिष्य सम्राट् मार्क्स आरीलियस के 'चिन्तनों' में सर्वत्र दिखाई देता है।

आधुनिक पश्चिमी जगत् ने 'आवश्यकता' के साम्राज्य का आर्थिक जगत् में विस्तार करने के लिए नयी बात पैदा की। आर्थिक क्षेत्र वास्तव में सामाजिक जीवन का ऐसा क्षेत्र है, जिसे प्रायः उन सभी विचारकों ने छोड़ दिया जिन्होंने दूसरे समाजों के विचारों को निर्दिष्ट किया था। आर्थिक नियतिवाद की क्लासिकी अभिव्यक्ति निश्चित रूप से काल मार्क्स का दर्शन या धर्म है, किन्तु आज के पश्चिमी जगत् में मार्क्सवादी ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो जान मे या अनजान में अपना कार्य आर्थिक नियतिवाद के विश्वास पर करते हैं, उन लोगों की अपेक्षा जो मार्क्सवाद को स्वीकार करते हैं और उनमें अनेक विशिष्ट पूँजीपति लोग भी है।

मानसिक क्षेत्र मे भी 'आवश्यकता' की सत्ता आधुनिक पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों के कम-से-कम एक नये गुट ने घोषित की है जिसके व्यक्तित्व की भावना में आत्मा का नियति की भावना में आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार किया है। यह इस कारण कि आत्मा को मनोविषयक आचरण की प्रणाली के विश्लेषण मे उन्हे आरम्भिक सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि मनोविश्लेषण का विज्ञान अभी नया है, आत्मा के माध्यम में 'आवश्यकता' की पूजा ने इस युग के सबसे कुख्यात राजनीतिक को उसके अल्पकालीन विजय के क्षण मे अपना अनुगामी बना लिया।

"निद्राचर (सोमनैंबुलिस्ट) के विश्वास के साथ मैं अपने रास्ते पर चल रहा हूँ जिस मार्ग को परमात्मा ने मेरे लिए निश्चित किया है।"

१४ मार्च १९३६ को म्युनिख मे दिये गये एडाल्फ हिटलर के भाषण से ये शब्द उद्धृत किये गये हैं। इन शब्दो ने तीसरे जर्मन साम्राज्य की सीमाओ से दूर के (और कदाचित् साम्राज्य के भीतर भी) लाखों यूरोपीय नर-नारियो मे कँपकँपी उत्पन्न कर दी, जिन्हे अभी सात दिन पहले जर्मन सेना का राइन-भूमि पर पुन. कब्जा होने से धक्का लगा था और जो उस धक्के से सँभल नही पाये थे।

मनोवैज्ञानिक नियतिवाद के मत का दूसरा रूप भी है जो संसार में एक मानव-जीवन के समय के संकुचित विस्तार की सीमा को तोड़ देता है और कारण और कार्य की शृंखला को समय में भूत तथा भविष्य में ले जाता है। भूत मे धरती पर मानव के आगमन की ओर और भविष्य में उसके अन्तिम विसर्जन की ओर। इस सिद्धान्त के दो रूप है, जो अलग-अलग उत्पन्न हुए हैं। एक रूप ईसाई धर्म के मूल पाप की धारणा है, दूसरा रूप भारतीय कर्म की धारणा है, जिसने हिन्दू धर्म तथा बौद्ध दर्शन में प्रवेश किया है। एक ही सिद्धान्त के दोनों स्वरूप कारण और कार्य की आध्यात्मिक शृंखला की मूल बात पर सहमत हैं और ये निरन्तर एक लौकिक जीवन से दूसरे लौकिक जीवन तक चलते रहते है। ईसाई और भारतीय दोनो दृष्टियों में आज के मनुष्य का चरित्र और आचरण अतीत के जीवनों या एक पहले के जीवन से बने हुए हैं। यहाँ तक हिन्दू और ईसाई विचार मेल खाता है, किन्तु इसके आगे वह एक-दूसरे से भिन्न हो जाता है।

मूल पाप का ईसाई सिद्धान्त कहता है कि मानव जाति के पुरखा के एक विशेष वैयक्तिक पाप ने अपने सभी वंशजों पर उत्तराधिकार के रूप में आध्यात्मिक दुर्बलता प्रदान की है और यदि आदम अपने ईश्वर की कृपा से तिरस्कृत न होता—और आदम की प्रत्येक सन्तान को आदम

का यह पाप विरासत में मिला है —यद्यपि प्रत्येक आत्मा का अलग व्यक्तित्व है और उसकी निजी मनोवैज्ञानिक प्रकृति है, और ईसाई धर्म के ये मुख्य मत हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार आदम में यह क्षमता थी कि अर्जित आध्यात्मिक गुण को अपने वंशजों मे संचारित कर सके और केवल वही उस प्रजाति को ये गुण दे सकता था जिसका वह पूर्वज था।

मूल पाप के सिद्धान्त का यह अन्तिम रूप कर्म की कल्पना में नही पाया जाता है। इस भारतीय सिद्धान्त के अनुसार कोई भी विशेषता जिसे कोई भी व्यक्ति अपने कर्मों से प्राप्त करता है, और भला या बुरा, बिना अपवाद के आरम्भ से अन्त तक संचारित होता है। इस संचारित आध्यात्मिक उत्तराधिकार का प्राप्तकर्ता कोई वंश वृक्ष नही है, जिसमें विभिन्न व्यक्तियो की शृंखला है, बल्कि यह एक आध्यात्मिक अटूट क्रम है, जो बोधजगत् में बराबर आता-जाता रहता है, पुनर्जन्म के रूप मे। बौद्ध दर्शन के अनुसार कर्म की निरन्तरता 'आत्माओं के पुनर्जन्म' का कारण है, धर्म का एक मूल सिद्धान्त है।

अन्त में हमे नियतिवाद का ईश्वरीय रूप देखना है। यह रूप कदाचित् अत्यधिक उटपटाँग और सभी में पतित है, क्योंकि इस ईश्वरीय नियतिवाद मे मूर्ति के रूप मे सच्चे ईश्वर की पूजा होती है। इस प्रकार के प्रच्छन्न मूर्तिपूजक उपासना की वस्तु मे ईश्वर के सर्व गुणो को आरोपित किये रहते हैं और साथ-ही-साथ एक गुणातीतत्त्व पर इतना अधिक जोर देते हैं कि उनका ईश्वर अज्ञेय, अनाराध्य एव व्यक्तित्वहीन हो जाता है जैसे स्वयं 'आवश्यकता की देवी।' सीरियाई समाज के आन्तरिक सर्वहारा से उद्‌भूत 'उच्चतर धर्म' ऐसे आध्यात्मिक क्षेत्र हैं, जिनमे इस प्रकार के गुणातीत विकृत ईश्वरवाद की मूर्तिपूजा बहुत दिखाई पड़ती है। इसके दो क्लासिकी उदाहरण इस्लाम की किसमत की कल्पना है और कालविन के नियतिवाद का सिद्धान्त है। कालविन जीनेवा के उग्र प्रोटेस्टेन्ट धर्म के सस्थापक तथा व्यवस्थापक थे।

कालविनवाद ने ऐसी समस्या उत्पन्न की जिसने अनेक लोगों को उलझन मे डाल दिया। इसके लिए हमे कुछ समाधान ढूँढ़ निकालना चाहिए। हमने बताया है कि नियतिवादी मत उस विचलन की भावना की अभिव्यक्ति है जो सामाजिक विघटन का एक मनोवैज्ञानिक लक्षण है। किन्तु इससे इन्कार नही किया जा सकता कि अनेक नियतिवादी लोगो मे वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप मे भी असाधारण शक्ति तथा क्रियाशीलता उद्देश्यपूर्णता तथा असाधारण उत्तरदायित्व के गुण रहे हैं।

"धार्मिक नीति का एक मुख्य विरोधाभास है कि उन्ही लोगों मे संसार को उलट देने की शक्ति है जिनको विश्वास है कि यह पहले से ही निश्चित है कि सबसे अच्छी तरह यह कार्य ऐसी शक्ति द्वारा होता है जिसके हाथ की वे केवल कठपुतली हैं—यह कालविन वाद में विशेष रूप से पाया जाता है।"[१]

भाग्यवादी मत के अनेक कुख्यात उदाहरणों मे से कालविनवाद केवल एक है, किन्तु उस मत के अनेक विचारकों के आचरण उससे भिन्न हैं। कालविनवादियों (जेनेवी ह्यूजिनो, स्काटी, अंग्रेजी और अमेरिकन) की मनोवृत्ति इसी प्रकार ईश्वरवादी दूसरे नियतिवादियो के समान

१. आर० एच० टानी : रिलीजन एण्ड दि राइज् आव कैपिटैलिज्म, पृ० १२६।

दिखाई पड़ती है। यहूदी ज़ीलाट, अरब के आदिम मुसलमान, और दूसरे युगों के तथा दूसरी जाति के मुसलमान जैसे उसमानिया साम्राज्य के जानिसारी और सूडान महदियों को इसी उदाहरण में लिया जा सकता है। और १९ वी शती के पश्चिमी उदार प्रगतिवादी २० वी शती के रूस के साम्यवादी मार्क्सवादियो मे हमें दो वास्तविक भाग्यवादी मिलते हैं। इन नास्तिकों की प्रकृति उनके साथी 'आवश्यकता' की देवी के आस्तिक पुजरियों के समान है। साम्यवादियों और कालविनवादियों की समानता अंग्रेजी इतिहासकार ने, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, सुन्दरता से चित्रित किया है।

"यह कहना नितान्त काल्पनिक नही है कि संकीर्ण क्षेत्र में किन्तु शक्तिशाली ढंग से, कालविन ने १६ वी शती में बूर्जुआ के लिए वही किया जो १९ वी शती मे मार्क्स ने सर्वहारा के लिए किया या नियतिवादी सिद्धान्त ने एक आश्वासन की भूख की तृप्ति की कि विश्व की शक्तियाँ ईश्वर के द्वारा मनोनीत लोगो के साथ रहती है। एक दूसरे युग मे इसी प्रकार ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त ने ढाढस दिलाया था। उसने उन्हे यह अनुभव कराया कि वे विशिष्ट लोग है और यह कि ईश्वर की योजना मे उन्हे योगदान करना है, इसको उन्हें समझना चाहिए।"[१]

सोलहवी शती के कालविनवाद और २० वी शती के साम्यवाद के बीच की ऐतिहासिक कड़ी १९ वी शती का उदारवाद (लिबरालिज्म) है।

'इस समय तक नियतिवाद का अधिक प्रचलन था, किन्तु नियतिवाद का मत अवसादी क्यों होना चाहिए ? जिस विधान से हम मुक्त नही हो सकते, वह प्रगति का शुभ नियम है, वह उन्नति जिसे हम आँकडो में नाप सकते हैं।' ऐसी परिस्थिति मे रखने और शक्तिपूर्वक विकास की उस राह का अनुसरण करने के लिए हमें अपने नक्षत्रो को धन्यवाद देना चाहिए, जिसे प्रकृति ने हमारे लिए निश्चित कर रखा है और जिसका विरोध करना अपावन और बेकार है। इस प्रकार प्रगति का अंधविश्वास दृढ़ रूप से स्थापित हो गया। लोकप्रिय धर्म होने के लिए केवल अन्धविश्वास को दर्शन के अधीन कर देने की आवश्यकता है। प्रगति के अन्धविश्वास का ऐसा विशिष्ट भाग्य था कि उसने कम-से-कम तीन दर्शनों को अधीन कर लिया था। ये तीन दर्शन हैं हिगेल, कामटे और डारविन के। आश्चर्यजनक बात यह है कि इन दर्शनो मे से कोई वास्तविक रूप से उस विश्वास के पक्ष में नही है जिसका वह समर्थन करता है।"[२]

क्या हमें तब इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि नियतिवादी दर्शन की स्वीकृति स्वयं वह प्रेरणा है जो कार्य की सफलता के लिए उत्तेजित करता है ? नही, हम ऐसा निर्णय नही कर सकते क्योकि नियतिवादी मतावलम्बियो पर उनके धार्मिक विश्वास का दृढ और प्रेरणात्मक ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्होंने समझा कि उनकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा या प्रकृति का विधान या 'आवश्यकता' के आदर्श सब एक हैं, इसीलिए वे निश्चय रूप से होंगे ही। कालविनवादी जेहोवा वह ईश्वर है जो अपने विशेष लोगों की रक्षा करता है। मार्क्सवादी ऐतिहासिक आवश्यकता अवैयक्तिक शक्ति है जो सर्वहारा की तानाशाही स्थापित करती है। इस प्रकार की धारणा हमें उस विजय मे विश्वास दिलाती है जो नैतिकता का एक स्रोत है और अपना औचित्य

१. वही, पृ० ११२।
२. डब्ल्यू० आर० इंगे : दि आइडिया आव प्रोग्रेस, पृ० ८-९।

इसीलिए स्थापित करती है, जैसा कि युद्ध का इतिहास हमें बताता है और वह इस परिणाम पर पहुँचती है जिसे पहले ही सोच रखा है । 'पोसंट क्रिया पोएसे विडेन्टयूर'[1] 'वह अमुक कार्य कर सकते हैं, क्योंकि इनका विश्वास है कि हम कर सकते हैं ।' यही वरजीलियन नौका के दौड़ में विजयी दल की सफलता के रहस्य का यह सूत्र है कि 'वे कर सकते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा विश्वास है कि वे कर सकते हैं ।' संक्षेप मे, आवश्यकता सशक्त सहायक हो सकती है, जब वह ऐसा मान ली जाती है, किन्तु वास्तव मे यह धारणा 'यूबरीस' और बड़े रूप मे है—जो बाद के परिणामों से पता चलता है कि यह धारणा झूठी है । विजय का विश्वास अन्त मे गोलियथ के विनाश से सिद्ध हुआ जब उसके सफल युद्धों की लम्बी शृंखला टूट गयी तथा डेविड के साथ युद्ध मे समाप्त हो गयी । मार्क्सवादी करीब सौ वर्षों तक अपने इसी विश्वास मे रह चुके हैं और कालविनवादी चार शतियो तक यद्यपि अभी उनकी पराजय नही हुई । किन्तु मुसलमानो ने तेरह शतियो के पहले ऐसे ही गौरवपूर्ण विश्वास में अपने आरम्भिक काल मे कम महान् कार्य नही किये । किन्तु अन्त मे उनका बुरा समय आया । आपत्ति के बाद के दिनो मे उनकी प्रतिक्रिया की दुर्बलता हमें बताती है कि जब तक चुनौतियाँ अपनी प्रभावशाली प्रतिक्रिया के क्षेत्र मे स्वयं भिडती रहती हैं, तब तक नियतिवाद प्रतिकूल रूप मे सदाचार की जड़ खोखली करने मे ठीक उतना ही समर्थ होता है, जितना वह उसे उत्तेजित करने मे । भ्रान्तिपूर्ण नियतिवादी को अपने कठोर अनुभव के द्वारा यह शिक्षा मिली है कि उनका ईश्वर अन्ततो गत्वा उनके पक्ष मे नही है और अन्त मे वह दुर्भाग्यपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह और उसके बौने मित्र :

> असहाय मोहरे हैं उस खेल के जिसे वह (परमात्मा) खेलता है,
> रात और दिन के सतरंज की बिसात पर
> वह इधर-उधर चलता है, शह लगाता है और गोटियाँ मारता है
> और एक के बाद एक अपने डब्बे मे रखता जाता है ।[2]

विचलन की भावना निष्क्रिय है और उसका प्रतिरूप तथा उलटा पाप की भावना है जो नैतिक पराजय की भावना की ठीक प्रतिक्रिया है । मूल मे और भावना मे पाप तथा विचलन की भावना एक-दूसरे के विरोधी हैं । क्योंकि विचलन की भावना में अफीम का नशा-सा होता है जिससे आत्मा बुराई को स्वीकार कर लेती है, क्योकि वह उस व्यक्ति के नियन्त्रण से परे है और बाहरी परिस्थितियो मे रहती है । पाप की भावना में उत्तेजक प्रभाव होता है, क्योकि वह पापी से कहती है कि पाप अन्ततो गत्वा बाहरी नही है । यह व्यक्ति मे ही है । इसीलिए व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है । केवल यदि वह परमात्मा के उद्देश्यों की पूर्ति करे और अपने को ईश्वर की कृपा पर छोड़ दे । यही पर उन दोनों भावो मे अन्तर है जब ईसाई निराशा के दलदल में फँसा था और जब वह फाटक की ओर दौड़ा था ।

किन्तु एक प्रकार की अवान्तर भूमि है जिसमें दो भावनाएँ एक दूसरे से मिल जाती हैं जैसा भारतीय कर्म की धारणा मे यह स्पष्टतः होता है । कर्म 'मूल पाप' की भाँति उत्तरा-

१. वर्जिल : एनीड, पुस्तक, पंचम, १, २३१ ।
२. ई० फिट्जेराल्ड : रूबाइयात आव उमर खैय्याम, (चौदहवाँ संस्करण) २६६ ।

धिकार की आध्यात्मिक विरासत माना गया है। जिससे आत्मा लदी हुई है और आत्मा उसे हटा नहीं सकती, किन्तु यह बोझ व्यक्ति के निजी कार्यों से किसी भी क्षण घटाया या बढ़ाया जा सकता है। उस ईसाई धर्म में भी इसी प्रकार का रास्ता अजेय भाग्य से जेय पाप तक है। क्योंकि ईसाई धर्म में आत्मा को मूल पाप से शुद्ध होने की सम्भावना प्रदान की गयी है जो पाप आदम से उत्तराधिकार में मिला है। परमात्मा की कृपा को ढूंढने और उसके पाने पर उस पाप से हम शुद्ध हो सकते है और मानव के प्रयत्न और ईश्वर की कृपा से हो सकता है।

मिस्री संकटकाल में, मृत्यु के बाद जीवन में पाप की भावना का पता लगता है, किन्तु क्लासिकी उदाहरण इसरायल के पैगम्बर तथा सीरियाई संकटकाल मे जूडा का आध्यात्मिक अनुभव है। जब ये पैगम्बर सत्य की खोज कर रहे थे और अपना सन्देश उस समाज को दे रहे थे जिससे वे निकले थे, तथा जिसके सदस्यों को उपदेश दे रहे थे, वह समाज असीरियाई शेर के पजों मे असहाय होकर कष्ट मे पड़ा था। उन आत्माओं के लिए उन कष्टो की प्रत्यक्ष रूप से अवहेलना करना महान् और अद्भुत आध्यात्मिक कार्य था कि वे अपने कष्ट के कारण को बाहरी और भौतिक अनिवार्य कारण न समझकर यह समझे कि बाहरी आभास के बावजूद उनका ही पाप था जो उनके कष्टो का कारण था और उन पर सच्ची मुक्ति प्राप्त करना उनके अपने ही हाथो मे था।

इस सत्य का जिसे सीरियाई समाज ने अपने पतन और विघटन के कठोर परीक्षाकाल में पाया है, इसरायल के पैगम्बरो से उत्तराधिकार के रूप मे मिला था तथा उसका प्रचार हेलेनी संसार के सीरियाई आन्तरिक सर्वहारा द्वारा ईसाई मत के रूप में किया गया। इस विदेशी सिद्धान्त के बिना जिसे उन अ-हेलेनी विचारों वाले सीरियाई लोगो ने जिसे ग्रहण किया था हेलेनी समाज वह शिक्षा न ग्रहण कर पाता जो उसकी अपनी प्रकृति के विपरीत थी। साथ ही हेलेनियों ने उस शिक्षा को बहुत अधिक कठिन पाया होता यदि वे स्वय उसी दिशा मे अपने से न चलते होते।

जब सीरियाई धारा के साथ हेलेनी प्रवाह ईसाई धर्म की सरिता में मिला इसके शतियो पहले से ही पाप की भावना की चेतना को हेलेनीवाद के आध्यात्मिक इतिहास मे खोजा जा सकता है।

यदि ओरफीवाद के उद्देश्य, प्रकृति और उद्भव की हमारी व्याख्या ठीक है तो प्रमाण है कि हेलेनी सभ्यता के पतन के पूर्व कम-से-कम कुछ हेलेनी आत्माओं ने अपनी स्वाभाविक सांस्कृतिक विरासत मे आध्यात्मिक रिक्तता का अनुभव किया कि उन्होंने कृत्रिम रूप से 'उच्चतर धर्म' का आविष्कार करने मे असाधारण शक्ति लगायी जो उनसे उत्पन्न मिनोई सभ्यता उन्हे देने मे असफल रही। किसी भी तरह यह निश्चित है कि ई० पू० ४३१ के पतन के बाद सबसे पहली पीढ़ी में ओरफीवाद का प्रयोग एवं दुरुपयोग किया जा रहा था। ऐसा उन आत्माओ को सन्तोष देने के उद्देश्य से किया जा रहा था जो पहले से ही पापग्रस्त थीं और किसी प्रकार उससे मुक्ति के लिए अन्धकार में रास्ता ढूंढ़ रही थी। इसके लिए प्रमाणस्वरूप अफलातून का एक उदाहरण है। ऐसा ही लूथर की लेखनी से निकल सकता था :

"नीमहकीम और ज्योतिषी अपना सौदा अमीरों के हाथ बेचते है और उन्हे विश्वास दिलाते हैं कि हमारे पास परमात्मा से प्राप्त शक्ति है तथा यह शक्ति हमने बलिदान और जादू-टोने से

प्राप्त की है। ये किसी भी पाप का शमन मनोरंजन एवं उत्सवो से करते हैं जिन्हें उन्होने, स्वयं या उनके पूर्वजों ने किया है। वे इन पुस्तकों (म्युसियस या ओरफियुज की) के गोरखधन्धे का अनुसरण करते हैं। वे सरकार के साथ ही साधारण जनता को भी बहकाते हैं कि पाप से मुक्ति तथा शुद्धि बलिदान से या सुखद बच्चे के खेल से प्राप्त की जा सकती है। वे यह भी कहते हैं कि ये धार्मिक 'कृत्य' (जैसा वे इन्हें इस सन्दर्भ में कहते हैं) मरे हुए लोगो के लिए उतने ही लाभकारी है जितने जीवित के लिए। मृत्यु के बाद के ससार की घोर यन्त्रणा से मुक्त करते हैं यदि हम यहाँ और अब, बलिदानो की उपेक्षा करते हैं तो हमें भयावह दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा।"[१]

हेलेनी शक्तिशाली अल्पसंख्यक की आत्माओ में पाप की भावना की यह प्रथम झलक उतनी ही निराशाजनक दिखाई देती है, जितनी वह घृणापूर्ण है। तिस पर भी चार शतियों के बाद हम हेलेनी पाप की भावना पाते है जो कष्ट की अग्नि में इतनी शुद्ध हो गयी कि पहचानी नही जाती, क्योंकि आगस्टन युग के हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यक की आवाज में करीब-करीब ईसाई मत की प्रतिध्वनि है, जो स्वयं वर्जिल की कविता मे सुनी जा सकती है। पहली जार्जिक कविता के अन्त में विख्यात प्रार्थना है कि दुखदायी विचलन के पथ से मुक्ति हो और यह प्रार्थना पाप की स्वीकृति का रूप हो जाती है और यद्यपि यह पाप जिससे मुक्ति की कवि ईश्वर से अर्चना करता है, मूल पाप ही है जो पौराणिक ट्रोजन पूर्वजों से दाय के रूप में प्राप्त हुआ है। पदो की सम्पूर्ण शक्ति पाठको को यह मानने के लिए बाध्य करती है कि वह एक दृष्टान्त है और जिस पाप को रोमन वर्जिल के समय मे वास्तविक रूप से नियोजित कर रहे थे, वह दो शतियों की लम्बी प्रगति में किया गया पाप था, जब वे हेनिबली युद्ध में अग्रसर थे।

वर्जिल की कविता के रचने के एक शती भीतर ही, जो भाव इस कविता में है, हेलेनी समाज के एक क्षेत्र मे शक्तिशाली हो चुकी थी। यह हेलेनी समाज अभी-अभी ईसाई धर्म के प्रभाव में आया था। सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि प्लूटार्क और सेनेका तथा एपिक्टेटस और मार्क्स आरीलियस की पीढ़ियाँ सर्वहारा के उद्गम से आये प्रकाश तक पहुँचने के लिए अनजाने ही तैयार हो रही थीं। यद्यपि इन चतुर हेलेनी बौद्धिक लोगो ने कभी इस स्रोत से किसी अच्छी बात के होने का अनुमान नही किया था। दोनो ने, हृदय की अज्ञात तैयारी में तथा इस चुने गये विषय में, सर्वहारा की इस प्रदत्त प्रबुद्धता को चतुराई से अस्वीकार किया। इसका चित्रण राबर्ट ब्राउनिंग के पात्र 'क्लिओन' मे बड़ी ही अन्तर्दृष्टि एवं खूबी के साथ किया गया है। ईसाई युग की प्रथम शती मे हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यक का क्लिओन काल्पनिक दार्शनिक था। अपने ऐतिहासिक अध्ययन से उसके मन की ऐसी दशा हो गयी जिसे वह 'गम्भीर निरुत्साह' कहता है। फिर भी जब यह उसे बताया गया कि वह अपनी समस्याओ को जिन्हें वह स्वयं सुलझा न सका था, किसी एक 'पालस' को बताना चाहिए, तब उसने स्वीकार किया कि उसका आत्मसम्मान उत्तेजित हो उठा है।

> तुम नहीं सोच सकते कि एक बर्बर यहूदी,
> जैसा पालस, जिसका खतना हुआ है,

१. प्लेटो : रिपबलिक, ३६४ बी–३६५ ए।

उस रहस्य को जानता है, जो हम लोगों से छिपा है ।[1]

हेलेनी और सीरियाई समाज ही केवल वे सभ्यताएँ नहीं हैं, जिनमें सामाजिक ढाँचे के नष्ट होने के आघात से पाप की भावना का जागरण हुआ है । ऐसे समाजों की सूची बनाने का प्रयत्न किये बिना, उपसंहार में हम कह सकते हैं कि हमारे अपने समाज को उस सूची में सम्मिलित होना चाहिए ।

निश्चय रूप से पाप की भावना ऐसी है जिससे आधुनिक पश्चिमी बौना जगत् अच्छी तरह परिचित है । यह परिचय उस पर लादा गया है, क्योंकि पाप की भावना 'उच्चतर धर्म' का महत्त्वपूर्ण रूप है, जो हमें उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है । इस स्थिति में किन्तु, घनिष्ठता से उतनी घृणा नही, विरक्ति अधिक उत्पन्न हुई । आधुनिक पश्चिमी ससार के और इसके विपरीत छठी शती के हेलेनी संसार के स्वभाव के बीच मानव स्वभाव में भ्रष्टता दिखाई देती है । हेलेनी समाज ने अपना जीवन, बर्बर बहुदेव-पूजा की नीरस और असन्तोषपूर्ण धार्मिक विरासत से आरम्भ किया था । वह समाज अपनी आध्यात्मिक दरिद्रता के प्रति सचेत दिखाई पड़ा और उसने उस रिक्तता को पूरा करने के लिए ओरफीवाद के उच्चतर धर्म का आविष्कार किया, जैसा दूसरी सभ्यताओ ने अपने पूर्वजो से प्राप्त किया था । ओरफीवाद के सस्कार और सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि पाप की भावना अवरुद्ध धार्मिक भावना है, जिससे छठी शती के हेलेनी सामान्य स्वाभाविक ढंग से प्रकट करने के लिए बहुत उत्सुक थे । हेलेनी समाज के विपरीत हमारा पश्चिमी समाज ऐसी उदारतापूर्ण सभ्यता है जो सभ्यताएँ उच्चतर धर्म की छत्रछाया तथा सार्वभौम धर्म की प्रारम्भिक अवस्था में विकमित हो चुकी है । और चूँकि पश्चिमी मनुष्य अपने को जन्म-सिद्ध ईसाई समझता है । उसने बहुधा ईसाई धर्म का अवमूल्यन किया है और अस्वीकार करने की सीमा तक पहुँच गया है । वास्तव में हेलेनीवादी पन्थ इटालियाई पुनर्जागरण के बाद से पश्चिमी धर्मनिरपेक्ष सस्कृति मे बहुत शक्तिशाली तथा अनेक दृष्टियो से सफल रहा है । इसे हेलेनीवाद के रूढ़िवादी विचार के अनुसार कुछ अशो मे पुष्ट किया गया है और जीवित रखा गया है । इसे जीवन का ढंग बनाया गया है जिसमे सब आधुनिक पश्चिमी गुणों का समावेश है जिसमें पश्चिम का मानव जो सरलता से अपने को पाप की भावना से मुक्त कर देता है और अब बड़े परिश्रम से ईसाइयत के आध्यात्मिक विरासत से शुद्ध कर रहा है । यह सयोग की बात नही है कि प्रोटेस्टेन्टवाद के अनेक अद्यतन रूपो ने स्वर्ग की धारणा रखे रहने पर भी नरक की धारणा का बिलकुल तिरस्कार किया और शैतान की धारणा हास्य-अभिनेताओ और व्यंग्यकारो के लिए छोड़ दी है ।

आज हेलेनीवाद को भौतिक विज्ञान कोने में ढकेलता जा रहा है, किन्तु पाप की भावना से मुक्ति का उससे सुधार नहीं हुआ । हमारे सुधारक और उदारवादी लोग गरीबो के पाप को

१. उपर्युक्त अनुच्छेद में उद्धृत प्रमाण के अनुसार ब्राउनिंग का काल्पनिक कवि क्लीओन का औचित्य इस तथ्य से अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि किंग प्रोट्स द्वारा क्लीओन के समक्ष उठायी गयी ईश्वरपरक समस्या केवल पाप की भावना से ही सम्बन्धित थी, वरन् आत्मा की अनश्वरता से भी सम्बन्धित थी ।

बाहरी परिस्थितियों के कारण से उत्पन्न दुर्भाग्य बताते हैं । 'गन्दी बस्ती में पैदा हुए मनुष्य से आप क्या आशा कर सकते हैं ?' और हमारे मनोविश्लेषणकर्त्ता अपने रोगियों के पापों को आन्तरिक परिस्थितियों, ग्रन्थियों एवं नाड़ियों के विकार के कारण उत्पन्न दुर्भाग्य रूप में मानते हैं । पाप का यही कारण माना जाता और रोग के रूप में उसका शमन करने की चेष्टा की जाती है । इसी प्रकार का विचार सैमुएल बटलर के अरह्वोन के दार्शनिकों द्वारा पहले ही बताया गया है । अरह्वोन में, जैसा पाठकों को याद होगा, गरीब श्री नासनिबोर को पारिवारिक चिकित्सक को बुलाना पड़ा क्योंकि वह गबन के रोग से पीड़ित था ।

क्या आज का पश्चिम का मानव 'ऐथ' के प्रतिशोध के पहले अपने 'यूबरीस' से दूर रहकर उसके लिए पश्चात्ताप करेगा ? इसका उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता, किन्तु हम किसी निदान के लिए व्यग्रतापूर्वक आध्यात्मिक जीवन के आध्यात्मिक धरातल की सूक्ष्म परीक्षा कर सकते हैं । इस निदान से हमें यह आशा प्राप्त हो सकती है कि हम उस आध्यात्मिक मनःशक्ति के प्रयोग को पुन. प्राप्त कर रहे हैं, जिसे हम करीब-करीब निर्जीव कर चुके है ।

(५) असामंजस्य की भावना

(अ) व्यवहार में बर्बरता तथा अभद्रता

व्यवहार में बर्बरता तथा अभद्रता के असामजस्य की भावना उस मनोवृत्ति का निष्क्रिय विकल्प है, जो सभ्यता के विकास के साथ-साथ विकसित होती है । मन की इस अवस्था का व्यावहारिक रूप तब प्रकट होता है, जब वह व्यावहारिक अनिर्णयात्मक रूप मे रहती है और सामाजिक विघटन की क्रिया मे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकट होता है । जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्र, धर्म, साहित्य, भाषा, कला के साथ-ही-साथ अधिक विस्तृत एव अनिश्चित 'व्यवहार एव रीति-रिवाज' के क्षेत्र मे भी यह प्रकट होता है । अन्तिम क्षेत्र से ही विचार करना सरल होगा ।

इसका प्रमाण खोजने के लिए हम सम्भवतः महान् आशा के साथ अपनी दृष्टि आन्तरिक सर्वहारा को ओर मोड़ेंगे, क्योकि हम पहले से ही देख चुके हैं कि आन्तरिक सर्वहारा की मूल तथा सामान्य विपत्ति जड़ से निर्मूल होने का सकट है । सामाजिक उन्मूलन का यह भयावह अनुभव और अनुभवो से अधिक पोड़ित आत्माओ में असामंजस्य की भावना उत्पन्न कर देती है । यह पहले से हो सोचो सम्भावना तथ्यो से प्रमाणित नहो होती । क्योंकि बहुधा जिस कठिन विपत्ति मे आन्तरिक सर्वहारा पड़ता है, वह अधिकतम कठिनाई प्रेरणा का कार्य करती है और हम देखते हैं कि निर्मूलित, निर्वासित एव अरक्षित लोग जिनसे आन्तरिक सर्वहारा बना है अपनी सामाजिक विरासत को मजबूती से पकड़े ही नही है बल्कि प्रभावशाली अल्पसंख्यक में प्रसारित भी कर रहे हैं जिनसे यह सम्भावना कि अपनी संस्कृति इन लावारिसों और आश्रयहीन लोगों पर लादेंगे, जिन्हे उन्होंने अपने जाल में फँसाया है और अपने अधीन रखा है ।

यह और भी आश्चर्यजनक है, जैसा हम देखते हैं, कि शक्तिशाली अल्पसंख्यक बाहरी सर्वहारा के सास्कृतिक प्रभाव को इसी प्रकार ग्रहण करते हैं । यह विचार करते हुए कि ये लड़ाकू दल शक्तिशाली अल्पसंख्या से सीमा पर सैनिकों द्वारा अलग रहते हैं, ऐसी सम्भावना होती है

कि इनके बर्बर एवं सामाजिक विरासत में आकर्षण और सम्मान दोनों की कमी होती है। यद्यपि यह सम्मान और आकर्षण स्पष्ट रूप से उन जीर्ण सभ्यताओं से अब भी सम्बद्ध है, आन्तरिक सर्वहारा जिनका कम-से-कम कुछ रंगरूटो के रूप में वारिस है।

फिर भी हम देखते हैं कि तीन विभागो में, जिनमें विघटित सभ्यता बँट जाती है शक्तिशाली अल्पसंख्या ही है जो शीघ्र असामंजस्य की भावना ग्रहण करती है। शक्तिशाली अल्पसंख्यक के सर्वहाराकरण का अन्तिम परिणाम यह होता है कि सामाजिक जीवन में भेद समाप्त हो जाता है, जो सामाजिक पतन के दण्ड की सूचना है। अन्त में शक्तिशाली अल्पसंख्यक अपने पाप का प्रायश्चित्त उस भेद को समाप्त करके करता है जो उसी के कारण हुआ था और अपने ही सर्वहारा में मिल जाता है।

सर्वहाराकरण की यह प्रणाली दो समानान्तर रेखाओं मे चलती है, एक तो आन्तरिक सर्वहारा से सम्पर्क के कारण अभद्रता तथा बाहरी सर्वहारा के सम्पर्क के कारण बर्बरता। यह उचित होगा कि साम्राज्य निर्माताओं की ग्रहणशीलता के प्रमाण को हम देखे क्योकि शायद यह क्षमता परिणाम का कुछ समाधान कर सके।

वे सार्वभौम राज्य जिनके निर्माता साम्राज्य शिल्पी है अधिकाश सैनिक विजय द्वारा बने हैं। इसीलिए हम सैनिक तकनीक के क्षेत्र मे ग्रहणशीलता के उदाहरण देखने की चेष्टा करे। उदाहरणार्थ, पालीबियस के अनुसार, रोमनो ने अपनी स्थानीय रिसालो की सेना की सज्जा समाप्त कर ग्रीकों की अपनायी जिन्हें वे पराजित कर रहे थे। मिस्र के 'नये साम्राज्य' के थीबी सस्थापको ने अपने पराजित खानाबदोश हाइक्सो से घोड़े और रथ को लड़ाई का आयुध लिया था। विजयी उसमानलियो ने पश्चिम की आविष्कार की हुई बन्दूकों को ग्रहण किया और जब इस विशेष लड़ाई का तख्ता पलटा तब पश्चिमी ससार ने उसमानलियो से अनुशासित अभ्यास-युक्त और युनिफार्मयुक्त पेशेवर पैदल सेना को अपनाया।

किन्तु ऐसा ऋणादान सेना तक ही सीमित नही है। हिरोडोटस ने लिखा है कि परशियनो ने, जो अपने को अपने पड़ोसियो से श्रेष्ठ समझते थे, मीडीस से उनकी वेशभूषा ली और अनेक विदेशी विलास की बातें ग्रहण की जिनमे यूनानियो का अस्वाभाविक व्यभिचार भी था। पाँचवी शती मे एथेन्स की उग्र आलोचना करते हुए बूढ़े धनिक तन्त्री ने कहा है कि सामुद्रिक प्रभुत्व के कारण उसके देशवासियो का विदेशी रीति-रिवाजो द्वारा अधिक पतन हुआ है। और जो यूनानी समुदाय कम बाहर जाने वाले थे उनका पतन कम हुआ। हमारा धूमपान उत्तरी अमेरिका के आदिम रेड इंडियनो के उन्मूलन का स्मारक है, हमारा काफी तथा चायपान, पोलो खेलना, पायजामा पहनना, तुर्की स्नान, यूरोपीय व्यापारियों का उसमानिया कैसरे-रूम और मुगलों के कैसरे-हिन्द की गद्दी पर फिरंगी व्यापारियो के विजय की याद दिलाता है। हमारा जैज नृत्य अफ्रीकी नेग्रो को दास बनाने, अटलान्टिक के पार निर्वासित होकर अमरीका की धरती पर श्रम करने तथा तम्बाकू की खेती की याद दिलाता है। जिसने रेड इंडियनों के विनाश करने का स्थान लिया है।

विघटित समाज के शक्तिशाली अल्पसंख्यक की ग्रहणशीलता के कुछ अधिक कुख्यात प्रमाणों के बाद जब हम अपना सर्वेक्षण पहले उस आन्तरिक सर्वहारा के शान्तिमय सम्पर्क से

उत्पन्न शक्तिशाली अल्पसंख्यक से करें जो उसकी दया पर आश्रित है, तब बाहरी सर्वहारा के यौद्धिक सम्पर्क से जिससे उसमें बर्बरता उत्पन्न होती है जिसका अनुशासन वह हटा देता है।

जब शक्तिशाली अल्पसख्यक का सम्पर्क आन्तरिक सर्वहारा के साथ शान्तिमय होता है इस रूप मे कि सर्वहारा पर विजय प्राप्त हो चुकी है, तब बहुधा ऐसा होता है कि शासकों और शासितो का पहला सम्पर्क इस भूमिका के रूप में होता है कि सर्वहारा के रंगरूट साम्राज्य बनाने वालों की सेना मे भर्ती होते हैं। उदाहरणार्थ रोमन साम्राज्य की स्थायी सेना का इतिहास क्रमागत मिश्रण की कहानी है जो तदर्थ और शौकिया सेना मे भर्ती होने वालो से बदलकर उसके बाद ही स्थायी और पेशेवर सेना में आगस्टस द्वारा हुई। कुछ शतियो मे जो सेना मूल मे सम्भवतः पूरी-की-पूरी शक्तिशाली अल्पसख्यको से बनायी गयी थी अब आन्तरिक सर्वहारा की बनने लगी और अन्त में अधिकाश बाहरी सर्वहारा की भी। रोमन सेना का ही इतिहास ब्योरे के अन्तर के साथ ईसाई युग की सत्रहवी शती के माचू साम्राज्य निर्माताओ द्वारा निर्मित सुदूरपूर्वी सार्वभौम राज्य की सेना का है तथा अरब के इतिहास मे उम्मेयद और अब्बासी खलीफाओ की अरब की सेना का है।

यदि हम उस महत्त्व के मूल्याकन करने का प्रयत्न करे जो शक्तिशाली अल्पसंख्यक तथा आन्तरिक सर्वहारा के बीच का भेद मिटाने के लिए सेना ने किया है, तो हम देखेगे, जैसी हम आशा भी करते हैं—कि यह तथ्य वहाँ बड़े महत्त्व का है, जहाँ शक्तिशाली अल्पसख्यक साम्राज्य निर्माता रहे है और जो केवल सीमावर्ती नही थे, बल्कि विदेशी सीमा के लोग थे अर्थात् बर्बर वश के साम्राज्य-निर्माता। क्योकि सीमा वाले जीवन की सुविधाओ को ग्रहण करने मे जितने कुशल हैं उससे कही अधिक बर्बर विजेता अधिक ग्रहणशील है, उन लोगो के बीच जिन पर उन्होने विजय पायी है। ऐसा कुछ-न-कुछ मचुओ तथा मुँचुरियाई चीनी प्रजा के बीच सेना के सम्पर्क से हुआ निष्कर्ष था। माचू पूर्ण रूप से चीनियो मे मिल गये और दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के विजेता आदिम अरब मुसलमानो के इतिहास में भी यही झुकाव दिखाई देता है कि कानूनी अलगाव को छोड़कर वास्तविक सहजीवन ग्रहण किया, और ये अनजाने ही सीरियाई सार्वभौम राज्य को पुनःस्थापित कर रहे थे, जिसे उन्होंने अर्द्ध परिपक्व रूप मे पराभूत एकेमेनिडी साम्राज्य से पहले पाया था।

जब हम विकासोन्मुख समाज में विकसित होते हुए शक्तिशाली अल्पसख्यक के इतिहास की ओर, जैसा कि प्रभावशाली अल्पसख्यक सामान्यतः विकसित होता है, दृष्टि डालते है तब सैनिक तथ्य को छोड़ नही सकते। किन्तु, हम देखेंगे कि सैनिक समागम के स्थान पर व्यापार की साझेदारी आ जाती है। प्राचीन धनतन्त्री ने कहा है कि सागरतन्त्री एथेन्स मे गलियो के निम्न-वर्ग के नागरिको तथा विदेशी दासो मे कोई अन्तर नही जान पड़ता था। रोम गणराज्य के बाद के दिनो मे रोमन अभिजात परिवारो की व्यवस्था उनके असंख्य नौकरो तथा विस्तृत संगठन के साथ अनेक योग्यतम स्वामियो के स्वतन्त्र किये हुए दास अतिरिक्त अग के रूप मे कर रहे थे और जब सीजर का परिवार सिनेट और रोमन सार्वभौम राज्य की व्यवस्था करने वाले लोगों के साथ हो गया, तब सीजर के मुक्त दास केबिनेट के मन्त्री हो गये। आरम्भिक रोमन साम्राज्य के मुक्त दास उसमानिया साम्राज्य के घरेलू दासो के समान ही थे, जिन्हे बहुत शक्ति मिल गयी थी और जो प्रधान मन्त्री के शक्तिशाली तथा खतरनाक पद तक पहुँच गये थे।

शक्तिशाली अल्पसंख्यक और आन्तरिक सर्वहारा के बीच के सहजीवन के सभी उदाहरणों में दोनों दल प्रभावित होते थे। प्रत्येक पर प्रभाव ऐसा होता था कि एक वर्ग दूसरे से मिल जाने की ओर अग्रसर होता था। 'व्यवहार' के ऊपरी धरातल पर आन्तरिक सर्वहारा मताधिकार की ओर चलता था और शक्तिशाली अल्पसंख्यक अभद्रता की ओर। ये दोनों गतियाँ पूरक है और हर समय होती रहती हैं। किन्तु सर्वहारा का मताधिकार आरम्भिक काल मे अधिक स्पष्ट है, यही बाद मे शक्तिशाली अल्पसख्यक की अभद्रता हमारा ध्यान बलपूर्वक आकृष्ट करती है। रोमन शासक वर्ग के 'रजत युग' की अभद्रता इसका क्लासिकी प्रमाण है। इस निम्न स्तर की ट्रेजडी का उल्लेख अथवा व्यंग्य चित्रण—एक लैटिन साहित्य मे किया गया है, जिसमे दूसरी शैलियो की प्रेरणा समाप्त हो चुकने पर भी व्यंग्य चित्रण की प्रतिभा अब भी सुरक्षित है। रोमन विलास की प्रगति (अंग्रेज चित्रकार) होगार्थ के चित्रो मे देखी जा सकती है। जिनमे मुख्य नायक केवल कोई अभिजात कुल का ही नही है, वरन् सम्राट् जैसे है, कैलीगुला, नीरो, कोमोडस और कैराकैला।

अन्तिम के विषय मे हम गिबन के इतिहास मे पढ़ते है : "कैराकैला का व्यवहार उद्धत एव अहकारपूर्ण था, किन्तु अपनी सेना के साथ तो उसे अपने पद तथा श्रेणी तक का ध्यान नही रहता था तथा बदतमीजी से भरी हुई मित्रता को प्रोत्साहित करता था। जनरल के आवश्यक कर्तव्यो की उपेक्षा करता तथा साधारण सैनिक के शिष्टाचार तथा वेश की नकल करता था।"

सर्वहारा बनने का कैराकैला का ढग उतना न भावनात्मक था न इतना रोगमूलक, जितना सगीत कलाकार नीरो का या तलवार के धनी कोमोडस का। किन्तु इनका महत्त्व सामाजिक निदान के रूप में है। हेलेनी शक्तिशाली अल्पसख्यक के, जिसने अपने सामाजिक विरासत को अस्वीकार कर दिया था, प्रतिनिधि का चित्रण एक सम्राट् के रूप मे किया गया है जो एकेडेमी और स्टोआ की स्वतन्त्रता से अलग हटकर सर्वहारा के बैरको के कमरों की स्वतन्त्रता मे आया। इस एकेडेमी तथा स्टोआ की स्वतन्त्रता को उसने बरदाश्त नही किया, क्योकि वह जानता था कि वह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। वास्तव मे इस समय तक आगस्टन समाहरण के बाद हेलेनी समाज के पुनःस्खलन के पहले दो विरोधी धाराएँ वेग गति तथा परिणाम के साथ शक्तिशाली अल्पसख्या और आन्तरिक सर्वहारा से चलकर सर्वहारा की धारा में बदल गयी। और वह भी यहाँ तक कि आज का देखने वाला यह समझ सकता है कि मै एक ही धारा की गति देख रहा हूँ और जो अब दूसरी दिशा में बदल गयी है।

यदि हम अपनी दृष्टि सुदूर पूर्वी संसार की ओर डाले, तो रोमन शासक वर्ग के सर्वहाराकरण की कहानी के प्रथम अध्याय में हम देखेगे कि वर्तमान समय वह फिर जन्म ले रहा है। एक जीवित पश्चिमी विद्वान् ने निम्नलिखित लेख मे बताया है कि एक ही पीढ़ी मे मताधिकार के स्थान पर सर्वहाराकरण हो रहा है। मंचू बना चीनी पिता अपने सर्वहारा हुए बच्चे से अलग है।

'मंचूरिया में यह सम्भव था कि मुख्य चीन का कोई चीनी अपने जीवन काल में ही पूर्ण रूप से मंचू बन जाय। इसका एक उदाहरण मुझे उस समय मिला, जब एक चीनी सैनिक अधिकारी तथा उसके बूढ़े पिता से मेरी जान-पहचान हुई। बूढ़ा पिता, होनान मे पैदा हुआ था और अपनी

यौवनावस्था में मंचूरिया में गया। तीन प्रान्तों के सुदूर प्रदेशों की उसने यात्रा की तथा अन्त में सित्सिहार में बस गया। एक दिन मैंने उस जवान से पूछा—'सित्सिहार में पैदा होकर भी तुम सामान्यत: मंचूरी चीनियों-जैसे क्यों बोलते हो ? जब कि तुम्हारे पिता जो होनान मे पैदा हुए थे, केवल बोलते ही नहीं हैं बल्कि मंचूरिया के बूढ़ो की भाँति व्यवहार एवं हाव-भाव भी है।' वह हँसा और बोला—'जब मेरे पिता जवान थे तब मिनजेन (राजवंशी नहीं वरन् मामूली चीनी, जन-साधारण नागरिक) के लिए उत्तरी क्षेत्र में जीवन बिताना कठिन था। मांचू लोगों का प्रभाव सब पर था। किन्तु जब मै तरुण हुआ तब राजवंशी होना किसी काम का नही था। अतएव मैं अपनी पीढ़ी के अन्य नवजवानों की भाँति हो गया।' यह एक कहानी है जो अतीत और वर्तमान की प्रक्रिया को बताती है क्योकि मचूरिया के युवक मचूरिया में पैदा हुए चीनियो के साथ एक समान हो गये हैं।[१]

किन्तु १९४६ ई० में किसी अंग्रेज को सर्वहाराकरण की प्रणाली के अध्ययन के लिए न तो गिबन के इतिहास पढ़ने की आवश्यकता है और न ट्रान्ससाइबेरियन रेल मे यात्रा करने की। वह अपने घर मे यह कर सकता है। सिनेमा मे वह देख सकता है कि सब लोग ऐसे फिल्म देखते हैं जो बहुसख्यक सर्वहारा के मनोरजन के लिए बनी है। और क्लबो मे भी येलो प्रेस का बहिष्कार नही होता है। यदि हमारे आधुनिक काल का 'जुवेनाल' पारिवारिक मनुष्य होता, घर के अन्दर रहता, फिर भी उसकी प्रतिमूर्ति मिल जाती यदि वह अपने कान खोलता (जो बन्द करने से सरल होता) तो वह जाज़ अथवा विविध कार्यक्रम रेडियो पर सुनता जिसे उसके लड़के सुनते हैं। और छुट्टियो की समाप्ति पर जब वह अपने बच्चो को 'पब्लिक स्कूल' मे जाते देखता जो सामाजिक अलगाव के कारण लोकतन्त्रियो की घृणा का पात्र था, तब इन बच्चों से यह कहना न भूलता कि उसके स्कूल मे कितने अभिजात कुल के हैं। और जब हमारे विचित्र कुल पिता युवक सजीव कोमोडस को देखते तो उन्हे पता चलता कि हैट किस बाँकपन से लगायी गयी है और गुडो के ढग का रूमाल, जो देखने मे मालूम पड़ता है यो ही गले में डाल लिया गया है, वास्तव मे चतुराई से इस प्रकार रखा गया है कि आवश्यक सफेद कालर को छिपा ले। यह निश्चित प्रमाण है कि सर्वहारा का फैशन चल रहा था। जैसे तिनके से वास्तव मे हवा का रुख मालूम पड़ता है वैसे ही व्यग्यकार का साधारण मजाक इतिहासकारो की चक्की के लिए अनाज का काम देता है।

जब हम शक्तिशाली अल्पसख्यक का सर्वहारा के साथ शान्तिपूर्ण समागम द्वारा उत्पन्न अभद्रता की ओर देखते है और उसके बाद सीमा के परे बाहरी सर्वहारा के युद्धजनित सम्पर्क से बर्बरता उत्पन्न होते देखते हैं, तब हमे पता चलता है कि दोनों नाटको का कथानक समान है। इसमें दूसरे का दृश्य और साज-सज्जा कृत्रिम सैनिक सीमा है—सार्वभौम राज्य की सीमा-जिसके पार शक्तिशाली अल्पसंख्या तथा बाहरी सर्वहारा एक-दूसरे के सामने परदा उठते समय दिखाई देते हैं और इस रूप मे कि एक-दूसरे से अलग है और विरोधी हैं। जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है, अलगाव घनिष्ठता में बदल जाता है, किन्तु इससे शान्ति नहीं होती, और जैसे-जैसे युद्ध

१. ओ. लैटिमोर : मंचूरिया, कैडिल आफ कान्फ्लिक्ट (१९३२) पृ० ६२-३।

बढ़ता है समय बर्बरता के अनुकूल रहता है । अन्त में सीमा टूट जाती है, तब तक उस राज्य पर विजय होती जिसकी शक्तिशाली अल्पसंख्या अबतक रक्षा कर रही थी ।

पहले अंक में बर्बर शक्तिशाली अल्पसंख्या के देश में बन्धक और फिर वैतनिक सैनिक के रूप में आता है और दोनों स्थितियो मे वह स्वयं को थोड़ा-बहुत विनम्र बना लेता है । दूसरे अंक में वह आक्रमणकारी, अनियन्त्रित तथा अवांछित हो जाता है, जो अन्त में उपनिवेशक या विजयी के रूप मे बस जाता है । इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय अंकों के बीच सैनिक प्रभुता बर्बरों के हाथों में चली जाती है । इस प्रकार शक्ति और ऐश्वर्य का शक्तिशाली अल्पसंख्यकों से बर्बर लोगों के पास जाना शक्तिशाली अल्पसख्यकों की धारणा को विशेष रूप से प्रभावित करता है । बर्बरता की पुस्तक का एक के बाद दूसरे पृष्ठ से वह अपनी शीघ्र ह्रासोन्मुख सैनिक तथा राजनीतिक दशा सुधारना चाहता है । और अनुकृति तो चापलूसी है ही ।

इस प्रकार नाटक के कथानक का वर्णन करते हुए हम आरम्भ की ओर लौट सकते हैं और मंच के पहले ही दृश्य में बर्बरों को शक्तिशाली अल्पसख्यक के शिष्य के रूप मे देखते हैं । फिर हम शक्तिशाली अल्पसख्यक को मिलने-जुलने की ओर अग्रसर होते हुए पाते हैं । और थोड़े समय में ही हम दोनो विरोधियो की ऐसी झलक पाते हैं कि एक-दूसरे के उधार लिये पखो को धारण करके वे अनाड़ी की भाँति विकृत बन जाते हैं । और नकल करते-करते काइमेरा (शेर के मुख, बकरे की धड़ और साँप की पूंछ वाला विशाल काल्पनिक जन्तु) के समान मिश्रित वस्तु बन जाते हैं । अन्ततो गत्वा पहले वाले शक्तिशाली अल्पसंख्यक का अपना अन्तिम चिह्न भी खो देते हैं । और शक्तिशाली अल्पसख्यक बर्बरता के साधारण धरातल पर आ जाता है ।

बर्बर युद्ध गिरोह की सूची मे जो सभ्य शक्तियों के हाथ मे बन्धक होकर प्रसिद्ध हुए हैं उनमे कुछ ये हैं : कान्स्टैन्टिनोपल के रोमन कोर्ट मे थियोडोरिक ने बन्धक के रूप मे ही शिक्षा पायी । एड्रियानोपुल के उसमानिया दरबार मे स्कैंडरवर्ग को भी इसी प्रकार शिक्षा मिली । मैसेडान के फिलिप ने युद्ध और शान्ति की कला इपैमिनोनडास से थीबेस मे सीखी थी । मोरक्को सरदार अब्दुल करीम ने जिसने अनवाल मे स्पेन की अभियानी सेना का नाश सन् १९२१ में किया था तथा, चार वर्षों बाद मोरक्को मे फ्रासीसी शक्ति को जड़ से हिला दिया, स्पेन के मेलिला जेल में ११ महीने तक शिक्षा पायी ।

उन बर्बरो की सूची लम्बी है जो विजयी के रूप के पहले वेतनभोगी सैनिक थे । ईसवी पाँचवीं और सातवी शती में रोमन प्रदेशो के टघुटोनी और अरब बर्बर विजेता के उन अनेक पीढ़ियों के वशज थे, जिन्होने रोमन सेना मे सेवा की थी । ईसा की नवी शती मे अब्बासी खलीफा के तुर्की अंगरक्षक ने तुर्की उन समुद्री दस्युओं के लिए मार्ग बनाया, जिन्होने ११ वी शती में खलीफा के उत्तराधिकारी राज्यों के लिए जगह बनायी । और उदाहरण भी दिये जा सकते है । और हमारी सूची और भी बड़ी होती यदि सभ्यताओ के अन्तिम पीड़ाओ का ऐतिहासिक उल्लेख इतना कम न होता । किन्तु हम कम-से-कम अनुमान कर सकते हैं कि समुद्रों में विचरण करने वाले उन बर्बरों ने—जो मिनोई समुद्री राज्य की सीमाओं पर चक्कर काटा करते थे और जिन्होंने सम्भवत: १४०० ई० पू० मे नासास को लूटा था—अपना प्रशिक्षण मिनोस के भाड़े के टट्टू के रूप में ग्रहण किया था । ऐसा उन्होंने उनका विनाश करने के पहले

किया था, और किंवदन्ती है कि केन्ट के ब्रिटिश राजा वोर्टिगर्न ने सैक्सन वैतनिक सैनिकों को नौकरी में रखा था, उसके पहले जब वह हेंगिस्ट तथा होरसा-जैसे असमर्थनीय लुटेरों द्वारा हराया गया।

हम उन अनेक प्रमाणों का भी पता लगा सकते हैं, जिनमें बर्बर लोलुप अपनी आकांक्षा तक नही पहुँच सके। उदाहरणार्थ, पूर्वी रोमन साम्राज्य वरेजियो (वैरेंजी नारवे के डाकू होते थे। यूरोप के पूर्वी तथा दक्षिणी सम्राटो के अंगरक्षक प्राय. वैरेंजी ही होते थे) का शिकार हो जाता, यदि उन्हे नारमन तथा सालजुकों ने पराजित न कर दिया होता और अन्त मे उसमानलियो द्वारा पूरा-का-पूरा हड़प न लिया गया होता। इधर उसमानिया साम्राज्य निश्चित रूप से बोसनियको तथा अलबेनियन धनलोलुपों मे विभाजित हो गया होता, जो प्रान्तीय पाशाओं तथा तुर्की सरकार पर भी ईसा की अठारहवी तथा उन्नीसवी शती मे शीघ्रता से अधिकार कर रहे थे। किन्तु फिरंगी व्यापारियो ने उसमानिया इतिहास के अन्तिम अध्याय को लेवाट (पूर्वी भूमध्य सागर) मे पश्चिमी राजनीतिक विचारो तथा मैनचेस्टर के सामानो की बाढ़ से अप्रत्याशित ढग से मोड़ दिया। ओसकन धनलोलुप जिन्हे कैंमेनिया के यूनानी नगर-राज्यो मे और महत्तर यूनान तथा सिसिली मे सेवाओ के लिए अच्छा अवसर मिला था, अपने यूनानी मालिको को जब भी अवसर होता था हटा देते थे या निकाल देते थे। और इसमे सन्देह नही कि ग्रीक मालिको के उन्मूलन का कार्य तब तक चलता जब तक ओट्रान्टो के जलडमरूमध्य के पश्चिम एक भी यूनानी समुदाय बच जाता। यदि संकट के समय रोमनो ने ओसकनो को उन्ही के देश मे पीछे से आक्रमण न किया होता।

इन उदाहरणो से हम समकालीन परिस्थिति का सकेत करते है जिसके सम्बन्ध मे हम ठीक नही कह सकते कि ये धनलोलुप लुटेरे बन जायेंगे और यदि बन गये तो उनका यह कार्य ओसकन और अलबेनियनो के समान आरम्भ मे ही नष्ट हो जायगा कि ट्युटनो और तुर्कों की भाँति सफल होगा। आज के भारतीय देश के भाग्य के प्रति उन बर्बरो की भविष्य की भूमिका के सम्बन्ध मे सोच सकता है जो भारत सरकार की प्रशासन की सीमा से परे स्वतन्त्रता के गढ़ मे रहते हैं और जिनमे से १९३० के युद्ध मे भारतीय सेना मे एक बटे सात भाग थे। क्या उन दिनो के धनलोलुप गोरखा तथा आक्रमणकारी पठान बर्बरो के विजयी पिता और पितामह के रूप मे इतिहास मे याद किये जायेंगे जो ब्रिटिश राज के उत्तराधिकारी राज्यो के निर्माता हिन्दुस्तान मे बनेंगे ?

इस उदाहरण मे हम नाटक के दूसरे अंक से अपरिचित हैं। इस अवस्था में नाटक की प्रगति देखने के लिए हमे हेलेनी सार्वभौम राज्य तथा रोमन साम्राज्य की उत्तरी परिसीमा से परे यूरोपीय बर्बरो के बीच के सम्बन्ध की कहानी की ओर अवश्य लौटना पड़ेगा। इस ऐतिहासिक मच पर हम आरम्भ से अन्त तक समानान्तर क्रियाएँ देखते हैं जिनसे शक्तिशाली अल्पसख्यक बर्बरता मे परिणत हो जाते है और बर्बर उनके बलिदान पर अपने भाग्य चमकाते हैं।

प्रबुद्ध स्वार्थ के उदार वातावरण में नाटक आरम्भ होता है।

'बर्बरों के लिए साम्राज्य घृणा का पात्र नही था। वास्तव मे वे बहुधा उसकी सेवा करने के लिए लालायित रहते थे। उन्हें अलारिक या अतावुल्फ के समान ऊँचे सैनिक अधिकारी

के रूप में भरती होने के अतिरिक्त और कोई आकांक्षा नहीं थी । दूसरी तरफ रोमन चाहते थे कि युद्ध में बर्बरों को सेना मे भर्ती किया जाय ।'[१]

ईसा की चौथी शती के करीब-करीब मध्य मे यह दिखाई देता है कि रोमन सेवा में नियुक्त जर्मनो ने अपने निजी नामो को ही रखने का अभ्यास आरम्भ कर दिया था । शिष्टाचार का यह परिवर्तन जो अचानक हो गया, बर्बर अधिकारियो के मन मे आत्मविश्वास का द्योतक है, जो पहले बिना हिचकिचाहट के रोमन बनने मे सन्तुष्ट थे । उनके सास्कृतिक व्यक्तित्व को इस नये आग्रह के विपरीत रोमनो ने कोई अ-बर्बर कार्य नही किया । इसके विपरीत इसी समय बर्बर रोमनों की सेना मे कौंसल होने लगे । यह सबसे बडा पद था जो सम्राट् दे सकता था ।

इस प्रकार जब बर्बर अपना पाँव रोम की सामाजिक सीढ़ी पर सबसे ऊपर रख रहे थे, तब रोमन स्वयं इसकी विपरीत दिशा की ओर चल रहे थे । उदाहरणार्थ, सम्राट् ग्रैशियन (३७५–३८३ ई०) को रईसी के विपरीत सनक सूझी । यह अभद्रता नही, बर्बरता थी कि उसने बर्बर ढग के वस्त्रो को धारण किया और बर्बर खेल-कूद मे सम्मिलित होने लगा । एक शती के बाद हम रोमनो को वास्तविक रूप से स्वतन्त्र युद्ध के बर्बर सरदारो के दलो मे सम्मिलित होते देखते है । उदाहरणार्थ, सन् ५०७ ई० मे गआल को प्राप्त करने के लिए वोयले मे विसीगोथो तथा फिरंगियो मे जब लडाई हो रही थी, विसीगोथो की ओर सिडोनियस एपोलिनारीस के उस पौत्र की हत्या हो गयी, जो अपनी पीढ़ी में भी सास्कृतिक क्लासिकी साहित्यिक के रूप मे जीवन-यापन कर रहा था । इसका प्रमाण नही है कि ईसवी छठी शती के आरम्भ मे प्रान्तीय रोमनो के वशजो ने युद्ध की ओर अधिनायक के अनुसरण करने मे कम उत्सुकता दिखायी, जितनी समकालीन बर्बरो के वशजो ने दिखायी थी । जिनके लिए शतियो पहले से ही युद्ध का खेल प्राणस्वरूप हो गया था । इस समय तक दोनो दल बर्बरता मे सास्कृतिक समानता प्राप्त कर चुके थे । हम पहले ही देख चुके है कि चौथी शती मे रोम की सेवा मे लगे बर्बर अधिकारी अपने बर्बरी नाम का प्रयोग करने लगे थे । बाद की शती मे इसके विपरीत प्रयास हुआ और असली रोमन गआल मे जर्मन नाम रखने लगे और आठवी शती के अन्त के पहले यह प्रयोग व्यापक हो गया । शार्लमान के समय तक गआल का प्रत्येक निवासी जर्मन नाम रख रहा था चाहे उसके पूर्वज जो भी रहे हों ।

यदि हम रोमन साम्राज्य की अवनति और विनाश के साथ-ही-साथ चीनी संसार की बर्बरताकरण की कहानी प्रस्तुत करे, जिसका मुख्य समय दो सौ साल पहले पड़ता है, तो अन्तिम विषय मे विशेष अन्तर हमे देख पड़ेगा । चीनी सार्वभौम राज्य के उत्तराधिकारी बर्बर राज्यो के संस्थापक चीनी नाम का शुद्ध रूप ग्रहण करके अपनी बर्बरता की नग्नता को छिपाने मे बहुत सतर्क थे । और यह केवल कल्पना नही है कि इस साधारण प्रयोग तथा चीनी सार्वभौम राज्य के पुनर्जीवन के अन्तर में कुछ गहरा सम्बन्ध है जो उस समानता मे नही है जो शार्लमान द्वारा स्थापित छायास्वरूप रोमन साम्राज्य में पायी जाती है ।

शक्तिशाली अल्पसंख्यक के बर्बरताकरण की जाँच समाप्त करने के पहले हम थोडे समय के

१. एस० डिल : सोसाइटी इन द लास्ट सेंचुरी आव द वेस्टर्न एम्पायर, पृ० २९१ ।

लिए यह प्रश्न करने के लिए रुक सकते है कि क्या इस सामाजिक स्थिति का कोई लक्षण हमारे अपने पश्चिमी संसार में दिखाई देता है ? प्रथम बार विचार करने पर कदाचित् हम यह सोचेंगे कि हमारे प्रश्न का निश्चय रूप से उत्तर मिल जायगा, इस बात से कि हमारा समाज सम्पूर्ण संसार को अपने में समेट चुका है और बाहरी सर्वहारा अधिक परिमाण मे हमे बर्बर बनाने के लिए नही छोड़ा गया है । किन्तु हमें विकल करने वाले इस तथ्य को याद रखना चाहिए कि हमारे पश्चिमी समाज की नयी दुनिया, उत्तरी अमेरिका, के बीच आज भी बहुत-से इंग्लैंड तथा मैदानी स्काटलैंड के वंशज रहते है जो प्रोटेस्टेंट पश्चिमी ईसाई सामाजिक पीढ़ी के है जो यूरोप की 'केल्टिक सीमा' पर कुछ दिनों तक निर्वासित रहकर अपालेशियन जंगलो में आवारा होकर बर्बर हो गये हैं ।

इस विषय के प्रमुख विद्वान्, अमरीकी इतिहासकार ने अमरीकी सीमा पर बर्बरताकरण के प्रभाव का यो वर्णन किया है—

'अमरीका की बस्ती में हमें देखना है कि यूरोप का जीवन कैसे महाद्वीप में आया । और किस प्रकार अमरीका ने उस जीवन को परिवर्तित और विकसित किया और यूरोप पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई । हमारा आरम्भिक इतिहास यूरोपीय कीटाणुओं का अमरीकी वातावरण में विकास का इतिहास है । सीमावर्ती प्रदेश में अति शीघ्रता से प्रभावशाली अमरीकीकरण हुआ है । जंगल उपनिवेशको पर प्रभुत्व जमा लेता है । वह यूरोपीय वेश, उद्योग, यन्त्र, यात्रा के साधन तथा यूरोपीय विचार के सामने आता है । वह उसे रेलगाड़ी से उतार कर सकड़ी (बर्च) की डोगी (कैनू) में लाता है । सभ्यता के वस्त्रो को उतरवा देता है तथा शिकारी कमीज और मृगचर्म के जूते पहनाता है । चिरोकी और इरोक्वाइस के लकड़ी के झोपड़ो में उन्हें रखता है तथा रेड इडियनो के समान उनके चारो ओर घेरे बनाता है । शीघ्र ही वह मक्का की खेती आरम्भ करता है और नुकीली लकडी से खेत जोतता है । युद्ध घोष करता है सच्चे रेड इंडियनों की भाँति वैरी के शीश को ग्रहण करता है । संक्षेप में सीमा पर वातावरण मनुष्य के लिए बहुत शक्तिशाली होता है । धीरे-धीरे वह जंगल को बदलता है, किन्तु इसका परिणाम पुराना यूरोप नही होता । तथ्य यह है कि नया परिणाम होता है जो अमरीकी है ।'

यदि यह वक्तव्य ठीक है, तो हम यह कहने के लिए विवश है कि कम-से-कम उत्तरी अमरीका में अपरिमित सामाजिक शक्ति बाहरी सर्वहारा के एक भाग द्वारा हमारे शक्तिशाली अल्पसख्यक के एक भाग पर पडी है । अमरीकी उपक्रम के इस प्रकाश में यह सोच लेना गलत होगा कि बर्बरता की यह आध्यात्मिक व्याधि एक उपक्रम है जिसका हमारी आधुनिक पश्चिमी अल्पसंख्या पूर्ण उपेक्षा कर सकती है । यह दिखाई देता है कि विजित एवं विनष्ट बाहरी सर्वहारा अपना बदला ले सकते हैं ।

(ब) कला में अभद्रता तथा बर्बरता

यदि हम व्यवहार और रीति-रिवाज के सामान्य क्षेत्र से कला के विशेष क्षेत्र की ओर चले तो हम यहाँ फिर असामंजस्य की भावना पायेंगे चाहे वह अभद्रता हो या बर्बरता । उस एक

१. एफ० जे० टर्नर : द फ्रान्टियर इन अमेरिकन हिस्ट्री, पृ० ३–४ ।

या दूसरे रूप में विघटनोन्मुख सभ्यता की कला अपनी शैली की विशिष्टता को, जो अच्छे गुणों का लक्षण है, छोड़कर विस्तृत और असामान्य रूप से व्यापक हो जाती है ।

अभद्रता के दो क्लासिकी उदाहरण है वे फैशन जिन्हें विघटनोन्मुख मिनोई तथा विघटनोन्मुख सीरियाई सभ्यता ने बारी-बारी से अपनी कला के रूप में भूमध्यसागर के तटों के चारों ओर फैलाया । अन्तःकाल (सम्भवतः ई० पू० १४२५–११२५) जो मिनोई सागर तन्त्र के बाद आया उसे 'बाद का तीसरा मिनोई ' के अभद्र फैशन के नाम से पुकारते हैं, जो सब पुरानी मिनोई शैली का सत्यानाश कर डालती है । इसी प्रकार संकटकाल (लगभग ई० पू० ९२५–५२५) जो सीरियाई सभ्यता के विघटन के बाद आयी फीनिशायी कला उतनी ही अभद्र हैं और उसका साभिप्राय भी यान्त्रिक मिलावट से मुक्त है । हेलेनी कला के इतिहास में जो कोरिथियन वास्तु-कला के साथ रवाज में आया, यह अतिशयता हेलेनी प्रतिभा की विशेषता के विपरीत है । और जब हम इस फैशन का विशेष उदाहरण खोजते हैं जो रोमन साम्राज्य के काल में उच्च शिखर पर था, तब हम उसे हेलेनी ससार के हृदय में नही, वरन् वालवक के अ-हेलेनी देवताओ के मन्दिरो के खँडहरो में या कलात्मक कब्रों मे पाते है जो सुदूर पूर्वी ईरानी पठारो के किनारे बर्बर युद्ध सरदारों की लाशो को गाड़ने के लिए हेलेनी स्मृति गृह-निर्माताओ ने बनायी थी ।

यदि हम हेलेनी समाज के विघटन के समय के पुरातत्त्व को छोड़कर साहित्यिक प्रमाणो की ओर मुडें तो हम देखेगे कि ई० पू० ४३१ के पतन के बाद प्रथम कुछ पीढियो के विचारको ने हेलेनी सगीत की अभद्रता के लिए विलाप किया था । हम एक अन्य सन्दर्भ में 'यूनाइटेड आर्टिस्ट लिमिटेड' के हाथों में 'एटिक नाटक' की अभद्रता देख चुके है । आधुनिक पश्चिमी ससार में हम देख सकते है कि यह केवल भड़कीला ह्रास था, न कि विशुद्ध हेलेनी कला की क्लासिकी शैली, जिसने हमारे पश्चिमी हेलेनी बैरोक (१७ वी तथा १८ वी शती की कला की विशेष शैली) और रोकोको (कला की अलकृत शैली) को प्रेरणा प्रदान की और हमारी विक्टोरियन व्यापारिक आर्ट की तथाकथित 'चोकोलेट बाक्स' शैली में हम 'बाद के तीसरे मिनोई' के समान कला देख सकते हैं यह पश्चिमी शैली अपनी विशिष्ट तकनीक द्वारा अपने व्यापारिक सामानो से सम्पूर्ण संसार पर विजय प्राप्त करना चाहता है—

'चोकोलेट बाक्स' शैली की मूढ़ता उतनी उदासीपूर्ण है कि यह हमारी पीढ़ी को निरुत्साही बनने के लिए प्रेरित करती है । बाइजैंतीवाद से पूर्व-रेफेल तक की प्राचीन प्रयोगवादी उड़ान पर विचार अगले अध्यायों में किया जायगा । किन्तु यहाँ हम अभद्रता से बर्बरता की ओर सम-कालीन उड़ान उसके स्थान पर देखते हैं । आज के आत्म-सम्मानी पश्चिमी मूर्तिकलाविदों ने अपनी निगाहें बेनिन की ओर मोड़ी है जिन्होंने बाइजैंती कला में सुखमय शरण नही पायी । केवल नक्काशी की कला में ही पश्चिमी संसार की मौलिकता का स्रोत सूख गया और वह अफ्रीका के बर्बरों से नयी प्रेरणा ले रहा है । पश्चिमी अफ्रीका का संगीत तथा नृत्य और वास्तुकला भी अमरीका की राह से यूरोप के हृदय में प्रवेश कर रहा है ।

साधारण मनुष्य की दृष्टि में बेनिन तथा बाइजैंटियम की ओर की उड़ान से पश्चिमी कलाकारों को उनकी खोई आत्मा प्राप्त नहीं हो सकती । इसपर भी, यदि वह अपने को नहीं बचा सकता तो दूसरों की मुक्ति का साधन हो सकता है । बर्गसों कहता है—कि साधारण बुद्धि

का अध्यापक जो उस विज्ञान की जिसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने रचा है, यन्त्रवत् शिक्षा देता है अपने शिष्यों को इतना जाग्रत कर सकता है कि वे ऐसा कार्य करें जिसका उसने कभी अनुभव नहीं किया था। और यदि विघटनोन्मुख हेलेनी संसार की 'व्यावसायिक कला' द्वारा महायानी बौद्ध धर्म ने भारतीय धरतीपर दूसरे विघटनोन्मुख संसारके मिलने के फलस्वरूप बहुत ही मौलिक कला उत्पन्न की तो इसी तर्क पर हम यह नही कह सकते कि आधुनिक पश्चिमी जगत् की 'चोकोलेट बाक्स' की शैली वैसा ही चमत्कार दिखाने में अक्षम्य है जब कि वह संसार भर में बडे तड़क-भड़क के साथ विज्ञापन बाजों के तख्तों पर तथा ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर वह दिखाई पड़ रही है।

(स)सामान्य भाषा (लिंगुआ फ्रांका)

भाषा के क्षेत्र मे असामजस्य की भावना स्थानीय विशेषता को छोडकर बोलियों के मिश्रण के फलस्वरूप अस्तव्यस्तता प्रकट करती है।

यद्यपि भाषा की स्थापना मानव के बीच विचारो के आदान-प्रदान के उद्देश्य से की गयी है किन्तु मानव के इतिहास मे इसका सामाजिक प्रभाव अब तक वास्तविक रूप से सम्पूर्ण मानव को विभाजित करने तथा न मिलने देने के लिए रहा है, क्योकि भाषाओ के इतने विभिन्न रूप हो गये कि ऐसी भी भाषा जो बहुत चलती है मानव समाज के छोटे-से अंश से अधिक मे समान रूप से नही रही। भाषा का न समझना विदेशी होने का प्रमुख लक्षण है।

विघटनोन्मुख सभ्यताओ के विनाश की ओर बढी अवस्था मे भाषाओं को भी उन्ही लोगों की भांति आपस मे विनाशकारी सघर्ष करते हुए तथा एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करते हुए देखते है, जिनकी ये भाषाएँ है, और इसका विजेता भी अपनी भाषा का विस्तार करता जाता है। यदि बोलियो के मिश्रण की उस कथा में कुछ भी तथ्य है जो शिनार मे अपूर्ण मन्दिर के नीचे हुई थी तो यह कहानी सम्भवत. हमें बैबिलोन के उस युग मे ले जाती है जिसमें सुमेरी सार्वभौम राज्य का पतन हो रहा था। क्योकि सुमेरी इतिहास के संकट-कालिक अन्तिम अध्याय मे सुमेरी संस्कृति को वहन करने वाली मूल भाषा के रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका पूरी करने के बाद सुमेरी भाषा मर गयी थी और अक्कादी भाषा को जो अभी उन्नति करके सुमेरी भाषा के समान हुई थी, बाहरी सर्वहारा के दलों की बोलियो के साथ भिड़ना पड़ा था। ये बोलियाँ स्वामी विहीन राज्य में बर्बर युद्धकारी दल लाये थे। बोलियो के सम्मिश्रण की कहानी जीवन में सत्य है क्योंकि नवीन और अभूतपूर्व सामाजिक संकटकाल में यह अबोध गम्यता सामाजिक एकता के कार्य में बाधक होती है। भाषा की विभिन्नता तथा सामाजिक जड़ता साथ-साथ होती है, सके उदाहरण विशिष्ट रूप से इतिहास में दिखाई देते हैं।

हमारी अपनी पीढ़ी के पश्चिमी संसार में यह कमजोरी डैन्यूबी हैप्सबुर्ग के राजाओं की जिनकी समाप्ति पहले विश्वयुद्ध (१९१४–१८) मे हो गयी, घातक दुर्बलताओं में से एक थी। यह बोलियो की कमजोरी १६५१ ई० में अपनी प्रौढ़ावस्था में उसमानिया बादशाहों के अमानवीय रूप से समर्थ दासों में भी थी। हम बैबेल का अभिशाप उत्तराधिकार के रूप में इख-ओगलानों के ऊपर देखते हैं जब वे रनिवास के प्रांगण में दरबारी क्रान्ति के संकट के क्षणों में अशक्य हो जाते हैं। घबराहट में बच्चे कृत्रिम रूप से सीखे उसमानलियों के मुहावरे भूल जाते हैं। 'दर्शकों के आश्चर्यचकित कान विभिन्न ध्वनियों और भाषाओं के कोलाहल से फट जाते हैं। कोई जार्जी,

कोई अलबेनी, कोई बोसनियाई, कोई मिग्रेली, कोई तुर्की, कोई इटालवी बोलता है ।[१] उसमानिया इतिहास की इस साधारण घटना की स्थिति 'पवित्र आत्मा' के अवतरण की महान् घटना के बिलकुल विपरीत है जैसा 'ऐक्टस आव अपासिल' में लिखा है । उस दृश्य में जो बोलियाँ बोली जाती हैं उन्हें बोलने वाले खुद नही समझते । अपढ़ गैलीलियन जिन्होने अपनी स्थानीय एरामी भाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा न सुनी है, न उसे बोला है । दूसरी बोलियो में अचानक उनका बोलना ईश्वर के चमत्कार का वरदान समझा जाता है ।

इस रहस्यपूर्ण अंश की व्याख्या विभिन्न रूप से की गयी है, किन्तु जिससे हम सम्बन्धित हैं उसमें कोई विवाद नही है । यह स्पष्ट है कि एक्टस के लिखने वालो की दृष्टि में भाषा का वरदान उनकी प्राकृतिक मनःशक्तियों की पहली वृद्धि थी जिसकी ईसा के शिष्यो को आवश्यकता थी क्योंकि इनके सामने नये प्रकाशित 'उच्चतर धर्म' को फैलाकर सम्पूर्ण मानव-समाज को बदल देने का महान् कार्य था । किन्तु जिस समाज मे ये ईसा के शिष्य पैदा हुए थे, वह समाज सामान्य भाषा की दृष्टि से आज के संसार की अपेक्षा दरिद्र था । गैलीलियनो की एरामी मातृभाषा उत्तर मे एकानस तक, पूर्व मे जाग्रोस तक तथा पश्चिम मे नील तक ही जा सकती थी, किन्तु यूनानी भाषा जिसमे एक्ट्स लिखे गये थे वह रोम और रोम से समुद्र पार ईसाई मिशनरियो द्वारा जा सकती थी ।

यदि हम स्थानीय मातृभाषा के सम्पूर्ण ईसाई जगत् की सामान्य भाषा मे परिवर्तन के कारणो एव परिणामो की परीक्षा आरम्भ करे तो हम देखेगे कि जिस भाषा को इस प्रकार की विजय अपने विरोधियो पर प्राप्त होती है उसका कारण यह है कि उस भाषा ने सामाजिक विघटन के समय किसी समुदाय की सेवा की है और वह युद्ध अथवा व्यापार मे शक्तिशाली रही है । हम यह भी देखेगे कि मानव की भाँति भाषा भी बिना कीमत चुकाये विजय प्राप्त करने में समर्थ नही होती । सामान्य भाषा बनने के लिए भाषा को अपनी निजी विशेषताओ का बलिदान करके मूल्य चुकाना पडता है । क्योकि वही लोग पूर्ण शुद्धता से कोई भाषा बोल सकते है, जिन्हे उन्होने बचपन से सीखा है । यह शुद्धता प्रकृति की देन है, कला इसे नही सिखा सकती । इस निष्कर्ष की सचाई प्रमाणो से सिद्ध की जा सकती है ।

हेलेनी समाज के विघटन के इतिहास में हम दो भाषाएँ एक-दूसरे के बाद देखते हैं—पहली 'एटिक ग्रीक' और बाद मे लैटिन । ये भाषाएँ एटिका और लैटिअस दो छोटे जिलो की मातृ-भाषाओं के रूप मे आरम्भ हुई थी । बाद मे ये बाहरी दुनिया मे फैलती रही यहाँ तक कि ईसाई युग के आरम्भ मे हम एटिक ग्रीक को झेलम के तट पर दरबार मे और लैटिन को राइन के किनारे खेमो मे प्रयोग होते देखते हैं । एटिक ग्रीक भाषा का विस्तार ई० पू० पाँचवी शती मे एथेनी सागरतन्त्र की संस्थापना के साथ आरम्भ हुआ था । बाद में मेसेडोनी फिलिप ने एटिक भाषा को अपने क्षेत्र की सरकारी भाषा के रूप मे स्वीकार किया । इससे इसका विस्तार बढ गया । जहाँ तक लैटिन का प्रश्न है यह विजयी रोमन सेनाओ की ध्वजा के साथ चलती गयी । इन भाषाओ के विस्तार की सराहना करने के बाद यदि हम भाषा-वैज्ञानिक तथा साहित्य पारखी की दृष्टि से उनके समकालिक विकास का अध्ययन करे तो हम उनकी विवृति से भी उसी प्रकार

१. पी० राइकाट : द प्रेजेन्ट स्टेट आव दि ओटमन एम्पायर (१६६८) पृ० १८ ।

प्रभावित होंगे। अफलातून तथा सोफोक्लीस सुन्दर स्थानीय एटिक ग्रीक सेप्टु आजिन्ट और पोलीवियस तथा नयी बाइबिल में बदल कर विकृत हो करके 'कोइन्ह' हो गयी। और सिसरो और वर्जिल का साहित्यिक माध्यम अन्त में भ्रष्ट लैटिन हो गया। १८ वी शती के आरम्भ तक यही 'भ्रष्ट लैटिन' अपने सम्बन्धी पश्चिमी ईसाई समाज में अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के गम्भीर कार्यों में व्यवहार की जाती थी। उदाहरणार्थ, मिल्टन क्रामवेल शासन का लैटिन सचिव था। १८४० तक हंगरी संसद मे 'भ्रष्ट लैटिन' लेन-देन के माध्यम के रूप मे चलती रही। इस त्याग का एक कारण था जिसके परिणामस्वरूप सन् १८४८ की मिश्रित राष्ट्रों की भ्रातृहन्ता लड़ाई आरम्भ हुई।

सीरियाई तथा बैबिलोनी सभ्यताओं के विघटन के साथ-ही-साथ दो मरणासन्न समाजों का विनाश भी मिल गया जिनका अन्तर नही जान पड़ता था, जितना ही अधिक उनका विस्तार सामान्य भाषा पर होता था। इस अस्त-व्यस्त मलबे के टूटे धरातल पर एरामी भाषा झंखाड़ की भाँति फैली। यद्यपि लैटिन और ग्रीक के समान इसे अपने सफल विजेताओं का संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। यह एरामी भाषा अपने समय में यद्यपि अच्छी तरह प्रचलित थी, किन्तु वर्णमाला तथा लिपि की अपेक्षा कम चली और क्षेत्रों मे चली। इसका एक रूप भारत तक पहुँचा। बौद्ध सम्राट् अशोक द्वारा इसका प्रयोग अपने प्राकृत चौदह अभिलेखो के प्रचार मे दो मे इस लिपि का प्रयोग किया गया था। उस लिपि का दूसरा रूप सोगडियन कहा जाता है। यह धीरे-धीरे उत्तर-पूरब की ओर जैक्सर्टीज़ से आमूर की ओर बढी। १५९९ ई० तक यह माचू लोगो की वर्णमाला बनी। एरामी वर्णमाला का तीसरा रूप अरबी भाषा की लिपि बनी।

पश्चिमी ईसाई साम्राज्य के तथाकथित 'मध्ययुग' मे विकसित उत्तरी इटली पर विशेष ध्यान देते हुए यदि हम नगर-राज्यो की अपरिपक्व व्यवस्था की ओर पुन: मुड़ें तो हम इटली की टसकन बोली को अपनी प्रतिद्वन्द्वी बोलियों पर वैसे ही छोप लेते देखेंगे जैसे एटिक बोली ने अपनी प्राचीन ग्रीक की प्रतिद्वन्द्वी बोलियों को अच्छादित कर लिया था। उसी समय यह बोली भूमध्यसागर के सभी तटो पर वेनिस तथा जेनेवा के व्यापारियों तथा साम्राज्य निर्माताओ द्वारा प्रचलित हुई। इटली की टसकन बोली के सारे भूमध्य सागर के प्रदेशों मे चलने के कारण यह इटली के नगर-राज्यों की स्वतन्त्रता के बाद तक भी जीवित रही। सोलहवी शती में इटालियाई भाषा उसमानिया नौ-सेना की भाषा रही, जो इटालियाइयों को पूर्वी भूमध्यसागर से भगा रही थी। पुन: १९ वी शती मे यही इटालियाई भाषा हैप्सबुर्ग नौ-सेना की भाषा हुई, जिसके राजा सन् १८१४ से १८५९ तक इटली की राष्ट्रीय आज्ञाओ को निष्फल करने मे सफल रहे। लेवांट की (भूमध्यसागर का पूर्वी भाग) यह सामान्य भाषा जिसका इटालियाई आधार विभिन्न विदेशी भाषा की वृद्धियों के भार से करीब-करीब दब गया था, भाषा के वर्ग का ऐसा प्रशंसनीय उदाहरण है, उसका ऐतिहासिक नाम वर्ग के नाम को व्यक्त करता है।

बाद में, किसी प्रकार यह विकृत टसकन भाषा लेवांट के अनुकूल क्षेत्र से भी विकृत फ्रांसीसी भाषा द्वारा हटायी गयी। फ्रांसीसी भाषा का भाग्य इस कारण उदय हुआ कि इटालियाई, जर्मन और फ्लेमिश नगर-राज्यो की व्यवस्था के पतन के संकटकाल में फ्रांस ने इन महाशक्तियों पर विजय प्राप्त की जो विनाशोन्मुख केन्द्र पर शासन करने के लिए परिधि पर अपना विस्तार कर रहे थे। इन नगर-राज्यों की व्यवस्था उन समाजो के उस विघटन के इतिहास की एक घटना थी,

जो १४ वीं शती के अन्त से आरम्भ हुई थी और १८ वीं शती के अन्त तक चलती रही। १४ वें लुई के युग के बाद से फ्रांसीसी संस्कृति ने आकर्षण उत्पन्न किया जिसके साथ ही फ्रासीसी सेना का भी विकास हुआ। और जब नैपोलियन ने बूर्बोन पूर्वजो की आकाक्षा को सभी नगर-राज्यो के टुकड़ो को फ्रांसीसी डिजाइन के अनुसार मिलाकर पूरा किया, जो टुकड़े राष्ट्र के द्वार पर, उत्तरी महासागर से लेकर वाल्टिक सागर तक यूरोप मे बिखरे हुए थे, आ गये। उस समय नैपोलियन का साम्राज्य सैनिक प्रणाली के साथ-साथ सास्कृतिक शक्ति भी बन गया।

यह वास्तव मे फ्रांस का सांस्कृतिक मिशन था, जिसने नैपोलियन के साम्राज्य का विनाश किया था। क्योंकि जिन विचारो का उसने प्रसार किया (रोग के अर्थ में) वह आधुनिक पश्चिमी संस्कृति की अभिव्यक्ति थी, जिसका अभी विकास हो रहा था। नैपोलियन का उद्देश्य पश्चिमी ईसाई राज्य के बीच नगर-राज्यों की व्यवस्था के समान उप-समाज के लिए उप-सार्वभौम राज्य बनाना था, किन्तु संकटकाल से बहुत दिनों तक पीड़ित समाज के लिए शान्ति प्रदान करना सार्वभौम राज्य का कार्य है। सार्वभौम राज गत्यात्मक तथा क्रान्तिकारी विचारो से प्रेरित हो विरोध मूलक बाते है, जैसे तुरही पर लोरी गाना। 'फ्रासीसी क्रान्ति के विचार' इटालियनो, फ्लेमिंग, राइन प्रदेश निवासी, जर्मन, और हैंसिआटको[1] को शान्त करने या इसलिए कि फ्रासीसी साम्राज्य-निर्माताओ के बोझ को बरदाश्त कर ले, जिन्होने इन विचारो को प्रवाहित किया था नही चलाया गया था। इसके विपरीत नैपोलियन के फ्रास की क्रान्ति ने इन देशो की गतिरुद्ध जनता को एक उत्तेजक धक्का दिया, जिससे उनकी जड़ता भागी तथा जाग्रत होने और फ्रासीसी साम्राज्य नष्ट करने की उन्हे प्रेरणा दी। आधुनिक पश्चिमी ससार मे नव-निर्मित राष्ट्रो को उचित स्थान दिलाने का यह पहला कदम था। इस प्रकार नैपोलियन के साम्राज्य के अन्दर अपनी निश्चित विफलता के प्रोमीथियन[2] बीज मौजूद थे, क्योकि वह ऐसे पतनोन्मुखी ससार मे सार्वभौम राज्य की सेवा करना चाहता था। जब कि उसका मध्याह्नकाल फ्लोरेन्स और वेनिस तथा ब्रूजेज और ल्यूबेक के वैभव के साथ बीत चुका था।

अज्ञात रूप से नैपोलियनी साम्राज्य ने यह किया कि माध्यमिक नौ-सेना के टूटे-फूटे बिखरे जहाजो को पश्चिमी जीवन की धारा मे खीच लाया और साथ उसके बेचैन नाविको को उनके जहाजों को समुद्र मे चलने योग्य बनाने की प्रेरणा दी। फ्रासीसियो का यह वास्तविक कार्य इस विषय मे अल्पकालीन और व्यर्थ हो जाता यदि नैपोलियन दूसरे राष्ट्र राज्यो को जैसे ब्रिटेन, रूस, स्पेन—जो नगर-राज्यो की व्यवस्था से दूर थे, और जो सचमुच उसका कार्यक्षेत्र था, वैरी न भी बनाता। फिर भी आज के इस महान् समाज मे दो सौ वर्ष पुराने ढग की एक विरासत

१. वह संघ जिसमें उत्तरी यूरोप के कई नगर शामिल थे। यह संघ व्यापार के लिए बना था। —अनुवादक

२. प्रोमीथ्यूस का विशेषण। यूनानी पुराण में कथा है कि प्रोमीथ्यूस स्वर्ग में चला गया और वहां से सूर्य से अग्नि चुरा लाया कि मनुष्यों को जीवन-दान दे। उसे यह दण्ड दिया गया कि काकेशस पहाड़ पर बाँध दिया गया। एक गिद्ध आकर रोज उसके कलेजे को खाता था। —अनुवादक

नैपोलियन के संक्षिप्त उत्कर्ष के साथ मिली है जिसे फ्रांस ने नगर-राज्यों की व्यवस्था को अन्तिम दशा मे कायम रखा। फ्रांसीसी भाषा ने पश्चिमी संसार के केन्द्र मे सामान्य भाषा के रूप में स्थापित होने मे सफलता पायी और सुदूर स्पेनी और उसमानिया साम्राज्यों की सीमा तक अपना विस्तार किया। फ्रांसीसी भाषा का ज्ञान अब भी किसी यात्री को बेल्जीयम, स्विटजरलैंड, आइबीरियन प्रायद्वीप, लैटिन अमेरिका, रूमानिया, ग्रीक, सीरिया, तुर्की और मिस्र में ले जा सकता है। मिस्र के सम्पूर्ण ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र मे मिस्री सरकार के प्रतिनिधियों तथा उनके ब्रिटिश सलाहकारो के बीच फ्रेंच भाषा व्यवहार मे सदा रही। और जब ब्रिटिश हाई कमिश्नर लार्ड एलेनबी ने २३ नवम्बर १९२४ को मिस्री प्रधानमन्त्री को अंग्रेजी मे पढ़कर दो सूचनाएँ सुनायी थी जो सरदार की हत्या के परिणामस्वरूप अन्तिम चेतावनियाँ थी और भाषा का यह चुनाव निस्सन्देह अप्रसन्नता का सूचक था। किन्तु इन ब्रिटिश सूचनाओं की लिखित प्रतिलिपियाँ फ्रांसीसी भाषा मे भी उसी समय जमा की गयी। इस दृष्टि से विचार करने पर मध्ययुगीन इटालियाई समुद्री यात्रियो की भाँति नैपोलियन की मिस्र पर चढाई करना, जो साधारणतः बेकार तथा इस यूरोपीय विजेता के जीवन-पथ से विचलन समझा जाता है, एक प्रकार वह सफल चेष्टा समझी जाती है कि फ्रासीसी संस्कृति का बीज सुदूर किन्तु ग्रहण करने वाली भूमि पर उसने लगाया।

यदि पश्चिमी सामाजिक जीवन मे फ्रांस की सामान्य भाषा मध्ययुगीन उप-समाज के पतन और विनाश का चिह्न है तो हम अंग्रेजी सामान्य भाषा को संकरता की उस महान् प्रणाली के फल के रूप मे देख सकते है, जिसने हमारे आधुनिक पश्चिमी ससार को महान् समाज मे विस्तृत किया और सरल करके फैलाया है। अंग्रेजी भाषा की यह विजय स्वय ग्रेट-ब्रिटेन के सैनिक, राजनीतिक और व्यापारिक विजयो का स्वाभाविक परिणाम थी। ब्रिटेन ने यह विजय समुद्र पार नयी दुनिया मे पूर्व और पश्चिम दोनो ओर स्वामित्व स्थापित करके की है। अंग्रेजी उत्तरी अमेरिका की निजी भाषा और भारत उप-महाद्वीप की शक्तिशाली सामान्य भाषा हो गयी। इसका चीन और जापान मे विस्तृत चलन है। इटली के विरोधी देशो की नौ-सेना की कामकाज की भाषा के रूप मे इटालिया भाषा का प्रयोग हम पहले ही देख चुके हैं। उसी प्रकार १९२३ के चीन मे रूस के साम्यवादी एजेन्ट बोरोडिन ने कोमिताग पार्टी के चीनी प्रतिनिधियो के साथ विचारो के माध्यम के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग इसलिए किया था कि वह सन्धि-बन्दरगाहो (ट्रीटी पोर्ट) से उन्हे भगा दे। पढ़े-लिखे लोगो मे बातचीत का माध्यम अंग्रेजी भाषा ही है, जहाँ अनेक चीनी बोलियाँ बोली जाती है। विदेशियो के मुख से क्लासिकी टसकन और एटिक भाषा उसी प्रकार खराब हो जाती है जिस प्रकार भारत मे बाबू-इगलिश और चीन मे पिजिन इगलिश।

अफ्रिका मे अरबी के सर्वजन भाषा होने की प्रगति हम यों देख सकते है कि वह हिन्द महासागर के पश्चिमी तट से होते हुए पश्चिम मे झीलो की ओर गयी और दक्षिण की ओर सहारा के दक्षिणी तट से सुडान मे गयी। यह अर्धअरबी ढोर पालने वाले और दासों का व्यापार करने वालों द्वारा फैली। इस क्रिया का भाषा सम्बन्धी परिणाम आज भी वहाँ के जीवन मे देखा जा सकता है। जहाँ अरब आक्रामकों का भौतिक संघात यूरोपीय लोगों के प्रवेश से समाप्त हो गया, अरबी भाषा का सघात वहाँ की स्थानीय बोलियों पर अफ्रिका के खुल जाने पर पड़ा, उसी अफ्रिका में जो अरबों के हाथों से ले लिया गया। यूरोपीय झण्डे के नीचे, जिसका अर्थ है पश्चिमी

शासन, पहले की अपेक्षा अरबी भाषा की प्रगति के लिए अधिक सुविधाएँ है। यूरोपीय उपनिवेशी शासन से अरबी का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मिली-जुली भाषा को सरकारी प्रोत्साहन मिला, क्योंकि उन्हें शासन के लिए इसकी आवश्यकता थी। ये सकर भाषाएँ अरबी के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों में धीरे-धीरे प्रवेश कर रही थी। ऊपरी नाइगर मे, फ्रेंच साम्राज्य में, निचली नाइगर में, ब्रिटिश साम्राज्य में और जाजिबार की पूर्वी अफ्रीकी पृष्ठभूमि मे, क्रमशः फुलानो, हाउसा तथा स्वाहिली का विकास होता रहा है। ये भाषाएँ मिश्रित है जिनका मूल अफ्रीकी है और अरबी मिलावट है, तथा इन्हे अरबी लिपि मे लिपिबद्ध किया गया है।

(द) धर्म में संहतिवाद

धर्म में सहतिवाद या धार्मिक कृत्यों, उपासना पद्धतियो और विश्वासो का मिलन आन्तरिक अ-सामंजस्य की बाहरी अभिव्यक्ति है। और यह सामाजिक विघटन के काल मे आत्म-भेद से उत्पन्न होती है। यह परिस्थिति सामाजिक विघटन का लक्षण कुछ विश्वास के साथ समझी जा सकती है, क्योंकि सामाजिक विकास के समय सभ्यताओ के इतिहास मे धार्मिक सहति के उदाहरणो के जो आभास मिलते है वे भ्रामक सिद्ध होते है। क्योंकि जब हम अनेक नगर-राज्यो की स्थानोय पौराणिक कथाओ को एक सर्व-हेलेनी व्यवस्था मे हेसियोद तथा और प्राचीन कवियो द्वारा, एक साथ सम्मिलित करते और एकरूपता देते देखते हैं तब केवल हमें नामो का इन्द्रजाल मिलता है। विभिन्न धार्मिक आवेगो, विभिन्न धार्मिक कृत्यों का विलयन तदनुसार नही मिलता। और जब हम लैटिन देवताओ को ओलिंपियाई देवताओ के साथ समता करते देखते है जैसे ज्युपिटर का जीयूस के साथ, और जूनो का हीरा के साथ तब हम यह देखते है कि वास्तव मे आदिम लैटिन जीववाद को हटा कर उनके स्थान पर यूनानी, मानव देव कुल को स्थापित किया जा रहा है।

देवताओ के नाम मे एक दूसरे ढग की समता भी है, जिसमे विघटन के काल की शाब्दिक समता है जिससे सामजस्य की भावना भी प्रकट होती है, किन्तु परीक्षा करने पर वे वास्तविक धार्मिक परिस्थितियाँ नही है, केवल राजनीतिक आवरण मे धार्मिक है। विभिन्न स्थानीय देवताओ के नामों में इस प्रकार की समता उस समय लायी जाती है, जब विघटनोन्मुख समाज में स्थानीय राज्यो को, युद्ध मे पराजित कर राजनीतिक धरातल पर जबरदस्ती मिलाया जाता है, जो विकास-काल में पहले समाज से विभाजित हो गये थे। उदाहरण के लिए जब सुमेरी इतिहास के अन्तिम अध्यायो में निप्पर के स्वामी (बेल) एनलील को बैबिलोन के मारडूक से मिला दिया गया था और जब बैबिलोन के मारडूक—बेल कुछ समय के लिए खारबे के नाम से अन्तर्धान हो गये, इस प्रकार देवताओं का एकीकरण विशुद्ध राजनीतिक था। पहला परिवर्तन उस समय हुआ, जब बैबिलोनी वंश द्वारा सुमेरी सार्वभौम राज्य बना, और दूसरा जब कस्साइट सेनानायको ने सार्वभौम राज्य पर विजय पायी।

विभिन्न स्थानीय राज्यों के सम्मिलित हो जाने के कारण अथवा ऐसे साम्राज्य मे राजनीतिक अधिकार एक सेना-सरदार से दूसरे सेना-सरदार के पास चले जाने के कारण, समाज का विघटन हुआ और इस विघटन के परिणामस्वरूप स्थानीय देवताओं की तद्रूपता स्थापित हुई। बात यह थी कि एक ही शक्तिशाली अल्पसंख्या के वर्गों के ये प्राचीन देवता थे और इस कारण इनमे सादृश्य

था । इसलिए राजनीतिक कारणों से देवताओं का सम्मिलन धार्मिक प्रवृत्ति तथा भावना के के प्रतिकूल नहीं था । ऐसी धार्मिक संहति के उदाहरण खोजना जिनकी गहराई राजनीतिक कारणों के सम्मिलन से अधिक थी और जो धार्मिक आचार तथा विश्वास को अधिक स्पर्श करते थे, हमें अपना ध्यान, उस धर्म से जो प्राचीन सुखमय दर्शन से शक्तिशाली अल्पसख्या को विरासत में मिलता है, दूसरी ओर मोड़ना चाहिए । यह दर्शन संकट-काल की चुनौती का परिणाम होता है और हमें इसपर ध्यान देना चाहिए कि दर्शन की प्रतिद्वंद्वी शैलियाँ आपस मे ही एक-दूसरे से टकराती और मिलती नही, आन्तरिक सर्वहारा द्वारा विकसित दार्शनिक शैलियो से भी टकराती है और उनमें सम्मिलित होती हैं । चूँकि ये ऊँची श्रेणी के धर्मदर्शन से टकराने के साथ-साथ आपस मे भी सघर्ष करते है। पहले इस पर विचार करना सुविधाजनक होगा कि उनके अलग सामाजिक क्षेत्रो मे ऊँचे धर्मों मे आपस मे क्या सम्बन्ध है और दर्शनों मे आपस में क्या सम्बन्ध है । और तब हम उस गत्यात्मक आध्यात्मिक परिणाम पर विचार करेंगे जो धर्म तथा दर्शन का आपस मे सघर्ष होने का कारण होता है ।

हेलेनी समाज के विघटन मे पोसिडोनियस की पीढ़ी (लगभग १३५-५१ ई० पू०) से एक युग का आरम्भ होता है, जिसमे दर्शनों की अनेक विचारधाराएँ जो अभी तक आपस मे तीव्रता से लड़ रही थीं, सब, एपिक्युरियनो को छोड़कर उन बातो पर जोर देने लगी, जिनकी उनमे समता थी और उन्हे छोड़ दिया जिनमे भेद था । और रोमन साम्राज्य की पहली तथा दूसरी शती मे एक ऐसा समय आया, जब एपिक्युरियनो को छोड़कर हेलेनी ससार के सभी दार्शनिक, अपने को चाहे जिस नाम से पुकारते हो, एक सर्व-मत-दर्शन के सिद्धान्तो को मानने लगे । इसी युग मे चीनी समाज के विघटन के इतिहास मे ऐसे ही दार्शनिक असामजस्य की ओर झुकाव की प्रवृत्ति दिखाई देती है । ईसा के पूर्व दूसरी शती मे जो हैन के साम्राज्य की पहली शती थी, टाओवाद मे भी सर्वमतवाद पाया जाता है । सम्राट् का राजदरबार भी इसे मानता था और कनफूशियस-वाद भी, जो बाद को चीन का राजधर्म हुआ ।

प्रतिद्वन्द्वी दर्शनो का यह सहतिवाद प्रतिद्वन्द्वी उच्च धर्मों में भी पाया जाता है । उदाहरण के लिए सीरियाई ससार मे सोलोमन की पीढ़ी से आगे इसरायली यहोवा की पूजा मे पड़ोसी सीरियाई समुदायो के स्थानीय बआलिम की पूजा मे सामंजस्य की प्रवृत्ति हमे मिलती है । यह समय महत्त्व का है, क्योकि सोलोमन की मृत्यु से सीरियाई समाज का पतन आरम्भ होता है। निश्चय ही इसरायली धार्मिक इतिहास में विशेष महत्त्व की यह बात है कि उस युग मे ईश-दूतो को असामंजस्य की भावनाओ से लड़ने में विशेष सफलता प्राप्त हुई और उन्होने इसरायली धार्मिक विकास को सहतिवाद की सरल राह से हटाकर नये और कठिन मार्ग की ओर मोड़ा जो इसराय-लियों की विशेषता थी । फिर भी जब हम सीरियाई आपसी धार्मिक प्रभाव के हिसाब मे खर्च की ओर न देखकर आमदनी की ओर देखते है तब हम स्मरण करेंगे कि सीरियाई संकटकाल में पश्चिमी ईरान के लोगों की धार्मिक भावना पर यहोवा की उपासना का प्रभाव पड़ा होगा, क्योकि इसी पश्चिमी ईरान मे असीरियाई सैन्यवादियों ने इसरायली निर्वासितो को ले जाकर बैठा दिया था । जो भी हो, यह निश्चित-सा है कि अकेमिनियाई साम्राज्य के समय और उसके बाद भी यहूदी धार्मिक भावनाओं पर ईरानी धर्म का बलशाली प्रतिघात हुआ था । ईसा के पूर्व दूसरी शती तक यहूदी तथा जरथुष्ट्री धर्म आपस में इतने मिल-जुल गये थे कि आधुनिक पश्चिमी

इ] तिहासकारों के लिए इन दोनों सरिताओं से मिलकर जो नदी प्रवाहित हुई उसमें से यह निकालना बहुत कठिन हो गया कि किसकी कितनी देन है।

यही भारतीय संसार के आन्तरिक सर्वहारा के उत्कृष्ट धर्मों के विकास का भी हाल है। ऐसा मिलन हो गया है कि केवल नाम का ही समीकरण नही है, जैसे कृष्ण की उपासना मे और विष्णु की उपासना में।

विघटन के समय धर्म-धर्म में और दर्शन-दर्शन की दीवार में इस प्रकार के विच्छेद के कारण दर्शनों और धर्मों में एक-दूसरे से मिलने की राह बन जाती है और इस धर्म-दर्शन की सहृति में, हम देखेंगे कि आकर्षण दोनो ओर से होता है और दोनो ओर से मिलने की गति होती है। जिस प्रकार हमने देखा कि सार्वभौम राज्य की सैनिक सीमा पर सम्राट् के गैरिसन के सैनिक तथा बर्बर सेना-सरदारो के सिपाही अपने सामाजिक जीवन के ढंग मे एक-दूसरे के निकट आते हैं और अन्त में अन्तर मिट जाता है, उसी प्रकार हम देखते हैं कि सार्वभौम राज्य के अन्दर दार्शनिक विचारधारा के अनुगामी और लोकधर्म के अनुयायी आकर एक-दूसरे से मिलते हैं। यह समानता बहुत ठीक है, क्योकि जैसे उसमे, उसी प्रकार इसमे भी, यद्यपि सर्वहारा के प्रतिनिधि शक्तिशाली अल्पसख्या से मिलने के लिए थोड़ी दूर बढ़ते हैं, शक्तिशाली अल्पसख्या अपने ढग के सर्वहारा-करण को राह मे इतना आगे बढ़ जाती है कि अन्त मे सर्वहारा के रूप मे ही मिलन होता है। दोनो ओर की मिलन की इस चेष्टा का अध्ययन करने के लिए पहले सर्वहारा की छोटी आध्या-त्मिक यात्रा का सर्वेक्षण करना सुविधाजनक होगा और उसके बाद शक्तिशाली अल्पसख्या की लम्बी यात्रा का अध्ययन हम करेंगे।

जब आन्तरिक सर्वहारा के उत्कृष्ट धर्म शक्तिशाली अल्पसंख्या के आमने-सामने आ जाते हैं, तब कभी-कभी वे पहले ही कदम पर ठहर जाते हैं और शक्तिशाली अल्पसंख्या की कला की नकल करते हैं जिससे इस अल्पसंख्या का ध्यान उधर आकृष्ट होता है। जब हेलेनी संसार का विघटन होने लगा ईसाई धर्म के सब असफल प्रतिद्वद्वियो ने अपने मिशनरी परिश्रम को सफल बनाने के लिए सारे चाक्षुष ईश्वरीय तत्त्वों को हेलेनी आँखों को प्रसन्न करने के लिए, हेलेनी रूप में बनाने लगे। किन्तु इसके आगे वे नहीं बढ़े कि अन्दर और बाहर से समाज का हेलेनीकरण करें। ईसाई धर्म ही था जिसने अपने को हेलेनी दर्शन के माध्यम से अभि-व्यक्त किया।

ईसाई धर्म का, जिसका मूल सीरियाई था, बौद्धिक हेलेनीकरण होने का आभास पहले ही मिल गया था, क्योंकि नयी बाइबिल की भाषा एटिक बनायी गयी, आरामेइक नही, क्योकि इस भाषा की शब्दावली में ही अनेक दार्शनिक तात्पर्य निहित थे।

'सिनाप्टिक सुसमाचारों में' (मैथ्यु, मार्क तथा ल्यूक के सुसमाचार, गोसपेल) ईसू को ईश्वर का पुत्र बताया गया है और यह विश्वास चौथे सुसमाचार में भी लिया गया है और अधिक दृढ़ किया गया है। किन्तु चौथे सुसमाचार के आमुख में यह विचार भी व्यक्त किया गया है कि संसार का त्राता ईश्वर का सर्जनात्मक वाक्य (लांगोस) भी है। स्पष्ट नही, फिर भी संकेत रूप से बता दिया गया है कि ईश्वर का पुत्र और ईश्वर का वाक्य एक ही है, पुत्र को ईश्वर का वाक्य कहकर ईश्वर के सर्जनात्मक उद्देश्य को एक ही बताया गया है और वाक्य का ईश्वर के पुत्र से

साम्य करके पिता के व्यक्तित्व के साथ एक और व्यक्तित्व का देवतनु स्थापित किया गया। और एक छलांग में 'वाक्य' का दर्शन धर्म हो गया।'[१]

धर्म का दार्शनिक भाषा में प्रचार करना ईसाई धर्म को यहूदियों की विरासत थी। अलेकर्जेड्रिया के यहूदी दार्शनिक फिलो (लगभग ३० ई० पू०—४५ ई० पू० तक) ने इसका बीजारोपण किया जिससे उसके ईसाई सह-नागरिक क्लिमेंट और ओरिगेन ने दो सौ साल बाद अच्छी फसल काटी। और सम्भवतः चौथे सुसमाचार के लेखक ने उसी ओर से ईश्वरीय वाक्य की भावना ली जिसकी ईश्वर के अवतार के साथ वह एकता स्थापित करता है। सिकन्दर के युग के इन ईसाई पिताओ का यह यहूदी अग्रगामी यूनानी भाषा के माध्यम से हेलेनी दर्शन तक पहुँचा। यह सयोग की बात नही थी कि फिलो ऐसे नगर मे रहता था और अपनी दार्शनिकता का प्रचार करता था जहाँ स्थानीय यहूदी समुदाय की बोल-चाल की भाषा एटिक थी, वह हिब्रू और अरामी भाषा भूल गया था, यहाँ तक कि उसने धर्मग्रन्थो का अनुवाद भी अ-यहूदी भाषा मे किया। किन्तु यहूदी धर्म के इतिहास मे भी ईसाई दर्शन का यह यहूदी पिता अकेला व्यक्ति है और उसकी चतुर चेष्टा कि अफलातून का दर्शन मूसा के कानूनो पर आधारित है, बिना किसी परिणाम के, यहूदी धर्म की विशेष शक्ति रही है।

ईसाई धर्म के आगे जब हम ईरानी धर्म—सूर्य की उपासना (मिथ्राइज्म) की ओर चलते है जो हेलेनी ससार के आध्यात्मिक विजय मे ईसाई धर्म का प्रतिद्वन्द्वी था, हम देखते है कि अपने ईरानी घर की ओर लौटते समय मिथ्रा ने अपनी जहाज पर बैबिलोनी नक्षत्रीय दर्शन का भारी सामान लाद रखा था। इसी प्रकार भारत के उच्च हिन्दू धर्म ने जर्जर बौद्ध दर्शन मे से विचारो का अपहरण किया, जिससे उसके पास वह शस्त्र मिल गया जिसको उसने बौद्ध धर्म को उसके घर से निकाल बाहर किया। और कम-से-कम एक आधुनिक मिस्रवेत्ता (एजिप्टालोजिस्ट) का का कथन है कि ओसाइरिस की सर्वहारा द्वारा उपासना ने मिस्र की शक्तिशाली अल्पसख्या के किले मे रे की नैतिक भूमिका को ग्रहण करके प्रवेश किया। पहले यह ओसीरियाई धर्म मे नही था। वह ऐसा देवता है जो सत्यता की अभिव्यक्ति करता है और उसका पोषण करता है। परन्तु 'मिस्र के अपहरण' का मूल्य सर्वहारा के धर्म के लिए मँहगा पड़ा क्योकि ओसीरियन धर्म वालो को अपने को उन लोगो के हाथ मे रखना पड़ा, जो उन्हे रे धर्म मे नही लेना चाहते थे। मिस्री पुरोहितो की बड़ी चाल थी कि अपने को उस उभरते हुए धार्मिक आन्दोलन के सुपुर्द कर दे जिसे न दबाया जा सकता था, न रोका जा सकता था। इस प्रकार वे उसके नेता भी बन गये और शक्ति के ऐसे ऊँचे शिखर पर उसे पहुँचाया जहाँ वह कभी नही पहुँचा था।

जिस प्रकार पुराने मिस्री देवकुल के पुरोहितो ने ओसीरियाई धर्म का अपहरण किया, उसी के समान ब्राह्मणो ने हिन्दू धर्म का और मागी ने जरथुष्ट्र धर्म का अपहरण किया। किन्तु एक और तथा कपटपूर्ण ढंग है जिससे सर्वहारा का धर्म शक्तिशाली अल्पसंख्या के हाथों में चला जाता है। क्योकि जो पुरोहित समुदाय सर्वहारा-धर्म पर अपना अधिकार कर लेते है और तब

१. पी० ई० मोर : क्राइस्ट द वर्ड : द ग्रीक ट्रेडिशन फ्राम द डेथ आव सोक्रिटीज टु द कौंसिल आव कालसिडोन, खण्ड ४, पृ० २९८।

शक्तिशाली अल्पसंख्या की भावनाओं तथा रुचि के अनुसार उस पर शासन करने लगते हैं, उनके लिए आवश्यक नहीं है कि पुराने पुरोहित हो जो शक्तिशाली अल्पसंख्या के उत्तराधिकारी हों। ऐसा भी सम्भव है कि वे सर्वहारा धर्मतन्त्र के ही प्रमुख नेता हो।

रोमन साम्राज्य के राजनीतिक इतिहास के प्रारम्भिक अध्याय में अभिजात तथा अकुलीन वर्गों के बीच का अवरोध इस प्रकार समाप्त किया गया कि अभिजात वर्ग ने अकुलीन वर्ग के नेताओं को इस स्पष्ट समझौते पर अपने साथ लिया कि अधिकारविहीन वर्गों के नेता अपने साथियों को छोड़ देंगे और उनके प्रति विश्वासघात करेंगे। उसी प्रकार धार्मिक धरातल पर यहूदियो के जनसाधारण को धोखा दिया गया और उनका साथ ईसा के आने के पहले, उनके नेताओं—लिपिको और फरीसियो ने—छोड़ दिया था। ये यहूदी 'अलग होने वाले', इसी नाम से जीते रहे, यही नाम उनके अनुकूल भी था, यद्यपि जिस भावना से उन्होंने अपना यह नाम रखा था, वह इसके प्रतिकूल थी। आरम्भ मे ये फरीसी यहूदी विशुद्धवादी थे, जिन्होंने अपने को उन यहूदियो से अलग कर लिया था जो अपना हेलेनीकरण कर रहे थे और जब ये धर्म-त्यागी विदेशी शक्तिशाली अल्पसख्या में सम्मिलित हो रहे थे। ईसा के समय फरीसियो की विशेषता यह थी कि वे यहूदी समुदाय की भक्त और धर्मात्मा जनता से अलग हुए थे यद्यपि पाखण्ड से अब भी वे यही कह रहे थे कि हम अच्छा उदाहरण रख रहे हैं। यह उस घोर भर्त्सना की ऐतिहासिक पूर्व-पीठिका है, जिसकी प्रतिध्वनि सुसमाचारो मे मिलती है। फरीसी यहूदियो के वही धार्मिक रूप है जो रोमन राजनीतिक स्वामियो के यहूदी थे। 'पैशन आव क्राइस्ट' के ट्रेजेडी नाटक मे हम देखते है कि वे (फरीसी) रोमन अधिकारियों के बगल मे खड़े होते है और अपनी ही जाति के उस ईशदूत की मृत्यु मे सहायक होते है, जो उन्हे लज्जित करता रहा।

यदि अब हम साथ के उस आन्दोलन का परीक्षण करें जिसमे शक्तिशाली अल्पसख्या का दर्शन आन्तरिक सर्वहारा के धर्म की ओर बढ़ता है तो हम देखेंगे कि इस ओर प्रक्रिया आगे बढ़ने के साथ ही पहले भी आरम्भ होती है। पतन के बाद पहली पीढ़ी मे यह प्रक्रिया आरम्भ होती है, कौतूहल से धर्मनिष्ठा मे परिवर्तित होती है, फिर अन्धविश्वास मे बदल जाती है।

धार्मिक रंग पहले-पहले कब चढता है इसका उदाहरण अफलातून के 'रिपब्लिक' के चित्रण में मिलता है। दृश्य पाइरियस का है—एथोनोपैलोपोनीशियाई घाट तक युद्ध के पहले का—जो हेलेनी ससार के सामाजिक सम्मिलन की प्राचीनतम घड़ियाँ हैं। जिस घर मे संवाद की कल्पना है उसका स्वामी विदेशी है और कथा कहने वाला सुकरात है। वह इस प्रकार आरम्भ करता है कि मैं एथेन्स नगर से बन्दरगाह तक पैदल चलकर आया हूँ कि थ्रेस की देवी बेन्डीस के प्रति अपनी वन्दना अर्पित करूँ और कौतूहलवश यह भी देख लूँ कि लोग उसके सम्मान मे किस प्रकार उत्सव मना रहे है क्योकि पाइरीयस मे यह पहले-पहल हो रहा है। इस प्रकार हम देखते ह कि हेलेनी दर्शन के आधार पर धर्म की भावना वातावरण में आ गयी है, वह भी धर्म विदेश का और विदेशी ढंग का। यह वह भूमिका है जो हमे परिणाम के लिए तैयार करती है। इस परिणाम का वर्णन एक पश्चिमी विद्वान् ने निम्नलिखित शब्दो मे किया है: 'विचित्र बात यह है कि नयी (ईसाई) कथा का स्रोत विदेशी होने पर भी, यूनानी पिताओ का धर्म और दर्शन मुख्य बातो मे पूर्णत. अफलातूनी है, या इसे अधिक ठीक शब्दों में कहे, तो बहुत थोड़े परिवर्तनो के साथ अफलातून से ले लिया गया है। इस प्रकार के सम्मिलन से हम ऐसी कल्पना कर सकते

है कि जिन कथाओं को अफलातून ने पुरानी देवताओं की कहानी के स्थान पर रखने की चेष्टा की वे ईसाई धर्म की विरोधी नही, अपूर्ण थीं। इधर-उधर के संकेतो से पता चलता है कि अफलातून को स्वयं होने वाले ईश्वरीय अवतार का धुंधला भान था और उसके दृष्टान्त भविष्य-वाणियाँ थीं। सुकरात ने 'अपालोजी' मे एथीनियनो को चेतावनी दी थी कि आत्मा के दूसरे साक्षी उसकी मृत्यु के बाद आ सकते है जो उसकी मृत्यु का बदला ले सकते हैं। दूसरे स्थल पर उसने स्वीकार किया है कि मैंने बहुत तर्क किये है और अनेक दार्शनिकता की बात कहीं है, परन्तु पूरा सत्य तब तक नही जाना जा सकता, जब तक मनुष्य के लिए उसकी अभिव्यक्ति ईश्वर की कृपा से न हो।'[१]

दर्शन के धार्मिक रूप में परिवर्तन होने का ऐतिहासिक वर्णन हेलेनी संसार में इतना अधिक मिलता है कि उसके बाद की परिस्थितियो की प्रक्रिया को हम भलीभाँति परख सकते हैं।

जिस प्रकार अफलातून के सुकरात ने थ्रेस के बेंडीस के धर्म के प्रति अपना शान्त, बौद्धिक कौतूहल दिखाया है, उसी प्रकार ऐतिहासिक सुकरात के समकालीन हेरोडोटस ने धर्म के तुल-नात्मक अध्ययन मे प्रासगिक लेखो मे बताया है। उसने इन बातो को वैज्ञानिक ढंग से देखा है। जो भी हो, जब अकेमीनियाई साम्राज्य को सिकन्दर ने पराजित किया और उत्तराधिकारी राज्यो के हेलेनी शासकों को मिली-जुली प्रजा की धार्मिक आवश्यकताओ के लिए कुछ उपासना की विधि खोजनी पड़ी, तब धार्मिक समस्याओ की व्यावहारिक आवश्यकता शक्तिशाली अल्प-संख्या के सामने आयी। उसी समय स्टोइक तथा एपिक्युरियन दर्शनो के संस्थापक और प्रचारक व्यक्तिगत रूप से उन लोगों की आध्यात्मिक भूख के लिए भोजन की व्यवस्था कर रहे थे जो आध्यात्मिक जगल मे खोये भटक रहे थे। किन्तु यदि हम इस युग की हेलेनी दार्शनिक प्रवृत्ति का माप अफलातून की दार्शनिक विचारधारा को माने तो हम देखेगे कि इसके शिष्य सिकन्दर की मृत्यु के बाद दो सौ सालों में संशयवाद की ओर आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

धारा का प्रवाह निश्चयात्मक ढंग से उस समय मुड़ा, जब सीरियाई यूनानी दार्शनिक अपामिया के पोसिडोनियस (लगभग १३५–५१ ई० पू०) ने लोकप्रिय धार्मिक विश्वासो के स्टोइकवाद का द्वार खोल दिया। दो सौ वर्षों के कुछ पहले ही स्टोइक विचारधारा का नेतृत्व गेलियों के भाई सेनेका के हाथों मे चला गया, जो सन्त पाल का समकालीन था। सेनेका की दार्शनिक पुस्तको में ऐसे स्थल है जो ऐसे विचित्र ढंग से सन्त पाल के पत्रो का भाव प्रकट करते है कि कुछ छोटे ढग के आलोचक यह कल्पना करते हैं कि रोमन दार्शनिक और ईसाई मिशनरी के बीच पत्राचार होता रहा। ऐसी कल्पनाएँ बेकार है और असम्भव भी, क्योकि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि एक ही युग मे जब एक ही सामाजिक युग की अभिव्यक्ति हो तब यदि दो आध्यात्मक सगीत हो तो समान स्वर निकले।

जब पहले अध्याय मे पतनोन्मुख सभ्यता की सीमा के संरक्षकों और उसके आगे की बर्बर सेनाओं के सम्बन्ध मे हमने अध्ययन किया था, तब हमने देखा था कि वे इतने निकट पहुँच गये कि पहचानना कठिन था और दूसरे अध्याय में वे मिल जाते है तथा बर्बरता के स्तर पर आ

१. पी० ई० मोर : क्राइस्ट द वर्ड, पृ० ६–७।

जाते हैं। इसी के समान वह घटना भी है जब शक्तिशाली अल्पसंख्या के दार्शनिकों और सर्वहारा धर्म के उपासको का समागम होता है, ऊँचे धरातल पर सेनेका और सन्त पाल एक-दूसरे के निकट पहुँचते हैं। यहाँ पहला अध्याय समाप्त होता है। दूसरे अध्याय मे दर्शन कम ज्ञानवर्धक धार्मिक प्रभावो में आ जाता है, और धार्मिक भक्ति अन्धविश्वास में बदल जाती है।

शक्तिशाली अल्पसंख्या के दर्शन का यह दुखदायी अन्त होता है। यह उस समय भी होता है जब दर्शन अपनी सारी शक्ति लगाकर सर्वहारा की उर्वर आध्यात्मिक भूमि पर पहुँचने की जी जान से चेष्टा करते हैं, जहाँ उच्च धर्म का बीजारोपण हो सकता है। इन दर्शनो को इससे कोई लाभ नही होता कि अन्त में यह भी सुमनों की भाँति खिल गये क्योंकि विलम्ब से और अनिच्छा से खिले ये सुमन अपने से ही प्रतिशोध लेते है और बढ़कर पतित और अनुपयोगी झाड़-झंखाड़ बन जाते है। सभ्यता के विघटन के अन्तिम अंक (ऐक्ट) में दर्शनों की मृत्यु हो जाती है और उच्च श्रेणी के धर्म जीवित रहते है और भविष्य के दावेदार होते हैं। ईसाई धर्म का अस्तित्व बना रहा और नव-अफलातूनी (निओ-प्लेटोनिक) दर्शन को उसने निष्कासित कर दिया, क्योकि बुद्धिवाद को हटाकर इसमे जीवन के लिए कोई सजीवनी नही रह गयी। वास्तविकता यह है कि जब दर्शन और धर्म का सम्मिलन होता है, धर्म का उन्नयन होता है और दर्शन का अवनयन। हम इस अध्ययन से, इस प्रश्न पर विचार किये बिना नही हट सकते कि जब ये दोनों मिलते हैं तब क्या कारण है कि हम पहले से ही समझ लेते हैं कि इसका परिणाम दर्शन की पराजय होगी।

तब वे कौन-सी दुर्बलताएँ है जो दर्शन की पराजय करा देती है जब वह धर्म का प्रतियोगी बनकर अखाड़े मे प्रवेश करता है? सबसे घातक और मूल दुर्बलता है, जिसके कारण अन्य दुर्बलताएँ भी आ जाती है, आध्यात्मिक शक्ति का अभाव। इस सजीवता के अभाव के कारण दर्शन दो ढग से लँगड़ा हो जाता है। इनके कारण जनता का आकर्षण कम हो जाता है और जिसे उसका आकर्षण भी होता है उसे यह उत्साह नही होता कि उसके प्रति मिशनरी कार्य करे। सच बात यह है कि दर्शन कुछ बौद्धिक श्रेष्ठ लोगो के प्रति जो 'योग्य किन्तु अल्प' होते है अनुराग दिखाता है, उस बौद्धिक कवि के समान जिसके पाठक कम होते है और इस कारण को वह अपनी रचना की श्रेष्ठता का प्रमाण समझता है। सेनेका की पहली पीढ़ी मे होरेस ने अपने 'रोमन गान' के दार्शनिक देशभक्तिपूर्ण अभ्यर्थना को इस प्रकार आरम्भ करने में कोई असगति नहीं समझा—

> अग्रगामियों, कलुषित समूहो!
> चुप रहो! कोई अपवित्र मुख
> गीत के पवित्र संस्कार को अशान्त मत करो,
> जब मैं, नवों देवियों का श्रेष्ठ पुरोहित,
> केवल युवक और युवतियों के लिए
> नवीन और ऊँचे गीत लिख रहा हूँ।[1]

ईसू के दृष्टान्त से यह बहुत दूर की आवाज है जिसने कहा था—

१. होरेस : खण्ड, ३, गीत १,२, १–४—सर स्टेफेन डि वियर का अनुवाद।

'सड़कों पर और झाड़ियों में जाओ और उनको यहाँ आने के लिए विवश करो, जिससे मेरा घर भर जाये।'

इस प्रकार ऊँची-से-ऊँची अवस्था में दर्शन धर्म की शक्ति पाने की कभी आकांक्षा नहीं कर सकता। जिस धर्म की प्रेरणा ने सेनेका और एपिक्टिस की पीढ़ी में हेलेनी बौद्धिक मूर्तियों में कुछ समय के लिए सजीवता का संचार किया था, वह मारकस आरीलियस की पीढ़ी में मिथ्या धार्मिक आडम्बर में परिवर्तित हो गया और दार्शनिक परम्परा के उत्तराधिकारी दो कुर्सियों के बीच गिर पड़े। उन्होने बौद्धिक आह्वान का तिरस्कार कर दिया हृदय तक पहुँचने की राह नहीं निकाली। वे ज्ञानी न होकर साधु नहीं हुए, सनकी हो गये। सम्राट् जूलियन अपने दार्शनिक आदर्श के लिए सुकरात को छोड़कर डायोजिनीज़ की ओर मुड़ा। वही पौराणिक डायोजिनीज़ जिससे—ईसा मसीह से नहीं—सन्त सीमिओन एटालाइट्स तथा उसके सह-तपस्वियो की 'ईसाई तपस्या' का आविर्भाव हुआ है। वास्तव में इस दुख-सुख पूर्ण अन्तिम अंक में, अफलातून और ज़ीनो के शिष्यों ने अपने स्वामियों की अपूर्णता को स्वीकार किया और उसका उदाहरण स्वयं आन्तरिक सर्वहारा का अनुकरण करके उपस्थित किया। यह और कुछ नहीं था, वास्तव में उस जनसाधारण की सच्ची चाटुकारिता थी, जिस जनता को होरेस ने अपने श्रोताओं से अलग कर दिया था। अन्तिम नव-अफलातूनवादी, आयमब्लिक्स और प्रोक्लस उतने दार्शनिक नही है जितने एक काल्पनिक अस्तित्वविहीन धर्म के पुरोहित। जूलियन जिसका संस्कार और उपासना के प्रति बहुत उत्साह था, इनकी योजना का कार्यवाहक था। उसकी मृत्यु के समाचार के बाद उसके राज्य-सहायता-प्राप्त धार्मिक संस्थान का तुरन्त समाप्त हो जाना उस विवेचन की सत्यता को प्रमाणित करता है जो आधुनिक मनोविज्ञान के प्रतिष्ठापक ने व्यक्त किया है :

'बडे-बड़े प्रवर्तन ऊपर से नही आते, वे सदा निचले वर्ग से आते हैं (उनसे) जो देश के शान्त और तिरस्कृत लोग हैं—जिन पर शास्त्रीय पक्षपात का प्रभाव नही पड़ा है, जो प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर पड़ा करता है।'[1]

(च) शासक धर्म का निर्णय करता है[2]

ऊपर के अध्याय के अन्त में हमने देखा कि सम्राट् जूलियन अपनी प्रजा को उस मिथ्या-धर्म को मानने के लिए विवश न कर सका, जिसका वह दार्शनिक होने के कारण अनुगामी था। इससे यह साधारण प्रश्न उठता है कि क्या अधिक अनुकूल परिस्थिति में शक्तिशाली अल्पसख्या अपनी आध्यात्मिक दुर्बलता की कमी को पूरा करने के लिए भौतिक शक्ति का प्रयोग कर सकती है और राजनीतिक दबाव से किसी दर्शन या धर्म को अपनी प्रजा पर लाद सकती है और जो

१. सी० जी० जुंग—माडर्न मैन इन सर्च आव ए सोल—पृ० २४३-४४।

२. यह वाक्य सन् १५५५ की आग्सबुर्ग की सन्धि का संक्षेप है। उसमें निर्णय हुआ था कि प्रत्येक स्थानीय जर्मन राज्य के शासकों को अधिकार था कि वह चाहे रोमन कैथोलिक धर्म या लूथरी धर्म स्वीकार करे। और वह चाहे (शासक के) धर्म पर चलने को प्रजा को विवश कर सकता था। यह सन्धि पहली अनिर्णीत जर्मन धार्मिक लड़ाई के बाद हुई।

अवैधानिक होने पर भी प्रभावकारी हो सकती है। यद्यपि यह प्रश्न हमारे अध्ययन के मूल विषय के बाहर है, फिर भी आगे बढ़ने के पहले इसका उत्तर ढूँढ़ने की हम चेष्टा करेंगे।

इस विषय का ऐतिहासिक प्रमाण यदि हम खोजेंगे तो हमें पता चलेगा कि साधारणतः ऐसे प्रयत्न असफल हुए हैं, समय पाकर। यह निष्कर्ष प्रबुद्धता के सामाजिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है, जो हेलेनी संकटकाल में प्रतिपादित हुई थी, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार धार्मिक आचार जान-बूझकर ऊपर से नीचे की ओर लादे गये थे। ये न तो असाधारण बातें थी, न असम्भव। समाजों की सभ्यता की प्रक्रिया में धार्मिक संस्थाओ के आरम्भ का यही ढग था। रोम के धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त लागू कर दिया गया है और पोलीबियस ने (लगभग २०६–१३१ ई० पू०) उसका इस प्रकार वर्णन किया है :

'मेरी राय में रोमन संविधान जिन बातों में दूसरे सविधानो से उत्कृष्ट है वह इसका धर्म के प्रति निर्वाह है। मेरी राय में रोमनो ने अपनी सामाजिक व्यवस्था को उन चीजो से बाँधा है जिससे सारा संसार घृणा करता है, मेरा अभिप्राय है अन्धविश्वास से। उन्होने अपने अन्ध-विश्वास को नाटक का रूप दिया है और उसे निजी तथा सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर दिया है, और इस कार्य में रोमन लोग उतनी दूर तक चले गये हैं जहाँ तक बुद्धि जा सकती है, यह बात बहुत लोगो को विचित्र लगेगी। मेरी राय में रोमनों ने जनता को ध्यान में रखकर ऐसा किया है। यदि ऐसा सम्भव होता कि सब निर्वाचक विद्वान् होते तो यह प्रवचना आवश्यक न होती कि वास्तव में जनता सदा अस्थिर रहती है, गैर कानूनी आवेगो, अविवेकपूर्ण प्रकृति तथा हिंसात्मक क्रोध से भरी रहती है, इसलिए उन्हे नियन्त्रित रखने के लिए 'अज्ञात के भय' का अथवा ऐसे ही नाटक की स्थापना आवश्यक है। मै समझता हूँ कि इसी कारण हमारे पूर्वजो ने जन-साधारण के बीच उन धार्मिक विश्वासों तथा तर्क की कल्पना को प्रस्तुत किया है जो अब परम्परा बन गये है, और मेरी यह भी धारणा है कि ऐसा करने में हमारे पूर्वज अटकल-पच्चू कार्य नही कर रहे थे, किन्तु सब समझ-बूझकर कर रहे थे। अधिक उचित होगा यदि हम अपने समकालीन लोगो पर यह आरोप लगाये कि जिस कार्य को करते हुए हम उन्हें देख रहे हैं धर्म को मिटाने मे वे अनुत्तरदायित्व तथा बुद्धिहीनता से कार्य कर रहे हैं।'[१]

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त सत्य से उतनी ही दूर है जितना राज्यो की उत्पत्ति से सामाजिक अनुबन्ध। यदि हम प्रमाणों की परीक्षा करें तो हमें पता चलेगा कि राजनीतिक शक्ति आध्या-त्मिक जीवन को प्रभावित करने में बिलकुल असमर्थ तो नही है, किन्तु इस क्षेत्र में उसके कार्य करने की क्षमता विशेष परिस्थितियों के मिल जाने के कारण सम्भव होती है, और तब उसका क्षेत्र सीमित होता है। सफलता अपवाद के रूप में होती है, असफलता ही अधिक होती है।

पहले हम अपवादों को ले। राजनीतिक अधिपति किसी पंथ को सस्थापित करने में कभी-कभी सफल हो जाते हैं, जब वह पंथ वास्तव में किसी धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति नहीं होता बल्कि धर्म की आड़ में राजनीतिक मनोभाव होता है। उदाहरण के लिए कोई ऐसा मिथ्या धार्मिक कर्मकाण्ड जो उस समाज में राजनीतिक एकता की पिपासा को शान्त करता है,

१. पोलीबियस : हिस्ट्री, खण्ड ६, अध्याय ५६।

जो (समाज) संकट-काल का कड़ुआ प्याला आकण्ठ पी चुका है। ऐसी परिस्थिति में जिस शासक ने अपनी प्रजा का हृदय उनका त्राता बनकर जीत लिया है पंथ की संस्थापना करके अपने को तथा अपने वंश को पूजा का विषय बना सकता है।

इस प्रकार की महान् शक्ति का क्लासिकी उदाहरण रोमन सम्राटों को देवता की भाँति मानना है। सीजर की पूजा शान्ति के समय का धर्म था, किन्तु वास्तविक धर्म का उलटा था, जो 'सामयिक विपत्ति के समय सहायक' होता है। सीजर की दैविकता, दूसरी तथा तीसरी शती ई० पू० के बाद जब रोमन साम्राज्य का पहली बार पतन हुआ, ठहर न सकी। और इस जुटाव के सब योद्धा सरदार इधर-उधर बिखरने लगे कि उनके अपयश-प्राप्त साम्राज्यवादी प्रतिभा के समर्थन मे कोई अलौकिक समर्थन मिल जाता। आरीलियन और कांसटैंटियस क्लोरियस एक अमूर्त और सार्वभौम नेता सौल इनविक्टस के झण्डे के नीचे आये और एक पीढ़ी के बाद कासटैंटाइन महान् (३०६–३७ ई०) ने अपनी भक्ति उस आन्तरिक सर्वहारारूपी ईश्वर को अर्पित कर दी जो सौल या सीज़र दोनों से शक्तिमान् था।

यदि हम हेलेनी से सुमेरी संसार की ओर दृष्टि डालें तो सीजरपूजा के समान ही व्यक्तित्व पूजा इसमे (सुमेरी राज्य मे) देखेंगे। यह पूजा इस सार्वभौम राज्य के सस्थापक उर-एनगूर ने नही चलायी थी, उसके उत्तराधिकारी डगी (लगभग २२८०–२२३३ ई० पू०) ने चलायी। किन्तु यह भी शान्ति के समय की युक्ति मात्र थी। जो भी हो, अमोराइट हमूरबी, जिसका स्थान सुमेरी इतिहास में वही है जो रोमन साम्राज्य मे कांसटैंटाइन का था, देवता बनकर राज्य नही करता था, अलौकिक देवता मारडुक बेल का दास बनकर राज्य करता था।

इसी प्रकार के सीज़र-पूजा के चिह्न दूसरे सार्वभौम राज्य में भी पाये जाते हैं, जैसे एंडियाई, मिस्री या चीनी में, जो हमारे इस विचार का समर्थन करते है कि राजनीतिक शासको द्वारा ये चलाये पंथ जन्मजात दुर्बल होते हैं। उस समय भी जब ये पंथ धर्म के आवरण में मूल रूप से राजनीतिक ही होते हैं, और जब ये सार्वजनिक भावना के अनुकूल भी होते है तब भी इनमें तूफानो से बचने की शक्ति नही होती।

एक और वर्ग होता है जिसमें राजनीतिक शासक कोई पंथ चलाता है जो धार्मिक आवरण में राजनीतिक संस्था नही होती, सचमुच धार्मिक पथ होता है। इस क्षेत्र मे भी हम दिखा सकते कि इस प्रयोग को कुछ सफलता मिली है उसमे धर्म को 'चलता हुआ' होना चाहिए, कम-से-कम राजनीतिक शासक की प्रजा की अल्पसख्यक आत्मा में, और जब यह शर्त पूरी हो जाती है और सफलता मिलती है तब इसका जो मूल्य चुकाना पड़ता है वह बहुत अधिक होता है। क्योंकि जो धर्म राजनीतिक अधिकार के बल पर शासक द्वारा अपनी प्रजा के शरीर और आत्मा पर सफलतापूर्वक लादा जाता है वह इस थोड़े-से भाग पर तो चल जाता है, किन्तु इसका मूल्य यह चुकाना पड़ता है कि वह सार्वभौम धर्म नही हो सकता।

उदाहरण के लिए ई० पू० दूसरी शती में जब मक्काबी लोग बलपूर्वक हेलेनीकरण के विरोध में यहूदी धर्म के सैन्यवादी समर्थक होने के स्थान पर सेल्यूकस के उत्तराधिकारी एक राज्य के संस्थापक और शासक हो गये तब ये उत्पीड़न का हिंसात्मक विरोध करने वाले, स्वयं उत्पीड़क हो गये और अहिंसावादी यहूदियों पर, जिन्हें उन्होने जीता था, जबरदस्ती जूडावाद लादने लगे। इस नीति ने विजय पायी और जूडावाद का क्षेत्र इडचूमिया, 'अ-यहूदियों के गैलिली',

और ट्रांसजारडोनियाई पीरिया तक विस्तृत हो गया। इतने पर भी शक्ति की विजय संकीर्ण क्षेत्र मे ही थी। क्योंकि यह समरिटनों की विशिष्टतावाद पर न तो विजय पा सकी न उन हेलेनी-कृत नगर-राज्य के नागरिक गर्व को चूर कर सकी जो मक्काबी राज्य की दोनो ओर फैले थे, एक मध्यसागर के किनारे फिलस्तीन और दूसरा डिकापोलिस में मरुस्थल के किनारे। वास्तव में शक्ति द्वारा यह विजय अधिक नही थी और यहूदी धर्म का सारा भविष्य इसके मूल्य में चुकाना पड़ा। यहूदी इतिहास की यह महान् विडम्बना है कि अलेकजेडर जैनिअस (१०२–७६ ई० पू०) ने जूडावाद के लिए जो नया देश विजय किया था, वही सौ साल के भीतर ही गैलीलिया के यहूदी देशदूत का जन्म हुआ जिसके सन्देश में पहले के यहूदी धर्म की सारी अनुभूतियों का एकीकरण हो गया और जबरदस्ती परिवर्तित किये हुए गैलीली अ-यहूदी के इस उत्प्राणित वंशज को उसके युग के यहूदी धर्म के जूडाई नेताओं ने तिरस्कृत कर दिया। इस प्रकार जूडावाद ने अपने प्राचीन को ही नही हास्यास्पद बनाया, भविष्य को भी नाश कर दिया।

अब हम यदि यूरोप के धार्मिक नकशे की ओर ध्यान दे तो स्वभावतः हम यह जानना चाहेगे कि मध्ययुग के ईसाई जनतन्त्र के स्थानीय उत्तराधिकारियो मे कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट राज्यो की सीमाओ मे कितनी कूटनीति से बनी है और कितनी सेना के बल से? इसमें सन्देह नही कि सोलहवी और सत्रहवी शती के धार्मिक संघर्ष मे बाहरी सैनिक और राजनीतिक बातो पर बहुत महत्त्व नही देना चाहिए। क्योकि दो चरम उदाहरणो पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि कोई राजनीतिक शक्ति बाल्टिक राज्यो को कैथोलिक धर्मतन्त्र मे या भूमध्यसागर के देशो को प्रोटेस्टेन्ट तन्त्र मे नही रख सकती थी। उसी के साथ एक बीच का विवादास्पद क्षेत्र था जिसमें सैनिक शक्ति अवश्य ही प्रभावशाली थी—वे क्षेत्र है, जरमनी, निचले देश (लो कट्रीज), फ्रांस और इग्लैंड। जरमनी मे विशेषतः इस सूत्र का आविष्कार और प्रयोग हुआ था कि 'शासक धर्म का निर्णय करता है।' हमे इस बात को मानना होगा कि कम-से-कम मध्य यूरोप में राजाओं ने, अपनी शक्ति से सफलतापूर्वक अपनी प्रजाओ पर ईसाई धर्म का वह रूप, जिस पर उनका विश्वास था, जबरदस्ती लादा। हमें यह भी मानना पडेगा कि इस राजनीतिक सरक्षण के कारण और इस राज्य की अधीनता से पश्चिमी ईसाई धर्म के दोनो रूपो—कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेट—को हानि हुई है।

पहला मूल्य यह चुकाना पड़ा कि जापान से कैथोलिक धर्म के मिशन को हटाना पड़ा। कैथोलिक ईसाई धर्म के बीज को जेसुइट मिशनरियो ने जो सोलहवी शती में बोये थे उन्हे सत्रहवी शती के मध्य में नये जापानी सार्वभौम राज्य के शासको ने उखाड़ फेंका क्योकि ये राजमर्मज्ञ इस परिणाम पर पहुँचे थे कि कैथोलिक धर्म के माध्यम से स्पेन का सम्राट् साम्राज्य का विस्तार चाहता है। मिशनरियों के इस क्षेत्र का चला जाना उस हानि के सामने कुछ भी नहीं था जो 'शासक धर्म का निर्णय करता है' की नीति से अपने देश मे आध्यात्मिक दरिद्रता उपस्थित हुई और पश्चिमी ईसाई धर्म को उससे हानि हुई। धर्म के युद्ध के युग मे पश्चिमी ईसाई धर्म के सभी प्रतिद्वन्द्वी इस बात पर तत्पर थे कि अपने विचार के अनुसार धर्म चलाने का कोई सरल मार्ग निकल आये और इसके लिए राजनीतिक शक्ति के प्रयोग पर वह तरह दे जाते थे, और कभी उसकी माँग भी करते थे। और इसके परिणामस्वरूप आत्मा में विश्वास की सारी जड़ उन्होने सुखा दी, जिस विश्वास को जमाने की वे ही चेष्टा करते थे। सोलहवें लुई की बर्बरतापूर्ण प्रणाली ने फ्रांस

की आध्यात्मिक धरती से प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्म को निष्कासित कर दिया और अनेक प्रकार के संशयवाद को जन्म दिया। नेन्टीज़ के एडिक्ट के निरसन के नौ साल के बाद वाल्टेयर का जन्म हुआ। इसी प्रकार के संशयवाद की भावना प्युरिटन क्रान्ति के धार्मिक सैन्यवाद के कारण इंग्लैंड में उत्पन्न हुई। एक नयी प्रबुद्धता की भावना उत्पन्न हुई जो उसी के समान थी। इस अध्ययन के इस अध्याय के आरम्भ मे पोलीबियस के कथन मे व्यक्त की गयी है। उस प्रकार के विचार के लोग हो गये जो धर्म का मजाक उड़ाते थे। यहाँ तक कि सन् १७२६ मे बिशप बटलर को अपनी पुस्तक—'एनालोजी आव रिलिजन, नेचुरल एण्ड रिवील्ड, टु द कान्स्टिटयूशन एण्ड कोर्स आव नेचर', की भूमिका मे लिखना पड़ा—

'मै कह नही सकता कि यह कैसे हुआ, किन्तु ऐसा बहुत लोगो का निश्चित मत है कि ईसाई धर्म के सम्बन्ध मे बहुत खोज करने की आवश्यकता नही है, यह पता चल गया है कि यह धर्म काल्पनिक है। और इसलिए वे मान लेते हैं कि सब समझने वाले लोग इस बात पर सहमत है कि इसमे कुछ तथ्य नही है और यह केवल हँसी-दिल्लगी और परिहास का विषय है। ऐसा जान पड़ता है कि यह इसका बदला है जो इस धर्म ने अब तक सासारिक आनन्द को रोक रखा है।'

यह मनोवृत्ति, जिसने बुझते हुए धार्मिक विश्वास के मूल्य पर धर्मान्धता का विसक्रमण किया है, सत्रहवी से बीसवी शती तक चलती आयी है और हमारे पश्चिमी महान् समाज मे इस सीमा तक पहुँच गयी है कि लोग उसके ठीक रूप को समझने लगे हैं। अर्थात् लोग समझने लगे हैं कि यह केवल आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए ही नही विनाशकारी है, पश्चिमी समाज के भौतिक जीवन के लिए भी भयकारी है। यह उससे भी भयकर है जो राजनीतिक और आर्थिक रोग हमारे समाज मे आ गये हैं जिनके बारे में नित्य हम लोगो का ध्यान आकृष्ट करते रहते है और विज्ञापित करते रहते हैं। यह आध्यात्मिक रोग इतना बढ गया है कि इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। किन्तु रोग का निदान सरल है, औषधि बताना कठिन है। क्योकि धार्मिक विश्वास व्यापार की कोई स्टैण्डर्ड वस्तु नही है कि माँग होने पर तुरत बना दी जाय। ढाई सौ साल से धार्मिक विश्वास के क्रमश ह्रास से पश्चिम के दृश्य में जो आध्यात्मिक शून्यक उत्पन्न हो गया है उसे भरना कठिन है। हम अब भी धर्म को राजनीति का अनुचर मानते है जो हमारे सोलहवी और सत्रहवी शती के पूर्वजो का अपराध था।

यदि हम पश्चिमी ईसाई धर्म के वर्तमान रूपो पर साधारण ढग से विचार करे, और प्रत्येक की शक्ति का तुलनात्मक विवेचन करे तो हम देखेंगे कि शक्ति उसी के अनुसार घटती-बढ़ती मिलेगी कि किस धर्म का कितना राजनीतिक नियन्त्रण रहा है। निस्सन्देह पश्चिमी ईसाई धर्म का कैथोलिक रूप आज सबसे शक्तिशाली दीखता है। इसके होने पर भी कि कुछ देशो मे और कुछ कालों मे अपने देशों के अन्दर कैथोलिक राजाओ ने अपनी प्रजा पर अपने विचार के अनुसार धर्म लादा, कैथोलिक धर्मतन्त्र का यह गुण कभी लोप नही हुआ कि वह एक महान् धार्मिक अधिकारी के नियन्त्रण में रहा। कैथोलिक तन्त्र के बाद शक्ति के हिसाब से हम प्रोटेस्टेंट धारा के 'स्वतन्त्र धर्म तन्त्रो' को रखेंगे जिन्होने राजनीतिक शासनों के बाहर अपने को निकाल रखा है। और सबसे नीचे वे प्रोटेस्टेंट 'संस्थापित तन्त्र' है जो किसी-न-किसी सीमित राज्य के अधीन हैं। और अन्त मे यदि हम विभिन्न धार्मिक विचारों और विश्वासों की शक्तियों की तुलना करें जो चर्च आव इंग्लैंड तन्त्र मे विस्तार से फैले हुए है तो अंग्रेजी धर्मतन्त्र में सबसे

शक्तिशाली रूप, ऐंग्लो-कैथोलिक शाखा है, जो १८७४ ई० के कानून के बाद, 'जनता को बहलाने के' लिए बनाया गया था, राजनीतिक विधान को तिरस्कारपूर्ण उदासीनता से देखता है।

इस कुत्सित तुलना की शिक्षा स्पष्ट है। आधुनिक युग में पश्चिमी ईसाई धर्मतन्त्र की विभिन्न शाखाओं की विभिन्न परिस्थितियों से हमारे इस कथन का समर्थन होता है कि धर्म को कोई लाभ नही होता बल्कि हानि होती है, यदि वह राजनीतिक सहायता की याचना करता है या अपने को राजनीतिक शक्ति को समर्पित कर देता है। इसका एक ही अपवाद है जिसका कारण हमें देखना पड़ेगा, इसके पहले कि इस नियम को हम उचित और व्यापक मान लें। वह है इस्लाम। क्योंकि सीरियाई समाज के विघटन को इसने सार्वभौम धर्मतन्त्र में परिवर्तित किया यद्यपि उसके पहले ही वह राजनीति मे सम्मिलित हो गया था, और किसी दूसरे धर्म की अपेक्षा वह निश्चित रूप से राजनीति में सम्मिलित हो गया था और उसे राजनीति मे उसके संस्थापक ने ही प्रविष्ट किया।

पैगम्बर मुहम्मद का सार्वजनिक जीवन निश्चय रूप से दो भागो में विभाजित होता है और दोनो एक दूसरे के विरोधी हैं। पहले भाग मे वह शान्तिमय देवदूत के रूप में इलहामी धर्म का प्रचार करते है, दूसरे अध्याय मे राजनीतिक तथा सैनिक शक्ति का निर्माण करते है और इन शक्तियो का उसी प्रकार प्रयोग करते है, जो प्रयोग और लोगो के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए। इस मदीना वाले अध्याय में मुहम्मद ने अपनी नवीन भौतिक शक्ति को इस कार्य के लिए प्रयोग किया कि, जिस धर्म की संस्थापना उन्होने मक्का से मदीना आने के पहले की थी कि उसमें कम-से-कम बाहरी ढग से एकरूपता आ जाय। इस प्रकार तो हिजर मे इस्लाम का विनाश होना चाहिए और न कि इस धर्म की प्रतिष्ठापना की तिथि। इसका क्या कारण हम बता सकते हैं कि जो धर्म ससार में बर्बर युद्धप्रिय गिरोह द्वारा सैन्यवादी रूप मे संस्थापित हुआ था, वह सार्वभौम धर्मतन्त्र बनने मे सफल हुआ। यद्यपि जब वह स्थापित हुआ उसमे आध्यात्मिकता की कमी थी, जिसके कारण और धर्मों से तुलना करते हुए उसकी असफलता जान पड़ती थी।

जब हम इस प्रश्न को इन रूपो मे रखते है तो हमें अनेक आंशिक उत्तर मिलते है। सम्भव है सबको एकत्र कर लेने पर समाधान मिल जाय।

पहले तो हमे इस विचारधारा को, जो ईसाई संसार में प्रचलित है, अधिक बल नही देना चाहिए कि इस्लाम धर्म शक्ति के बल पर फैलाया गया है। पैगम्बर के उत्तराधिकारियो ने इस धर्म के लिए थोड़ी ऐसी बाहरी विधियो को पालन करने पर अवश्य जोर दिया था जो बहुत कठोर नहीं थी, और यह भी उन बहु-मूर्तिपूजक समुदायो की सीमा के बाहर नही जो अरब की उस अवान्तर भूमि में रहते थे, जहाँ इस्लाम का जन्म हुआ था। जिन रोमन तथा ससानियाई साम्राज्यों के प्रदेशो को इन्होने जीता, वहाँ यह विकल्प इन्होने नही रखा कि 'इस्लाम या मृत्यु', इन्होने यह कहा—'इस्लाम या अधिकार' और इस नीति की प्रबुद्धता की प्रशंसा परम्परागत की गयी थी जब उसके बहुत दिनों बाद इग्लैंड मे निरुत्साही महारानी एलिजाबेथ ने उसे प्रचलित किया था। उमैयदी शासन मे अरबी खलीफो के गैर-मुस्लिम प्रजा पर यह विकल्प ईर्ष्यामय नही था क्योंकि उमैयदी (पीढ़ी के एक शासक को छोड़कर जिसने केवल तीन साल तक शासन किया) सब उत्साहहीन थे। सच पूछिए तो उम्मैयदी प्रच्छन्न बहुमूर्ति-पूजक

थे और इस्लाम धर्म के प्रचार के प्रति उदासीन या विरोधी भी थे, जिसके नेतृत्व की पदवी उन्होंने धारण कर रखी थी।

इन विचित्र परिस्थितियों में खिलाफत के गैर-अरबी प्रजाओं में इसकी प्रगति अपने धार्मिक गुणों के कारण हुई। उसका विस्तार धीरे-धीरे किन्तु निश्चित ढंग से हुआ। भूतपूर्व ईसाइयों और भूतपूर्व पारसियों ने अपने शासक उमैयदी खलीफों के विरोध न सही तो उदासीनता के वातावरण में यह धर्म स्वीकार किया और इन लोगों के हृदयों में इस्लाम उस इस्लाम से भिन्न था जो अरब योद्धाओं ने प्रचलित किया था और जो विशेषाधिकार प्राप्त राजनीतिक प्रतिष्ठा का चिह्न था। नये गैर-अरबो ने जिन्होंने इस्लाम कबूल किया था, अपनी बौद्धिक धारणा के अनुरूप इस धर्म को स्वीकार किया और पैगम्बर के अपरिष्कृत तथा अनियत कथनों को ईसाई धर्म और हेलेनी दर्शन के सूक्ष्म और संगत रूप में परिवर्तित किया और इस देश में इस्लाम उस सीरियाई संसार के एकीकरण करने मे शक्तिशाली हुआ, जो अभी तक अरबो की सैनिक विजय द्वारा केवल ऊपरी ढंग से एकता के रूप में था।

मुआवियों की शक्ति प्राप्ति के सौ साल के भीतर ही खिलाफत की गैर-अरब मुस्लिम प्रजा इतनी शक्तिशाली हो गयी थी कि उदासीन उमैयदो को उसने निकाल बाहर किया और ऐसे वंश को गद्दी पर बैठाया जो धर्म में दृढ़ था और जिन लोगो ने उसे गद्दी पर आसीन किया उनका समर्थक था। सन् ७५० ई० में, जब गैर-अरब मुसलमानों ने उमैयदों को हराकर अब्बासियों को गद्दी पर बैठाया, इस वर्ग की जनसंख्या जिसने यह विजय प्राप्त करायी, अरब साम्राज्य की पूरी आबादी के अनुपात में उतनी ही थी जितनी रोमन साम्राज्य में ईसाइयो की जनसंख्या का अनुपात उस समय था जब कांस्टैंटाइन ने मैक्सेंटियस को हराया था। डा० एन० एच० बेन्स ने अनुमान लगाया है कि यह दस प्रतिशत थी।[1] खिलाफत की प्रजा का सामूहिक धर्म-परिवर्तन ईसा की नवी शती के पहले आरम्भ नही हुआ और तेरहवी शती तक जब अब्बासी साम्राज्य का विनाश हुआ, समाप्त नही हुआ था। और यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि इस्लामी मिशन के क्षेत्र मे विलम्ब से यह परिणाम राजनीतिक दबाव के कारण नही था, लोकप्रिय और स्वत: प्रिय आन्दोलन था क्योकि थियोडोसियस और जस्टीनियन का, जिन्होने अपनी राजनीतिक शक्ति का अपने तथाकथित धार्मिक उत्साह में कु-प्रयोग किया था, पाँच शती के अब्बासी खलीफों के बीच कोई प्रतिरूप नही था।

हमने जो नियम प्रस्तुत किया कि राजनीतिक शक्ति को जबरदस्ती धर्म के प्रसार में थोड़ी सफलता मिल जाना असम्भव नही है, आगे चलकर इस राजनीतिक समर्थन का मूल्य इतना अधिक चुकाना पड़ता है कि वह उससे अधिक हो जाता है जितना धार्मिक प्रसार होता है, उसका अपवाद इस्लाम क्यो हुआ, ऊपर के तथ्यों को पढ़ने से समझ में ठीक-ठीक आ जाता है।

जब राजनीतिक समर्थन से तुरत कोई लाभ नही होता, तब उस राजनीतिक शक्ति को वह दण्ड भुगतना पडता है। जो कुख्यात उदाहरण ऐसे है जहाँ धर्म को राजनीतिक बल से सहायता मिला है और धर्म की निश्चित रूप से क्षति हुई है उनमें से कुछ ये हैं। जस्टीनियन टारस पर्वत

१. एन० एच० बेन्स : कांस्टैंटाइन द ग्रेट एण्ड द क्रिश्चियन चर्च, पृ० ४।

के पार अपने मोनोफाइसाइट प्रजा के ऊपर अपना कट्टर कैथोलिक धर्म नहीं लाद सका, लिओ साइरस तथा कांस्टैंटाइन पंचम यूनान और इटली में अपनी मूर्ति-प्रिय प्रजा में अपनी मूर्ति भंजकता का प्रचार नहीं कर सका, अंग्रेजी राजा अपनी आयरलैण्ड की कैथोलिक प्रजा में प्रोटेस्टेंट धर्म नहीं फैला सके, और औरंगजेब अपनी हिन्दू प्रजा पर अपना इस्लाम नहीं लाद सका। जब उस धर्म का यह हाल है जो 'चलता सिक्का' है तब यह और भी कठिन है कि राजनीतिक शक्ति शक्तिशाली अल्पसंख्या के दर्शन को लाद सकेगी। हम सम्राट् जूलियन के सम्बन्ध में कह चुके हैं, वास्तव में वहीं से हमने यह खोज आरम्भ की। इसी प्रकार सम्राट् अशोक अपना हीनयानी बौद्धधर्म अपनी भारतीय प्रजा पर स्थापित नही कर सका, यद्यपि उसके समय बौद्ध दर्शन अपनी बौद्धिकता और नैतिकता के यौवनकाल में था। और उसकी तुलना हम मारकस आरीलियस के स्टोइकवाद से कर सकते हैं, न कि जूलियन के नव-प्लेटोवाद से।

अब हम उन उदाहरणों पर विचार करेंगे जहाँ कि किसी शासक ने अथवा शासक समुदाय ने किसी ऐसे धर्म की संस्थापना की चेष्टा नहीं की जो 'चलता सिक्का' था, न शक्तिशाली अल्पसंख्या के दर्शन को प्रसारित करने का प्रयत्न किया, बल्कि नये सिरे से अपनी कल्पना के धर्म का प्रसार करना चाहा। उन असफलताओं को ध्यान मे रखते हुए जहाँ ऐसे धर्म का दर्शन के, जिनमे जन्मजात शक्ति थी, लादने की चेष्टा की गयी, हम यदि यह परिणाम मान ले कि इन निजी कल्पना वाले धर्मों के प्रसार में भी असफलता ही मिलेगी, तो अनुचित न होगा। इसमें प्रमाण की भी आवश्यकता नही होगी। और सचमुच ऐसा ही हुआ भी है। 'परन्तु ये कल्पना वाले धर्म' इतिहास की विचित्रताएँ है। और किसी कारण से नहीं तो इस कारण सरसरी दृष्टि उन पर डाल देना ठीक होगा।

सबसे चरमसीमा का उदाहरण विरोधी इस्मायली शियाई खलीफ़ा अलहकीम (९९६-१०२० ई०) का है। जो कुछ विचार इन्होने बाहर से लिया हो इनके 'ड्रूस' धर्म की विशेषता यह है कि अलहकीम को ही पूजा जाय और ईश्वर के दस अवतारो में यही सबसे पूर्ण हैं। यह ईश्वरीय अमर मसीहा है जो विजयी होकर उस संसार में फिर लौटेंगे जहाँ से पहली बार अवतरित होने के बाद रहस्यमय ढंग से वह लोप हो गये। इस नये धर्म के मिशनरियों को केवल एक सफलता मिली कि उन्होंने सन् १०१६ में हरमोन पहाड़ की तलेटी में वादिल-तेम जिले के सीरियाई शिष्य 'दरजी' (नाम है) का परिवर्तन किया। पन्द्रह साल बाद इस नये धर्म मे सारी दुनिया को परिवर्तित करने का विचार त्याग दिया गया और उस दिन से ड्रूस समुदाय मे न तो परिवर्तन कर नये लोग मिलाये गये, न किसी को धर्म छोड़ने की आज्ञा दी गयी। वह सीमित वशानुगत धार्मिक समुदाय बन गया है जिसके सदस्य उस देवता का नाम नही धारण करते जिसकी वे पूजा करते है, बल्कि उस मिशनरी का जिसने पहले-पहल अलहकीम के विचित्र धर्म से उन्हें परिचित किया। हरमोन और लेबानान के पहाड़ों में बसकर ड्रूस धर्मतन्त्र 'किले में पथराये' धर्म का पूर्ण उदाहरण है। और इसी चिह्न से अलहकीम का कल्पना का धर्म असफल हो गया।

अलहकीम का धर्म कम-से-कम जीवाश्म के रूप में वर्तमान है किन्तु सीरिया के पथभ्रष्ट वेरियस एविटस बैसेनिम के प्रगल्भ प्रयत्न का कुछ भी परिणाम नहीं हुआ, जब उसने रोमन साम्राज्य के बहुसंख्यक देवताओं में 'अपने को नहीं, अपने स्थानीय देवता—एमेसन सूर्यदेवता—

एलागेबालस को मूर्धन्य रूप में प्रतिष्ठित किया और उसका वह महन्त बन बैठा और जब भाग्यवश वह सन् २१८ ई० में रोमन साम्राज्य की गद्दी पर बैठ गया, यही नाम उसने धारण किया। चार साल बाद उसकी हत्या कर दी गयी। और उसका धार्मिक प्रयोग एकाएक समाप्त हो गया।

सम्भवत: इस बात पर आश्चर्य न होगा कि किसी एलागेबालस या अलहकीम की राजनीतिक शक्ति द्वारा अपने धार्मिक सनक के प्रसार में असफलता मिली हो, किन्तु हम उन लोगों की कठिनाइयों को अच्छी तरह समझ सकते हैं जिन्होंने अपनी राजनीतिक क्रियाओं द्वारा ऊपर से नीचे की ओर धर्म और मतों के प्रसार की चेष्टा की और असफल हुए, यद्यपि यह धार्मिक भावना उनकी केवल वैयक्तिक सनक नहीं थी, उसमें गम्भीर प्रेरणा थी। ऐसे शासक हुए हैं जिन्होंने राज्य को दृष्टि मे रखकर 'कल्पना वाले धर्म' के प्रसार की चेष्टा की और असफल रहे। यह भावना धार्मिक भले ही रही हो उच्च राजमर्मज्ञता की दृष्टि से उसे हम अनुचित या निन्द्य नहीं कह सकते। ऐसे भी शासक हुए है जिन्होंने 'कल्पना वाले धर्म' के प्रसार में असफलता प्राप्त की यद्यपि वे स्वयं उस धर्म में पूर्ण रूप से विश्वास करते थे और अपना दायित्व समझते थे कि जितनी भी शक्ति उनके पास थी उसका पूरा उपयोग अपनी प्रजा में उस धर्म के प्रसार में करें, जिससे उन्हें अन्धकार में प्रकाश मिले और वे शान्ति के पथ पर चल सकें।

राजनीतिक प्रयोजन की पूर्ति के लिए नये धर्म की संस्थापना का क्लासिकी उदाहरण सेरामिस की मूर्ति तथा उसका पथ है जिसका आविष्कार टोलेमी सोटर ने किया था। टोलेमी सोटर मिस्र के अकामीनियाई साम्राज्य के उत्तराधिकारी हेलेनी राज्य का संस्थापक था। उसका उद्देश्य यह था कि अपनी मिस्री तथा हेलेनी प्रजा के बीच का भेद इसके द्वारा दूर हो। और उसने विशेषज्ञों के जत्थे का जत्था इस योजना की पूर्ति के लिए नियुक्त किया। इस सश्लेषात्मक धर्म के बहुत-से अनुयायी दोनों वर्गों में हो गये, जिनके लिए यह चलाया गया था किन्तु भेद दूर न हो सका। जैसे और बातो में उसी प्रकार सेरामिस की पूजा में भी प्रत्येक अपने मनमाने ढंग से चला। टोलेमी साम्राज्य में दोनों समुदायों के बीच का आध्यात्मिक भेद अन्त में एक-दूसरे धर्म द्वारा मिटा। यह धर्म सर्वहारा के हृदय से अपने से टोलेमियाई प्रदेश कोएलेसीरिया में उत्पन्न हुआ जब टोलेमियाई साम्राज्य के पूर्ण विनाश के बाद एक पीढ़ी बीत चुकी थी।

टोलेमी सोटर के राज्य के एक हजार वर्ष पहले मिस्र के एक दूसरे शासक फेरो इखनाटन ने परम्परावादी मिस्री देवकुल के स्थान पर अलौकिक तथा एक ही ईश्वर की पूजा की संस्थापना की जिसकी अभिव्यक्ति मानव के लिए 'एटान' अथवा सूर्य के चक्र के रूप में की गयी। जहाँ तक पता है इस देवता की स्थापना किसी राजनीतिक भावना से नहीं की गयी थी जैसे टोलेमी सोटर ने की थी, न यह किसी अर्धविक्षिप्तता या सनक के फलस्वरूप थी जैसे अलहकीम और एलागेबालस ने की थी। वह उच्च धार्मिक भावनाओं से प्रेरित हुआ था, और अशोक की भाँति उसने अपने दार्शनिक विश्वासों को धार्मिक कार्यों में परिणत किया। इखनाटन विशुद्ध धार्मिक भावना से प्रेरित हुआ था, उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था, और यह उसका निजी विश्वास था। कहा जा सकता है कि उसे सफलता मिलनी चाहिए थी, फिर भी वह पूर्ण रूप से असफल रहा। इस असफलता का कारण यही था कि एक राजनीतिक शासक ने अपने काल्पनिक धर्म को ऊपर

से नीचे की ओर प्रसारित करना चाहा। वह सर्वहारा के हृदय को स्पर्श न कर सका और शक्तिशाली अल्पसंख्या के कठोर विरोध का भाजन हुआ।

ओरफिज्म की विफलता का कारण भी इसी प्रकार बताया जा सकता है। यदि यह सत्य है, जिस पर न विश्वास करने का कोई कारण नही है कि पहले-पहले ओरफिज्म का प्रसार पाइसिसट्रेटर के घराने के एथेनी निरंकुशवादियो से आरम्भ हुआ था। जो कुछ सफलता ओरफिज्म को मिली वह हेलेनी सभ्यता के पतन के बाद मिली, और हेलेनी आत्माओं की उस अव्यवस्था की परिस्थिति के कारण जो विदेशी समाजो के मूल्य पर हेलेनी समाज में भौतिक विस्तार हो जाने के कारण हो गयी थी।

यह कहना कठिन है कि टोलेमी सोटर की राजनीतिक कूटनीति थी कि इखनाटन का आदर्शवाद था जिसने तैमूरी मुगल सम्राट् को अपने साम्राज्य मे अपने 'कल्पना के धर्म' दीन इलाही को प्रचारित करने को प्रेरित किया। प्रेरणाओ का यह मिश्रण समझ मे नही आता। क्योकि यह असामान्य व्यक्ति महान् व्यावहारिक राजमर्मज्ञ था और साथ-ही-साथ अलौकिक रहस्यवादी भी था। जो भी हो उसका धर्म पनपा नही और उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया। निरंकुशवादियो के इस प्रकार के बेकार सपनो के सम्बन्ध मे अकबर के पहले एक शासक के मन्त्री ने बताया था और सम्भवत. अकबर को उसका पता भी था। एक मन्त्रणा सभा मे जब अलाउद्दीन खिलजी ने उसी मूर्खतापूर्ण कार्य के लिए अपना विचार प्रकट किया, जिसे तीन सौ साल बाद अकबर ने किया तो एक मन्त्री ने जो कहा था वह इस विषय में अन्तिम शब्द है—

'बादशाह के मन्त्री ने इस अवसर पर कहा था—धर्म, विधान और पन्थ के सम्बन्ध में बादशाह सलामत को विवाद नही करना चाहिए क्योकि ये विषय पैगम्बरो के है, बादशाहो के नहीं। धर्म और विधान का स्रोत ईश्वरीय अभिव्यक्ति है। इनकी स्थापना मनुष्य की योजना और मनसूबे से नही होती। आदम के काल से आज तक ये पैगम्बरो और उनके शिष्यो के मिशन रहे है, जिस प्रकार शासन और राज्य राजाओ का कार्य रहा है। पैगम्बरो के काम से बादशाहों का सम्बन्ध नही होता और न जब तक संसार है, रहेगा, यद्यपि कुछ पैगम्बरो ने बादशाह का काम किया है। मेरी सलाह यह है कि श्रीमान् इन विषयो पर कभी बात न करें।'[१]

हमने आधुनिक पश्चिमी समाज के इतिहास से कोई उदाहरण नही लिया है जिसमे राजनीतिक शासको ने अपनी कल्पना के धर्म को प्रजा पर लादने का प्रयत्न किया है और असफल हुए हैं। किन्तु फ्रांस की राजक्रान्ति मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है। अठारहवी शती के अन्त के उत्तेजनापूर्ण अन्तिम दशक मे फ्रास के अनेक क्रान्तिकारियो ने, बारी-बारी से, कैथोलिक धर्मतन्त्र को प्राचीन और बेकार मानकर, १७९१ के सिविल विधान के अनुसार जनतान्त्रिक ईसाई संगठन को अथवा १७९४ मे रोब्सपियर के 'एत्रा सुप्रीमा' को अथवा निदेशक लारेनीलियर लेपा के 'ईश्वर और मनुष्य के प्रेम को सम्बन्धित करने वाले धर्म' (थियोफिलैथ्रोपी) को प्रचारित किया। किन्तु कोई सफल नहीं हुआ। कहा जाता है कि एक बार इस निदेशक ने अपने मन्त्रिमण्डल मे अपने धर्म की व्याख्या करते हुए निबन्ध पढ़ा। सभी मन्त्रियों

१. वी० ए० स्मिथ : अकबर द ग्रेट मोगल, पृ० २१०।

ने बधाई दी । उसके बाद वैदेशिक मन्त्री टैलेरैंड ने कहा—'जहाँ तक मै समझता हूँ मुझे एक ही बात कहनी है । अपने धर्म को संस्थापित करने के लिए ईसू मसीह शूली पर चढ़े और फिर जी उठे । आपको भी कुछ इसी प्रकार करना चाहिए ।' टैलेरैंड ने थियोफिलै थ्रोफियों को जो व्यंग्यात्मक शब्दो में उत्तर दिया वह वही था जो अलाउद्दीन खिलजी के मन्त्री ने सीधे शब्दों में दिया था । यदि लारवीलियर लेपा को सफलतापूर्वक अपने धर्म को चलाना था, तो उसे निदेशकों का पद छोड़कर सर्वहारा का पैगम्बर बनना चाहिए था ।

अन्त में पहले कौसल बोनापार्ट ने देखा कि फ्रांस कैथोलिक है और इसलिए उसने निश्चय किया कि यह सरल भी होगा, राजनीतिक भी होगा कि कोई नया धर्म फ्रांस में न चलाया जाय, ज्यो का त्यों रहने दिया और नया शासक उसी धर्म को स्वीकार कर ले ।

यह अन्तिम उदाहरण केवल यही नही बताता कि 'जो धर्म राजा का है वही प्रजा का होना चाहिए 'धोखा और फरेब है', वह उसका दूसरा रूप भी बताता है कि 'जो प्रजा का धर्म हो वही राजा का भी होना चाहिए' के सिद्धान्त मे बहुत कुछ सचाई है । शासको ने उस धर्म को स्वीकार कर लिया है जो उनकी प्रजा की अधिक सख्या का रहा है या जो अधिक शक्तिशाली रहा है और इसमे उन्हे सफलता मिली है । चाहे यह धार्मिक सचाई के कारण किया गया हो या राजनीतिक कारणो से, जैसे हेनरी क्वाटरा ने कहा था—'पेरिस का मूल्य एक प्रार्थना है ।' ऐसे शासको की सूची जिन्होने जनता का धर्म अपनाया, काफी है । उनमे है—रोमन सम्राट् कान्स्टैंटाइन जिसने ईसाई धर्म स्वीकार किया, चीनी सम्राट् हैनवूती जिसने कनफूशियस धर्म स्वीकार किया । इसी सूची मे क्लोविस, क्वाटरा, नैपोलियन भी है किन्तु इसका सबसे विशिष्ट उदाहरण ब्रिटिश शासन का विचित्र विधान है जिसके अनुसार वहाँ का शासक इग्लैंड मे बिशप धर्म सघ (एपिस कोपेलियन) का अनुयायी है और सीमा पार स्काटलैंड मे पादरी संघ शासित (प्रेसिबिटीरियन) है । सन् १६८९ और १७०७ के बीच राजनीति और धर्म के सम्बन्ध मे जो समझौते हुए है और उनके परिणामस्वरूप ब्रिटिश राजा को जो धार्मिक स्थान प्राप्त हुआ है वह उसके बाद ब्रिटिश विधान का संरक्षक रहा है । क्योकि कानून की दृष्टि में दोनो देशों मे धार्मिक सस्थानो की समानता का प्रतीक इस प्रकार स्थापित किया गया है जो दोनो देशों के लोग समझ सकते है । इसका प्रत्यक्ष रूप यह है कि राजा उस धर्म को स्वीकार करता है जो सरकारी रूप मे देश का धर्म है और इससे धार्मिक समता निश्चित रूप से हो गयी । इस भावना का उस शती में अभाव था जो दोनों राज्यो के सम्मिलित होने और दोनों पार्लिमेंटों के सम्मिलित होने के बीच (१६०३-१७०७) बीती । इस धार्मिक समता के द्वारा दोनों राज्यो मे स्वतन्त्रता और समान राजनीतिक सम्मिलन की मनोवैज्ञानिक नीव पड़ी, नही तो इन दोनो देशों मे परम्परागत विरोध था और वैमनस्य के कारण ये अलग थे और जो सदा से सम्पत्ति तथा जनसंख्या में एक-दूसरे से भिन्न चले आ रहे हैं ।

(६) एकता की भावना

हमने व्यवहारो के विभिन्न वैकल्पिक ढंगों के सम्बन्ध का प्रारम्भिक सर्वेक्षण किया । यह व्यवहार हमने ऐसा पाया कि सामाजिक विघटन की कठिन परीक्षा मे भावना और जीवन पर मानव की आत्मा की प्रतिक्रिया होती है । हमने इसमें असामंजस्य भी देखा जिसकी

अभिव्यक्तियों के अनेक रूपों का हमने अध्ययन किया। यह असामंजस्य व्यक्ति की स्पष्ट रेखाओं के अस्पष्ट हो जाने और मिल जाने का मनोवैज्ञानिक उत्तर है। जब सभ्यताएँ विकास के पथ पर ही रहती हैं, ये व्यक्तिगत रेखाएँ प्रकट होती हैं। हमने यह भी देखा कि उसी अनुभूति का दूसरा उत्तर भी हो सकता है जो ऐसी एकता की भावना उत्पन्न करे जो अ-सामंजस्य से भिन्न ही नहीं, उसके बिलकुल बिपरीत हो सकती है। परिचित रूप जब नष्ट होने लगते हैं तब हम उद्विग्न और दुखी हो जाते है। दुर्बल आत्माएँ इससे यह समझती है कि अन्तिम सत्ता केवल दुरवस्था के अतिरिक्त कुछ नही है। किन्तु स्थिर बुद्धि वालों को और अधिक आत्मिक दृष्टि वालों को यह सचाई प्रकट होती है कि इस प्रपचयुक्त ससार का अस्थिर महत्त्व केवल छलना है जो उस शाश्वत एकता को ठग नही सकता जो उसके पीछे है।

दूसरी सत्यताओं की भाँति आत्मिक सत्यता भी किसी बाहरी और प्रत्यक्ष वस्तु की सामान्यता से सरलता से पहले समझी जा सकती है। इस एकता की, जो आत्मिक और अन्तिम है, झलक हमें समाज के सार्वभौम राज्य मे परिवर्तित हो जाने मे मिलती है। सच बात यह है कि चाहे रोमन साम्राज्य हो या कोई दूसरा साम्राज्य हो, कभी सार्वभौम राज्य न बनता, न बना रहता यदि उसमे राजनीतिक एकता की भावना उस समय न हुई होती जब संकट चरम सीमा को पहुँच गया। हेलेनी इतिहास में यह भावना—अथवा सम्भवतः विलम्ब से आया हुआ सन्तोष—आगस्टी काल के लैटिन काव्य मे जाग्रत है, और पश्चिमी समाज की हम सन्तान आज की परिस्थिति में अपने ही अनुभव से इस बात से कितने अवगत हैं कि हमारी कितनी प्रबल इच्छा है कि संसार मे सुव्यवस्था स्थापित हो। जब हम देख रहे हैं कि मानव की एकता के लिए विफल चेष्टा हो रही है।

सिकन्दर महान् की एकता की कल्पना उस समय तक हेलेनी जगत् से नही मिटी, जब तक हेलेनीवाद का कुछ भी चिह्न शेष रहा। सिकन्दर की मृत्यु के तीन सौ साल बाद हम देखते है कि आगस्टस ने अपनी मुद्रा की अँगूठी पर सिकन्दर का सिर अंकित कराया था। इसमे यह स्वीकृति थी कि इसी स्रोत से हमने रोमन साम्राज्य के शासन की प्रेरणा पायी है। प्लूटार्क ने सिकन्दर का एक कथन उद्धृत किया है—ईश्वर सब मानव का समान रूप से पिता है, किन्तु उनमें जो विशिष्ट है उन्हें वह विशेष रूप से अपना बना लेता है। यदि यह युक्ति ठीक है तो इससे पता चलता है कि सिकन्दर ने समझ लिया था कि मानव के बन्धुत्व की कल्पना यह स्वीकार कर लेती है कि ईश्वर सबका पिता है। इस सत्यता मे इसका विपरीत भाव भी निहित है कि यदि मानव-परिवार में से ईश्वर को हटा दिया जाय, तो केवल मानव-समाज के संगठन में आपस में एक-दूसरे को बाँधने की कोई शक्ति नही रह जाती। सारी मानवता को एक मे बाँधने के लिए कोई समाज है तो वह अतिमानवीय ईश्वरीय समाज है। ऐसे समाज की कल्पना जिसमें मनुष्य ही मनुष्य है, कोरा धोखा है। स्टोइक दार्शनिक एपिक्टिटस इस महान् सत्य को जानता था और ईसाई देवदूत पाल भी इसे जानता था। अन्तर इतना था कि एपिक्टिटस ने दार्शनिक परिणाम के तथ्य के रूप में इसे प्रकट किया है, और सन्त पाल ने इसे ईश्वर की वाणी के रूप में प्रस्तुत किया जो ईसामसीह के जीवन और मृत्यु के माध्यम से मानव को भेजी गयी थी।

चीनी संकटकाल के समय एकता की भावना केवल सांसारिक स्तर पर नहीं प्रकट हुई थी।

'चीनियों के लिए इस काल में 'एक' शब्द (एकता, एकत्व) का अभिप्राय गम्भीर भावनात्मक था। इसका प्रतिबिम्ब राजनीति पर भी पड़ा था और टाओ की तत्त्वमीमासा पर भी। और वास्तव में जो अभिलाषा थी, या और सच पूछिए तो जो मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी, वह राजनीतिक एकता की अपेक्षा विश्वास की एकरूपता थी जो अधिक गम्भीर तथा आवश्यक थी। सब मिलाकर मनुष्य, बिना धर्मपरायणता और बिना ईश्वरीय विश्वास के निश्चित आदर्श के जी नही सकता।'[१]

यदि चीनियो का एकता की खोज का यह व्यापक ढंग मानक के रूप मे मान लिया जाय और मनमाने ढंग से अलग की हुई मानवता का हमारा पश्चिमी सम्प्रदाय अपवाद स्वरूप था, व्याधि का रूप समझ कर हटा दिया जाय, तो हम देखेंगे कि मानवी एकता और विश्व की एकता का साथ-साथ आत्मिक प्रयत्न हुआ है। यह आत्मिक प्रयत्न केवल इसलिए कि एक समय विभिन्न क्षेत्रो मे हुआ, इसलिए विभिन्न नही माना जा सकता। वास्तव मे हम देख चुके है कि जब स्थानीय समुदाय सार्वभौम राज्य मे मिल जाते है तब साथ-साथ स्थानीय देवता भी मिलकर एक कुल-देवता हो जाते है, जिसमें से एक देवता का प्रादुर्भाव होता है जैसे थीबीज का एमान-रे, अथवा बैबिलोन का मारदुक-बेल। यह ससार के राजाओं के आत्मिक समानार्थी राजाओ के राजा और महाराजाओ के महाराज है।

परन्तु यह मालूम होगा कि मानवी कार्यों की जिन परिस्थितियों के जिन कारणो से अति-मानव प्रतिबिम्ब के स्वरूप मे इस प्रकार के देवताओं का उदय होता है वे तभी उपस्थित होती है जब सार्वभौम राज्य का जन्म होता है। उस सगठन के कारण नही, जो इस प्रकार के राजतन्त्र का परिणाम है, क्योंकि सार्वभौम राज्य का अन्तिम सगठन वह शासन नही होता जिसमे केवल विभिन्न अगो को सुरक्षित रखा जाय और विभिन्न सत्ताओ को सम्मिलित करके उनमे से एक सबसे ऊपर शासन करे। समय के साथ-साथ वह ठोस एकात्मक साम्राज्य (यूनिटरी एम्पायर) बन जाता है। वास्तव मे परिपक्व सार्वभौम साम्राज्य मे दो प्रमुख विशेषताएँ होती है, जो सारे सामाजिक भूदृश्य पर अपना प्रभुत्व बनाये रखती है, वे दो हैं—सर्वोच्च व्यक्ति राजा के रूप में और सर्वोच्च अवैयक्तिक कानून। जिस संसार का शासन इस योजना के अनुसार होता है, उसी ढाँचे के अनुसार विश्व के शासन की भी कल्पना होती है। यदि सार्व-भौम का मानवी शासक इतना शक्तिशाली और साथ-ही-साथ इतना परोपकारी है कि उसकी प्रजा उसे ईश्वर का अवतार समझकर उसकी पूजा करे तो प्रबल युक्ति से वह उस शासक को धरती पर स्वर्ग के ईश्वर का प्रतिरूप समझेंगे जो वैसा ही शक्तिशाली और दयालु है। यह ईश्वर अमान-रे या मारदुक-बेल के समान केवल ईश्वरों-का-ईश्वर नही है। यह वह है जो अकेले सच्चे ईश्वर के समान शासन करता है। दूसरे, जिस कानून में सम्राट् की इच्छा कार्यान्वित हो जाती है, वह कानून सार्वभौम और अनिवार्य शक्ति है। तुलनात्मक दृष्टि से इसके द्वारा प्रकृति के अवैयक्तिक कानून का भी संकेत होता है। जिस कानून द्वारा भौतिक विश्व का ही शासन नही होता, अपितु मानव जीवन के गहरे तल में सुख और दुख, भलाई और बुराई, पुरस्कार

१. ए० वेले : द वे एण्ड इट्स पावर, भूमिका, पृष्ठ ६८-७०।

और दण्ड का भी रहस्यमय रूप से वितरण होता है । जिसे कोई समझ नहीं सकता और जहाँ 'सीजर की आज्ञा नहीं चलती ।'

ये दो संकल्पनाएँ—सार्वभौम तथा शक्तिशाली कानून और अद्वितीय तथा सर्वशक्तिमान् देवता—विश्व के उन सभी प्रतिरूपों में पायी जाती हैं जिनकी मनुष्य की बुद्धि ने कभी कल्पना की है और जो किसी भी सामाजिक परिस्थिति में सार्वभौम राज्य के रूप में प्रकट हुए हैं । किन्तु इन संसृति-विज्ञानों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि ये दो विभिन्न स्वरूपों (टाइप) में से किसी एक या दूसरे के निकट पहुँचते हैं । एक स्वरूप वह है जिसमें ईश्वर की उपेक्षा करके कानून की प्रतिष्ठा होती है, दूसरा वह जिसमें कानून की उपेक्षा करके ईश्वर को प्रतिष्ठापित किया जाता है । और हम देखेंगे कि शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का दर्शन है कानून की प्रतिष्ठा और आन्तरिक सर्वहारा कानून को ईश्वर की सत्ता के सम्मुख गौण मानते है । किन्तु यह अन्तर इतना ही है कि किस पर अधिक बल दिया जाय । सभी ससृति-विज्ञानो में दोनों सकल्पनाएँ पायी जाती है । दोनों एक साथ रहती है और मिली-जुली रहती हैं, उनका अनुपात जो भी हो ।

जो अन्तर हम स्थापित करने जा रहे है, उनके सम्बन्ध में इतना प्रतिबन्ध लगाकर अब हम क्रम से पहले विश्व की एकता के उन प्रतिरूपो का सर्वेक्षण करें, जिनमे ईश्वर की उपेक्षा करके कानून को ऊँचा किया गया है और तब उन प्रतिरूपो का जिनमें ईश्वर की प्रतिष्ठा है और उसके बनाये कानूनो की उपेक्षा ।

उन प्रणालियों मे जिनमे 'कानून ही सबका राजा है'[1] हम देखेंगे कि ईश्वर का व्यक्तित्व धुँधला होता जाता है और विश्व पर शासन करने वाला कानून स्पष्ट होता जाता है । उदाहरण के लिए हमारे पश्चिमी ससार मे एथेनेशियन मत के अनुसार त्रयातम ईश्वर का रूप धीरे-धीरे पश्चिमी मन से अधिकाधिक मन्द पड़ता गया है । ज्यों-ज्यो भौतिक विज्ञान ने अपने बौद्धिक साम्राज्य की सीमा जीवन के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बढ़ायी है, और जब हमारे युग में विज्ञान आध्यात्मिक तथा भौतिक ससार पर अपना अधिकार स्थापित कर रहा है, वह ईश्वर जो गणित था, शून्यक ईश्वर को हटाकर उसके स्थान पर कानून के लिए स्थान बनाने की प्रक्रिया को आठवी शती ई० पू० मे बैबिलोनी ससार ने पहले ही सोच लिया था, जब नक्षत्रो की गति के क्रम का आविष्कार उन्होने किया । और उससे मुग्ध होकर कालडिया के गणितज्ञो ने ज्योतिष के नये विज्ञान के ज्ञान के उत्साह में मारद्रुक-बेल के स्थान पर सात ग्रहो को प्रतिष्ठापित किया । भारतीय ससार मे भी जब बौद्ध दर्शन कर्म के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के तर्क-सगत परिणाम के गम्भीर निश्चयों पर पहुँचा,तब इस आत्मिक नियतिवाद के आक्रमणकारी सर्वसत्तावादी प्रणाली के शिकार वैदिक देवता हुए । बर्बर योद्धा दल के इन बर्बर देवताओं को अपनी अ-रोमान्टिक अधेड़ अवस्था में आकुल यौवन की मानवी चंचलता के लिए कष्टकारी परिणाम भोगना पड़ा । बौद्ध संसार में जहाँ सारी चेतना, इच्छा और उद्देश्य सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में परिवर्तित हो जाते थे और जो अपनी परिभाषा के अनुसार स्थायी या अबाध्य व्यक्तित्व में सम्मिलित नही हो सकते थे, देवता मनुष्य के आत्मिक आकार मे संकुचित कर दिये गये और उनका मूल्य कुछ नही रह गया । सच पूछिए तो ईश्वर के और बौद्ध दर्शन की प्रणाली के मनुष्यों की मर्यादा में

१. हिरोडोटस : पुस्तक ३, अध्याय ३८, पिंडार को उद्धृत करते हुए ।

जो कुछ भेद रहा वह इन्हीं मानवों के हित में रहा, क्योंकि यदि तप की कठिन परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो गया तो यह साधारण मनुष्य बौद्ध भिक्षु तो बन ही सकता था और भौतिक सुखों को त्याग कर वह जीवन-चक्र से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर सकता था।

बौद्धों ने जो दण्ड अपने वैदिक भाइयों के देवताओं को दिया उससे हेलेनी संसार के ओलिंपस के देवता अच्छे रहे। क्योकि हेलेनी दार्शनिको ने विश्व की परा-भौमिक (सुप्रा-टेरेस्ट्रियल) आयामों के 'महान्-समाज' के रूप में कल्पना की। इसमें एक दूसरे सदस्य का सम्बन्ध 'होमोनिया' या सुसंगत के अनुप्राणित कानून के आधार पर था। इस विश्व में जीयुस को, जिसने अपना जीवन ओलिंपियाई योद्धा-दल के कुख्यात सरदार के रूप में आरम्भ किया था, लोगों ने फिर से प्रतिष्ठित करके सार्वभौम नगर (कास्मोपोलिस) को अध्यक्ष बनाकर अच्छी-सी पेन्शन दे दी और उसकी स्थिति कुछ वैसी ही बना दी जैसी आज के युग के वैधानिक राजा की होती है जो 'प्रभु तो है, किन्तु शासन नही करता।' ऐसा राजा जो भाग्य की आज्ञाओं पर चुपचाप हस्ताक्षर कर देता है और प्रकृति की क्रियाओं पर अपना नाम दे देता है।[१]

हमारे सर्वेक्षण से पता चला है कि जो कानून ईश्वर का स्थान ले लेता है उसके अनेक रूप हो सकते है। गणित के नियमो के रूप में उसने बैबिलोनी ज्योतिषियो और आधुनिक वैज्ञानिको को दास बना लिया है, मनोवैज्ञानिक विधान के रूप मे उसने बौद्ध तपस्वियो को दास बनाया है और सामाजिक कानून के रूप में हेलेनी दार्शनिक को दास बनाया। चीनी संसार मे जहाँ कानून की सकल्पना को लोगो ने नही ग्रहण किया, वहाँ भी हम देखते है कि ईश्वरत्व को एक व्यवस्था ने ढक लिया है। यह व्यवस्था चीनियों के मन मे मनुष्य के आचरण और उसके वातावरण की इन्द्रजाली अनुरूपता है अथवा इनके बीच की सहानुभूति है। वातावरण का प्रभाव मनुष्य के ऊपर, भू-शकुन की चीनी विद्या द्वारा प्रकट होती है किन्तु इसका उल्टा अर्थात् मनुष्य का प्रभाव वातावरण के ऊपर कुछ सस्कार तथा उपचारो द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। और

१. किन्तु वहाँ जीयुस था भी ? क्या यह सत्य नहीं होगा कि जिन दार्शनिकों ने विवालिये ओलिंपियाई संस्थान के लिए अ-वैयक्तिक आदाताओं को नियुक्त किया, उन्होंने एक फालतू ज्येष्ठ साझीदार का कारोबार के लिए प्रयोग किया। श्री ट्वायनबी ने एक दूसरे स्थल पर अपनी पुस्तक में मारकस आरीलियस का हवाला दिया है और उस पर टिप्पणी की है : 'सार्वभौमिक नगर' के एक भक्त नागरिक की दुखदायी पुकार में हम सुनते है कि जीयुस सभापति का पद छोड़कर भाग गया। किन्तु मारकस के ईसाई पाठकों को उसके प्रति कठोर विचार नहीं लाना चाहिए। क्योंकि जीयुस ने कभी नहीं कहा कि हमें सार्वभौम जनतन्त्र का सभापति चुनो। उसने बर्बर योद्धा दल के सरदार के रूप में जीवन आरम्भ किया और जहाँतक हम समझते है, इस जीवन से वह प्रसन्न था। यदि जीयुस को दार्शनिकों ने विलम्ब से पकड़कर बन्द कर दिया, और उसे स्टोइक सुधार-गृह में ज्येष्ठ साझीदार बनाकर जबरदस्ती सम्मान प्रदान किया तो यदि उसे यह शाश्वत बन्दी-गृह अच्छा नहीं लगा तो उस बेचारे का क्या दोष ? परन्तु शायद स्क्रूज के साझीदार मारले के समान वह न दोष का भागी है, न प्रशंसा का, क्योंकि 'बहुत पहले वह मर चुका है।'—सम्पादक

ये उतने ही विस्तृत और महत्त्वपूर्ण होते हैं जितनी विश्व की संरचना—जो इन उपचारों में प्रतिबिम्बित रहती है और जिनका कभी-कभी रूप भी बदल देते हैं। संस्कारों का पुरोहित, जो संसार को घुमाता है, वह चीनी सार्वभौम राज्य का राजा है। और उसका कार्य अतिमानव का है इसलिए सम्राट् को विधानतः ईश्वर का पुत्र कहते हैं, किन्तु यह ईश्वर, जो चीनी व्यवस्था में मुख्य पुरोहित का गोद लिया हुआ पिता है, उतना ही दुर्बल और अवैयक्तिक है जितना जाड़े के पाले में उत्तरी चीन। चीनी मन में ईश्वरीय व्यक्तित्व की संकल्पना का इतना अभाव है कि जेजुइट मिशनरियों को 'दीउस' शब्द का चीनी भाषा में अनुवाद करने में बड़ी कठिनाई हुई।

अब हम विश्व की दूसरी प्रतिमूर्तियो पर विचार करेंगे जिनमें एकता सर्वशक्तिमान् ईश्वर की दी हुई है। जहाँ कानून ईश्वर की इच्छा की अभिव्यक्ति है, न कि ऐसी सत्तात्मक शक्ति जो मनुष्य और देवताओ के कार्यों को व्यवस्थित करती है।

हम देख चुके है कि यह सकल्पना कि सब प्रकार की एकता ईश्वर द्वारा प्राप्त होती है और इसकी वैकल्पिक संकल्पना कि सब प्रकार की एकता कानून द्वारा स्थापित होती है, मनुष्य की बुद्धि मे संविधान से समानता करने के कारण उत्पन्न होती है। इस प्रकार का सविधान उस समय बनता है, जब सार्वभौम राज्य अपने अन्तिम रूप में स्थिर हो जाता है। इस प्रक्रिया में वह मानव शासक जो पहले राजाओ का राजा था, और राजाओं को जो उसके साथी और सहकर्मी थे, निकाल बाहर करता है और, ठीक अर्थ मे 'राजा' बन जाता है। इसी के साथ अब यदि हम उन लोगो और देशो की ओर देखें, जिन देशो को और लोगो को सार्वभौम राज्य ने आत्मसात् कर लिया है तो इन देवताओ का भी वही हाल है। उस देव-तन्त्र मे जिसमें एक उच्च देवता, उन देवताओ के समुदाय पर सत्ता स्थापित कर रखा है, जो देवता एक समय उसकी बराबरी के थे किन्तु उन्होंने स्वतन्त्रता खोकर भी अपना देवत्व नही खोया था। अब वही देवता एक ईश्वर के रूप में प्रकट होता है और उसका मूल गुण यह है कि वह अद्वितीय है।

यह धार्मिक क्रान्ति उस समय साधारणतः आरम्भ होती है, जब देवता और उनके उपासकों के सम्बन्ध में परिवर्तन होने लगता है। सार्वभौम राज्य के ढाँचे के अन्दर देवतागण उन बन्धनो को त्यागने लगते है, जिनसे उनमें प्रत्येक किसी स्थानीय समुदाय से बँधा था। वह देवता जो आरम्भ मे किसी विशेष कुल, नगर, पहाड़ या नदी का सरक्षक था, अब विस्तृत कार्यक्षेत्र में प्रवेश करता है और एक ओर व्यक्तियो की आत्मा को आकृष्ट करने लगता है, दूसरी आर सारी मानवता को। इस दूसरी स्थिति मे वह देवता जो एक समय स्थानीय था, स्थानीय नेता का दिव्य प्रतिरूप था, उस सार्वभौम राज्य के शासको के गुणो को ग्रहण कर लेता है, जिसमे समुदाय मग्न हो गये हैं। उदाहरण के लिए हम अकेमीनियाई राज्य को देख सकते है, जिसने राजनीतिक दृष्टि से जूडिया को छोप लिया और उसका प्रभाव यहूदियो के इसरायल के ईश्वर की सकल्पना पर पड़ा। येहोवा की यह नयी संकल्पना सन् १६६–६४ ई० पू० तक पूरी हो गयी। यह लगभग वही समय है, जब डेनियल की पुस्तक का इलहामी अंश लिखा गया था।

'मैं देखता रहा कि सिंहासन फेंक दिये गये, और ईश्वर बैठा था। उसका वस्त्र बर्फ के समान उज्ज्वल था, उसके सिर का बाल विशुद्ध ऊन-सा था। उसका सिंहासन अग्नि-शिखा के समान था, जिसका पहिया भी प्रज्वलित अग्नि-सा था। आग की नदी निकली और उसके सामने आयी।

हजारों उसकी सेवा कर रहे थे और लाखों उसके सामने खड़े थे, न्याय आरम्भ हुआ और पुस्तकें खोली गयीं।'[१]

इस प्रकार अनेक पुराने स्थानीय देवता नये प्रतिष्ठापित सासारिक राजा का अधिकार चिह्न धारण करते है और तब एकाधिपत्य के लिए, जो इन अधिकारों का अर्थ होता है, एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते है। और अन्त में एक प्रतियोगी दूसरे प्रतियोगियो का विनाश कर देता है और एक सच्चे ईश्वर होने के अधिकार को स्थापित करता है। किन्तु एक विशेष बात है, जिसमें इन 'देवताओं के युद्ध' और इस ससार के राजाओं के युद्ध की प्रतियोगिता में अन्तर है। और सब समानता है।

सार्वभौम राज्य के वैधानिक विकास मे जिस राजा के बारे मे हमने कहा है कि अन्त में वह सब पर राज्य करने लगता है, वह वैधानिक क्रम मे सीधा—बिना शृखला टूटे हुए बादशाह का उत्तराधिकारी होता है। वह सारे राजाओ का अधिराज होता है। जैसे जब आगस्टस, जो स्थानीय राजाओ या राज्यपालो (जैसे अग्रेजी राज में भारतीय राजा) पर निरीक्षण करते हुए कैपाडोशिया या फिलस्तीन पर अपना अधिकार अनुभव करा देने से सन्तुष्ट था, उसका उत्तराधिकारी हैड्रियन हुआ जो पहले प्रदेशो पर स्वयं शासन करता था। इस प्रकार प्रमुख शासन की शृखला टूटी नही। किन्तु इसी प्रकार धार्मिक परिवर्तन मे क्रमबद्धता नियम नही, अपवाद ही है। और कोई एक ऐतिहासिक उदाहरण देना सम्भव नही। इस अध्ययन के लेखक को एक भी ऐसा उदाहरण याद नही है, जिसमें देवता-मण्डल का कोई भी बड़ा देवता उस ईश्वर का अवतार बन गया हो जो सर्वशक्तिमान् प्रभु और सबका सर्जनकर्ता है। न तो थीबीज का अमोन-रे, न बैबिलोनी का मारदुक-बेल, न ओलिम्पस का जीयुस अपने परिवर्तन-शील परदे के भीतर उस एक सच्चे ईश्वर का रूप दिखला सका। सीरियाई सार्वभौम राज्य में भी, जहाँ साम्राज्य के वश के लोग जिस ईश्वर की उपासना करते थे, वह ऐसा नही था जो अनेक देवताओं को मिलाकर बना हो, या जो राजनीति के अभिप्राय से गढ़ लिया गया हो। जिस देवता में एक सच्चे ईश्वर के लक्षण हो वह जरथुष्ट्रो का अहूरमजदा नही था, जो अकेमिनीदियो का देवता था। वह था येहोवा जो अकेमिनीदियो की साधारण प्रजा का देवता था।

दोनो प्रतियोगी देवताओ का यह अन्तर और उनके अनुगामियो का क्षणिक अच्छा या बुरा भाग्य, स्पष्टत बताता है कि सार्वभौम राज्य की राजनीतिक परिस्थिति में जो लोग उत्पन्न हुए उनकी अनेक पीढ़ियो का धार्मिक जीवन ऐतिहासिक अध्ययन का विषय है। वे इस बात के भी उदाहरण है कि भाग्यो में कितनी जल्दी परिवर्तन होता है। इस विषय पर सिन्ड्रेला की भाँति अनेक लोक-कथाएँ बनी है, साथ-ही-साथ निम्नता या अस्पष्टताएँ ही ऐसी विशेषताएँ नहीं है जिनके कारण देवता, विश्वव्यापकता तक उठे हो।

जब हम येहोवा के चरित्र को देखते हैं, जैसा उसका चित्रण पुराने बाइबिल में हुआ है, तो

१. डेनियल, ७, ९-१०।

दो और बातें हमें दिखाई देती हैं। एक तो यह कि येहोवा स्थानीय देवता के रूप में उत्पन्न हुआ, शाब्दिक अर्थ में सेवक। यदि हम इस पर विश्वास करें कि पहले-पहल वह इसरायलियों में एक 'जिन' के रूप में आया जो उत्तर-पश्चिम अरब में एक ज्वालामुखी पर्वत में रहता था और उसे जगाये रहता था। कम-से-कम वह ऐसा देवता था जिसका एक विशेष जनपद की धरती से सम्बन्ध था और एक स्थानीय समुदाय के लोग उसके भक्त थे। और जब वह एफ्रेम और जूदा के पहाड़ी प्रदेश में गया जहाँ वह बर्बरों के योद्धा-समूह का संरक्षक था, जिसने चौथी शती ई० पू० में मिस्र के 'नये साम्राज्य' फिलस्तीनी राज्य पर आक्रमण किया। दूसरी ओर येहोवा ईर्ष्यालु देवता है। अपने उपासको को उसकी पहली आज्ञा है 'सिवाय मेरे किसी दूसरे देवता की पूजा मत करो।' इसमें आश्चर्य नही होता कि एक साथ दोनो विशेषताएँ प्रान्तीयता और बहिष्कार वृत्ति येहोवा में पायी जाती है। वह देवता जो अपने ही राज्य में रहता है, दूसरो को चेतावनी दे सकता है कि इधर मत आओ। आश्चर्य इसमें है—और घृणास्पद भी है, कम-से-कम पहली दृष्टि में—कि अपने प्रतियोगियो के प्रति बहुत अनुदारता का भाव उसमें है जिससे वह उस समय लडने के लिए भी तैयार होता है, जब इसरायल और जूदा के राज्य पराजित हो जाते है और सीरियाई सार्वभौम राज्य स्थापित होता है। यह पहले वाला दो उच्च भूमियो (हाइलैंड) का देवता विस्तृत संसार में प्रवेश करता है और अपने पड़ोसियो के समान यह चाहता है कि सारा मानव हमारी पूजा करे। सीरियाई इतिहास की इस विश्वव्यापक स्थिति में येहोवा की इस प्रकार की अनुदार भावना, जो उसे प्राचीन संकीर्णता से उत्तराधिकार में मिली थी, समय के विपरीत थी। यह उस युग की प्रचलित भावना के प्रतिकूल थी, जो येहोवा के समान और पहले के देवताओ में व्याप्त थी। यह अप्रिय असामयिकता उसकी विशेषता थी जिसके कारण उसे आश्चर्यजनक विजय प्राप्त हुई।

इस प्रान्तीयता और बहिष्कार वृत्ति के गुणो को अधिक ध्यान से देखना श्रेयस्कर होगा। पहले हम प्रान्तीयता पर विचार करें।

एक प्रान्तीय देवता को उस ईश्वर का अवतार समझना, जो सर्वव्यापक और अद्वितीय है, पहले विरोधाभास जान पड़ता है, जो बात समझ में नही आती। क्योकि यह सच है कि ईश्वर की यहूदी, ईसाई और इस्लामी संकल्पना कबायली येहोवा से आयी है। जहाँ यह ऐतिहासिक तथ्य है, साथ ही यह भी निश्चित है कि ऐतिहासिक उद्‌गम को छोड़कर इनमे ईश्वर के सम्बन्ध में जो धार्मिक तत्त्व है और जो तीनों धर्मों में समान है, वह येहोवा की प्रारम्भिक सकल्पना से बहुत भिन्न है। वह अनेक दूसरी संकल्पनाओं के समान है जिनके लिए यहूदी, ईसाई और इस्लामी इसके या तो बहुत कम ऋणी हैं या बिलकुल ऋणी नही है। विश्वव्यापकता की दृष्टि से इस्लामी ईसाई-यहूदी धर्मों की ईश्वर की सकल्पना प्रारम्भिक येहोवा की कल्पना से बहुत भिन्न है। बल्कि कुछ उस उच्च देवता के समान है, जैसे अमोन-रे या मारदुक-बेल जो एक प्रकार सारे विश्व पर शासन करता है। या यदि आध्यात्मिकता को आदर्श मानें तो इस्लामी-ईसाई-यहूदी संकल्पना दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों के अधिक अनुकूल है जैसे स्टोइक जीयुस या नव-प्लेटोनिक हीलिओस। तब क्या कारण है कि उस रहस्य-नाटक (मिस्ट्री प्ले) में, जिसकी कथा-वस्तु मनुष्य के मन में ईश्वर की अभिव्यक्ति है, मुख्य भूमिका दिव्य हीलिओस

या साम्राज्यवादी अमोन-रे को नही दी गयी, बल्कि बर्बर और प्रान्तीय देवता येहोवा को जिसकी योग्यता, ऊपर के वर्णन के अनुसार, अपने असफल प्रतियोगियों से स्पष्टतः कम जान पडती है ।

इसका उत्तर यहूदी-ईसाई-इस्लामी संकल्पना के एक तथ्य को याद करने पर मिलेगा, जिसका वर्णन हमने अभी नही किया । हमने सर्वव्यापकता और एक अद्वितीयता के गुणों पर विचार किया है । किन्तु इनकी अलौकिकता के बावजूद ईश्वरीय प्रकृति के ये गुण मानव की बुद्धि के ही परिणाम है, ये मानव हृदय की अनुभूतियाँ नही है । क्योकि जन-समुदाय के लिए ईश्वर का मूल तत्त्व यह है कि वह सजीव ईश्वर है, जिससे जीवित मनुष्य अपना सम्बन्ध जोड़ सकता है और वह ऐसा है जिससे मनुष्य वही आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है जो वह अपने साथी मनुष्यों के साथ स्थापित कर सकता है । जो ईश्वर के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, उसके लिए ईश्वर का जीवित रूप में होना आवश्यक है । आज जिस प्रकार यहूदी, ईसाई और मुसलिम ईश्वर की उपासना करते हैं उसका मूल ईश्वर को व्यक्ति के रूप में मान कर है । यह येहोवा का भी मूल है जैसा पुरानी बाइबिल में लिखा है । येहोवा के विशिष्ट लोगों की गर्वोक्ति है—'कौन माँस का शरीर वाला है जिसने आग में से सजीव ईश्वर की वाणी सुनी है, जैसी हमलोगों ने, और जीवित है ।'[1] जब इसरायल के इस सजीव ईश्वर की अनेक दार्शनिको के विचारों से भेंट होती है, तब स्पष्ट है कि ओडेसी के शब्दो में 'वही जीवित है और सब छाया है ।' येहोवा के इस प्रारम्भिक व्यक्तित्व ने दार्शनिको के बौद्धिक गुण बिना उनका ऋण स्वीकार किये ले लिया और उनका नाम लेने की भी ईमानदारी नही दिखायी और वह ईसाइयों की संकल्पना का ईश्वर बन गया ।

जीवित रहने वाला गुण यदि येहोवा की आदिम प्रान्तीयता का प्रतिवर्तन (आबवर्स) है तो हमें यह भी पता चलेगा कि बहिष्कारिता भी, येहोवा के चरित्र का स्थायी और आदिम गुण है और यह गुण उस ऐतिहासिक भूमिका में महत्त्व का है जो इसरायल के ईश्वर ने मनुष्य को अपनी ईश्वरीय प्रकृति के अभिव्यक्त करने मे अदा की है ।

यह गुण तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम 'ईर्ष्यालु देवता' की अन्तिम विजय की तुलना दो पड़ोस के महान् देवताओं की पूर्ण पराजय से करते हैं, जिन्होंने आपस के संघर्ष से सीरियाई संसार को टुकडे-टुकड़े कर डाला । तब हमें उसकी विशिष्टता मालूम होती है । चूँकि ये धरती से बँधे हुए थे और जीवन के रस से परिपूर्ण थे । अमोन-रे और मारदुक-बेल दोनों येहोवा से लड़ाई में बराबर होते । उन्हें यह भी लाभ था कि थीबीज और बैबिलोन पर सांसारिक सफलता के कारण उन्होने अपने उपासकों के हृदय में घर कर लिया था । और येहोवा उनका अपमानजनक बन्दी बनकर पड़ा रहा और जहाँ तक बन पडा, उस कबीली देवता के गुणों के प्रतिष्ठापन की चेष्टा करता रहा जिससे, ऐसा जान पड़ता था, आवश्यकता के समय अपने कबीले के लोगों को छोड़ दिया था । उनके पक्ष में इस बात के होते हुए यदि 'देवताओं के युद्ध' में अमोन-रे और मारदुक-बेल अन्त में बेतरह हार गये तो उनकी पराजय का कारण हम यही कह सकते हैं कि वह येहोवा की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति की निर्दोषता ही थी । भला हो या बुरा इन नामों के बीच के डैश में, जो दो संश्लिष्ट देवताओं को जोड़ता है, बहिष्कारिता से स्वतन्त्र होने को

१. ड्युटरोनोमी ५, २६ ।

भावना सन्निहित है। इसमें आश्चर्य नहीं कि अमोन-रे तथा मारदुक-बेल उसी प्रकार अपने ढीले बन्धन की सीमा के बाहर बहु देवतावाद (पोलीथीइज्म) के प्रति उदार थे, जिस प्रकार अपनी परिवर्तनशील अनेकता से। दोनों का जन्म इस प्रकार हुआ था—या अधिक ठीक यह होगा कि एक साथ लाये गये थे—कि वे अनेक जीवो पर, जो उनसे शक्तिशाली भले ही न रहे हों किन्तु जिनमें देवत्व तो उतना था ही, आदिम ढंग के शासन से सन्तुष्ट रहें। इस आकांक्षा के जन्मजात अभाव के कारण उन्हें ईश्वरत्व के एकाधिकार की प्रतियोगता से हट जाना पड़ा। येहोवा की घोर ईर्ष्या ने उसे उस दौड़ में सबसे आगे बढ़ जाने को प्रेरित किया जिसमें सभी सम्मिलित थे।

प्रतियोगियों के प्रति यही निर्दय अनुदारता उस समय भी प्रकट हुई जब इसरायल का ईश्वर ईसाई धर्मतन्त्र का भी ईश्वर हुआ और उसने बाद के देवताओं के युद्ध में जो रोमन साम्राज्य के भीतर हुआ था, सब प्रतियोगियों को मार भगाया। उसके प्रतिद्वन्द्वी—सीरियाई मिथ्रा, मिस्री आइसिस और हत्ती साइबील—एक-दूसरे से, तथा और जो मत उनके सम्मुख आये उनसे, समझौता करने के लिए तैयार थे। यही आलस्यपूर्ण समझौते वाली भावना 'टरटूलियन के ईश्वर' के प्रतियोगियो के लिए घातक थी, जब उन्हें ऐसे बैरियो का सामना करना पडा जो 'पूर्ण' विजय से कुछ भी कम से सन्तुष्ट नही थे। क्योंकि यदि कम होता तो ईश्वर के लिए उसके मूल को ही अस्वीकार करना होता।

येहोवा की इस ईर्ष्यालु प्रकृति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण भारतीय ससार से नकारात्मक ढंग से मिलता है। और देशो की भाँति यहाँ भी सामाजिक विघटन के साथ-साथ धार्मिक धरातल पर एकता की भावना का विकास हुआ। भारतीय आत्माओ मे ईश्वर के एकत्व को अनुभव करने की भावना तीव्र थी, और आन्तरिक सर्वहारा के करोडो देवता धीरे-धीरे शिव या विष्णु मे सम्मिलित हो गये। ईश्वर की एकता के बोध की राह की यह उपान्तिम मजिल पर कम-से-कम डेढ हजार वर्ष पहले हिन्दू पहुँच गये थे। परन्तु इतना समय बीतने पर भी हिन्दू धर्म ने वह अन्तिम कदम नही उठाया जो सीरियाई धर्म ने उठाया था कि एक भी प्रतिद्वन्द्वी को येहोवा ने सहन नहीं किया और अहूरमजदा को सम्पूर्ण रूप से निगल गया। हिन्दू-धर्म में सर्वशक्तिमान् ईश्वर की संकल्पना में देवता एक नही किये गये। दो बराबर शक्तिवाले विरोधी, किन्तु पूरक देवताओं को हिन्दू धर्म ने एक-दूसरे के प्रति सहनशील बना दिया है।

इस विचित्र परिस्थिति में हम यह पूछेंगे कि हिन्दू धर्म ने ईश्वर की एकता की समस्या को क्यों इस प्रकार सुलझाया। यह समझौता कोई समाधान नही है। क्योंकि ऐसी संकल्पना असम्भव जान पडती है कि कोई देवता सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् हो—जैसे शिव तथा विष्णु माने जाते हैं और फिर भी वह एक न हो। इसका उत्तर यह है कि शिव और विष्णु एक दूसरे के ईर्ष्यालु नही है। वे एक-दूसरे के साझीदार होने में सन्तुष्ट है और इसीलिए आज तक वर्तमान हैं,जब कि उनके ही समान हेलेनी संसार के मिथ्र, आइसिस और साइबील समाप्त हो गये। इसका कारण यह है कि हिन्दू धर्म में उनसे लड़ने के लिए येहोवा नही था। हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जब उपासको का देवता ऐसा हुआ है कि उसमे अनुदार बहिष्कारिता की भावना हुई है तभी उसके माध्यम द्वारा ईश्वर के एक होने की भावना मानव के हृदय मे स्थापित हुई है।

(७) पुरातनवाद (आरकेइज्म)

हमने इस बात पर विचार कर लिया कि सामाजिक विघटनोन्मुख संसार में जो आत्माएँ जन्म लेती हैं उनकी भावनाएँ और व्यवहार क्या होते हैं और उनका विकल्प क्या होता है। अब हम जीवन के उन वैकल्पिक ढगों पर विचार करेगे जो वैसी ही चुनौती वाली परिस्थिति में उपस्थित होते है। हम उस विकल्प से आरम्भ करेंगे जिसे प्रारम्भिक सर्वेक्षण मे हमने 'पुरातन' कहा था और इसकी परिभाषा की थी। यह वह अवस्था है कि लोग पुराने आनन्द के युग में लौट जाना चाहते है। संकटकाल मे उस युग के लिए घोर सन्ताप होता है और जितने ही पीछे होते जाते है उतना ही अनैतिहासिक ढंग से उन पर भक्ति बढ़ती जाती है।

> ओह ! कितनी इच्छा होती है कि पीछे लौट चलूं
> और फिर पुरानी राह को स्पर्श करूँ।
> कि फिर एक बार उस मैदान मे पहुँचूँ
> जहाँ मैने अपने महान् साथियो को छोड़ा था
> जहाँ से प्रबुद्ध आत्माएँ देख रही है
> पाम के पेडो की छाया वाला नगर
>
> कुछ लोग आगे बढना चाहते है
> किन्तु मै पीछे मुडकर पीछे चलना पसन्द करता हूँ

इन पंक्तियो से सत्रहवी शती के कवि हेनरी वान ने प्रौढ व्यक्ति की अपनी बाल्यावस्था की स्मृति को व्यक्त किया है। यही भाव बल्टिट्यूड भी व्यक्त करते है जो नयी पीढ़ी से कहा करते है 'तुम्हारे स्कूल के दिन जीवन के सबसे सुखमय दिन है' ऊपर की पक्तियाँ पुरातन पथियो के मनोभावो को व्यक्त करने के लिए भी उपयुक्त है जो समाज की प्राचीन अवस्था फिर से लाना चाहते है।

पुरातनवाद के उदाहरणो का सर्वेक्षण करने के लिए इस क्षेत्र को भी चार भागों मे बाँटेंगे, जैसे संकीर्णता की भावना पर विचार करते समय हमने किया था। अर्थात् आचार, कला, भाषा और धर्म। संकीर्णता की भावना स्वत. और अचेतन भावना से उत्पन्न होती है। और पुरातनवाद जीवन की धारा के विरुद्ध तैरने के प्रयत्न के लिए आयोजित और जानी-बूझी नीति होती है। वास्तव मे वह एक असाधारण शक्ति होती है। इस कारण हम देखेगे कि आचार के क्षेत्र मे पुरातनवाद स्वाभाविक आचारव्यवहार न होकर औपचारिक संस्थाओं और रूढ़िवादी विचारों मे अभिव्यक्त होता है और भाषा के क्षेत्र मे शैली और विषयवस्तु के रूप मे प्रकट होता है।

यदि हम संस्थाओं और विचारों का सर्वेक्षण करें तो सबसे अच्छी योजना यह होगी कि संस्थाओं के पुरातनवाद के उदाहरणो को ब्योरेवार देखे और तब पुरातनवादी मानसिक स्थिति का विस्तृत क्षेत्र मे विस्तार करे और आदर्शवादी पुरातनवाद तक पहुँचे जो बहुत व्यापक होता है क्योंकि यह आदर्श सिद्धान्त पर बना होता है।

उदाहरण के लिए प्लूटार्क के समय, जो हेलेनी सार्वभौम का उत्कर्ष काल था, आर्टेमिस ओरथिआ के सामने स्पार्टी बालकों को कोड़ा लगाया जाता था। स्पार्टा के यौवन काल में यह

दण्ड एक आदिम प्रसवन-उपासना-पद्धति से लिया गया था और लाइकरजियन खेल-कूद में सम्मिलित कर लिया गया था। उसे पुनः विकृत अत्युक्ति के साथ आरम्भ किया गया। इस प्रकार की अत्युक्ति पुरातनवाद का लक्षण है। इसी प्रकार २४८ ई० में जब एक अराजकता के बाद, जिससे उसका क्षय हो रहा था, कुछ क्षण के लिए रोमन साम्राज्य को साँस लेने का अवसर मिला सम्राट् फिलिप ने धर्म निरपेक्ष खेलों का उत्सव मनाया जिसे आगस्टस ने स्थापित किया था। दो साल बाद सेंसर की प्रथा फिर स्थापित की गयी। अपने ही समय में इटालियन फासिस्टों ने 'समवेत राज्य' (कारपोरेट स्टेट) की स्थापना की और बताया गया, यह इटली के मध्ययुगीन नगर-राज्यों का ही प्रत्यावर्तन है। उसी देश मे ई० पू० दूसरी शती में प्राची जनता का रक्षक बन बैठा। यह पद दो सौ साल पूर्व आरम्भ हुआ था। वैधानिक पुरातनवाद का एक सफल उदाहरण और है। रोमन साम्राज्य के संस्थापक आगस्टस ने अपने साझीदार सिनेट के प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित की। यह साझीदारी नाम की थी, सिनेट रोमन शासन मे सम्राट् के पहले की संस्था थी। इसकी तुलना हम ग्रेट-ब्रिटेन के सम्राट् के पार्लिमेंट के प्रति व्यवहार से कर सकते है, जो विजयी थी। दोनो उदाहरणों मे शक्ति का हस्तान्तरण था। रोमन उदाहरण में अल्पतन्त्र (ओलिगार्की) से राजा को और ब्रिटेन में राजा से अल्पतन्त्र को। दोनो उदाहरणो में परिवर्तन प्राचीन उपचारों के आवरण से ढका था।

यदि हम विघटनोन्मुख चीनी ससार मे देखे तो वहाँ व्यापक उद्देश्य का वैधानिक पुरातनवाद प्रकट होता दिखाई देगा, जो सार्वजनिक से निजी जीवन तक फैला हुआ था। चीनी सकटकाल की चुनौती के समय चीनियो के मन मे आत्मिक विक्षोभ उत्पन्न हुआ, जो पाँचवी शती ई० पू० कनफ्युशियस के मानवतावाद में भी प्रकट हुआ और बाद के और क्रान्तिकारी 'राजनीतिज्ञों', 'सोफिस्टों' और 'वकीलों' मे प्रकट हुआ। किन्तु यह उद्वेग अस्थायी था। इसके बाद पुरातन के प्रति जुगुप्सा हो गयी। इसे हम स्पष्ट रूप से उस स्थिति मे देख सकते है, जिसने कनफ्युशियस के मानवतावाद पर विजय पायी। मानव-प्रकृति के अध्ययन के स्थान पर उसका पतन औपचारिक शिष्टाचार में हो गया। शासन के क्षेत्र में परम्परा यह हो गयी कि प्रत्येक शासन के कार्य के लिए ऐतिहासिक नजीर आवश्यक हो गयी।

सैद्धान्तिक पुरातनवाद का एक उदाहरण और दूसरे क्षेत्र में मिलता है। यह अधिकार काल्पनिक घुटनवाद का सम्प्रदाय है। यह आधुनिक पश्चिमी समाज के साधारण पुरातन रोमांटिकवाद के आन्दोलन का प्रदेशीय फल है। उन्नीसवी शती के कुछ अंग्रेज इतिहासकारों को सन्तोष प्रदान कर और कुछ अमरीकी मानव-जाति-विज्ञानियों को जातीय आत्माभिमान प्रदान कर, आदिम घुटन के काल्पनिक गुणो की पूजा जरमन देश के राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन का धर्म बन गयी। हमें यहाँ ऐसा पुरातनवाद मिलता है जो बड़ा दुखदायी होता, यदि वह इतना कुटिल न होता। एक महान् पश्चिमी राष्ट्र, आधुनिक युग के आत्मिक रोग के कारण, प्रायः असाध्य राष्ट्रीय मृत्यु के समीप आ गया था और वर्तमान इतिहास की गति ने बहका कर उसे जिस जाल में डाल दिया था उससे बचने के जी-तोड़ प्रयत्न मे वह उस काल्पनिक ऐतिहासिक अतीत के वैभवपूर्ण बर्बरता की ओर लौट गया।

बर्बरता की ओर लौटने के और पहले का एक रूप है। रूसो का 'प्रकृति की ओर लौटने' का और 'भद्र बर्बर' का प्रतिष्ठापन। अठारहवीं शती के पुरातनवादी उस रक्त-प्रियता के

उद्देश्य से अनभिज्ञ थे जो 'माइन कैम्फ' में निर्लज्जता से वर्णित है। जहाँ तक रूसो फ्रांस की क्रान्ति का 'कारण' था, और उन युद्धों का कारण जो इस क्रान्ति से हुए, इस सन्दर्भ, इन पुरातन-वादियों की अनभिज्ञता के कारण वे अहिंसक नहीं बने।

पश्चिम के आधुनिक लोग कला मे पुरातनवाद से इतने परिचित हैं कि उसकी अनिवार्यता वे स्वीकार कर लेते हैं। कलाओ में सबसे प्रत्यक्ष वास्तुकला है और हमारी उन्नीसवीं शती की वास्तुकला को 'गोथिक पुनरुद्धार' ने नष्ट कर दिया। यह आन्दोलन जमीदारों की सनक से आरम्भ हुआ, जिन्होंने अपने बागो मे बनावटी 'खंडहर' बनवाये और बड़े-बड़े घर ऐसी शैली में बनवाये, जिससे मध्ययुगीन गिरजाघरो का प्रभाव दिखाई पड़े। यह आन्दोलन गिरजाघरों तक पहुँचा और धार्मिक पुनःस्थापन आरम्भ हुआ। जहाँ उसे पुरातनवादी 'आक्सफोर्ड आन्दोलन' से बल प्राप्त हुआ और अन्त मे होटलों, कारखानों, अस्पतालो और स्कूलों मे भी इसी वास्तुकला का प्रचलन होने लगा। किन्तु वास्तुकला में पुरातनवाद पश्चिम के आधुनिक मानव की खोज नहीं है। यदि कोई लन्दन वाला कुसतुनतुनिया की यात्रा करे और इस्तम्बूल की पहाड़ियो पर सूर्यास्त की शोभा देखने लगेतो उसे मसजिदो के गुंबदके बाद गुंबद दिखाई पडेंगे जो उसमानिया शासन में बने हैं और जो बड़ी तथा छोटी हैगिया सोफिया के नमूने के अन्धानुकरण हैं। ये दो बैंजन्तीनी गिरजाघर हैं जिनमें क्लासिकी हेलेनी वास्तुकला के सिद्धान्तो की साहस के साथ अवहेलना की गयी है और जिनके निर्माण ने पत्थरों द्वारा घोषणा की थी कि मृत हेलेनी संसार के ध्वसावशेष से परम्परावादी ईसाई सभ्यता के शिशु का आगमन हो रहा है। और अन्त में यदि हम हेलेनी समाज के 'भारतीय ग्रीष्म काल' की ओर देखे तो हमे पता चलेगा कि सम्राट् हैड्रियन ने अपने गाँव के मकान मे पुरातन काल की उत्कृष्ट हेलेनी मूर्तियो के प्रतिरूप गढ़वाकर सजाया था—यह बात सातवी तथा छठी ई० पू० की है। क्योकि उस काल के पारखी 'पूर्व-रफाइली' के जो फीडियास और प्रैक्साइटिली की उच्च कलाओ का मूल्याकन नही कर सकते थे।

जब पुरातनवाद की आत्मा भाषा और साहित्य के क्षेत्र में पहुँचती है, तब उसकी असाधारण शक्ति मरी हुई भाषा को सजीव करने की चेष्टा में लगती है, उसे वह जीवित जनभाषा बनाकर चलाती है। यही प्रयत्न आज हमारे पश्चिमी संसार मे अनेक स्थानो पर हो रहा है। इस पतनोन्मुख कार्य की प्रेरणा, अलग रहने के राष्ट्रीयता के उन्माद से मिली है, जो सांस्कृतिक समर्थता का इच्छुक है। जो राष्ट्र स्वयं सब प्रकार समर्थ होना चाहते हैं और जिनके पास भाषा की साधनाओ का अभाव है, वे पुरातनवाद की राह पकड़ते हैं, क्योंकि इस प्रकार बड़ी सरलता से वे भाषा को पा जाते है जिसकी खोज में वे लगे रहते हैं। इस समय कम-से-कम पाँच ऐसे राष्ट्र हैं जो अपनी विशेष राष्ट्रीय भाषा को निर्मित करने में लगे हैं। वे किसी ऐसी भाषा को चलाना चाहते हैं, जिसका बहुत समय हुआ प्रयोग बन्द हो चुका है और जिनका प्रयोग केवल शास्त्रीय क्षेत्रों में होता है। ये हैं नारवीजियन, आयरिश, उसमानिया तुर्क, यूनानी और ज्ञायनी यहूदी, और यह प्रकट है कि इनमें से एक भी मौलिक पश्चिमी ईसाई समाज का अंश नहीं है। नारवीजियन और आयरिश क्रम से अकाल प्रसूत स्कैंडिनेवियाई और अकालप्रसूत सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता के अवशेष हैं। उसमानिया तुर्क यूनानी अभी हाल में पश्चिमी हुए हैं और ईरानी और परम्परावादी ईसाई समाज के टुकड़े हैं। ज्ञायनिस्ट यहूदी अधिमत सीरियाई समाज के टुकड़े हैं। यह समाज अपने प्रसवकाल से ही पश्चिमी ईसाई समाज में सम्मिलित हो चुका था।

नारवीजियन राष्ट्र भाषा-निर्माण करने की इसलिए आवश्यकता समझते हैं क्योंकि यह राजनीतिक घटना का परिणाम है। सन् १३९७ में नारवे के राजा मन्द पड़ गये, क्योंकि उसी साल नारवे डेनमार्क में मिल गया और १९०५ ई० तक उनकी सत्ता क्षीण रही। इस साल वह स्वीडेन से अलग होकर स्वतन्त्र राज बना। नारवे का अपना राजा हुआ जिसने आधुनिक बपतिस्मा किया, नाम चार्ल्स त्याग दिया और प्राचीन नाम हृआकन रख लिया। जो नाम ईसा की दसवी से लेकर तेरहवीं शती तक अकालप्रसूत नारवीजियन समाज के चार राजाओं ने रखा था। उन पाँच शतियों में जब नारवे का राज्य डेनमार्क से मिला था, नार्स साहित्य के स्थान पर पश्चिमी साहित्य का एक रूप चला, जो डैनिश में लिखा जाता था, हाँ, उसका उच्चारण नारवे की जनपदीय भाषा के अनुकूल कर दिया गया था। जब सन् १८१४ मे नारवे स्वीडेन के पास आया, तब वह अपनी निजी संस्कृति के निर्माण में लगा, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति के लिए एक विदेशी भाषा को छोड़कर कोई माध्यम नही मिला। 'पेटोइस' के अतिरिक्त कोई मातृभाषा भी नही थी, और उसमें साहित्य का निर्माण नही हो सकता था। राष्ट्रीय जागरण में भाषा का इस प्रकार का अभाव देखकर उन्होने एक स्थानीय भाषा का निर्माण करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया है जो ग्रामीण तथा नागरिक, देशी तथा संस्कृत सभी लोगों के व्यवहार में आ सकेगी।

आयरिश राष्ट्रवादियो के सामने समस्या और भी कठिन है। आयरलैंड में ब्रिटिश राज ने वही किया जो डैनिश राज ने नारवे मे किया। और भाषा सम्बन्धी परिणाम भी वैसा ही हुआ। आयरिश साहित्य की भाषा अंग्रेजी हो गयी। चूँकि अग्रेजी और आयरिश भाषा का अन्तर दूर नही हो सकता, नार्स तथा डेनिश भाषाओ का अन्तर उतना अधिक नही है। आयरिश भाषा प्रायः समाप्त हो गयी है। आयरिश लोग 'पेटोइस' की भाँति किसी चलती हुई भाषा का संस्कार नही कर रहे थे, बल्कि एक समाप्त हुई भाषा को पुनर्जीवित कर रहे थे जो आयरलैंड के पश्चिम की ओर फैले हुए किसानों की समझ में नहीं आती, क्योंकि वे गैलिक भाषा ही माता की गोद से बोलते आये।

भाषा के जिस पुरातनवाद में, उसमानिया तुर्क राष्ट्रपति मुस्तफा कमाल अतातुर्क के शासन मे पड़े हुए थे, वह दूसरे प्रकार का है। आधुनिक तुर्कों के पूर्वज, आधुनिक अंग्रेजों के पूर्वजों की भाँति बर्बर थे। जो विघटित सभ्यता के त्यागे हुए ध्वंसावशेष में पहुँच कर जम गये। बर्बरों के ये दोनों वंशजों ने भाषा के निर्माण में वही किया जो सभ्यता ग्रहण करने में उन्होंने किया। जिस प्रकार अंग्रेजों ने अपनी क्षीण ट्यूटनी भाषा को फ्रेंच, लैटिन और ग्रीक शब्दों और शब्दावलियों से समृद्ध किया है, उसी प्रकार उसमानलियों ने अपनी साधारण तुर्की को फारसी और अरबी भाषा के रत्नों से साजा है। तुर्की राष्ट्रवादियों ने भाषा के पुरातनवादी आन्दोलन को इस प्रकार चलाया है कि इन रत्नों को निकाल बाहर करें, किन्तु जब वे देखेंगे कि जो विदेशी शब्द उनकी भाषा में आये हैं, वे इतने अधिक है जितने हमारी भाषा में (अंग्रेजी में)। तब वे समझेंगे कि यह साधारण काम नही है। जो भी हो भाषा के सम्बन्ध में भी इस तुर्की वीर ने वही ढंग अपनाया, जो उसने पहले अपने देश के सम्बन्ध में अपनाया था। सभी विदेशी तत्त्वों को अपने देश से निकाल बाहर करना। इस विकट संकटपूर्ण अवस्था में कमाल ने तुर्की से यूनानी और आरमीनियाई उच्च मध्यम वर्ग के लोगों को निकाला, जो पुराने थे और स्पष्टतः देश के लिए आवश्यक थे। उसने यह सोचा कि इन लोगों के निकल जाने से समाज में जो

रिक्तता उत्पन्न होगी उसे पूर्ण करने के लिए तुर्क विवश होंगे और स्वयं वे सब कार्य करने लगेंगे जो अभी तक प्रमादवश उन्होंने दूसरो के कन्धों पर छोड़ दिया था। उसी सिद्धान्त पर गाज़ी ने बाद में फारसी-अरबी शब्दों को उसमानिया तुर्की शब्द भण्डार से निकाला। इस उग्र कार्य ने प्रमाणित कर दिया कि मानसिक आलस्य वालो को भी कितनी आश्चर्यजनक बौद्धिक प्रेरणा मिलती है, जब वे देखते हैं कि हमारी जीवन की नित्य-प्रति आवश्यकताओं के लिए हमारे मुँह और कान बन्द हैं। इस विषम परिस्थिति में तुर्क लोग क्यूमन शब्दावली, ओरखोन के अभिलेख, युइगूर के सूत्र, तथा चीनी वंशावली के इतिहास में ऐसे शब्दों को ढूंढ रहे हैं, जो फारसी और अरबी के शब्द निकाल दिये गये हैं, उनका वास्तविक तुर्की पर्याय प्राप्त करें।

अंग्रेजी पर्यवेक्षक के लिए इस प्रकार का शब्दों के चुनने का पागल प्रयत्न डरावना मालूम होता है। क्योंकि वे डरते हैं कि यदि इस प्रकार की चेष्टा कभी हुई और 'हमारे समाज के रक्षकों को' 'शुद्ध अंग्रेजी' बनाने की सनक हुई तो कैसा भयंकर भविष्य होगा। सच पूछिए तो इस प्रकार का प्रयत्न एक दूरदर्शी शौकीन ने किया भी है। तीस वर्ष के लगभग हुआ एक सज्जन ने जो अपने को सी० एल० डी० कहते है, एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम है'वर्ल्ड बुक आव इगलिश टंग'। यह उन लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिए है जो 'नारमन जूए को अपने कन्धे से हटाना चाहते हैं,' क्योंकि वह बहुत भारी लग रहा है। उनका कहना है—'आज बहुत-से लेखक और वक्ता जिसे अंग्रेजी कहते हैं, वह बिल्कुल अंग्रेजी नही है, वह फ्रेंच है। सी० एल० डी० के अनुसार हम 'पराम्बुलेटर' को 'चाइल्डवेन' और 'आम्निबस' को 'फोकवेन' कहेंगे। किन्तु जब वह ऐसे विदेशी शब्दो को निकालने की बात कहते हैं जो बहुत पुराने है, तब बहुत अनुपयुक्त जान पड़ता है। उनका प्रस्ताव है कि 'डिस अप्रूव' के स्थान पर 'हिस', 'बू' या 'हूट' रखा जाय तो वह ठीक नही जँचता और स्वीकार करने को मन नही करता। और 'लाजिक' की जगह 'रीडी-क्रफ्ट' 'रेटार्ट',की जगह 'बैकजा' और 'एमिग्राट' की जगह 'आउटगैंगर' तो भद्दा और बेहूदा मालूम पड़ता है।[१]

यूनानियों की स्थिति उसमानिया तुर्की साम्राज्य के साथ वैसी ही थी जैसी नारवीजियनों की डेनों के शासन में और आयरिशों की ब्रिटिश शासन में। जब यूनानियों में राष्ट्रीय चेतना आयी, तब नारवीजियनो के समान उनके पास भी ग्रामीण जनबोली के अतिरिक्त कुछ नहीं था और सौ साल बाद आयरिशों के समान अपनी जन-बोली को अपनी पुरानी भाषा के शब्दों को मिला-मिलाकर गढ़ने लगे। किन्तु इस प्रयोग में उनको ऐसी कठिनाई का सामना करना पड़ा जो आयरिशों को नही मिली। पुराने गैलिक शब्दों का भाडार कम था, और क्लासिकी यूनानी भाषा का भाण्डार बहुत अधिक। सच पूछिए तो यूनानियों के सामने यह लालच था कि अधिक-से-अधिक शब्दों को वे लें और इसी लालच के जाल में वे फँस गये। और उन्होंने पुरानी भाषा से बड़ी उदारता से शब्दों का चयन किया। इसकी प्रतिक्रिया आधुनिक जन-साधारण में हुई। आधुनिक यूनानी भाषा 'शुद्धतावादियों की भाषा' और 'लोक भाषा' का युद्ध है।

१. जे० पी० स्क्वायर : बुक्स इन जेनरल में सी० एल० डी० की पुस्तक की पृ० २४६ में आलोचना है।

हमारा पाँचवाँ उदाहरण हिब्रू भाषा का नित्य की बोलचाल की भाषा में प्रयोग का है। यह उन जायनिस्ट यहूदियों की भाषा है जो फिलस्तीन में बस गये हैं। इसमें सबसे अधिक विशेषता है। क्योंकि नारवीजियनों तथा आयरिशों में उनकी जनबोली मृत नहीं हुई थी, बोली जाती थी। फिलस्तीन में हिब्रू तेईस शतियो से मृत भाषा थी। उस समय उसका स्थान नेही-मिया के पहले अरामाई भाषा ने ले लिया था। इतने समय तक और आज तक हिब्रू केवल यहूदी धर्म में पूजा में प्रयोग होती रही है और वे विद्वान् इसका प्रयोग करते रहे हैं, जिनका सम्बन्ध यहूदी कानून से है। और तब एक ही पीढ़ी में यह 'मृत भाषा' यहूदियो के उपासना घर से निकल कर पश्चिमी संस्कृति के सचारण का माध्यम बन गयी। पहले इसका प्रयोग पूर्वी यूरोप में यहूदियों के विनाश मे समाचार-पत्रो में हुआ, फिर फिलस्तीन में घरो और स्कूलों में। यहाँ यूरोप के यिड्डिश बोलने वाले आगन्तुक, अमरीका के अग्रेजी बोलने वाले आगन्तुक, यमन के अरबी बोलने वाले आगन्तुक, बोखारा के फारसी बोलने वाले आगन्तुक, अपनी सामान्य भाषा समझकर इसका एक साथ प्रयोग करते है। वह भाषा ईसा की पीढ़ी के पाँच सौ साल पहले 'मर' चुकी थी।

यदि हम हेलेनी ससार की ओर दृष्टि डाले तो हम देखेगे कि यहाँ भाषा का पुरातनवाद केवल सकीर्ण राष्ट्रीयतावाद का सहायक नही था, बल्कि अधिक व्यापक था।

यदि इन पुस्तकों की ऐसी सन्दूक देखे जिनमें सातवी ईसवी शती तक की सारी पुस्तके यूनानी भाषा में लिखी गयी रखी हो, और आज तक सुरक्षित हों, तो हमे दो बातें देखने को मिलेंगी। पहली बात तो यह कि इस सग्रह में अधिकाश पुस्तकें एटिक (एकीनियनो द्वारा बोली जाने वाली) भाषा में लिखी है, कि यदि तिथिवार इन पुस्तकों का वर्गीकरण किया जाय तो ये दो विभिन्न वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। पहला वह जिसमें मौलिक एटिक साहित्य है जो पाँचवी और चौथी शती ई० पू० में एथेन्स मे अथीनियनो द्वारा रचा गया, जो अपनी स्वाभाविक भाषा में लिख रहे थे। दूसरा वर्ग उन पुस्तको का होगा पुराने ऐटिक साहित्य का, जिसकी रचना ई० पू० अन्तिम शती से लेकर ईसा की छठी शती तक—छ या सात सौ वर्षों में हुई। ये उन लेखको की रचनाएँ हैं जो न एथेन्स में रहते थे, न जिनकी भाषा एटिक थी। इन नव-लेखकों का विस्तार उतना ही बडा है जितना हेलेनी सार्वभौम राज्य। क्योकि उनमे यरूश-लेम के जोजेफस, प्रेनेसटे के एलियन, रोम के मारकस आरीलियस, सोमोसाटा के लूशियन और सिजारिया के प्रोकोपियस हैं। किन्तु यद्यपि इन लेखकों का उद्गम भिन्न है, उनकी शब्दावली, उनकी पद-योजना, उनकी शैली आश्चर्यजनक रूप से एक ढग की है, क्योकि ये सब निर्लज्जता तथा दासतापूर्वक ऐटिक साहित्य के सर्वोच्चकाल के अनुगामी हैं।

उनके पुरातनवाद ने उनकी रक्षा निश्चित कर दी। क्योंकि हेलेनी समाज के विघटन के समय प्रत्येक यूनानी लेखक का अस्तित्व उस युग के साहित्य की रुचि के अनुसार निर्णीत हो रहा था। लिपिकों के सामने यह प्रश्न नही था कि 'यह महान् साहित्य है।' वे यह देखते कि यह 'विशुद्ध एटिक है कि नहीं।' परिणामस्वरूप हमें बहुत-सी पुस्तके नव-एटिक साहित्य की मिलती हैं, जिन्हें हम बड़ी प्रसन्नता से केवल थोड़े-से उन खोये हुए अन-एटिक साहित्य से बदलने के लिए तैयार हैं, जो तीसरी तथा दूसरी शती ई० पू० में रचे गये।

हेलेनी साहित्य के पुरातन काल मे केवल एटिकवाद के साहित्य की ही विजय नहीं हुई।

एक प्रकार की नव-होमरी कविता भी कुछ पुरातत्ववादियों ने लिखी । दूसरी शती ई० पू० में अपोलोनियस रोडियस से लेकर ईसवी सन् की पाँचवीं-छठी शती में नोन्नस पेनोपोलिटेनस तक यह सिलसिला चलता रहा । अलेकजेन्ड्राइन[१] में यूनानी साहित्य के बाद की अ-पुरातनवादी रचनाएँ केवल दो प्रकार की हैं । तीसरी और दूसरी शती ई० पू० के ग्राम्यगीत, जो पुरानी मूल्यवान् यूनानी भाषा के लिए सुरक्षित है, और ईसाई तथा यहूदी धर्मग्रन्थ ।

यूनानी एटिक के पुनर्जीवित करने को पुरातनवाद के समान भारतीय इतिहास में संस्कृत के पुनर्जीवन का उदाहरण है । मूल संस्कृत उन यूरेशियाई खानाबदोश आर्यों के गिरोह की बोली थी जो स्टेप को छोड़कर उत्तरी भारत, दक्षिण-पश्चिम एशिया और उत्तरी मिस्र में दो हजार साल ई० पू० फैल गये । भारत में यह भाषा वेदों में सुरक्षित है, जो भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं । किन्तु जब भारतीय सभ्यता पतनोन्मुख होकर विघटित होने लगी, संस्कृत प्रचलित भाषा नहीं रह गयी और क्लासिकी भाषा हो गयी, जिसका अध्ययन इसलिए होता है कि उसमें शाश्वत साहित्य भरा है । इस समय संस्कृत का स्थान अनेक स्थानीय बोल-चाल की भाषाओं ने ले लिया । इन सबका स्रोत संस्कृत है, किन्तु उनमें प्रत्येक में इतना अन्तर है कि प्रत्यक स्वतन्त्र भाषा हो गयी है । इनमें से एक का प्राकृत लंका की पाली—हीनयानी बौद्धधर्म-ग्रन्थों में व्यवहार किया गया, कइयों का अशोक ने (२७२–२३२ ई० पू०) अपनी घोषणाओं में प्रयोग किया । अशोक की मृत्यु के पश्चात् या कुछ पहले संस्कृत के पुनरुद्धार का कृत्रिम प्रयत्न आरम्भ हुआ और उसका विस्तार होता रहा । ईसा की छठी शती तक नव-संस्कृत भाषा ने प्राकृतों पर विजय पायी और सारे देश में फैली । पाली केवल साहित्यिक कौतुकता के रूप में लंका में रह गयी । इस प्रकार हमारा प्रचलित संस्कृत वाङमय प्रचलित यूनानी वाङमय के समान दो भागों में है । एक पुराना भाग जो मौलिक है, एक नवीन जो अनुकरण किया गया है और पुरातनवादी है ।[१]

भाषा और कला की भाँति धर्म के क्षेत्र में भी आधुनिक पश्चिमी सर्वेक्षक को पुरातनवाद मिलेगा जो अपने सामाजिक वातावरण में चल रहा है । उदाहरण के लिए ब्रिटिश एंग्लो-कैथोलिक आन्दोलन इस विश्वास पर आधारित है कि सोलहवीं शती का सुधार (रिफार्मेशन) बदले हुए अंग्रेजी रूप में भी, बहुत अधिक था । और इस आन्दोलन का उद्देश्य यह है कि मध्ययुगीन विचार और धार्मिक रीतियाँ पुनः स्थापित की जायँ, जो चार सौ साल हुए, (इनके हिसाब से बिना विचारे) समाप्त कर दी गयी थीं ।

हेलेनो इतिहास में आगस्टस की धार्मिक नीति में हमें एक उदाहरण मिलता है ।

'राजधर्म का आगस्टस द्वारा पुनःस्थापित करना रोमन इतिहास में विशिष्ट घटना है, सम्भवतः सारे धार्मिक इतिहास में विशिष्ट है । शिक्षक वर्ग में पुरानी पूजा की उपयोगिता पर विश्वास हट गया था ।····संकर नागरिक पुराने देवताओं की खिल्ली उड़ाते थे···और धर्म का बाहरी आचार नष्ट हो गया था । इसलिए हम लोगों को यह असम्भव जान पड़ता था कि ऐसे आचार और किसी सीमा तक, ऐसे विचार, केवल एक व्यक्ति की इच्छा से पुनर्जीवित किये जायँ । इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह पुनर्जीवन वास्तविक था

१. अलेकजेन्ड्राइन एक प्रकार का पुराना यूनानी छन्द है ।—अनुवादक

और देवता द्वारा शान्ति और ईश्वर की उपस्थिति एक बार फिर शक्तिशाली शब्द हो गये। पुराना धर्म कम-से-कम तीन सौ सालों तक चलता रहा और कुछ सीमा तक उस पर लोगों का विश्वास भी था।[1]

यदि हम हेलेनी संसार के सुदूर पूर्वी समाज की जापानी शाखा की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि वर्तमान काल में जापानियों ने आदिम मूर्ति-पूजा के एक स्थानीय स्वरूप को पुनर्जाग्रत करने का प्रयत्न किया है जिसे शिन्तो कहते हैं। यह धार्मिक पुरातनवाद को चलाने का प्रयास है जो आगस्टस की धार्मिक नीति से और जरमनो की ट्यूटनी मूर्तिपूजा को फिर से स्थापित करने के प्रयत्नों से मिलता-जुलता है। यह कार्य रोमन असाधारण शक्ति की अपेक्षा जरमन प्रयत्न के अधिक समान है। क्योंकि आगस्टस ने जो रोमन मूर्तिपूजा चलायी वह यद्यपि बहुत कुछ नष्ट हो गयी थी, फिर भी चालू थी। जापान में तथा जरमनी में पुरानी मूर्तिपूजा का धर्म हजार साल हुए समाप्त हो चुका था। जापान मे उसका स्थान महायानी बौद्ध धर्म ने ले लिया था। इस आन्दोलन का पहला रूप शास्त्रीय था। क्योंकि शिन्तो के पुनर्जीवन का प्रयत्न पहले-पहले एक बौद्ध भिक्षु केइचू (१६४०–१७०१) ने किया था। उसकी रुचि केवल शब्द-शास्त्र की दृष्टि से इसमे थी। किन्तु दूसरो ने उसके काम को उठा लिया। हिराता आस्तुताने (१७७६–१८४३) ने महायान तथा कनफूशियस के धर्मों का विरोध यह कह कर किया कि ये दोनो विदेशी हैं।

ज्ञात रहे कि शिन्तो का पुनर्जीवन आगस्टी पुनर्जीवन के समान उसी समय आरम्भ हुआ, जब जापान में सकटकाल समाप्त हुआ और वहाँ सार्वभौम राज्य बन गया। नव-शिन्तो आन्दोलन संघर्षात्मक रूप तक पहुँच चुका था, जब जापानी सार्वभौम राज पश्चिमी सभ्यता के आघात से समय से पहले चकनाचूर हो गया। सन् १८६७–६८ की क्रान्ति के समय जब जापान ने नयी नीति अपनायी कि पश्चिमी राष्ट्रीय ढग पर अपने को आधुनिक बनाकर अर्धपश्चिमीकृत महान् समाज मे अपनी स्थिति वह ढूंढ़ रखे, तब नव-शिक्षा आन्दोलन उपस्थित हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में उसका निजत्व स्थापित करने की आवश्यकता की इसने पूर्ति की। नये शासन ने धर्म के सम्बन्ध में पहला काम यह किया कि धर्म को राज्य-धर्म बनाया। और एक समय ऐसा आन पड़ा कि बौद्ध धर्म जबरदस्ती समाप्त कर दिया जायगा। किन्तु सदा की भाँति इतिहास में 'ऊँचे धर्म' के बैरियो ने देखा कि कितनी जबरदस्त शक्ति उसमें है। बौद्ध धर्म और शिन्तो धर्म को एक-दूसरे को सहन करना पड़ा।

यदि पूर्ण असफलता नही तो असफलता का वातावरण या निरर्थकता पुरातनवाद के चारों ओर व्याप्त रहती है। यह ऊपर के उदाहरणो में हमने देखा। इसका कारण ढूंढने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नही है। पुरातनवादी के लक्ष्य का ढंग ही ऐसा है कि उसे प्राचीन और नवीन के साथ समन्वय करने की चेष्टा करनी पड़ती है। और दोनों के अपने-अपने अधिकारो में असंगति होती है यही जीवन में पुरातनवाद की दुर्बलता है। पुरातनवादी दुविधा के सींगों के बीच होता है, जिस ओर वह घूमा सींग उसमे घुसा। यदि वह वर्तमान को ध्यान में रखे बिना प्राचीन की स्थापना करना चाहता है तो जीवन की, जो सदा अग्रगामी है, शक्ति उसकी भंगुर

१. डब्ल्यू-वार्ड-फाउलर : द रिलिजस एक्सपीरिएन्सेज आव द रोमन पीपुल, पृ० ४२८-२९।

संरचना को चकनाचूर कर देगी । और यदि वह वर्तमान को कार्य रूप में लाना चाहता है और प्राचीन के पुनर्जीवन को वर्तमान के अधीनस्थ रखता है, तब उसका पुरातनवाद झूठा हो जाता है। दोनो परिस्थितियों में, अपने कार्य के अन्त में पुरातनवादी को पता चलेगा कि मै भविष्यवाद (फ्युचरिज्म) का खेल खेल रहा हूँ । समय के विपरीत वस्तु को स्थायी बनाने की चेष्टा मे वास्तव मे वह किसी ऐसी क्रूर नवीनता के लिए दरवाजा खोल रहा है, जो घुसने का अवसर पाने के लिए ताक में बैठी है ।

(८) भविष्यवाद

भविष्यवाद और पुरातनवाद दोनों दुखदायी वर्तमान से अलग होने की चेष्टाएँ है । पृथ्वी पर के सांसारिक जीवन को छोड़े बिना दूसरी समय की सरिता मे उछल कर कूदने की ये चेष्टाएँ हैं । ये दोनो प्रयत्न वर्तमान से बचने के हैं, किन्तु समय के आयाम से बच नही सकते । इन दोनो की असाधारण शक्तियाँ समान हैं, किन्तु परीक्षा के पश्चात् दोनो टूटी हुई आशाएँ ही है । इन दोनो का अन्तर केवल दिशाओं का है । नदी के बहाव की ओर या उसके विपरीत । ये दोनों वर्तमान क्लेश से ऊबकर समय की सरिता मे निराश होकर समान रूप से गोता लगाते है । साथ ही भविष्यवाद पुरातनवाद से अधिक मानव-प्रकृति के विरुद्ध है । यह तो मनुष्य का स्वभाव है कि जब वह वर्तमान से ऊबे, तो प्राचीन की ओर शरण ले । किन्तु वह अप्रिय वर्तमान से चिपका रहना अधिक पसन्द करेगा, क्योकि वह ज्ञात है इसके बजाय कि अज्ञात भविष्य की ओर जाय । इसलिए पुरातनवाद की अपेक्षा भविष्यवाद की मनोवैज्ञानिक शक्ति का स्वर अधिक ऊँचा होता है । और जिन लोगो ने पुरातनवाद लाने की चेष्टा की और विफल रहे उनकी आत्मा पर भविष्यवाद की धड़कन की प्रतिक्रिया होती है । भविष्यवाद से इसी प्रबल तर्क के अनुसार निराशा भी उत्पन्न होती है । कभी-कभी भविष्यवाद का कुछ परिणाम दूसरा होता है । भविष्यवाद कभी-कभी अपने से ऊपर उठकर किसी दूसरे रूप मे परिवर्तित हो जाता है ।

पुरातनवाद की दुर्घटना की उपमा यदि हम उस मोटरकार से दें जो सड़क पर अपनी राह पर फिसल कर पीछे मुड़ जाती है और विपरीत दिशा मे जाकर टकरा जाती है तो भविष्यवाद के आनन्ददायी अनुभव की उपमा उस यात्री से दी जा सकती है जो मोटर से चालित गाड़ी पर सवार है और समझता है कि धरती पर गाडी चली जा रही है, किन्तु यह देखकर भयभीत हो जाता है कि जिस धरती पर गाड़ी जा रही है वह अधिकाधिक ऊबड़-खाबड़ होती जा रही है और जब वह समझता है कि अब दुर्घटना अवश्यम्भावी है, गाड़ी एकाएक ऊपर उठ जाती है और खोह-कन्दराओं से उठकर अपने हवा मे चली जाती है ।

पुरातनवाद की भाँति भविष्यवाद भी वर्तमान से अलग होना चाहता है । इसका हम अनेक सामाजिक क्षेत्रो के कार्यों मे अध्ययन कर सकते है । सामाजिक आचार के क्षेत्र में भविष्यव दी का बहुधा वेश के सम्बन्ध में परिवर्तन होता है । परम्परागत पोशाक को छोड़कर विदेशी पहनावा धारण करते है और यद्यपि सतही ढग से, फिर भी पश्चिमी समाज में व्यापक रूप से हम देखते हैं कि बहुत-से अ-पश्चिमी समाजो ने अपने पुश्तैनी और विशिष्ट पहनावे को छोडकर अनाकर्षक विदेशी पश्चिमी वेश-भूषा को अपना लिया है । जो इस बात का बाहरी

चिह्न है कि उन्होंने जान में या अनजान में पश्चिमी आन्तरिक सर्वहारा के साथ अपने को कर लिया है।

जबरदस्ती बाहरी पश्चिमीकरण का सबसे विख्यात और सम्भवतः सबसे पुराना उदाहरण वह है जब पीटर महान् की आज्ञा से रूसियों की दाढ़ी मूढ़ दी गयी और उन्हें कफतान (जामा) पहनने को मना कर दिया गया। वेश-भूषा की इस रूसी क्रान्ति का अनुगमन उन्नीसवी शती के अन्तिम चतुर्थांश में जापान ने किया और ऐसी ही अवस्था में इसी प्रकार की जबरदस्ती १९१४–१८ ई० पू० के युद्ध के बाद अनेक अपश्चिमी देशों ने की है। उदाहरण के लिए १९२५ का तुर्की का कानून है जिसमें यह आवश्यक कर दिया गया कि तुर्की का प्रत्येक पुरुष किनारे-दार (ब्रिमवाली) हैट पहने और इसी प्रकार की आज्ञा ईरान के रजाशाह पहलवी ने निकाली और सन् १९२८ में अफगानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला थे।

केवल बीसवी शती के इस्लामी देश ही नही है जिन्होने किनारेदार हैट को संघर्षवादी भविष्यवाद का विशिष्ट चिह्न बनाया। १७०–१६० ई० पू० के सीरियाई संसार में यहूदियो के हेलेनीकरण के दल के नेता उच्च पुरोहित जेशुआ ने अपना नाम बदल कर जेसन रख दिया जो उसके कार्यक्रम का शाब्दिक सकेत था। किन्तु इसी से उसे सन्तोष नहीं हुआ। जिस विशेष कार्य की मक्काबियो मे प्रतिक्रिया हुई वह यह था कि युवक पुरोहितों ने चौड़े किनारे की फेल्ट हैट अपने पहनने के लिए चुना। अकामीनियाई साम्राज्य के हेलेनी उत्तराधिकारियों के मूर्तिपूजक शक्तिशाली अल्पसख्यको का सिर का विशेष पहनावा था। भविष्यवाद के इस यहूदी प्रयास का अन्तिम परिणाम पीटर महान् की विजय के समान नही था, बल्कि अमानुल्ला की भाँति हास्यास्पद विफलता हुई। क्योकि यहूदी धर्म पर सिलियूसिड शक्तियों के स्पष्ट आक्रमण के कारण यहूदियो में हिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई जिसका सामना एन्टिओकस एफिफेनीज़ और उसके उत्तराधिकारी नही कर सके। किन्तु भविष्यवाद का यह विशेष प्रयास विफल रहा, इसका अर्थ यह नही है कि यह उदाहरण शिक्षाप्रद नही है। भविष्यवाद की विशेष प्रकृति अधिनायक वाद है। जो यहूदी यूनानी चौडी हैट पहनता है वह यूनानी व्यायामशाला में शीघ्र ही जाना आरम्भ करेगा और अपने धर्म के नियमो को पोंगापन्थी, पुरातन और मूर्खतापूर्ण समझेगा।

राजनीतिक क्षेत्र में भविष्यवाद अपने को भौगोलिक क्षेत्र में इस प्रकार व्यक्त कर सकता है कि जो सीमाएँ और भू-चिह्न है उन्हे जान-बूझकर समाप्त कर दे, सामाजिक क्षेत्र में वर्तमान निगमों, दलो, धार्मिक सम्प्रदायो को विघटित कर देता है या सारे समाज को समाप्त कर देता है। भूचिह्नों और सीमाओ को व्यवस्थित ढग से मिटाने का क्लासिकी उदाहरण यूनान का है, जब जान-बूझकर राजनीतिक अविच्छिन्नता को समाप्त करने के लिए सफल क्रान्तिकारी क्लेइसथिनीज़ ने ५०७ ई० पू० में अटिका का एक नया नकशा बनाया। क्लेइसथिनीज़ का उद्देश्य था कि ढीली-ढाली राजनीतिक व्यवस्था को जिसमें समुदाय के स्वत्व के ऊपर वंश का स्वत्व था, समाप्त कर दे और एकात्मक (युनिटरी) राज्य स्थापित हो, जिसमे सब प्रकार की भक्तियाँ गौण हों, नागरिकता का दायित्व सबके ऊपर हो।

उसकी उग्र नीति विशेष रूप से सफल हुई और इस हेलेनी दृष्टांन्त का अनुसरण पश्चिमी जगत् में फ्रांस की क्रान्ति के नेताओं ने किया। चाहे जान-बूझकर इस हेलेनी पद्धति का अनुसरण किया अथवा स्वतन्त्र रूप से वैसे ही माध्यम को उन्होंने अपनाया और परिणाम भी वैसा ही हुआ।

जिस प्रकार क्लेइसथिनीज़ का उद्देश्य अटिका को एक बनाने का था, उसी प्रकार फ्रेंच क्रान्तिकारियों ने पुराने सामन्ती प्रदेशों को समाप्त कर दिया और चुगी की सीमाओं को हटा दिया, जिससे देशभर एक आर्थिक क्षेत्र बन जाय और उन्हें शासन की सुविधा के लिए देश को तिरासी डिपार्टमेन्टों (प्रदेशों) में विभाजित कर दिया। ये सब बिलकुल एक ढंग के थे और केन्द्र के कठोर रूप से अधीन बना दिये गये थे, जिससे पुरानी स्थानीय विभिन्नताएँ और भक्तियो की स्मृति मिट जाय। जिन बाहर के प्रदेशों को नैपोलियन ने ले लिया था और अस्थायी रूप से नैपोलियनी साम्राज्य में मिला लिया था, उनकी सीमाओं को नये नकशे में मिटा दिया गया। इससे इटली तथा जरमनी के एकात्मकता के राज्य के निर्माण में बहुत सहायता मिली।

हमारे समय में यही अभिव्यक्ति बोलशेविक प्रवृत्ति के भौगोलिक क्षेत्र मे दिखाई देती है। इसमें सोवियत संघ के आन्तरिक भागो को फिर से नये रूप में परिवर्तित किया गया है। यदि हम नये शासकीय नकशे को पुराने रूसी साम्राज्य के नकशे के ऊपर रखकर देखें तो इसका पता चल जायगा। एक ही प्रकार के उद्देश्य के अनुसार कार्य करने मे स्टालिन ने जिस चालाकी से कार्य किया उसमें वह अग्रगामी है। उसके पहले के लोगों ने अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपने यहाँ के लोगो की स्थानीय राजनिष्ठा को दुर्बल किया, स्टालिन ने इसके विपरीत नीति का प्रयोग किया कि स्थानीय निष्ठा को सन्तुष्ट किया। उसने इस बात को पहले से सोच लिया था कि भूख पेट भर जाने से मर जाती है, भूख रखने से नही मरती। इस सम्बन्ध में याद रखने की बात है कि स्टालिन स्वय जार्जियन है। जब १९१९ में मेनशेविक जार्जियनो का एक शिष्ट मण्डल पेरिस के शान्ति कानफरेन्स में गया और उसने अपने को अरूसी जाति बनाये जाने की माँग की, उन्होंने अपना दावा इस तर्क पर उपस्थित किया कि हमारी भाषा भिन्न है और साथ एक दुभाषिया लाये जिसका काम था कि इस विदेशी स्थानीय भाषा का फ्रेंच में अनुवाद करे। एक अंग्रेजी पत्रकार जिसे जार्जियन नही जानते थे, वहाँ उपस्थित था। उसने बताया कि एक अवसर पर जार्जियन और उनका दुभाषिया रूसी मे बात कर रहे थे। इससे परिणाम यह निकलता है कि आज का रूसी अपने से और अनजाने अपना राजनीतिक कामकाज रूसी में करेगा, जब तक रूसी जबरदस्ती उन पर लादी न जायगी।

धर्म के अतिरिक्त और सांस्कृतिक क्षेत्रो मे भविष्यवाद की अभिव्यक्ति का प्रतीक पुस्तकों का जलाना है। ऐसा कहा जाता है चीनी ससार के सम्राट् क्रान्तिकारी त्सिन को ह्वांग-टी ने, जो चीनी सार्वभौम राज्य का संस्थापक था, उन दार्शनिकों की पुस्तकें जब्त करके जलवा डाली, जो चीनी सकट काल में हुए थे। उसे भय था कि उनके भयंकर विचारों से उसके नये समाज के निर्माण का कार्य रुक जायगा। सीरियाई समाज में, खलीफा ऊमर ने, जिसने उस सीरियाई समाज का पुनर्निर्माण किया, जो हेलेनी आक्रमण के बाद एक हजार साल तक सुषुप्त था, एक सेनापति के पत्र का, कहा जाता है, इस प्रकार का उत्तर दिया। सिकन्दरिया का नगर जब पराजित हो गया, इस सेनापति ने लिखा कि पुस्तकालय का क्या किया जाय। खलीफा ने उत्तर दिया :

'यदि यूनानियों की पुस्तको के विचार ईश्वर की पुस्तक के विचारों से सहमत हैं तो उनकी रक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। और यदि असहमत हैं तो घातक हैं और उन्हें नष्ट कर

देना चाहिए।' कथा के अनुसार उस पुस्तकालय की पुस्तकें जो नौ सौ वर्षों से एकत्र हो रही थी सार्वजनिक स्नानागारों में पानी गर्म करने के लिए प्रयोग में लायी गयीं।

हमारे युग में पुस्तकें जलाने में हिटलर ने भी, जो वह कर सकता था, किया। यद्यपि मुद्रण-कला के आविष्कार हो जाने से इस प्रकार के नृशंस कार्य पूर्ण रूप से सफल नही हो पाते। हिटलर के समकालीन मुस्तफा कमाल अतातुर्क ने दूसरी सूक्ष्म पद्धति से कार्य किया। तुर्की अधिनायक का उद्देश्य था कि ईरानी सस्कृति, जो उत्तराधिकार में मिली है, लोगों के मन से जबरदस्ती हटा ले और पश्चिमी संस्कृति के साँचे में वह ढाली जाय। उसने पुस्तकें जलाने के स्थान पर वर्णमाला बदल दी। सन् १९२९ से सारी पुस्तको और समाचार-पत्रों को तथा कानूनी दस्तावेजों को लैटिन लिपि में छापना आवश्यक हो गया। इस कानून के पास होने से तथा बलपूर्वक उसका प्रयोग होने के कारण तुर्की गाजी को चीनी सम्राट् या अरब के खलीफा का अनुकरण नहीं करना पड़ा। फारसी, अरबी तथा तुर्की के क्लासिक नयी पीढ़ी की पहुँच के बाहर कर दिये गये। पुस्तकों के जलाने की समस्या नही रह गयी, जब उनकी लिपि बदल दी गयी जो उनकी कुजी थी। वे पुस्तकें अलमारियो में सड़ने के लिए रख दी गयीं, इस विश्वास के साथ कि मुठ्ठी भर पुरातत्ववेत्ताओ को छोड़कर उन्हें कोई स्पर्श भी न करेगा।

धर्मेतर सस्कृति में साहित्य और विचार ही ऐसे क्षेत्र है जहाँ वर्तमान में भविष्यत् ने प्राचीन की विरासत पर आक्रमण किया है। दृष्टिपरक तथा श्रवणपरक और भी कलाओ के ससार हैं जिन्हे भविष्यवाद पराजित करना चाहता है। वास्तव में दृष्टिपरक कलाकारों ने ही 'भविष्य-वाद' शब्द गढ़ा है जिससे वे अपनी क्रान्तिकारी उच्च कलाओं को पुकारते है। किन्तु भविष्यवाद का एक कुख्यात रूप है जो दृष्टिपरक कलाओं के क्षेत्र में व्याप्त है और धर्म में तथा धर्मेतर सस्कृति में समान रूप से पाया जाता है। वह है मूर्तिभजन (आइकोनोक्लाज्म)। मूर्तिभंजन आधुनिक क्यूबिस्ट चित्रकारी के समर्थको के समान है, जो परम्परागत कला की शैली को अग्राह्य मानते हैं। उसमें यह विशिष्टता है कि कला के विरोध का सम्बन्ध, धर्म से भी लगा देता है और उसके विरोध की भावना कला विषयक नही है, धार्मिक है। ईश्वर के दृश्यमान प्रतिनिधि का विरोध मूर्तिभंजक इसलिए करता है कि ईश्वर का या ईश्वर से नीचे के भी किसी प्राणी की मूर्ति नही बननी चाहिए जो मूर्ति-पूजा को प्रोत्साहित कर सके, इस सिद्धान्त को लागू करने में केवल मात्रा का ही अन्तर रहा है। मूर्तिभंजन का सबसे विख्यात समुदाय 'एकात्मवाद' का है जिसका प्रतिनिधि यहूदी धर्म है और उसके अनुकरण में इस्लाम। मूसा की दूसरी आज्ञा में यह कहा गया है :

'तू कोई ऐसी मूर्ति न बनायेगा या उसके समान कोई चीज न बनायेगा जो स्वर्ग में है या जो धरती के नीचे पाताल में है या जो धरती के अन्दर पानी में है।'[1]

इसके विपरीत ईसाई धर्म में जो मूर्तिभञ्जक आन्दोलन चले वे अन्य इसी प्रकार के आन्दो-

१. प्रकृति की वस्तुओं का अनुकरण करने के इस निषेध के कारण कलाकारों ने इस प्रकार की कला उपस्थित की जिसमें किसी का प्रतिनिधित्व नहीं है। इसी के लिए अराबेस्क शब्द का प्रयोग हुआ है।—अनुवादक

लनों से भिन्न थे और वे ईसाई धर्म के अनुकूल बन गये । यद्यपि आठवी शती में परम्परावादी ईसाई धर्मतन्त्र में मूर्तिभंजक आन्दोलन चला और सोलहवी शती में पश्चिमी ईसाई समाज में भी यह आन्दोलन चला, ऐसा जान पड़ता है कि आठवी शती में इस्लाम के उदाहरण ने प्रभावित किया और सोलहवी शती में यहूदियों के उदाहरण ने, फिर भी दृश्यपरक कलाओं को पूर्णतः इन्होंने नहीं त्यागा । ईसाइयों ने यह आक्रमण धर्मेतर क्षेत्रो पर नहीं किया । धार्मिक क्षेत्र में भी कट्टर मूर्तिभंजक विचित्र समझौते पर राजी हो गये । तीन आयामों के प्रतिरूपो का उन्होने इस स्पष्ट शर्त पर निषेध किया कि दो आयामो के प्रतिरूप स्वीकार किये जायेंगे ।

(९) भविष्यवाद की निजी अनुभवातीतता (द सेल्फ ट्रान्सेन्डेन्स आव फ्यूचरिज्म)

सम्भव है कि राजनीतिक क्षेत्र में भविष्यवाद को कभी सफलता मिल जाय, जो लोग इसे जीवन का मार्ग बनाना चाहते है उनके लिए यह ऐसा ऊसर है जहाँ जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती । यद्यपि खोज व्यर्थ और दुखदाई होगी फिर भी कुछ उसकी उपयोगिता होगी । क्योकि वह खोज करने वालो के निराशापूर्ण चरणों को शान्ति की राह पर ले जा सकता है । भविष्यवाद अपने स्वाभाविक रूप में निराशा की योजना है, इस पर भी कोई राह न मिलने पर यह एक राह है । क्योकि जब आत्मा वर्तमान से निराश हो चुकी है और सासारिक जीवन की उसकी भूख नही मिटी है, तब वह पुरातन की समय-सरिता मे गोता लगाती है । और जब पुरातन मे पलायन की चेष्टा बेकार या असम्भव हो जाती है, तब आत्मा भविष्यत् के कम स्वाभाविक राह को पकड़ती है ।

इस पवित्र—और उसी प्रतीक से पवित्र सांसारिक—भविष्यवाद को कुछ उदाहरणों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ।

उदाहरण के लिए दूसरी शती ई० पू० के हेलेनी ससार मे हजारों सीरियाइयो और सस्कृत पूर्ववासियो की स्वाधीनता छीन ली गयी, वे देश से निकाल दिये गये, परिवार से अलग कर दिये गये और सिसली तथा इटली मे दास के रूप मे उन खेतो और चरागाहो मे भेज दिये गये जो हैनिबली युद्धो में उजाड़ हो गये थे । इन निर्वासित दासो को, जिन्हे वर्तमान से पलायन की अतीव आवश्यकता थी, प्राचीन मे जाने की कोई सम्भावना नही थी । इतना ही नही कि वे सशरीर अपने देश को नही लौट सकते थे, जो कुछ उन्होंने अपने घरो को सुखी बनाने के लिए किया था, नष्ट हो गया । वह पीछे नही जा सकते थे, आगे नही जा सकते थे, इसलिए जब उन पर अत्याचार असह्य हो गया, वे विद्रोह करने के लिए विवश हो गये । इन दासो के बड़े-बड़े विद्रोह उल्टा रोमन राष्ट्रमण्डल स्थापित करने के हताश प्रयत्न थे, जिनमे सम्प्रति दास स्वामी हो जायँ और स्वामी दास हो जायँ ।

सीरियाई इतिहास के और पहले के अध्याय मे इसी प्रकार यहूदियों की प्रतिक्रिया हुई थी, जब जूडा का स्वतन्त्र राज्य नष्ट हो गया था । जब नव-बैबिलोनी और अकेमीनियाई साम्राज्यों ने उन्हें निगल लिया और अधर्मियो (अयहूदियों) में वे तितर-बितर हो गये, उन्हे यह आशा और विश्वास नहीं था कि हम फिर उस पुरानी अवस्था में पहुँचेंगे जिस स्थानीय स्वाधीनता में हम रहते थे । उन्हे ऐसी विश्वासजनक आशा नही हो सकती थी कि जो अवस्था बीत गयी वह लौट आयेगी, और ऐसी परिस्थिति भी उनके अनुकूल नहीं थी, फिर भी वे इस आशा को नहीं त्याग

सकते थे कि इस दुरवस्था से हम निकल जायेंगे । ये निर्वासित यहूदी यह कल्पना करने लगे कि भविष्य में ऐसा दाऊदी (यहूदी) राज्य स्थापित होगा जैसा यहूदियो के राजनीतिक प्राचीन इतिहास में कोई उदाहरण नही था । और ऐसे राज्य की कल्पना साम्राज्यों के युग में ही की जा सकती है । यदि नया दाऊद अपने शासन मे सब यहूदियो को संयोजित कर ले—और इसके अतिरिक्त उसका क्या मिशन हो सकता है—तो सम्प्रति शासक से साम्राज्य की प्रभुता छीन कर वह कल जेरूसलेम को संसार का केन्द्र बनाये जैसे बैबिलोन या सूसा उस समय था । जेरुब-बबेल को भी विश्व पर शासन करने का वैसा ही अवसर क्यों न मिले जो दारा को था, या जूडास मक्काबियस भी एटिओकस के समान और बार-कोकाबा हैड्रियन के समान क्यो न राज करे ।

इसी प्रकार का सपना किसी समय रूस के 'प्राचीन पंथियों' ने देखा था । इन रासकोल-निकियो की दृष्टि मे जार पीटर का परम्परावाद हेय था । साथ-ही-साथ यह कल्पना भी असम्भव थी कि धर्मेतर व्यवस्था के सामने, जो इस समय सर्वशक्तिशाली हो रही थी, और (पुरातन पथियों की दृष्टि मे) शैतानी की, पुरानी धार्मिक व्यवस्था विजयी हो सके । इस कारण रासकोलनिकियों ने ऐसी बात पर आशा लगायी जो कभी हुई ही नही थी । वे सोचते थे कि किसी ऐसे जार-मसीहा का अवतरण हो जो परम्परावादी धर्म को प्राचीन पवित्रता के साथ प्रतिष्ठापित करे ।

विशुद्ध भविष्यवाद के इन उदाहरणो में एक समान गुण यह है कि जिन आशाओं का आश्रय इनके आन्दोलनकारियो ने लिया है वे सब वास्तविक तथा साधारण लौकिक रूप में हो सकते हैं । यह बात यहूदियों के भविष्यवाद में स्पष्ट है जिसका पर्याप्त लिखित प्रमाण इतिहास में मिलता है । नेबुकदनजार के राज्य के विनाश के बाद जब-जब उन्होने देखा कि सार्वभौम राजनीतिक परिस्थिति के कारण ऐसा अवसर है कि नया यहूदी राज्य स्थापित हो सके, बार-बार उन्होने अपनी सम्पत्ति का उपयोग किया । कैम्बाइसिस की मृत्यु और दारा के आगमन के बीच अकामीनियाई साम्राज्य मे थोडे काल के लिए अराजकता थी । उस बीच (सम्भवत: ५२२ ई० पू०) में जेरुब बबेलने यहूदी राज्य स्थापित करने की चेष्टा की । इतिहास के बाद के अध्याय में जब सेल्युकिड शक्तियों के ह्रास और लेवाट मे रोमन सेनाओं के आगमन के बीच का अन्त:काल था, यहूदियों ने समझा कि मेकाबियों की विजय है, फिलस्तीन के यहूदी इस लौकिक विजय की मृगतृष्णा से इतने प्रभावित हो गये कि वे इस पवित्र परम्परा को त्याग देने के लिए तैयार हो गये थे कि नये राज्य का सस्थापक कोई दाऊद का वशज ही होगा, जैसा ड्यिुटेरो-साया ने चार सौ साल पहले सोचा था ।

दुर्बल सिल्युकिडों के विरुद्ध जो भी चाहे हो सकता था, किन्तु यहूदी रोम का सामना कैसे कर सकते जब वह अपनी यौवनावस्था में था । इसका उत्तर इड्युमिया के अधिनायक हेरोर को दिन के समान स्पष्ट था । वह यह नही भूला था कि रोम की कृपा से फिलस्तीन का शासक हूँ और जब तक वह राज करता था, उसने अपनी प्रजाओं को उनकी मूर्खता के प्रतिशोध से रक्षा करने की तरकीब निकाल ली थी । परन्तु इसके विपरीत कि प्रजा कल्याणप्रद राजनीतिक शिक्षा देने के लिए अनुगृहीत होती, उन्होंने उसे क्षमा नहीं किया और ज्योंही उसका बलशाली हाथ हटा, वे अपनी विपत्ति की ओर दौड पड़े । फिर भी रोम का केवल एक प्रदर्शन पर्याप्त नहीं

हुआ। सन् ६६–६७ के भीषण अनुभव से फिर विपत्ति को बुलाने में ११५–१७ में वे नहीं चूके और फिर १३२–५ ई० में विनाश का आवाहन किया। छ सौ वर्षों में यहूदियों ने सीखा कि इस प्रकार का भविष्यवाद सफल नहीं हो सकता।

यदि यहूदियों की केवल इतनी कथा होती तो इसमें कोई रस नही था। यह केवल आधी कहानी है और भी कम महत्त्व वाली आधी। पूरी कथा यह है कि जहाँ कुछ यहूदियों ने न कुछ सीखा, न कुछ भूले, दूसरे यहूदियों ने बूरबोनों की भाँति, और कुछ पहले वाले यहूदियों की भाँति मनोवृत्ति बदल जाने के कारण अथवा कुछ आत्मिक ज्ञान के कारण जो उन्हें कटु अनुभव के कारण हुआ था, अपनी सम्पत्ति को दूसरे स्थानो मे रखा। भविष्यवाद के खोखलेपन की अनुभूति के साथ-साथ उन्हें महान् ज्ञान यह भी हुआ कि ईश्वर के राज्य का अस्तित्व है। और शतियो से उनको यह दोनों अनुभव साथ-साथ हो रहे हैं—एक नकारात्मक और दूसरा स्वीकारात्मक। उन्होंने कल्पना की थी कि नये लौकिक राष्ट्र का संस्थापक शरीरी राजा होगा और वह ऐसा होगा जिसका वंश चलेगा। परन्तु इस राज्य संस्थापक के लिए जिस पदवी की भविष्यवाणी की गयी थी, और जेरूब-बबेल से लेकर बार-कोकाबा तक प्रत्येक दावेदार को जिस पदवी से घोषित किया गया वह मालिक (राजा) नही था, मसीहा था—अर्थात् 'ईश्वर से दैवी अधिकार प्राप्त।' इस प्रकार यहूदियों का देवता आरम्भ से यहूदियों की आशा से सबद्ध था, चाहे यह आशा परोक्ष मे ही क्यो न रही हो। और लौकिक रूप निर्दयतापूर्वक लोप हो गया और सारे अन्तरिक्ष में ईश्वरी रूप व्याप्त हो गया।

किसी देवता को अपनी सहायता के लिए बुलाना कोई असाधारण बात नही है। यह धर्म के ही समान पुरानी प्रथा है कि किसी दुर्जेय कार्य के आरम्भ करने के पहले रक्षक देवता का आवाहन किया जाता है। नया मोड़ 'मसीहा' की पदवी के अर्थ मे जो व्यक्त होता है नही था, कि जनता के मानवी सहायक को देवता का बल प्राप्त है। जो नयी बात थी और महत्त्व की, वह संरक्षक देवता के कार्य और शक्ति की प्रकृति में थी। विशेष दृष्टि से येहोवा तो यहूदियों का अपना देवता था ही, एक-दूसरे और विस्तृत रूप मे वह ईश्वर का अधिकारी चित्रित किया गया। उत्तर-बन्दी युग के यहूदी भविष्यवादी साधारण राजनीतिक प्रयास मे नही लगे थे। उन्होंने ऐसा कार्य करना ठाना था जो मनुष्य के लिए सम्भव नही था, क्योंकि वे अपनी छोटी स्थानीय स्वतन्त्रता को भी अक्षुण्ण नही रख सके, वे विश्व के स्वामी कैसे हो सकते थे? इस महान् कार्य में सफल होने के लिए कोई साधारण स्थानीय देवता उनका दैवी रक्षक नही हो सकता था, ऐसा देवता चाहिए था कि जो उनकी आकाक्षाओ के अनुकूल हो।

एक बार इसकी अनुभूति हो गयी तो अभी तक जो नाटक धर्मों के इतिहास में 'साधारण ढंग' का था, आत्मिक आयाम मे उसका उत्कर्ष हो जाता है। मानवी सहायक की भूमिका गौण हो जाती है और दृश्य मे ईश्वर का प्रभुत्व हो जाता है। मानवी मसीहा पर्याप्त नहीं होता। ईश्वर को स्वयं रक्षक की भूमिका मे उतरना होगा। उसके जन का सहायक धरती पर स्वयं ईश्वर का पुत्र होगा।

यदि कोई आधुनिक पश्चिमी मनोविश्लेषक ऊपर की पंक्तियों को पढ़ता रहा होगा तो अपनी भौंहों को सिकोड़ेगा और कहेगा—'आपने जिसे उदात्त आध्यात्मिक अन्वेषण बताया है, वह और कुछ नहीं है, केवल शिशुओं की वास्तविकता से पलायन करने की इच्छा के प्रति समर्पण है, जो

मनुष्य के मन का सदा से प्रलोभन रहा है। आपने यह बताया है कि किस प्रकार कुछ दुखी लोग, जो मूर्खतावश ऐसी वस्तुओं को पाने का लक्ष्य बनाते हैं जो उन्हें कभी मिल नही सकती, अपने असम्भव कार्य के असह्य बोझ को दूसरे स्थानापन्न लोगों के कन्धे पर रख देते हैं। पहले वे किसी मानवी सहायक को चुनते है और जब उससे काम नही चलता, तब ऐसा कोई मानवी सहायक, जिसे काल्पनिक दैवी शक्ति का सहारा होता है और अन्त में ये मूर्ख हताश होकर अपनी रक्षा के लिए किसी काल्पनिक देवता का आवाहन करते हैं जो स्वयं इनका कार्य कर देगा। जो मनोविज्ञान से अभिज्ञ हैं उसके लिए ऐसी मूर्ख की पलायनवादी कथा परिचित और दुखदायी है।'

इस आलोचना के उत्तर में हम इस बात से सहमत हैं कि उन सांसारिक कार्यों को करने के लिए, जिनको हमने चुना है और नही कर सके, दैवी शक्ति का आवाहन करना बच्चो का-सा काम है। यह प्रार्थना कि मेरी इच्छा पूर्ण हो, स्वयं इसकी निरर्थकता का प्रमाण है। इस विषय मे यहूदियों की जो बात है, ऐसे यहूदी भविष्यवादियों का दल था, उन्हे यह विश्वास था कि येहोवा अपने उपासकों के स्वय निर्धारित सांसारिक कार्यों को अपने ऊपर ले लेगा, और जैसा हमने देखा इन यहूदी भविष्यवादियो का दुखद अन्त हुआ। उन उत्साहियों की नाटकीय ढग से आत्म-हत्या हो गयी जिन्होने अपार सेना का सामना इस भ्रम से किया कि युद्ध के दिन समूह का स्वामी स्वयं समूह के बराबर होगा। इसी के साथ विरागी दल था, जो इसी भ्रमपूर्ण आधार पर विरोध मे तर्क कर रहा था। उनका कहना था कि हमे किसी भी ऐसी बात में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जिसका वारा-न्यारा हमने ईश्वर के सुपुर्द कर दिया है कि यह उसका कार्य है। किन्तु दूसरी दिशाओ से दूसरे रूप में प्रतिक्रिया हुई। जोहन बेन एक्काई के दल की प्रतिक्रिया और ईसाई धर्म की प्रतिक्रिया। ये दोनों प्रतिक्रियाएँ नकारात्मक बात मे तो विरागियो के समान थी क्योंकि अहिंसावादी थीं, किन्तु विरागियों और उत्साहवादियों—दोनो से इनमें भेद था। महत्त्वपूर्ण निश्चयात्मक रूप मे यह अन्तर था कि इन्होने भविष्यवाद के पुराने सासारिक स्वार्थों की ओर से मुँह मोड़ लिया था और अपनी सपदा को ऐसे ध्येय के लिए रखा जो मनुष्य नही ईश्वर के लिए है। और उसके लिए आत्मिक क्षेत्र में ही कार्य किया जा सकता है जिसमे ईश्वर सहायक नही, कार्यों का निदेशक होता है।

यह बात महत्त्व की है। क्योंकि मनोविश्लेषक की उस आलोचना का उत्तर इसमे मिल जाता है जो उसने विरागियो और उत्साहियो दोनों के विरुद्ध की है। ईश्वर के आवाहनको, शैशव का पलायन कहकर भर्त्सना नही की जा सकती यदि मानवी अभिनेता अपनी शक्ति को (लिबिडो) सांसारिक ध्येय से हटा लेता है। इसके विपरीत यदि आवाहन से इतना महान् और इतना सुन्दर आध्यात्मिक परिणाम निकलता है जैसा कि वह आत्मा, जो आवाहन करती है, चाहती है, तो यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि जिस शक्ति को विश्वास करके पुकारा जाता है वह विश्वास केवल कपोल-कल्पना नहीं है। हम इस बात को मान लेगे कि यह आध्यात्मिक पुनर्निर्धारण एक सच्चे ईश्वर का आविष्कार था। और मनुष्य ने सांसारिक भविष्य के सम्बन्ध की जो कल्पना की थी उसका स्थान दूसरे संसार की ईश्वरीय अभिव्यक्ति ने ले ली है। सासारिक आशा जब भग्न हो गयी, तब हमे ऐसी वास्तविकता का ईश्वरीय ज्ञान-प्राप्त हुआ जो मनुष्य के बनाये रंगमंच के दृश्यों के पीछे सदा से रहा। मन्दिर का पर्दा दो टुकड़ों में फट गया।

अब हम इस महान् आध्यात्मिक पुनर्निर्धारण की उपलब्धि में जो क्रम हैं उन पर कुछ विचार करेंगे। उसका मूल यह है कि जो सांसारिक दृश्य पहले मानवी अभिनेताओ का मंच समझा जाता था, जिसमें ईश्वर सहायक था या नहीं, वह अब ईश्वर के राज के क्रमशः आत्मज्ञान का क्षेत्र हो गया। जैसा कि समझा जा सकता है, पहले यह नया विचार पुरानी भविष्यवादी संकल्पना से प्राप्त आवरण से ढका रहता है। इस पृष्ठभूमि के विपरीत 'ड्युटेरो-इसाया' ईश्वर के राज्य का चित्र बनाता है, जो स्वर्गिम तो है किन्तु उसके साथ लौकिक राज्य की कल्पना भी है, एक अकेमीनियाई साम्राज्य की कल्पना जिसमे उसके रक्षक-नायक ने मूसा को छोडकर जरूशलेम को अपनी राजधानी बनाया है और जो परशियन यहूदी का राजकुल है। क्योंकि येहोवा ने उसे यह आत्मज्ञान दिया है कि (अहूर-मजदा नही) मैंने खुसरो (साइरस) को ससार के विजय करने मे सहायता दी है। इस दिवा-स्वप्न मे 'ड्युटेरो-इसाया', मनोविश्लेषक की आलोचना के सम्मुख उग्र रूप में उपस्थित होता है। इस पैगम्बर की सकल्पना सासारिक भविष्यवादी के विचारो से इस बात मे आगे बढ जाती है कि मनुष्य तथा प्रकृति दोनो चमत्कारी परमानन्द का अनुभव कर रहे हैं। उसका ईश्वर का राज और कुछ नही है लौकिक स्वर्ग है, एडेन उद्यान जो अद्यतन बना दिया गया है।

दूसरा क्रम आता है जब यह लौकिक स्वर्ग केवल अस्थायी दशा समझी जाती है, जो शायद एक हजार साल[1] तक (मिलेनियम) रहे किन्तु निर्धारित समय के बाद संसार के साथ-साथ उसका बीत जाना निश्चित है। किन्तु यदि यह संसार समाप्त होने वाला है और उसके स्थान पर आगे का ससार आने वाला है, तब ईश्वर का राज्य उसी दूसरे ससार मे होगा और जो राजा इस एक हजार साल तक शासन करेगा, वह ईश्वर नही होगा केवल उसका प्रतिनिधि या मसीहा होगा। यह भी स्पष्ट है कि दूसरे ससार के आविर्भूत होने के पहले इस संसार मे चमत्कारी मिलेनियम की सकल्पना, उन विचारो मे समझौता करने का असम्भव प्रयत्न है, जो एक दूसरे से भिन्न ही नही, एक दूसरे के विरोधी हैं। इनमे पहला विचार ड्युटेरो-इसाया का है जो कहता है कि भविष्यवादी लौकिक राज्य मे चत्मकारी 'सुधार' होंगे। दूसरा विचार यह है कि ईश्वर का राज्य समय से परे है और विभिन्न आध्यात्मिक आयामो मे है। वह हमारे लौकिक जीवन मे प्रवेश करता है और उसमें परिवर्तन कर सकता है। भविष्यवाद की मृगतृष्णा से रूप-परिवर्तन के दृश्य की ओर कठोर आध्यात्मिक चढाई करने के लिए मिलेनियम की प्रलय वाली योजना आवश्यक मानसिक सीढी हो सकती है, किन्तु जब ऊँचाई पर पहुँच गये तब सीढी गिरा दी जा सकती है।

'फरीसी धर्मात्माओ ने हैसमोनियनों के शासन में इस संसार से स्वर्ग की ओर और भविष्य की ओर देखना सीख लिया था, और हेरोद के शासन में, विगत पीढ़ियो में जो कुछ राष्ट्रीय भावनाओं की धाराएँ थी वे बडी शक्ति से अन्धी दीवार से टकरा रही थीं और उन्हें जाने के लिए फरीसियों को दिखाये हुए मार्ग के अतिरिक्त कोई रास्ता न था। उसी जाति मे जो कठोर

१. इसी कारण साधारणतः 'मिलेनियम' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अभिप्राय है 'स्वर्ण युग।'

आवश्यकता के बोझ से दबी हुई थी, यह अलौकिक विश्वास, मसीहाई आशाएँ जिनका पोषण फरीसी लोगो में हुआ था, नयी शक्ति से प्रसारित और प्रचारित हुई। फरीसी धर्म की जो पुस्तकें उपलब्ध है—एनक, द साम्स आव सालोमन, दि अजम्पशन आव मोजेज—हमें बताती हैं कि इनके लेखकों के मन में क्या विचार थे। किन्तु वे उन बातों को नहीं बता सकती थी जो हम अपने धर्म-ग्रन्थों में पाते हैं। अर्थात् किस प्रकार ये विचार लोगो मे अच्छी तरह घुल-मिल गये। किस प्रकार आने वाले सम्राट्, 'अभिषिक्त सम्राट्,' 'दाऊद के पुत्र', किस प्रकार पुनर्जीवन की संकल्पना, दूसरा संसार, उन साधारण जातियों की साधारण मानसिक फरनिचर के अंग थे जिन पर सम्राट् के शब्द टँगे हुए थे····किन्तु····जिस ईसा को ईसाई पूजते थे इनमें से किसी रूप का अग नही था जो इन भविष्यत् के विचारो मे उदय हुआ था। उसमें सारे पुराने आदर्श, सारी पुरानी आशा मिल-जुलकर एक हो गयी थी।"

(१०) विराग और रूपान्तरण (डिटेचमेन्ट एण्ड ट्रान्सफिगरेशन)

भविष्यवाद और पुरातनवाद की समीक्षा से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि दोनो असफल हो जाते हैं क्योकि वे सासारिक समय-सरिता के ऊपर उठे बिना वर्तमान से पलायन करने की चेष्टा करते हैं। हमने देखा है कि भविष्यवाद के दिवालियेपन से उस रहस्य का आभास मिल जाता है जिसे हम रूपान्तरण कहते है, एक महान् ऐतिहासिक उदाहरण इस प्रकार का है भी। पुरातनवाद की विफलता द्वारा भी आध्यात्मिक आविष्कार सफलतापूर्वक हो सकता है। सम्भव है कि इस बात की सच्चाई का ज्ञान कि पुरातनवाद पर्याप्त नही है, ऐसी चुनौती हो सकती है कि विफल पुरातनवादी विपरीत दिशा में भविष्यवाद की ढाल पर फिसल जाय। इसके विकल्प मे ऐसा भी हो सकता है कि किसी नयी आध्यात्मिक दिशा मे मुडकर वह इस चुनौती का सामना स्वीकार करे। और उसकी सबसे कम श्रम-साध्य चेष्टा यह हो सकती है कि वह अपनी कुदान को, जो विनाश की ओर ले जा रही है, ऐसी दिशा मे बदल दे कि धरती पर गिरने की समस्या ही समाप्त हो जाय और वह सदा के लिए धरती को त्याग ही दे। यही विराग का दर्शन है, जिसे हमने विशेष टिप्पणी के बिना यहूदी विरागियों के उदाहरण मे बताया है।

पश्चिमी अनुसन्धानकर्ताओं के लिए इस दर्शन की सबसे परिचित व्याख्या 'लीव्ज फ्राम एस्टोइक फिलासोफर्स नोट बुक' से प्राप्त होती है जो एपिक्टिटस तथा मारकस आरीलियस से हमें मिली है। किन्तु यदि हम विराग के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहें तो हमे हेलेनी को छोड़कर भारतीय मार्गदर्शन की ओर जल्दी या देर में जाना पड़ेगा। जीनोकके शिष्य बहुत दूर तक इस विषय मे गये हैं किन्तु गौतम के शिष्यो को यह साहस हुआ कि विराग के अन्तिम तर्कसम्मत परिणाम आत्मोत्सर्ग तक ये पहुँचे। बौद्धिक उपलब्धि की दृष्टि से यह प्रभावशाली है, नैतिक उपलब्धि की दृष्टि से यह दुर्दम्य है। किन्तु इसका नैतिक परिणाम विकल कर देने वाला है, क्योंकि पूर्ण विराग दया को समाप्त कर देता है और इस कारण प्रेम को भी, उसी निष्ठुरता से जिस प्रकार वह सब अशिव आवेगों को त्याग देता है।

१. ई० बिवान : जेरुसलेम अंडर हाई प्रीस्ट्स, पृ० १५८ तथा १६२।

'उस मनुष्य को जिसकी गति भी प्रेम और इच्छा से रिक्त है, जिसके कर्म ज्ञान की अग्नि में भस्म हो गये है, उसी को बुद्धिमान् लोग विद्वान् कहते हैं। विद्वान् उनके लिए शोक नहीं करते जो मर गयें हैं न उनके लिए जो जीवित है।'[१]

भारतीय ऋषियों के मन मे हृदय की यही विरक्ति दर्शन का कठोर मर्म है। हेलेनी दार्शनिक भी स्वतन्त्र रूप से इसी परिणाम पर पहुँचे थे। एपिक्टिटस अपने शिष्यो को चेतनावनी देता है : 'यदि तुम अपने बच्चे को चूमते हो···तो इस कार्य मे अपनी कल्पना को बिना प्रतिबन्ध के मत व्यवहार मे लाओ और अपने आवेग को निरंकुश मत छोड़ दो। सच तो यह है कि इसमें कोई हानि नही है यदि जब चूमते हो तो बच्चे के कान मे कह दो 'कल तुम मर जाओगे'[२] और सेनेका भी यह कहने में सकोच नही करता कि—'दया मानसिक बीमारी है जो दूसरो के दुखों का दृश्य देखकर उमड़ती है, दूसरे शब्दो में उसकी परिभाषा यह कर सकते है कि यह निम्न-कोटि की आत्माओं का संक्रामक रोग है जो दूसरो को दुख में देखकर पकड़ लेता है, जब रोगी यह समझता है कि यह दुख उसे नही होना चाहिए। बुद्धिमान् लोग इस प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रसित नहीं होते।'[३]

तार्किक दृष्टि से यह परिणाम अनिवार्य है किन्तु साथ-ही-साथ नैतिक दृष्टि से असह्य है। विराग का दर्शन अपने ही कारण पराजित हो जाता है क्योंकि वह हममें जुगुप्सा उत्पन्न करता है। जिस समस्या का समाधान करने वह चलता है, उसका समाधान वह कर नही पाता क्योकि वह केवल मस्तिष्क से परामर्श करता है और हृदय का त्याग कर देता है, इस प्रकार इन दोनों को अलग कर देता है जिन्हे ईश्वर ने साथ रखा है। विराग का यह दर्शन रूपान्तरण के रहस्य से ढांकना होगा।

जब हम विघटन की उन्मुक्त राह के चौथे और अन्तिम मोड़ पर चलने को कमर कसते है, अस्वीकृति और उपहास की चिल्लाहट हमारे कानों में आती है। किन्तु हमे भयभीत नही होना चाहिए। क्योकि ये ऐसे दार्शनिको तथा भविष्यवादियो की ओर से आती हैं जो विराग की 'बौद्धिक दृष्टि' से विचार करने वाले है या राजनीतिक और आर्थिक भौतिकवाद के उत्साही लोग है, और हम पहले ही देख चुके है कि जो कोई भी सत्य हो, ये मिथ्या है।

'ईश्वर ने बुद्धिमानो को भ्रम मे डालने के लिए मूर्खतापूर्ण वस्तुएँ संसार मे बनायी है, और ईश्वर ने शक्तिशाली वस्तुओ को भ्रान्तिजनक बनाने के लिए दुर्बल वस्तुओं को बनाया है।'[४]

जो सत्यता हम व्यावहारिक ज्ञान से प्राप्त कर सकते हैं, उसे अन्तर्ज्ञान से भी प्राप्त कर सकते है। और उसके प्रकाश मे तथा उसकी शक्ति से हम भविष्यवादियो तथा दार्शनिको की अस्वीकृति का, ऐसे पथ-प्रदर्शकों के चरण चिह्नो से हटकर, वीरतापूर्वक सामना कर सकते है जो न बार कोकाबा है न, गौतम है।

१. भगवद्गीता, ४,१९ तथा २,११—(बारनट का अनुवाद)
२. एपिक्टिटस : डिसरटेशन्स, पुस्तक ३, अध्याय २४, ८५–८।
३. सेनेका : डी० क्लेमेन्शिया, पुस्तक २, अध्याय ५, ४–५।
४. कोर—१, २७।

'यहूदियों को एक चिह्न की आवश्यकता है और यूनानी बुद्धिवादी चाहते हैं, किन्तु हम शूली पर चढ़े ईसा का उपदेश करते हैं, जो यहूदियो के लिए रोड़ा है और यूनानियो के लिए मूर्खता ।'[१]

शूली पर चढ़े हुए ईसा भविष्यवादियों के लिए क्यों उलझन है, जो अपने लौकिक कार्यों के लिए ईश्वरीय सहायता का कोई भी चिह्न प्राप्त करने में सफल नही हुए ? और क्यो वह उन दार्शनिकों के लिए मूर्खता है, जिन्होने कभी वह बुद्धिमत्ता नही पायी जिसे वे खोजते हैं ?

शूली पर चढ़े ईसा दार्शनिक को इसलिए मूर्ख हैं क्योंकि दार्शनिक का उद्देश्य विराग है और वे इस बात को नही समझते कि कोई समझदार आदमी जब एक बार उस अवरुद्ध लक्ष्य पर पहुँच गया, तब इतना पतित कैसे हो सकता है कि उसे छोड़ दे जिसे इतने कठोर परिश्रम से उसने प्राप्त किया था । इसमे कौन बुद्धिमानी है कि पुनरागमन के लिए अलग हो जाय । और प्रबलतर युक्ति से—ऐसे ईश्वर की कल्पना से भ्रमित हो जायगा, जिसे इस असन्तोषजनक संसार से अलग हो जाने के लिए स्वयं कष्ट भी नही करना पड़ा क्योंकि वह अपने ईश्वरत्व के गुण के कारण उससे पूर्णतः स्वतन्त्र है फिर भी वह जान-बूझकर संसार में आता है और उन लोगो के लिए, जो उसकी ईश्वरीय प्रकृति में बहुत निम्नकोटि के हैं, अधिक-से-अधिक उस यातना को सहता है, जो ईश्वर या मनुष्य भोग सकता है । 'ईश्वर ससार को इतना प्यार करता है कि उसने अपने पैदा किये एक ही लड़के को उसे दे दिया ।' विराग ढूंढने वाले के विचार से यह मूर्खता की पराकाष्ठा है ।

'यदि पूर्ण अन्त में शान्ति है तो बुद्धिमान् मनुष्य का हृदय भय और इच्छाओ से स्वतन्त्र करने से क्या लाभ है, जिनके कारण वह बाहरी बातों पर निर्भर रहता है, यदि सैकड़ो रास्ते तुरत खोल दिये जायें जिनके द्वारा प्रेम और दया से उत्पन्न पीड़ा और अशान्ति उसके हृदय में प्रवाहित हो और इस प्रकार उसका हृदय चारो ओर के मनुष्यो के पीड़ित हृदयो से सम्बन्ध स्थापित कर ले तो क्या लाभ होगा । सैकड़ों रास्ते ? एक छेद सारी पीड़ा की धारा से हृदय को भर देने के लिए पर्याप्त है । किसी जहाज मे एक छेद छोड़ दीजिए, सारा सागर उसमें भर जायगा । मै समझता हूँ कि स्टोइक दार्शनिक ने पूरी सत्यता का अनुभव किया था जब उन्होने कहा कि यदि थोड़ा भी प्रेम और करुणा को हृदय में जाने दिया तो ऐसी वस्तु का प्रवेश कराते हो जिसकी मात्रा पर नियन्त्रण नही हो सकता और आन्तरिक शान्ति की आशा फिर छोड़ देनी होगी· ·ईसाइयों के आदर्श व्यक्ति को स्टोइक कभी बुद्धिमान् मनुष्य का उदाहरण नही मानेंगे ।'[२]

भविष्यवाद की राह में शूली की घटना बड़ी अड़चन है क्योंकि शूली पर की मृत्यु ईसा के इस कथन की पुष्टि करती है कि मेरा राज्य इस संसार का नहीं है । भविष्यवादी को जिस चिह्न की आवश्यकता है वह ऐसे राज्य की घोषणा है जिसमें सासारिक सफलता होनी चाहिए, नही तो वह बेकार है । उसके हिसाब से मसीहा का काम वह होना चाहिए जो ड्युटेरो-इसाया ने खुसरो को सौंपा था और बाद के यहूदी भविष्यवादियों ने उस समय जूडास या थ्युडास को

१. कोर—१, २२-३ ।
२. ई० आर० बेवन : स्टोइक्स एण्ड स्केप्टिक्स, पृ० ६६-७० ।

सौंपा था, कोई जेरूब-बबेल या साइमन मक्काबियस या साइमन बार-कोकाबा को जो सौंपा गया था।

'ईश्वर खुसुरो से, जो उसका अभिषिक्त सम्राट् है और जिसका दाहिना हाथ उसने पकड़ा है, कहता है, 'मैं तुम्हारे सामने जाऊँगा और टेढे स्थानों को सीधा करूँगा। मै पीतल के फाटकों को तोड़ डालूँगा, और लोहे के छड़ों को काट डालूँगा, अन्धकार में जो खजाने रखे हैं तुम्हें मै उनको दूँगा और छिपी सम्पत्ति मै तुम्हारे हवाले करूँगा।'[१]

मसीहा की यह प्रामाणिक भविष्यवादी संकल्पना का, उस बन्दी के शब्दों से कैसे मेल बैठ सकता है जिसने पाइलट से कहा था, 'तुम कहते हो कि मै सम्राट् हूँ' और तब अपने उस राजकीय मिशन का विलक्षण विवरण बताया जिसके लिए उसका दावा था कि ईश्वर ने मुझे भेजा है। 'इसलिए पैदा हुआ था, और इस बात के लिए मै ससार मे आया कि सचाई की बात कहूँ।'

इन व्यग्र कर देने वाली बातों पर सम्भवत. ध्यान न दिया जाय परन्तु अपराधी की मृत्यु का निराकरण नहीं हो सकता और न उसे संशोधित किया जा सकता है और पीटर की कठोर परीक्षा से पता चलता है कि यह अड़चन कितनी दारुण थी।

ईश्वर का राज्य, ईसा जिसका सम्राट् है, किसी ऐसे राज्य से नही नापा जा सकता जिसे ऐसे मसीहा ने संस्थापित किया हो जिसकी कल्पना अकामीनियाई विश्व विजेता ने की हो जो यहूदी बन गया हो और भविष्य में जिसकी कल्पना की हो। जहाँ तक यह महान् देवता समय-आयाम के अन्दर आता है, वह भविष्य का स्वप्न नही है, आध्यात्मिक वास्तविकता है जो वर्तमान में व्याप्त है। यदि हम पूछे कि पृथ्वी पर किस प्रकार उसकी इच्छा की पूर्ति होती है, जैसे स्वर्ग मे होती है, तो उत्तर धर्मशास्त्र की तकनीकी भाषा में दिया गया है। वह यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक है, इसलिए इस संसार में और उसमे रहने वाली प्रत्येक आत्मा में वह व्याप्त हो सकता है और स्वर्ग में भी उसका अनुभवातीत अस्तित्व है। ईसाई धर्म की ईश्वर की संकल्पना में उसका अनुभवातीत रूप ईश्वर-पिता का है, और उसका व्याप्त रूप पवित्र आत्मा का है, किन्तु ईसाई धर्म का सबसे विशिष्ट और प्रामाणिक लक्षण यह है कि ईश्वर द्वैत नही है, त्रिगुट मे एक है। और उसके 'ईश्वर-पुत्र' के रूप मे एक व्यक्ति मे दोनो रूप मिले हुए हैं। और इस रहस्य के कारण मनुष्य का हृदय उसके निकट पहुँच जाता है किन्तु मनुष्य की बुद्धि से वह परे है। ईसामसीह के व्यक्ति के रूप में—जो ईश्वर भी है और मानव भी. ईश्वरी समाज और सांसारिक समाज में वह समान सदस्य है, जो इस संसार में सर्वहारा की कोटि में जन्म लेता है, अपराधी की मौत मरता है, जब कि दूसरे संसार में वह ईश्वर के राज्य का सम्राट् है, वह सम्राट् जो स्वयं ईश्वर है।

किन्तु ये दोनों प्रकृतियाँ—एक ईश्वरीय और दूसरी मानवी—एक व्यक्ति में रह सकती है? ईसाई धर्म पिताओ ने हेलेनी दार्शनिकों की तकनीकी भाषा में इसका उत्तर विभिन्न मतों को बताकर दिया है। किन्तु केवल यही दार्शनिक ढंग इसका उत्तर पाने का नहीं है। हम दूसरी अभिधारणा से आरम्भ कर सकते हैं कि ईश्वरीय प्रकृति जहाँ तक वह हमारे लिए ग्राह्य

१. इसाया, १४, १–३।

है, कुछ-कुछ हमारी अपनी प्रकृति से मिलती हो। और यदि हम एक विशेष आध्यात्मिक शक्ति की ओर देखें, जिसे हम जानते हैं कि हममें है और जिसे हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि ईश्वर में भी है—क्योंकि यदि यह शक्ति ईश्वर में न होती और हममें होती, तो ईश्वर हमसे हीन होता—तो वह पहली शक्ति जिसे हम मनुष्य और ईश्वर में समान रूप से पाते हैं, और जिसे दार्शनिक नष्ट करना चाहते हैं, प्रेम की शक्ति है। यह पत्थर जिसका जीनो और गौतम ने तिरस्कार कर दिया नयी बाइबिल के मन्दिर की कोण-शिला का शीर्ष है।

(११) पुनर्जन्म—पुनरागमन

हमने जीवन के चार प्रयोगात्मक ढंगो का सर्वेक्षण पूरा किया है जो ऐसे प्रयत्न हो सकते है जो किसी विकासोन्मुख सभ्यता को साधारण और सरल जीवन के व्यावहारिक विकल्प भी हो सकते है। जब सरल जीवन की यह राह निर्दयतापूर्वक सामाजिक पतन के उथल-पुथल के कारण बन्द हो जाती है, तब इन राहों में इधर-उधर गलियाँ मिलती है जिनकी ओर समाज मुड सकता है। हमने यह भी देखा कि इनमें तीन बन्द गलियाँ है और केवल एक जिसे हमने रूपान्तरण कहा है और ईसाई धर्म के उदाहरण द्वारा बताया है, वही आगे ले जा सकती है। अब हम उस सकल्पना की ओर लौटते हैं जिसका प्रयोग हमने इस अध्ययन के आरम्भ मे किया था। उसके अनुसार हम कह सकते है कि भविष्यवाद और पुरातनवाद दोनों के विपरीत रूपान्तर और विराग दोनो कार्यक्षेत्र के स्थानान्तरण के उदाहरण है, सम्पूर्ण से सूक्ष्म की ओर जो 'अलौकिकता' (इथीरियलाइजेशन) के आध्यात्मिक स्वरूप मे प्रकट होता है। यदि हमारा विश्वास ठीक है कि रूपान्तरता और अलौकिकता विकास के चिह्न है और मानवी विकास का प्रत्येक उदाहरण मे सामाजिक और वैयक्तिक पक्ष होगा और यदि हमे यह मानने को भी बाध्य होना पडे कि जिस समाज मे विराग और रूपान्तर की क्रिया होती है वह उन समाजो में नही है जिन्हे हमने सभ्य समाज कहा है—यह विचार करके कि उस प्रकार का पतनोन्मुख समाज विनाश का नगर है, जहाँ ये दोनो क्रियाएँ पलायन के प्रयत्न हैं—हम इसी परिणाम पर पहुँच सकते है विराग और रूपान्तर के आन्दोलन—किसी दूसरे समाज या समाजो में पाये जाते हैं।

उस समाज का वर्णन करने मे जिसमें ये दोनो क्रियाएँ चलती है हम 'एक' का प्रयोग करे कि 'दो' का ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हम दूसरा प्रश्न पूछेंगे। सामाजिक विकास के शब्दो में विराग और रूपान्तर में क्या अन्तर है ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि विराग अलग हो जाने की क्रिया है और रूपान्तर अलगाव और पुनरागमन की सयुक्त क्रिया है। इस सयुक्त क्रिया का उदाहरण ईसा की जीवनी है जो गैलिली में धर्म प्रचार के पहले अन्तर्धान हो गये थे, सन्त पाल के जीवन का भी उदाहरण है, जो अपने महत्त्वपूर्ण यात्रा के पहले जिसमे वे प्रादेशिक सीरियाई जन्मभूमि से हेलेनी संसार के केन्द्र में नया धर्म ले गये, तीन साल तक अरब मे रहे। यदि ईसाई धर्म के संस्थापक और उसके मिशनरी शिष्य विराग के दर्शन को मानने वाले होते तो इस संसार के अपने शेष जीवन को जंगल में ही बिताते। विराग के दर्शन की सीमा इस बात में है कि वह यह नही देखता कि निर्वाण आत्मा की यात्रा का अन्त नही है, बल्कि वह रास्ते का एक स्टेशन है। अन्त ईश्वर का राज्य है और यह सर्वव्यापी चाहता है कि उसके नागरिक यहाँ इस संसार मे उसकी सेवा करें।

चीनी शब्दो में, जिनका प्रयोग हमने इस अध्ययन के आरम्भ में प्रयोग किया था, किसी

सभ्यता के विघटन का पूरा चक्र यिन और यांग के एक दूसरे के बाद आवागमन से होता है। पहली लय में विनाशकार यांग क्रिया (विघटन) से यिन अवस्था (विराग) आती है। किन्तु लय यहाँ शान्त नही हो जाती। वह फिर सर्जनात्मक यांग क्रिया (रूपान्तर) की ओर चलती है। इस विशेष रूप में यिन और यांग की यह दोहरी गति अलगाव और पुनरागमन की साधारण क्रिया है जिसे हमने इस अध्ययन के आरम्भ में प्रयोग किया था। और उस समय हमने इसे भेद और पुर्नजन्म कहा था।

पुनर्जन्म के लिए यूनानी शब्द 'पैलिजेनेशिया' है। इसका अर्थ है 'बार-बार जन्म होना, और इस शब्द मे अनेकार्थता है। क्या इसका अभिप्राय यह है कि ऐसी वस्तु का फिर से जन्म जिसका पहले जन्म हो चुका है : जैसे किसी असाध्य विनष्ट सभ्यता के स्थान पर उसी जाति की दूसरी सभ्यता का आगमन? हमारा यह अभिप्राय नही हो सकता क्योंकि यह रूपान्तर का उद्देश्य नही है। यह उस क्रिया का उद्देश्य है जो समय-सरिता में सीमित है। वह न पुरातनवाद है न भविष्यवाद, जिस रूप मे हम इन शब्दो का प्रयोग करते आये है वह क्रिया एक ही शृखला की है। इस अर्थ में पुनर्जन्म अस्तित्व का चक्र होगा, जिसे बौद्ध दर्शन स्वीकार करता है और अलग होकर निर्वाण को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। परन्तु पुनर्जन्म का अर्थ निर्वाण प्राप्त करना नही हो सकता क्योकि जिस प्रक्रिया से यह नकारात्मक स्थिति आती है उसे हम 'जन्म' नही कह सकते।

किन्तु यदि पुनर्जन्म का अर्थ निर्वाण नहीं है तो उसका यही अर्थ हो सकता है कि एक पार-लौकिक स्थिति प्राप्त हो जिसे जन्म का रूपक दिया जा सकता है, क्योंकि यह जीवन की निश्चित स्थिति है, यद्यपि इस संसार के जीवन से उसका आध्यात्मिक आयाम ऊँचा है। यही वह पुनर्जन्म है जिसके बारे मे ईसा ने निकोडेमस से कहा था :

'जबतक कि मनुष्य फिर से पैदा न हो, ईश्वर का राज्य वह नही देख सकता।'

और जिसके सम्बन्ध मे दूसरे स्थान पर अपने शारीरिक जन्म मे कहता है—'मै इसलिए आया हूँ कि लोगो को जीवन प्राप्त हो, और उन्हे प्रचुर मात्रा में मिले।'

जिस देवगीत को एक बार कविता की देवी ने एसक्रा के चरवाहे हेसिओद को सुनाया था, जब हेलेनी सभ्यता का फूल खिल रहा था, उसकी प्रतिध्वनि दूसरे दैवी गीत मे सुनायी पड़ी जिसे देवदूतो ने बैतलहम के चरवाहो को सुनाया था जब पतनोन्मुख हेलेनी सभ्यता अपने संकटकाल में अन्तिम पीड़ा झेल रही थी और जब उस पर सार्वभौम राज्य की मूर्छा आ रही थी। जिस जन्म का गीत देवदूत उस समय गा रहे थे वह यूनान के पुनर्जन्म का नही था, और न हेलेनी जाति के दूसरे समाजो के जन्म का। वह ईश्वर के राज्य के सम्राट् के स-शरीर जन्म का गीत था।

२०. विघटन होने वाले समाज और व्यक्तियों का सम्बन्ध

(१) सर्जनात्मक प्रतिभा त्राता के रूप में

सभ्यताओं और व्यक्तियो के सम्बन्ध की समस्या पर हमने इस अध्ययन में पहले विचार किया है और हम इस परिणाम पर पहुँचे कि जिस संस्था को हम समाज कहते हैं वह अनेक व्यक्तियों के समान कार्यों का क्षेत्र है, और यह भी, कि कार्य का स्रोत सदा व्यक्ति है जो एक दृष्टि से प्रतिभा-सम्पन्न अतिमानव है, कि प्रतिभा वाला व्यक्ति दूसरी जीवित आत्माओं की भाँति उन कार्यों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करता है जिसका प्रभाव उसके साथियों पर पड़ता है, कि किसी समाज में सर्जनात्मक व्यक्ति थोडे अल्पसंख्यक होते हैं, प्रतिभाओ का कार्य साधारण आत्माओ को कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित करता है किन्तु साधारणतः दूसरे प्रकार से जो सामाजिक अभ्यास होता है और जिसमे अनुकरण करने की शक्ति का प्रयोग होता है। ये असर्जनात्मक साधारण जन होते हैं और 'यन्त्रवत्' विकासोन्मुख होते है। यह विकास वे अपनी प्रेरणा से नही कर सकते थे। इन परिणामो पर हम विकास का विश्लेषण करते हुए पहुँचे और साधारणत. किसी समाज की सब स्थितियो मे समाज तथा व्यक्ति की यह क्रिया-प्रतिक्रिया ठीक-ठीक उतरती है। इन पारस्परिक क्रियाओं के ब्योरे में क्या अन्तर हमे मिलेगा जब हम उस समाज पर विचार करेंगे जिसका पतन हो चुका है और विघटन हो रहा है ?

वह सर्जनात्मक अल्पसंख्या जिसमें से विकास की स्थिति में सर्जनात्मक व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ था, अब सर्जनात्मक नही रह जाती और 'सुषुप्त' हो जाती है किन्तु सर्वहारा का समाज-विच्छेद जो विघटन का प्रमुख चिह्न है, सर्जनात्मक व्यक्तियो द्वारा पूरा हो गया। इन सर्जनात्मक व्यक्तियो के लिए विरोध के सगठन को छोड़कर कोई कार्य करने की गुजाइश नहीं रह जाती और यह असर्जनात्मक शक्तियो के लिए दु स्वप्न की भाँति डरावना होता है। इस प्रकार विकास से विघटन के काल में सर्जनात्मक चिनगारी बुझ नही जाती। सर्जनात्मक व्यक्तियों का उदय होता रहता है और अपनी सर्जनात्मक शक्ति के गुणो से वे नेतृत्व ग्रहण किया करते हैं। किन्तु अब वे (विघटन के समय) अपना पुराना कार्य नये विशेषाधिकार से करते है। विकासोन्मुख सभ्यता में सर्जक को विजयी की भूमिका अदा करनी पड़ती है जो चुनौती का सामना विजेता बनकर करती है, विघटित होने वाली सभ्यता में उसे त्राता की भूमिका सम्पन्न करनी पड़ती है, जो उस समाज की रक्षा के लिए आता है जो चुनौती का सामना करने में असमर्थ रहा, क्योकि अल्पसंख्या सर्जनशील नही रह गयी, और चुनौती ने उसकी स्थिति और भी बदतर कर दी।

ऐसे त्राता उतने ढंग के होगे जितने प्रकार के उपायों का वे सामाजिक रोग को दूर करने में प्रयोग करेंगे। कुछ विघटित होने वाले समाज के ऐसे त्राता होंगे जो वर्तमान से निराश नहीं होंगे और ऐसी चेष्टा करेगे कि दीन निराशापूर्ण लोगों को आगे ले चलें और पराजय को विजय

में बदलें। ये भावी त्राता शक्तिशाली अल्पसंख्यक लोग होंगे और उन सबकी विशेषता यह होगी कि अन्त में वे रक्षा करने मे विफल होगे। ऐसे भी त्राता होंगे जो विघटन वाले समाज 'में से' होंगे जो उन चार सम्भावित राहों में पलायन करके, जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं, रक्षा का मार्ग खोजेंगे। जो त्राता इन चार राहों पर चलकर समाज की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे वे आपस में इस बात पर सहमत होंगे कि वर्तमान परिस्थिति की रक्षा नही हो सकती। पुरातनवादी त्राता काल्पनिक प्राचीन की फिर से रचना करेगा। भविष्यवादी त्राता काल्पनिक भविष्य में कूदने का प्रयत्न करेगा। जो त्राता विराग की राह बतायेगा राजा के आवरण में दार्शनिक होकर आयेगा, और जो त्राता रूपान्तरवाद की राह दिखायेगा वह मनुष्य के रूप में देवता का अवतार बनकर प्रकट होगा।

(२) तलवार से सज्जित त्राता

विघटित होने वाले समाज 'का' भावी त्राता निश्चय रूप से तलवार से सज्जित होगा। तलवार खींची हुई हो या म्यान मे हो। वह अपने चारों ओर लोगो को तलवार के घाट उतारता रहा हो या उसने तलवार को म्यान मे रखकर कही भीतर रख दिया हो, वह राज करता हो और उसने वैरियो का पूर्ण रूप से दमन कर दिया हो। वह कोई हरकुलीज हो, कोई ज़ीयूस हो, कोई दाऊद हो या कोई सोलोमन हो। और यद्यपि कोई दाऊद या हरकुलीज़, जो अपने श्रम को छोड़कर कभी आराम नही करता और कार्य में रत होता हुआ गत होता है, वैभवपूर्ण सोलोमन और प्रतापी ज़ीयूस से अधिक रोमान्टिक देख पड़ता हो, हरकुलीज़ के परिश्रम और दाऊद के युद्ध बेकार के परिश्रम होंगे यदि ज़ीयूस की शान्ति और सोलोमन की समृद्धि उनका उद्देश्य न हो। तलवार का प्रयोग इस आशा से किया जाता है कि उससे भला होगा और भविष्य मे इसकी आवश्यकता न होगी किन्तु यह आशा छलना है। 'जो लोग तलवार उठाते है, सब तलवार के साथ नष्ट हो जायेंगे' और उस त्राता के, जिसने उस राज्य की घोषणा की जो इस ससार का नही है, मत का खेदजनक समर्थन उन्नीसवी शती के पश्चिमी राजमर्मज्ञो में से एक बड़े मानव द्वेषी यथार्थवादी ने किया। बाइबिल को अपने समय और देश की भाषा में अनुवाद करते हुए उसने कहा, 'सगीनो से एक काम आप नही कर सकते, उन पर बैठ नही सकते' अहिंसावादी सच्चे दिल से अपनी हिंसा पर खेद भी प्रकट करे और उससे लाभ भी उठाये, दोनो नही सम्भव है।

तलवार द्वारा रक्षा करने वाले वे सैनिक या राजा रहे हैं जिन्होने सार्वभौम राज्यों को सस्थापित करने की चेष्टा की है अथवा संस्थापित करने मे सफल हुए है या उन्हें पुन: प्रतिष्ठित करने में सफल हुए हैं और चूँकि सकटकाल से सार्वभौम राज्य की स्थापना में जितना समय लगता है उसमें इतनी अधिक तात्कालिक शाति मिल जाती है कि ऐसे राज्यों के संस्थापक देवता की भाँति पूजे गये है। किन्तु सार्वभौम राज, जो भी हो, अस्थायी है और यदि असाधारण शक्ति से वे अपने स्वाभाविक समय से अधिक जीवित भी रहे तो इस अस्वाभाविक दीर्घ जीवन का बदला उन्हें इस प्रकार चुकाना पड़ता है कि वे सामाजिक पाप बन जाते हैं और इस रूप में वे वैसे ही अनिष्टकारी हो जाते हैं जितना उनके पहले का संकट का काल या वह अन्तःकाल जो पतन के बाद होता है।

सच्ची बात यह है कि जिस तलवार ने एक बार रक्तपान कर लिया है उसे पुनः रक्तपान से रोका नहीं जा सकता, जिस प्रकार शेर जब एक बार मनुष्य का मांस चख लेता है वह मनुष्य-भक्षी हो जाता है । मनुष्य-भक्षी शेर एक दिन मरेगा, यदि गोली से बच गया तो खाल के रोग से मरेगा। किन्तु यदि शेर अपने विनाश को पहले से जान भी ले तब भी वह अपनी हत्याकारी भूख को रोक नहीं सकता । इसी प्रकार वह समाज है जो अपनी मुक्ति तलवार के माध्यम से खोजता है । उसके नेता अपने हत्याकारी कार्यों के लिए दुख प्रकट कर सकते है, सीजर की भाँति अपने बैरियों पर दया दिखा सकते है, आगस्टस की भाँति अपनी सेना को विघटित कर सकते है और जब दुखपूर्वक अपनी तलवार को अलग छिपाकर रख देते है, पूरी नेकनीयती से निश्चय करते है कि फिर कभी हम उसे न उठायेंगे । केवल निश्चित कल्याण के लिए और उन अपराधियों को शमन करने के लिए हाथ में लेंगे जो अब भी सीमा पर स्वतन्त्रतापूर्वक घूम रहे है या उन बर्बरो के विरुद्ध जो बाहर अन्धकार मे अनुशासनहीन बने बैठे है । यद्यपि यह देखने मे सुन्दर सार्वजनिक शान्ति, गडी हुई तलवारो की क्रूर नीव । पर सौ-दो सौ साल तक चले, कन्तु शीघ्र या विलम्ब से समय उनका विनाश कर देगा ।

क्या सार्वभौम राज्य का दैवी शासक अधिक-से-अधिक विजय की अतृप्त लालसा को शान्त कर सकता है, जो खुसरू के लिए घातक थी ? और यदि वह इस लालच पर नियन्त्रण नही कर सकता तो क्या वह वरजिल के उपदेश के अनुसार कार्य कर सकता है ? जब हम इन दोनों प्रकारो से उसके कार्यों की परीक्षा करते है तब वह बहुत दिनो तक अपने निश्चयो पर डटे रहने मे असफल हो जाता है ।

यदि पहले हम उस संघर्ष पर विचार करे जो सार्वभौम राज्य तथा उसकी सीमा के बाहर के लोगो के प्रति विस्तार की नीति और अनाक्रमण की नीति के विकल्प में होती है तो हमें चीनी उदाहरण से आरम्भ करना चाहिए । क्योंकि तलवार को म्यान में रखने का सबसे प्रभावकारी उदाहरण त्सिन शें हाग टी का है, जिसने यूरेशियन स्टेप की सीमा पर महान् दीवार बनवायी । किन्तु उसका सुन्दर निश्चय कि यूरेशियन बर्रे के छत्ते को न छेडा जाय उसकी मृत्यु के सौ साल के पहले ही टूट गया, जब उसके हैन उत्तराधिकारी वूती ने 'आगे बढ़ने वाली नीति' अपनायी । हेलेनी सार्वभौम राज्य में आगस्टस की स्थापित नर्मी की नीति को ट्राजन ने तोड़ा, जब उसने पारथियन साम्राज्य को विजय करने की चेष्टा की । फरात से लेकर जेगरोस पहाड तक और फारस की खाडी के सिरे तक के अस्थायी बढाव का मूल्य यह हुआ कि रोमन साम्राज्य के साधनों पर बडा बोझ पड़ गया और ट्राजन की तलवार ने जो विरासत अपने उत्तराधिकारी हैड्रियन को छोडी थी उसे चुकाने में उसकी अपनी सारी बुद्धि और योग्यता का प्रयोग करना पड़ा । हैड्रियन ने अपने पूर्वज के सारे विजयी प्रदेशों को खाली कर दिया, किन्तु वह केवल धरती को युद्ध के पहले की स्थिति में ला सका । राजनीतिक स्थिति वह न आ सकी ।

उसमानिया साम्राज्य के इतिहास में मुहम्मद द कांकरर (१४५१–८१ ई०) ने सार्वभौम इस्लामी राज्य की लिप्सा ऐतिहासिक परम्परावादी ईसाई राज्य की सीमा तक रखी, किन्तु रूस को उसमें नही मिलाया और पड़ोसी पश्चिमी ईसाई राज्य को तथा ईरान को अपने राज्य में मिलाने के लालच का संवरण किया । किन्तु उसके उत्तराधिकारी सलीम द ग्रिम (१५१२–२० ई०) ने मुहम्मद के एशिया के त्याग की नीति को छोड़ दिया और इसका उत्तराधिकारी सुलेमान

(१५२०-६६ ई०) और आगे बढ़ा और उस नीति को तोड़कर यूरोप की ओर बढ़कर उसने भयंकर भूल की। परिणाम यह हुआ कि इस समय से उसमानिया शक्ति दो सीमाओं पर युद्ध की चक्की में पिसने लगी। उसे ऐसे बैरियों का सामना करना पड़ा जिन्हें उसमानली के वंशज रणक्षेत्र में तो हरा सकते थे, किन्तु शान्त नही कर सकते थे। यह विकृति उसमानी राजनीति में इतनी गहरी घुस गयी थी कि सुलेमान की मृत्यु के बाद के पतन पर भी मुहम्मद की संयम की नीति की ओर ये लोग नहीं घूमे। उसमानिया साम्राज्य की बिखरी शक्ति को कोप्रोल्यूस ने एकत्र ही किया था कि कारा मुस्तफा ने उसे फ्रैंकों से नया युद्ध करके नष्ट कर दिया। उसका उद्देश्य उसमानिया साम्राज्य की सीमा को राइन तक बढ़ाना था। यद्यपि वह इस उद्देश्य को पूरा नही कर सका, कारा मुस्तफा ने वियना पर घेरा डालकर सुलेमान के असाधारण कार्य की नकल की। किन्तु सन् १५२९ के समान सन् १६८२–३ में भी पश्चिमी ईसाई समाज के डैन्यूबी कवच के स्वामी लोहे के चने हो गये जिन्हे उसमानिया सेना चबा नही सकी। इस दूसरी बार उसमानली के वंशज वियना से सुरक्षित होकर नही लौटे। इस दूसरे आक्रमण के परिणामस्वरूप पश्चिम से बदले मे बराबर १६८३ से १९२२ तक आक्रमण होते रहे जिन्हे रोकने की कोई वास्तविक चेष्टा नहीं की गयी और इस अन्तिम तारीख तक उसमानलियो का सारा साम्राज्य छिन गया और एक बार फिर वे अपने निवास केवल अनातोलिया में रह गये।

इस प्रकार पश्चिमी ईसाई जगत् के बर्रे के छत्ते को मूर्खता से छेड़कर अपने पूर्वज सुलेमान के समान कारा मुस्तफा ने वही क्लासिकी भूल की जो जरक्सीज ने की थी जब उसने यूरोपीय महाद्वीप मे यूनान पर आक्रमण किया और इस प्रकार हेलेनियो को जवाबी आक्रमण के लिए उत्तेजित किया जिन्होंने अकामीनियाई साम्राज्य से एशिया के उसके यूनानी अश को छीन लिया और जिससे उस साम्राज्य का भी विनाश हो गया। थेमिस्टोक्लीज के आरम्भ किये हुए इस विनाश के कार्य को सिकन्दर महान् ने पूरा किया। हिन्दू ससार के इतिहास मे औरगजेब के रूप मे (१६५९–१७०७) जरक्सीज उत्पन्न हुआ जिसने सेना के बलपर महाराष्ट्रो पर अपना अधिकार बढ़ाना चाहा, जिसने महाराष्ट्रो को जवाबी आक्रमण करने के लिए विवश किया। उसके परिणामस्वरूप औरंगजेब के उत्तराधिकारियो का अधिकार हिन्दुस्तान के मैदान मे क्षीण हो गया।

तलवार को म्यान मे रखने की क्षमता की दो परीक्षाओं को हमने देखा कि सार्वभौम राज्य के शासक का कार्य-कौशल सुन्दर नही है। अब हम सीमा के बाहर के लोगो के प्रति अनाक्रमण की नीति को छोड़कर दूसरी परीक्षा पर विचार करे जो देश के अन्दर के लोगो पर उदारता की नीति है। हम देखें कि इस दूसरी परीक्षा में भी ऐसे शासक सफल नही होते।

उदाहरण के लिए रोमन साम्राज्य की सरकार ने यहूदियो के प्रति उदारता दिखाने का विचार किया और यहूदी छेड़-छाड़ पर भी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे, किन्तु यह उदारता उस अधिक कठोर नैतिक कार्य के बराबर नही थी कि यहूदी अपधर्म (हेरेसी) के प्रति भी सहिष्णुता दिखायी जाय, जिस अपधर्म में वे हेलेनी संसार को परिवर्तित कर रहे थे। ईसाई समाज में जो बात रोमन शासन को असह्य थी वह यह कि वह शासन के इस अधिकार को स्वीकार करने के लिए तैयार नही था कि वे अपनी प्रजा को अपनी आत्मा के विरुद्ध करने को भी विवश कर सकते हैं। ईसाई लोग तलवार की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे और

अन्त में ईसाई शहीदों की आत्मा ने रोमन तलवार पर विजय पायी जिस पर टरटूलियन ने विजयपूर्ण गर्व से कहा था कि ईसाई रक्त ईसाइयों का बीज है ।

रोमनों के समान आकेमीनियाइयो ने प्रजा के मतानुसार शासन करने का सिद्धान्त बनाया और अपनी नीति मे केवल अंशतः सफल रहे । फोइनीशियनो और यहूदियों की आस्था प्राप्त करने मे तो वे सफल हुए किन्तु मिस्री या बैबिलोनियो को वे सन्तुष्ट न कर सके । उसमानलियो को भी उनकी रिआया को सन्तुष्ट करने मे सफलता नही प्राप्त हुई । यद्यपि उन्होंने मिल्लत प्रणाली मे बहुत सांस्कृतिक तथा नागरिक स्वतन्त्रता भी दे रखी थी । इस सैद्धान्तिक स्वतन्त्रता को उस उद्दण्डता ने नष्ट कर दिया जिससे उसका प्रयोग होता था । ज्योही उसमानिया साम्राज्य की कही-कही पराजय हुई, रिआया ने अपना विरोध आरम्भ कर दिया और यही कारण था कि सलीम द ग्रिम के उत्तराधिकारियों ने कहा (यदि यह कहानी सच है) कि दुख है कि सलीम को उसके प्रधान मन्त्री तथा शेखुलइस्लाम ने प्रजा के बहुसख्यक परम्परावादी ईसाइयो को नष्ट करने से रोक दिया, जैसा कि उसने इमामी शियाई समुदाय को सचमुच नष्ट कर दिया था । भारत मे मुगल राज के इतिहास में हिन्दू धर्म के प्रति अकबर ने जो उदारता की नीति साम्राज्य-वाद के रहस्य के रूप मे अपने वंशजो को दी थी उसे औरंगजेब ने त्याग दिया । इस प्रवृत्ति के कारण साम्राज्य का विनाश हुआ ।

इन उदाहरणो से हमारा परिणाम और दृढ़ होता है कि तलवार को साथ लिये त्राता रक्षा नही कर सकता ।

(३) समय-मशीन के लिए त्राता

'द टाइम मशीन' एच० जा० वेल्स की एक अर्ध-वैज्ञानिक पुस्तक का नाम है । उस समय इस बात की जानकारी हो गयी थी कि काल चौथा आयाम है । श्री वेल्स के उपन्यास का नायक एक ऐसी मोटरकार—उन दिनो यह भी नयी चीज थी—का आविष्कार करता है जो इच्छानुसार देश-काल मे आगे और पीछे जा सकती है । इस आविष्कृत गाड़ी पर ससार के इतिहास के गत कई कालो मे वह क्रम से यात्रा करता है और सबसे अन्तिम को छोड़कर वह लौटकर आता है और यात्रा की कथा बताता है । वेल्स की यह काल्पनिक कहानी उन ऐतिहा-सिक असाधारण शक्तियो का रूपक है जो समाज की वर्तमान अवस्था और रुग्ण स्थिति को असाध्य समझकर आदर्श प्राचीन मे लौटकर अथवा आदर्श भविष्य मे जाकर उद्धार करना चाहते हैं । हम इस परिस्थिति पर अधिक विचार नही करना चाहते, क्योंकि हम इसका विश्लेषण कर चुके है और पुरातनवाद तथा भविष्यवाद दोनो की निरर्थकता सिद्ध कर चुके हैं । एक शब्द मे ये टाइम-मशीनें—वेल्स की कार के रूप में नही, जिसमे एक यात्री जाता है, बल्कि सारे समाज के सर्ववाहन (आम्नीबस) के रूप मे—कार्य नही कर सकती और इस विफलता के कारण भावी त्राता अपने टाइम-मशीन को अलग छोड़ देता है और तलवार लेता है और अपने को तिरस्कृत करके निराशा में, समर्पित कर देता है, जो चुपचाप बैठा रहता है कि तलवार वाले त्राता को वशीभूत कर ले, जिनके बारे मे हम अध्ययन कर चुके है ।

पश्चिमी जगत् मे ईसा की अठारहवी शती मे पुरातनवाद के सिद्धान्त को रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कट्रेस्ट' के पहले वाक्य मे रख दिया है : 'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है, किन्तु बराबर जंजोर में बँधा रहता है ।' रूसो का सबसे विख्यात शिष्य रोब्सपीयर था, जो कहा जाता

है, सन् १७९३–४ में 'भीषण राज्य' का मुख्य नेता था। सरल सनकी प्रोफेसरों ने जिन्होंने ईसा की उन्नीसवी शती को मूर्तिपूजक 'नारडिक' प्रजाति को आदर्श बनाने का प्रचार किया वे हमारे समय की नाज़ी विभीषिका के उत्तरदायित्व से अलग नही हो सकते। हमने देखा है कि पुरातनवादी आन्दोलन का शान्तिप्रिय नेता किस प्रकार हिंसक आक्रमणकारी के लिए रास्ता बनाकर अपने ही उद्देश्यो को विफल कर देता है, जैसे टाइबीरयस ग्रैकस ने अपने भाई गेयस का आवाहन किया और जिससे क्रान्ति की शती आ गयी।

पुरातनवाद और भविष्यवाद का अन्तर उतना ही स्पष्ट मालूम पडता है जो भूत कल और आगामी कल मे। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि किसी आन्दोलन को या त्राता को किस श्रेणी मे रखा जाय क्योकि पुरातनवाद की पद्धति है कि वह इस भ्रम मे कि इतिहास में प्राचीनता आ सकती है, भविष्यवाद मे कूद पडता है। परन्तु स्पष्टत. ऐसा हो नही सकता। क्योंकि यदि आप आगे बढ जायं और लौट आये—यदि आप लौट आ सकते है—तो जिस स्थान पर आप लौट कर आते है वह भिन्न स्थान मिलेगा। रूसो के शिष्य 'प्रकृति की अवस्था' को आदर्श मानकर, या 'भद्र जगली' की सराहना करके, या 'कला और विज्ञान' की भर्त्सना करके क्रान्ति लाने मे शीघ्रता ला सकते है किन्तु प्रबुद्ध भविष्यवादी क्रान्तिकारी, जैसे कोन्डोरसेट, जिन्हे 'प्रगति' के सिद्धान्तो से प्रेरणा मिली थी, निश्चय ही अधिक दूरदर्शी थे। पुरातनवादी आन्दोलन का परिणाम सदा नया प्रयाण होगा। पुरातनवाद के सभी आन्दोलन भविष्यवाद की गोली (दवा वाली) के ऊपर के आवरण है। चाहे वह 'अभिलाषी विचार वालो' की सरल कामना हो अथवा प्रचारवादियो की चतुराई हो। जो कुछ भी हो, गोली पर जब आवरण होता है तब सरलता से वह निगल ली जाती है, क्योंकि भविष्य मे अज्ञात भीषणता होती है और पुरातन खोया हुआ सुखद घर होता है जहाँ से पतनोन्मुख समाज भटकता हुआ वर्तमान मे आ गया है। जैसे दोनो (यूरोपीय) युद्धो के बीच के वर्षों में एक प्रकार के समाजवाद के समर्थक मध्ययुग को आदर्श मानने वाले पुरातनवादी प्रकट हुए और उन्होंने अपना कार्यक्रम श्रेणी समाजवाद (गिल्ड-सोशलिज्म) के नाम से उपस्थित किया और उनका यह सुझाव था कि इस समय मध्ययुगीन श्रेणी प्रणाली को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता है। किन्तु हमें विश्वास है कि यदि इस प्रणाली को काम मे लाया गया होता तो पश्चिमी ईसाई जगत् का तेरहवी शती का कोई टाइम-मशीन का यात्री देखकर भौचक्का हो जाता।

यह स्पष्ट है कि पुरातनवादी-भविष्यवादी त्राता समाज की रक्षा में उसी प्रकार असफल हो जाते है, जिस प्रकार तलवार वाले त्राता लौकिक क्रान्तिकारी आदर्शवाद (यूटोपिया) में उसी प्रकार त्राण नही ला सकता जैसे सार्वभौम राज्यो में।

(४) राजा के आवरण में दार्शनिक

ऐसे त्राण की कल्पना, जिसमें न 'टाइम-मशीन' की आवश्यकता है न तलवार की, हेलेनी सकट-काल की पहली पीढी मे विराग की कला में सबसे कुशल और सबसे महान् हेलेनी द्वारा प्रचारित की गयी थी।

'राज्यों (यूनान के) की बुराई कम होने की कोई आशा नही है और मेरी सम्मति में मानव मात्र की। यह केवल तभी सम्भव है जब राजनीतिक शक्ति और दर्शन मे सहयोग हो। और उन साधारण लोगों को जबरदस्ती अयोग्य कर दिया जाय जो इनमें से किसी एक में कार्य

करते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ हों । यह सहयोग मेरी सम्मति में दो प्रकार सम्भव है । या तो दार्शनिक लोग हमारे राज्यो के राजा हो जायें या आज जो राजा और अधिपति कहे जाते हैं वे वास्तविक और पूर्ण ढंग से दार्शनिक हो जायें ।'[1]

इस औषधि का प्रस्ताव करते हुए अफलातून परिश्रम के साथ इसकी आलोचना का उत्तर देता है । क्योंकि वह समझता था कि उसकी आलोचना होगी । उसका प्रस्ताव विरोधाभास के समान है और अदार्शनिक इसकी हँसी उडायेंगे । किन्तु यदि अफलातून के उपचार को समझना साधारण आदमियों के लिए कठिन है—चाहे वे राजा हों या सामान्य जन—दार्शनिकों के लिए इसका समझना और कठिन है । क्या दार्शनिक का लक्ष्य जीवन से विराग नही है और क्या व्यक्तिगत विराग और सामाजिक त्राण एक-दूसरे से इस सीमा तक असगत नही है, कि एक दूसरे के निषेधक हों । कोई कैसे विनाश होने वाले नगर की रक्षा कर सकता है जब वह उसमें स्वय अपनी रक्षा करने के लिए प्रयत्न कर रहा है ।

दार्शनिक की दृष्टि में आत्म-त्याग का अवतार—शूली पाया हुआ ईसा—मूर्खता का प्रतीक है । किन्तु बहुत कम दार्शनिकों को यह साहस हुआ कि इस विश्वास को प्रकट करे और उससे भी कम उनका जो इसके अनुसार कार्य करें । विराग की कला में कुशल व्यक्ति को जीवन ऐसे आरम्भ करना होगा कि वह सामान्य मानवी भावनाओ से पूर्ण है । यदि उसका पड़ोसी कष्ट मे है, जिसकी उसके हृदय मे भी अनुभूति होती है, तो वह उसकी उपेक्षा नही कर सकता, न वह इस बात की उपेक्षा कर सकता है, जिस अनुभूति से उसे त्राण मिला है उसी से उसके पड़ोसी का भी उद्धार होगा, यदि उसको बल दिया जाय । तो क्या यदि हमारा दार्शनिक अपने पड़ोसी की सहायता करता है तो अपनी हानि होती है ? इस नैतिक द्विविधा मे उसका इस भारतीय सिद्धान्त की शरण में जाना कि दया और प्रेम पाप है, बेकार है और अफलातून के इस सिद्धान्त का आश्रय लेना कि 'क्रिया ध्यान का दुर्बल रूप है' निरर्थक है । और न वह इस बौद्धिक और नैतिक असंगति के विश्वास पर चल सकता है, जिसका दोषी प्लूटार्क स्टोइको को ठहराता है । और जो उद्धरण देता है जिसमे क्रिसिप्पस एक ही पुस्तक मे एक वाक्य मे शैक्षिक विश्रान्ति (अकाडमिक लेजर) की भर्त्सना करता है और दूसरे वाक्य में उसकी अनुशसा करता है ।[2] अफलातून ने स्वयं फतवा दिया है कि जो विराग की कला मे पक्के हो गये है उन्हे फिर जीवन में कभी उस प्रकाश में जाने की आज्ञा नही मिलनी चाहिए जिसमे से प्रयत्न करके वे बाहर निकले है । बहुत दुखी होकर उसने अपने दार्शनिको को पुन. उस कन्दरा मे उतरने का दण्ड दिया कि वे अपने अभागे साथी मानवों की सहायता करें जो दुख और यातना में बँधे पड़े है । और यह बात हृदय-स्पर्शी है कि अफलातून की इस आज्ञा का एपिक्युरियस ने अच्छी तरह पालन किया ।

जिस हेलेनी दार्शनिक का आदर्श, पूर्ण अविचलता था वह नजारेथ के पहले एक ही व्यक्ति था जिसे यूनानियो ने त्राता का नाम दिया था । यह सम्मान साधारणतः राजनीतिक तथा सैनिक सेवकों का एकाधिकार था । एपिक्युरियस को यह अभूतपूर्व विशेषता प्रदान की गयी

१. प्लेटो: रिपब्लिक, ४७३ डी० ।

२. प्लूटार्क: डी स्टोइकोरम रिपगनैनटिआइस, अध्याय २ तथा २० ।

उसका कारण उसको अपने हृदय की अनिवार्य पुकार थी जिसकी आज्ञा का पालन उसने आनन्द-पूर्वक किया। जिस कृतज्ञता के उत्साह से एपिक्युरियस के त्राण के कार्य की प्रशंसा ल्युक्रीशियस ने अपनी कविता में की है उससे स्पष्ट है कि कम-से-कम इस सम्बन्ध में यह पदवी केवल औप-चारिक नहीं थी। यह गम्भीर तथा सजीव भावना की अभिव्यक्ति थी। यह भावना एपिक्यु-रियस के समकालीन लोगों द्वारा परम्पराबद्ध लैटिन कवि तक पहुँची होगी।

एपिक्युरियस का विरोधाभासपूर्ण इतिहास स्पष्ट कर देता है कि दार्शनिकों को अपने कंधों पर कितना दुखमय बोझ उठाना पड़ता होगा, यदि वे अफलातून के उपचार के इस विकल्प को अपनाते रहे होंगे कि दार्शनिक को राजा होना चाहिए। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि अफलातून के नुसखे का दूसरा विकल्प—राजाओं को दार्शनिक बनाने का—प्रत्येक दार्शनिक को जिसमें सामाजिक चेतना थी, जिसमें अफलातून भी था, बहुत आकर्षणपूर्ण लगा। कम-से-कम तीन बार अफलातून अपने मन से, अपने ऐटिक आश्रम से निकलकर सागर पार कर साइराक्यूज़ गया कि सिसिली के एक निरंकुश शासक को अपनी कल्पना के अनुसार राजा का कर्तव्य पालन करने वाला राजा बनाये। इसका परिणाम हेलेनी इतिहास में विचित्र, किन्तु महत्त्वहीन है। ऐसे अनेक ऐतिहासिक राजा हुए हैं जिन्होंने अपने फालतू समय में दार्शनिको से कम या अधिक गम्भीरता से, परामर्श किया है। इतिहास के पश्चिम के विद्यार्थी को इनमें सबसे प्रसिद्ध पश्चिमी जगत् में अठारहवीं शती के 'प्रबुद्ध निरंकुश शासक' मिलेंगे जो अनेक फ्रांसीसी दार्शनिकों के साथ, वालटेयर तथा उसके बाद औरों से कभी मुहब्बत करके, कभी उनसे लड़कर, अपना मनोरंजन करते थे। किन्तु हमें प्रशा के फ्रेडरिक द्वितीय या रूस की कैथरीन द्वितीय समुचित त्राता के रूप में नहीं मिलेंगी।

ऐसे भी विख्यात शासक मिलेंगे जिन्होने वास्तविक दार्शनिक शिक्षा उन गुरुओं से प्राप्त की है जो उनसे पहले गुजर चुके हैं। मारकस आरीलियस का कहना है कि हमने अपने गुरुओं, रसटिकस तथा सेक्सटस से शिक्षा ग्रहण की है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन अज्ञात शिक्षकों ने प्राचीन महान् स्टोइको के ज्ञान का केवल माध्यम का काम किया, विशेषत: पेनेटियस के ज्ञान का, जो मारकस से तीन सौ साल ईसा के पूर्व दूसरी शती में हुआ था। भारत में अशोक बुद्ध का शिष्य था जो अशोक के शासक होने के दो सौ साल पहले मर चुके थे। अशोक का शासन भारत में और मारकस का शासन हेलेनी जगत् में अफलातून के इस तर्क को प्रमाणित करते है कि सामाजिक सबसे सुखी और सामंजस्यपूर्ण होता है जब शासक की यह इच्छा नहीं होती कि शासक बनूं। किन्तु इन शासकों की उपलब्धियाँ उन्हीं के साथ चली गयी। मारकस का सारा दार्शनिक श्रम लुप्त हो गया क्योंकि उसने अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी चुना, जो वैधानिक प्रथा के प्रतिकूल थी। वैधानिक प्रथा यह थी कि उत्तराधिकारी चुना जाता था और यह प्रथा सौ वर्षों तक सफलतापूर्वक चल रही थी। अशोक निजी रूप से पवित्र था। परन्तु यह पावनता कुछ न काम आयी और दूसरी पीढ़ी में पुष्यमित्र के एक ही प्रहार से राज्य नष्ट हो गया।

इस प्रकार दार्शनिक शासक पतनोन्मुख समाज के जहाज पर से अपने साथियों की रक्षा करने में असमर्थ रहता है। जो तथ्य हैं वे सामने हैं। किन्तु हम यह देखेंगे कि उन तथ्यों से ही इसका स्पष्टीकरण होता है। यदि हम आगे और देखेंगे तो पता चलेगा कि हाँ, होता है।

अफलातून के रिपब्लिक में एक स्थान पर इसका संकेत किया गया है। जिसमें वह एक

राजा का वर्णन करता है जो जन्मजात दार्शनिक है। पहले वह यह अभिधारणा उपस्थित करता है कि किसी समय किसी स्थान पर ऐसा राजा जन्म लेगा और वह अपने पिता की गद्दी पर बैठेगा और तब वह अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देगा। इसके बाद अफलातून इस निर्णय पर पहुँचता है कि 'एक भी ऐसा शासक पर्याप्त होगा, यदि अपनी प्रजा का समर्थन वह प्राप्त कर सके—तो वह अपने सारे कार्यक्रम को पूरा कर सकेगा जो वर्तमान परिस्थिति में असम्भव जान पड़ता है।' आगे इस तर्क का उपस्थित करने वाला बताता है कि आशावाद का कारण क्या है। आगे चलकर वह कहता है—'यदि मान लिया जाय कि हमारा शासक आदर्श कानूनों को बनाता है और आदर्श सामाजिक परम्पराओं की स्थापना करता है तो यह बात सम्भावना की सीमा के बाहर नहीं है कि शासक की आज्ञाओं के अनुकूल ही उसकी प्रजा कार्य करेगी।'[१]

अफलातून की योजना की सफलता के लिए ये अन्तिम प्रस्ताव स्पष्टतः आवश्यक हैं किन्तु वे अनुकरण की मन.शक्ति पर भी निर्भर हैं। और हम पहले ही देख चुके हैं कि इस प्रकार का सामाजिक अभ्यास एक प्रकार का संक्षिप्त उपाय है जिसके कारण अपने उद्देश्य पर शीघ्र पहुँचने के बजाय विनाश की ओर पहुँच जाते हैं। दार्शनिक शासक की नीति की किसी प्रकार की जबरदस्ती चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, उसे असफलता प्रदान कर देगी और जिस त्राण के लिए वह चेष्टा करता है वह प्राप्त न होगा। और इस दृष्टि से हम उसकी नीति की परीक्षा करें तो हमें पता चलेगा कि उसकी जबरदस्ती विचित्र ढंग से स्पष्ट है। क्योंकि यद्यपि अफलातून कहता है कि दार्शनिक शासक के शासन में प्रजा की सहमति आवश्यक है, यह स्पष्ट है कि शासक दार्शनिक हो भी जाय तो उसे निरंकुश राजा होने के कारण उसकी दार्शनिकता बेकार हो जायगी जब तक वह शारीरिक शक्ति की तैयारी न किये रहे क्योकि पता नही कब उसकी आवश्यकता पड़ जाय। जिस प्रकार यह तर्क समझने में स्पष्ट है उसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि यह परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है।

'लोगों का स्वभाव अस्थिर होता है, किसी बात को करने के लिए उसे राजी कर लिया जा सकता है, परन्तु उसी बात पर दृढ़ रखना कठिन है। इसलिए यह उचित है कि इस प्रकार तैयार रहना चाहिए कि इतनी शक्ति हो कि जब लोगों का विश्वास हट जाय तो जबरदस्ती उनको मनवाया जा सके।'[२]

इस क्रूर कथन में मैकियावली ने दार्शनिक राजा के कार्य-कौशल मे ऐसी कुटिल बात कही है जिसे अफलातून ने जान-बूझकर गोपनीय रखा। यदि दार्शनिक राजा समझता है कि प्रेम से मेरा काम नहीं हो सकता तो वह अपने दर्शन का तिरस्कार करके तलवार से काम लेगा। मारकस आरीलियस ने भी ईसाइयों के प्रति ऐसा ही किया। एक बार फिर हम भीषण दृश्य देखते हैं, ओरफ्यूज ड्रिल सारजंट बन गया। सच बात तो यह है कि दार्शनिक-राजा निश्चय ही असफल होगा क्योंकि वह दो विरोधी प्रकृतियों का एक ही व्यक्ति मे समावेश करना चाहता

१. अफलातून : रिपब्लिक, ५०२ अ—ब।
२. मैकियावली : द प्रिंस, अध्याय ६।

है। दार्शनिक, राजा के जबरदस्ती के क्षेत्र को अपनाकर अपने को प्रभावशील बना देता है, और राजा दार्शनिक के आवेगहीन चिन्तन के क्षेत्र में प्रवेश करके अपने को प्रभावहीन कर देता है। जिस प्रकार 'टाइम-मशीन' वाला त्राता अपने शुद्ध रूप में राजनीतिक आदर्शवादी है, उसी प्रकार दार्शनिक-राजा अपनी असफलता प्रकट करता है, जब वह अस्त्र उठाता है और अपने को 'प्रच्छन्न रूप से त्राता' प्रकट करता है।

(५) मानव में ईश्वरत्व

हमने सर्जनात्मक प्रतिभा के तीन अतिमानवो की परीक्षा की, जिन्होने पतनोन्मुख समाज में जन्म लिया और जिन्होने अपने बल और तेज को सामाजिक विघटन की चुनौती का सामना करने में लगाया, और प्रत्येक मे देखा कि उसके त्राण के उपाय से शीघ्रता या विलम्ब से विनाश ही हुआ। उस भ्रम-निवृत्ति से हम किस परिणाम पर पहुँचते है? क्या इसका यह अर्थ है कि पतनोन्मुख समाज के त्राण का प्रत्येक प्रयत्न विफल हो जायगा यदि उसका त्राता मनुष्य है? हमे उस क्लासिक कथन को स्मरण करना चाहिए जिसकी सत्यता अनुभव के आधार पर हम प्रमाणित करते चले आ रहे है अर्थात् 'वे सब लोग जो तलवार उठाते है, तलवार के साथ नष्ट हो जायेंगे।' ये शब्द उस त्राता के है जिसने इसी कारण अपने एक अनुचर को फिर से तलवार को म्यान मे रखने की आज्ञा दी जिसने तलवार खीची थी और उसका प्रयोग भी किया था। नजारेथ के ईसा ने पहले उस घाव को भरा जो पीटर की तलवार द्वारा हुआ था और फिर अपने शरीर को गहनतम अपमान और पीड़ा को झेलने के लिए समर्पित कर दिया। और यह भी स्मरण रखने की बात है कि उसका तलवार न उठाना इस कारण नही था कि इस विशेष अवस्था में उसकी शक्ति उसके वैरियों से कम थी। उसका विश्वास था, जैसा कि उसने जजो से कहा था कि यदि मै तलवार उठाता तो अपने 'देवदूतों की बारह अक्षौहिणियों' से निश्चय ही वह विजय प्राप्त करता जो तलवार चलाने की कला से प्राप्त हो सकती है। यह विश्वास होते हुए उसने अस्त्र के प्रयोग से इनकार कर दिया। तलवार से विजय प्राप्त करने की अपेक्षा सूली पर चढना उसने अधिक उत्तम समझा।

संकट के समय इस विकल्प के चुनने में ईसू ने उस परम्परा को तोड़ा जिसका उपयोग अन्य त्राताओं ने किया था, जिनके सम्बन्ध में हमने अध्ययन किया है। इस महान् नयी विरोधी प्रवृत्ति की प्रेरणा ईसा को कैसे मिली? इसका उत्तर हमें एक दूसरे प्रश्न से मिलता है कि इसमे तथा अन्य त्राताओं मे क्या अन्तर है, जिन्होंने अपने दावों को छोड़ दिया और तलवार उठायी? इसका उत्तर यह है कि दूसरे जानते थे कि हम मनुष्य है और ईसा वह मनुष्य था जिसे विश्वास था कि मैं ईश्वर का पुत्र हूँ। क्या हम स्तोत्रकार डैविड के शब्दों मे 'त्राण ईश्वर के हाथों मे होता है'—इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जब तक मानवता को त्राण पहुँचाने वाले मे किसी अर्थ में कुछ ईश्वरत्व न हो, वह त्राता अपने मिशन को पूरा करने मे अशक्त रहेगा। हमने उस पाखण्डी त्राताओं की परीक्षा की और देखा कि वे असफल रहे, जो केवल मनुष्य रहे। अन्त में हम उन लोगो के सम्बन्ध मे विचार करे जो देवता के रूप मे हमारे सामने आये।

त्राता-देवताओ के जलूस की आलोचना करना और इसका मूल्याकन करना कि जो होने का या करने का उनका दावा है वह कहाँ तक ठीक है, हमारे अध्ययन के ढंग के अनुकूल नही है और अभूतपूर्व दुस्साहस जान पड़ेगा। किन्तु प्रयोग में कोई कठिनाई न होगी। क्योकि हम

देखेंगे इन त्राताओं के जलूस में एक व्यक्ति को छोड़कर शेष में देवता बनने का जो भी दावा रहा है, मनुष्य बनने का दावा सदिग्ध है। हम छाया और कल्पनाओं में बर्कले की अयथार्थता में अपने को घूमता पायेंगे जिनका अस्तित्व अनुभव मात्र है। वे ऐसे व्यक्ति हैं जिनके सम्बन्ध में वही कहा जा सकता है जो आधुनिक खोज ने 'स्पार्टा के सम्राट् लाइकरगस' के, जिनका अस्तित्व हमारे पूर्वज, एथेन्स के सोलन के समान ठोस और निश्चित समझते थे, सम्बन्ध में कहा है कि वह 'मनुष्य नही था, देवता था।' जो भी हो, हम आगे बढ़ें। हम सीढ़ी के सबसे नीचे के डण्डे से, जहाँ देवता अकस्मात् सहायता के लिए आता है सीढ़ी के सबसे ऊँचे डण्डे तक चलेंगे जहाँ देवता को शूली दी जाती है। यदि शूली पर चढना वह अन्तिम सीमा है जहाँ तक मनुष्य इस बात को प्रमाणित करने के लिए जा सकता है कि उसमे ईश्वरत्व है, तो मंच पर प्रत्यक्ष होकर यह प्रकट करना कि मै देवता हूँ जो संसार का त्राण करेगा सबसे कम कष्टदायक कार्य है।

उस शती मे जब हेलेनी सभ्यता का पतन हो रहा था, ऐटिक रंगमंच पर आकस्मिक देवता का प्रकट होना असमंजस मे पड़े नाटककारो के लिए सामयिक सहायता हो जाती थी, क्योंकि ऐसे प्रबुद्ध काल मे भी उन्हें अपने नाटक की कथा-वस्तु परम्परागत हेलेनी पुराणो से लेनी पडती थी। स्वाभाविक समाप्ति के पहले यदि नाटक मे नैतिक दोष या व्यावहारिक असम्भावनाओं के कारण कुछ ऐसी उलझने, कला की परम्परा को निर्वाह करने के कारण हो जाती थी, जिनमे से निकलना कठिन हो जाता था, तो लेखक कला की दूसरी परम्परा का सहारा लेता था। वह उलझन को दूर करने के लिए 'मशीन द्वारा' ऊपर से लटका कर मच पर देवता को ला सकता था या पहियें द्वारा मंच पर ला सकता था। ऐटिक नाटककारो का यह कौशल विद्वानो के विवाद की अच्छी सामग्री बन गयी है। क्योंकि इन ओलिम्पियाई देवताओ द्वारा मानवी समस्याओ के हल करने की क्रिया से न तो मनुष्य की बुद्धि को सन्तोष होता है, न मनुष्य के हृदय को। उस विषय मे यूरिपिडीज सबसे अधिक दोषी है। एक पश्चिमी विद्वान् ने सकेत किया है कि यूरिपिडीज जब मशीन द्वारा देवता को प्रकट करता है व्यग्य मे बोलता है। वेरल के अनुसार तर्कवादी (ऐसा ही वह उसे कहता है) यूरिपिडीज ने यह परम्परावादी कौशल अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया था क्योकि इन व्यग्यो और आक्रमणो की बौछार को उसने आवरण बना लिया था। वह खुले हुए ढग से इनका व्यवहार उस युग मे करने का साहस नही कर सकता था। इस प्रकार का आवरण आदर्श है क्योकि साधारण विरोधी जनता, इसे समझकर नाटककार पर विरोध का तीर नही चला सकती थी और बुद्धिमान् सन्देहवादियो के लिए बात स्पष्ट थी। 'यह कहना ठीक होगा कि युरिपिडीज ने रंगमच पर देवताओ से जो कहलाया है, साधारणतः वह अविश्वसनीय है। लेखक की ओर से वह आपत्तिजनक है और झूठ है। देवताओं को लाकर उसने मनुष्यो को यह विश्वास दिलाना चाहा कि उनका अस्तित्व नही है।'[१]

मनुष्य के दुख और वैभव से दूर और सराहना के अधिक उपयुक्त उपदेवता (डेमीगाड) है जिनकी माताएँ मानवी है और पिता अतिमानव। जैसे यूनानी उदाहरण हरक्युलीज या

१. ए० डब्ल्यू० वेरल : यूरिपिडीज द रेशनलिस्ट, पृ० १३८। अन्तिम वाक्य इस अवतरण में अरिस्टोफेनीज के एक अवतरण से लिया गया है—थेस्मोफोरियाजूसी—११.४५०–१।

एसक्लेपियोस या ओरफ्यूज । ये अर्ध-देवता मानव शरीर धारण किये रहते है और मनुष्य के दुख को हरने के लिए अनेक परिश्रम के कार्य करते है । ईर्ष्यालु देवता उन्हे दण्ड देते हैं और मानव शरीर धारण करने के कारण वे दण्डों को सहते हैं । यह उनका गौरव है कि वे मनुष्य की भाँति मृत्यु को प्राप्त होते है और इस उपदेवता की मृत्यु के पीछे देवता का स्वरूप होता है जो संसार के विभिन्न देशों मे विभिन्न नामो से मरता है—मिनोई संसार में जगरियूस के नाम से, सुमेरी संसार में तम्मूज के नाम से, हिताइत जगत् में अत्तीस के नाम से, स्कैंडिनेवाई जगत् में. बाल्डर के नाम से, सीरियाई संसार में अडोनीस के नाम से, शियाई संसार में हुसेन के नाम से और ईसाई जगत् मे ईसा के नाम से ।

यह कौन देवता है जो विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट होता है, किन्तु आवेग एक है ? यद्यपि वह संसार मे विभिन्न वेशों में प्रकट होता है किन्तु उसका वास्तविक रूप उस समय दिखाई देता है जब अभिनय का दुखद अन्त होता है और वह मृत्युदण्ड का भागी होता है । यदि हम मानव-विज्ञानी की खोज की प्रणाली को ग्रहण करें तो इस शाश्वत नाटक को इतिहास के आरम्भ में पायेंगे । 'वह उसके सामने कोमल पौधे के समान उगेगा, और जैसे सूखी धरती मे से जड़ निकलती है ।'[1] मरता हुआ देवता पहले-पहल वनस्पति की आत्मा मे हमे प्रकट होता है जो वसन्त मे मनुष्य के लिए पैदा होती है और शरद मे मनुष्य के लिए मर जाती है । मनुष्य इस प्रकृति के देवता की मृत्यु से लाभान्वित होता है और वह सदा मनुष्य के लिए मरता न रहे तो मनुष्य का विनाश हो जाय ।'[2] 'हमारे पापों के कारण वह आहत हुआ, हमारे अन्यायो के कारण उसे चोट लगी, हमारी शान्ति के लिए उसने दण्ड भोगा और उस पर बेतों की जो चोटें लगीं उससे हमारे घाव भरे ।'[3] किन्तु कोई बाहरी उपलब्धि चाहे कितनी भी शानदार हो और उसके लिए चाहे कितना भी मूल्य चुकाना पडे दुख के हृदय के भीतर के रहस्य का उद्‌घाटन नही कर सकती। यदि हम रहस्य जानना चाहे तो हमें लाभ प्राप्त करने वाले मानव और कष्ट प्राप्त करने वाले देवता के भी आगे देखना चाहिए । देवता की मृत्यु और मनुष्य का लाभ कथा को समाप्त नही कर देते । हम नाटक को मुख्य अभिनेता की परिस्थिति, भावना और उद्देश्यो को समझे बिना, समझ नही सकते । मरने वाला देवता जबरदस्ती मारा जाता है कि अपने से मरता है ? उदारता के साथ मरता है कि कटुता के साथ ? प्रेम के साथ कि निराशा से ? जब तक हम इन प्रश्नों का उत्तर न समझ ले हम यह नही जान सकते कि देवता के कष्ट द्वारा प्राप्त यह त्राण मनुष्य के केवल लाभ के लिए है या वह एक आत्मिक सम्पर्क होगा जिसमें मनुष्य वह दैवी प्रेम और करुणा प्राप्त करके, (जैसे दीपक बडी लौ से प्रकाश प्राप्त करता है[4]) जिसे ईश्वर ने विशुद्ध आत्म-त्याग करके दिया है, उसे लौटायेगा ।

१. इसाया—५३-२ ।

२. सच बात तो यह है कि मनुष्य स्वयं उसे मार डालता है जिससे वह अपना अस्तित्व कायम रख सके । वनस्पति की आत्मा की उपासना राबर्ट बर्न्स की कविता 'जान बारली कार्न' में बहुत सुन्दर बतायी गयी है । अंग्रेजी साहित्य में ऐसी सुन्दरता से कहीं नहीं लिखा गया है ।

३. इसाया—५३, ५ ।

४. प्लेटो के पत्र—७,३४१-सी०-डी० ।

देवता किस भावना से मृत्यु को स्वीकार करता है ? इस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए यदि हम इन दुखदायी नाटकों पर एक बार फिर विचार करें तो हम देखेंगे कि किस प्रकार अपूर्ण बलिदान से पूर्ण अलग रहता है । ओरफ़्यूज़ की मृत्यु पर जब कैलियोप बहुत सुन्दर ढंग से विलाप करती है तब उसमें कटुता का स्वर है जो ईसाई कानों को खटकता है ।

'हम मानव अपने पुत्रों की मृत्यु पर क्यो शोक करते हैं जब हम जानते है कि देवताओ में भी यह शक्ति नही है कि अपने पुत्रों को मरने से रोक सकें ।'[1]

मरते हुए देवता की कथा का विचित्र निष्कर्ष है । जान पड़ता है कि ओरफ़्यूज़ की माता अपने पुत्र को कभी मरने न देती यदि उसका वश चलता । जैसे बादल सूर्य को छिपा लेता है, यूनानी कवि के वर्णन ने ओरफ्यूज की मृत्यु से प्रकाश को छीन लिया। किन्तु एंटिपेटर की कविता का उत्तर दूसरी महान् कृति ने दिया है :

'ईश्वर संसार से इतना प्रेम करता था कि उसने अपना एकमात्र पुत्र ससार के लिए दे दिया *कि जो उसमे विश्वास रखता है वह नष्ट नही होगा, सदा जीवित रहेगा ।'*

धर्म पुस्तक ने इस प्रकार शोक-गान का उत्तर दिया है, और इस उत्तर में उसने भविष्यवाणी की है । 'एक रहता है, अनेक परिवर्तित होते रहते हैं और चले जाते हैं ।'[2] और त्राताओं के सर्वेक्षण का यह हमारा अन्तिम परिणाम है । जब हम अपनी खोज मे चले तो हमें महान् संख्या मिली, किन्तु ज्यो-ज्यो हम आगे बढे दौड में हमारे साथी एक के बाद दूसरे पीछे रहते गये । पहले जो पराजित हुए वे तलवार वाले थे, दूसरे पुरातनवादी और भविष्यवादी थे, उसके बाद दार्शनिक, केवल देवता दौड़ते रह गये । अन्त में मृत्यु की कठिन परीक्षा में, इन त्राता-देवताओ मे भी कुछ ही रह गये जिन्होंने मृत्यु की सरिता मे कूद कर त्राता होने की पदवी की रक्षा की है । और जब हम खड़े होकर सागर के उस परा क्षितिज पर देखते है तब जल मे से एक रूप उभरता हुआ दिखाई देता है जो सारे अन्तरिक्ष में फैल जाता है । यही हमारा त्राता है, 'ईश्वर की इच्छा उसके हाथों पूरी होगी, वह अपनी आत्मा को देखेगा और उसे सन्तोष होगा ।'[3]

१. ओरफ्यूज़ की मृत्यु पर एंटि प्लेटर का शोकगीत (सम्भवतः ६० ई० पू०)
२. शेली—अडोनेस, ५२ ।
३. इसाया—५३, १०–११ ।

२१. विघटन का लयात्मक रूप

इसके पहले के अध्याय में हमने खोजा और एक समानता पायी—जिसमें स्वभावतः विरोध भी था—जो विकासोन्मुख और विघटनोन्मुख समाजों के सर्जनात्मक व्यक्तियों का गुण है। इसी ढंग पर हम अपने विषय की दूसरी बात की आगे खोज करेंगे और देखेंगे लयात्मक विकास और लयात्मक विघटन में कोई समानता है और सम्भवतः विरोध भी। प्रत्येक स्थिति में हमारा फारमूला वही है जिसका अनुसरण हम अभी तक करते आये हैं, वह चुनौती और उसका सामना करने का फारमूला। विकासोन्मुख सभ्यता में एक चुनौती उपस्थित होती है और सफलतापूर्वक उसका सामना होता है जिसके परिणाम में नयी चुनौती सामने आती है और इसका भी सफलता से सामना होता है। इस विकास की प्रक्रिया का अन्त नहीं होता जब, तक कि ऐसी चुनौती नही आती जिसका सामना करने मे सभ्यता असफल हो जाती है, तब विकास रुक जाता है जिसे हमने पतन का नाम दिया है। यहाँ से सहसम्बन्धी लय आरम्भ होती है; चुनौती का सामना नही हो सका फिर भी चुनौती आती रहती है। संक्षोभ के साथ चुनौती का सामना करने के लिए दूसरा प्रयत्न किया जाता है, और यदि इसमें सफलता मिली तो विकास होता रहेगा। किन्तु हम यह मान कर चलेंगे कि थोड़ी अस्थायी सफलता के बाद यह सामना भी विफल हो जाता है। तब रोगाक्रमण फिर होगा, और सम्भवतः कुछ समय के बाद चुनौती का सामना करने की चेष्टा होगी और कुछ समय में उसी कठोर चुनौती का सामना करके थोड़ी और अस्थायी सफलता प्राप्त होगी। इसके बाद फिर असफलता मिलेगी जो अन्तिम रूप से समाज का विनाश करे या न करे। सैनिक भाषा में इसे पराजय-जमाव-पराजय-जमाव (रूट एण्ड रैली, रूट एण्ड रैली) कह सकते है।

यदि हम उन तकनीकी शब्दों की शरण लें जिन्हें हमने इस अध्ययन के आरम्भ में सोच निकाला था और जिनका प्रयोग हम करते आये है तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि पतन के बाद का सकटकाल पराजय है, सार्वभौम राज्य की स्थापना जमाव है। सार्वभौम राज्य के पतन के बाद जो अन्त काल होता है वह अन्तिम पराजय है। किन्तु हमने एक सार्वभौम हेलेनी राज्य के इतिहास मे देखा कि मारकस आरीलियस की मृत्यु के बाद अराजकता हो गयी और डायोक्लीशियन के समय फिर पुनरुज्जीवन आ गया। किसी सार्वभौम राज्य के इतिहास में एक बार से अधिक रोगाक्रमण और पुनरुज्जीवन हो सकता है। ऐसे आक्रमणो और पुनरुज्जीवन की संख्या उस लेंस की शक्ति पर निर्भर करती है जिसमें से देखकर हम परीक्षा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए थोड़े समय के लिए किन्तु चकित कर देने वाला रोगाक्रमण ६९ में हुआ जिसे 'चार सम्राटो का वर्ष' कहते है। किन्तु हम प्रमुख घटनाओं पर ही विचार करेंगे। सकटकाल के बीच भी पुनरुज्जीवन का समय आ सकता है। यदि हम संकट के काल मे एक विशेष पुनरुज्जीवन तथा सार्वभौम राज के जीवन काल में एक रोगाक्रमण मान ले तो हमें फारमूला मिल जायगा :

पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय जिसे हम कह सकते हैं कि पराजय-जमाव के लय का साढ़े तीन विस्पन्दन है। स्पष्टतः साढे तीन सख्या में कोई विशेष गुण नही है। विघटन के विशेष उदाहरण मे ढाई या साढ़े चार या साढे पाँच विस्पन्दन हो सकते है किन्तु विघटन की प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं होगा। किन्तु साढे तीन विस्पन्दन की सख्या साधारणतः अनेक विघटनोन्मुख समाजो के इतिहास में मिलती है। उदाहरण के लिए उनमें से कुछ का वर्णन हम करेंगे।

हेलेनी समाज के पतन की ठीक-ठीक तारीख ४३१ ई० पू० है और चार सौ साल बाद ३१ ई० पू० मे आगस्टस ने सार्वभौम राज्य स्थापित किया। क्या हम इन चार सौ वर्षों मे जमाव-पुन.पतन की क्रिया को पाते है? निश्चय ही हम पाते है। उसका एक चिह्न एकता के सामाजिक धर्म का प्रचार था जिसका साइराक्यूज़ मे टिमोलिओन ने प्रचार किया था और अधिक विस्तृत क्षेत्र में सिकन्दर महान् ने इसी एकता का प्रयत्न किया था। ये दोनो चेष्टाएँ चौथी शती ईसापूर्व के अन्तिम अर्धांश में हुई थी। दूसरा चिह्न विश्व राष्ट्रमण्डल की सकल्पना है जिसका ज़ीनो तथा एपिक्यूरियस ऐसे दार्शनिको ने तथा उनके शिष्यो ने प्रचार किया था। तीसरा चिह्न अनेक वैधानिक प्रयोगो का है—सेल्यूकस का साम्राज्य, एकियन तथा एइटोलियन सघ तथा रोमन लोकतन्त्र। ये सब ऐसे प्रयत्न थे कि नगर-राज्य की प्रभुसत्ता के ऊपर एक प्रभुसत्ता की स्थापना हो। और चिह्न बताये जा सकते है किन्तु जिस पुनरुज्जीवन का संकेत किया गया है उसके ज्ञान के लिए ये पर्याप्त है, और इनसे समय का भी ज्ञान हो जाता है। पुनरुज्जीवन के ये प्रयत्न असफल हुए। इसका कारण मुख्यतः यह था कि यद्यपि ये बड़ी-बडी राजनीतिक इकाइयाँ अलग-अलग नगर-राज्यो से आगे बढ़ गयी थी फिर भी आपसी सम्बन्ध मे एक-दूसरे के प्रति उनमे अनुदारता और असहयोग था जैसा कि पाँचवी शती ई० पू० के यूनान के राज्यो मे, था जब उन्होंने एकेनो-पेलोपोनेशियाई युद्ध का आरम्भ करके हेलेनी सभ्यता का पतन आरम्भ किया। यह दूसरा रोगाक्रमण अथवा (जो एक ही बात है) असफलता उस पुनरुज्जीवन की है जो २१८ ई० पू० मे हैनिबली युद्ध के आरम्भ मे हुआ। हमने पहले रोमन साम्राज्य के इतिहास में एक सौ साल की लम्बी अवधि के रोगाक्रमण का वर्णन किया है और उसके बाद के पुनरुज्जीवन का। इससे साढ़े तीन विस्पन्दन का पता चलता है।

यदि हम चीनी समाज के विघटन पर ध्यान दे तो हम देखेगे कि पतन उस समय से आरम्भ हुआ, जब ६३४ ई० पू० मे त्सिन और चू मे विनाशकारी सघर्ष आरम्भ हुआ और जब २२१ ई० पू० में त्सिन ने त्सी को पराजित किया और चीन ने चीनी शान्तिमय राज्य की स्थापना की। चीनी सकटकाल की यदि ये दोनो आरम्भिक और अन्तिम तिथियाँ हैं, तो क्या हमें इस बीच पुनरुज्जीवन तथा रोगाक्रमण की क्रियाएँ मिलती है? इसका उत्तर 'हाँ' है। क्योंकि चीनी संकटकाल में कनफूशियस (सम्भवतः ५५१–४७९ ई० पू०) की पीढ़ी के समय पुनरुज्जीवन का आन्दोलन दिखाई देता है जब निशस्त्रीकरण सम्मेलन ५४६ ई० पू० में हुआ था जो अन्त में असफल हुआ। आगे चलकर यदि हम चीनी सार्वभौम राज्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो पहली तथा पीछे वाली इनकी पीढ़ी में, अर्थात् ईसवी सन् की पहली शती के आरम्भ में, जब इनका अन्तःकाल था, रोगाक्रमण और पुनरुज्जीवन की कुख्यात क्रियाएँ हुई। यहाँ भी हमें

साढ़े तीन विस्पन्दन मिलते हैं। ये विस्पन्दन हेलेनी विस्पन्दन से दो सौ साल पहले समगति होकर मिलते हैं।

सुमेरी इतिहास में हमें वही बात मिलती है। सुमेरी संकटकाल में जमाव-पराजय का विस्पन्दन स्पष्ट है। सुमेरी सार्वभौम राज्य में पराजय-जमाव का विपरीत-विस्पन्दन बहुत स्पष्ट दिखाई देता है। यदि हम सुमेरी संकट का काल सैन्यवादी एरेच के लुगालज़ग्गीसी (सम्भवतः २६७७–२६५३ ई० पू०) के जीवन से और उसका अन्त सुमेरी सार्वभौम राज्य की स्थापना से मानें, जिसे अर के अर-एनगूर ने (सम्भवतः २२९८–२२८१ ई० पू०) स्थापित किया था, तो कम-से-कम इस बीच के काल में पुनरुज्जीवन का एक चिह्न हमें चाक्षुष-कला में मिलता है जो नरमसीन के समय में सम्पन्न हुई थी। सुमेरी शान्तिपूर्ण राज्य का समय अर-एनगूर के गद्दी पर बैठने से हम्मूरबी की मृत्यु लगभग (१९०५ ई०पू०) तक है, किन्तु ध्यान से देखने पर पता चलता है कि यह शान्ति केवल हल्का आवरण था, अन्दर-अन्दर अराजकता व्याप्त थी। अर-एनगूर के गद्दी पर बैठने के सौ साल बाद उसका 'चारो दिशाओं का साम्राज्य' टुकड़े-टुकड़े हो गया और इन्ही टुकड़ों में ही सौ साल तक रहा, जब हम्मूरबी ने उसे फिर से सार्वभौम रूप में निर्मित किया जिसके बाद ही उसका विनाश हुआ।

यही परिचित नकशा हमें परम्परावादी ईसाई समाज के मूल शरीर के विघटन के इतिहास में दिखाई देता है। हम पहले बता चुके हैं कि इस सभ्यता का पतन रोमानो-बुलगेरियन युद्ध ९७७–१०१९ ई० से आरम्भ हुआ और शान्तिमय धार्मिक सार्वभौम राज्य १३७१–७२ की पुनःस्थापना से आरम्भ होता है जब उसमानियों ने मैसिडोनिया पर विजय प्राप्त की। इन दोनों तारीखों के बीच, जब परम्परावादी ईसाइयों का संकटकाल था, हम पुनरुज्जीवन की स्थापना की घटना देख सकते हैं जिसका नेता पूर्वी रोमन सम्राट् एलेक्सियस केमनेनस (१०८१–१११८) था। यह क्रिया सौ साल तक चली। इसके बाद का शान्तिमय धार्मिक सार्वभौम राज्य का, सन् १७६८–७४ के रूसी-तुर्की युद्ध की पराजय के कारण, पतन हो गया। इस पतन से उसमानिया शासन का पूर्णतः अन्त हो गया। उसमानिया इतिहास से पता चलता है कि इसके पहले रोगाक्रमण हो चुका था, जिसके बाद फिर से पुनरुज्जीवन हुआ। रोगाक्रमण उस समय हुआ जब बादशाह के दासों के परिवार का शीघ्रता से विनाश होने लगा, जब सुलेमान महान् की सन् १५६६ में मृत्यु हुई। पुनरुज्जीवन का आरम्भ उस समय से होता है जब बादशाह ने परम्परावादी ईसाई रिआया को स्वतन्त्र मुसलमानों के साथ, जिन्होंने शक्ति की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी—शासन में लेने का प्रयोग किया। अब वह इस बात पर जोर नहीं देता था कि शासन में सहयोग करने के लिए उन्हें धर्म-परिवर्तन करना पड़ेगा। इस क्रान्तिकारी नवीनता ने, जो कोपरुलू वज़ीरों का कार्य था, उसमानिया साम्राज्य को साँस लेने का समय दिया, जिसे बाद के उसमानली 'ट्यूलिप काल' कहते हैं।

हिन्दू समाज के विघटन के इतिहास में अभी आधे विस्पन्दन का समय नहीं आया है। क्योंकि हिन्दू सार्वभौम राज्य की, जिसे ब्रिटिश शासन ने स्थापित किया था, दूसरी किस्त का समय अभी पूरा नहीं हुआ है। इसके विपरीत पराजय—और पुनरुज्जीवन के पहले तीन विस्पन्दन का लेखा मौजूद है। तीसरा रोगाक्रमण उस समय हुआ जब मुगल साम्राज्य के पतन और ब्रिटिश राज्य के आगमन के बीच की अराजकता का समय था। पुनरुज्जीवन का

दूसरा विस्पन्दन उस समय स्पष्ट है जब अकबर (१५६६–१६०२) ने मुगल राज्य की स्थापना की। इसके पहले की पराजय का आघात स्पष्ट नहीं है, किन्तु यदि हम हिन्दू इतिहास के संकटकाल को देखें, जो ईसाई संवत् की बारहवीं शती के अन्तिम भाग में आरम्भ होता है जब हिन्दुओं के स्थानीय राज्यों में आपसी युद्ध हो रहे थे, तब हमें पता चलेगा कि हिन्दू शासकों और मुसलिम आक्रमणकारियों द्वारा बारहवीं और तेरहवीं शती में और बाद के मुसलिम आक्रमणकारियों ने, जिनमें अकबर के पूर्वज भी थे, पन्द्रहवी और सोलहवीं शती में जो विपत्ति ढायी उसके बीच अलाउद्दीन और फीरोज के शासन में चौदहवीं शती में कुछ शान्ति थी।

हम दूसरी सभ्यताओं के विघटन का भी विश्लेषण कर सकते है जहाँ हमें इतनी सामग्री मिलती है कि अध्ययन से हम परिणाम निकाल सकते हैं। किसी-किसी स्थिति में हम देखेंगे कि 'विस्पन्दन' की पूरी संख्या नहीं मिलती, क्योंकि उस सभ्यता को उसकी स्वाभाविक मृत्यु के पहले ही उसका पड़ोसी निगल गया। फिर भी हमें विघटन के लय का इतना प्रमाण मिल गया है कि हम इस लय के उदाहरण को अपनी पश्चिमी सभ्यता पर लगा कर देखें कि क्या वह उस प्रश्न का कुछ उत्तर दे सकती है, जिसे हमने कई बार पूछा कि जिसका अभी तक सन्तोषजनक उत्तर हम नही दे सके। प्रश्न यह है कि क्या हमारी पश्चिमी सभ्यता का भी पतन हुआ है ? यदि हाँ, तो विघटन की किस परिस्थिति में वह पहुँची है ?

एक बात तो स्पष्ट है, हमारे यहाँ अभी सार्वभौम राज्य की स्थापना नही हुई है यद्यपि इस दिशा में दो दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न इस शती के पहले अर्धांश में जरमनी द्वारा हुए और उसी प्रकार का दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न सौ साल पहले नैपोलियन के फ्रास ने किया था। एक बात और स्पष्ट है। हम लोगो में हार्दिक और गम्भीर अभिलाषा है कि एक संस्था की स्थापना हो जो सार्वभौम राज्य नही हो, किन्तु जिसके द्वारा विश्व की ऐसी व्यवस्था हो, जिस ढग की एकता की संस्था स्थापित करने का प्रयत्न हेलेनी सकटकाल मे वहाँ के राजमर्मज्ञों और दार्शनिकों ने किया था किन्तु निष्फल रहे। वह ऐसी सस्था होगी जिसमे सार्वभौम राज्य के वरदान तो सब आ जायेंगे, अभिशाप न आयेगा। सार्वभौम राज्य का अभिशाप यह है कि एक दल का व्यक्ति दूसरे दलों को सैनिक शक्ति से मार गिराता है। वह 'तलवार के द्वारा त्राण' का परिणाम है, जिसके बारे मे हमने देखा है कि वह त्राण बिलकुल नही है। हम चाहते है कि स्वतन्त्र लोग स्वतन्त्र सहमति से एक साथ रहें और बिना जबरदस्ती के सब प्रकार की बड़ी-से-बड़ी सुविधाएँ प्राप्त करें, और बड़े-से-बड़ा सामंजस्य स्थापित करें, जिसके बिना यह आदर्श व्यवहार मे नही आ सकता। नवम्बर १९१८ के युद्ध-विराम के कुछ मास पहले अमरीकी राष्ट्रपति विलसन को जो प्रतिष्ठा यूरोप में प्राप्त हुई—यद्यपि अपने देश में नही—उसमे हमारी आशाएँ निहित थी। राष्ट्रपति विलसन का सम्मान गद्य द्वारा व्यक्त किया गया था, आगस्टस के सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध है वह वरजिल या होरेस का पद्य है। चाहे गद्य हो या पद्य, दोनों में जो विश्वास, आशा और धन्यवाद की भावनाएँ हैं वे प्रायः एक-सी है। परन्तु परिणाम भिन्न है। आगस्टस अपने संसार को सार्वभौम राज्य बनाने में सफल हुआ, विलसन अपने ससार को और अच्छा बनाने में असफल रहा—

छोटा आदमी एक-एक जोड़ता है,
जल्दी ही वह सौ तक एकत्र कर लेता है

बड़े आदमी की अभिलाषा लाखों की होती है,
वह एक भी एकत्र नहीं कर पाता ।[1]

इन विचारो और तुलना से पता चलता है कि हम अपने सकटकाल में बहुत आगे बढ़ गये है और यदि हम पूछें कि निकट भूत मे सबसे स्पष्ट और विशिष्ट क्या विपत्ति हमारे सामने उपस्थित हुई है, जो उत्तर स्पष्ट है—राष्ट्रवादी परस्पर विनाशकारी युद्ध, जिसे लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद द्वारा निर्मुक्त शक्तियो से बल मिला है, जैसा कि इस अध्ययन में पहले हमने बताया है । इस भीषणता का आरम्भ अठारहवी शती के अन्त के फ्रांस के क्रान्तिकारी युद्ध से होता है । पहले जब हम इस विषय पर विचार कर रहे थे, तब पश्चिम के इतिहास के आधुनिक इतिहास में हमे पता चला कि इस प्रकार का हिंसात्मक संघर्ष पहला नही, दूसरा था । पहला संघर्ष वह था जिसमें तथाकथित धार्मिक युद्ध हुए थे, जिसने सोलहवी शती के मध्य से सत्रहवी शती के मध्य तक पश्चिमी ईसाई जगत् को तहस-नहस कर डाला और हमने देखा कि इन दोनों हिंसात्मक युद्धो के बीच सौ साल ऐसे बीते जिनमे युद्ध अपेक्षया हल्का रोग था, जिसमे राजाओ का खेल होता रहा, जिसमे न तो धार्मिक उन्माद था, न साम्प्रदायिकता, न लोकतन्त्रीय राष्ट्रवाद । इस प्रकार अपने इतिहास में भी हमें सकटकाल का प्रतिरूपी (टिपिकल) उदाहरण मिलता है : पतन, पुनरुज्जीवन और दूसरा रोगाक्रमण ।

हम देख सकते है कि सकटकाल मे अठारहवी शती का पुनरुज्जीवन क्यो अकाल प्रसूत और अस्थायी हुआ । उसका कारण यह था कि जो सदाशयता 'प्रबुद्धता' के कारण प्रयोग मे लायी गयी वह विश्वास, आशा और उदारता के ईसाई गुणो पर आधारित नही थी, बल्कि निराशा, भय और मानवता के प्रति घृणा के पैशाचिक रोगो के कारण प्रयोग की गयी । यह धार्मिक उत्साह की उपलब्धि नही थी, उसकी कमी का सरल उपजात (बाई प्राडक्ट) था ।

क्या हम उस दूसरे और अधिक हिंसात्मक युद्ध के परिणाम को, किसी भी दशा मे, देख सकते है जिसमें हमारा पश्चिमी समाज अठारहवी शती वाली प्रबुद्धता की आध्यात्मिक अपर्याप्तता के कारण फँस गया है ? यदि हम भविष्य की ओर देखने का प्रयत्न करे तो हमे पहले यह स्मरण कर लेना चाहिए कि जितनी भी सभ्यताओ का इतिहास में वर्णन हुआ है वे चाहे मर गयी हो या मर रही हों, जन्तु के शरीर के समान नही है, जिनके लिए पहले से ही निश्चित है कि जीवन की एक अवधि समाप्त करके समाप्ति पर पहुँचेंगे । यदि आज तक जितनी सभ्यताएँ हुई हैं, उन्होने इस प्रथा का अनुगमन किया है, तो भी, ऐतिहासिक नियतिवाद का कोई ऐसा नियम नही है जो हमे विवश कर सके कि सकटकाल की असह्य कड़ाही मे से सार्वभौम की धीमी और स्थिर अग्नि मे अपने को फेंक दे जिसमे धीरे-धीरे जलकर हम धूल और राख हो जायेगे । साथ ही यदि दूसरी सभ्यताओ का इतिहास और प्रकृति के जीवन को हम देखेंगे और अपनी वर्तमान स्थिति के अमंगल प्रकाश मे निरीक्षण करेंगे तो ऐसा होना निश्चित जान पड़ता है । यह अध्याय १९३९–४५ के विश्वयुद्ध के आरम्भ मे उन पाठकों के लिए लिखा गया था जिन्होंने १९१४–१८ का महाभारत देखा था । और इस दूसरे युद्ध की समाप्ति के बाद प्रकाशन के लिए इसे फिर से

१. आर० ब्राउनिंग : एग्रामेरियन्स फ्युनरल ।

लिखा गया। यह दूसरा युद्ध हमारे जीवन में ही ऐसे बम के आविष्कार तथा प्रयोग से समाप्त किया गया जिसमें एटमिक शक्ति को विमुक्त करने का नया ढंग निकाला गया जिससे मनुष्य ने मनुष्य के जीवन तथा उसकी निर्मित वस्तुओं को नष्ट कर दिया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इन विनाशकारी घटनाओं का शीघ्र-शीघ्र होना और बढ़ता ही जाना भविष्य के अन्धकार का द्योतक है, इस अनिश्चयता के कारण, ऐसे समय जब हमारी आध्यात्मिक शक्तियों की नितान्त आवश्यकता है, हमारी आशा और विश्वास के टूट जाने की आशंका है। यहाँ वह चुनौती है जिसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते और हमारा भविष्य हमारा सामना करने पर निर्भर है।

"मैंने स्वप्न देखा, और मैंने देखा कि एक मनुष्य चिथड़ों में लिपटा एक स्थान पर खड़ा है। उसके मुँह उसके घर के उलटे है, उसके हाथ में एक पुस्तक है और पीठ पर बड़ा बोझ है। मैंने देखा कि उसने पुस्तक खोली और पढ़ा, वह पढ़ता रहा और रोता रहा और काँपता रहा। जब वह अपने को नहीं रोक सका, फूट-फूटकर रोने लगा और दुख से चिल्ला उठा, 'मैं क्या करूँ' ?"

बुनयन का ईसाई बिना कारण ही इतना दुखी नहीं हुआ 'मुझे निश्चित रूप से बताया गया है (उसने कहा) कि हमारा यह नगर आकाश से बरसती आग से जल जायगा, जिसमें मैं, मेरी पत्नी और मेरे सुन्दर बच्चे भस्म हो जायेंगे जब तक कि कोई ऐसी राह न निकले (जो अभी मुझे दिखाई नहीं देती) जिससे मेरी रक्षा हो सके।'

इस चुनौती का सामना ईसाई किस प्रकार करने जा रहा है ? क्या वह इधर-उधर देखेगा कि किस ओर दौड़ूँ और फिर भी खड़ा रहेगा, क्योंकि उसे पता नहीं कि किस ओर जाना चाहिए? या वह प्रकाश पुंज की ओर देखते हुए और दूर फाटक की ओर पाँव मोड़ते हुए 'जीवन, जीवन, शाश्वत जीवन' चिल्लाते हुए दौड़ेगा ? यदि इस प्रश्न का उत्तर और कहीं कोई नहीं देगा, केवल ईसाई को देना होगा, तो हमारा मानवी प्रकृति की समानता का ज्ञान बताता है कि हम यह भविष्य-वाणी कर सकते हैं कि ईसाई की मृत्यु विनाश के नगर में हो जायगी। किन्तु इस कथा के क्लासिक संस्करण में हमें बताया गया है कि मानव नायक कठिन समय में अपने ही साधनों पर नहीं छोड़ दिया गया था। बुनयन के अनुसार ईसाई को धर्मप्रचारक ने बचाया था। और यह मानकर ईश्वर की प्रकृति मनुष्य की प्रकृति से स्थिर नहीं होती। हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारे समाज को एक बार जो क्षमा ईश्वर ने प्रदान की उसे दूसरी बार वह इनकार नहीं कर सकता यदि हम प्रायश्चित्तपूर्ण हृदय से प्रार्थना करेंगे।

२२. विघटन द्वारा मानकीकरण

सभ्यताओं के विघटन की प्रक्रिया की खोज की समाप्ति पर हम पहुँच गये है, किन्तु समाप्ति के पहले एक प्रश्न पर और विचार करना है । जिन बातो पर हम अभी तक विचार करते आये है उनमें यह देखना है कि कोई प्रमुख-प्रवृत्ति तो नही काम कर रही है । और हम निश्चय रूप से देखते है कि मानकीकरण और एकरूपता की प्रवृत्ति (विघटन मे) काम करती है, जिस प्रकार सभ्यताओ के विकास की स्थिति मे इसके विपरीत विशिष्टीकरण और विभिन्नता की प्रवृत्ति होती है । ऊपर सतही दृष्टि से हमने देखा है कि विघटन में साढ़े तीन विस्पन्दन बराबर लय के ढग पर होता है । इससे और महत्त्वपूर्ण एकरूपता का चिह्न यह है कि विघटनोन्मुख समाज मे तीन स्पष्ट वर्गों में विभाजन का भेद हो जाता है और उनमें प्रत्येक एक ढग का सर्जनात्मक कार्य करता है । हमने देखा है कि शक्तिशाली अल्पसख्यक समान ढग से दार्शनिक कार्य करते है और सार्वभौम राज्य स्थापित करते है, आन्तरिक सर्वहारा समान रूप से 'महान् धर्मों' का आविष्कार करते है जो सार्वभौम धर्मतन्त्र मे अपने को व्यक्त करना चाहते है और बाहरी सर्वहारा सेना को एकत्र करते है और ऐसा कार्य करते है कि उस युग को 'वीर काल' कहा जाता है । ये सस्थाएँ समान रूप से उत्पन्न होती है और वे इतनी महत्त्वपूर्ण है कि जिस ढग से विघटन की यह प्रक्रिया होती रहती है उसी ढग से हमने इस अध्याय के अन्त में इसे सारणी के रूप मे अङ्कित किया है । इससे भी अधिक व्यवहार, भावना और जीवन की समानता है और आत्मा के भेद के अध्ययन से प्रकट होता है ।

पेनिलोप के जाला के दृष्टान्त तथा ऐसे ही समान उदाहरणो पर विचार करने से वही विषमता हमें मिलती है जो विकास मे विभिन्नता और विघटन में एकरूपता में है । जब अनु-पस्थित ओडीसियस की सती पत्नी ने अपने अनेक हठी प्रेमियो को वचन दिया कि ज्योही मैं वृद्ध लेअरटेज (ओडीसियस के पिता) के लिए यह कफन बीनना समाप्त कर लूँगी, तुममें से किसी से विवाह कर लूँगी । तो वह अपने करघे पर प्रतिदिन कपड़ा बीनती थी और दिन में जितना बीनती थी, उतना रात मे उधेड डालती थी । जब वह प्रात.काल बीनना आरम्भ करती थी, उसके सम्मुख अनेक नमूने थे, और यदि वह चाहती तो प्रतिदिन नये नमूने के कपडे बुनती । किन्तु रात का काम एकरस था, क्योकि उधेडने में कोई भी नमूना हो, कोई अन्तर नही हो सकता था । दिन मे चाहे उसकी गति कितनी भी जटिल होती रही हो, रात में तो केवल तागा निकालने का काम था ।

रात के इस अनिवार्य नीरसता के लिए पेनिलोप पर दया आती है । यदि यह नीरसता उद्देश्यहीन होती तो यह श्रम असह्य होता । उसे जिससे प्रेरणा मिलती थी वह उसकी आत्मा के अन्दर एक गीत था—'उससे मेरा मिलन होगा ।' वह आशा पर जीवित थी और काम कर रही थी, और वह निराश नहीं हुई । नायक लौटकर आया, नायिका उसी की रही, अन्त में दोनों का मिलन हो गया ।

यदि पेनिलोप का धागा निकालना निरर्थक नहीं हुआ तो उस महान् बुनकर का कैसे होगा जिसके कार्य का हम अध्ययन कर रहे हैं, और जिसका गीत गोएटे की कविता में अभिव्यक्त है—

जीवन की धारा में, गति की झंझा में
कार्य के उत्साह में, अग्नि में, तूफान मे
यहाँ और वहाँ
ऊपर और नीचे
मै चलता हूँ और घूमता हूँ
जन्म और मरण
असीम सागर
जहाँ विक्षुब्ध तरगे
सदा उठती है
उनके उत्तेजित सघर्ष के
नीचे और ऊपर
उभरती है और बुनती है
जीवन के परिवर्तन ।
समय के चलते करघे मे निर्भय होकर
मै ईश्वर के लिए वस्त्र बुनता हूँ ।[१]

धरती की आत्मा का यह कार्य, समय के करघे पर बुनना और फिर तागे का उधेड़ना, मनुष्य का लौकिक इतिहास है । यह मानव-समाज की उत्पत्ति, विकास और पतन तथा विघटन मे व्यक्त होता है । जीवन के इस असमजस मे और कर्म के तूफान में तात्त्विक लय का विस्पन्दन हमें सुनाई देता है, जिसकी विभिन्नता हमने इन रूपो मे जाना है—चुनौती और सामना, बिलगाव और वापसी, पराजय और जमाव, विभाजित होना और सम्बन्धित होना, भेद और पुनर्जन्म । यह तात्त्विक लय हमे प्रत्यावर्ती यिन और याग के विस्पन्दन में मिलता है । इसके सुनने में हमने यह जान लिया है कि चाहे (ग्रीक नृत्य के) गायन का उत्तर विपरीत गायन[२] हो, जय के बाद पराजय हो, रचना के बाद विनाश हो, जन्म के बाद मरण हो, इस लय के विस्पन्दन की गति न तो अनिर्णीत युद्ध की अस्थिरता है, न मशीन के पहिये के चक्र का आवर्तन है । पहिये का बराबर घूमना बेकार नहीं है, यदि प्रत्येक परिक्रमा में वह लक्ष्य के निकट पहुँचता है और यदि पुनर्जन्म का अभिप्राय कोई नवीन जन्म है, और केवल किसी ऐसी वस्तु का पुनर्जन्म नहीं जो मर चुकी है, तब जीवन का चक्र केवल पैशाचिक यन्त्र नही है, जो इक्सिमान को शाश्वत दण्ड देने के लिए बना है । इस प्रमाण से यिन और यांग के संगीत के विस्पन्दन की लय सर्जन का गीत है और यदि हम उसे सुनकर उसमे यह पाये कि रचना के स्वर

१. गोएटे : फाउस्ट २, ५०१–६ (आर० एन्सटेल का अनुवाद)

२. ग्रीक नृत्य में एक गायन होता है, फिर घूमने पर दूसरा गायन होता है—जिसे स्ट्रोफी और एंटीस्ट्रोफी कहते हैं ।— अनुवादक

के बाद विनाश का स्वर है, तो हम पथ-भ्रष्ट नहीं होंगे । इस कारण यह गीत पैशाचिक कपट नही है, दोनो स्वर वास्तविकता के प्रमाण है । यदि हम अच्छी तरह सुनें तो हम देखेंगे कि जब दो स्वर टकराते हैं, तब विस्वरता नही सहस्वरता उत्पन्न होती है । रचना रचनात्मक न होती, यदि अपने विरोधी को भी वह निगल न जाती ।

किन्तु उस सजीव वस्त्र का क्या जो धरती की आत्मा बुनती है ? क्या वह ज्योही बुना जाता है स्वर्ग में रख दिया जाता है या हम पृथ्वी पर भी उस अलौकिक बुनावट के कुछ टुकड़े देख सकते है ? हम उन तन्तुओ का क्या समझें जो वस्त्र उधेड़ते समय करघे के पास पड़े रह जाते है ? सभ्यताओ के विघटन में हमने देखा कि उसकी यात्रा चाहे सारहीन हो, अपने पीछे भग्नावशेष छोड़े, वह समाप्त नही होती । जब सभ्यताओं का विनाश होता है तब अपने पीछे वे सार्वभौम राज्यो, सार्वभौम धर्मतन्त्रों और बर्बर सेना-दलो का अवशेष छोड़ जाती हैं । हम इन पदार्थों को क्या करे ? क्या ये केवल उच्छिष्ट पदार्थ है, या यदि हम इन कचरों को चुन लें तो बुनकर की कला के नये उत्कृष्ट नमूने उनसे तैयार होगे, जिसे उस खड़खड़ाते करघे के बजाय, जिस पर अभी तक उसका सारा ध्यान था, किसी अज्ञात करों के कौशल ने बुना है ?

इस प्रश्न पर विचार करते हुए यदि हम अपने पहले के अनुसंधानों के परिणाम पर ध्यान दें तो हम यह विश्वास कर सकेंगे कि ये अध्ययन की सामग्रियाँ सामाजिक विघटन की केवल उच्छिष्ट पदार्थ नही है । इससे कुछ अधिक हैं । क्योंकि पहले वे हमें विभाजन और सम्बन्ध के रूप में मिलती है, और यही एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता का सम्बन्ध है । स्पष्टतः इन तीनो सस्थाओ की व्याख्या किसी एक सभ्यता के इतिहास के माध्यम से नही हो सकती । उनके अस्तित्व के कारण एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता का सम्बन्ध है, इसलिए इनका अध्ययन अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से होना चाहिए । किन्तु उनकी यह स्वतन्त्रता उन्हे कितनी दूर तक ले जायेगी । सार्वभौम राज्यो पर विचार करते हुए हमने देखा कि जो शान्ति उन्होने स्थापित की वह प्रभावोत्पादक होने के साथ ही अस्थायी थी और बर्बर सेना-दलो के सम्बन्ध में विचार करते हमने देखा कि मृत सभ्यता के शव के ये कीड़े उससे अधिक नही जी सकते, जब तक यह सडती लाश गलकर अपने तत्त्वो में न मिल जाय ।

फिर भी यद्यपि सैन्य दल एकिलीज की अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, बर्बर के अल्प-जीवन की प्रतिध्वनि उन महाकाव्यो मे सुरक्षित रहती है जो वीर काल में रचे जाते है ।

इससे स्पष्ट है कि हम सम्प्रति इस नये प्रश्न का उत्तर तुरत नही दे सकते, यह भी स्पष्ट है कि हम उसकी अवहेलना भी नही कर सकते, क्योंकि इसी प्रश्न में बुनकर के कार्य का अभिप्राय निहित है । हमारा अध्ययन अभी पूरा नहीं हुआ है, परन्तु हम अपने अनुसन्धान के क्षेत्र के किनारे पहुँच गये हैं ।

सम्पादक का नोट

पहली चार सारणियाँ वही हैं जो श्री ट्वायनबी की मूल पुस्तक में हैं। ये उस महान् कार्य को बताती हैं जो सामाजिक विघटन के परिणाम है। पाँचवी सारणी थियालोजी आव टुडे, खण्ड पहला, अंक ३ से सम्पादक डॉक्टर जॉन ए० मेके तथा डॉक्टर उडवर्ड डी० मायर्स की कृपा से ली गयी है। डॉक्टर मायर्स ने उसमे एक लेख लिखा था 'समलीडिंग आइडियाज फ्राम ट्वायनबीज़ ए स्टडी आव हिस्ट्री' उसी के समझाने के लिए यह सारणी उन्होने बनायी थी। इस सारणी से ट्वायनबी के पहले छ खण्डो के सारे क्षेत्र का सिंहावलोकन हो जाता है।

पाठक को इस संक्षिप्त संस्करण में अनेक नाम तथा तथ्य ऐसे मिलेगे जिनसे वह अपरिचित है। उसका कारण यह है कि इस संक्षिप्त संस्करण के सम्पादक ने बहुत-से नाम तथा उदाहरण जान-बूझकर छोड़ दिये हैं। और बहुत-सा ब्योरा छाँट दिया है। इसलिए ये सारणियाँ यही नही कि लेखक के अध्ययन के बहुत-से परिणामो को स्पष्ट करेंगी, किन्तु यह भी स्मरण दिलायेंगी कि इस संक्षिप्त संस्करण में पाठकों को कितनी बातें नही मिल सकी।

पहली सारणी

सार्वभौम राज्य

सभ्यता	संकटकाल	सार्वभौम राज्य	विश्व-शान्ति	साम्राज्य-निर्माताओं का उद्‌गम
सुमेरी	म० २५२२–२१४३ या २४५८–२०७९ ई० पू०	सुमेर और अक्काद का साम्राज्य चार दिशाओंका राज्य	स० २१४३–१७५० या २०७९–१६८६ ई० पू०	निर्माता उरके नागरिक पुनःस्थापितकर्ता अमोराइट सीमानिवासी।
बैबिलोनी	–६१० ई० पू०	नव-बैबिलोनी साम्राज्य	६१०–५३९ ई० पू०	निर्माता नागरिक (?)[१] (कालडियन उत्तराधिकारी बर्बर) अकामिनीडी: और विदेशी सेल्युकेडी।
भारती	–३२२ ई० पू०	मौर्य साम्राज्य	३२२–१८५ ई० पू०	निर्माता नागरिक (?)[१] मगध से
		गुप्त साम्राज्य	सन् ३९०–४७५स०	„ „
चीनी	६३४–२२१ ई० पू०	त्सिन और हैन साम्राज्य	२२१ई०पू०–म० सन् १७२	निर्माता त्सिन की सीमा से उत्तराधिकारी पहले तथा बाद के हैन।
हेलेनी	४३१–३१ ई० पू०	रोमन साम्राज्य	३१ ई० पू० से सन् ३७८	निर्माता सीमावाले (रोमन) पुनःस्थापितकर्ता सीमावाले, इलीरियन।
मिस्री	म० २४२५–२०५० ई० पू०	मध्य साम्राज्य	स० २०५०–१६७५ ई० पू०	थीबीस की सीमावाले।
		नया साम्राज्य	स० १५८०–११७५ ई० पू०	„ „
परम्परावादी ईसाई (रूस में)	स० सन् १०७५–१४७८ ई०	मसकोवाइट साम्राज्य	सन् १४७८–१८८१	मास्को के सीमावाले।
सुदूर पूर्व (जापान में)	सन् ११८५–१५९७	हिदेयोशी अधिनायक तथा तोकुगावा शोगुनेत	सन् १५९७–१८६८	क्वान्तो की सीमावाले।
पश्चिमी (मध्ययुगीन नगर-राज्यों का समूह)	सं० सन् १३७८–१७९७	नैपोलियन का साम्राज्य	सन् १७९७–१८१४	फ्रान्स के सीमावाले।
पश्चिमी (उसमानलियों के विरुद्ध कवच)	स० ११२८[१]–१५२६ ई०	डैन्यूबका हैप्सबुर्ग राज्य	सन् १५२६–१९१८	आस्ट्रिया की सीमावाले।

ऐंडियाई	सं० सन् १४३०	इनका साम्राज्य (चारो दिशाओ का राज्य)	स० सन् १४३०–१५३३	निर्माता क्यूज्रको की सीमावाले उत्तराधिकारी (स्पेनी)
सीरियाई	स० ९३७–५२५ ई० पू०	अकिमीनियाई साम्राज्य	सं० ५२५–३३२ ई० पू०	बारबारो सीमाप्रान्ती (ईरानी से)।
		अरब खलीफा	सं० सन् ६४०–९६९	बर्बर अरब से ।
सुदूर पूर्व (मुख्य अंग)	सन् ८७८–१२८०	मंगोल साम्राज्य	सन् १२८०–१३५१	बारबारो विदेशी मंगोल ।
		मंचू साम्राज्य	सन् १६४४–१८५३[४]	बारबारो सीमाप्रान्ती (मंचू) ।
मध्य अमरीकी	सन् १५२१	नये स्पेन के वायसराय	सन् १५२१–१८२१	अग्रगामी बारबारो सीमा-प्रान्ती (एजटेक) निर्माता विदेशी (स्पेनी)
परंपरावादी ईसाई (मुख्य अंग)	मन् ९७७–१३७२	उसमानिया साम्राज्य	सन् १३७२–१७६८	विदेशी (उसमानली लोग)
हिन्दू	स० सन् ११७५–१५७२	मुगल राज्य	स० सन् १५७२–१७०७	विदेशी मुगल
		ब्रिटिश राज्य	सं० सन् १८१८–१९४७	विदेशी ब्रिटिश
मिनोई	सं०—१७५० ई० पू०	मिनोइयों का सागरी राज्य	सं० १७५०–१४०० ई० पू०	प्रमाण नही

नोट— सं० = सम्भवतः ।

१. बैबिलोनिया के कालडियन सीमाप्रान्ती भी कहे जा सकते हैं, नागरिक भी ।

२. मगध को पूर्व मौर्यकाल तथा मौर्यकाल के भारत का आन्तरिक भाग कह सकते हैं या उस काल के भारत का सीमाप्रान्त ।

३. पूर्वी रोमन अग्रगामी उसमानलियो तथा हंगरी के युद्ध के आरम्भ की तारीख ।

४. ताईपिंग आक्रामकों द्वारा नानकिंग लेने की तिथि ।

दूसरी सारणी

दर्शन

सभ्यताएँ	दर्शन
मिस्री	एटोनवाद (अकाल प्रसूत)
एंडियाई	विराकोकेईवाद (अकाल प्रसूत)
चीनी	कनफ्युशियनवाद
	मोवाद
	टाओवाद
सीरियाई	जरवानवाद (अकाल प्रसूत)
भारतीय	हीनयान बौद्ध
	जैन
पश्चिमी	कारटेसियनवाद
	हीगलवाद [1]
हेलेनी	प्लेटोवाद
	स्टोइकवाद
	एपिक्युरियनवाद
	पिर्रहनवाद
बैबिलोनी	ज्योतिष

१. हीगलवाद सामाजिक कार्यों तक सीमित = मार्क्सवाद; मार्क्सवाद पश्चिम से रूस में लाया गया = लेनिनवाद

तीसरी सारणी

ऊँचे धर्म

सभ्यताएँ	ऊँचे धर्म	प्रेरणा का स्रोत
सुमेरी	तम्मुजकी पूजा	देशी
मिस्री	ओसाइरीसकी पूजा	विदेशी (सुमेरी) ?
चीनी	महायान	विदेशी (भारतीय हेलेनी-सीरियाई)
भारतीय	हिन्दू धर्म	देशी
सीरियाई	इस्लाम	देशी
हेलेनी	ईसाई	विदेशी (सीरियाई)
	मिथ्रवाद	विदेशी (सीरियाई)
	मानिकेइज्म	विदेशी (सीरियाई)
	महायान	विदेशी (भारतीय)
	आइसिस-उपासना	विदेशी (मिस्री)
	साइबेले-उपासना	विदेशी (मिस्री)
	नव-प्लेटोवाद	देशी (सी देवान्त दर्शन)
बैबिलोनी	यहूदी	विदेशी (सीरियाई)
	पारसी	विदेशी (सिरियाई)
पश्चिमी	बहाईवाद	विदेशी (ईरानी)
	अहमदिया	विदेशी (ईरानी)
परम्परावादी ईसाई	इमामी शिया	विदेशी (ईरानी)
(मुख्य भाग)	बद्रुद्दीनवाद	अर्ध-विदेशी (ईरानी मिलावट)
परम्परावादी ईसाई	सम्प्रदायवाद (सेकेरियनिज्म)	देशी
(रूस में)	पुनर्जागरणवादी (रिवाइवलिस्ट) प्रोटेस्टेंट धर्म	विदेशी (पश्चिमी)
सुदूर पूर्व	कैथोलिकवाद	विदेशी (पश्चिमी)
(मुख्य भाग)	ताइपिंग	अर्धविदेशी (पश्चिमी मिलावट)
सुदूर पूर्व (जापान में)	जोडो	अर्ध-विदेशी (सुदूर पूर्वी मुख्य भाग से)
	जोडो शिनशू	देशी (जोडो से)
	निकेरीवाद	देशी
	जेन	अर्धविदेशी (सुदूर पूर्व मुख्य भाग से)
हिन्दू	कबीर और सिक्ख	अर्धविदेशी (इस्लामी मिलावट)
	ब्रह्म समाज	अर्धविदेशी (विदेशी मिलावट)

		उत्तर-पश्चिम	लीबियन		
		पूरब	हिब्रू तथा आरमियाई		येहोवा की पूजा
		उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश		
			सरमेशियन तथा हूण		सेतकी पूजा
		दक्षिण-पश्चिम	अरब	होमरी महाकाव्य	ओलिम्पियाई
		दक्षिण-पश्चिम	बर्बर		बहुदेवता पूजा ।
		पूर्व	हिब्रू और आरामियाई		येहोवा की पूजा ।
परम्परावादी	मसकोवाइट साम्राज्य	दक्षिण-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (तातारी		इस्लाम
ईसाई (रूस में)			तथा तोरगुट कालमुक)		लामा वाला
सुदूर पूर्व	तोकुगावा शोगूनेत	उत्तर-पूर्व	ऐनू		महायान बौद्ध धर्म ।
पश्चिमी	(यूरोप में)	उत्तर-पश्चिम	द्वीपवाले केल्ट	आयरिश महाकाव्य	सुदूरपूर्व पश्चिमी ईसाई
		उत्तर	स्कैंडिनेवियाई	आइसलैंडी सागा	स्कैंडिनेवियाई बहुदेवता
		उत्तर-पूर्व	महाद्वीपी सैक्सन		
			वैन्ड लिथुएनियन		
		पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (मगयर)		
		दक्षिण पूर्व	बोसनियक	मुसलिम जुगोस्लैव	पहले बोगोमिलिवाद
				वीर काव्य	फिर इस्लाम
इन्डियाई	उत्तरी अमरीका में	पश्चिम	रेड इडियन		अहिंसावादी जेलटवाद
	इनका साम्राज्य	पूर्व-दक्षिण	अमेजोनियन अरोकेनियन		
सीरियाई	अकेमीनियाई साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	मैसेडोनियन	सिकन्दरी रोमान्स	
		उत्तर-पूर्व	पारथियन शक	ईरानी महाकाव्य	
	अरब खिलाफत	उत्तर-पश्चिम	फ्रैंक	फ्रेंच महाकाव्य	कैथोलिक धर्म

चौथी सारणी

बर्बर युद्ध-दल

सभ्यता	सार्वभौम राज्य	सीमा	बर्बर	काव्य	धर्म
सुमेरी	सुमेर तथा अक्काद का साम्राज्य	उत्तर-पूर्व	गेटुइयन यूरेशियाई खानाबदोश (आर्य) कस्साइत	संस्कृत महाकाव्य	वैदिक बहुदेवता
		उत्तर-पश्चिम	हिताइत		
बैबिलोनी	नव-बैबिलोनी साम्राज्य	उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (सीथियाई)		हिताइत बहुदेवता
			मीड तथा परशियन		जरथुष्ट्र
भारती	मौर्य साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	शक	संस्कृत महाकाव्य	
	गुप्त साम्राज्य	"	हूण, गुर्जर	पुन निर्मित	
चीनी	त्सिन तथा हैन साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	यूरेशियाई खानाबदोश हियोगनू तोपा, जुआन जुआन		
		उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (सिएनपी) ?		
हेलेनी	रोमन साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	द्वीप के केल्ट	आयरिश महाकाव्य	सुदूर पश्चिम के ईसा
		उत्तर	महाद्वीपी ट्यूटोन	ट्यूटोनी महाकाव्य	पहले महाद्वीपी ट्यूटनी बहुदेवता बाद फिर एरियनवाद ।
मिस्री	मध्य साम्राज्य	दक्षिण	न्यूबियन	पूर्व इस्लामी अरबी काव्य	इस्लाम
	नया साम्राज्य	उत्तर-पूर्व-उत्तर	हाइक्सो एकियाई		

सभ्यता	सार्वभौम राज्य	सीमा	बर्बर	काव्य	धर्म
			पूर्व रोमन सीमावाले	बाइजेन्तियाई महा काव्य	परम्परावादी ईसाई
		दक्षिण पश्चिम	बर्बर		इसमाइली शीवाद
		दक्षिण पूर्व	अरब		” ”
		उत्तर	यूरेशियाई खानाबदोश खजार		जूडावाद
		उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (मंगोल, तुर्क)		मीकेईवाद, नैस्टोरीवाद
सुदूर पूर्वी (मुख्य अंग)	संकट काल	उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश खोतान, किन मंगोल		
	मंचू साम्राज्य	उत्तर-पूर्व	यूरेशियाई खानाबदोश (मंगोल)		
		उत्तर-पश्चिम	यूरेशियाई खानाबदोश (जुगर), कालमुक		लामा वाला महायानी बौद्ध धर्म
मध्य अमरीकी	नये स्पेन का वायसराय	उत्तर	चिचिमेक		
परम्परावादी ईसाई (मुख्य अंग)	उसमानिया साम्राज्य	उत्तर-पश्चिम	सर्ब	परम्परावादी ईसाई जूगोस्लाव के काव्य	
			अलबेनियाई	अलबेनियाई वीर काव्य	बेकताशी सुन्नी
			रूमेलियोट यूनानी	रोमेलियोट यूनानी आरमेटोल तथा क्लेपटिक वीर काव्य	
		उत्तर-पूर्व	लेज़ कुर्द		
		दक्षिण-पूर्व	अरब		नजदी वहाबी कोरदो-फानी
		दक्षिण	अरब		

हिन्दू	मुगल राज	उत्तर-पश्चिम	उजबक, अफगान		महदीवाद
	ब्रिटिश राज	उत्तर-पश्चिम	अफगान		
मिनोई	मिनोसका सागरतन्त्र	उत्तर	एकियाई	होमरी महाकाव्य	ओलिंसपयाई बहुदेवता-वाद
ईरानी	संकट का काल	पूरब	हिब्रू तथा आरमियाई		येहोवा की पूजा
हिताइत		उत्तर-पूर्व	उजबक अफगान		
		उत्तर-पूर्व	गैसगा		
		उत्तर-पश्चिम	फिजियाई		
		दक्षिण-पश्चिम	एकियाई	होमरी महाकाव्य	ओलिम्पियाई बहुदेवता-वाद
यूरेशियाई खानाबदोश	शाही सीथियन दल	उत्तर			
		पश्चिम	बैसतरनी		
		पूरब	सरमाशियन		
	खजार दल	पश्चिम	वरान्जियन	रूसी वीर काव्य गीत	परम्परावादी उत्तर ईसाई
		पूरब	पेचेनेग		
	मुनहरा दल	उत्तर-पश्चिम	कजाक		
		उत्तर-पूर्व	किरगिज कजाक	किरगिज कजाक के गीत	

पाँचवीं सारणी

सभ्यता		सम्बन्ध	उद्गम का देश तथा समय
१. मिस्री		किसी से सम्बन्ध नही	नील नदी की घाटी, ४००० ई० पू० से पहले
२ ऐंडियाई		किसी से सम्बन्ध नही	ऐंडियाई तट तथा पठार। ईसाई संवत् के आरम्भ के समय से
३. चीनी		पहले किसी से सम्बन्ध नही। सुदूर पूर्वी से प्रजनित	ह्वांगहो नदी की निचली घाटी। सम्भवत: १५००ई०पू०
४. मिनोई		पहले किसी से सम्बन्ध नही। हेलेनी तथा सीरियाई से (अदृढ़) प्रजनित	एजियन द्वीप—३००० ई० पू० से पहले
५ सुमेरी		पहले से सम्बन्ध नही ? बैबिलोनी तथा हेलेनी से प्रजनित	दजला तथा फरात की निचली घाटी सम्भवत: ३५०० ई० पू०
६. माया		पहले से सम्बन्ध नही—यूकेटी तथा मैक्सीकी से प्रजनित	दक्षिण अमरीकी उष्ण कटिबन्ध सम्भवत: ५०० ई०पू० से पहले
७. यकेर्टी	मिलकर मध्य अमरीकी निर्मित	माया से संबद्ध	यूकेटियाई प्राय द्वीप के जलहीन, वृक्षविहीन, चूना-पत्थर की पट्टी
८. मैक्सीकी			
९ हितायती		सुमेरी से अदृढ रूप से सम्बन्धित किन्तु धर्म अ-सुमेरी	सुमेरी सीमा से आगे कैपेडोशिया मे १५०० ई० पू० से पहले
१० सीरियाई		मिनोई से अदृढ सम्बन्ध ईरानी तथा अरबी से प्रजनित	सीरिया : ११०० ई०पू० से पहले
११. बैबिलोनी		सुमेरी से निकट सम्बन्ध	इराक : १५०० ई०पू० से पहले
१२. ईरानी	मिलकर इस्लामी	दोनो सीरियाई से सम्बन्धित और सन् १५१६ के बाद मिलकर इस्लामी समाज बना	अनातोलिया, ईरान, आक्सस-जैक्सार्टीज सन् १३०० के पहले
१३. अरबी			अरब, इराक, सीरिया, उत्तरी अफ्रीका सन् १३०० के पहले
१४. सुदूर पूर्वी, मुख्य अग		चीनी से सम्बन्धित, एक शाखा जापान मे	सन् ५०० के पहले
१५. सुदूर पूर्वी, जापानी शाखा		सुदूर पूर्वी के मुख्य अंग की शाखा	जापानी द्वीप समूह सन् ५०० के बाद
१६. भारतीय		पहले के किसी से सम्बन्ध नही, हिन्दू से प्रजनित	सिन्ध तथा गंगा नदी की घाटी सम्भवत: १५००ई०पू०

१७. हिन्दू	भारतीय से सम्बन्धित	उत्तरी भारत, सन् ८०० से पहले
१८. हेलेनी	मिनोई से अदृढ सम्बन्धित, पश्चिमी तथा परम्परावादी ईसाई से प्रजनित	एजियन का तट तथा द्वीप, ११०० ई० पू०
१९. परम्परावादी ईसाई, मुख्य अग	हेलेनी से सम्बन्धित, एक शाखा रूस मे	अनातोलिया सन् ७०० से पहले ११वी शती में
२०. परम्परावादी ईसाई, रूसी शाखा	परम्परावादी ईसाई के मुख्य अग की शाखा	रूस, ईसाई संवत् की १० वी शती
२१. पश्चिमी	हेलेनी से सम्बन्धित	पश्चिमी यूरोप, सन् ७०० के पहले

चुनौती	संकट-काल	सार्वभौम राज्य
१. भौतिक : सूखा पड़ना	स० २४२४–२०५२ ई०पू०	मध्य साम्राज्य नया साम्राज्य
२. भौतिक : तट की मरुभूमि मिट्टीविहीन पठार, जलवायु कठोर	सं० १४३० ,,	इनका साम्राज्य आयरलैण्ड के बाद पेरू के स्पेनी वायसराय
३. भौतिक : दलदल, बाढ, तापक्रम की पराकाष्ठा	सं० ६३४–२२१ ई० पू०	त्सिन तथा हैन साम्राज्य
४. भौतिक . सागर	?—१७५० ई० पू०	मिनोइयों का सागर तंत्र
५. भौतिक : सूखा पड़ना	सं० २६७७–२२९८ ई० पू०	सुमेर और अक्काद का साम्राज्य
६. भौतिक : उष्ण कटिबन्ध के जंगल। घने जंगल	?—३०० ईस्वी	माया का साम्राज्य
७. भौतिक : उजाड प्रायद्वीप सामाजिक	?—१५२१ ईस्वी	नये स्पेन के वायसराय। एजटेक सार्वभौम राज्य बनानेवाले ही थे कि स्पेनवाले आ गये।
८. पतनोन्मुख माया समाज		
९. सामाजिक : पतनोन्मुख सुमेरी समाज	पन्द्रहवीं शती ई० पू० तक	अपने संसार में प्रमुख, १३५२ ई० के बाद मिस्र से
१०. सामाजिक : पतनोन्मुख मिनोई समाज	स० ९३७–५२५ ई० पू०	अकिमीनियाई साम्राज्य, अरब के खलीफा
११. सामाजिक : पतनोन्मुख सुमेरी समाज	?—६१० ई० पू०	नव बैबिलोनी समाज

१२. सामाजिक : पतनोन्मुखसीरियाई ममाज		
१३. सामाजिक : पतन्नोन्मुख सीरियाई समाज		
१४. सामाजिक : पतनोन्मुख चीनी समाज		
१५. भौतिक : नयी धरती	८७८–१२८० ई०	मगोल साम्राज्य मचू, साम्राज्य
सामाजिक : मुख्यअंग से सम्पर्क	११८५—१५९७ ई०	हिन्दोयशी का अतिनायकवाद और कोकुगावा शकेगुनेट
१६. भौतिक : उष्ण कटिबन्ध के घने जंगल		
१७. सामाजिक : भारतीय समाज का विघटन	?—३२२ ई० पू०	मौर्य साम्राज्य , गुप्त साम्राज्य
१८. भौतिक : उजाड़ धरती और सागर	स० ११७५–१५७२ ईस्वी	मुगल राज, ब्रिटिश राज
सामाजिक : मिनोई समाज का विघटन	४३१–३१ ई० पू०	रोमन साम्राज्य
१९. सामाजिक : हेलेनी समाज का विघटन		
२०. भौतिक : नयी धरती	९७७–१३७२ ई०	उसमानिया साम्राज्य
सामाजिक : मुख्य अंग से सम्पर्क		मसकोवी साम्राज्य
२१. भौतिक : नयी धरती	१०७५—१४७८ ई०	
सामाजिक : हेलेनी समाज का विघटन		

सार्वभौम शान्ति	दर्शन	धर्म	धर्म की प्रेरणा का स्रोत
१. सं० २०५२–१६०० ई०पू० सं० १५८०–११७५ ई०पू०	एटनवाद अकाल प्रसूत	ओसाइरिस की उपासना एटनवाद	विदेशी ?—सुमेर ?
२. १४३०–१५३३ ई०	विराकोकेईवाद अकाल प्रसूत		
३. २२१ ई०पू० से १७२ ई०	पोवा, ताओवाद कन्फ्यूशियनवाद	महायान बौद्ध धर्म नव ताओ वाद	विदेशी भारतीय–हेलेनी-सीरियाई देशी किन्तु नकल
४. सं० १७५०–१४०० ई०पू०			
५. सं० २२९८–१९०५ ई०पू०	तम्बूज की पूजा—किन्तु सुमेरी समाज ने कोई ऐसी नयी कृति नही दी जो नया धर्म कहा जा सके । माया, हितायती, बैबिलोनी तथा भारतीय समाज विघटन के साथ आदिम मानव की विशेषता की ओर लौटते जान पडते है । अपने धर्म के काम-प्रवृत्ति तथा अपने दर्शन के अतिशय त्याग के बीच का, भावना के प्रति वे उदासीन हो जाते हैं, जब वे प्राचीन सामाजिक सरचना को ढहते हुए देखते हैं, पाप की भावना का अनुभव करते हैं ।		
६. सं० ३००–६९० ई०			
७. १५२१–१८२१ ई०			
८.			
९.			
१०. सं० ५२५–३७२ ई०पू० स० ६४०–९६९ ई०पू०	जरवनवाद अकाल प्रसूत	इस्लाम	देशी देशी
११. ६१०–५३९ ई०पू०	ज्योतिष	जूडावाद जोरास्टरवाद	विदेशी सीरियाई विदेशी सीरियाई
१२.			
१३.			
१४. १२८०–१३५१ ई० १६४४–१८५३ ई०		कैथोलिकवाद ताईपिंग	विदेशी पश्चिमी अर्ध-विदेशी पश्चिमी अंश
१५ १५९७–१८६३ ई०		जोडो जोडो शिन्शा निचिरेनवाद जेन	अर्द्ध-विदेशी मूल अंग से देशी देशी अर्द्धविदेशी मूल अंग से
१६. ३२२–१८५ ई०पू० ३००–४७५ ई० सं०	हीनयान बुद्ध धर्म, जैन धर्म	हिन्दू	देशी देशी

३१

१७. स० १५७२–१७०७ ई०		कबीरपथ, मिक्ख ब्रह्मसमाज	अर्द्ध-विदेशी—इस्लामी
सं० १८१८ ई०			अर्द्ध-विदेशी—विदेशी अंश
१८. ३१ ई०पू० ३७८ ई०	प्लेटोवाद	ईसाई	विदेशी-सीरियाई
	स्टोइकवाद	मिथ्रवाद	विदेशी-सीरियाई
	एपिक्यूरियनवाद	मनिकेईवाद	विदेशी-सीरियाई
	पाइरसीनवाद	आइसिस पूजा	विदेशी-मिस्री
		महायान बुद्ध धर्म	विदेशी-भारतीय
		सिबिले की पूजा	विदेशी–हितायती
१९. १३७२–१७६८ ई०		नव प्लेटोवाद	देशी
		इमामी शिया	विदेशी-ईरानी
२०. १४७८–१८८१ ई०		बदरुद्दीनवाद	अर्द्धविदेशी-ईरानी अंश
		सम्प्रदायवाद	देशी
२१.		पुनर्जीवित प्रोटेस्टेटवाद	विदेशी-पश्चिमी

अकाल-प्रसूत सभ्यताएँ—ये सभ्यताएँ जन्म से ही मृत थीं क्योंकि इन्हें अति कठोर चुनौती का सामना करना पड़ा। अकाल-प्रसूत सभ्यताएँ ये हैं— सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता, सुदूर पूर्वी ईसाई और स्कैंडिनेवियाई।

सुदूर पश्चिमी ईसाई सभ्यता—केल्टी किनारे पर आरम्भ हुई। मुख्यतः आयरलैंड में, सम्भवतः सन् ३७५ में। यह उस चुनौती का फल थी जो भौतिक थी तथा दोहरी सामाजिक चुनौती के कारण उत्पन्न हुई जो पतनोन्मुख हेलेनी समाज से तथा नवजात पश्चिमी समाज से हुई। अलगाव का काल सम्भवतः सन् ४५० से ६०० तक था। केल्टो ने ईसाइयत को अपने बर्बर सामाजिक परम्परा के अनुसार ढाला। छठी शती तक आयरलैंड पश्चिम में ईसाइयत का केन्द्र था। इसकी मौलिकता धर्म के संगठन तथा साहित्य और कला में वर्तमान है। इस सभ्यता पर अन्तिम प्रहार नवी से ग्यारहवी शती के बीच वाइकिंगो द्वारा हुआ और रोम की धार्मिक शक्तियों ने तथा इंग्लैंड की राजनीतिक शक्तियो ने बारहवी शती में किया।

सुदूर पूर्वी की ईसाई सभ्यता—यह सभ्यता नेस्टोरी ईसाई धर्म के बीज से आक्सस-जैक्सार्टिज़ बेसिन मे उत्पन्न हुई और जब अरबो ने ७३७–४१ ई० में इस प्रदेश को ले लिया, तब वह नष्ट हो गयी जिस समय वह लगभग नौ शतियो तक शेष सीरियाई संसार से अलग हो गयी थी। यह शिशु सभ्यता मध्य एशियाई इतिहास के नौ शतियो का परिणाम थी, जिनमें यह बेसिन मे अपना निजी जीवन व्यतीत कर रही थी। उसकी विशेषता यह थी कि इसके द्वारा नये व्यापारिक मार्गों का निर्माण हुआ और बड़ी सख्या में इसके द्वारा यूनानी उपनिवेशक उत्पन्न हुए।

स्कैंडिनेवियाई सभ्यता—जब रोमन सभ्यता का विघटन हुआ, उस समय हेलेनी बाहरी सर्वहारा से यह सभ्यता निकली। मूर्तिपूजक स्लावो के बीच में आ जाने के कारण स्कैंडिनेवियाई लोग रोमन ईसाई जगत से छठी शती की समाप्ति तक अलग रहे। जब पश्चिम से फिर से सम्पर्क स्थापित हुआ, तब से इनकी अपनी सभ्यता का विकास होने लगा। और जब आइसलैंड-वाले ईसाई धर्म को अपनाने लगे इनकी सभ्यता का विनाश होने लगा। इनकी सभ्यता की विशेषता सौन्दर्य-भावना लिये हुए थी और यूनानी संस्कृति से बहुत मिलती है।

अविकसित सभ्यताएँ—इनमे पोलीनेशियाई, एसकिमो, खानाबदोश, स्पार्टन तथा उसमानली वर्ग हैं। इनका विघटन इस कारण हुआ कि इन्होंने असाधारण शक्ति अर्जित करने का प्रयास किया और उसे अर्जित किया। ये ऐसी चुनौती के परिणाम थी और उस सीमा पर है जहाँ कुछ प्रेरणा मिलती है और उस स्थान पर पहुँचती है जब क्रमागत ह्रास होने लगता है। स्पार्टनो तथा उसमानलियो के सम्बन्ध मे यह चुनौती मानवी थी, और लोगों के सम्मुख चुनौती भौतिक थी। इन सबकी दो विशेषताएँ हैं— जातिवाद तथा विशिष्टीकरण। इन सबने मानवी इच्छा-शक्ति का चमत्कार तथा विचक्षणता दिखायी, किन्तु उसका मूल्य चुकाना पड़ा मानवता के उस गुण से, जिसमें मनुष्य के सर्वतोमुखी होने की विशेषता होती है। इन सबने मानवता से पशुता की ओर अपना पाँव रखा।

एसकिमो—आर्थिक लाभ की प्रेरणा ने इन्हें असाधारण शक्ति दी, जिससे ये समुद्रतट पर अथवा समुद्र पर जो सदा बर्फ से ढँका रहता है जाड़े में भी रहने लगे और सील मछली का शिकार करने लगे। इसमें इनकी शक्ति व्यय होती है कि और किसी प्रकार की उन्नति के लिए शेष नहीं

रह जाती । आर्कटिक जल-वायु के चक्र के अनुकूल रहने के कारण इन्हें अविकसित होने का दण्ड भुगतना पड़ता है ।

उसमानली—खानाबदोश समुदाय से विदेशी वातावरण में जाने की भौगोलिक चुनौती का सामना इन्हे करना पड़ा जिससे इन्हे विदेशी मानवी समुदाय पर, पशुओं के स्थान पर शासन करना पड़ा । उनकी सबसे बडी शक्ति उसमानिया दास-परिवार की प्रथा थी । अर्थात् मानव को कुत्ते के स्थान पर बादशाह के रिआया पर रक्षा करने तथा वश में करने के लिए ये काम में लाये । अपनी मानवोचित प्रकृति को दूर करके जहाँ तक सम्भव था, इन्होने सफलता प्राप्त की और पाशव प्रकृति को ग्रहण किया । तथा सहज प्रवृत्ति की एकता की राह को त्याग दिया ।

खानाबदोश—जिस प्रकार मिस्री तथा सुमेरी सभ्यताओं को सूखा का सामना करना पड़ा, उसी प्रकार इन्हें भी स्टेप पर सूखे का सामना करना पड़ा । स्टैप को वश में करने में इतनी शक्ति व्यय हो जाती है कि कुछ शेष नही रह जाता । खानाबदोशी कृषि से कई बातों मे उत्कृष्ट है । पशुओं के पालने मे तथा आर्थिक तकनीक के विकास में यह कृषि से बढ़कर है । उद्योगवाद के समान है । इसलिए खानाबदोशी में ऊँचे चरित्र तथा व्यवहार की आवश्यकता होती है । 'अच्छा गडेरिया' ईसाई धर्म का प्रतीक है ।

स्पार्टन—ईसा के पहले आठवी शती में सारे हेलेनी ससार में अति जनसंख्या की समस्या हो गयी थी और स्पार्टनों ने इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया कि ऐसी शक्ति अर्जित की कि सारी आबादी को—उसमानिया ससार की भाँति—सैनिक-शिक्षा केवल दी । मानव भावना का तनिक भी विचार नहीं किया । यह भी एकाकी राह थी । स्पार्टा की प्रथा मे तथा उसमानिया प्रथा मे अनेक समानताएँ हैं । इसका कारण यह है कि दोनो ने, एक-दूसरे से विभिन्न समुदायो ने स्वतन्त्र रूप से तथा एक-दूसरे के जाने बिना एक ही ढग अपनाया ।

पोलेनेशियाई—इनको सागर की चुनौती का सामना करना पड़ा और इन्होने सागर-यात्रा करने की महान् शक्ति अर्जित की । उनका कौशल साधारण कमजोर नौकाओ में महासागरों में यात्रा करने में था । इसका उन्हे दण्ड यह मिला कि प्रशान्त महासागर में ही ये रह गये । यह इस सागर को आर-पार करते रहे, किन्तु आत्मविश्वास तथा विश्रान्ति का अभाव था । अन्त में इस तनाव के कारण ये शिथिल हो गये । ईस्टर द्वीप की पत्थर की मूर्तियाँ इस बात की प्रमाण है कि इनके निर्माता भूतकाल मे महान् रहे होगे । क्योकि यह कला इनके पूर्वज अग्रगामी लाये होगे जिसे उनके वशजो ने भुला दिया, जिस प्रकार नाविक-विद्या को इन्होने भुला दिया ।

अनुक्रमणिका

१. विषय-प्रवेश

१. ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई

ऐतिहासिक अध्ययन की समझ में आनेवाली इकाइयाँ राष्ट्र अथवा काल नही हैं, 'समाज' हैं। सिलसिले से इंग्लैंड के इतिहास की परीक्षा से पता चलता है कि वह केवल अपने में ही समझ में नही आ सकता, वह एक बड़े पूर्ण का टुकड़ा है। इस पूर्ण में अनेक भाग है (जैसे इंग्लैंड, फ्रान्स, नेदरलैंड्स), जिन्हें उन्ही प्रेरणाओ अथवा चुनौती का सामना करना पडा है किन्तु उनकी प्रतिक्रिया अलग-अलग हुई है। इसके करने के लिए हेलेनी इतिहास से एक उदाहरण लिया गया। जिस 'पूर्ण' या 'समाज' में इंग्लैंड सम्मिलित है उसे पश्चिमी ईसाई संसार कहा जाता है, समय तथा काल के अनुसार उसका विस्तार नापा गया है और समय के अनुसार उसका आरम्भ। वह अपने से उत्पन्न समाजों से पुराना है, किन्तु कुछ ही। उसके आरम्भ के पता लगाने से मालूम हुआ है कि एक और समाज था जो नाश हो गया जिसे ग्रीको-रोमन अथवा हेलेनी समाज कहते है उसी से हमारा समाज सम्बद्ध है। यह भी स्पष्ट है कि और भी अनेक जीवित समाज हैं जैसे परम्परावादी ईसाई समाज, इस्लामी, हिन्दू तथा सुदूरपूर्व समाजो और ऐसे जीवाश्मित समाजों के चिह्न, जिनके बारे में जानकारी नही है, जैसे यहूदी तथा पारसी।

२. सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन

इस अध्याय का अभिप्राय यह है कि सब समाजों अर्थात् सभ्यताओं का निरूपण किया जाय, उनका गुण बताया जाय और उनका नाम बताया जाय, जिनका जन्म आज तक हो चुका है और उनमें आदिम अर्थात् असभ्य समाज भी है। पहली प्रणाली यह होगी कि हम उन सभ्यताओं को लेंगे जो मौजूद है और जिनका निरूपण हो चुका है, उनके आरम्भ का अध्ययन करेंगे कि किसी लुप्त सभ्यता से तो ये सम्बद्ध नहीं रही हैं जैसे हेलेनी सभ्यता से पश्चिमी सभ्यता सम्बद्ध है। इस सम्बद्धता के लक्षण ये है—(क) सार्वभौम राज्य (जैसे रोमन साम्राज्य) (ख) अन्त काल जिसमें (ग) धर्मतन्त्र और (घ) वीरकाल में जनरेला दृष्टिगोचर होते है। धर्मतन्त्र तथा जनरेला विनाशोन्मुख सभ्यता के बाहरी तथा आन्तरिक सर्वहारा परिणाम हैं। इन संकेतों के सहारे हम देखते हैं कि परम्परावादी ईसाई समाज हमारे पश्चिमी समाज की भाँति हेलेनी समाज से सम्बद्ध है। इस्लामी समाज के मूल का पता लगाते हुए हम देखते है कि मूल में यह दो विभिन्न समाजों—ईरानी तथा अरबी का—मिश्रण है। इनका भी मूल जब हम देखते हैं तब पता चलता है कि हेलेनी प्रवेश के एक हजार साल पहले एक लुप्त समाज इनका मूल है जिसे सीरियाई समाज कहा जाता है।

हिन्दू-समाज के पीछे भारतीय समाज था ।

सुदूर पूर्वी समाज के पीछे चीनी समाज था ।

जीवाश्म समाज उन एक अथवा अनेक लुप्त समाजों के अवशेष हैं ।

हेलेनी समाज के पूर्वज मिनोई समाज है किन्तु हम देखते हैं कि दूसरे समाजों के समान, जिनका हम निरूपण कर चुके हैं, हेलेनी समाज ने अपने पूर्वजों के आन्तरिक सर्वहारा द्वारा आविष्कृत धर्म को नहीं अपनाया । इसलिए कहा जा सकता है कि इनसे उनका वास्तविक सम्बन्ध नहीं था ।

भारतीय समाज के पीछे सुमेरी समाज था ।

भारतीय समाज के अतिरिक्त सुमेरी समाज के दो और वंशज थे, हिताइती तथा बैबिलोनी ।

मिस्री समाज का कोई पूर्वज नहीं था, न उत्तराधिकारी ।

नयी दुनिया में हम चार समाजो का पता पाते है—एंडियाई, यूकेटी, मेक्सिकी तथा माया ।

इस प्रकार कुल उन्नीस सभ्यताओ के नमूने हमे मिलते हैं । और यदि हम परम्परावादी ईसाई समाज का विभाजन करते है तो दो हैं—परम्परावादी बाइज़ेन्टाइनी (अनातोलिया और बालकन) और परम्परावादी रूसी समाज और सुदूर पूर्व के दो भाग चीनी तथा जापानी-कोरियाई । इस प्रकार इक्कीस समाज है ।

३. समाजों की तुलना

(१) सभ्यताएँ और आदिम समाज

सभ्यताओं में एक बात समान है कि वे आदिम समाज मे से भिन्न वर्ग हैं । इन अन्तिम वालों की संख्या बहुत अधिक है, प्रत्येक बहुत छोटी है ।

(२) सभ्यता की अन्विति का भ्रम

यह भ्रम कि सभ्यता केवल एक है और वह हमारी, इसकी परीक्षा की गयी और अमान्य कर दी गयी । और यह भ्रमपूर्ण सिद्धान्त भी अमान्य कर दिया गया कि सब सभ्यताओं का स्रोत मिस्री है ।

(३) सभ्यताओं के सादृश्य का दावा

तुलनात्मक दृष्टि से सभ्यताएँ नूतन स्थितियाँ हैं, उनमें सबसे पुरानी का जन्म छ हजार वर्ष हुए हुआ । यह विचार है कि उन पर एक ही जाति के दार्शनिक समकालिक सदस्यो की भाँति विचार किया जाय । इस बात की आलोचना की गयी है कि अर्ध-सत्य कि 'इतिहास की पुनरावृत्ति नही होती' कोई समुचित कारण नहीं है और जो प्रणाली अपनायी गयी है उसके विरोध में उचित तर्क नही है ।

(४) इतिहास, विज्ञान और कल्पना-साहित्य

अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए तीन प्रणालियाँ है जिनमें एक मानव-जीवन का रूप भी है । इन तीनों तकनीकों का अन्तर विचारा गया है और इतिहास के विषय को प्रस्तुत करने के लिए विज्ञान तथा कल्पना-साहित्य के प्रयोग पर विचार किया गया है ।

२. सभ्यताओं की उत्पत्ति

४. समस्या और उसका न सुलझाना

(१) समस्याका रूप

२१ सभ्य समाजों में १५ पुरानी सभ्यताओं से सम्बद्ध हैं किन्तु ६ सीधे आदिम समाजों से निकली हैं। आज जो पुराने समाज हैं वे स्थैतिक हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि वे पहले गत्यात्मक तथा प्रगतिशील रहे होगे। सामाजिक जीवन मानव प्रजाति से पुराना है, कीड़ों तथा पशुओं में भी वह पाया जाता है, इन्हीं आदिम समाजों से अवमानव मानव के स्तर पर आया होगा—ऐसी प्रगति किसी सभ्यता ने नहीं की। फिर भी जहाँ तक ज्ञान है आदिम समाज स्थैतिक हैं। समस्या यह है कि आदिम से कैसे उन्नति हुई।

(२) प्रजाति

जिस तथ्य की हम खोज कर रहे हैं वह यह है कि मानव में जिन्होने सभ्यता का आरम्भ किया, कोई विशेष गुण रहा होगा या उस वातावरण मे कोई विशेषता रही होगी जब दोनों का सामना हुआ होगा। पहला विचार कि एक-एक उत्कृष्ट प्रजाति जैसे नार्डिक (प्रजाति) संसार में थी जिसने सभ्यता का आरम्भ किया, परखा गया और त्याग दिया गया।

(३) वातावरण

इस विचार की परीक्षा की गयी कि कुछ वातावरण ऐसे होते है जो सुविधापूर्ण होते हैं जिस कारण सभ्यता का विकास होता है और यह सिद्धान्त भी गलत निकला।

५. चुनौती और उसका सामना

(१) पौराणिक संकेत

जिन दो विचारों की परीक्षा की गयी और त्याग दिया गया उनमे भ्रम है। वे भौतिक विज्ञान, जैसे जीव-विज्ञान तथा भू-विज्ञान का आधार लेते हैं। समस्या वास्तव में आध्यात्मिक है। मानव-प्रजाति की पौराणिक कथाओ में जिनमें मानवता की बुद्धि सुरक्षित है पता चलता है कि सभ्यता विशेष भौगोलिक अथवा जीव-वैज्ञानिक परिस्थितियों के कारण नही विकसित होती, इस कारण विकसित होती है कि मानव के सामने कठिनाई उपस्थित होती है और उसका सामना करने में उसमें प्रेरणा उत्पन्न होती है।

(२) पौराणिक आधार पर समस्या

सभ्यता के आरम्भ के पहले अफ्रेशियन रेगिस्तान (सहारा और अरब के रेगिस्तान) जलयुक्त घास के मैदान थे। धीरे-धीरे ये सूखने लगे। इस चुनौती का सामना विभिन्न ढंग से वहाँ के निवासियों ने किया। कुछ वहीं रह गये और उन्होंने अपनी आदत बदल दी और खाना-बदोशी जीवन बिताने लगे। कुछ दक्षिण की ओर चले गये जिस ओर घास के मैदान खिसक रहे थे और उष्ण कटिबन्ध में आ गये। उन्होंने अपना पुराना जीवन ज्यों-का-त्यों रखा और आज तक उसी प्रकार रहते हैं। दूसरे नील नदी के डेल्टा में चले गये जहाँ उन्होंने दलदलों तथा जंगलों की चुनौती का सामना किया, उन्हें साफ किया और मिस्री सभ्यता की नीव डाली।

इसी प्रकार तथा इन्हीं कारणों से सुमेरी सभ्यता का दजला-फरात के डेल्टा में आविर्भाव हुआ।

इसी प्रकार ह्रांगहो नदी की घाटी में चीनी सभ्यता का आरम्भ हुआ । यहाँ किस प्रकार की चुनौती का सामना करना पड़ा अज्ञात है, किन्तु वह सरल नहीं, कठोर रही होगी ।

माया सभ्यता का आरम्भ उष्ण कटिबन्धीय जंगलों की चुनौती से आरम्भ हुआ, ऐंडियाई सभ्यता का उजाड़ पठार से ।

मिनोई सभ्यता सागर की चुनौती से आरम्भ हुई । उसके निर्माता अफ्रीका के सूखते तट से भागे थे, उन्होंने सागर का आश्रय लिया, क्रीट तथा पास के टापुओं में बस गये । पहले-पहल वे एशिया या यूरोप की मुख्य भूमि से नही आये ।

सम्बद्ध सभ्यताएँ भौगोलिक कारणों से पहले नही जन्मीं । मानवी वातावरण उनका कारण था । वे उस शक्तिशाली अल्पसंख्या से निकलीं जिस समाज से उनका सम्बन्ध था । शक्तिशाली अल्पसंख्या की परिभाषा है—वह शासक-वर्ग जिसका नेतृत्व समाप्त हो गया है और जो उत्पीड़क बन गयी है । इस पतनोन्मुख सभ्यता के आन्तरिक तथा बाहरी सर्वहारा उनसे अलग हो जाते हैं और नयी सभ्यता की नीव रखते हैं ।

६. विपत्ति के गुण

अन्तिम अध्याय में सभ्यताओ के जन्म का जो कारण बताया गया है वह इस परिकल्पना के आधार पर है कि सरल नहीं, कठोर परिस्थितियों के कारण सभ्यताओं का जन्म होता है। इस परिकल्पना के लिए उन स्थलो से प्रमाण दिये गये है जहाँ किसी काल में सभ्यताएँ थी, परन्तु उनका लोप हो गया और फिर वे पुरानी स्थिति में लौट गयी ।

जहाँ कभी माया सभ्यता थी वहाँ आज उष्ण कटिबन्ध का जंगल है ।

भारतीय सभ्यता लंका के उस आर्द्र भाग में थी, जहाँ पानी नही बरसता । आज वह प्रदेश फिर सूखा है । भारतीय सिंचाई के अवशेष बताते है कि यहाँ कभी सभ्यता थी ।

पेटरा और पालमिरा के खँडहर अरबी रेगिस्तान के एक नखलिस्तान मे है ।

पैसिफिक सागर के सुदूर द्वीप में ईस्टर की मूर्तियाँ बताती है कि वहाँ कभी पोलिनेशियाई सभ्यता का केन्द्र रहा होगा ।

न्यू इंग्लैंड, जहाँ के यूरोपियन उपनिवेशकों ने उत्तरी अमरीका के इतिहास में बहुत कार्य किया है, उस महाद्वीप का बहुत ही निर्जन और उजाड़ प्रदेश है ।

रोमन कैंपेगना के लैटिन नगरो ने,जो कुछ दिन पहले मलेरिया से पूर्ण उजाड़ थे,रोमन शक्ति के विकास में बहुत सहायता की । उसकी तुलना कैपुआ के सरल स्थिति किन्तु अनुपयुक्त परिणाम से कीजिए । हेरोडोटस, ओडेसी तथा एक्सोडस की पुस्तकों से भी उदाहरण दिये गये है ।

न्यासालैंड के निवासी जहाँ जीवन के साधन सरल हैं उस समय तक असभ्य थे जब सुदूर यूरोप के लोगों ने आक्रमण किया ।

७. वातावरण की चुनौती

(१) कठोर देशों की प्रेरणा

दो सटे हुए अनेक प्रदेशों की परीक्षा की गयी है । प्रत्येक में पहले वाला कठोर है और किसी-न-किसी सभ्यता का वहाँ जन्म हुआ है । ह्रांगहो नदी तथा यांगत्सी नदी की घाटी, अटिका

और बेओशिया, बाइजैन्तिया तथा कालचिडोन, इसरायल, फोएनीशिया और फिलस्तीन, ब्रान्डेन्बुर्ग और राइनलैंड, स्काटलैंड और इंग्लैंड, और उत्तरी अमरीका के अनेक उपनिवेश ।

(२) नयी भूमि द्वारा प्रेरणा

हम देखते हैं कि अक्षत भूमि की चुनौती अधिक श्रेयस्कर होती है बजाय उस भूमि के जो जोती जा चुकी है और जो पहले के सभ्य लोगों द्वारा सरल बना दी गयी है । इस प्रकार प्रत्येक सम्बद्ध सभ्यता के निरीक्षण से पता चलता है कि उस सभ्यता ने उन स्थानों में अधिक उन्नति दिखायी है जो उनके पूर्वजो के क्षेत्र के बाहर थे । यदि नये क्षेत्र में समुद्र द्वारा आगमन हुआ तो अधिक विकास हुआ है । इसका कारण बताया गया है और यह भी बताया गया है कि नाटक का विकास स्वदेश में होता है और महाकाव्य का समुद्र पार नये उपनिवेश में ।

(३) आघात से प्रेरणा

हेलेनी तथा पश्चिम के इतिहास से अनेक उदाहरण दिये गये है । अचानक पूर्ण पराजय से पराजित दल अपने प्रदेश को व्यवस्थित करता है और विजयी बन जाता है ।

(४) दबाव द्वारा प्रेरणा

अनेक उदाहरणो द्वारा बताया गया है कि जो लोग सीमा पर रहते हैं और जिन्हे सदा आक्रमण का सामना करना होता है वे उन लोगों से अधिक विकास करते है जो सुरक्षित स्थान में रहते हैं । जैसे उसमानली,जो रोमन साम्राज्य की सीमा पर थे अधिक उन्नति कर सके बजाय क़रमानलियो के जो उनके पूरब थे । बैवेरिया से अधिक उन्नति आस्ट्रिया ने की, क्योकि इन्हे तुर्को के हमलों का सदा सामना करना पड़ा । रोम के पतन तथा नारमन विजय के बीच के काल के ब्रिटेन का इस दृष्टि से अध्ययन किया गया है ।

(५) दण्डात्मक दबाव की प्रेरणा

अनेक वर्गों तथा प्रजातियो को उन वर्गों तथा प्रजातियो द्वारा शतियों तक दण्ड भोगना पड़ा । दण्डित वर्गों तथा प्रजातियो ने इस चुनौती को इस प्रकार स्वीकार किया कि उन बातों मे उन्होने बहुत प्रगति की जो उनके लिए छोड दी गयी थी क्योकि बहुत-सी सम्भावनाएँ उनसे छीन ली गयी थी । सबसे कठोर दण्ड दासता का है । ईसा के पूर्व अन्तिम दो शतियो मे पूर्वी भू-मध्यसागर से जो दास इटली मे लाये गये थे, वे ऐसे स्वतन्त्र वर्ग हो गये जो भयानक रूप से शक्तिशाली हो गये ।

इस दास-जगत् से आन्तरिक सर्वहारा का नया धर्म उत्पन्न हुआ, जिनमें ईसाई धर्म भी है ।

इस दृष्टि से उसमानलियो के शासन मे पराजित ईसाइयो का भी अध्ययन किया गया है, विशेषतः फनारियोटो का । इस उदाहरण तथा यहूदियों के उदाहरण से प्रमाणित किया गया कि जिन्हें हम प्रजातिगत लक्षण कहते हैं, वे प्रजातिगत नही है,उस समुदाय की ऐतिहासिक अनुभूतियो के परिणाम हैं ।

८. सुनहला मध्यम मार्ग

(१) पर्याप्त और आवश्यकता से अधिक

क्या हम यह कह सकते हैं कि जितनी ही कठोर चुनौती होगी उतना ही बढ़िया सामना होगा ? या यह भी हो सकता है कि चुनौती इतनी कठोर हो कि सामना हो ही न सके ? ऐसा अवश्य

हुआ है कि कुछ चुनौतियों का सामना अनेक समाज नहीं कर सके, किन्तु अन्त में एक दल ने सफलतापूर्वक उसका सामना किया। उदाहरण के लिए बढ़ते हुए हेलेनीवाद का सामना केल्ट नही कर सके, किन्तु ट्यूटनों ने सफलता से उसका सामना किया। सीरियाई संसार में 'हेलेनी प्रवेश' का सामना सीरियाई जगत् ने—जो राष्ट्रियनो, यहूदियों (मकाबियन), नैस्टोरियनों तथा मोनोफाइसाइटों ने असफलता से किया, किन्तु पाँचवाँ सामना इस्लाम ने सफलतापूर्वक किया।

(२) तीन पदों (टर्म्स) में तुलना

फिर भी यह प्रमाणित किया जा सकता है कि चुनौतियाँ बहुत कठोर हो सकती हैं। श्रेष्ठतम चुनौती से सदा अधिकतम परिणाम नही निकलता। नारवे के वाइकिंग प्रवासियों ने आइसलैंड की चुनौती का सफलता से सामना किया, किन्तु उससे कठोर चुनौती ग्रीनलैंड की वे बरदाश्त नही कर सके। यूरोपियन उपनिवेशकों ने डिक्सी से कठोर चुनौती का मसाचसेट में सफलता से सामना किया, किन्तु उससे भी कठोर चुनौती में लैबरेडर में वे असफल रहे। दूसरे उदाहरण भी हैं। प्रहार यदि अधिक दिनों तक रहे तो बहुत कठोर हो जाता है। जैसे इटली में हैनिबली युद्ध का। चीनी लोग जब मलय में गये, तब उन्होंने सफलता से सामना किया, परन्तु गोरे चमड़े वालों के देश कैलिफोरनियाँ में वे असफल रहे। अन्त में पड़ोस के बर्बरों पर सभ्यताओ की चुनौतियों का अवलोकन किया गया है।

(३) दो अकाल-प्रसूत सभ्यताएँ

इस अंश में अन्तिम उदाहरण के विषय को और बढ़ाया गया है। पश्चिमी ईसाई जगत् के इतिहास के पहले अध्याय में जो दो बर्बर दल ईसाई जगत् की सीमा पर थे इतने उत्प्रेरित हुए कि उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी सभ्यता का विकास आरम्भ किया, किन्तु जन्मते ही उनका विनाश कर दिया गया। ये दो बर्बर दल थे—सुदूर पश्चिम के केल्टिक ईसाई (आयरलैंड और आयोवा) तथा स्कैंडिनेवियाई। इन पर विचार किया गया है कि यदि ये दोनों प्रतिद्वन्द्वी रोम तथा राइनलैंड से चली ईसाई सभ्यता द्वारा समाप्त न कर दिये गये होते तो परिणाम क्या होता।

(४) ईसाई जगत् पर इस्लाम का आघात

पश्चिमी ईसाई जगत् पर इस प्रहार का परिणाम अच्छा हुआ। मध्ययुग में पश्चिमी सभ्यता मुसलिम आइबीरिया की बहुत ऋणी है। बाइजेन्ती ईसाई जगत् पर यह प्रहार बहुत कठोर था इस कारण सीरियाई लीओ के नेतृत्व में रोमन साम्राज्य का फिर से उदय हुआ। मुसलिम संसार से घिरे किले के भीतर ईसाई अश्मित अबीसीनया की भी परीक्षा की गयी है।

३. सभ्यताओं का विकास

१. अविकसित सभ्यताएँ

(१) पोलिनेशियाई, एसकिमो और खानाबदोश

ऐसा समझा जा सकता है कि एक बार किसी सभ्यता का जन्म हो गया तो वह विकसित होती चलेगी, किन्तु ऐसा नहीं होता। अनेक सभ्यताओं के उदाहरण दिये गये हैं जिनका जन्म तो हो गया, किन्तु उनका विकास नही हो सका। ऐसी अविकसित सभ्यताओ का कारण यह है कि वे कठोर चुनौती तथा कठोरतम चुनौती के बीच पड़ गयीं जिनसे वे असफल हो गयीं। ऐसे तीन

उदाहरण हैं जिन्हें इस प्रकार के कठोर भौतिक वातावरण का सामना करना पड़ा। इनमें सामना करने वालों को अपनी सारी शक्ति सामना करने में लगा देनी पड़ी और आगे के विकास के लिए उनके पास शक्ति बच नहीं रह सकी।

पोलिनेशियनों को अपनी सारी शक्ति पैसिफिक सागर के अनेक द्वीपों में आने-जाने में खर्च हो गयी। अन्त में वे पराजित हो गये और अनेक अलग-अलग द्वीपो में वे आदिम जीवन बिताने लगे।

एसकिमो ने आर्कटिक सागर के तट पर के वार्षिक जलवायु के चक्र के अनुसार विशेष क्षमता प्राप्त कर ली।

इसी प्रकार खानाबदोशों ने स्टेप के अर्ध-रेगिस्तान में वार्षिक चक्र के अनुसार जीवन बिताने की दक्षता प्राप्त की। सूखा के समय के खानाबदोश के जीवन के विकास का विश्लेषण किया गया है। यह बताया गया है कि शिकारी लोग खानाबदोश होने के पहले खेतिहर हो गये थे। केन ओ एबेल खेतिहर तथा खानाबदोश के प्रतीक हैं। खानाबदोश लोग या तो सूखा बढ़ने के कारण स्टेप के आगे सभ्यता के क्षेत्र में घुसते है या किसी सभ्यता के पतन के कारण जो शून्यक उत्पन्न हो जाता है उसमें जनरेला के साथ घुसते है।

(२) उसमानली वंश

जिस चुनौती का परिणाम उसमानिया व्यवस्था थी वह खानाबदोश समुदाय का ऐसे समुदाय पर शासन करना था जो स्थावर थी। उन्होने समस्या को इस प्रकार सुलझाया कि अपनी नयी प्रजा को भेड-बकरी समझा और दासों को शासक और सैनिक बनाकर उन्हें कुत्तों के समान भेड़-बकरियों का रक्षक बनाया। ऐसे ही अन्य खानाबदोश साम्राज्यों का जिक्र किया गया है। जैसे मामलूक, किन्तु उसमानिया व्यवस्था सबसे दक्ष तथा टिकाऊ थी। किन्तु खानाबदोशों के समान इसमे भी कठोरता आ गयी थी।

(३) स्पार्टन

स्पार्टनो को अधिक आबादी की चुनौती का सामना करना पड़ा। उन्होने ऐसी महान् शक्ति का विकास किया जो अनेक दृष्टियो से उसमानलियों की व्यवस्था के समान थी। अन्तर यह था कि स्पार्टा की सैनिक जाति स्पार्टा की धनिक वर्ग ही थी। ये भी एक प्रकार के दास थे जिन्होंने अपने ऊपर साथी यूनानियों पर शासन करने का कार्य ले रखा था।

(४) साधारण विशेषताएँ

एसकिमो और खानाबदोशो में, उसमानलियो और स्पार्टनो में एक बात समान है। पहले दोनों में कुत्ते, बारहसिंघे, घोड़े, गाय-बैल उसमानलियों के दासों के दासो की जगह रहते हैं। इन सब समाजों में मानव को केवल, घुड़सवार या सिपाही बनाकर अवमानव के स्तर पर गिरा दिया जाता है। सर्वगुण सम्पन्न मानव नहीं रह जाते, जैसा पेरिक्लीज़ ने अन्त्येष्टि के भाषण में कहा था कि ऐसा ही मनुष्य सभ्यता का विकास कर सकता है। ये अविकसित समाज मक्खियों तथा चींटियों के समाज के समान हैं जो सृष्टि के आरम्भ से आज तक वैसे ही हैं। ये उस समाज के समान भी हैं जिनका चित्रण यूटोपिया मे किया गया है। यूटोपिया के सम्बन्ध में विचार किया गया है और बताया गया है कि जब सभ्यता पतनोन्मुख होती है,तब ऐसी कल्पना

की जाती है । उसका अभिप्राय यह होता है कि पतन को रोका जाय और उसी स्तर पर कायम रखा जाय जिस स्तर पर सभ्यता उस समय है ।

१०. सभ्यताओं के विकास की प्रकृति

(१) दो भ्रामक संकेत

विकास उस समय होता है, जब किसी विशेष चुनौती का सामना ही नही होता, बल्कि उस सफलता से नयी चुनौती उपस्थित होती है और फिर उस पर विजय प्राप्त होती है । इस विकास को हम कैसे नाप सकते हैं । क्या हम इमसे नाप सकते हैं कि समाज ने बाहरी वातावरण पर कितना नियन्त्रण प्राप्त कर रखा है ? इस प्रकार के नियन्त्रण की वृद्धि दो प्रकार की होती है—या तो मानवी वातावरण पर नियन्त्रण हो जिसका अर्थ है पडोसी लोगों पर विजय प्राप्त की जाय या भौतिक वातावरण पर विजय प्राप्त हो, जिसका अर्थ है तकनीकी उन्नति । फिर उदाहरण दिये गये हैं कि न तो सैनिक और राजनीतिक विस्तार और न तकनीकी विकास वास्तविक उन्नति की कसौटी है । सैनिक विस्तार सैनिकवाद का परिणाम है जो पतन का चिह्न है । तकनीकी उन्नति चाहे कृषि की हो चाहे औद्योगिक हो वास्तविक विकास की परिचायक नहीं है । वास्तविकता यह हो सकती है कि तकनीकी उन्नति ऐसे समय हो रही है, जब सभ्यता पतनोन्मुख है, इसके विपरीत भी हो सकता है ।

(२) आत्मनिर्णय की ओर प्रगति

वास्तविक प्रगति अलौकिकीकरण की प्रक्रिया में पायी गयी, जिसमे भौतिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की गयी, जिससे वह शक्ति बच रही जिससे बाहरी की अपेक्षा आन्तरिक चुनौती का सामना समाज कर सका, भौतिक चुनौती नही, आध्यात्मिक चुनौती । इस प्रकार के अलौकिकी-करण का उदाहरण हेलेनी तथा आधुनिक पश्चिमी समाजो से दिया गया है ।

११. विकास का विश्लेषण

(१) समाज और व्यक्ति

समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्ध के बारे में दो मत प्रचलित है—एक यह कि समाज व्यक्तियों के परमाणुओं का समूह है, दूसरा यह कि समाज जीवित संगठन है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति का उस समाज के बिना कोई अस्तित्व नही है । बताया गया है कि ये दोनो विचार भ्रामक हैं । वास्तविक बात यह है कि समाज व्यक्तियो के आपसी सम्बन्ध की व्यवस्था है । मानव प्राणी बिना एक-दूसरे के सम्बन्ध के मानव नहीं रह जाता और समाज ही इनके आपसी सम्बन्ध का क्षेत्र है । किन्तु क्रिया का स्रोत व्यक्ति है । सारा विकाम क्रियाशील व्यक्तियों अथवा अल्पसंख्यकों द्वारा आरम्भ होता है । इनका कार्य दोहरा होता है । पहला यह कि वह अपनी खोज अथवा प्रेरणा की उपलब्धि करते हैं और दूसरा यह कि अपने समाज को इस नये जीवन के अनुसार बनाते हैं । सिद्धान्ततः (यह परिवर्तन दो में से एक ढग से होता है) या तो जनता भी उसी अनुभूति को प्राप्त करे जो व्यक्ति ने प्राप्त की या उसके बाहरी रूप की नकल करे अर्थात् अनुकरण । व्यवहार में थोड़े अल्पसंख्यक को छोड़कर यही दूसरा ढंग अपनाया जाता है । अनुकरण सरल रास्ता है । इसी राह से जनता अपने नेताओं का अनुसरण कर सकती है ।

(२) अलग होना और लौटना : व्यक्ति

क्रियाशील व्यक्ति का कार्य अलग होने और लौटने का दोतरफा रास्ता है—अलग होते हैं अपने व्यक्तिगत प्रबुद्धता के लिए, लौटते हैं अपने समाज को प्रबुद्ध बनाने के लिए। इसके लिए प्लेटो की गुफा का, सन्त पाल के बीज का, बाइबिल से तथा और स्थलो से उदाहरण दिये गये है। और फिर सन्त पाल, सन्त बेनेडिक्ट, सन्त ग्रेगरी महान्, बुद्ध, मुहम्मद, मकियावली तथा दान्ते के व्यावहारिक जीवन से उदाहरण दिये गये है।

(३) अलग होना तथा तथा लौटना : सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग

अलग होना तथा लौटना अव-समाजो का भी लक्षण है जिनके द्वारा मुख्यतः समाज बना है। जिस काल में ये अव-समाज अपने समाजो के विकास का कार्य करते है उसके पहले वे समाज के कार्य-क्षेत्र से अलग हो जाते हैं। उदाहरण के लिए हेलेनी समाज के विकास के दूसरे अध्याय में एथेन्स, पश्चिमी समाज के विकास के दूसरे अध्याय में इटली और अपने तीसरे अध्याय में इग्लैड। सम्भव है रूस भी अपने विकास के चौथे अध्याय में ऐसा ही करे।

१२. वृद्धि द्वारा भिन्नता

जिस विकास का वर्णन ऊपर किया गया है वह विकासोन्मुख समाज के विभिन्न अलग-अलग अगो की विभिन्नता है। प्रत्येक मजिल पर कुछ तो मौलिक कार्य करके सामना करेंगे, कुछ उनका अनुकरण करेगे तथा कुछ न तो मौलिक कोई कार्य करेगे, न अनुकरण करेगे और समाप्त हो जायेंगे। विभिन्न समाजो के इतिहास मे भी विभिन्नता होगी, स्पष्टतः विभिन्न समाजो की अलग-अलग विशेषताएँ होगी। कुछ कला में उत्कृष्ट होगे, कुछ धर्म में और कुछ औद्योगिक आविष्कारो मे। किन्तु सब सभ्यताओ के मूल आधार को नही भूलना चाहिए। प्रत्येक बीज का अपना भविष्य होता है,किन्तु सब बीज एक प्रकार के होते हैं। बोने वाला एक है और एक प्रकार के फस्ल की आशा वह करता है।

४. सभ्यताओं का विनाश

१३. समस्या का रूप

जिन २६ सभ्यताओं का वर्णन किया गया है (अविकसित सभ्यताओ को मिलाकर) सोलह मर चुकी है। शेष दस—हमारी सभ्यता को छोडकर—सबका पतन हो चुका है। पतन का प्रकार तीन बातो में बताया जा सकता है। सर्जनात्मक अल्पसख्या में सर्जनशील शक्ति की असफलता, जिसके कारण वह केवल शक्तिशाली अल्पसख्या रह जाती है, बहुसख्या अपनी निष्ठा और अनुकरण करना छोड़ देती है, और समाज मे एकना नहीं रह जाती। हमारा दूसरा कार्य है यह जानना कि ऐसे पतनो का कारण क्या है।

१४. नियतिवादी समाधान (डिटरमिनिस्टिक सोल्युशन)

कुछ विचारकों का मत है कि सभ्यताओ का पतन ऐसे कारणो से होता है, जिन पर मनुष्य का वश नही है।

(१) हेलेनी सभ्यता के पतन के समय ईसाई तथा गैर-ईसाई लेखकों ने बताया कि उनके समाज का पतन 'विश्व की जरावस्था' के कारण है। किन्तु आधुनिक भौतिक विज्ञानियों ने बताया है कि विश्व की जरावस्था कही अज्ञात सुदूर है और हमारी सभ्यता पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ सकता।

(२) स्पेंगलर का कहना है कि समाज जीव के समान है और स्वभावतः यौवन, जरा तथा मृत्यु को प्राप्त होगा। किन्तु समाज जीव या प्राणी नहीं है।

(३) कुछ का कहना है कि मानव की सभ्यता के जन्म में कुछ ऐसी बातें हैं कि कुछ दिनों के बाद प्रजाति की सभ्यता तभी जीवित रह सकती है,जब उसमें बर्बर के नये रक्त का संचार किया जाय। इस पर विचार किया गया और यह विचार त्याग दिया गया।

(४) अब रह जाता है चक्र वाला सिद्धान्त, जिसका वर्णन प्लेटो के टिमियस में वर्जिल के चौथे गोपगीत में अथवा और पुस्तकों में लिखा है। यह विचार शायद उस समय आया, जब काल्डियनों ने सौर्यमण्डल की जानकारी प्राप्त की। किन्तु वर्तमान ज्योतिष के आविष्कारों ने इस सिद्धान्त को अमान्य कर दिया। सिद्धान्त के पक्ष में कुछ नहीं है, विपक्ष में बहुत।

१५. वातावरण से नियन्त्रण का लोप होना

इस अध्याय का विषय अध्याय १० (१) का उलटा है। जहाँ यह कहा गया था कि भौतिक वातावरण पर नियन्त्रण की वृद्धि से, जिसे हम तकनीकी उन्नति से नाप सकते है और मानवी वातावरण पर नियन्त्रण की वृद्धि से, जिसे हम भौगोलिक विस्तार से या सैनिक विजय से नाप सकते हैं वे उन्नति के कारण या कसौटी नहीं है। यहाँ बताया गया है कि तकनीकी अवनति या सैनिक आक्रमण से सीमा का संकुचित होना पतन के कारण नहीं है।

(१) भौतिक वातावरण

अनेक उदाहरणो द्वारा दिखाया गया है कि तकनीकी अवनति पतन का कारण नहीं, परिणाम है। रोमन सड़को का त्यागना और मेसोपोटामिया की सिंचाई-व्यवस्था का त्यागना इनसे सम्बान्धत सभ्यताओ क विनाश क कारण हुआ, वे विनाश का कारण नहीं थे। मलेरिया का प्रकोप सभ्यता के विनाश का कारण कहा जाता है, किन्तु बताया गया है कि पतन के कारण मलेरिया का प्रकोप हुआ।

(२) मानवी वातावरण

गिबन का मन्तव्य कि रोम का पतन और विनाश बर्बरता और धर्म (अर्थात् ईसाइयत) के कारण हुआ देखा गया और अस्वीकार कर दिया गया। बाहरी तथा भीतरी सर्वहारा की ये अभिव्यक्तियाँ हेलेनी समाज के पतन का परिणाम थी, जो हो चुका था। गिबन और पीछे का इतिहास नहीं देखता। वह अन्टोनाइन युग को स्वर्ण युग समझता है जबकि वह केवल 'भारतीय ग्रीष्म' था। सभ्यताओ के विरुद्ध अनेक सफल आक्रमणो के उदाहरण देकर बताया गया है कि प्रत्येक में सफल आक्रमण पतन के बाद हुआ है।

(३) नकारात्मक अभिमत

उन्नति करते हुए समाज पर जब आक्रमण होता है, तब उससे उन्नति में अधिक उत्तेजना प्राप्त होती है। ऐसा भी सम्भव है कि समाज यदि पतित हो चुका है तो आक्रमण उसे स्फुरण प्रदान करता है। (सम्पादक का नोट है कि 'पतन' (विनास) शब्द विशेष अर्थ में इस पुस्तक में प्रयुक्त हुआ है)।

१६. आत्मनिर्णय की असफलता

(१) अनुकरण की यांत्रिकता

असर्जनशील बहुसंख्या सर्जनशील नेताओं का अनुकरण करके ही उनका अनुसरण कर सकती

है। यह अनुकरण केवल यान्त्रिक ढंग का अभ्यास है। इस सरल राह में खतरे हैं। नेताओं में उनके अनुगामियों की यान्त्रिकता आ सकती है। परिणामस्वरूप सभ्यता अविकसित रह जायगी। यह भी हो सकता है कि नेता प्रेम मार्ग को छोड़कर दण्ड देने वाला मार्ग काम में लायें। इस परिस्थिति में सर्जनशील अल्पसंख्या शक्तिशाली अल्पसंख्या हो जायगी और अनुगामी सब मजबूरी से सर्वहारा हो जायेंगे।

जब ऐसा होता है, समाज विघटन की राह पर चला जाता है। उसकी आत्मनिर्णय की शक्ति जाती रहती है। नीचे के उदाहरण बतायेंगे कि ऐसा किस प्रकार होता है।

(२) पुरानी बोतल में नयी शराब

आदर्श यह है कि सर्जनशील अल्पसंख्यक द्वारा जो नयी शक्ति उत्पन्न होती है उससे नयी सस्थाओ का जन्म होना चाहिए जिनमे वह कार्य करे। वास्तव में वह पुरानी सस्थाओ द्वारा कार्य करता है जो दूसरे कामो के लिए बनी हैं। किन्तु पुरानी उसके लिए अनुपयुक्त होती है। दो में से एक परिणाम होता है—या तो संस्थाएँ विघटित हो जाती हैं (क्रान्ति) या वह जीवित रहती है और नयी शक्तियो की विकृति हो जाती है (दुष्टता)। क्रान्ति की परिभाषा यह है कि वह अनुकरण के विलम्ब से उत्पन्न विस्फोट है, दुष्टता या भीषणता अनुकरण की कुण्ठा है। यदि शक्तियो का सस्थाओं से सामजस्य है तो विकास होता रहेगा, यदि क्रान्ति होगी तो विकास सकटमय हो जायगा, यदि दुष्टता होगी तो विघटन होगा। इसके बाद अनेक ऐसे उदाहरण दिय गये हैं जिनमे पुरानी सस्थाओ पर नयी शक्तियो का संघात हुआ है। पहले वर्ग मे आधुनिक पश्चिमी समाज मे दो नयी शक्तियो का सघात दिखाया गया है।

दास-प्रथा पर उद्योगवाद का सघात—संयुक्त-राज्य अमरीका के दक्षिणी राज्यो मे युद्ध पर लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद का प्रभाव—फान्स की क्रान्ति के बाद युद्ध की तीव्रता संकुचित स्थानीय राज्यो पर लोकतन्त्र तथा उद्योगवाद का सघात जिसमे राष्ट्रीयतावाद की अतिवृद्धि होती है और मुक्त-व्यापार विफल होता है।

निजी सम्पत्ति पर उद्योगवाद का संघात जैसा पूँजीवाद तथा समाजवाद के उदय से प्रकट होता है।

शिक्षा पर लोकतन्त्र का सघात जैसा रोमाचकारी पत्रकारिता तथा फासिस्ट अधिनायकवाद से प्रकट होता है।

इटालियाई दक्षता का आल्पस पार के राज्यो पर प्रभाव जैसा इगलैड को छोड़कर अन्य निरकुश शासन के उदय से प्रकट होता है।

सोलोनी क्रान्ति का हेलेनी नगर-राज्यो पर संघात जैसा निरंकुशता, अवरोध तथा सरदारी से प्रकट होता है।

पश्चिमी ईसाई तन्त्र पर स्थानीयता का प्रभाव जैसा प्रोटेस्टेन्ट क्रान्ति, राजाओं का ईश्वरीय अधिकार और देशप्रेम से ईसाइयत का मन्द होना प्रकट होता है।

धर्म पर एकता की भावना का संघात जैसा धार्मिक उन्माद तथा उत्पीड़न से प्रकट होता है।

जाति पर धर्म का प्रभाव जैसा हिन्दू-सभ्यता से प्रकट होता है।

श्रमविभाजन पर सभ्यता का संघात जिससे नेताओं में रहस्यवाद और अनुगामियो मे एकांगी-

पन हो जाता है। अन्तिम दोष उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों से प्रकट होता है जैसे यहूदी और आधुनिक क्रीड़ा व्यवस्था से प्रकट होता है।

अनुकरण पर सभ्यता का संघात, जो प्राचीन काल की भाँति कबीलों की परम्परा पर नहीं है, अग्रगामियों पर है।

अधिकांश जो अग्रगामी अनुकरण के लिए चुने जाते हैं वे सर्जनशील नेता नही होते वे शोषक होते हैं या राजनीतिक आन्दोलक होते हैं।

(३) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी अपनत्व की भक्ति

इतिहास का प्रमाण है कि जो वर्ग एक चुनौती का सामना करता है वह दूसरी चुनौती का सामना शायद ही कर पाता हो। अनेक उदाहरण दिये गये हैं और बताया गया है कि यूनानी तथा हिब्रू विचारों से इसका समर्थन होता है। जो एक चुनौती का सामना करने में सफल हो जाते हैं वे आराम करने लगते है। यहूदियो ने पुरानी बाइबिल का सामना किया, किन्तु नयी बाइबिल का करने मे असफल रहे। पेरिक्लीज का एथेन्स सन्त पाल के एथेन्स में सिकुड़ जाता है। इटालियाई पुनरुत्थान मे जिन केन्द्रों ने सहयोग किया वे पुनर्जागरण में विफल रहे। पीडमान्ट ऐसे नगरो ने नेतृत्व ग्रहण किया जिनका इटालियाई अभ्युदय में कुछ भी हाथ न था। उन्नीसवी शती के प्रथम तथा द्वितीय चतुर्थांश मे दक्षिण केरोलिना और बरजिनिया अमेरिका के संयुक्त राज्यों में प्रमुख थे, किन्तु घरेलू युद्ध के पश्चात् वे नही बढ़ सके; उत्तरी कैरोलिना बढ़ गया।

(४) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी संस्था की भक्ति

हेलेनी इतिहास के अन्तिम दिनो मे नगर-राज्यो की भक्ति के जाल में यूनानी फँस गये, रोमन नही। रोमन साम्राज्य के भूत ने परम्परावादी ईसाई समाज का विनाश किया। ऐसे उदाहरण भी दिये गये हैं कि राजा, संसद, शासक, जातियो ने प्रगति को अवरुद्ध किया है। चाहे नौकरशाही रही हो या पुरोहितशाही।

(५) सर्जनात्मकता का प्रतिशोध : अस्थायी तकनीक की भक्ति

जीव-विज्ञान के विकास के उदाहरण से पता चलता है कि वातावरण पर पूर्ण विजय पाने वाले जीव विकास मे पिछड़ जाते है और जो समय के साथ चलते है वे आगे बढ़ते हैं। मछलियों से जलस्थलीय जीव अधिक प्रगतिशील रहे, बृहदाकार सरिसृप से मानवो के चूहे के समान पूर्वज विकास मे अधिक सफल हुए। औद्योगिक क्षेत्र में किसी समुदाय ने नयी तकनीक मे पहले कुछ सफलता प्राप्त की जैसे पैडल से चलने वाले स्टीमर के आविष्कारको ने, किन्तु स्क्रू से चलने वाले स्टीमरो के आविष्कारको के पीछे वे रह गये। डैविड और गोलियथ से लेकर आजतक के युद्ध की तकनीक पर विचार किया गया है। एक आविष्कार वाले आराम करते हैं और उनके बैरी दूसरा आविष्कार कर लेते हैं।

(६) सैनिकवाद की आत्मघाती प्रवृत्ति

ऊपर के तीन अंशो में आराम करनेवालो के उदाहरण दिये गये हैं। जिससे वे सर्जनशीलता के प्रतिशोध के शिकार हो जाते हैं। अब हम विपथन के रूप बताते हैं जो यूनानी सूत्र 'कोरोस, यूबरीस, ऐथ' से व्यक्त होता है। (बहुत अधिक, अत्याचारी व्यवहार तथा विनाश)। सैनिकवाद स्पष्ट उदाहरण है। असीरियनों का विनाश इसलिए नहीं हुआ कि वे आराम कर

रहे थे, जैसा पहले अध्यायों और विजेताओं के बारे में बताया गया है । ये बराबर सैनिकता में उन्नति कर रहे थे । इनका विनाश इसलिए हुआ कि उनकी लड़ाकू प्रवृत्ति थी । और उनके पड़ोसियों के लिए वे असह्य हो गये थे । असीरियन का उदाहरण ऐसा है जिन्होंने अपने आन्तरिक पड़ोसी पर आक्रमण किया । ऐसा ही आस्ट्रेशियाई फ्रैंकों ने तथा तैमूर लंगने ने किया । और उदाहरण भी दिये गये हैं ।

(७) विजय का मद

ऊपर के पैराग्राफ के समान ही अ-सैनिक क्षेत्र से एक उदाहरण दिया गया है । हिल्ड ब्रैन्ड पोप का जो विकसित होने के बाद अपने को ऊँचाई पर न ले जा सका । इसकी असफलता इसलिए हुई कि विजय के मद में अपने राजनीतिक शस्त्रों का व्यवहार पापात्मक कार्यों में उसने किया । इसी दृष्टि से अभिषेक संस्कार की परीक्षा की गयी है ।

५. सभ्यताओं का विघटन

१७. विघटन का स्वरूप

(१) साधारण सर्वेक्षण

क्या पतनों के बाद विघटन होना आवश्यक है ? मिस्री तथा सुदूर पूर्व के समाजो से पता चलता है कि एक और विकल्प है । अर्थात् जड़ीभूत हो जाना । जो हेलेनी सभ्यता का परिणाम हुआ और हमारी सभ्यता का भी हो सकता है । विघटन की मुख्य कसौटी है सामाजिक शरीर का तीन अगों मे विभाजन—शक्तिशाली अल्पसंख्या, आन्तरिक सर्वहारा तथा बाहरी सर्वहारा । पहले जो कहा जा चुका है वह दुहराया गया और आगे के अध्यायो का आयोजन बताया गया ।

(२) भेद और पुनर्जीवन

कार्ल मार्क्स का इलहामी दर्शन कहता है कि सर्वहारा के अधिनायकवाद के बाद वर्ग-युद्ध होगा—एक नये समाज द्वारा । मार्क्स के सिद्धान्त के अतिरिक्त जब समाज ऊपर के बताये तीन टुकड़ो मे विभाजित हो जाता है तब यही होता है । प्रत्येक टुकड़ा एक नयी सृष्टि करता है—शक्तिशाली अल्पसख्या सार्वभौम राज्य का निर्माण करती है, आन्तरिक सर्वहारा सार्वभौम धर्मतन्त्र बनाता है और बाहरी सर्वहारा बर्बर लड़ाकू दल ।

१८. सामाजिक जीवन में भेद

(१) शक्तिशाली अल्पसंख्यक

यद्यपि शक्तिशाली अल्पसंख्या मे शोषक और सैनिक मुख्य हैं, भले लोग भी पाये जाते हैं । जैसे कानूनदा और शासक जो सार्वभौम राज्य का संचालन करते हैं, दार्शनिक जो पतनोन्मुख समाजों को अपना दर्शन-ज्ञान देते है, उदाहरण के लिए सुकरात से लेकर प्लोटिनस तक दार्शनिकों की लम्बी शृखला । दूसरी सभ्यताओ से उदाहरण दिये गये हैं ।

(२) आन्तरिक सर्वहारा

हेलेनी समाज का इतिहास बताता है कि तीन स्रोतों से ये आये—आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से ध्वस्त तथा उनके उत्तराधिकारी हेलेनी राज्यों के नागरिक, पराजित लोग, दास-व्यापार के शिकार ये सब सर्वहारा हैं, समाज में किन्तु समाज के नही । पहले इनकी प्रतिक्रिया

तीव्र होती है परन्तु धीरे-धीरे ये शान्त हो जाते है और ऊँचे धर्म जैसे ईसाई धर्म का आविष्कार करते हैं। यह धर्म मिथ्रवाद तथा दूसरे प्रतिद्वन्द्वी धर्मों के समान ऐसे 'सभ्य' समाज से उत्पन्न हुआ जिसे हेलेनी शक्ति ने जीत लिया था। दूसरे समाजो के आन्तरिक सर्वहारा की भी परीक्षा की गयी और वही परिणाम निकला जैसे बैबिलोनी समाज से उत्पन्न जूडावाद तथा जरथुष्ट्रवाद वैसे ही थे जैसे हेलेनी समाज से उत्पन्न ईसाई धर्म और मिथ्रवाद यद्यपि उनका बाद का विकास विभिन्न था जैसा बताया गया है। बौद्ध दर्शन महायान के रूप मे परिवर्तित हो गया और चीनी आन्तरिक सर्वहारा के लिए धर्म मिला।

(३) पश्चिमी संसार के आन्तरिक सर्वहारा

यहाँ भी आन्तरिक सर्वहारा के होने का पर्याप्त प्रमाण दिया जा सकता है। उनमें एक है सर्वहारा से एकत्र किये गये बौद्धिक लोग जो शक्तिशाली अल्पसंख्या के एजेन्ट का काम करते है। बौद्धिक लोगों की विशेषताओ का वर्णन किया गया है। किन्तु आधुनिक पश्चिमी समाज के आन्तरिक सर्वहारा नये 'उच्चतर धर्म' के उत्पन्न करने मे असफल रहे। यह संकेत किया गया है कि इसका कारण यह था कि ईसाई धर्मतन्त्र जिसे पश्चिमी ईसाई समाज की उत्पत्ति हुई है बराबर सजीव रहा है।

(४) बाहरी सर्वहारा

जब तक किसी सभ्यता का विकास होता रहता है, उसका प्रभाव उसके आदिम पड़ोसियो के पास बहुत दूर तक पहुँचता रहता है। वे 'असर्जनशील बहुसख्या' के अग हो जाते है और ये सर्जनशील अल्पसंख्या के नेतृत्व मे चलने लगते है। किन्तु जब किसी सभ्यता का पतन हो जाता है तब यह जादू नही चल पाता। बर्बर विरोधी हो जाते हैं और सीमा पर सैनिक दल स्थापित हो जाता है जो आगे बढ़ता है किन्तु बाद मे अचल हो जाता है। जब यह अवस्था पहुँच जाती है तब समय बर्बरो का साथ देता है। हेलेनी इतिहास से इसका उदाहरण दिया गया है। बाहरी सर्वहारा का जोरदार और कोमल सामना दिखाया गया है। विरोधी सभ्यता का दबाव बाहरी सर्वहारा के आदिम धर्मो का ओलिम्पियाई 'दैवी युद्ध दल' बदल देता है। बाहरी सर्वहारा की विजय का फल महाकाव्य होता है।

(५) पश्चिमी संसार के बाहरी सर्वहारा

उनके इतिहास का पुनरावलोकन किया गया और बाहरी सर्वहारा के जोरदार और कोमल सामना के उदाहरण दिये गये है। आधुनिक पश्चिमी समाज की भौतिक दक्षता के आधिक्य के कारण ऐतिहासिक ढंग की बर्बरता लोप हो गयी। उसके दो गढ रह गये। अफगानिस्तान और साऊदी अरब जहाँ के शासक पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण कर रहे हैं। किन्तु पश्चिमी ईसाई जगत् के पुराने केन्द्रो में ही भीषण बर्बरता उत्पन्न हो रही है।

(६) विदेशी और देशी प्रेरणाएँ

शक्तिशाली अल्पसंख्या तथा बाहरी सर्वहारा को यदि विदेशी प्रेरणा मिले तो उन्हे रुकावट होती है। जैसे विदेशी शक्तिशाली अल्पसंख्या यदि सार्वभौम राज्य बनाये (जैसे भारत में अंग्रेजो ने) तो वे कम सफल होते है, देशी सार्वभौम राज्य के निर्माण की तुलना में जैसे रोमन साम्राज्य। बर्बर युद्ध-दलों का बहुत कठोर और जोरदार विरोध होता है यदि बर्बरों में विदेशी सभ्यता का कुछ प्रभाव होता है जैसे मिस्र में हाइक्सो का और चीन में मंगोलों का। इसके विपरीत

आन्तरिक सर्वहारा द्वारा जो 'उच्चतर धर्म' उत्पन्न होता है उसका आकर्षण इसलिए होता है कि उसमें विदेशी प्रेरणा होती है। सभी 'उच्चतर धर्म' यही बताते हैं।

यह तथ्य कि 'उच्चतर धर्म' का इतिहास तब तक समझ में नहीं आ सकता, जब तक दो सभ्यताओं का अध्ययन न किया जाय. . . .एक वह सभ्यता जिससे प्रेरणा प्राप्त हुई है और दूसरी जिसने प्राप्त की है—यह बताता है कि जिस आधार पर यह अध्ययन किया गया है—यह आधार कि अलग-अलग सभ्यताएँ अध्ययन के उचित क्षेत्र नहीं हैं—इस स्थान पर समाप्त हो जाती हैं।

१९. सामाजिक जीवन में आत्मा का भेद

(१) **आचरण, भावना और जीवन का विकल्प**

जब किसी समाज का पतन आरम्भ होने लगता है तब विकास के काल में व्यक्तियों के आचरण, भावना तथा जीवन की जो विशेषताएँ रहती हैं उनका स्थान दूसरी बातें ले लेती हैं। एक (पहले वाला एक जोड़ा) निष्क्रिय और दूसरा (बाद वाला) सक्रिय।

सर्जनात्मकता के दो विकल्प हैं, (समर्पण और आत्मनिग्रह) अनुकरण की शिष्यता के लिए विचलन और आत्मोत्सर्ग।

विकास मे जो सजीवता रहती है उसके विकल्प, विचलन और पाप की भावना होती है। विकास के साथ जो वस्तुपरक प्रक्रिया का भेद होता है उसकी आत्मपरक भावना में जो व्यवस्था का रूप होता है उसके स्थान पर असामंजस्य तथा एकता की भावना आ जाती है। जीवन के स्तर पर कार्य के क्षेत्र मे जाने पर दो विकल्प मिलते हैं। महान् की ओर से सूक्ष्म की ओर जाना जो अलौकिकीकरण की प्रक्रिया में निहित है। इसमे पहले दो विकल्प—पुरातनवाद तथा भविष्यवाद—परिवर्तन नहीं ला सकते और इनका अन्त हिंसा होती है। पुरातनवाद घड़ी को पीछे चलाना है, भविष्यवाद ससार में असम्भव युग लाने का प्रयत्न है। दूसरा विकल्प अलगाव और रूपान्तरण परिवर्तन लाने मे सफल होते हैं और उनमे अहिंसा होती है। अलगाव पुरातनवाद का अध्यात्मीकरण है, आत्मा के गढ़ मे जाकर संसार का त्याग करना है। रूपान्तरण भविष्यवाद का अध्यात्मीकरण है उससे 'उच्चतर धर्म' की उत्पत्ति होती है। जीवन के चारो ढंग तथा उनके आपस के सम्बन्ध बताये गये हैं। अन्त में यह दिखाया गया है कि इनमें से जीवन की कुछ भावनाएँ शक्तिशाली अल्पसंख्या की आत्माओं की विशेषता है और कुछ सर्वहारा की आत्माओ की।

(२) **त्याग और आत्मनिग्रह की परिभाषा की गयी है, उदाहरण दिये गये हैं।**

(३) **पलायन और प्राणोत्सर्ग की परिभाषा की गयी है और उदाहरण दिये गये हैं।**

(४) **विचलन का भाव तथा पाप का भाव।**

विचलन का भाव इस कारण होता है कि संसार का शासन सयोग से होता है या आवश्यकता से। बताया गया है कि ये दोनों एक हैं। इसके उदाहरण दिये गये है। कुछ नियतिवादी धर्म जैसे कालविनवाद बहुत शक्तिशाली है और विश्वास उत्पन्न करते है। इस विचित्रता का कारण बताया गया है।

जहाँ विचलन की भावना नशा है वहाँ पाप की भावना प्रेरणा है। कर्म के तथा 'मूल पाप' के (जिसमें पाप तथा नियतिवाद मिला हुआ है) सिद्धान्त पर विचार किया गया है। हिब्रू देवदूत

पाप को ही राष्ट्रीय दुर्भाग्य का कारण बताते हैं यद्यपि वह स्पष्ट नहीं दिखाई देता । इन देव-दूतों की शिक्षा ईसाइयों ने ली और उनसे हेलेनी संसार ने जो उसे लेने के लिए शतियों से तैयारी कर रहा था ।

(५) असामंजस्य की भावना

यह सभ्यता के विकास की व्यवस्था में एक निष्क्रिय विकल्प है । यह अनेक रूपों में प्रकट होता है । (अ) **व्यवहार में अभद्रता और बर्बरता**—शक्तिशाली अल्पसंख्या सर्वहारा की ओर झुकती जाती है । आन्तरिक सर्वहारा की अभद्रता और बाहरी सर्वहारा की बर्बरता को वह अपनाती है । और विघटन की अन्तिम अवस्था में उसका जीवन और इन दोनों का जीवन बिना अन्तर का हो जाता है । (ब) **कला में अभद्रता तथा बर्बरता**—विघटनोन्मुख सभ्यता अपनी कला के विस्तार का यही मूल्य चुकाती है । (स) **सामान्य भाषा**—जातियों के मिलने से अस्तव्यस्तता होती है और भाषा के लिए आपस में होड़ होती है । उनमें से कुछ सामान्य भाषा बन जाती है और उनका अपकर्ष होता है । अनेक उदाहरण दिये गये हैं । (द) **धर्म में संहतिवाद**—तीन आन्दोलनों का अन्तर समझना चाहिए । विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों का मिलन, विभिन्न धर्मों का मिलन जैसे इसरायल के धर्म का पड़ोसी मतों से मिलन जिसका सफलतापूर्वक हिब्रू पैगम्बरों ने विरोध किया था, और दर्शन तथा धर्मों की एक-दूसरे से संहति । चूंकि दर्शन शक्तिशाली अल्पसंख्या की उपलब्धि है और 'उच्चतर धर्म' आन्तरिक सर्वहारा की उपलब्धि है, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया की तुलना की गयी है उस उदाहरण से जो ऊपर (अ) में दिये गये हैं । जैसे वहाँ, यहाँ भी यद्यपि सर्वहारा शक्तिशाली अल्पसंख्या की ओर बढ़ता है, शक्तिशाली अल्पसंख्या आन्तरिक सर्वहारा की ओर बहुत अधिक बढ़ता है । उदाहरण के लिए ईसाई धर्म अपने धार्मिक व्याख्या के लिए हेलेनी दर्शन का प्रयोग करता है । किन्तु यह उसकी तुलना में बहुत कम है जो परिवर्तन प्लेटो और जूलियन के बीच यूनानी दर्शन में हुआ । (च) **शासक धर्म का निर्णय करता है ?**—इस अंश में हम कुछ विषय से अलग हो गये हैं । उस पर विचार करते हुए जो इसके पहले के अध्याय में दार्शनिक सम्राट् जूलियन के सम्बन्ध में विचार किया गया है । क्या शक्तिशाली अल्पसंख्या उस आध्यात्मिक कमी को राजनीतिक दबाव से अपना दर्शन या धर्म लादकर पूरी कर सकती है ? इसका उत्तर है कि कुछ अपवाद को छोड़कर यह नहीं हो सकता और जो धर्म राजनीति का समर्थन चाहता है. हानि उठायेगा । एक अपवाद है इस्लाम । इस पर विचार किया और यह ऐसा अपवाद नहीं है जैसा समझा जाता है । इसका उलटा सूत्र कि प्रजा का धर्म शासक का धर्म होता, अधिक सत्य है ।

(६) एकता की भावना

असामंजस्य की निष्क्रिय भावना के विपरीत यह सक्रिय भावना है । इसका परिणाम सार्वभौम राज्य होता है और इसी भावना से सर्वशक्तिशाली कानून की कल्पना अथवा सर्व-शक्तिमान् ईश्वर की कल्पना होती है जो विश्व पर शासन करता है । इन दो विचारों की परीक्षा की गयी और उदाहरण दिया गया है । इस संदर्भ में हिब्रुओं के 'ईर्ष्यालु देवता' जेहोवा को आरम्भ के काल से देखा गया है जब वह ज्वालामुखी सीनिया पर्वत पर 'जिन' था और एक सच्चे ईश्वर में रूपान्तरित हो गया । और ईसाई धर्म में भी उसी भाँति आज पूजा जाता

है। इसकी व्याख्या की गयी है कि कैसे वह अपने प्रतिद्वन्दियों पर विजयी हो गया।

(७) पुरातनवाद

यह वह चेष्टा है कि पतनोन्मुख समाज अपनी असहनीय परिस्थिति से ऊब कर पीछे के युग में जाना चाहता है। प्राचीन तथा आधुनिक उदाहरण दिये गये हैं। आधुनिक उदाहरण में गोथिक तथा कृत्रिम पुनरुत्थान भी दिया गया है, राष्ट्रीय कारणों से और अनेक अप्रचलित भाषाओं के। पुरातनवादी आन्दोलन या तो मृत हो जाते हैं या अपने विरोधी आन्दोलन में परिणत हो जाते हैं जैसे—

(८) भविष्यवाद

यह ऐसा प्रयत्न है कि वर्तमान से बचने के लिए अंधेरे में कूदा जाता है जिसका भविष्य अज्ञात है। वह प्राचीन को लेकर परम्परा से शृंखला बाँधना चाहता है। कला में मूर्ति-भंजन का काम होता है।

(९) भविष्यवाद में आत्मोत्कृष्टता

जिस प्रकार पुरातनवाद के भविष्यवाद के गर्त में गिर जाने का भय होता है उसी प्रकार भविष्यवाद रूपान्तरवाद की ऊँचाई पर जा सकता है। दूसरे शब्दों में वह संसार में असम्भव यूटोपिया पाने का प्रयत्न त्याग दे और आत्मा मे अपना जीवन पाने की चेष्टा करे। इस दृष्टि से बन्दी होने के बाद के यहूदियो का इतिहास देखा गया। भविष्यवाद के कारण यहूदियो ने पृथ्वी पर अनेक साम्राज्य स्थापित करने का आत्मघाती प्रयत्न किया—ज़ेरुबबबेल से बार कोकाबा तक और रूपान्तर ईसाई धर्म में।

(१०) विराग और रूपान्तरण

विराग वह मनोवृत्ति है जिसकी बहुत उच्च तथा अटल अभिव्यक्ति बुद्ध की शिक्षा में हुई है। उसका तर्कपूर्ण परिणाम आत्महत्या है, क्योकि पूर्ण विराग ईश्वर के लिए ही सम्भव है। इसके विपरीत ईसाई धर्म ऐसे ईश्वर को बताता है जो जान-बूझकर विराग को त्याग देता है जिसे वह अपनी शक्ति से कर सकता है। "ईश्वर संसार को इतना प्यार करता है।"

(११) पुनर्जन्म या पुनरागमन

जीवन के जो चार रूपों की परीक्षा की गयी है उसमें रूपान्तर ही सबसे स्पष्ट है। और वह सम्पूर्ण से सूक्ष्म की ओर कार्य करता है। विराग के लिए भी यही सत्य है, किन्तु विराग केवल अलगाव है और रूपान्तर विराग के बाद फिर लौटना है। यह पुनर्जन्म पुराने ढंग का पुनर्जन्म नहीं है। इस पुनर्जन्म से नये समाज का जन्म होता है।

२०. विघटन होने वाले समाज और व्यक्तियों का सम्बन्ध

(१) सर्जनात्मक प्रतिभा त्राता के रूप में

विकास के काल में सर्जनात्मक व्यक्ति बराबर चुनौतियों का सफलता से सामना करते है। पतन के काल में वे पतनोन्मुख समाज के अथवा वहाँ से त्राता बनते हैं।

(२) तलवार से सज्जित त्राता

ये लोग सार्वभौम राज्य के निर्माता तथा रक्षक होते हैं। परन्तु तलवार के सारे कार्य अस्थायी होते है।

(३) समय-मशीन के लिए त्राता

ये पुरातनवादी तथा भविष्यवादी होते हैं। अन्त में ये भी तलवार को अपनाते हैं और तलवार वालों के समान ही अन्त होता है।

(४) राजा के आवरण में दार्शनिक

यह प्लेटो की विख्यात औषधि है। यह असफल हो जाती है क्योंकि दार्शनिक के विराग तथा राजनीतिक शासकों के बलप्रयोग का सामंजस्य नहीं होता।

(५) मानव में ईश्वरत्व

इस गुण के अनेक लोग असफल होते हैं, केवल ईसू ही सफल होता है।

२१. विघटन का लयात्मक रूप

विघटन एक सिलसिले से नही होता। वह पराजय-जमाव के लय से होता है। उदाहरण के लिए संकटकाल की पराजय के बाद सार्वभौम राज्य जमाव है। सार्वभौम राज्य का विनाश पूर्ण पराजय है। साधारणत. संकटकाल के समय एक जमाव पराजय के बाद होता है और सार्वभौम राज्य के समय एक पराजय के बाद जमाव होता है,यह लय जान पड़ती है—पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय-जमाव-पराजय—कुल साढे तीन विस्पन्दन। अनेक विलुप्त समाजों के इतिहास से इसका उदाहरण दिया गया है। और अपने पश्चिमी ईसाई संसार पर भी यह लागू किया गया यह देखने के लिए कि हमारा समाज विकास के किस स्थान पर पहुँचा है।

२२. विघटन द्वारा मानकीकरण

जिस प्रकार विभिन्नता विकास का लक्षण है, उसी प्रकार विघटन का लक्षण मानकीकरण है। यहाँ अध्याय समाप्त होता है एवं अगले खण्डो में और अध्ययन की बात बतायी जाती है।